NCERT

भूगोल

COACH UP IAS

YOUR SELECTION Is OUR BUSINESS



IAS COACH ASHUTOSH SRIVASTAVA



IAS COACH MANISH SHUKLA



FOR CIVIL SERVICES EXAMINATION

8009803231/92365 69979

Saarthi

THE COACH

1 : 1 MENTORSHIP BEYOND THE CLASSES

- **Diagnosis** of candidates based on background, level of preparation and task completed.
- **Customized solution** based on Diagnosis.
- One to One **Mentorship.**
- Personalized schedule **planning.**
- Regular **Progress tracking.**
- **One to One classes** for Needed subjects along with online access of all the subjects.
- Topic wise **Notes Making sessions**.
- One Pager **(1 Topic 1 page)** Notes session.
- **PYQ** (Previous year questions) Drafting session.
- **Thematic charts** Making session.
- **Answer-writing** Guidance Program.
- **MOCK Test** with comprehensive & swift assessment & feedback.



Ashutosh Srivastava
(B.E. , MBA, Gold Medalist)
Mentored 250+ Successful Aspirants over a period of 12+ years for Civil Services & Judicial Services Exams at both the Centre and state levels.



Manish Shukla
Mentored 100+ Successful Aspirants over a period of 9+ years for Civil Services Exams at both the Centre and state levels.

CLASS-6

1. सौरमंडल में पृथ्वी
2. ग्लोब: अक्षांश एवं देशांतर
3. पृथ्वी की गतियाँ
4. मानचित्र
5. पृथ्वी के प्रमुख परिमंडल
6. पृथ्वी के प्रमुख स्थलरूप
7. हमारा देश भारत
8. भारत जलवायु, वनस्पति तथा वन्य प्राणी

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

सौरमंडल में पृथ्वी

- सूर्यास्त के बाद आकाश को देखना कितना अच्छा लगता है। आसमान में पहले एक या दो चमकते बिंदु ही दिखते हैं, लेकिन बाद में इनकी संख्या बढ़ती जाती है। आप उनकी गणना नहीं कर सकते। संपूर्ण आकाश छोटी-छोटी चमकदार वस्तुओं से भर जाता है, जिनमें से कुछ चमकीले होते हैं एवं कुछ धुँधले। ऐसा प्रतीत होता है, मानो आकाश में हीरे जड़े हों। इनमें से कुछ टिमटिमाते प्रतीत होते हैं। लेकिन अगर आप उनको ध्यान से देखेंगे तो आप पाएँगे कि इनमें से कुछ की टिमटिमाहट अन्य से अलग है। ये बिना किसी टिमटिमाहट के चंद्रमा के समान चमकते हैं।
- इन चमकीली वस्तुओं के साथ आप लगभग प्रतिदिन चंद्रमा को भी देखते हैं। यह अलग-अलग समय पर अलग आकार तथा अलग स्थितियों में दिखाई पड़ता है। आप पूर्ण चंद्र को लगभग एक महीने में एक बार देख सकते हैं। यह पूर्ण चंद्रमा वाली रात या पूर्णिमा होती है। पंद्रह दिन के बाद आप इसे नहीं देख सकते। यह नये चंद्रमा की रात्रि या अमावस्या होती है। ऐसी रात में अगर आसमान साफ़ है तो आप आसमान का अवलोकन अच्छी तरह से कर सकते हैं।
- क्या आपको इस बात पर आश्चर्य नहीं होता है कि हम दिन के समय चंद्रमा एवं इन सभी छोटी चमकीली वस्तुओं को क्यों नहीं देख पाते हैं? ऐसा इसलिए है, क्योंकि सूर्य के अत्यधिक तेज प्रकाश के कारण रात के समय चमकने वाली वस्तुओं को हम दिन में नहीं देख पाते हैं।
- सूर्य, चंद्रमा तथा वे सभी वस्तुएँ जो रात के समय आसमान में चमकती हैं, खगोलीय पिंड कहलाती हैं।
- कुछ खगोलीय पिंड बड़े आकार वाले तथा गर्म होते हैं। ये गैसों से बने होते हैं। इनके पास अपनी ऊष्मा तथा प्रकाश होता है, जिसे वे बहुत बड़ी मात्रा में उत्सर्जित करते हैं। इन खगोलीय पिंडों को तारा कहते हैं। सूर्य भी एक तारा है।
- रात के समय चमकते हुए अनगिनत तारे सूर्य के समान ही हैं। लेकिन हमसे बहुत अधिक दूर होने के कारण हम लोग उनकी ऊष्मा या प्रकाश को महसूस नहीं करते हैं तथा वे अत्यंत छोटे दिखाई पड़ते हैं।
- आपने अवश्य ध्यान दिया होगा कि कुछ दूरी से देखने पर सभी वस्तुएँ छोटी दिखाई पड़ती हैं। अत्यधिक ऊँचाई पर उड़ रहा हवाई जहाज कितना छोटा दिखाई देता है!
- रात्रि में आसमान की ओर देखते समय आप तारों के विभिन्न समूहों द्वारा बनाई गई विविध आकृतियों को देख सकते हैं। ये नक्षत्रमंडल कहलाते हैं। अर्सा मेजर या बिग बीयर इसी प्रकार का एक नक्षत्रमंडल है। बहुत आसानी से पहचान में आने वाला नक्षत्रमंडल है, सप्तऋषि (सप्त-सात, ऋषि-संत)। यह सात तारों का समूह है, जो कि नक्षत्रमंडल अर्सा मेजर का भाग है (चित्र 1.1)। अपने परिवार या पड़ोस में किसी बड़े व्यक्ति से कहिए कि वह आपको आसमान में और अधिक तारों, ग्रहों तथा नक्षत्रमंडलों को दिखाएँ।
- प्राचीन समय में, लोग रात्रि में दिशा का निर्धारण तारों की सहायता से करते थे। उत्तरी तारा उत्तर दिशा को बताता है। इसे ध्रुव तारा भी कहा जाता है। यह आसमान में हमेशा एक ही स्थान पर रहता है। हम सप्तऋषि की सहायता से ध्रुव तारे की स्थिति को जान सकते हैं। चित्र 1.1 में आप देखेंगे कि यदि सप्तऋषि मंडल के संकेतक तारों को आपस में मिलाते हुए एक काल्पनिक रेखा खींची जाए एवं उसे आगे की ओर बढ़ाया जाए तो यह ध्रुव तारे की ओर इंगित करेगी।
- कुछ खगोलीय पिंडों में अपना प्रकाश एवं ऊष्मा नहीं होती है। वे तारों के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। ऐसे पिंड ग्रह कहलाते हैं। ग्रह जिसे अंग्रेजी में प्लेनेट (Planet) कहते हैं ग्रीक भाषा के प्लेनेटाइ शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है परिभ्रमक अर्थात् चारों ओर घूमने वाले। पृथ्वी, जिस पर हम रहते हैं, एक ग्रह है। यह अपना संपूर्ण प्रकाश एवं ऊष्मा सूर्य से प्राप्त करती है, जो पृथ्वी के सबसे नजदीक का तारा है। पृथ्वी को बहुत अधिक दूरी से, जैसे चंद्रमा से देखने पर, यह चंद्रमा की तरह चमकती हुई प्रतीत होगी।

1. बुध- सूर्य के चारों ओर एक परिक्रमण 88 दिन , अपने अक्ष पर घूर्णन - 59 दिन
2. शुक्र- सूर्य के चारों और एक परिक्रमण 243 दिन, अपने अक्ष पर घूर्णन 255 दिन
3. पृथ्वी- सूर्य के चारों ओर एक परिक्रमण 365 दिन, अपने अक्ष पर घूर्णन 1 दिन , चंद्रमा की संख्या - 1
4. मंगल-सूर्य के चारों ओर एक परिक्रमण - 687 दिन , अपने अक्ष पर घूर्णन 1 दिन , चंद्रमा की संख्या - 02
5. बृहस्पति-सूर्य के चारों ओर एक परिक्रमण 11 साल, 11 महीने लगभग 12 साल। अपने अक्ष पर घूर्णन - 9 घंटे, 56 मिनट, चंद्रमा की संख्या लगभग 53
6. शनि- सूर्य के चारों ओर एक परिक्रमण - 29 साल, 5 महीने। अपने अक्ष पर घूर्णन 10 घंटे 40 मिनट, चंद्रमा की संख्या लगभग 53
7. यूरेनस- सूर्य के चारों ओर एक परिक्रमण - 84 साल। अपने अक्ष पर घूर्णन - 17 घंटे, 14 मिनट, चंद्रमा की संख्या लगभग 27
8. नेप्च्यून- सूर्य के चारों ओर एक परिक्रमण - 164 साल। अपने अक्ष पर घूर्णन - 16 घंटे, 7 मिनट, चंद्रमा की संख्या - 13

- आसमान में दिखने वाला चंद्रमा एक उपग्रह है। यह हमारी पृथ्वी का सहचर है तथा इसके चारों ओर चक्कर लगाता है। हमारी पृथ्वी के समान, सात अन्य ग्रह हैं जो सूर्य से प्रकाश एवं ऊष्मा प्राप्त करते हैं। उनमें से कुछ के पास अपने चंद्रमा भी हैं।

सौरमंडल

- सूर्य, आठ ग्रह, उपग्रह तथा कुछ अन्य खगोलीय पिंड, जैसे क्षुद्र ग्रह एवं उल्कापिंड मिलकर सौरमंडल का निर्माण करते हैं। उसे हम सौर परिवार का नाम देते हैं, जिसका मुखिया सूर्य है।



सूर्य

- सूर्य सौरमंडल के केंद्र में स्थित है। यह बहुत बड़ा है एवं अत्यधिक गर्म गैसों से बना है। इसका खिंचाव बल इससे सौरमंडल को बाँधे रखता है। सूर्य, सौरमंडल के लिए प्रकाश एवं ऊष्मा का एकमात्र स्रोत है। लेकिन हम इसकी अत्यधिक तेज ऊष्मा को महसूस नहीं करते हैं, क्योंकि सबसे नज़दीक का तारा होने के बावजूद यह हमसे बहुत दूर है। सूर्य पृथ्वी से लगभग 15 करोड़ किलोमीटर दूर है।
- हमारे सौरमंडल में आठ ग्रह हैं। सूर्य से दूरी के अनुसार, वे हैं: बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस तथा नेप्च्यून।

सूर्य से उनकी दूरी के अनुसार अंग्रेजी में ग्रहों के नाम याद रखने का आसान तरीका है:- **MY VERY EFFICIENT MOTHER JUST SERVED US NUTS.**

- सौरमंडल के सभी आठ ग्रह एक निश्चित पथ पर सूर्य का चक्कर लगाते हैं। ये रास्ते दीर्घवृत्ताकार में फैले हुए हैं। ये कक्षा कहलाते हैं। बुध सूर्य के सबसे नजदीक है। अपनी कक्षा में सूर्य के चारों ओर एक चक्कर लगाने में इसे केवल 88 दिन लगते हैं। शुक्र को पृथ्वी का जुड़वाँ ग्रह माना जाता है, क्योंकि इसका आकार एवं आकृति लगभग पृथ्वी के ही समान है।
- अभी तक प्लूटो भी एक ग्रह माना जाता था। परन्तु अंतर्राष्ट्रीय खगोलीय संगठन ने अपनी बैठक (अगस्त 2006) में यह निर्णय लिया कि कुछ समय पहले खोजे गए अन्य खगोलीय पिण्ड (2003 UB313. सिरस) तथा प्लूटो 'बौने ग्रह' कहे जा सकते हैं।

पृथ्वी

- सूर्य से दूरी के हिसाब से पृथ्वी तीसरा ग्रह है। आकार में, यह पाँचवाँ सबसे बड़ा ग्रह है। यह ध्रुवों के पास थोड़ी चपटी है। यही कारण है कि इसके आकार को भू-आभ कहा जाता है। भू-आभ का अर्थ है, पृथ्वी के समान आकार।
- जीवन के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ संभवतः केवल पृथ्वी पर ही पाई जाती हैं। पृथ्वी न तो अधिक गर्म है और न ही अधिक ठंडी। यहाँ पानी एवं वायु उपस्थित है, जो हमारे जीवन के लिए आवश्यक है। वायु में जीवन के लिए आवश्यक गैसें, जैसे ऑक्सीजन मौजूद है। इन्हीं कारणों से, पृथ्वी सौरमंडल का सबसे अद्भुत ग्रह है।
- अंतरिक्ष से देखने पर पृथ्वी नीले रंग की दिखाई पड़ती है, क्योंकि इसकी दो-तिहाई सतह पानी से ढकी हुई है। इसलिए इसे, नीला ग्रह कहा जाता है।

चंद्रमा

- हमारी पृथ्वी के पास केवल एक उपग्रह है, चंद्रमा। इसका व्यास पृथ्वी के व्यास का केवल एक-चौथाई है। यह इतना बड़ा इसलिए प्रतीत होता है, क्योंकि यह हमारे ग्रह से अन्य खगोलीय पिंडों की अपेक्षा नजदीक है। चित्र 1.3: अंतरिक्ष से लिया गया चंद्रमा का चित्र यह हमसे लगभग 3,84,400 किलोमीटर दूर है। अब आप पृथ्वी से सूर्य एवं चंद्रमा की दूरियों की तुलना कर सकते हैं।

Note:-

- उपग्रह एक खगोलीय पिंड है, जो ग्रहों के चारों ओर उसी प्रकार चक्कर लगाता है, जिस प्रकार ग्रह सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते हैं।
- मानव-निर्मित उपग्रह एक कृत्रिम पिंड है। यह वैज्ञानिकों के द्वारा बनाया गया है, जिसका उपयोग ब्रह्मांड के बारे में जानकारी प्राप्त करने एवं पृथ्वी पर संचार माध्यम के लिए किया जाता है। इसे रॉकेट के द्वारा अंतरिक्ष में भेजा जाता है एवं पृथ्वी की कक्षा में स्थापित कर दिया जाता है।
- अंतरिक्ष में उपस्थित कुछ भारतीय उपग्रह इनसेट, आई.आर.एस., एड्सैट इत्यादि है।

- चंद्रमा पृथ्वी का एक चक्कर लगभग 27 दिन में पूरा करता है। लगभग इतने ही समय में यह अपने अक्ष पर एक चक्कर भी पूरा करता है। इसके परिणामस्वरूप पृथ्वी से हमें चंद्रमा का केवल एक ही भाग दिखाई पड़ता है।
- चंद्रमा की परिस्थितियाँ जीवन के लिए अनुकूल नहीं हैं। इसकी सतह पर पर्वत, मैदान एवं गड्ढे हैं जो चंद्रमा की सतह पर छाया बनाते हैं। पूर्णिमा के दिन चंद्रमा पर इनकी छाया को देखा जा सकता है।

क्षुद्र ग्रह



- तारों, ग्रहों एवं उपग्रहों के अतिरिक्त, असंख्य छोटे पिंड भी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। इन पिंडों को क्षुद्र ग्रह कहते हैं। ये मंगल एवं बृहस्पति की कक्षाओं के बीच पाए जाते हैं (चित्र 1.2)1 वैज्ञानिकों के अनुसार क्षुद्र ग्रह, ग्रह के ही भाग होते हैं, जो कि बहुत वर्ष पहले विस्फोट के बाद ग्रहों से टूटकर अलग हो गए।

उल्कापिंड



- सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने वाले पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़ों को उल्कापिंड कहते हैं। कभी-कभी ये उल्कापिंड पृथ्वी के इतने नजदीक आ जाते हैं कि इनकी प्रवृत्ति पृथ्वी पर गिरने की होती है। इस प्रक्रिया के दौरान वायु के साथ घर्षण होने के कारण ये गर्म होकर जल जाते हैं। फलस्वरूप, चमकदार प्रकाश उत्पन्न होता है। कभी-कभी कोई उल्का पूरी तरह जले बिना पृथ्वी पर गिरती है जिससे धरातल पर गड्ढे बन जाते हैं।
- क्या आपने तारों वाले, खुले आकाश में, एक ओर से दूसरी ओर तक फैली चौड़ी सफ़ेद पट्टी की तरह, एक चमकदार रास्ते को देखा है? यह लाखों तारों का समूह है। यह पट्टी आकाशगंगा (मिल्की वे) है। हमारा सौरमंडल इस आकाशगंगा का एक भाग है। प्राचीन भारत में इसकी कल्पना आकाश में प्रकाश की एक बहती नदी से की गई थी। इस प्रकार इसका नाम आकाशगंगा पड़ा था। आकाशगंगा करोड़ों तारों, बादलों तथा गैसों की एक प्रणाली है। इस प्रकार की लाखों आकाशगंगाएँ मिलकर ब्रह्मांड का निर्माण करती हैं। ब्रह्मांड की विशालता की कल्पना करना अत्यधिक कठिन है। वैज्ञानिक अभी भी इसके बारे में अधिक से अधिक जानकारी एकत्र करने में जुटे हैं। इसके आकार के संबंध में हमें कोई जानकारी नहीं है, लेकिन फिर भी हम जानते हैं कि हम सभी इसी ब्रह्मांड का हिस्सा हैं।

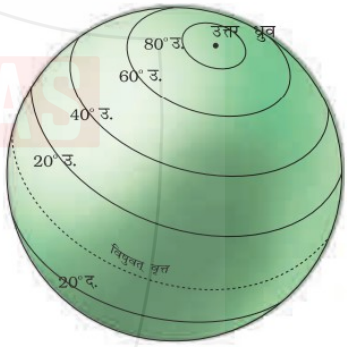
COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

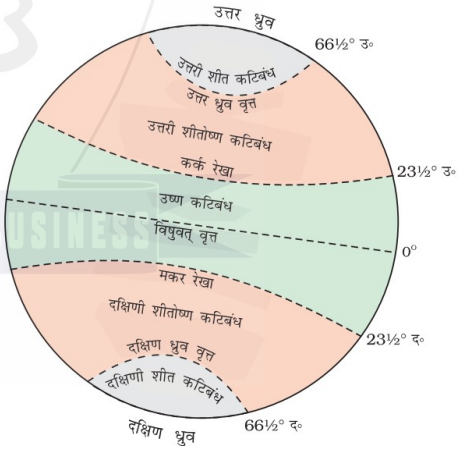
अक्षांश एवं देशांतर

- ग्लोब पृथ्वी का लघु रूप में एक वास्तविक प्रतिरूप है ग्लोब विभिन्न आकार एवं प्रकार के हो सकते हैं- बड़े ग्लोव, जो आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान नहीं ले जाए जा सकते; पॉकेट में रखने योग्य छोटे ग्लोब तथा गुब्बारे जैसे ग्लोब, जिनमें हवा भरी जा सकती है एवं आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाए जा सकते हैं। ग्लोब स्थिर नहीं होते हैं। इसे उसी प्रकार घुमाया जा सकता है, जैसे कुम्हार का पहिया या लट्टू घूमता है। ग्लोब पर देशों, महाद्वीपों तथा महासागरों को उनके सही आकार में दिखाया जाता है।
- पृथ्वी के समान किसी गोले पर किसी बिंदु की स्थिति का वर्णन करना कठिन है। अब प्रश्न यह उठता है कि इस पर किसी स्थान की स्थिति कैसे बताई जा सकती है? इसके लिए हमें कुछ बिंदुओं एवं रेखाओं के संदर्भ की आवश्यकता होती है।
- आप देखेंगे कि एक सुई ग्लोब में झुकी हुई अवस्था में स्थित होती है, जिसे अक्ष कहा जाता है। ग्लोब पर वे दो बिंदु जिनसे होकर सुई गुजरती है, उत्तर तथा दक्षिण ध्रुव हैं। ग्लोब को इस सुई के चारों ओर पृथ्वी की भाँति पश्चिम से पूर्व की ओर घुमाया जा सकता है। लेकिन याद रखें इन दोनों में एक अंतर है। पृथ्वी पर वास्तव में ऐसी कोई सुई नहीं होती है। यह अपने अक्ष पर चारों ओर घूमती है, जो एक काल्पनिक रेखा है।
- एक अन्य काल्पनिक रेखा भी ग्लोब को दो बराबर भागों में बाँटती है। इसे विषुवत् वृत्त कहा जाता है। पृथ्वी के उत्तर में स्थित आधे भाग को उत्तरी गोलार्ध तथा दक्षिण वाले आधे भाग को दक्षिणी गोलार्ध कहा जाता है। ये दोनों बराबर के आधे भाग होते हैं। इस प्रकार, विषुवत् वृत्त पृथ्वी पर एक काल्पनिक वृत्त बनाती है एवं यह पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों की स्थिति बताने का सबसे महत्त्वपूर्ण संदर्भ बिंदु है। विषुवत् वृत्त से ध्रुवों तक स्थित सभी समानांतर वृत्तों को अक्षांश (समानांतर) रेखाएँ कहा जाता है। अक्षांशों को अंश में मापा जाता है।
- विषुवत् वृत्त शून्य अंश अक्षांश को दर्शाती है। चूंकि, विषुवत् वृत्त से दोनों तरफ ध्रुवों के बीच की दूरी पृथ्वी के चारों ओर के वृत्त का एक चौथाई है, अतः इसका माप होगा 360 अंश का 1/4, यानी 90 अंश। इस प्रकार 90 अंश उत्तरी अक्षांश उत्तर ध्रुव को दर्शाता है तथा 90 अंश दक्षिणी अक्षांश दक्षिण ध्रुव को।
- इस प्रकार विषुवत् वृत्त के उत्तर की सभी समानांतर रेखाओं को उत्तरी अक्षांश कहा जाता है तथा विषुवत् वृत्त के दक्षिण स्थित सभी समानांतर रेखाओं को दक्षिणी अक्षांश कहा जाता है।
- इसलिए प्रत्येक अक्षांश के मान के साथ उसकी दिशा यानी उत्तर या दक्षिण को भी लिखा जाता है। सामान्यतः, इसे उ. या द. अक्षर से व्यक्त किया जाता है। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र में चंद्रपुर एवं ब्राजील (दक्षिण अमेरिका) में बेलो होरिजॉटे दोनों एक ही अक्षांश 20 अंश पर स्थित हैं। लेकिन चन्द्रपुर विषुवत् वृत्त के 20 अंश उत्तर में एवं बेलो होरिजोंटे विषुवत् वृत्त के 20 अंश दक्षिण में स्थित है। इसलिए हम कहते हैं कि चंद्रपुर 20° उ. अक्षांश पर तथा बेलो होरिजोंटे 20° द. अक्षांश पर स्थित है। चित्र 2.2 से स्पष्ट है कि जैसे-जैसे हम विषुवत् वृत्त से दूर जाते हैं अक्षांशों का आकार घटता जाता है।

महत्त्वपूर्ण अक्षांश (समानांतर) रेखाएँ

- विषुवत् वृत्त (0°), उत्तर ध्रुव (90° उ.) तथा दक्षिण ध्रुव (90° द.) के अतिरिक्त चार महत्त्वपूर्ण अक्षांश (समानांतर) रेखाएँ और भी हैं। ये हैं-





1. उत्तरी गोलार्ध में कर्क रेखा (23½° उ),
2. दक्षिणी गोलार्ध में मकर रेखा (231/½° द.),
3. विषुवत् वृत्त के 66½° उत्तर में उत्तर ध्रुव वृत्त,
4. विषुवत् रेखा के 66½° दक्षिण में दक्षिण ध्रुव वृत्त।

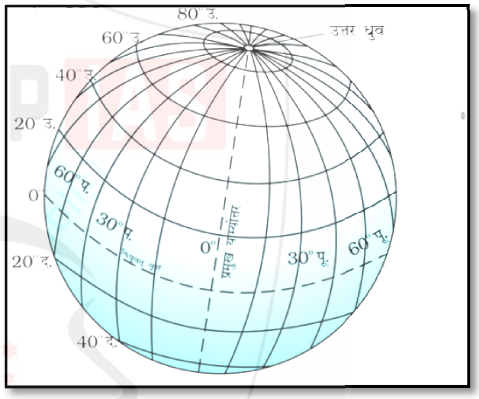
पृथ्वी के ताप कटिबंध

- कर्क रेखा एवं मकर रेखा के बीच के सभी अक्षांशों पर सूर्य वर्ष में एक बार दोपहर में सिर के ठीक ऊपर होता है। इसलिए इस क्षेत्र में सबसे अधिक ऊष्मा प्राप्त होती है तथा इसे उष्ण कटिबंध कहा जाता है।

- कर्क रेखा तथा मकर रेखा के बाद किसी भी अक्षांश पर दोपहर का सूर्य कभी भी सिर के ऊपर नहीं होता है। ध्रुव की तरफ सूर्य की किरणें तिरछी होती जाती हैं। इस प्रकार, उत्तरी गोलार्ध में कर्क रेखा एवं उत्तर ध्रुव वृत्त तथा दक्षिणी गोलार्ध में मकर रेखा एवं दक्षिण ध्रुव वृत्त के बीच वाले क्षेत्र का तापमान मध्यम रहता है। इसलिए इन्हें, शीतोष्ण कटिबंध कहा जाता है।
- उत्तरी गोलार्ध में उत्तर ध्रुव वृत्त एवं उत्तरी ध्रुव तथा दक्षिणी गोलार्ध में दक्षिण ध्रुव वृत्त एवं दक्षिणी ध्रुव के बीच के क्षेत्र में ठंड बहुत होती है। क्योंकि, यहाँ सूर्य क्षितिज से ज्यादा ऊपर नहीं आ पाता है। इसलिए ये शीत कटिबंध कहलाते हैं।

देशांतर क्या हैं?

- किसी स्थान की स्थिति को बताने के लिए उस स्थान के अक्षांश के अतिरिक्त कुछ और जानकारियों की आवश्यकता भी होती है। आप देख सकते हैं कि प्रशांत महासागर में स्थित टोंगा द्वीप एंव हिंद महासागर में स्थित मॉरीशस द्वीप एक ही अक्षांश (20°00' द.) पर स्थित हैं। उनकी सही स्थिति जानने के लिए यह पता करना होगा कि उत्तर ध्रुव को दक्षिण ध्रुव से जोड़ने वाली संदर्भरेखा से पूर्व या पश्चिम की ओर इन स्थानों की दूरी कितनी है? इन संदर्भ रेखाओं को देशांतरीय याम्योत्तर कहते हैं तथा उनके बीच की दूरी को देशांतर के अंशों में मापा जाता है। प्रत्येक अंश को मिनट में तथा मिनट को सेकेंड में विभाजित किया जाता है। ये अर्धवृत्त हैं तथा उनके बीच की दूरी ध्रुवों की तरफ बढ़ने पर घटती जाती है एवं ध्रुवों पर शून्य हो जाती है, जहाँ सभी देशांतरीय याम्योत्तर आपस में मिलती हैं।
- अक्षांश (समानांतर) रेखाओं से भिन्न सभी देशांतरीय याम्योत्तरों की लंबाई समान होती है। इसलिए इन्हें सिर्फ मुख्य संख्याओं में व्यक्त करना कठिन था। तब सभी देशों ने निश्चय किया कि ग्रीनिच, जहाँ ब्रिटिश राजकीय वेधशाला स्थित है, से गुजरने वाली याम्योत्तर से पूर्व और पश्चिम की ओर गिनती शुरू की जाए। इस याम्योत्तर को प्रमुख याम्योत्तर कहते हैं। इसका मान 0° देशांतर है तथा यहाँ से हम 180° पूर्व या 180° पश्चिम तक गणना करते हैं। प्रमुख याम्योत्तर तथा 180° याम्योत्तर मिलकर पृथ्वी को दो समान भागों, पूर्वी गोलार्ध एवं पश्चिमी गोलार्ध में विभक्त करती है। इसलिए किसी स्थान के देशांतर के आगे पूर्व के लिए अक्षर पू. तथा पश्चिम के लिए अक्षर प. का उपयोग करते हैं। यह जानना रोचक होगा कि 180° पूर्व और 180° पश्चिम याम्योत्तर एक ही रेखा पर स्थित हैं। अब ग्लोब पर अक्षांश (समानांतर) रेखाओं एवं देशांतरीय याम्योत्तरों के द्वारा बनी ग्रिड को देखो। अगर आपको किसी स्थान के अक्षांश एवं देशांतर की सही जानकारी हो तो ग्लोब पर आप उस स्थान का पता आसानी से लगा सकते हैं। उदाहरण के लिए, असम में धुबरी 26°उ. अक्षांश एवं 90° पू. देशांतर पर स्थित है। अब उस बिंदु को देखें जहाँ ये दोनों रेखाएँ एक दूसरे को काटती हैं। यह बिंदु धुबरी की सही स्थिति होगा।
- इसको समझने के लिए कागज पर समान दूरी वाली क्षैतिज तथा ऊर्ध्वाधर रेखाएँ खोचिए। ऊर्ध्वाधर रेखाओं को संख्या 1.2.3.4 से तथा क्षैतिज रेखाओं को क, ख, ग, घ, ङ अक्षरों से व्यक्त करें। जिन बिंदुओं पर ये ऊर्ध्वाधर एवं क्षैतिज रेखाएँ एक दूसरे को काटती हैं, वहाँ कुछ छोटे वृत्त खीचिए। इन छोटे वृत्तों को अ, ब, स. द तथा ध नामों से व्यक्त कीजिए।
- मान लीजिए कि ऊर्ध्वाधर रेखाएँ पूर्व देशांतरों एवं क्षैतिज रेखाएँ उत्तरी अक्षांशों को व्यक्त करती हैं।

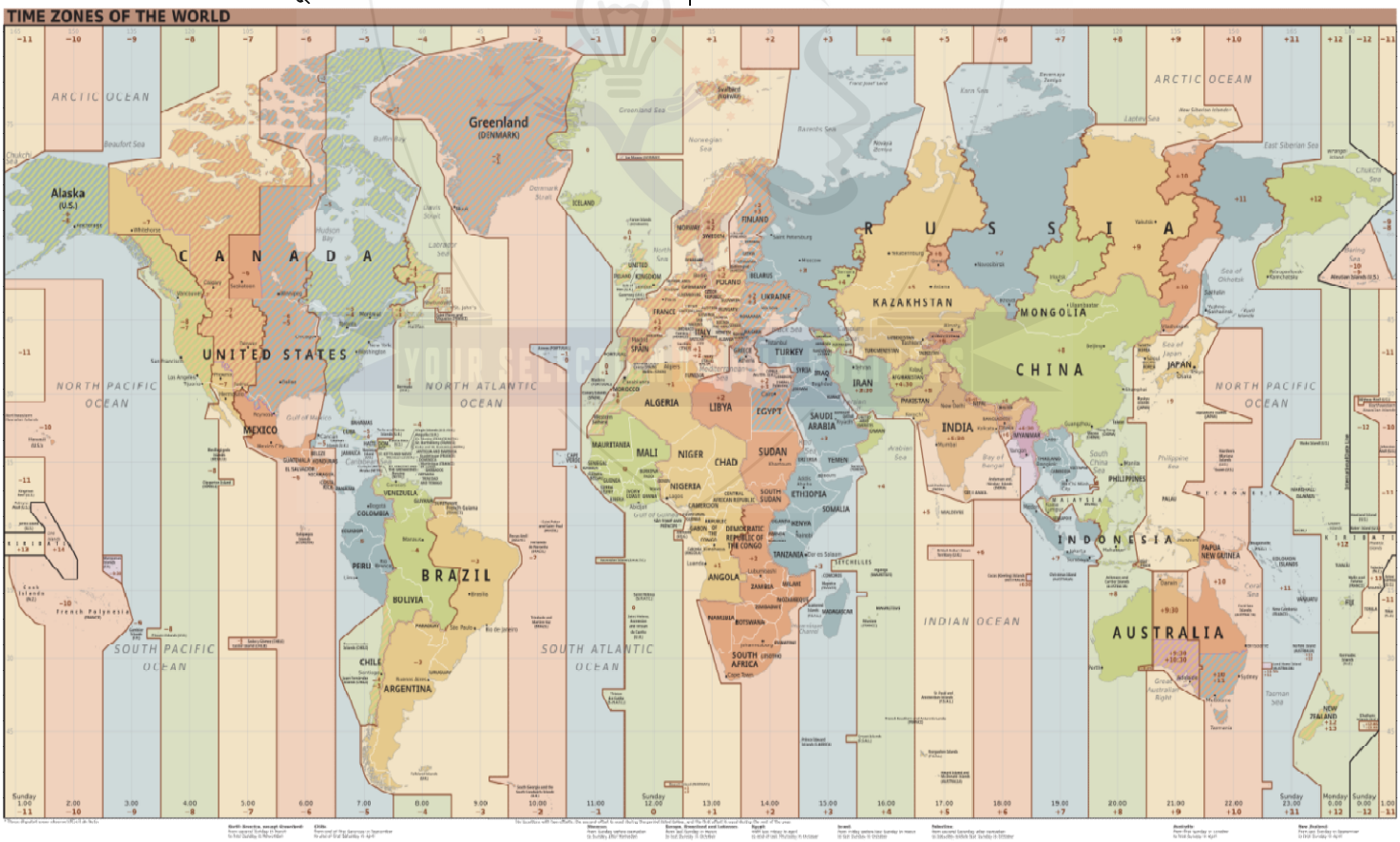


देशांतर और समय

- समय को मापने का सबसे अच्छा साधन पृथ्वी, चंद्रमा एवं ग्रहों की गति है। सूर्योदय एवं सूर्यास्त प्रतिदिन होता है। अतः स्वाभाविक ही है कि यह पूरे विश्व में समय निर्धारण का सबसे अच्छा साधन है। स्थानीय समय का अनुमान सूर्य के द्वारा बनने वाली परछाई से लगाया जा सकता है, जो दोपहर में सबसे छोटी एवं सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय सबसे लंबी होती है।
- ग्रीनिच पर स्थित प्रमुख याम्योत्तर पर सूर्य जिस समय आकाश के सबसे ऊँचे बिंदु पर होगा, उस समय याम्योत्तर पर स्थित सभी स्थानों पर दोपहर होगी।
- चूँकि, पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर चक्कर लगाती है, अतः वे स्थान जो ग्रीनिच के पूर्व में हैं, उनका समय ग्रीनिच समय से आगे होगा तथा जो पश्चिम में हैं, उनका समय पीछे होगा (चित्र 2.8)1 समय के अंतर की दर की गणना निम्नलिखित विधि से की जा सकती है। पृथ्वी लगभग 24 घंटे में अपने अक्ष पर 360° घूम जाती है, अर्थात् वह 1 घंटे में 15° एवं 4 मिनट में 1° घूमती है। इस प्रकार जब ग्रीनिच में दोपहर के 12 बजते हैं, तब ग्रीनिच से 15° पूर्व में समय

होगा 15×4 = 60 मिनट अर्थात्, **ग्रीनिच के समय से** 1 घंटा आगे, अर्थात् वहाँ दोपहर का 1 बजा होगा। लेकिन ग्रीनिच से 15 पश्चिम का समय ग्रीनिच समय से 1 घंटा पीछे होगा यानी, वहाँ सुबह के 11 बजे होंगे। इसी प्रकार जब ग्रीनिच पर दोपहर के 12 बजे होंगे उस समय 180° पर मध्य रात्रि होगी।

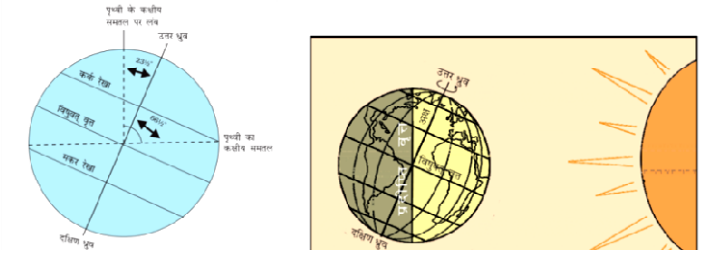
- **किसी भी स्थान पर जब सूर्य आकाश में अपने उच्चतम बिंदु पर** होता है, दोपहर में उस समय घड़ी में दिन के 12 **बजते हैं। इस प्रकार, घड़ी के द्वारा दिखाया गया समय उस स्थान का स्थानीय समय होगा। आप देख सकते हैं कि दिए गए देशांतरीय याम्योत्तर पर सभी स्थानों** का स्थानीय समय समान है।
- अलग-**अलग याम्योत्तर पर स्थित स्थानों के स्थानीय समय में अंतर** होता है। उदाहरण के लिए, **बहुत से देशांतरों से होकर गुजरने वाली** रेलगाड़ियों के लिए समय-**सारणी तैयार करना कठिन होगा। भारत में गुजरात के द्वारका तथा असम के डिब्रूगढ़ के स्थानीय समय में** लगभग 1 घंटा 45 **मिनट का अंतर होगा। इसलिए यह आवश्यक है** कि देश के मध्य भाग से होकर गुजरने वाली किसी याम्योत्तर के **स्थानीय समय को देश का मानक समय माना जाए। इस याम्योत्तर रेखा के स्थानीय समय को पूरे देश का मानक समय माना जाता है।** भारत में 82½° पू. (82° 30′ पू.) को मानक याम्योत्तर माना गया **है। इस याम्योत्तर के स्थानीय समय को पूरे देश का मानक समय** माना जाता है। इसे भारतीय मानक समय के नाम से जाना जाता है।
- **कबीर भोपाल के निकट एक छोटे से नगर में रहता है। वह अपने मित्र आलोक से कहता है कि वे लोग आज रात्रि में नहीं सो पाएँगे। भारत एवं इंग्लैंड के बीच एक क्रिकेट मैच लंदन में** 2 बजे अपराह्न में शुरू होगा। अर्थात् भारत के समयानुसार मैच शाम के 7:30 बजे शुरू होगा तथा देर रात्रि में समाप्त होगा। **<u>क्या आप जानते हैं कि भारत एवं इंग्लैंड के बीच समय में क्या अंतर है?</u>**
- भारत ग्रीनिच के पूर्व 82° 30° पू. में स्थित है तथा यहाँ का समय ग्रीनिच समय से 5 घंटा 30 मिनट आगे है। इसलिए जब लंदन में दोपहर के 2 बजे होंगे, **तब भारत में शाम के** 7:30 बजे होंगे।
- **कुछ देशों का देशांतरीय विस्तार अधिक होता है,** जिसके कारण वहाँ **एक से अधिक मानक समय अपनाए गए हैं। उदाहरण के लिए, रूस में ।। मानक समयों को अपनाया गया है। पृथ्वी को एक-एक घंटे** वाले 24 समय क्षेत्रों में बाँटा गया है। **इस प्रकार प्रत्येक समय क्षेत्र** 15° देशांतर तक के क्षेत्र को घेरता है।



पृथ्वी की गतियाँ

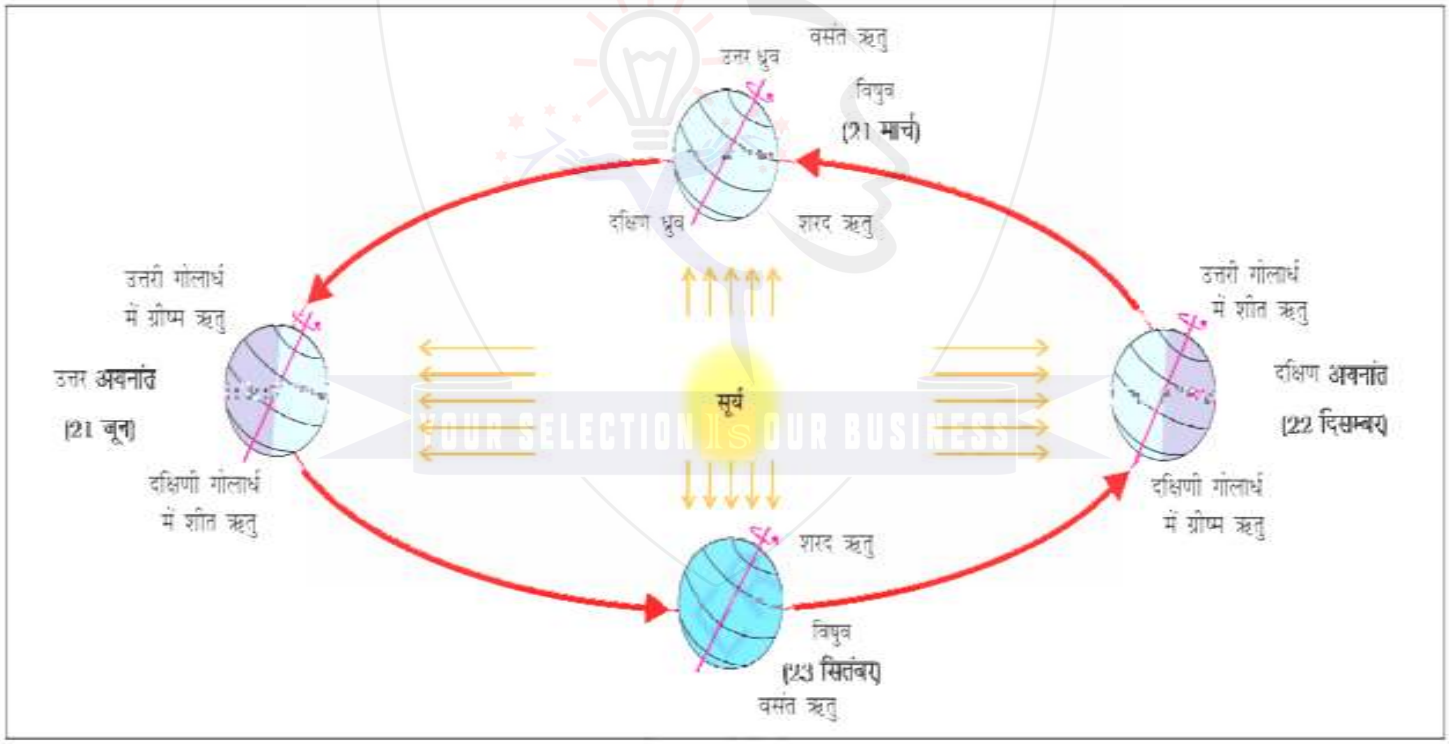
जैसा कि आप जानते हैं, **पृथ्वी की गति दो प्रकार की है**- घूर्णन एवं **परिक्रमण। पृथ्वी का अपने अक्ष पर घूमना घूर्णन कहलाता है। सूर्य के** चारों ओर **एक स्थिर कक्ष में पृथ्वी की गति को परिक्रमण कहते हैं।**

पृथ्वी का अक्ष एक काल्पनिक रेखा है, **जो इसके कक्षीय सतह से** 66½° **का कोण बनाती है। वह समतल जो कक्ष के द्वारा बनाया जाता है,** उसे **कक्षीय समतल कहते हैं। पृथ्वी सूर्य से प्रकाश प्राप्त करती है। पृथ्वी का** आकार गोले के समान है, **इसलिए एक समय में सिर्फ इसके आधे भाग** पर ही सूर्य की रोशनी प्राप्त होती है (चित्र 3.2)। **सूर्य की ओर वाले भाग में** दिन होता है, **जबकि दूसरा भाग जो सूर्य से दूर होता है वहाँ रात होती है। ग्लोब पर वह वृत्त जो दिन तथा रात को विभाजित करता है उसे प्रदीप्ति वृत्त कहते हैं। यह वृत्त अक्ष के साथ नहीं मिलता है जैसा कि आप चित्र** 3.2 **में देख सकते हैं। पृथ्वी अपने अक्ष पर एक चक्कर पूरा करने में** लगभग 24 **घंटे का समय लेती है। घूर्णन के समय काल को पृथ्वी दिन** कहा जाता है। यह पृथ्वी की दैनिक गति है



अगर पृथ्वी **घूर्णन नहीं करे तो क्या होगा?** सूर्य के तरफ वाले पृथ्वी के **भाग में हमेशा दिन होगा जिसके कारण उस भाग में गर्मी लगातार पड़ेगी। दूसरे भाग में हमेशा अँधेरा रहेगा एवं पूरे समय ठंड पड़ेगी। इस तरह की अवस्था में जीवन संभव नहीं हो पाएगा।**

पृथ्वी की दूसरी गति जो सूर्य के चारों **ओर कक्ष में होती है उसे परिक्रमण** कहा जाता है। पृथ्वी एक वर्ष या 365 दिन में सूर्य का एक चक्कर लगाती है। हम लोग एक वर्ष 365 **दिन का मानते हैं तथा सुविधा के लिए** 6 घंटे को इसमें नहीं जोड़ते हैं।



चार वर्षों में प्रत्येक वर्ष के बचे हुए 6 घंटे मिलकर एक दिन यानी 24 घंटे **के बराबर हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त दिन को फरवरी के महीने में जोड़ा** जाता है। इस प्रकार प्रत्येक चौथे वर्ष फरवरी माह 28 के बदले 29 दिन का होता है। ऐसा वर्ष जिसमें 366 **दिन होते हैं उसे लीप वर्ष कहा जाता**

है। **ध्यान दीजिए कि पृथ्वी पूरे कक्ष** में एक ही दिशा में झुकी हुई है। सामान्यतः एक वर्ष को गर्मी, सर्दी, **वसंत एवं शरद् ऋतुओं में बाँटा जाता है। ऋतुओं में परिवर्तन सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की स्थिति में परिवर्तन के** कारण होता है।

- 21 जून को उत्तरी गोलार्ध सूर्य की तरफ झुका है। सूर्य की किरणें कर्क रेखा पर सीधी पड़ती हैं। इसके परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में ऊष्मा अधिक प्राप्त होती है। ध्रुवों के पास वाले क्षेत्रों में कम ऊष्मा प्राप्त होती है, क्योंकि वहाँ सूर्य की किरणें तिरछी पड़ती हैं। उत्तर ध्रुव सूर्य की तरफ झुका होता है तथा उत्तरी ध्रुव रेखा के बाद वाले भागों पर लगभग 6 महीने तक लगातार दिन रहता है। चूंकि, उत्तरी गोलार्ध के बहुत बड़े भाग में सूर्य की रोशनी प्राप्त होती है, इसलिए विषुवत् वृत्त के उत्तरी भाग में गर्मी का मौसम होता है। 21 जून को इन क्षेत्रों में सबसे लंबा दिन तथा सबसे छोटी रात होती है। पृथ्वी की इस अवस्था को उत्तर अयनांत कहते हैं।
- 22 दिसंबर को दक्षिण ध्रुव के सूर्य की ओर झुके होने के कारण मकर रेखा पर सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं। चूंकि, सूर्य की किरणें मकर रेखा पर लंबवत् पड़ती हैं इसलिए दक्षिणी गोलार्ध के बहुत बड़े भाग में प्रकाश प्राप्त होता है। इसलिए, दक्षिणी गोलार्ध में लंबे दिन तथा छोटी रातों वाली ग्रीष्म ऋतु होती है। इसके ठीक विपरीत स्थिति उत्तरी गोलार्ध में होती है। पृथ्वी की इस अवस्था को दक्षिण अयनांत कहा जाता है। क्या आप जानते हैं कि आस्ट्रेलिया में ग्रीष्म ऋतु में क्रिसमस का पर्व मनाया जाता है?
- 21 मार्च एवं 23 सितंबर को सूर्य की किरणें विषुवत् वृत्त पर सीधी पड़ती हैं। इस अवस्था में कोई भी ध्रुव सूर्य की ओर नहीं झुका होता है. इसलिए पूरी पृथ्वी पर रात एवं दिन बराबर होते हैं। इसे विषुव कहा जाता है।
- 23 सितंबर को उत्तरी गोलार्ध में शरद् ऋतु होती है, जबकि दक्षिणी गोलार्ध में वसंत ऋतु होती है। 21 मार्च को स्थिति इसके विपरीत होती है जब उत्तरी गोलार्ध में वसंत ऋतु तथा दक्षिणी गोलार्ध में शरद् ऋतु होती है।
- इस प्रकार, स्पष्ट है कि पृथ्वी के घूर्णन एवं परिक्रमण के कारण दिन एवं रात तथा ऋतुओं में परिवर्तन होता है।

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

मानचित्र

- ग्लोब में अध्ययन की कुछ सीमाएँ होती हैं। जब हम पूरी पृथ्वी का अध्ययन करना चाहते हैं तब ग्लोब हमारे लिए काफी उपयोगी साबित होता है। लेकिन, जब हम पृथ्वी के केवल एक भाग जैसे अपने देश, राज्यों, जिलों, शहरों तथा गाँवों के बारे में अध्ययन करना चाहते हैं तो यह हमारे लिए उतना उपयोगी साबित नहीं होता है। ऐसी स्थिति में हम मानचित्रों का उपयोग करते हैं। मानचित्र पृथ्वी की सतह या इसके एक भाग का पैमाने के माध्यम से चपटी सतह पर खींचा गया चित्र है। लेकिन एक गोलाकार सतह को पूरी तरह से चपटा करना असंभव है। मानचित्र हमारी विभिन्न जरूरतों के लिए आवश्यक हैं। कुछ मानचित्र एक छोटे क्षेत्र को एवं कुछ तथ्यों को दर्शाता है। दूसरे मानचित्र में एक बड़ी किताब की तरह तथ्य हो सकते हैं। जब बहुत से मानचित्रों को एक साथ रख दिया जाता है तब एक एटलस वन जाता है। एटलस विभिन्न प्रकारों तथा अलग-अलग पैमाने से खींची गई मापों पर आधारित होता है। मानचित्रों से एक ग्लोब की अपेक्षा हमें ज्यादा जानकारी प्राप्त होती है। मानचित्र विभिन्न प्रकार के होते हैं। जिनमें से कुछ को नीचे वर्णित किया गया है।

भौतिक मानचित्र

- पृथ्वी की प्राकृतिक आकृतियों; जैसे पर्वतों, पठारों, मैदानों, नदियों, महासागरों इत्यादि को दर्शाने वाले मानचित्रों को भौतिक या उच्चावच मानचित्र कहा जाता है।

राजनीतिक मानचित्र

- राज्यों, नगरों, शहरों तथा गाँवों और विश्व के विभिन्न देशों व राज्यों तथा उनकी सीमाओं को दर्शाने वाले मानचित्र को राजनीतिक मानचित्र कहा जाता है।

थिमैटिक मानचित्र

- कुछ मानचित्र विशेष जानकारियाँ प्रदान करते हैं; जैसे सड़क मानचित्र, वर्षा मानचित्र, वन तथा उद्योगों आदि के वितरण दर्शाने वाले मानचित्र इत्यादि। इस प्रकार के मानचित्र को थिमैटिक मानचित्र कहा जाता है। इन मानचित्रों में दी गई सूचना के आधार पर उनका उचित नामकरण किया जाता है।

मानचित्र के तीन घटक हैं दूरी, दिशा और प्रतीक।

दूरी

- मानचित्र एक आरेखण होता है जो कि पूरे विश्व या उसके एक भाग को छोटा कर कागज के एक पन्ने पर दर्शाता है या यह कह सकते हैं कि मानचित्र छोटे पैमाने पर खींचे जाते हैं। लेकिन इसे इतनी सावधानी से छोटा किया जाता है ताकि स्थानों के बीच की दूरी वास्तविक रहे। यह तभी संभव हो सकता है जब कागज पर एक छोटी दूरी, स्थल की बड़ी दूरी को व्यक्त करती हो। इसलिए इस उद्देश्य के लिए एक पैमाना चुना जाता है। पैमाना, स्थल पर वास्तविक दूरी तथा मानचित्र पर दिखाई गई दूरी के बीच का अनुपात होता है। उदाहरण के लिए, आपके विद्यालय एवं आपके घर के बीच की दूरी 10 किमी. है जिसे मानचित्र पर 2 सेमी. की दूरी से व्यक्त किया गया है, इसका अभिप्राय है कि मानचित्र का 1 सेमी. स्थल के 5 किमी. को दर्शाएगा। आपके रेखाचित्र का पैमाना होगा, 1 सेमी. 5 किमी.। इस प्रकार पैमाना किसी भी मानचित्र के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। अगर आपको पैमाने की जानकारी है तो आप मानचित्र पर दिए गए किसी भी दो स्थानों के बीच की दूरी का पता लगा सकते हैं।
- जब बड़े क्षेत्रफल वाले भागों जैसे महाद्वीपों या देशों को कागज पर दिखाना होता है, तब हम लोग छोटे पैमाने का उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिए, मानचित्र पर 5 सेमी., स्थल के 500 किमी. को दर्शाता है। इसको छोटे पैमाने वाला मानचित्र कहते हैं।
- जब एक छोटे क्षेत्रफल वाले भाग जैसे आपके गाँव या शहर को कागज पर दिखाना होता है तब हम बड़े पैमाने का उपयोग करते हैं जैसे स्थल पर 500 मीटर की दूरी को मानचित्र पर 5 सेमी. से दर्शाया जाता है। इस प्रकार के मानचित्र को बड़े पैमाने वाला मानचित्र कहते हैं। बड़े पैमाने वाले मानचित्र छोटे पैमाने वाले मानचित्र की अपेक्षा अधिक जानकारी प्रदान करते हैं।

दिशा

- अधिकतर मानचित्रों में ऊपर दाहिनी तरफ तीर का निशान बना होता है, जिसके ऊपर अक्षर उ. लिखा होता है। यह तीर का निशान उत्तर दिशा को दर्शाता है। इसे उत्तर रेखा कहा जाता है। जब आप उत्तर के बारे में जानते हैं तब आप दूसरी दिशाओं जैसे पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण के बारे में पता लगा सकते हैं। चित्र 4.2 में चार मुख्य दिशाओं उत्तर, दक्षिण, पूर्व एवं पश्चिम को दिखाया गया है। वे प्रधान दिग्बिवु कहे जाते हैं। बीच की चार दिशाएँ हैं- उत्तर-पूर्व (उ.पू.), दक्षिण-पूर्व (द.पू.). दक्षिण-पश्चिम (द.प.) तथा उत्तर-पश्चिम (उ.प.)। इन बीच वाली दिशाओं की मदद से किसी भी स्थान की सही स्थिति का पता लगाया जा सकता है।

- हम दिक्सूचक की सहायता से किसी स्थान की दिशा का पता लगा सकते हैं। यह एक यंत्र है जिसकी सहायता से मुख्य दिशाओं का पता लगाया जाता है। इसकी चुंबकीय सुई की दिशा हमेशा उत्तर-दक्षिण दिशा में होती है।

प्रतीक

- यह किसी भी मानचित्र का तीसरा प्रमुख घटक है। किसी भी मानचित्र पर वास्तविक आकार एवं प्रकार में विभिन्न आकृतियों; जैसे भवनों, सड़कों, पुलों, वृक्षों, रेल की पटरियों या कुएँ को दिखाना संभव नहीं होता है। इसलिए, वे निश्चित अक्षरों, छायाओं, रंगों, चित्रों तथा रेखाओं का उपयोग करके दर्शाए जाते हैं। ये प्रतीक कम स्थान में अधिक जानकारी प्रदान करते हैं। इन प्रतीकों के इस्तेमाल के द्वारा मानचित्र को आसानी से खींचा जा सकता है तथा इनका अध्ययन करना आसान होता है। अगर आप एक क्षेत्र की भाषा को नहीं जानते हैं तथा आप किसी से दिशाओं के बारे में नहीं पूछ सकते हैं तब आप इन चिह्नों की सहायता के द्वारा मानचित्र से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। मानचित्रों की एक विश्वव्यापी भाषा होती है जिसे सभी आसानी से समझ सकते हैं। इन प्रतीकों के उपयोग के संबंध में एक अंतर्राष्ट्रीय सहमति है। ये रूढ़ प्रतीक कहे जाते हैं। कुछ रूढ़ प्रतीक चित्र 4.3 में दर्शाए गए हैं। विभिन्न रंगों का उपयोग भी इसी उद्देश्य से किया जाता है। उदाहरण के लिए सामान्यतः नीले रंग का इस्तेमाल जलाशयों, भूरा रंग पर्वतों, पीला रंग पठारों और हरा रंग मैदानों को दर्शाने के लिए किया जाता है।

रेखाचित्र

- रेखाचित्र एक आरेखण है, जो पैमाने पर आधारित न होकर याद्दाश्त और स्थानीय प्रेक्षण पर आधारित होता है। कभी-कभी किसी क्षेत्र के एक कच्चे आरेखण की आवश्यकता वहाँ के एक स्थान को दूसरे स्थान के सापेक्ष दिखाने के लिए होती है। मान लीजिए कि आप अपने मित्र के घर जाना चाहते हैं, लेकिन आपको रास्ते की जानकारी नहीं है। आपका मित्र अपने घर के रास्ते को बताने के लिए एक कच्चा आरेखण बना सकता है। इस प्रकार कच्चे आरेख को बिना पैमाने की सहायता से खींचा जाता है तथा इसे रेखाचित्र मानचित्र कहते हैं।

खाका

- एक छोटे क्षेत्र का बड़े पैमाने पर खींचा गया रेखाचित्र खाका कहा जाता है। एक बड़े पैमाने वाले मानचित्र से हमें बहुत सी जानकारियाँ प्राप्त होती हैं लेकिन कुछ ऐसी चीजें होती हैं जिन्हें हम कभी-कभी जानना चाहते हैं जैसे किसी कमरे की लंबाई एवं चौड़ाई, जिसे मानचित्र में नहीं दिखाया जा सकता है। उस समय, हम लोग बड़े पैमाने वाला एक रेखाचित्र खींच सकते हैं जिसे खाका कहा जाता है।

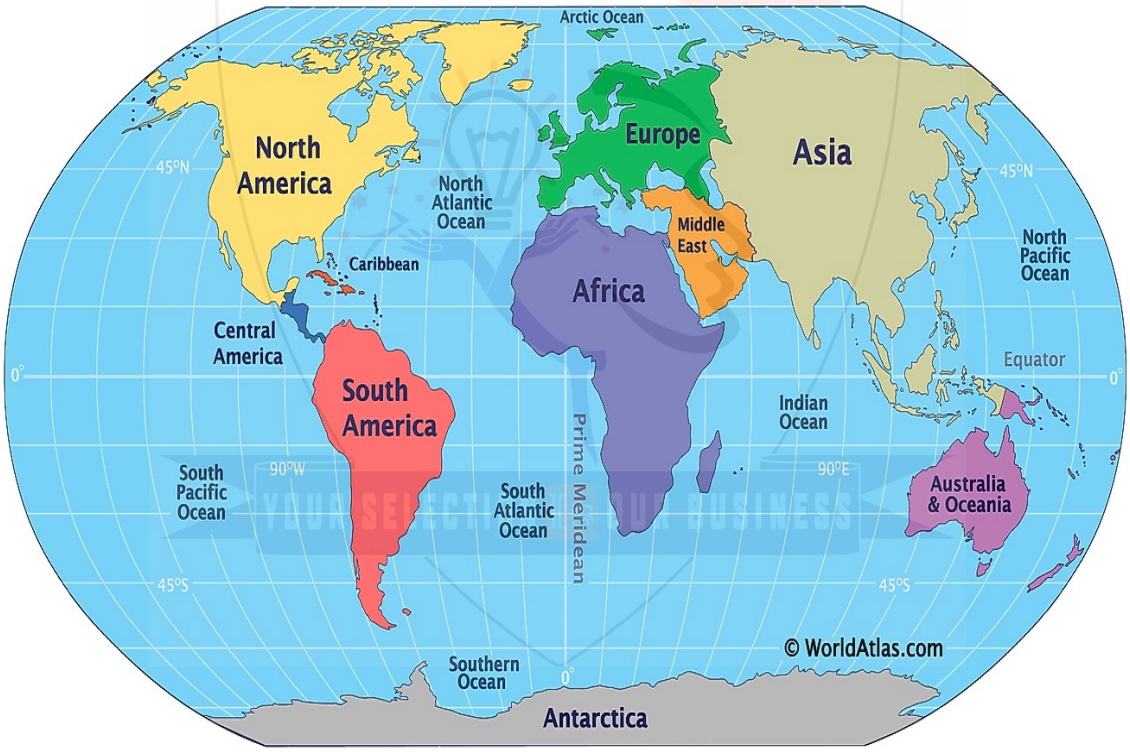
COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

पृथ्वी के प्रमुख परिमंडल

- पृथ्वी एकमात्र ऐसा ग्रह है जहाँ जीवन है। मानव यहाँ जीवित रह सकता है, क्योंकि जीवन के लिए आवश्यक तत्त्व भूमि, जल तथा हवा पृथ्वी पर मौजूद हैं।
- पृथ्वी की सतह ऐसी है जिसमें पर्यावरण के तीन महत्त्वपूर्ण घटक आपस में मिलते हैं तथा एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। पृथ्वी का ठोस भाग जिस पर हम रहते हैं उसे भूमंडल कहा जाता है। गैस की परतें, जो पृथ्वी को चारों ओर से घेरती हैं उसे वायुमंडल कहा जाता है, जहाँ ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड तथा दूसरी गैसें पाई जाती हैं। पृथ्वी के बहुत बड़े भाग पर जल पाया जाता है जिसे जलमंडल कहा जाता है। जलमंडल में जल की सभी अवस्थाएँ; जैसे-बर्फ, जल एवं जलवाष्प सम्मिलित हैं।
- जीवमंडल एक सीमित क्षेत्र है, जहाँ स्थल, जल एवं हवा एक साथ मिलते हैं, जहाँ सभी प्रकार के जीवन पाए जाते हैं।

भूमंडल

- पृथ्वी के ठोस भाग को भूमंडल कहा जाता है। यह भूपर्पटी की चट्टानों तथा मिट्टी की पतली परतों का बना होता है जिसमें जीवों के लिए पोषक तत्त्व पाए जाते हैं।
- पृथ्वी की सतह को दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है। बड़े स्थलीय भूभागों को महाद्वीपों के नाम से जाना जाता है तथा बड़े जलाशयों को महासागरीय बेसिन के नाम से जाना जाता है। विश्व के सभी महासागर आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। चित्र 5.1 में विश्व के मानचित्र को देखिए। क्या सभी स्थलीय भूभाग एक दूसरे से आपस में जुड़े हुए हैं?
- समुद्री जल का तल सभी जगह समान होता है। स्थल की ऊँचाई को समुद्र तल से मापा जाता है। जिसे शून्य माना जाता है।



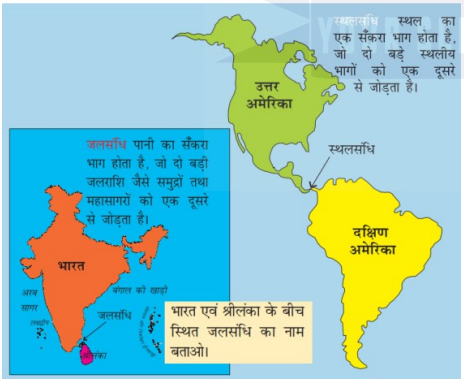
- विश्व का सबसे ऊँचा शिखर माउंट एवरेस्ट समुद्र तल से 8.848 मीटर ऊँचा है। विश्व का सबसे गहरा भाग प्रशांत महासागर का मेरियाना गर्त है, जिसकी गहराई 11,022 मीटर है।

महाद्वीप

- पृथ्वी पर सात प्रमुख महाद्वीप हैं। ये विस्तृत जलराशि के द्वारा एक दूसरे से अलग हैं। ये महाद्वीप हैं- एशिया, यूरोप, अफ्रीका, उत्तर अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा अंटार्कटिका। चित्र

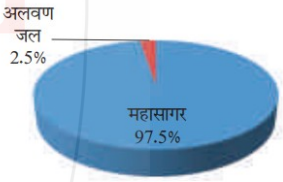
5.1 में विश्व के मानचित्र को देखिए तथा ध्यान दीजिए कि स्थल का बहुत बड़ा भाग उत्तरी गोलार्ध में पाया जाता है।

- एशिया विश्व का सबसे बड़ा महाद्वीप है। यह पृथ्वी के कुल क्षेत्रफल के एक तिहाई भाग में फैला है। यह महाद्वीप पूर्वी गोलार्ध में स्थित है। कर्क रेखा इस महाद्वीप से होकर गुजरती है। एशिया के पश्चिम में यूराल पर्वत है जो इसे यूरोप से अलग करता है (चित्र 5.1)। यूरोप एवं एशिया के संयुक्त भूभाग को यूरेशिया (यूरोप एशिया) कहा जाता है।
- यूरोप एशिया से बहुत छोटा है। यह महाद्वीप एशिया के पश्चिम में स्थित है। आर्कटिक वृत्त इससे होकर गुजरता है। यह तीन तरफ से जल से घिरा है। विश्व के मानचित्र को देखिए एवं इसकी स्थिति का पता लगाइए।
- अफ्रीका एशिया के बाद विश्व का दूसरा सबसे बड़ा महाद्वीप है। विषुवत् वृत्त या 0° अक्षांश इस महाद्वीप के लगभग मध्य भाग से होकर गुजरती है। अफ्रीका का बहुत बड़ा भाग उत्तरी गोलार्ध में स्थित है। चित्र 5.1 को देखिए, आप पाएँगे कि यही एक ऐसा महाद्वीप है जिससे होकर कर्क, विषुवत् तथा मकर, तीनों रेखाएँ गुजरती हैं।
- सहारा का रेगिस्तान विश्व का सबसे बड़ा गर्म रेगिस्तान है जो कि अफ्रीका में स्थित है। यह महाद्वीप चारों तरफ से समुद्रों एवं महासागरों से घिरा है।
- उत्तर अमेरिका विश्व का तीसरा सबसे बड़ा महाद्वीप है। यह दक्षिण अमेरिका से एक संकरे स्थल से जुड़ा है जिसे पनामा स्थलसंधि कहा जाता है। यह महाद्वीप पूरी तरह से उत्तरी एवं पश्चिमी गोलार्ध में स्थित है। यह महाद्वीप तीन महासागरों से घिरा है।



- दक्षिण अमेरिका का अधिकांश भाग दक्षिणी गोलार्ध में स्थित है। इसके पूर्व एवं पश्चिम में कौन से दो महासागर स्थित हैं? विश्व की सबसे लंबी पर्वत श्रृंखला एंडीज इसके उत्तर से दक्षिण की ओर फैली है (चित्र 5.1)। दक्षिण अमेरिका में विश्व की सबसे बड़ी नदी अमेजन बहती है।
- आस्ट्रेलिया विश्व का सबसे छोटा महाद्वीप है, जो कि पूरी तरह से दक्षिणी गोलार्ध में स्थित है। यह चारों तरफ से महासागरों तथा समुद्रों से घिरा है। इसे द्वीपीय महाद्वीप कहा जाता है।
- अंटार्कटिका एक बहुत बड़ा महाद्वीप है. जो कि दक्षिणी गोलार्ध में स्थित है। दक्षिण ध्रुव इस महाद्वीप के मध्य में स्थित है। चूँकि, यह दक्षिण ध्रुव क्षेत्र में स्थित है, इसलिए यह हमेशा मोटी बर्फ की परतों से ढका रहता है। यहाँ किसी भी प्रकार का स्थायी मानव निवास नहीं है। बहुत से देशों के शोध केंद्र यहाँ स्थित हैं। भारत के भी शोध संस्थान यहाँ हैं। इनके नाम हैं मैत्री तथा दक्षिण गंगोत्री।

जलमंडल



- पृथ्वी को नीला ग्रह कहा जाता है। पृथ्वी का 71 प्रतिशत भाग जल तथा 29 प्रतिशत भाग स्थल है। जलमंडल में जल के सभी रूप उपस्थित हैं। इसमें महासागर एवं नदियाँ, झीलें, हिमनदियाँ, भूमिगत जल तथा वायुमंडल की जलवाष्प सभी सम्मिलित हैं।
- पृथ्वी पर पाए जाने वाले जल का 97 प्रतिशत से अधिक भाग महासागरों में पाया जाता है एवं वह इतना अधिक खारा होता है कि मानव के उपयोग में नहीं आ सकता है। शेष जल का बहुत बड़ा भाग बर्फ की परतों एवं हिमनदियों तथा भूमिगत जल के रूप में पाया जाता है। जल का बहुत कम भाग अलवण जल के रूप में पाया जाता है, जो मनुष्य के इस्तेमाल में आता है। यही कारण है कि नीले ग्रह में रहने के बावजूद हम पानी की कमी महसूस करते हैं।

महासागर

- महासागर जलमंडल के मुख्य भाग हैं। ये आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।
- महासागरीय जल हमेशा गतिशील रहता है। तरंगें, ज्वार-भाटा तथा महासागरीय धाराएँ महासागरीय जल की तीन मुख्य गतियाँ हैं। बड़े से छोटे आकार के आधार पर क्रमशः पांच महासागर प्रमुख हैं- प्रशांत महासागर, अटलांटिक महासागर, हिंद महासागर, दक्षिणी महासागर तथा आर्कटिक महासागर।

- प्रशांत महासागर सबसे बड़ा महासागर है। यह पृथ्वी के एक-तिहाई भाग पर फैला है। पृथ्वी का सबसे गहरा भाग मेरियाना गर्त प्रशांत महासागर में ही स्थित है। प्रशांत महासागर लगभग वृत्ताकार है। एशिया, आस्ट्रेलिया, उत्तर एवं दक्षिण अमेरिका इसके चारों ओर स्थित हैं।
- अटलांटिक महासागर विश्व का दूसरा सबसे बड़ा महासागर है। यह अंग्रेजी भाषा के S अक्षर के आकार का है। इसके पश्चिमी किनारे पर उत्तर एवं दक्षिण अमेरिका हैं तथा पूर्वी किनारे पर यूरोप एवं अफ्रीका। अटलांटिक महासागर की तट रेखा बहुत अधिक दंतुरित है। यह अनियमित एवं दंतुरित तट रेखा प्राकृतिक पोताश्रयों एवं पत्तनों के लिए आदर्श स्थिति है। व्यापार की दृष्टि से यह सबसे व्यस्त महासागर है।
- हिंद महासागर ही एक ऐसा महासागर है जिसका नाम किसी देश के नाम पर, यानी भारत के नाम पर रखा गया है। यह महासागर लगभग त्रिभुजाकार है। इसके उत्तर में एशिया, पश्चिम में अफ्रीका तथा पूर्व में आस्ट्रेलिया स्थित हैं।
- दक्षिणी महासागर अण्टार्कटिका महाद्वीप को चारों ओर से घेरता है। यह अण्टार्कटिका महाद्वीप से उत्तर की ओर 60° दक्षिणी अक्षांश तक फैला हुआ है।
- आर्कटिक महासागर उत्तर ध्रुव वृत्त में स्थित है तथा यह उत्तर ध्रुव के चारों ओर फैला है। यह प्रशांत महासागर से छिछले जल वाले एक सँकरे भाग से जुड़ा है जिसे बेरिंग जलसंधि के नाम से जाना जाता है। यह उत्तर अमेरिका के उत्तरी तटों तथा यूरेशिया से घिरा है।

वायुमंडल

- हमारी पृथ्वी चारों ओर से गैस की एक परत से घिरी हुई है, जिसे वायुमंडल कहा जाता है। वायु की यह पतली परत इस ग्रह का महत्त्वपूर्ण एवं अटूट भाग है। यह हमें ऐसी वायु प्रदान करती है जिससे हम लोग साँस लेते हैं। यह वायुमंडल हम लोगों को सूर्य की कुछ हानिकारक किरणों से बचाता है।
- वायुमंडल 1,600 किमी. की ऊँचाई तक फैला है। वायुमंडल को उसके घटकों, तापमान तथा अन्य के आधार पर पाँच परतों में बाँटा जाता है। इन परतों को पृथ्वी की सतह से शुरू करते हुए क्षोभमंडल, समतापमंडल, मध्यमंडल, आयनमंडल तथा बहिमंडल कहा जाता है।
- वायुमंडल मुख्यतः ऑक्सीजन एवं नाइट्रोजन का बना है जो कि साफ तथा शुष्क हवा का 99 प्रतिशत भाग है। आयतन के अनुसार नाइट्रोजन 78 प्रतिशत, ऑक्सीजन 21 प्रतिशत तथा दूसरी गैसें; जैसे- कार्बन डाइऑक्साइड, ऑर्गन इत्यादि की मात्रा 1 प्रतिशत है। ऑक्सीजन साँस लेने के लिए आवश्यक है, जबकि नाइट्रोजन प्राणियों की वृद्धि के लिए आवश्यक है। कार्बन डाइऑक्साइड यद्यपि बहुत कम मात्रा में है, लेकिन यह पृथ्वी के द्वारा छोड़ी गई ऊष्मा को अवशोषित करती है, जिससे पृथ्वी गर्म रहती है। यह पौधों की वृद्धि के लिए भी आवश्यक है।
- ऊँचाई के साथ वायुमंडल के घनत्व में भिन्नता आती है। यह घनत्व समुद्री तल पर सबसे अधिक होता है तथा जैसे-जैसे हम ऊपर की ओर जाते हैं यह तेजी के साथ घटता जाता है। आप जानते हैं कि पहाड़ों पर पर्वतारोहियों को हवा के घनत्व में कमी होने के कारण साँस लेने में कठिनाई होती है। ऊँचाई पर साँस लेने के लिए उन्हें अपने साथ ऑक्सीजन सिलिंडर लेकर जाना पड़ता है। जैसे-जैसे हम ऊपर की ओर जाते हैं तापमान भी घटता जाता है। वायुमंडल पृथ्वी पर दबाव डालता है। यह एक स्थान से दूसरे स्थान पर अलग-अलग होता है। कुछ क्षेत्रों में हमें अधिक दाब महसूस होता है, जबकि कुछ क्षेत्रों में कम। वायु उच्च दाब से निम्न दाब की ओर बहती है। गतिशील वायु को पवन कहा जाता है।

जीवमंडल

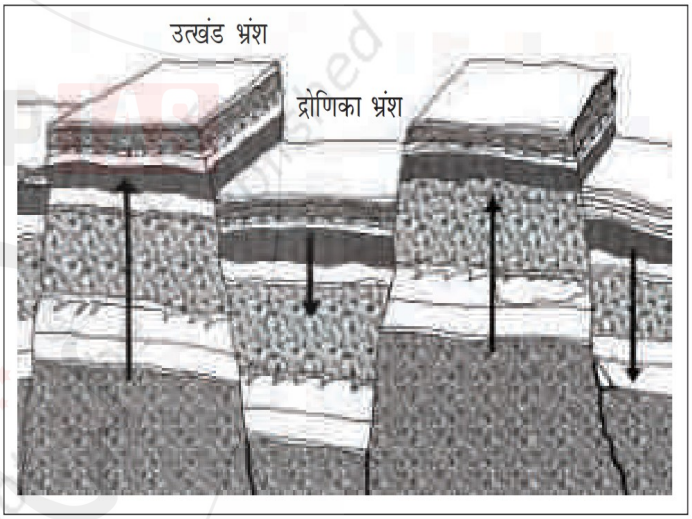
- जीवमंडल स्थल, जल तथा हवा के बीच का एक सीमित भाग है। यह वह भाग है जहाँ जीवन मौजूद है। यहाँ जीवों की बहुत सी प्रजातियाँ हैं, जो कि सूक्ष्म जीवों तथा बैक्टीरिया से लेकर बड़े स्तनधारियों के आकार में पाई जाती हैं। मनुष्य सहित सभी प्राणी, जीवित रहने के लिए एक-दूसरे से तथा जीवमंडल से जुड़े हुए हैं।
- जीवमंडल के प्राणियों को मुख्यतः दो भागों-जंतु जगत एवं पादप-जगत में विभक्त किया जा सकता है। पृथ्वी के ये तीनों परिमंडल आपस में पारस्परिक क्रिया करते हैं तथा एक दूसरे को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, लकड़ी तथा खेती के लिए वनों को काटा जाए तो इससे ढलुआ भाग पर मिट्टी का कटाव तेज़ी से होने लगता है। इसी प्रकार, प्राकृतिक आपदाएँ जैसे भूकंप से पृथ्वी की सतह में परिवर्तन हो जाता है। हाल ही में, सुनामी के कारण अंडमान एवं निकोबार द्वीपसमूहों का कुछ भाग पानी में डूब गया। झीलों तथा नदियों में दूषित पदार्थों के प्रवाहित होने से उनका जल मानव के इस्तेमाल के लायक नहीं रह जाता है। यह जल दूसरे जीवों को भी नुकसान पहुँचाता है।
- उद्योगों, तापीय विद्युत संयंत्रों तथा गाड़ियों का उत्सर्जी पदार्थ वायु को प्रदूषित करता है। कार्बन डाइऑक्साइड वायु का एक महत्त्वपूर्ण घटक है। लेकिन कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि के कारण पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो रही है। इसे भूमंडलीय तापन कहा जाता है। इसलिए भूमंडल, वायुमंडल तथा जलमंडल के बीच के प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखने के लिए पृथ्वी के संसाधनों के सीमित उपयोग की आवश्यकता है।

पृथ्वी के प्रमुख स्थलरूप

- पृथ्वी की सतह सभी जगह एकसमान नहीं है। पृथ्वी पर अनगिनत प्रकार के स्थलरूप हैं। स्थलमंडल के कुछ भाग ऊँचे-नीचे तथा कुछ समतल होते हैं।
- ये स्थलरूप दो प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप बनते हैं। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि मैदान जिस पर आप खड़े हैं, उसमें धीरे-धीरे गति हो रही है। पृथ्वी के अंदर लगातार गति हो रही है। प्रथम या आंतरिक प्रक्रिया के कारण बहुत से स्थानों पर पृथ्वी की सतह कहीं ऊपर उठ जाती है तो कही धँस जाती है।
- दूसरी या बाह्य प्रक्रिया स्थल के लगातार बनने एवं टूटने की प्रक्रिया है। पृथ्वी की सतह के टूटकर घिस जाने को अपरदन कहते हैं। अपरदन की क्रिया के द्वारा सतह नीची हो जाती है तथा निक्षेपण की प्रक्रिया के द्वारा इनका फिर से निर्माण होता हैं। ये दो प्रक्रियाएँ बहते हुए जल, वायु तथा बर्फ के द्वारा होती हैं। हम विभिन्न स्थलरूपों को उनकी ऊँचाई एवं ढाल के आधार पर पर्वतों, पठारों एवं मैदानों में वर्गीकृत कर सकते हैं।

पर्वत

- पर्वत पृथ्वी की सतह की प्राकृतिक ऊँचाई है। पर्वत का शिखर छोटा तथा आधार चौड़ा होता है। यह आस-पास के क्षेत्र से बहुत ऊँचा होता है। कुछ पहाड़ बादलों से भी ऊँचे होते हैं। जैसे-जैसे आप ऊँचाई पर जाएँगे जलवायु ठंडी होती जाती है।
- कुछ पर्वतों पर हमेशा जमी रहने वाली बर्फ की नदियाँ होती हैं। उन्हें हिमानी कहा जाता है। यहाँ कुछ ऐसे भी पर्वत हैं, जो समुद्र के भीतर हैं तथा जिन्हें आप नहीं देख सकते। कठोर जलवायु होने के कारण पर्वतीय क्षेत्रों में बहुत कम लोग निवास करते हैं। वहाँ का धरातल खड़ी ढाल वाला होता है तथा कृषि योग्य भूमि की कमी होती है। पर्वत एक रेखा के क्रम में भी व्यवस्थित हो सकते हैं जिसे श्रृंखला कहा जाता है। बहुत से पर्वतीय तंत्र समानांतर श्रृंखलाओं के क्रम में होते हैं जो सैकड़ों किमी. में फैले होते हैं। हिमालय, आल्प्स तथा एंडीज क्रमशः एशिया, यूरोप तथा दक्षिण अमेरिका की पर्वत श्रृंखलाएँ हैं। पर्वतों की ऊँचाई एवं आकार में भिन्नता होती है।
- पर्वत तीन प्रकार के होते हैं वलित पर्वत, भ्रंशोत्थ पर्वत तथा ज्वालामुखी पर्वत। हिमालय तथा आल्प्स वलित पर्वत हैं जिनकी सतह ऊबड़-खाबड़ तथा शिखर शंक्वाकार है। भारत की अरावली श्रृंखला विश्व की सबसे पुरानी वलित पर्वत श्रृंखला है। अपरदन की प्रक्रिया के कारण यह श्रृंखला घिस गई है। उत्तरी अमेरिका के अप्लेशियन तथा रूस के यूराल पर्वत गोलाकार दिखाई देते हैं एवं इनकी ऊँचाई कम है। ये बहुत पुराने वलित पर्वत हैं।
- जब बहुत बड़ा भाग टूट जाता है तथा ऊर्ध्वाधर रूप से विस्थापित हो जाता है तब भ्रंशोत्थ पर्वतों का निर्माण होता है। ऊपर उठे हुए खंड को उत्खंड (हार्स्ट) तथा नीचे धँसे हुए खंडों को द्रोणिका भ्रंश (ग्राबेन) कहा जाता है। यूरोप की राईन घाटी तथा वॉसजेस पर्वत इस तरह के पर्वत तंत्र के उदाहरण हैं।
- ज्वालामुखी पर्वत ज्वालामुखी क्रियाओं के कारण बनते हैं। अफ्रीका का माउंट किलिमंजारो तथा जापान का फ्यूजियामा इस तरह के पर्वतों के उदाहरण हैं।
- पर्वत बहुत लाभदायक होते हैं। पर्वत जल के संग्रहागार होते हैं। बहुत-सी नदियों का स्रोत पर्वतों में स्थित हिमानियों में होता है।



- **जलाशयों** के जल को लोगों तक पहुँचाया जाता है। पर्वतों के जल का उपयोग सिंचाई तथा पनबिजली के उत्पादन में भी किया जाता है। नदी घाटियाँ तथा वेदिकाएँ कृषि के लिए उपयुक्त होती हैं। पर्वतों में अलग-अलग प्रकार की वनस्पतियाँ तथा जीव-जंतु पाए जाते हैं। वनों से हमें ईंधन, चारा, आश्रय तथा दूसरे उत्पाद जैसे गोंद, रेजिन इत्यादि प्राप्त होते हैं। सैलानियों के लिए पर्वतीय भाग उपयुक्त स्थान हैं। वे पर्वतों की यात्रा उनकी प्राकृतिक सुंदरता को देखने के लिए करते हैं। विभिन्न प्रकार के खेल; जैसे पैराग्लाइडिंग, हैंग ग्लाइडिंग, रिवर राफ्टिंग तथा स्कीइंग पर्वतों के प्रचलित खेल हैं।

पठार

- पठार उठी हुई एवं सपाट भूमि होती है। यह आस-पास के क्षेत्रों से अधिक उठा हुआ होता है तथा इसका ऊपरी भाग मेज के समान सपाट होता है। किसी पठार के एक या एक से अधिक किनारे होते हैं जिनके ढाल खड़े होते हैं। पठारों की ऊँचाई प्रायः कुछ सौ मीटर से

लेकर कई हजार मीटर तक हो सकती है। पर्वतों की तरह पठार भी नये या पुराने हो सकते हैं। भारत में दक्कन पठार पुराने पठारों में से एक है। केन्या, तंजानिया तथा युगांडा का पूर्वी अफ्रीकी पठार एवं आस्ट्रेलिया का पश्चिमी पठार इस प्रकार के उदाहरण हैं। तिब्बत का पठार विश्व का सबसे ऊँचा पठार है, जिसकी ऊँचाई माध्य समुद्र तल से 4,000 से 6,000 मीटर तक है। पठार बहुत उपयोगी होते हैं क्योंकि उनमें खनिजों की प्रचुरता होती है। यही कारण है कि विश्व के बहुत से खनन क्षेत्र पठारी भागों में स्थित हैं। अफ्रीका का पठार सोना एवं हीरों के खनन के लिए प्रसिद्ध है। भारत में छोटानागपुर के पठार में लोहा, कोयला तथा मैंगनीज के बहुत बड़े भंडार पाए जाते हैं।



- पठारी क्षेत्रों में बहुत से जलप्रपात हो सकते हैं, क्योंकि यहाँ नदियाँ ऊँचाई से गिरती हैं। भारत में, छोटानागपुर पठार पर स्वर्णरेखा नदी पर स्थित हुंडरू जलप्रपात तथा कर्नाटक में जोग जलप्रपात, इस प्रकार के जलप्रपातों के उदाहरण हैं। लावा पठार में काली मिट्टी की प्रचुरता होती है, जो उपजाऊ है एवं खेती के लिए काफी अच्छी होती है। कई पठारों में रमणीय स्थल होते हैं, जो पर्यटकों को आकर्षित करते हैं।

मैदान

- मैदान समतल भूमि के बहुत बड़े भाग होते हैं। वे सामान्यतः माध्य समुद्री तल से 200 मीटर से अधिक ऊँचे नहीं होते हैं। कुछ मैदान काफी समतल होते हैं। कुछ उर्मिल तथा तरंगित हो सकते हैं। अधिकांश मैदान नदियों तथा उनकी सहायक नदियों के द्वारा बने हैं। नदियाँ पर्वतों के ढालों पर नीचे की ओर बहती हैं तथा उन्हें अपरदित कर देती हैं। वे अपरदित पदार्थों को अपने साथ आगे की ओर ले जाती हैं। अपने साथ ढोए जाने वाले पदार्थों; जैसे पत्थर, बालू तथा सिल्ट को वे घाटियों में निक्षेपित कर देती हैं। इन्हीं निक्षेपों से मैदानों का निर्माण होता है।
- सामान्यतः मैदान बहुत अधिक उपजाऊ होते हैं। यहाँ परिवहन के साधनों का निर्माण करना आसान होता है। इसलिए ये मैदान विश्व के सबसे अधिक जनसंख्या वाले भाग होते हैं। नदियों के द्वारा बनाए गए कुछ बड़े मैदान एशिया तथा उत्तरी अमेरिका में पाए जाते हैं। एशिया में स्थित भारत में गंगा एवं ब्रह्मपुत्र का मैदान तथा चीन में यांगत्से नदी का मैदान इसके प्रमुख उदाहरण हैं।
- मैदान मनुष्यों के रहने के लिए सबसे उपयोगी क्षेत्र होते हैं। यहाँ की जनसंख्या बहुत अधिक होती है, क्योंकि मकानों के बनाने तथा खेती के लिए यहाँ समतल भूमि की प्रचुरता होती है। उपजाऊ मिट्टी के कारण यह भाग खेती के लिए काफी उपयुक्त होता है। भारत में गंगा का मैदान देश में सबसे अधिक जनसंख्या वाला क्षेत्र है।

स्थलरूप एवं लोग

- स्थलरूपों की विभिन्नता के अनुरूप ही मानव विभिन्न प्रकार से जीवनयापन करते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों का जीवन कठिन होता है। मैदानी क्षेत्रों का जीवन पर्वतीय क्षेत्रों की तुलना में सरल होता है। मैदानों में फसलें उगाना, घर बनाना या सड़कें बनाना, पर्वतीय क्षेत्रों की तुलना में अधिक आसान होता है। विभिन्न प्रकार के स्थलरूपों पर रहने वाले लोगों के रहन-सहन के तरीकों में कुछ अंतर होता है। क्या आप उनमें से कुछ अंतरों को बता सकते हैं? कभी-कभी प्राकृतिक आपदाएँ; जैसे भूकंप, ज्वालामुखी उद्गार, तूफान या बाढ़ बहुत विनाश कर देते हैं। इन आकस्मिक घटनाओं के बारे में जागरूकता पैदा करके हम इनमें आने वाले खतरों को कम कर सकते हैं।
- हम कितने तरीकों से जल एवं स्थल को उपयोग में ला सकते हैं इसका पता हम अपने आस-पास के क्षेत्र से लगा सकते हैं। प्रायः हम स्थल का उपयोग गलत तरीके से करते हैं, जैसे उपजाऊ भूमि पर मकानों का निर्माण करना। इसी प्रकार हम लोग कूड़ा किसी भी भूमि पर या पानी में फेंक देते हैं जो कि उन्हें गंदा कर देता है। हमें प्रकृति के इस महत्त्वपूर्ण वरदान का उपयोग इस प्रकार नहीं करना चाहिए। उपलब्ध भूमि केवल हमारे ही उपयोग के लिए नहीं है। यह हमारा कर्तव्य है कि हम आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए पृथ्वी को सुरक्षित रखें

स्वच्छ भारत मिशन
स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। और स्वस्थ शरीर के लिए स्वच्छ पर्यावरण विशेष रूप से साफ जल, वायु तथा स्वच्छ वातावरण प्राथमिक आवश्यकताएं हैं। इन सभी प्राथमिक आवश्यकताओं को सभी लोगों को सुलभकराने हेतु भारत सरकार द्वारा स्वच्छ भारत मिशन कार्यक्रम चलाया जा रहा है।

विश्व की प्रमुख पर्वत श्रृंखलाएँ			
पर्वत श्रृंखला	**महत्वपूर्ण/सबसे ऊंची चोटियां**	**जगह**	**विवरण**
चट्टान का पर्वत	माउंट एल्बर्ट (रॉकीज़ की सबसे ऊंची चोटी)	उत्तरी अमेरिका	यह दुनिया के सबसे लंबे वलित पर्वतों में से एक है और कनाडा से पश्चिमी अमेरिका (न्यू मैक्सिको राज्य) तक फैला हुआ है।
अप्पलाचियन पर्वत	माउंट मिशेल, उत्तरी कैरोलिना, अमेरिका (एपलाचियन पर्वत की सबसे ऊंची चोटी)	उत्तरी अमेरिका	यह खनिज संसाधनों से समृद्ध एक तहदार पर्वत है
आल्पस	मोंट ब्लांक (फ्रांसीसी-इटालियन सीमा)	यूरोप	यह एक मोड़दार पर्वत है और डेन्यूब, राइन आदि नदियों का स्रोत है।
सिएरा नेवादा	माउंट व्हिटनी	कैलिफोर्निया, संयुक्त राज्य अमेरिका	कई रेड इंडियन जनजातियों का निवास स्थान
अलास्का रेंज	माउंट मैकिन्ले	उत्तरी अमेरिका	माउंट मैकिन्ले उत्तरी अमेरिका की सबसे ऊंची चोटी है
अल्ताई पर्वत	बेलुखा पर्वत	मध्य एशिया	युवा मोड़दार पर्वत जो कजाकिस्तान से उत्तरी चीन तक फैला हुआ है।
एंडीज पर्वत	माउंट अकोंकागुआ	दक्षिण अमेरिका	विश्व की सबसे लम्बी पर्वत श्रृंखला
एटलस पर्वत	माउंट टूबकल	उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका	मोरक्को और ट्यूनीशिया तक फैला युवा मोड़दार पर्वत।
ड्रेकेन्सबर्ग पर्वत	माउंट लेसोथो	दक्षिण अफ़्रीका	युवा मुड़ा हुआ पहाड़
काकेशस पर्वत	माउंट एल्ब्रुस	यूरोप	काला सागर और कैस्पियन सागर के बीच स्थित
स्कैंडिनेवियाई पर्वत	गैल्दहोपिगेन	यूरोप (फिनलैंड, नॉर्वे, स्वीडन)	पहाड़ों के पश्चिमी किनारे उत्तरी सागर और नॉर्वेजियन सागर में तेजी से गिरते हैं, जिससे नॉर्वे के फिओर्ड्स बनते हैं, जबकि उत्तर-पूर्व में वे धीरे-धीरे फिनलैंड की ओर मुड़ते हैं।
कार्पेथियन पहाड़ियां	गेर्लाचोव्स्की स्टिट	यूरोप	मध्य और पूर्वी यूरोप में चाप बनाती पर्वत श्रृंखला।
यूराल पर्वत	माउंट नरोदनया	रूस	यह पर्वत श्रृंखला यूरोप और एशिया के बीच सीमा का काम करती है।
हिंदुकुश पर्वत	माउंट त्रिच मीर	पाकिस्तान और अफ़गानिस्तान	ऊबड़-खाबड़ स्थलाकृति वाला मोड़दार पर्वत, जिसके कारण परिवहन कठिन हो जाता है।
हिमालय	माउंट एवरेस्ट	एशिया	एशिया में युवा वलित पर्वत जो भारतीय उपमहाद्वीप को एशियाई मैदानों से अलग करते हैं
अराकान योमा	माउंट कैनेडी शिखर	म्यांमार	यह उत्तर से दक्षिण दिशा तक फैला हुआ है। यहाँ स्थानान्तरित खेती की जाती है।
कुनलुन पर्वत	माउंट मुज़ताग	तिब्बती पठार के उत्तर और पश्चिमी चीन	यह युवा मोड़दार पर्वतों में से एक है।
वोस्गेस	माउंट ग्रैंड बैलोन	पूर्वी फ्रांस, यूरोप	अंगूर की खेती और मदिरा निर्माण के लिए प्रसिद्ध।
ग्रेट डिवाइडिंग रेंज	माउंट कोसियस्ज़को	ऑस्ट्रेलिया	यह श्रृंखला डार्लिंग और मरे नदियों का स्रोत है।



विश्व के सबसे ऊंचे शिखर		
शिखर	**ऊंचाई (मीटर)**	**स्थिति**
माउंट एवरेस्ट	8,848.86	नेपाल/चीन
के2	8,611	भारत/चीन
कंचनजंगा	8,586	नेपाल/भारत
ल्होत्से	8,516	नेपाल/चीन
मकालू	8,485	नेपाल/चीन
चो ओयू	8,201	नेपाल/चीन
धौलागिरी	8,167	नेपाल
मनासुल	8,163	नेपाल
नंगा पर्वत	8,126	पाकिस्तान
अन्नपूर्णा	8,091	नेपाल

पठारों का प्रकार और उनके विस्तृत उदाहरण			
क्रम	वर्गीकरण का आधार	पठारों का प्रकार	उदाहरण
1	निर्माण की शक्ति	अन्तर्जात शक्तियों से निर्मित पठार	- डेक्कन पठार (भारत) - कोलंबिया पठार (USA) - इथियोपिया पठार (अफ्रीका) - ईरानी पठार स्पेन का मेसेटा पठार
2		बहिर्जात शक्तियों से निर्मित पठार (अपरदन पठार)	- छोटा नागपुर पठार (भारत) ऑज़ार्क पठार (USA) - मडगास्कर पठार (अफ्रीका) शिवालिक क्षेत्र के कुछ भाग

			- विंध्य-सतपुड़ा पठार (भारत)
3	भौगोलिक अवस्थिति के अनुसार	महाद्वीपीय पठार	- तिब्बत पठार - पामीर पठार - मेसेटा पठार (स्पेन) - केन्द्रीय साइबेरियाई पठार (रूस) - ग्रेट डिवाइडिंग रेंज (ऑस्ट्रेलिया)
4		मध्यवर्ती पठार	- बुंदेलखंड पठार - मालवा पठार - झारखंड पठार - मैसूर पठार
5		तटीय पठार	- कर्नाटक पठार - ब्राजील पठार - गोआ पठार - गिनी पठार (पश्चिम अफ्रीका)
6	धरातलीय आकृति के अनुसार	लावा पठार (ज्वालामुखीय पठार)	- डेक्कन पठार - कोलंबिया पठार - पारना पठार (ब्राजील) - केन्या पठार एरिज़ोना का कोलोराडो पठार (USA)
7		संचयनात्मक पठार	- पातालकोट पठार - राजमहल पहाड़ियाँ क्षेत्र (गंगा के निकट) - गोंडवाना अवसादी क्षेत्र
8	आकार व आकृति के अनुसार	टेबलाकार (समतल) पठार	- टिबेट पठार- मैक्सिकन पठार - मेसेटा पठार (स्पेन) - लारामिड पठार (उत्तरी अमेरिका)
9		विच्छिन्न पठार (Dissected Plateau)	- छोटा नागपुर पठार - स्कॉटिश हाइलैंड - सतपुड़ा पठार - राजमहल क्षेत्र
10	जलवायु के आधार पर	उष्णकटिबंधीय पठार	- डेक्कन पठार - अफ्रीकी पठार - ब्राजील पठार - गिनी पठार
11		शीतोष्ण पठार	- तिब्बत पठार - इरानी पठार - मेसेटा (स्पेन) - साइबेरियाई पठार
12	अपरदन की अवस्था के आधार पर	प्रारंभिक अवस्था का पठार	- डेक्कन पठार - कोलंबिया पठार
13		विकसित अवस्था का पठार	- छोटा नागपुर पठार - ब्राजील पठार

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

14		वृद्ध अवस्था का पठार	- विंध्य-सतपुड़ा पठार - बुंदेलखंड पठार राजमहल पहाड़ियाँ (कटाव के कारण अवशिष्ट रूप में)

पठार (Plateau)	स्थान (Location)	प्रमुख विशेषताएँ (Key Features)
तिब्बत का पठार	चीन	विश्व का सबसे ऊँचा और सबसे बड़ा पठार; "विश्व की छत" कहलाता है; हिमालय के उत्तर में स्थित
डेक्कन पठार	भारत	प्राचीन आग्नेय पठार; गोंडवाना भूमि का भाग; काली, लाल व लेटराइट मिट्टी
ईरानी पठार	ईरान, अफगानिस्तान	शुष्क जलवायु; पर्वतों से घिरा हुआ
अनातोलिया पठार	तुर्की	यूरेशियन और अरबी प्लेट्स के संधिस्थल पर; भूकंपीय क्षेत्र
पैटागोनिया पठार	अर्जेंटीना (दक्षिण अमेरिका)	शीत मरुस्थलीय पठार; अंध महासागर की ओर ढाल
मेक्सिको पठार	उत्तर अमेरिका (मेक्सिको)	ज्वालामुखीय क्षेत्र; मानव बस्ती के लिए अनुकूल ऊँचाई
मोंगोलिया पठार	मंगोलिया व चीन	ऊँचाई 1000–1500 मीटर; स्टेपी घासभूमियाँ
बशोल पठार / एथेओपियन पठार	इथियोपिया (अफ्रीका)	अफ्रीका का सबसे ऊँचा पठार; ब्लू नाइल का उद्गम स्थल
कोलोराडो पठार	अमेरिका (यूएसए)	ग्रांड कैन्यन स्थित; शुष्क क्षेत्र
युगोस्लाव पठार / डिनारिक पठार	बाल्कन क्षेत्र (यूरोप)	यूरोप के दक्षिणी भाग में; पर्वतीय और पठारी मिश्रित स्वरूप
ट्रांसवाल पठार	दक्षिण अफ्रीका	खनिज संपदा से समृद्ध; गोल्ड व डायमंड खनन क्षेत्र

YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

हमारा देश : भारत

- भारत एक बहुत बड़े भौगोलिक विस्तार वाला देश है। उत्तर में यह हिमालय के ऊँचे शिखरों से घिरा है। पश्चिम में अरब सागर, पूर्व में बंगाल की खाड़ी तथा दक्षिण में हिंद महासागर भारतीय प्रायद्वीप के तटों पर लहराते हैं।
- भारत का क्षेत्रफल 32.8 लाख वर्ग किमी. है। उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक इसका विस्तार लगभग 3,200 किमी. है तथा पूर्व में अरुणाचल प्रदेश से लेकर पश्चिम में कच्छ तक इसका विस्तार लगभग 2,900 किमी. तक है। ऊँचे-ऊँचे पर्वत, भारतीय महामरुस्थल, उत्तरी मैदान, असमान पठारी सतह, तटीय भाग एवं द्वीपसमूह स्थलरूपों की विभिन्नता को दर्शाते हैं। यहाँ जलवायु, वनस्पति, वन्य जीवों के साथ-साथ भाषा एवं संस्कृति में भी बहुत भिन्नता है। इस भिन्नता में भी हम एकता को पाते हैं, जो हमारी परम्पराओं में दिखती है। यही कारण है कि हम एक राष्ट्र में बँधे हैं। वर्ष 2011 से अब तक भारत की आबादी 120 करोड़ से अधिक हो चुकी है। यह चीन के बाद विश्व का दूसरा सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है।

स्थिति

- भारत उत्तरी गोलार्ध में स्थित है। कर्क रेखा (23°30' उ.) देश के लगभग मध्य भाग से होकर गुजरती है (चित्र 7.2)। दक्षिण से उत्तर की ओर भारत की मुख्य भूमि का विस्तार 8°4' उ. तथा 37°6' उ. अक्षांशों के बीच है। पश्चिम से लेकर पूर्व तक भारत का विस्तार 68°7' पू. तथा 97°25' पू. देशांतरों के बीच है। अगर हम विश्व को पूर्वी एवं पश्चिमी गोलार्ध में बाँटते हैं तो भारत की स्थिति किस गोलार्ध में होगी? बहुत बड़े देशांतरीय विस्तार लगभग 29° के कारण यहाँ के दो छोर पर स्थित स्थानों के स्थानीय समय में बहुत अधिक अंतर हो सकता था। इस तरह की दूरी पर स्थित दो स्थानों के बीच समय का अंतर लगभग दो घंटे का होगा। जैसा कि आपने पहले पढ़ा है, कि प्रत्येक 1 देशांतर के लिए स्थानीय समय में 4 मिनट का अंतर होता है। पश्चिम में गुजरात की अपेक्षा पूर्व के अरुणाचल प्रदेश में सूर्योदय लगभग दो घंटे पहले होता है। आप पहले पढ़ चुके हैं कि 82°30′ पू. देशांतर के स्थानीय समय को भारत का मानक समय क्यों माना गया है। इस याम्योत्तर को भारत का मानक याम्योत्तर भी कहा जाता है।

भारत एक द्रष्टि में	
विषय	विवरण
अक्षांशीय विस्तार	8°4′ उत्तर से 37°6′ उत्तर
देशांतर विस्तार	68°7′ पूर्व से 97°25′ पूर्व
मानक देशांतर रेखा	82°30′ पूर्व (भारत का मानक समय)
समय का अंतर (पूर्व-पश्चिम)	लगभग 2 घंटे
कुल क्षेत्रफल	32.87 लाख वर्ग किमी (विश्व में 7वां स्थान)
तटीय सीमा	कुल: 7,516.6 किमी (महाद्वीपीय तट: 6,100 किमी)
स्थल सीमाएं	पाकिस्तान, अफगानिस्तान, चीन, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, म्यांमार
दक्षिणी जलसीमा से देश	श्रीलंका, मालदीव
उत्तर में स्थित राज्य	जम्मू और कश्मीर (लद्दाख सहित)
दक्षिणी सिरा	इंदिरा प्वाइंट (निकोबार द्वीप)
मुख्य द्वीप समूह	अंडमान-निकोबार (बंगाल की खाड़ी), लक्षद्वीप (अरब सागर)
भारत की आकृति	त्रिभुजाकार
भारत का उपनाम	उपमहाद्वीप
जनसंख्या में स्थान	विश्व में 2रा (चीन के बाद)
कर्क रेखा	भारत के मध्य भाग से गुजरती है
प्राकृतिक विविधता	पर्वत, मैदान, पठार, तट, रेगिस्तान, द्वीप
भू-राजनीतिक विशेषता	भौगोलिक और सांस्कृतिक दृष्टि से विविधता

भारत के पड़ोसी देश

सात देशों की स्थलीय सीमाएँ इसकी सीमाओं से जुड़ी है।

राजनीतिक एवं प्रशासनिक विभाजन

भारत एक विशाल देश है। प्रशासनिक क्रियाकलापों के लिए देश को 28 राज्यों एवं 8 केंद्रशासित प्रदेशों में बाँटा गया है। 2 जून 2014 को तेलंगाना भारत का 29 वां राज्य बना। पहले यह आंध्रप्रदेश का एक भाग था (परिशिष्ट 1) दिल्ली भारत की राजधानी है। राज्यों का निर्माण मुख्यतः भाषाओं के आधार पर हुआ है। क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य राजस्थान तथा सबसे छोटा राज्य गोवा है। राज्यों को जिलों में बाँटा गया है।

भौतिक विभाजन

भारत में पाई जाने वाली भौतिक आकृतियाँ विभिन्न प्रकार की हैं; जैसे पर्वत, पठार, मैदान, तट तथा द्वीपसमूह। उत्तर में बर्फ से ढका हिमालय संतरी का कार्य करता है। हिम आलय का मतलब होता है बर्फ का घर। हिमालय पर्वत को तीन मुख्य समानांतर श्रृंखलाओं में बाँटा जाता है। सबसे उत्तर में स्थित श्रृंखला को वृहत हिमालय या हिमाद्रि कहते हैं। इसी श्रृंखला में विश्व की सबसे ऊँची शिखर हैं। मध्य हिमालय या हिमाचल, हिमाद्रि के दक्षिण में स्थित है। बहुत से लोकप्रिय पहाड़ी स्थान यहाँ स्थित हैं। पाँच पहाड़ी स्थानों के नाम

का पता लगाइए। शिवालिक सबसे दक्षिण में स्थित श्रृंखला है। हिमालय के दक्षिण में भारत का उत्तरी मैदान स्थित हैं। ये मैदान समतल तथा सपाट हैं। ये मैदान सिंधु, गंगा, ब्रह्मपुत्र तथा इनकी सहायक नदियों के द्वारा लाए गए जलोढ़ निक्षेपों से बने हैं। नदियों के ये मैदान कृषि के लिए उपजाऊ भूमि प्रदान करते हैं। यही कारण है कि इन मैदानों में जनसंख्या अधिक है।

जलोढ़ निक्षेपः ये नदियों के द्वारा लाई गई बहुत महीन मिट्टी होती है तथा नदी बेसिन में निक्षेपित कर दी जाती है।

सहायक नदीः एक नदी या सरिता जो कि मुख्य नदी में किसी भी तरफ से आकर मिलती है तथा अपने जल को मुख्य नदी में विसर्जित करती है

गंगा एवं ब्रह्मपुत्र नदियों विश्व के सबसे बड़े डेल्टा का निर्माण करती हैं, जिसे सुन्द्रवन डेल्टा कड़ा जाता है। इस डेल्टा की आकृति त्रिभुजाकार है। डेल्टा स्थल का वह भाग है जो नदी के मुहाने पर बनता है (जहाँ नदियाँ समुद्र में प्रवेश करती हैं उस जगह को नदी का मुहाना कहा जाता है,

भारत के पश्चिमी भाग में भारतीय महामरुस्थल स्थित है। यह शुष्क, गर्म तथा रेतीला स्थल है। यहाँ वनस्पति की मात्रा बहुत कम है। उत्तरी मैदानों के दक्षिण में प्रायद्वीपीय पठार स्थित है। इसकी आकृति त्रिभुजाकार है। इसका धरातल काफी ऊँचा-नीचा है। इस क्षेत्र में बहुत-सी पहाड़ी श्रृंखलाएँ तथा घाटियाँ स्थित हैं। इसके उत्तर-पश्चिम में अरावली श्रृंखला स्थित है, जो विश्व की सबसे पुरानी श्रृंखला है। विंध्य एवं सतपुड़ा भी महत्त्वपूर्ण श्रृंखलाएँ हैं। इन श्रृंखलाओं से होकर नर्मदा तथा तापी नदियाँ बहती हैं। ये पश्चिम की तरफ बहने वाली नदियाँ हैं, जो अरब सागर में गिरती हैं। इस पठार के पश्चिम में पश्चिमी घाट या सह्याद्रि तथा पूर्व में पूर्वी घाट स्थित है। पश्चिमी घाट का विस्तार एकसमान रूप में है, जबकि पूर्वी घाट बीच-बीच में टूटा हुआ तथा असमान है (चित्र 7.3)। इन पठारों में खनिजों; जैसे कोयला एवं लौह अयस्क की प्रचुरता है। पश्चिमी घाट के पश्चिम में तथा पूर्वी घाट के पूर्व में तटीय मैदान स्थित हैं। पश्चिम तटीय मैदान काफी सँकरे हैं। पूर्वी तटीय मैदान अपेक्षाकृत चौड़े हैं। वहाँ पूर्व की ओर बहने वाली कई नदियाँ हैं। महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। ये नदियाँ अपने मुहाने पर उपजाऊ डेल्टा का निर्माण करती हैं। बंगाल की खाड़ी में गंगा एवं ब्रह्मपुत्र नदियों के मुहाने पर सुंदरबन डेल्टा स्थित है।

Note:-

प्रवाल छोटे समुद्री जंतुओं के कंकाल हैं , जिसे पॉलिप कहा जाता है। जब जीवित पॉलिप मरते हैं तब उनका कंकाल बच जाता है। अन्य पॉलिप की वृद्धि इन ठोस कंकालों के ऊपर होती है, जो बढ़ते-बढ़ते काफी ऊँचे होते जाते हैं तथा इस प्रकार प्रवाल द्वीपों का निर्माण करते हैं।

द्वीपसमूह

भारत में दो द्वीपसमूह भी हैं। लक्षद्वीप द्वीपसमूह अरब सागर में स्थित हैं। ये केरल के तट से कुछ दूर स्थित प्रवाल द्वीप हैं। अंडमान एवं निकोबार द्वीपसमूह भारत से दक्षिण-पूर्व दिशा में बंगाल की खाड़ी में स्थित हैं। क्या आप जानते हैं कि कौन-सा द्वीपसमूह वर्ष 2004 में सुनामी से प्रभावित हुआ था? समाचार पत्रों तथा लोगों से बातचीत के जरिए जानकारी प्राप्त कीजिए कि जब सुनामी भारतीय तट से टकराई थी तो किस प्रकार लोगों ने अलग-अलग तरीके से इस चुनौती का सामना किया था। सुनामी एक विशाल सागरीय तरंग है जो समुद्र तल पर भूकंप के कारण उत्पन्न होती है।

भारत : जलवायु, वनस्पति तथा वन्य प्राणी

मौसम वायुमंडल में दिन-प्रतिदिन होने वाला परिवर्तन है। इसमें तापमान, वर्षा तथा सूर्य का विकिरण इत्यादि शामिल हैं। उदाहरण के लिए मौसम कभी गर्म या कभी ठंडा होता है, कभी-कभी आसमान में बादल छा जाते हैं, तो कभी वर्षा होती है। आपने ध्यान दिया होगा कि जब बहुत दिनों तक मौसम गर्म रहता है तब आपको ऊनी वस्त्रों की आवश्यकता नहीं पड़ती है। आप खाने-पीने में ठंडे पदार्थों को पसंद करते हैं। इसके विपरीत ऐसे भी दिन होते हैं जब आपको ऊनी वस्त्रों के बिना ठंड लगती है। ठंडी और तेज हवाएँ चलती हैं। इन दिनों में आप गर्म चीजें खाना पसंद करते हैं। सामान्यतः भारत में प्रमुख मौसम होते हैं:

- दिसंबर से फरवरी तक ठंडा मौसम (सर्दी)
- मार्च से मई तक गर्म मौसम (गर्मी)
- जून से सितंबर तक दक्षिण-पश्चिम मानसून का मौसम (वर्षा)
- अक्टूबर और नवंबर में मानसून के लौटने का मौसम (शरद)

शीत ऋतु

ठंडे मौसम में सूर्य की सीधी किरणें नहीं पड़ती हैं जिसके परिणामस्वरूप उत्तर भारत का तापमान कम हो जाता है।

ग्रीष्म ऋतु

गर्मी के मौसम में सूर्य की किरणें अधिकतर सीधी पड़ती हैं। तापमान बहुत अधिक हो जाता है। दिन के समय गर्म एवं शुष्क पवन बहती है जिसे लू कहा जाता है।

दक्षिण-पश्चिम मानसून या वर्षा का मौसम

यह मानसून के आने तथा आगे बढ़ने का मौसम है। इस समय पवन बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर से स्थल की ओर बहती है। वे अपने साथ नमी भी लाती हैं। जब ये पवन पहाड़ों से टकराती हैं तब वर्षा होती है।

मानसून के लौटने का मौसम या शरद् ऋतु

इस समय पवन स्थल भागों से लौटकर बंगाल की खाड़ी की ओर बहती है। यह मानसून के लौटने का मौसम होता है। भारत के दक्षिणी भागों विशेषकर तमिलनाडु तक आंध्र प्रदेश में इस मौसम में वर्षा होती है। किसी स्थान पर अनेक वर्षों में मापी गई मौसम की औसत दशा को जलवायु कहते हैं।

भारत की जलवायु को मोटे तौर पर मानसूनी जलवायु कहा जाता है। मानसून शब्द अरबी भाषा के मौसिम से लिया गया है, जिसका अर्थ होता है मौसम। भारत की स्थिति उष्ण कटिबंध में होने के कारण अधिकतर वर्षा मानसूनी पवन से होती है। भारत में कृषि वर्षा पर निर्भर है। अच्छे मानसून का मतलब है पर्याप्त वर्षा तथा प्रचुर मात्रा में फसलों का उत्पादन।

किसी स्थान की जलवायु उसकी स्थिति, ऊँचाई, समुद्र से दूरी तथा उच्चावच पर निर्भर करती है। इसलिए हमें भारत की जलवायु में क्षेत्रीय विभिन्नता का अनुभव होता हैं। राजस्थान के मरुस्थल में स्थित जैसलमेर तथा बीकानेर बहुत गर्म स्थान हैं, जबकि जम्मू तथा कश्मीर के द्रास एवं कारगिल में बर्फीली ठंड पड़ती है। तटीय क्षेत्र जैसे मुंबई तथा कोलकाता की जलवायु मध्यम है। वे न ही अधिक गर्म हैं और न ही अधिक ठंडे। समुद्र तट पर होने के कारण ये स्थान बहुत अधिक आर्द्र हैं। विश्व में सबसे अधिक वर्षा मेघालय में स्थित मौसिनराम में होती है, जबकि किसी-किसी वर्ष राजस्थान के जैसलमेर में वर्षा होती ही नहीं है।

प्राकृतिक वनस्पति

हम अपने चारों तरफ विभिन्न प्रकार का पादप जीवन देखते हैं। हरे घास वाले मैदान में खेलना कितना अच्छा लगता है। कुछ पौधे छोटे होते हैं जिन्हें झाड़ी कहा जाता है, जैसे कैक्टस तथा फूलों वाले पौधे इत्यादि। इसके अतिरिक्त बहुत से लंबे वृक्ष होते हैं उनमें से कुछ में बहुत शाखाएँ तथा पत्तियाँ होती हैं; जैसे नीम, आम, तो कुछ वृक्ष ऐसे होते हैं जिनमें पत्तियों की मात्रा बहुत कम होती है, जैसे नारियल। घास, झाडियाँ तथा पौधे जो बिना मनुष्य की सहायता के उपजते हैं उन्हें प्राकृतिक वनस्पति कहा जाता है। क्या आप कभी यह नहीं सोचते कि ये एक-दूसरे से किस प्रकार भिन्न हैं। अलग-अलग जलवायु में अलग-अलग प्रकार की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। इनमें वर्षा की मात्रा सबसे महत्त्वपूर्ण होती है। जलवायु की विभिन्नता के कारण भारत में अलग-अलग तरह की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं।

हमें वनों की आवश्यकता क्यों है- वन हमारे लिए बहुत ही लाभदायक हैं। ये विभिन्न कार्य करते हैं। पेड़-पौधे ऑक्सीजन छोड़ते हैं जिसे हम साँस के रूप में लेते हैं तथा कार्बन डाइऑक्साइड को ग्रहण करते हैं। पेड़-पौधों की जड़ें मिट्टी को बाँध कर रखती हैं तथा इस प्रकार वे मिट्टी के अपरदन को रोकते हैं। वनों से हमें ईंधन, लकड़ी, चारा, जड़ी-बूटियाँ, लाख, शहद, गोंद इत्यादि प्राप्त होते हैं।

वन वन्यजीवों के प्राकृतिक निवास हैं।

पेड़ों की अंधाधुंध कटाई के कारण भारी मात्रा में प्राकृतिक वनस्पतियाँ समाप्त हो गई हैं। हमें अधिक पौधे लगाने चाहिए, जो पेड़ बचे हैं उनकी रक्षा करनी चाहिए एवं लोगों को पेड़ों के महत्त्व के बारे में बताना चाहिए। हम लोग कुछ खास आयोजन जैसे वनमहोत्सव मनाकर अधिक से अधिक लोगों को इस प्रयास में शामिल कर सकते हैं तथा पृथ्वी को हरा-भरा रख सकते हैं।

वन्य प्राणी

वन विभिन्न प्रकार के वन्यजीवों का निवास होता है। वनों में जंतुओं की हजारों प्रजातियाँ तथा बड़ी संख्या में विभिन्न प्रकार के सरीसृपों, उभयचरों, पक्षियों, स्तनधारियों, कीटों तथा कृमियों का निवास होता है।

बाघ हमारा राष्ट्रीय पशु है। यह देश के विभिन्न भागों में पाया जाता है। गुजरात के गिर वन में एशियाई शेरों का निवास है। हाथी तथा एक सींग वाले गैंडे असम के जंगलों में घूमते हैं। हाथी, केरल एवं कर्नाटक में भी मिलते हैं। ऊँट भारत के रेगिस्तान तथा जंगली गधा कच्छ के रन में पाए जाते हैं। जंगली बकरी, हिम तेंदुआ, भालू इत्यादि हिमालय के क्षेत्र में पाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त बहुत से दूसरे जानवर; जैसे बंदर, सियार, भेड़िया, नीलगाय, चीतल इत्यादि भी हमारे देश में पाए जाते हैं।

भारत में पक्षियों की भी ऐसी ही प्रचुरता है। मोर हमारा राष्ट्रीय पक्षी है। भारत में पक्षी तोता, मैना, कबूतर, बुलबुल तथा बतख इत्यादि हैं। अन्य बहुत सारे राष्ट्रीय पक्षी उद्यान हैं जो पक्षियों को उनका प्राकृतिक निवास प्रदान करते हैं। उद्यान शिकारियों से पक्षियों की रक्षा करते हैं। क्या आप अपने क्षेत्र में पाए जाने वाले पाँच पक्षियों के नाम बता सकते हैं?

भारत में साँपों की सैकड़ों प्रजातियाँ पाई जाती हैं। उनमें कोबरा एवं करैत प्रमुख हैं।

वनों के कटने तथा जानवरों के शिकार के कारण भारत में पाए जाने वाले वन्यजीवों की प्रजातियाँ तेजी से घट रही हैं। बहुत सी प्रजातियाँ तो समाप्त भी हो चुकी हैं। उनको बचाने के लिए बहुत से नेशनल पार्क, पशुविहार तथा जीवमंडल आरक्षित क्षेत्र स्थापित किए गए हैं। सरकार ने हाथियों तथा बाघों को बचाने के लिए बाघ परियोजना एवं हस्ति परियोजना जैसी परियोजनाओं को शुरू किया है। क्या आप भारत के कुछ पशुविहारों के नाम तथा मानचित्र पर उनकी स्थिति बता सकते हैं?

आप वन्यजीवों के संरक्षण में भी अपना हाथ बँटा सकते हैं। आप जानवरों के शरीर के विभिन्न अंगों; जैसे- हड्डी, सींग तथा पंख से बने पदार्थों को खरीदने से इनकार कर सकते हैं। प्रत्येक वर्ष हम लोग अक्टूबर के पहले सप्ताह को वन्यजीव सप्ताह के रूप में मनाते हैं ताकि वन्यजीवों के निवास को संरक्षित रखने के लिए जागरूकता लाई जा सके।

प्रवासी पक्षी

कुछ पक्षी पिटेल बत्तख, कर्लियू, प्लैमिंगो, ऑस्प्रे, लिटिल स्टिंट प्रत्येक वर्ष सर्दी के मौसम में हमारे देश आते हैं। सबसे छोटी लिटिल स्टिंट जिसका वजन लगभग 15 ग्राम होता है आर्कटिक प्रदेश से 8000 किलोमीटर की दूरी तय करके भारत आती है

भारत को 8 विशिष्टवानस्पतिक क्षेत्रो में वर्गीकृत किया जा सकता हैं

क्षेत्र संख्या	वानस्पतिक क्षेत्र	भौगोलिक विस्तार	जलवायु विशेषताएँ	प्रमुख वनस्पति	पारिस्थितिक विशेषता	जैव विविधता/महत्व
1	पश्चिमी हिमालय	जम्मू-कश्मीर, हिमाचल, उत्तराखंड	ठंडी शीतोष्ण से अल्पाइन जलवायु, कम वर्षा	देवदार, भोजपत्र, बांज, चीड़, जुनिपर	ऊँचाई के साथ वनस्पति में बदलाव (Zonation)	औषधीय पौधे, ग्लेशियर इकोसिस्टम, चारागाह
2	पूर्वी हिमालय	सिक्किम, अरुणाचल, दार्जिलिंग क्षेत्र	भारी वर्षा, आर्द्र शीतोष्ण जलवायु	रोडोडेंड्रोन, बाँस, साल, ऑर्किड	बादलों से ढके सदाबहार वन, अधिक वर्षा	विश्व के सबसे समृद्ध जैव विविधता क्षेत्रों में से एक
3	असम क्षेत्र	असम, मेघालय, मिजोरम, त्रिपुरा	उच्च आर्द्रता, भारी मानसून वर्षा	बांस, बेंत, साल, फर्न, ब्रायोफाइट	दलदली और नमभूमियाँ, नम पर्णपाती वन	रेनफॉरेस्ट प्रकार के पारिस्थितिक तंत्र, पक्षी और तितली विविधता
4	सिंधु का मैदान	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी राजस्थान	शुष्क से अर्ध-शुष्क, कम वर्षा	कीकर, बबूल, खेजड़ी, कैक्टस	मरुस्थलीय वनस्पति, रेतीली मिट्टी	जल-संरक्षण आधारित वनस्पति, मरुस्थली जीव
5	गंगा का मैदान	उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल	मानसूनी जलवायु, मध्यम वर्षा	पीपल, पाकड़, नीम, आम, इमली	कृषि योग्य उपजाऊ भूमि, मैदानी पर्णपाती वन	सबसे अधिक आबादी और कृषि उपयोग वाला क्षेत्र
6	दक्षिणी क्षेत्र	मध्य भारत – MP, छत्तीसगढ़, ओडिशा	उष्णकटिबंधीय मानसूनी, गर्म ग्रीष्म	साल, सागौन (टीक), महुआ, बेर	पर्णपाती वन, खनिज समृद्ध पहाड़ी क्षेत्र	आदिवासी संस्कृति व जीव-जंतु विविधता
7	मालाबार क्षेत्र	पश्चिमी तटीय क्षेत्र – केरल, कर्नाटक	अति आर्द्र, सदाबहार मानसून	नारियल, सुपारी, ऐकानट, सदाबहार वन	पश्चिमी घाट जैव विविधता हॉटस्पॉट	औषधीय पौधे, उच्च वर्षा व पारिस्थितिक असंतुलन संवेदनशील
8	अंडमान क्षेत्र	अंडमान-निकोबार द्वीप समूह	समुद्री जलवायु, गर्म एवं आर्द्र	मैंग्रोव, उष्णकटिबंधीय सदाबहार वन, नारियल	प्रवाल भित्तियाँ, द्वीपीय पारिस्थितिकी	समुद्री जैव विविधता, प्रवाल संरक्षण के लिए महत्त्वपूर्ण

भारत की प्रमुख वन्यजीव संरक्षण परियोजनाएँ

क्रमांक	परियोजना का नाम	आरंभ वर्ष	संरक्षण का उद्देश्य	प्रमुख राज्य/क्षेत्र
1	बाघ परियोजना	1973	बाघ का संरक्षण	मध्यप्रदेश, उत्तराखंड, महाराष्ट्र, कर्नाटक आदि
2	गैंडा परियोजना	1987	एक सींग वाले गैंडे का संरक्षण	असम (काजीरंगा), पश्चिम बंगाल
3	हाथी परियोजना	1992	एशियाई हाथी का संरक्षण	केरल, कर्नाटक, ओडिशा, असम
4	मगरमच्छ परियोजना	1975	मगरमच्छ, घड़ियाल व कच्छप का संरक्षण	ओडिशा, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश
5	हिम तेंदुआ परियोजना	2009	हिम तेंदुए का संरक्षण	लद्दाख, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम
6	शेर परियोजना	1972	एशियाई शेर का संरक्षण	गुजरात (गिर वन)
7	हंगुल परियोजना	1970	कश्मीर हिरण (हंगुल) का संरक्षण	जम्मू-कश्मीर (दाचिगाम राष्ट्रीय उद्यान)
8	रेड पांडा परियोजना	1980	रेड पांडा का संरक्षण	सिक्किम
9	डॉल्फिन संरक्षण परियोजना	2009	गंगा डॉल्फिन का संरक्षण	उत्तर प्रदेश, बिहार, असम
10	सोनचिरैया परियोजना	2013	गोडावण पक्षी का संरक्षण	राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र
11	कस्तूरी मृग परियोजना	1986	कस्तूरी हिरण का संरक्षण	उत्तराखंड, कश्मीर क्षेत्र
12	समुद्री कछुआ परियोजना	1999	ओलिव रिडले कछुए का संरक्षण	ओडिशा (गहिरमाथा तट)

भारत के प्रमुख टाइगर रिज़र्व

वर्ष	टाइगर रिज़र्व का नाम	राज्य/क्षेत्र
1973–74	कॉर्बेट, कन्हा, सुंदरबन, सिमलीपल, बांदीपुर, मेलघाट, पलामू	उत्तराखण्ड, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, कर्नाटक, महाराष्ट्र, झारखंड
1978–79	पेरियार, सरिस्का	केरल, राजस्थान
1982–83	बुक्सा, इंद्रावती, नामदाफा, नागार्जुनसागर–श्रीसैलम	पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़, अरुणाचल, आंध्र प्रदेश
1987–88	दुधवा	उत्तर प्रदेश
1988–89	कालाकट-मुंडंथुरै (Kalakad–Mundundurai)	तमिलनाडु
1989–90	वाल्मीकि	बिहार
1992–93	पेंच (म.प्र.)	मध्य प्रदेश
1993–94	बांधवगढ़, ताडोबा–अंधारी, बांदीपुर (पहले)	मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र
1994–95	पन्ना, डम्पा	मध्य प्रदेश, मिज़ोरम
1999–2000	पक्के, नामेरी, सतपुड़ा	अरुणाचल, असम, मध्य प्रदेश
2008–09	अनामलाई, उदंती–सीतानदी, सतकोसिया, काजीरंगा,	तमिलनाडु, छत्तीसगढ़, ओडिशा, असम
2009–10	सह्याद्री	महाराष्ट्र
2010–11	बीलिगिरी रंगल मंदिर	कर्नाटक
2012–13	कवाल	तेलंगाना
2013–14	सथ्यामंगलम, मुकुंद्रा हिल्स, नवेगाँव–नागज़िरा	तमिलनाडु, राजस्थान, महाराष्ट्र
2014	अम्रबाद, पीलीभीत, बोर	तेलंगाना, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र
2015	राजाजी	उत्तराखंड
2016	ओरांग, कमलांग	असम, अरुणाचलप्रदेश
2021	श्रीविल्लीपुर–मेगामलाई	तमिलनाडु
2022	रामगढ़ विशधारी, रानीपुर	राजस्थान, उत्तर प्रदेश
2023	वीरांगना दुर्गावती, धौलपुर–करौली	मध्य प्रदेश, राजस्थान

स्थापना वर्ष	राष्ट्रीय उद्यान का नाम	राज्य
1936	कॉर्बेट राष्ट्रीय उद्यान	उत्तराखंड
1955	कान्हा राष्ट्रीय उद्यान	मध्य प्रदेश
1955	ताडोबा राष्ट्रीय उद्यान	महाराष्ट्र
1959	माधव राष्ट्रीय उद्यान	मध्य प्रदेश
1968	बांधवगढ़ राष्ट्रीय उद्यान	मध्य प्रदेश
1974	काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान	असम
1974	बांदीपुर राष्ट्रीय उद्यान	कर्नाटक
1974	बन्नेरघट्टा राष्ट्रीय उद्यान	कर्नाटक
1975	गिर राष्ट्रीय उद्यान	गुजरात
1975	गुगामल राष्ट्रीय उद्यान	महाराष्ट्र
1975	नवेगांव राष्ट्रीय उद्यान	महाराष्ट्र
1975	पेंच राष्ट्रीय उद्यान	मध्य प्रदेश
1976	ब्लैकबक राष्ट्रीय उद्यान	गुजरात
1976	गिंडी राष्ट्रीय उद्यान	तमिलनाडु
1977	केइबुल-लामजाओ राष्ट्रीय उद्यान	मणिपुर
1977	कंचनजंगा राष्ट्रीय उद्यान	सिक्किम
1977	दुधवा राष्ट्रीय उद्यान	उतार प्रदेश।
1978	एराविकुलम राष्ट्रीय उद्यान	केरल
1979	वांसदा राष्ट्रीय उद्यान	गुजरात
1979	वन विहार राष्ट्रीय उद्यान	मध्य प्रदेश
1980	सिमलीपाल राष्ट्रीय उद्यान	ओडिशा
1980	रणथंभौर राष्ट्रीय उद्यान	राजस्थान
1980	मन्नार की खाड़ी समुद्री राष्ट्रीय उद्यान	तमिलनाडु
1981	गुरु घासीदास (संजय) राष्ट्रीय उद्यान	छत्तीसगढ
1981	दाचीगाम राष्ट्रीय उद्यान	जम्मू और कश्मीर
1981	हेमिस राष्ट्रीय उद्यान	जम्मू और कश्मीर
1981	किश्तवाड़ राष्ट्रीय उद्यान	जम्मू और कश्मीर
1981	पन्ना राष्ट्रीय उद्यान	मध्य प्रदेश
1981	संजय राष्ट्रीय उद्यान	मध्य प्रदेश
1981	सतपुड़ा राष्ट्रीय उद्यान	मध्य प्रदेश
1981	केवलादेव घाना राष्ट्रीय उद्यान	राजस्थान
1982	इंद्रावती राष्ट्रीय उद्यान	छत्तीसगढ
1982	कांगेर घाटी राष्ट्रीय उद्यान	छत्तीसगढ
1982	समुद्री राष्ट्रीय उद्यान	गुजरात
1982	पेरियार राष्ट्रीय उद्यान	केरल
1982	नंदा देवी राष्ट्रीय उद्यान	उत्तराखंड
1982	फूलों की घाटी राष्ट्रीय उद्यान	उत्तराखंड
1983	महात्मा गांधी समुद्री राष्ट्रीय उद्यान	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह
1983	नमदाफा राष्ट्रीय उद्यान	अरुणाचल प्रदेश
1983	जीवाश्म राष्ट्रीय उद्यान	मध्य प्रदेश
1983	संजय गांधी राष्ट्रीय उद्यान	महाराष्ट्र
1983	राजाजी राष्ट्रीय उद्यान	उत्तराखंड
1984	ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्क	हिमाचल प्रदेश
1984	साइलेंट वैली राष्ट्रीय उद्यान	केरल
1984	सुंदरबन राष्ट्रीय उद्यान	पश्चिम बंगाल
1985	बालपक्रम राष्ट्रीय उद्यान	मेघालय
1986	मौलिंग राष्ट्रीय उद्यान	अरुणाचल प्रदेश
1986	बेतला राष्ट्रीय उद्यान	झारखंड
1986	नोकरेक रिज राष्ट्रीय उद्यान	मेघालय
1986	नेओरा घाटी राष्ट्रीय उद्यान	पश्चिम बंगाल
1986	सिंगालीला राष्ट्रीय उद्यान	पश्चिम बंगाल
1987	मिडिल बटन आइलैंड राष्ट्रीय उद्यान	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह
1987	माउंट हेरिएट राष्ट्रीय उद्यान	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह
1987	नॉर्थ बटन आइलैंड राष्ट्रीय उद्यान	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह
1987	सैडल पीक राष्ट्रीय उद्यान	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह
1987	साउथ बटन आइलैंड राष्ट्रीय उद्यान	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह
1987	पिन वैली राष्ट्रीय उद्यान	हिमाचल प्रदेश
1987	अंशी राष्ट्रीय उद्यान	कर्नाटक
1987	कुद्रेमुख राष्ट्रीय उद्यान	कर्नाटक
1988	नागरहोल (राजीव गांधी) राष्ट्रीय उद्यान	कर्नाटक
1988	भीतरकनिका राष्ट्रीय उद्यान	ओडिशा
1989	श्री वेंकटेश्वर राष्ट्रीय उद्यान	आंध्र प्रदेश
1989	वाल्मीकि राष्ट्रीय उद्यान	बिहार
1989	सुल्तान राष्ट्रीय उद्यान	हरयाणा
1989	इंदिरा गांधी (अन्नामलाई) राष्ट्रीय उद्यान	तमिलनाडु

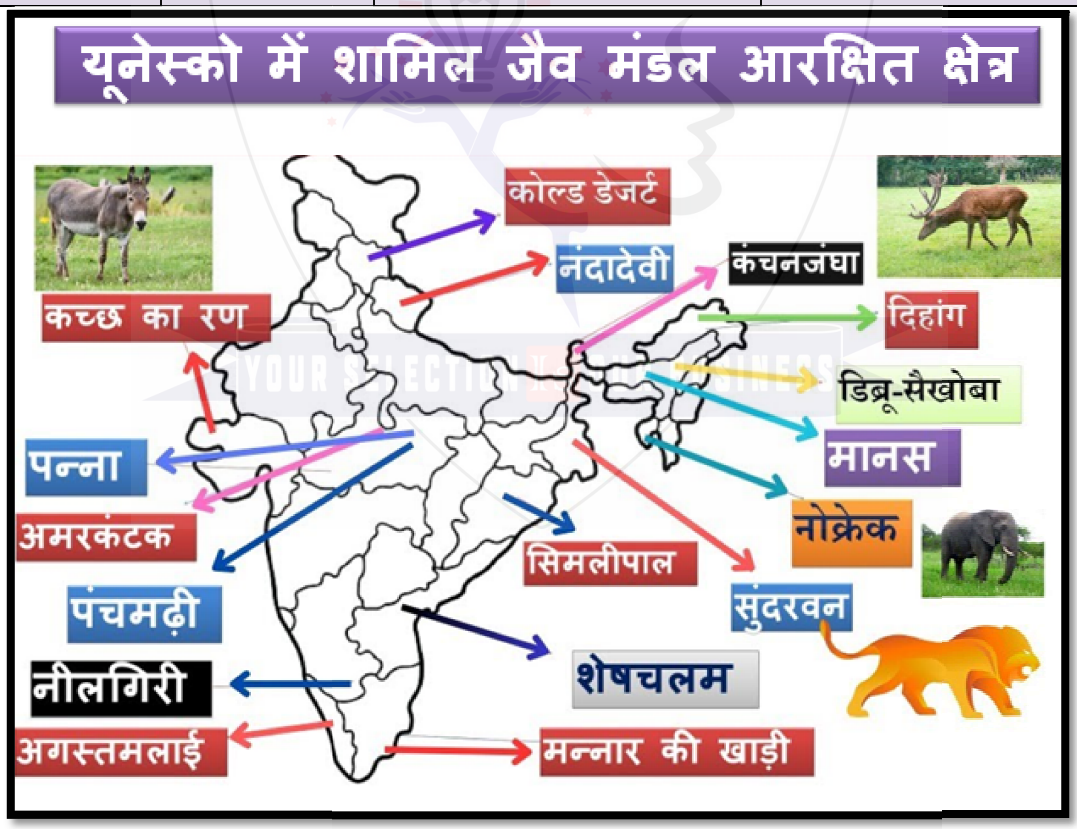
1989	गंगोत्री राष्ट्रीय उद्यान	उत्तराखंड
1990	मानस राष्ट्रीय उद्यान	असम
1990	मुदुमलाई राष्ट्रीय उद्यान	तमिलनाडु
1990	मुकुर्थी राष्ट्रीय उद्यान	तमिलनाडु
1990	गोविंद राष्ट्रीय उद्यान	उत्तराखंड
1991	मुर्लेन राष्ट्रीय उद्यान	मिजोरम
1992	कैम्पबेल बे राष्ट्रीय उद्यान	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह
1992	गैलेथिया बे राष्ट्रीय उद्यान	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह
1992	मोल्लेम राष्ट्रीय उद्यान	गोवा
1992	सिटी फॉरेस्ट (सलीम अली) राष्ट्रीय उद्यान	जम्मू और कश्मीर
1992	फौंगपुई ब्लू माउंटेन नेशनल पार्क	मिजोरम
1992	मरुस्थल राष्ट्रीय उद्यान	राजस्थान
1992	सरिस्का राष्ट्रीय उद्यान	राजस्थान
1992	बक्सा राष्ट्रीय उद्यान	पश्चिम बंगाल
1992	गोरुमारा राष्ट्रीय उद्यान	पश्चिम बंगाल
1993	इंटंकी राष्ट्रीय उद्यान	नगालैंड
1994	कासु ब्रह्मानंद रेड्डी राष्ट्रीय उद्यान	तेलंगाना
1994	महावीर हरिणा वनस्थली राष्ट्रीय उद्यान	तेलंगाना

1994	मृगावनी राष्ट्रीय उद्यान	तेलंगाना
1996	रानी झाँसी समुद्री राष्ट्रीय उद्यान	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह
1998	नामेरी राष्ट्रीय उद्यान	असम
1999	डिब्रू-सैखोवा राष्ट्रीय उद्यान	असम
1999	राजीव गांधी ओरंग राष्ट्रीय उद्यान	असम
2003	कलेसर राष्ट्रीय उद्यान	हरयाणा
2003	अनमुदी शोला राष्ट्रीय उद्यान	केरल
2003	मथिकेत्तन शोला राष्ट्रीय उद्यान	केरल
2003	पम्पादुम शोला राष्ट्रीय उद्यान	केरल
2004	चंदौली राष्ट्रीय उद्यान	महाराष्ट्र
2005	राजीव गांधी (रामेश्वरम) राष्ट्रीय उद्यान	आंध्र प्रदेश
2006	मुकुंदरा हिल्स राष्ट्रीय उद्यान	राजस्थान
2007	क्लाउडेड लेपर्ड नेशनल पार्क	त्रिपुरा
2007	बाइसन राष्ट्रीय उद्यान	त्रिपुरा
2008	पापिकोंडा राष्ट्रीय उद्यान	आंध्र प्रदेश
2010	इंदरकिल्ला राष्ट्रीय उद्यान	हिमाचल प्रदेश
2010	खीरगंगा राष्ट्रीय उद्यान	हिमाचल प्रदेश
2010	सिम्बलबारा राष्ट्रीय उद्यान	हिमाचल प्रदेश
2014	जलदापाड़ा राष्ट्रीय उद्यान	पश्चिम बंगाल

भारत के प्रमुख वन्यजीव अभयारण्यों की सूची

वन्यजीव अभयारण्य	स्थान	स्थापना	प्रमुख वनस्पति और जीव
जिम कॉर्बेट वन्यजीव अभयारण्य	उत्तराखंड	1936 (राष्ट्रीय उद्यान के रूप में)	बाघ, हाथी, तेंदुए, 600 से अधिक पक्षी प्रजातियाँ
रणथंभौर वन्यजीव अभयारण्य	राजस्थान	1955 (अभयारण्य), 1980 (पार्क)	बाघ, तेंदुआ, नीलगाय, जंगली सूअर, सांभर, विभिन्न पक्षी
काजीरंगा वन्यजीव अभयारण्य	असम	1905 (आरक्षित वन), 1974 (पार्क)	गैंडे, बाघ, हाथी, जंगली भैंस, अनेक पक्षी प्रजातियाँ
सुंदरवन वन्यजीव अभयारण्य	पश्चिम बंगाल	1984 (राष्ट्रीय उद्यान के रूप में)	बंगाल टाइगर, खारे पानी के मगरमच्छ, विविध मछली और पक्षी प्रजातियाँ
पेरियार वन्यजीव अभयारण्य	केरल	1950 (अभयारण्य), 1982 (पार्क)	हाथी, बाघ, तेंदुए, हिरण और पक्षियों की विभिन्न प्रजातियाँ
सरिस्का वन्यजीव अभयारण्य	राजस्थान	1955 (अभयारण्य), 1978 (बाघ रिजर्व)	बाघ, तेंदुए, चीतल, नीलगाय, समृद्ध पक्षी जीवन
बांदीपुर वन्यजीव अभयारण्य	कर्नाटक	1931 (अभयारण्य), 1974 (पार्क)	बाघ, हाथी, तेंदुए, भालू, विभिन्न पक्षी प्रजातियाँ

दाचीगाम वन्यजीव अभयारण्य	**जम्मू और कश्मीर**	1981 (राष्ट्रीय उद्यान के रूप में)	हंगुल, तेंदुए, हिमालयी काले भालू, विविध पक्षी-जीव
भद्रा वन्यजीव अभयारण्य	कर्नाटक	1951 (अभयारण्य), 1998 (बाघ रिजर्व)	बाघ, हाथी, गौर, तेंदुए, विविध पक्षी प्रजातियाँ
मानस वन्यजीव अभयारण्य	असम	1928 (अभयारण्य), 1990 (पार्क)	बाघ, पिग्मी हॉग, भारतीय गैंडे, हाथी, अद्वितीय पक्षी जीवन
बांधवगढ़ वन्यजीव अभयारण्य	मध्य प्रदेश	1968 (अभयारण्य), 1986 (पार्क के रूप में)	बाघ, तेंदुए, हिरणों की विभिन्न प्रजातियाँ, कई पक्षी प्रजातियाँ
गिर वन्यजीव अभयारण्य	गुजरात	1965	एशियाई शेर, तेंदुए, हिरण, मृग, समृद्ध पक्षी जीवन
कान्हा वन्यजीव अभयारण्य	मध्य प्रदेश	1955	बाघ, तेंदुए, बारहसिंगा (दलदली हिरण), विविध पक्षी प्रजातियाँ
रंगनाथिटु पक्षी अभयारण्य	कर्नाटक	1940	सारस, बगुले, स्पूनबिल, विविध पक्षी प्रजातियाँ
केवलादेव घाना वन्यजीव अभयारण्य	राजस्थान	1981 (पार्क), 1985 (विश्व धरोहर)	साइबेरियाई सारस, विभिन्न जलपक्षी सहित अनेक प्रवासी पक्षी
साइलेंट वैली राष्ट्रीय उद्यान	केरल	1984	शेर-पूंछ वाले मकाक, बाघ, हाथी, विविध वनस्पति प्रजातियाँ
चिन्नार वन्यजीव अभयारण्य	केरल	1984	भूरे रंग की विशाल गिलहरी, हाथी, तेंदुए, सितारा कछुए
कच्छ मरुस्थल वन्यजीव अभयारण्य	गुजरात	1986	राजहंस, जंगली गधा, रेगिस्तानी लोमड़ी, अनुकूलित वन्य जीवन



COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

1. पर्यावरण

2. हमारी पृथ्वी के अंदर

3. हमारी बदलती पृथ्वी

4. वायु

5. जल

6. प्राकृतिक वनस्पति एवं वन्य जीवन

7. मानवीय पर्यावरण बस्तियाँ, परिवहन एवं संचार

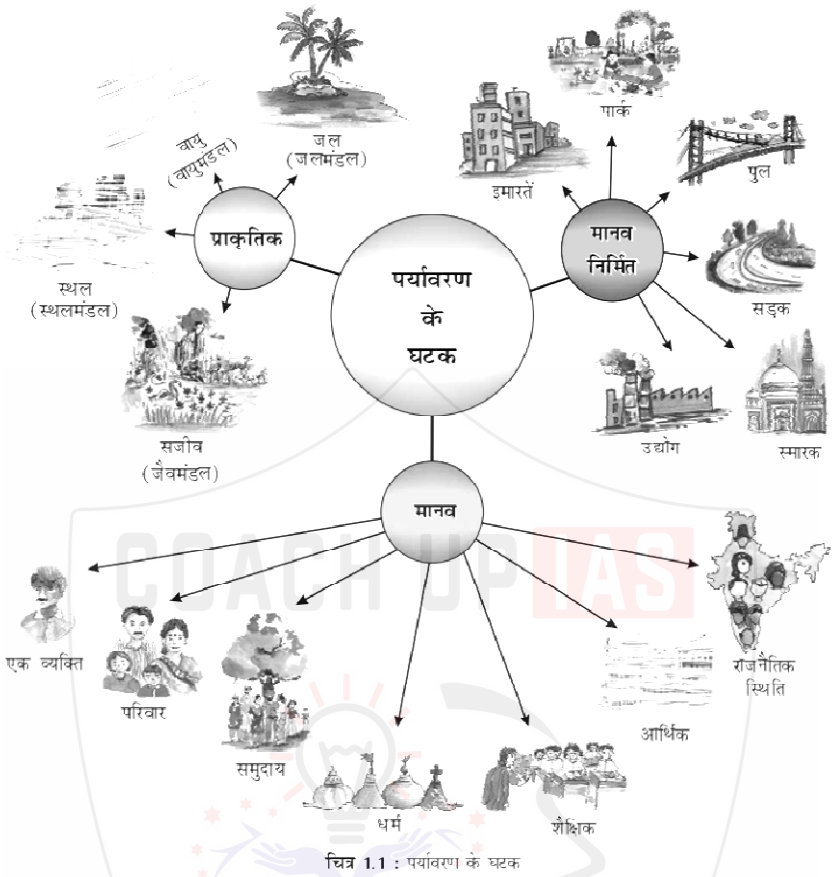
8. मानव-पर्यावरण अन्योन्यक्रिया: उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्ण प्रदेश

9. शीतोष्ण घासस्थलों में जीवन

10. रेगिस्तान में जीवन

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

पर्यावरण



चित्र 1.1 : पर्यावरण के घटक

किसी भी जीवित प्राणी के चारों ओर पाए जाने वाले लोग, स्थान, वस्तुएँ एवं प्रकृति को पर्यावरण कहते हैं। यह प्राकृतिक एवं मानव-निर्मित परिघटनाओं का मिश्रण है। प्राकृतिक पर्यावरण में पृथ्वी पर पाई जाने वाली जीवीय एवं अजीवीय दोनों परिस्थितियाँ सम्मिलित हैं,

- जीवीय- सजीव प्राणियों का संसार। जैसे-पादप एवं जंतु
- अजीवीय- निर्जीव पदार्थों का संसार। जैसे-स्थल

जबकि मानवीय पर्यावरण में मानव की परस्पर क्रियाएँ, उनकी गतिविधियाँ एवं उनके द्वारा बनाई गई रचनाएँ सम्मिलित हैं।

प्राकृतिक पर्यावरण

भूमि, जल, वायु, पेड़-पौधे एवं जीव-जंतु मिलकर प्राकृतिक पर्यावरण बनाते हैं। स्थलमंडल, जलमंडल, वायुमंडल एवं जैवमंडल से आप पहले से ही परिचित होंगे। आइए, अब हम इनके संबंध में कुछ और तथ्यों की जानकारी प्राप्त करते हैं।

पृथ्वी की ठोस पर्पटी या कठोर ऊपरी परत को स्थलमंडल कहते हैं। यह चट्टानों एवं खनिजों से बना होता है एवं मिट्टी की पतली परत से ढँका होता है। यह पहाड़, पठार, मैदान, घाटी आदि जैसी विभिन्न स्थलाकृतियों वाला विषम धरातल होता है। ये स्थलाकृतियाँ महाद्वीपों के अलावा महासागर की सतह पर भी पाई जाती हैं।

स्थलमंडल वह क्षेत्र है, जो हमें वन, कृषि एवं मानव बस्तियों के लिए भूमि, पशुओं को चरने के लिए घासस्थल प्रदान करता है। यह खनिज संपदा का भी एक स्रोत है।

पर्यावरण यानी एनवायरनमेंट शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच शब्द एनवायरोनेर या एनवायरोन्नेर से हुई है, जिसका अर्थ है 'पडोस'।

जल के क्षेत्र को जलमंडल कहते हैं। यह जल के विभिन्न स्रोतों जैसे-नदी. झील, समुद्र, महासागर आदि जैसे विभिन्न जलाशयों से मिलकर बनता है। यह सभी प्राणियों के लिए आवश्यक है।

पृथ्वी के चारों ओर फैली वायु की पतली परत को वायुमंडल कहते हैं। पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण बल अपने चारों ओर के वायुमंडल को थामे रखता

है। यह सूर्य की झुलसाने वाली गर्मी एवं हानिकारक किरणों से हमारी रक्षा करता है। इसमें कई प्रकार की गैस, धूल-कण एवं जलवाष्प उपस्थित रहते हैं। वायुमंडल में परिवर्तन होने से मौसम एवं जलवायु में परिवर्तन होता है।

पादप एवं जीव-जंतु मिलकर जैवमंडल या सजीव संसार का निर्माण करते हैं। यह पृथ्वी का वह संकीर्ण क्षेत्र है, जहाँ स्थल, जल एवं वायु मिलकर जीवन को संभव बनाते हैं।

पादप एवं जीव-जंतु मिलकर जैवमंडल या सजीव संसार का निर्माण करते हैं। यह पृथ्वी का वह संकीर्ण क्षेत्र है, जहाँ स्थल, जल एवं वायु मिलकर जीवन को संभव बनाते हैं।

पारितंत्र क्या है?

पारितंत्र: वह तंत्र जिसमें समस्त जीवधारी आपस में एक-दूसरे के साथ तथा पर्यावरण के उन भौतिक एवं रासायनिक कारकों के साथ परस्पर क्रिया करते हैं जिसमें वे निवास करते हैं। ये सब ऊर्जा और पदार्थ के स्थानांतरण द्वारा संबद्ध हैं।

सभी पेड़-पौधे, जीव-जंतु एवं मानव अपने आस-पास के पर्यावरण पर आश्रित होते हैं। प्रायः वे एक-दूसरे पर भी आश्रित हैं। जीवधारियों का आपसी एवं अपने आस-पास के पर्यावरण के बीच का संबंध ही पारितंत्र का निर्माण करता है। अधिक वर्षा वाले वन, घासस्थल, रेगिस्तान, पर्वत, झील, नदी. महासागर एवं छोटे-से ताल का भी एक पारितंत्र हो सकता है।

मानवीय पर्यावरण

मानव अपने पर्यावरण के साथ पारस्परिक क्रिया करता है और उसमें अपनी आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन करता है। प्रारंभिक मानव ने स्वयं को प्रकृति के अनुरूप बना लिया था। उनका जीवन सरल था एवं आस-पास की प्रकृति से उनकी आवश्यकताएं पूरी हो जाती थी। समय के साथ कई प्रकार की आवश्यकताएँ बढ़ीं। मानव ने पर्यावरण के उपयोग और उसमें परिवर्तन करने के कई तरीके सीख लिए। उसने फ़सल उगाना, पशु पालना एवं स्थायी जीवन जीना सीख लिया। पहिए का आविष्कार हुआ, आवश्यकता से अधिक अन्न उपजाया गया, वस्तु-विनिमय पद्धति का विकास हुआ, व्यापार आरंभ हुआ एवं वाणिज्य का विकास हुआ। औद्योगिक क्रांति से बड़े पैमाने पर उत्पादन प्रारंभ हो गया। परिवहन तेज गति से प्रारंभ हुआ। सूचना क्रांति से पूरे विश्व में संचार, सहज और द्रुत हो गया।

प्राकृतिक एवं मानवीय पर्यावरण के बीच सही संतुलन होना आवश्यक है। मानव को पर्यावरण के साथ समरसता से रहने एवं उसका उपयोग सीखना चाहिए।

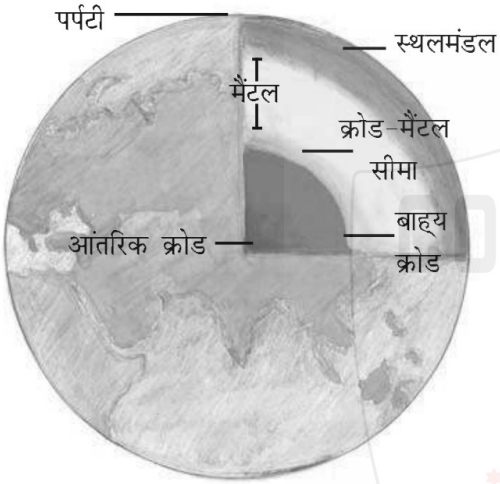
वस्तु-विनिमय पद्धति : यह वस्तुओं को अदला-बदली का व्यापार है जिसमें धन का प्रयोग नहीं होता।

COACHUP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

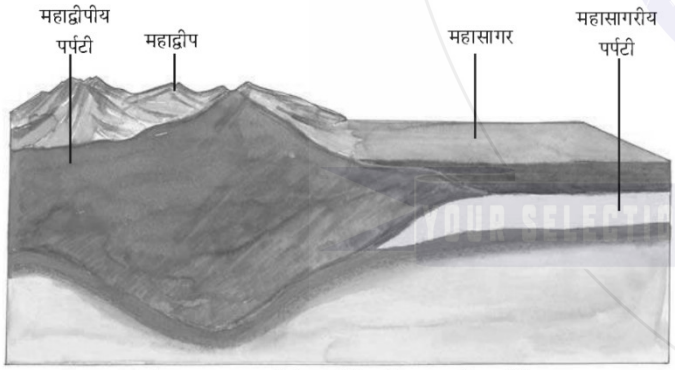
हमारी पृथ्वी के अंदर

हमारी पृथ्वी एक गतिशील ग्रह है। इसके अंदर एवं बाहर निरंतर परिवर्तन होता रहता है। क्या आपने कभी सोचा है कि पृथ्वी के आंतरिक भाग में क्या है? पृथ्वी किन पदार्थों से बनी है?

पृथ्वी का आंतरिक भाग एक प्याज की तरह पृथ्वी भी एक के ऊपर एक संकेंद्री परतों से बनी है



चित्र 2.1 : पृथ्वी का आंतरिक भाग



चित्र 2.2 : महाद्वीपीय पर्पटी एवं महासागरीय पर्पटी

पृथ्वी की सतह की सबसे ऊपरी परत को पर्पटी कहते हैं। यह सबसे पतली परत होती है। यह महाद्वीपीय संहति में 35 किलोमीटर एवं समुद्री सतह में केवल 5 किलोमीटर तक है। महाद्वीपीय संहति मुख्य रूप से सिलिका एवं ऐलुमिना जैसे खनिजों से बनी है। इसलिए इसे सिएल (सि-सिलिका तथा एल-एलुमिना) कहा जाता है। महासागर की पर्पटी मुख्यतः सिलिका एवं मैग्नीशियम की बनी है; इसलिए इसे सिमै (सि-सिलिका तथा मैं-मैग्नीशियम) कहा जाता है

पर्पटी के ठीक नीचे मैटल होता है जो 2900 किलोमीटर की गहराई तक फैला होता है। इसकी सबसे आंतरिक परत क्रोड है.

जिसकी त्रिज्या लगभग 3500 किलामीटर है। यह मुख्यतः निकल एवं लोहे की बनी होती है तथा इसे निफे (नि-निकिल तथा के-फैरस) कहते हैं। केंद्रीय क्रोड का तापमान एवं दाब काफ़ी उच्च होता है।

शैल एवं खनिज

पृथ्वी की पर्पटी अनेक प्रकार के शैलों से बनी है। पृथ्वी की पर्पटी बनाने वाले खनिज पदार्थ के किसी भी प्राकृक्तिक पिंड को शैल कहते हैं। शैल विभिन्न रंग, आकार एवं गठन की हो सकती हैं।

मुख्य रूप से शैल तीन प्रकार की होती हैं- आग्नेय (इग्नियस) शैल, अवसादी (सेडिमेंट्री) शैल एवं कायांतरित (मेटामोरफिक) शैल।

द्रवित मैग्मा ठंडा होकर ठोस हो जाता है। इस प्रकार बने शैल को आग्नेय शैल कहते हैं। इन्हें प्राथमिक शैल भी कहते हैं। आग्नेय शैल दो प्रकार की होती हैं : अंतर्भेदी शैल एवं बर्हिभेदी शैल।

क्या आप ज्वालामुखी से निकलने वाले लावा की कल्पना कर सकते हैं? वास्तव में आग की तरह लाल द्रवित मैग्मा ही लावा है जो पृथ्वी के आंतरिक भाग से निकलकर सतह पर आता है। जब द्रवित लावा पृथ्वी की सतह पर आता है, यह तेजी से ठंडा होकर ठोस बन जाता है। पर्पटी पर इस प्रकार से बने शैल को बर्हि भेदी आग्नेय शैल कहते हैं। इनकी संरचना बहुत महीन दानों वाली होती है। उदाहरण के लिए बेसाल्ट। दक्कन पठार बेसाल्ट शैलों से ही बना है। द्रवित मैग्मा कभी-कभी भू-पर्पटी के अंदर गहराई में ही ठंडा हो जाता है। इस प्रकार बने ठोस शैलों को अंतर्भेदी आग्नेय शैल कहते हैं। धीरे-धीरे ठंडा होने के कारण ये बड़े दानों का रूप ले लेते हैं। ग्रेनाइट ऐसे ही शैल का एक उदाहरण है। लेई मसालों तथा दानों का चूर्ण बनाने के लिए जिन अपघर्षण पत्थरों का उपयोग होता है वे ग्रेनाइट के बने होते हैं।

टूट शैल लुढ़ककर, चटककर तथा एक-दूसरे से टकराकर छोटे-छोटे टुकड़ों में जाती हैं। इन छोटे कणों को अवसाद कहते हैं। ये अवसाद हवा, जल आदि के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाकर, जमा कर दिए जाते हैं। ये अदृढ़ अवसाद दबकर एवं कठोर होकर शैल की परत बनाते हैं। इस प्रकार की शैलों को अवसादी शैल कहते है। उदाहरण के लिए, बलुआ पत्थर, रेत के दानों से बनता है। इन शैलों में पौधों, जानवरों एवं

अन्य सूक्ष्म जीवाणुओं, जो कभी इन शैलों पर रहे हैं, के जीवाश्म भी हो सकते हैं।

आग्नेय एवं अवसादी शैल उच्च ताप एवं दाब के कारण कायांतरित शैलों में परिवर्तित हो सकती हैं । उदाहरण के लिए, चिकनी मिट्टी स्लेट में एवं चूना पत्थर संगमरमर में परिवर्तित हो जाता है।

शैल हमारे लिए बहुत उपयोगी हैं। कठोर शैलों का उपयोग सड़क, घर एवं इमारत बनाने के लिए किया जाता है। आप पत्थरों का उपयोग कई खेलों में करते हैं। उदाहरण के लिए, सात पत्थर (पिट्ठू), चिबिड्डी (स्टापू या किट-किट), पाँच पत्थर (गिट्टी), आदि। आप अपने दादा-दादी. माता-पिता, पड़ोसियों आदि से पूछकर कुछ अन्य खेलों की जानकारी प्राप्त करें।

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि किन्हीं निश्चित दशाओं में एक प्रकार की शैल चक्रीय तरीके से एक-दूसरे में परिवर्तित हो जाते हैं। एक शैल से दूसरे शैल में परिवर्तन होने की इस प्रक्रिया को शैल चक्र कहते हैं। आप जानते हैं कि द्रवित मैग्मा ठंडा होकर ठोस आग्नेय शैल बन जाता है। ये आग्नेय शैल छोटे-छोटे टुकड़ों में टूटकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित होकर अवसादी शैल का निर्माण करते हैं। ताप एवं दाब के कारण ये आग्नेय एवं अवसादी शैल कायांतरित शैल में बदल जाते हैं। अत्यधिक ताप एवं दाब के कारण कायांतरित शैल पुनः पिघलकर द्रवित मैग्मा बन जाती है। यह द्रवित मैग्मा पुनः ठंडा होकर ठोस आग्नेय शैल में परिवर्तित हो जाता है (चित्र 2.4)।



शैल विभिन्न खनिजों से बनी होती हैं। खनिज प्राकृतिक रूप में पाए जाने वाले पदार्थ हैं जिनका निश्चित भौतिक गुणधर्म एवं निश्चित रासायनिक मिश्रण होता है। खनिज मानव जाति के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ का उपयोग ईंधन की तरह होता है जैसे कोयला, प्राकृतिक गैस एवं पेट्रोलियम। इनका उपयोग उद्योगों, औषधि एवं उर्वरक में भी होता है जैसे-लोहा, एल्यूमिनियम, सोना, यूरेनियम, आदि।

नाम (रूपांतरित शैला)	श्रोत (मूल शैला)	भारत में कुछ प्रमुख अवस्थिथियाँ	प्राप्ति स्थल (उदाहरण)
संगमरमर	चूना पत्थर	राजस्थान, मध्य प्रदेश	मकराना, अलवर, जयपुर (राजस्थान)
स्लेट	शेल	उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, अरावली	पिथौरागढ़, शिमला, अरावली क्षेत्र
क्वार्टजाइट	बलुआ पत्थर	दिल्ली, झारखंड, मध्य प्रदेश	किला राय पिथौरा (दिल्ली), डालटनगंज (झारखंड)
गिनाइस	ग्रेनाइट	बुंदेलखंड, झारखंड, दक्षिण भारत	बांदा (उ.प्र.), रांची (झारखंड), मैसूर (कर्नाटक)
शिस्ट	शेल (Shale)	अरावली, नीलगिरी, सतपुड़ा, विंध्याचल	उदयपुर, कोडैकनाल, पचमढ़ी क्षेत्र
ग्रेफाइट	कोयला	पूर्वोत्तर भारत, झारखंड	लोहरदगा (झारखंड), ईटानगर (अरुणाचल), शोपियां (J&K)
एंथ्रेसाइट	पीट या निम्न कोटि का कोयला	झारखंड, मेघालय, नागालैंड	दुमका (झारखंड), गारो पहाड़ियाँ (मेघालय)
नाइस	ग्रेनाइट + अन्य चट्टानें	छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र	बस्तर (छत्तीसगढ़), पुणे क्षेत्र

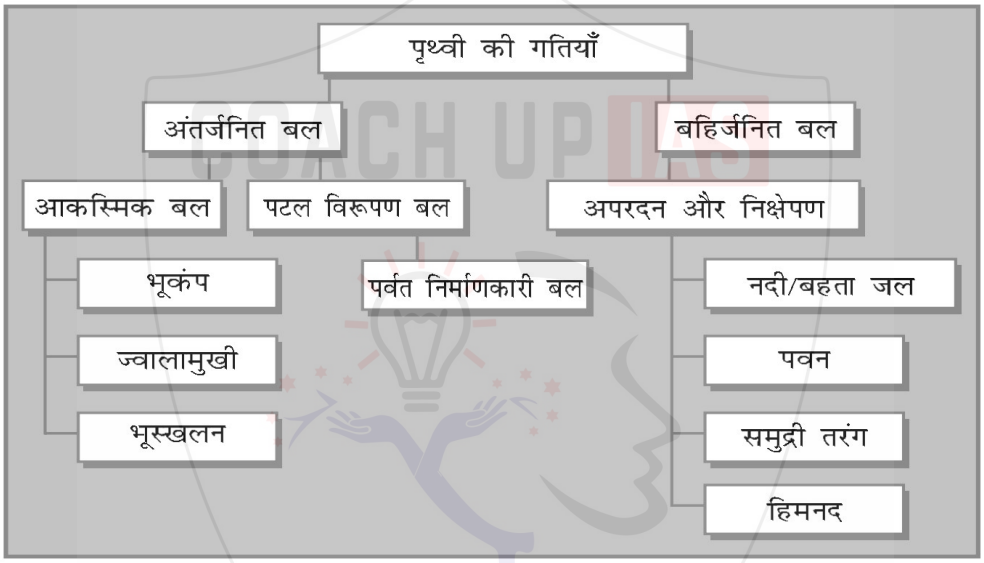
विशेषता	आग्नेय शैल (Igneous Rocks)	अवसादी शैल (Sedimentary Rocks)	रूपांतरित शैल (Metamorphic Rocks)
परिभाषा	मैग्मा या लावा के ठंडा होकर कठोर होने से बनी पहली शैलें	पूर्ववर्ती शैलों के अवसादों से बनी परतदार शैलें	आग्नेय या अवसादी शैलों के ताप, दाब या रासायनिक क्रिया से परिवर्तित शैलें
उद्भव प्रक्रिया	ज्वालामुखीय गतिविधियों से	जल, पवन, हिम आदि से अपरदन व जमाव	अत्यधिक ताप व दाब द्वारा मूल शैलों में संरचनात्मक परिवर्तन
संरचना	क्रिस्टलीय, सघन, बिना परतों के	परतदार, दानेदार, सघन या छिद्रयुक्त	कठोर, कभी-कभी परतदार, तरंग जैसी संरचना
जीवाश्म की उपस्थिति	नहीं पाई जाती	आमतौर पर पाई जाती है	ताप-दाब से जीवाश्म नष्ट हो जाते हैं
परतबद्धता	अनुपस्थित	स्पष्ट रूप से विद्यमान	आंशिक या अस्पष्ट
कठोरता	सामान्यतः अत्यंत कठोर	अपेक्षाकृत कम कठोर	अत्यधिक कठोर
मुख्य खनिज	फेल्सपार, क्वार्ट्ज, मैग्नेटाइट	कैल्साइट, डोलोमाइट, सिलिका	टैल्क, गार्नेट, मिक्का
उदाहरण	ग्रेनाइट, बेसाल्ट, गैब्रो	बलुआ पत्थर, शेल, चूना पत्थर, कोयला	संगमरमर, स्लेट, गिनाइस, शिस्ट
भारत में प्रमुख अवस्थिति	- दक्कन ट्रैप (महाराष्ट्र) - कर्नाटक, झारखंड, तेलंगाना	- पंजाब, राजस्थान, बिहार, उत्तरप्रदेश के मैदान - सिंधु-गंगा तट	- अरावली पर्वतमाला - बुंदेलखंड - नीलगिरि, उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्र
प्रयोग/उपयोग	सड़क निर्माण, भवन, मूर्तिकला, टाइलें	कोयला, पेट्रोलियम, जलाशय, सीमेंट उद्योग	सजावटी पत्थर, भवनों की दीवार/फर्श, पॉलिश सामग्री

परत का नाम	वर्गीकरण	गहराई/मोटाई	P तरंग गति (km/s)	S तरंग गति (km/s)	औसत घनत्व (kg/m³)	भौतिक व्यवहार
क्रस्ट (Crust)	रासायनिक	5–70 किमी	6–7	3.5–4	2700–3000	ठोस, पतली और सबसे ऊपरी परत
मैंटल (Mantle)	रासायनिक	70–2900 किमी	8–13	4.5–7.5	3300–5600	ऊपरी भाग अर्ध-तरल, निचला भाग ठोस
कोर (Core)	रासायनिक	2900–6371 किमी	बाह्य: 8–10 आंतरिक: 11	बाह्य: ✕ आंतरिक: ~4	बाह्य: 9900 आंतरिक: 13000	बाह्य: तरल, आंतरिक: ठोस
लिथोस्फीयर	यांत्रिक	0–100 किमी	~6–8	~3–4	2800–3300	कठोर प्लेट, भूकंपीय प्लेटों का आधार
एस्थेनोस्फीयर	यांत्रिक	100–400 किमी	धीमी (~7)	धीमी/कमज़ोर	3300–4000	अर्ध-तरल, बहने योग्य, प्लेटों की गति में सहायक
मेसोस्फीयर (निचला मैंटल)	यांत्रिक	400–2900 किमी	~13	~7.5	4500–5600	कठोर, अत्यधिक दबावयुक्त
बाह्य कोर (Outer Core)	यांत्रिक	2900–5150 किमी	~8–10	✕(नहीं संचरित)	~9900	तरल, यही पृथ्वी का चुंबकीय क्षेत्र उत्पन्न करता है
आंतरिक कोर (Inner Core)	यांत्रिक	5150–6371 किमी	~11	~4	~13000	अत्यधिक ताप व दाब में ठोस रूप

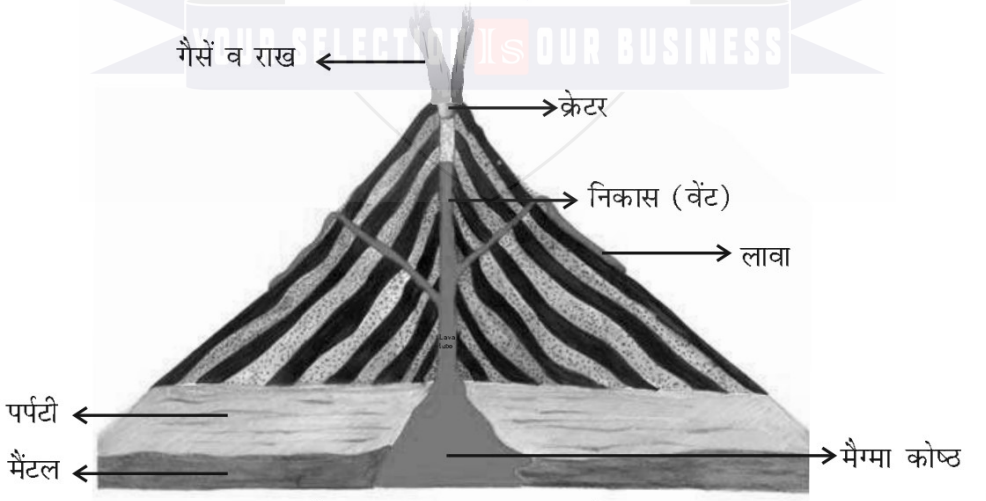
हमारी बदलती पृथ्वी

स्थलमंडल अनेक प्लेटों में विभाजित है, जिन्हें स्थलमंडलीय प्लेट कहते हैं। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि ये प्लेट हमेशा धीमी गति से चारों तरफ घूमती रहती हैं-प्रत्येक वर्ष केवल कुछ मिलीमीटर के लगभग। पृथ्वी के अंदर पिघले हुए मैग्मा में होने वाली गति के कारण ऐसा होता है। पृथ्वी के अंदर पिघला हुआ मैग्मा एक वृत्तीय रूप में घूमता रहता है. जैसा कि क्रियाकलाप में दिखाया गया है।

प्लेट की इस गति के कारण पृथ्वी की सतह पर परिवर्तन होता है। पृथ्वी की गति को उन बलों के आधार पर विभाजित किया गया है जिनके कारण ये गतियाँ उत्पन्न होती हैं। जो बल पृथ्वी के आआंतरिक भाग में घटित होते हैं उन्हें अंतर्जनित बल (एंडोजेनिक फोर्स) कहते हैं एवं जो बल पृथ्वी की सतह पर उत्पन्न होते हैं उन्हें बहिर्जनिक बल (एक्सोजेनिक फोर्स) कहते हैं (चित्र 3.1)। अंतर्जनित बल कभी आकस्मिक गति उत्पन्न करते हैं, तो कभी धीमी गति। भूकंप एवं ज्वालामुखी जैसी आकस्मिक गति के कारण पृथ्वी की सतह पर अत्यधिक हानि होती है।



ज्वालामुखी भू-पर्पटी पर खुला एक ऐसा छिद्र होता है, जिससे पिघले हुए पदार्थ अचानक निकलते हैं।



चित्र 3.2 : एक ज्वालामुखी

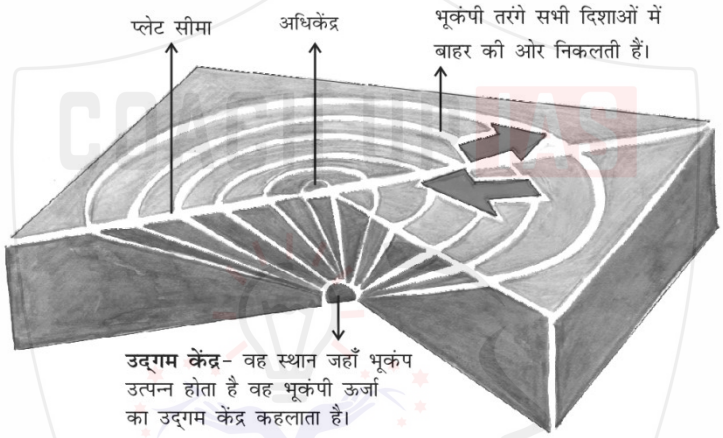
इसी प्रकार. स्थलमंडलीय प्लेटों के गति करने पर पृथ्वी की सतह पर कंपन होता है। यह कंपन पृथ्वी के चारों ओर गति कर सकता है। इस कंपन को भूकंप कहते हैं (चित्र 3.3)। भू-पर्पटी के नीचे वह स्थान जहाँ कंपन आरंभ होता है. उद्गम केंद्र कहलाता है। उद्गम केंद्र के भूसतह पर उसके निकटतम स्थान को अधिकेंद्र कहते हैं। अधिकेंद्र से कंपन बाहर की ओर तरंगों के रूप में गमन करती हैं। अधिकेंद्र के निकटतम भाग में सर्वाधिक हानि होती है एवं अधिकेंद्र से दूरी बढ़ने के साथ भूकंप की तीव्रता धीरे-धीरे कम होती जाती है।

Note:-

भूकंपीय तरंगे तीन प्रकार की होती हैं-

- पी तरंगें अथवा अनुदैर्ध्य तरंगें
- एस तरंगे अथवा अनुप्रस्थ तरंगे
- एल तरंगें अथवा पृष्ठीय तरंगें

इन तरंगों के गुणधर्म विश्वकोश से ज्ञात करने का प्रयास कीजिए।



चित्र 3.3 : एक भूकंप की उत्पत्ति

यद्यपि, भूकंप की भविष्यवाणी संभव नहीं, लेकिन यदि हम पहले से तैयार हों, तो इसके प्रभाव को निश्चित रूप से कम किया जा सकता है।
स्थानीय लोग कुछ सामान्य तरीकों से भूकंप की संभावना का अनुमान लगाते हैं, जैसे-जानवरों के व्यवहार का अध्ययन, तालाब में मछलियों की उत्तेजना, साँपों का धरातल पर आना।

भूकंप– एक वस्तुस्थिति अध्ययन

1 भुज में भूकंप के झटके

26 जनवरी 2001 को भुज शहर में रिक्टर स्केल पर 6.9 की तीव्रता वाला भीषण भूकंप।

2 *स्कूल सर्वाधिक प्रभावित*

स्कूलों की इमारतें गिरने से कम से कम 971 छात्रों एवं 31 शिक्षकों की मौत की आशंका है।

3 भुज में निराशाजनक राहत

भूकंप के तीन दिन बाद भी हर व्यक्ति तक भोजन, कंबल दवाएँ आदि न पहुँचने के कारण हालत चिंताजनक।

4 *भुज की तबाही*

फोन लाइनें, जल पाइप लाइनें, विद्युत स्टेशन एवं संचार लाइनें सभी अवरोधित हो गये।

5 शहर में आग

चारकोल एवं अँगीठियों के पलटने के कारण अनेक स्थानों पर आग।

6 *भूकंप प्रभावित क्षेत्र में आपातकाल की घोषणा*

राष्ट्रपति ने आपातकालीन स्थिति की घोषणा की।

7 मुख्यमंत्री की केंद्र से अपील

गुजरात सरकार ने इस संकट का सामना करने के लिए केंद्र से वित्तीय सहायता माँगी है।

Note :-

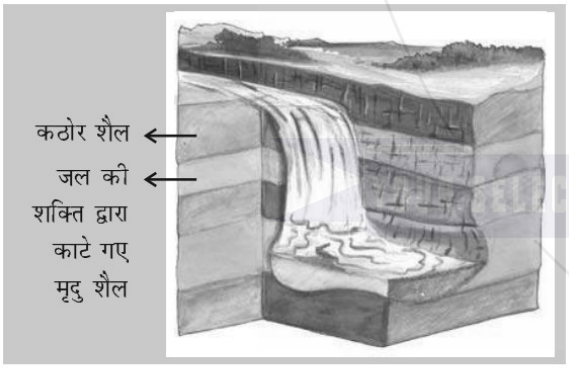
भूकंप का मापन एक यंत्र से किया जाता है, जिसे भूकंपलेखी कहते हैं। भूकंप की तीव्रता रिक्टर स्केल पर मापी जाती है। जिस भूकंप की तीव्रता 2.0 अथवा उससे कम होती है, उसका प्रभाव नहीं के बराबर होता है। जिस भूकंप की तीव्रता 5.0 होती है, वह वस्तुओं के गिरने से क्षति पहुँचा सकता है। जिस भूकंप की तीव्रता 6.0 अथवा उससे अधिक होती है, वह बहुत शक्तिशाली और जिसकी तीव्रता 7.0 अथवा अधिक होती है, वह सर्वाधिक शक्तिशाली समझा जाता है।

मुख्य स्थलाकृतियाँ

अपक्षय एवं अपरदन नामक दो प्रक्रमों द्वारा दृश्यभूमि लगातार विघटित होती रहती है। पृथ्वी की सतह पर शैलों के टूटने से अपक्षय की क्रिया होती है। भू-दृश्य पर जल, पवन एवं हिम जैसे विभिन्न घटकों के द्वारा होने वाले क्षय को अपरदन कहते हैं। वायु, जल आदि अपरदित पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं. और फलस्वरूप एक स्थान पर निक्षेपित करते हैं। अपरदन एवं निक्षेपण के ये प्रक्रम पृथ्वी के धरातल पर विभिन्न स्थलाकृतियों का निर्माण करते हैं।

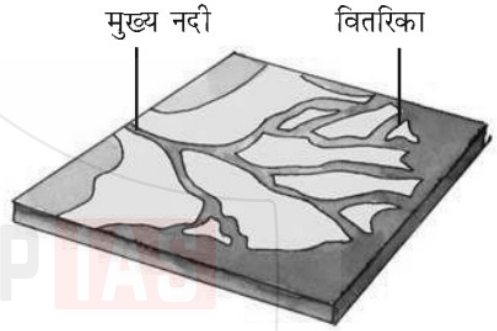
नदी के कार्य

नदी के जल से दृश्य भूमि का अपरदन होता है। जब नदी किसी खड़े ढाल वाले स्थान से अत्यधिक कठोर शैल या खड़े ढाल वाली घाटी में गिरती है. तो यह जलप्रपात बनाती है (चित्र 3.5)।

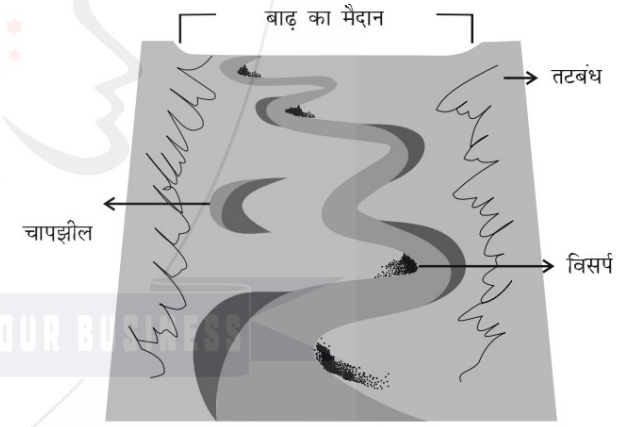


चित्र 3.5 : एक जलप्रपात

जब नदी मैदानी क्षेत्र में प्रवेश करती है, तो वह मोड़दार मार्ग पर बहने लगती है। नदी के इन्हीं बड़े मोड़ों को विसर्प कहते हैं। इसके बाद विसर्पों के किनारों पर लगातार अपरदन एवं निक्षेपण शुरू हो जाता है। विसर्प लूप के सिरे निकट आते जाते हैं। समय के साथ विसर्प लूप नदी से कट जाते हैं और एक अलग झील बनाते हैं, जिसे चापझील भी कहते हैं। कभी-कभी नदी अपने तटों से बाहर बहने लगती है। फलस्वरूप निकटवर्ती क्षेत्रों में बाढ़ आ जाती है। बाढ़ के कारण नदी के तटों के निकटवर्ती क्षेत्रों में महीन मिट्टी एवं अन्य पदार्थों का निक्षेपण करती है। ऐसी मिट्टी एवं पदार्थों को अवसाद कहते हैं। इससे समतल उपजाऊ बाढ़कृत मैदान का निर्माण होता है। नदी के उत्थित तटों को तटबंध कहते हैं। समुद्र तक पहुँचते-पहुँचते नदी का प्रवाह धीमा हो जाता है तथा नदी अनेक धाराओं में विभाजित हो जाती है, जिनको वितरिका कहा जाता है। यहाँ नदी इतनी धीमी हो जाती है कि यह अपने साथ लाए मलबे का निक्षेपण करने लगती है। प्रत्येक वितरिका अपने मुहाने का निर्माण करती है। सभी मुहानों के अवसादों के संग्रह से डेल्टा का निर्माण होता है (चित्र 3.7)।



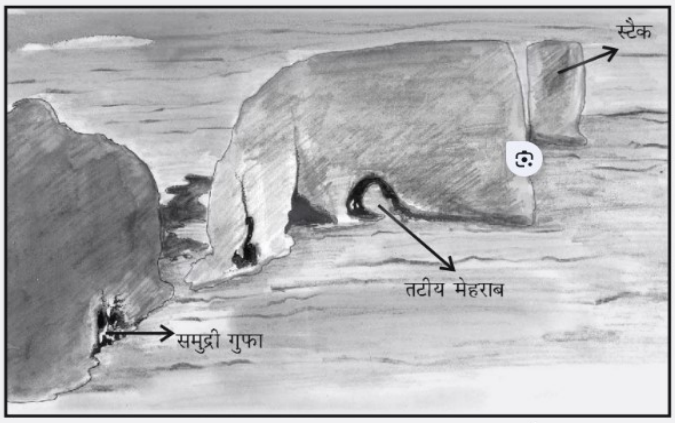
चित्र 3.7 : डेल्टा



चित्र 3.6 : बाढ़कृत मैदान में नदी द्वारा निर्मित स्थलाकृतियाँ

समुद्री तरंग के कार्य

समुद्री तरंग के अपरदन एवं निक्षेपण तटीय स्थलाकृतियाँ बनाते हैं। समुद्री तरंगें लगातार शैलों से टकराती रहती हैं, जिससे दरार विकसित होती है। समय के साथ ये बड़ी और चौड़ी होती जाती हैं। इनको समुद्री गुफा कहते हैं। इन गुफाओं के बड़े होते जाने पर इनमें केवल छत ही बचती है, जिससे तटीय मेहराब बनते हैं। लगातार अपरदन छत को भी तोड़ देता है और केवल दीवारें बचती हैं। दीवार जैसी इन आकृतियों को स्टैक कहते हैं। समुद्री जल के ऊपर लगभग ऊर्ध्वाधर उठे हुए



चित्र 3.8 : समुद्री तरंगों द्वारा निर्मित स्थलाकृतियाँ

ऊँचे शैलीय तटों को समुद्र भृगु कहते हैं। समुद्री तरंगें किनारों पर अवसाद जमा कर समुद्री पुलिन का निर्माण करती हैं।

हिमनद के कार्य

हिमनद अथवा हिमानी बर्फ़ की नदियाँ होती हैं। हिमनद अपने नीचे की कठोर चट्टानों से गोलाश्मी मिट्टी और पत्थरों को अपरदित कर देती है और गोलाश्मी मिट्टी एवं पत्थरों से भूदृश्य का अपरदन करती है। हिमनद गहरे गर्तों का निर्माण करते हैं। पर्वतीय क्षेत्र में बर्फ पिघलने से उन गर्तों में जल भर जाता है और वे सुंदर झील बन जाते हैं। हिमनद के द्वारा लाए गए पदार्थ, जैसे-छोटे-बड़े शैल, रेत एवं तलछट मिट्टी निक्षेपित होते हैं। ये निक्षेप हिमनद हिमोढ़ का निर्माण करते हैं।



चित्र 3.9 : हिमनद

पवन के कार्य

रेगिस्तान में पवन, अपरदन एवं निक्षेपण का प्रमुख कारक है। रेगिस्तान में आप छत्रक के आकार के शैल देख सकते है, जिन्हें सामान्यतः छत्रक शैल कहते हैं। पवन शैल के ऊपरी भाग की अपेक्षा निचले भाग को आसानी से काटती है। इसलिए ऐसी शैल के आधार संकीर्ण एवं शीर्ष विस्तृत होते हैं। पवन चलने पर, यह अपने साथ रेत को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाती है। जब पवन का बहाव रुकता है तो यह रेत गिरकर छोटी पहाड़ी बनाती है। इनको बालू टिब्बा कहते हैं (चित्र 3.10)। जब बालू कण महीन एवं हल्के होते हैं, तो वायु उनको उठाकर अत्यधिक दूर ले जा सकती है। जब ये बालू कण विस्तृत क्षेत्र में निक्षेपित हो जाते है, तो इसे लोएस कहते हैं। चीन में विशाल लोएस निक्षेप पाए जाते हैं।

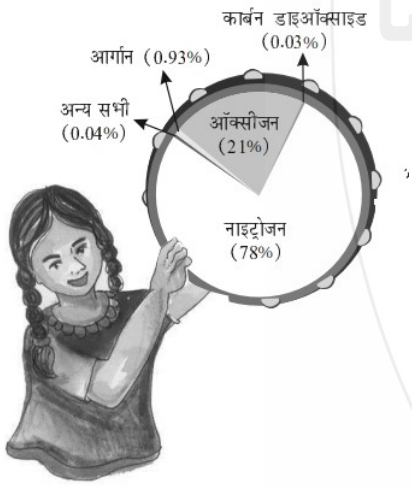
COACH UP IAS
YOUR SATISFACTION IS OUR BUSINESS

वायु

हमारी पृथ्वी चारों ओर से वायु की घनी चादर से घिरी हुई है, जिसे वायुमंडल कहते हैं। पृथ्वी पर सभी जीव जीवित रहने के लिए वायुमंडल पर निर्भर हैं।

वायुमंडल का संघटन

क्या आप जानते हैं कि जिस वायु का उपयोग हम साँस लेने के लिए करते हैं, वास्तव में वह अनेक गैसों का मिश्रण होती है? नाइट्रोजन तथा ऑक्सीजन ऐसी दो गैसें हैं, जिनसे वायुमंडल का बड़ा भाग बना है। कार्बन डाइऑक्साइड, हीलियम, ओजोन, आर्गान एवं हाइड्रोजन कम मात्रा में पाई जाती हैं। इन गैसों के अलावा धूल के छोटे-छोटे कण भी हवा में मौजूद होते हैं। चित्र 4.1 में वृत्तारेख दिया गया है, जिसमें वायु के विभिन्न संघटकों के प्रतिशत दर्शाए गए हैं।



चित्र 4.1 : वायु के संघटक

नाइट्रोजन, वायु में सर्वाधिक पाई जाने वाली गैस है। जब हम साँस लेते हैं तब फेफड़ों में कुछ नाइट्रोजन भी ले जाते हैं और फिर उसे बाहर निकाल देते हैं। परंतु पौधों को अपने जीवन के लिए नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। वे सीधे वायु से नाइट्रोजन नहीं ले पाते। मृदा तथा कुछ पौधों की जड़ों में रहने वाले जीवाणु वायु से नाइट्रोजन लेकर इसका स्वरूप बदल देते हैं, जिससे पौधे इसका प्रयोग कर सकें।

ऑक्सीजन वायु में प्रचुरता से मिलने वाली दूसरी गैस है। मनुष्य तथा पशु साँस लेने में वायु से ऑक्सीजन प्राप्त करते हैं। हरे पादप, प्रकाश संश्लेषण द्वारा ऑक्सीजन उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार वायु में ऑक्सीजन की मात्रा समान बनी रहती है। यदि हम वृक्ष काटते हैं तो यह संतुलन बिगड़ जाता है।

कार्बन डाइऑक्साइड अन्य महत्त्वपूर्ण गैस है। हरे पादप अपने भोजन के रूप में कार्बन डाइऑक्साइड का प्रयोग करते हैं और ऑक्सीजन वापस देते हैं। मनुष्य और पशु कार्बन डाइऑक्साइड बाहर निकालते हैं। मनुष्यों तथा पशुओं द्वारा बाहर छोड़ी जाने वाली कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा पादपों द्वारा प्रयोग की जाने वाली गैस के बराबर होती है, जिससे यह संतुलन बना रहता है। परंतु यह संतुलन कोयला तथा खनिज तेल आदि ईंधनों के जलाने से गड़बड़ा जाता है। वे वायुमंडल में प्रतिवर्ष करोड़ों टन कार्बन डाइऑक्साइड की बढ़ोतरी करते हैं। परिणामस्वरूप कार्बन डाइऑक्साइड का बढ़ा हुआ आयतन पृथ्वी पर मौसम तथा जलवायु को प्रभावित करता है।

वायुमंडल की संरचना

हमारा वायुमंडल पाँच परतों में विभाजित है. जो पृथ्वी की सतह से आरंभ होती है। ये है श्रोभमंडल, समतापमंडल, मध्यमंडल, वाह्य वायुमंडल एव बहिमंडल

क्षोभमंडल : यह परत वायुमंडल की सबसे महत्त्वपूर्ण परत है। इसकी औसत ऊँचाई 13 किलोमीटर है। हम इसी मंडल में मौजूद वायु में साँस लेते हैं। मौसम की लगभग सभी घटनाएँ जैसे-वर्षा, कुहरा एवं ओलावर्षण इसी परत के अंदर होती हैं।

समतापमंडल क्षोभमडल के ऊपर का भाग समताप मंडल कहलाता है। यह लगभग 50 किलोमीटर की ऊँचाई तक फैला है। यह परत बादलों एवं मौसम सबधी घटनाओं से लगभग मुक्त होती है। इसके फलस्वरूप यहाँ की परिस्थितियाँ हवाई जहाज उडाने के लिए आदर्श होती हैं। समताप मंडल की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें ओजोन गैस की परत होती है। यह परत सूर्य से आने वाली हानिकारक गैसों से हमारी रक्षा करती है।

मध्यमंडल : यह वायुमंडल की तीसरी परत है। यह समताप मंडल के ठीक ऊपर होती है। यह लगभग 80 किलोमीटर की ऊँचाई तक फैली है। अंतरिक्ष से प्रवेश करने वाले उल्का पिड इस परत में आने पर जल जाते हैं।

बाह्य वायुमंडल: बाह्य वायुमंडल में बढ़ती ऊँचाई के साथ तापमान अत्यधिक तीव्रता से बढ़ता है। आयन मंडल इस परत का एक भाग है। यह 80 से 400 किलोमीटर तक फैला है। रेडियो संचार के लिए इस परत का उपयोग होता है। वास्तव में पृथ्वी से प्रसारित रेडियो तरंगे इस परत द्वारा पुनः पृथ्वी पर परावर्तित कर दी जाती है।

बहिमंडल वायुमंडल की सबसे ऊपरी परत को बहिर्मडल के नाम से जाना जाता है। यह वायु को पतली परत होती है। हल्की गैसें जैसे हीलियम एवं हाइड्रोजन यही से अंतरिक्ष में तैरती रहती है।

मौसम एवं जलवायु

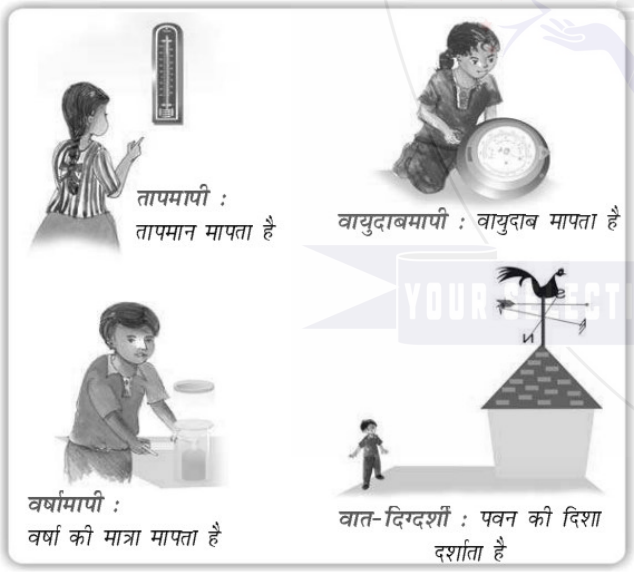
"क्या आज वर्षा होगी?" "क्या आज दिन साफ़ होगा और धूप निकलेगी?" कितनी ही बार हमने क्रिकेट प्रेमियों के मुँह से एकदिवसीय मैच के भविष्य पर अनुमान लगाते सुना होगा? यदि हम कल्पना करें कि हमारा शरीर एक रेडियो है और मस्तिष्क उसके स्पीकर, तो मौसम वह है जो इसके नियंत्रण बटनों से छेड़छाड़ करता रहता है। मौसम. वायुमंडल की प्रत्येक घंटे तथा दिन-प्रतिदिन की स्थिति होती है। आर्द्र एवं गर्म मौसम किसी को भी चिड़चिड़ा बना सकता है। अच्छा. हवादार मौसम हमें आनंद देता है और हम घूमने की योजना भी बना सकते हैं। मौसम नाटकीय रूप से दिन-प्रतिदिन बदलता है। किंतु दीर्घ काल में किसी स्थान का औसत मौसम. उस स्थान की जलवायु बताता है। क्या अब आप समझ गए कि हम मौसम का दैनिक पूर्वानुमान क्यों करते हैं?

तापमान

आप प्रतिदिन जिस तापमान का अनुभव करते हैं. वह वायुमंडल का तापमान होता है। वायु में मौजूद ताप एवं शीतलता के परिमाण को तापमान कहते हैं।

वायुमंडल का तापमान केवल दिन और रात में ही नहीं बदलता बल्कि ऋतुओं के अनुसार भी बदलता है। शीत ऋतु की अपेक्षा ग्रीष्म ऋतु ज्यादा गर्म होती है।

आतपन एक महत्त्वपूर्ण कारक है. जो तापमान के वितरण को प्रभावित करता है। सूर्य से आने वाली वह ऊजां जिसे पृथ्वी रोक लेती है. आतपन कहलाती है।



चित्र 4.3 : मौसम की जानकारी के लिए यंत्र

आतपन (सूर्यातप) की मात्रा भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर घटती है। इसलिए तापमान उसी प्रकार घटता जाता है। क्या अब आप समझ गए होंगे कि ध्रुव बर्फ़ से क्यों ढंके हुए हैं? यदि पृथ्वी का तापमान अत्यधिक बढ़ जाता है तो यह इतनी गर्म हो जाएगी कि यहाँ कुछ फ़सलें नहीं उग सकेंगी। गाँवों की अपेक्षा नगरों का तापमान बहुत अधिक होता है। दिन के समय में ऐसाफेल्ट से बनी सड़कें एवं धातु और कंक्रीट से बने भवन गर्म हो जाते हैं। रात के समय यह ऊष्मा मुक्त हो जाती है।

नगर के भीड़ वाले ऊँचे भवन गर्म वायु को रोक लेते हैं, जिससे नगरों का तापमान बढ़ जाता है।

वायु दाब

यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि वायु हमारे शरीर पर उच्च दाब के साथ बल लगाती है। किंतु हम इसका अनुभव नहीं करते हैं। यह इसलिए होता है, क्योंकि वायु का दाब हमारे ऊपर सभी दिशाओं से लगता है, और हमारा शरीर विपरीत बल लगाता है।

पृथ्वी की सतह पर वायु के भार द्वारा लगाया गया दाब, वायु दाब कहलाता है। वायुमंडल में ऊपर की ओर जाने पर दाब तेज़ी से गिरने लगता है। समुद्र स्तर पर वायु दाब सर्वाधिक होता है और ऊँचाई पर जाने पर यह घटता जाता है। वायु दाब का क्षैतिज वितरण किसी स्थान पर उपस्थित वायु के ताप द्वारा प्रभावित होता है। अधिक तापमान वाले क्षेत्रों में वायु गर्म होकर ऊपर उठती है। यह निम्न दाब क्षेत्र बनाता है। निम्न दाब, बादलयुक्त आकाश एवं नम मौसम के साथ जुड़ा होता है।

कम तापमान वाले क्षेत्रों की वायु ठंडी होती है। इसके फलस्वरूप यह भारी होती है। भारी वायु निमज्जित होकर उच्च दाब क्षेत्र बनाती है। उच्च दाब के कारण स्पष्ट एवं स्वच्छ आकाश होता है।

नोट - तापमान को मापने की मानक इकाई डिग्री सेल्सियस है।

इस का आविष्कार ऐंडर्स सेल्सियस ने किया था। सेल्सियस पैमाने पर जल 0° सेल्सियस पर जमता है एवं 100° सेल्सियस पर उबलता है।

वायु सदैव उच्च दाब क्षेत्र से निम्न दाब क्षेत्र की ओर गमन करती है।

पवन

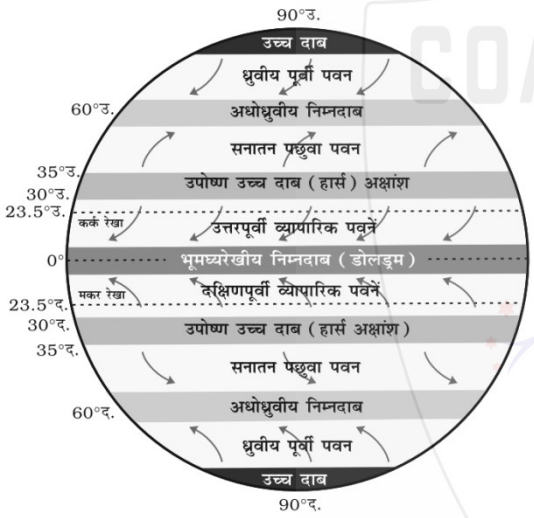
उच्च दाब क्षेत्र से निम्न दाब क्षेत्र की ओर वायु की गति को 'पवन' कहते हैं। आप पवन को काम करते देख सकते हैं। जब यह सड़क पर गिरी पत्तियों को उड़ाती अथवा तूफ़ान के समय पेड़ों को उखाड़ देती है। कभी-कभी जब पवन धीरे बहती है, तो आप इसे महीन धूल या धुएँ को उड़ाते देख सकते हैं। कभी-कभी पवन इतनी तेज़ होती है कि इसके विपरीत दिशा में चलना कठिन हो जाता है। आपने अवश्य अनुभव किया होगा कि तेज़ पवन में छाता लेकर चलना आसान नहीं है। तीन अन्य उदाहरण सोचिए, जब तेज़ पवन के कारण आपके लिए समस्या उत्पन्न हुई हो। पवन को मुख्यतः तीन प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है।

पवन का नाम उसके आने की दिशा के आधार पर निर्धारित होता है। उदाहरण के लिए-पश्चिम से आने वाली पवन को पश्चिमी (पछुवा) पवन कहते हैं।

1. स्थायी पवनें : व्यापारिक पश्चिमी एवं पूर्वी पवनें स्थायी पवनें हैं। ये वर्षभर लगातार निश्चित दिशा में चलती रहती हैं।

2. मौसमी पवनें: ये पवनें विभिन्न ऋतुओं में अपनी दिशा बदलती रहती हैं। उदाहरण के लिए-भारत में मानसूनी पवनें।

3. स्थानीय पवनें ये पवनें किसी छोटे क्षेत्र में वर्ष या दिन के किसी विशेष समय में चलती हैं। उदाहरण के लिए-स्थल एवं समुद्री समीर। क्या आपको भारत के उत्तरी क्षेत्र की गर्म एवं शुष्क स्थानीय पवन याद हैं? इसे 'लू' कहते हैं।



चित्र 4.4 : प्रमुख वायुदाब पेटियाँ

आर्द्रता

जब जल पृथ्वी एवं विभिन्न जलाशयों से वाष्पित होता है. तो यह जलवाष्प वन जाता है। वायु में किसी भी समय जलवाष्प की मात्रा को 'आर्द्रता' कहते हैं। जब वायु में जलवाष्प की मात्रा अत्यधिक होती है, तो उसे हम आर्द्र दिन कहते हैं। जैसे-जैसे वायु गर्म होती जाती है. इसकी जलवाष्प धारण करने की क्षमता बढ़ती जाती है और इस प्रकार यह और अधिक आई हो जाती है। आर्द्र दिन में. कपड़े सूखने में काफ़ी समय लगता है एवं हमारे शरीर से पसीना आसानी से नहीं सूखता और हम असहज महसूस करते हैं।

जब जलवाष्प ऊपर उठता है. तो यह ठंडा होना शुरू हो जाता है। जलवाष्प संघनित होकर ठंडा होकर जल की बूंद बनाते हैं। बादल इन्हीं जल बूँदों का ही एक समूह होता है। जब जल की ये बूँदें इतनी भारी हो जाती हैं कि वायु में तैर न सकें. तब ये वर्षण के रूप में नीचे आ जाती हैं।

आकाश में उड़ते हुए जेट हवाई जहाज़ अपने पीछे सफ़ेद पथ चिह्न छोड़ते हैं। इनके इंजनों से निकली नमी संघनित हो जाती है। वायु के गतिमान न रहने की स्थिति में यह संघनित नमी कुछ देर तक पथ के रूप में दिखाई देती है।

पृथ्वी पर जल के रूप में गिरने वाला वर्षण, वर्षा कहलाता है। ज्यादातर भौम जल. वर्षा जल से ही प्राप्त होता है। पौधे जल संरक्षण में मदद करते हैं। जब पहाड़ी पार्श्वों से पेड़ काटे जाते हैं. वर्षा जल अनावृत पहाड़ों से नीचे बहता है एवं निचले इलाकों में बाढ़ का कारण बनता है। क्रियाविधि आधार पर वर्षा के तीन प्रकार होते हैं: संवहनी वर्षा, पर्वतीय वर्षा एवं चक्रवाती वर्षा।



चित्र 4.5 : वर्षा के प्रकार

पौधों तथा जीव-जंतुओं के जीवित रहने के लिए वर्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है। इससे धरातल को ताजा जल प्रदान होता है। यदि वर्षा कम हो. तो जल की कमी तथा सूखा हो जाता है। इसके विपरीत अगर वर्षा अधिक होती है, तो बाढ़ आ जाती है।

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

जल

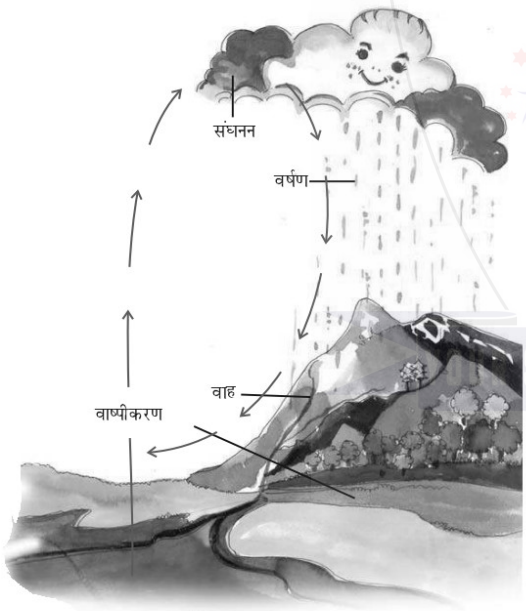
जल के बारे में सोचने पर आपके मस्तिष्क में क्या चित्र बनते हैं? आप नदी. जलप्रपात, वर्षा की रिमझिम, अपने नल के जल के बारे में सोचने लगते हैं.... बच्चे वर्षा से भरे गड्ढे में कागज़ की नाव तैराकर बहुत खुश होते हैं। दोपहर तक गड्ढे में जमा जल गायब हो जाता है। वह जल कहाँ चला जाता है?

सूर्य के ताप के कारण जल वाष्पित हो जाता है। ठंडा होने पर जलवाष्प संघनित होकर बादलों का रूप ले लेता है। यहाँ से यह वर्षा, हिम अथवा सहिम वृष्टि के रूप में धरती या समुद्र पर नीचे गिरता है।

जिस प्रक्रम में जल लगातार अपने स्वरूप को बदलता रहता है और महासागरो, वायुमंडल एवं धरती के बीच चक्कर लगाता रहता है, उस को जल चक्र कहते हैं ।

हमारी पृथ्वी थलशाला के समान है। जो जल, शताब्दियों पूर्व उपस्थित था. वही आज भी मौजूद है। जिस जल का प्रयोग आज हम हरियाणा के खेत में सिंचाई के लिए कर रहे हैं, हो सकता है कि वह सैंकड़ों वर्ष पहले अमेज़न नदी में बहता हो।

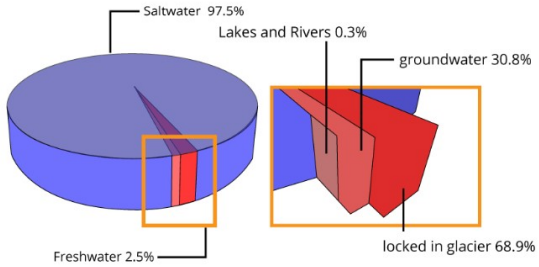
अलवण जल के मुख्य स्रोत नदी, ताल, सोते एवं हिमनद हैं। महासागरों एवं समुद्रों का जल, लवणीय होता है। इसमें अधिकांश नमक-सेडियम क्लोराइड या खाने में उपयोग किया जाने वाला नमक होता है।



चित्र 5.1 : जल चक्र

जल का वितरण

हम सभी जानते है कि पृथ्वी की सतह का तीन चौथाई भाग जल से बँका हुआ है। यदि धरती पर थल की अपेक्षा जल अधिक है. तो अनेक देशों में जल की कमी का सामना क्यों करना पड़ता है?



पृथ्वी पर जल वितरण का पाई चार्ट

महासागरीय परिसंचरण

समुद्री तट पर नंगे पैर चलने से कुछ जादुई-सी अनुभूति होती है। पुलिन पर नम बालू, ठंडी पवन, समुद्री पक्षी. वायु में लवणीय गंध एवं लहरों का संगीतः सब कुछ सम्मोहित करने वाला प्रतीत होता है। ताल एवं झील के शांत जल के विपरीत महासागरीय जल हमेशा गतिमान रहता है। यह कभी शांत नहीं रहता है। महासागरों की गतियों को इस प्रकार वर्गीकृत कर सकते है जैसे-तरंगे, ज्वार-भाटा एवं धाराएँ।

तरंगें

समुद्र तट पर गेंद से खोलते समय जब गेंद जल में गिर जाती है. तो क्या होता है? यह दृश्य बहुत ही मनोरंजक होता है, कि कैसे तरंगों के साथ गेंद तट पर वापस लौट आती है। जब महासागरीय सतह पर जल लगातार उठता और गिरता रहता है. तो इन्हें तरंगें कहते हैं।

तूफान में तेज वायु चलने पर विशाल तरंगे उत्पन्न होती हैं। इनके कारण अत्यधिक विनाश हो सकता है। भूकंप, ज्वालामुखी उद्‌गार, या जल के नीचे भूस्खलन के कारण महासागरीय जल अत्यधिक विस्थापित होता है। इसके परिणामस्वरूप 15 मीटर तक की ऊँचाई वाली विशाल ज्वारीय तरंगे उठ सकती हैं. जिसे सुनामी कहते हैं। अब तक का सबसे विशाल सुनामी 150 मीटर मापा गया था। ये तरंगें 700 किलोमीटर प्रति घंटे से अधिक की गति से चलती है। 2004 के सुनामी से भारत के तटीय क्षेत्रों में अत्यधिक विनाश हुआ था। सुनामी के बाद अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह में इंदिरा प्वाइट डूब गया था।

सुनामी जापानी भाषा का एक शब्द है. जिसका अर्थ है-"पोताश्रय तरंगें" क्योंकि सुनामी आने पर पोताश्रय नष्ट हो जाते हैं।

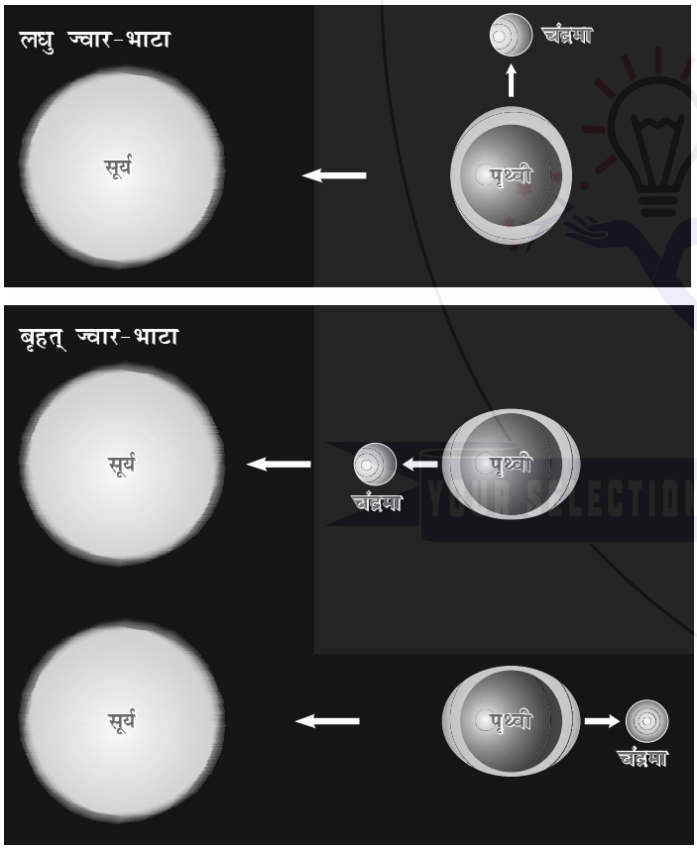
ज्वार-भाटा

दिन में दो बार नियम से महासागरीय जल का उठना एवं गिरना 'ज्वार-भाटा' कहलाता है। जब सर्वाधिक ऊँचाई तक उठकर जल. तट के बड़े हिस्से को डुबो देता है. तब उसे ज्वार कहते हैं। जब जल अपने निम्नतम स्तर तक आ जाता है एवं तट से पीछे चला जाता है. तो उसे भाटा कहते हैं।

सूर्य एवं चंद्रमा के शक्तिशाली गुरुत्वाकर्षण

बल के कारण पृथ्वी की सतह पर ज्वार-भाटे आते हैं। जब पृथ्वी का जल चंद्रमा के निकट होता है उस समय चंद्रमा के गुरुत्वाकर्षण बल से जल अभिकर्षित होता है, जिसके कारण उच्च ज्वार आते है। पूर्णिमा एवं अमावस्या के दिनों में सूर्य, चंद्रमा एवं पृथ्वी तीनों एक सीध में होते हैं और इस समय सबसे ऊँचे ज्वार उठते हैं। इस ज्वार को बृहत् ज्वार कहते हैं। लेकिन जब चाँद अपने प्रथम एवं अंतिम चतुर्थाश में होता है, तो पृथ्वी एवं सूर्य का गुरुत्वाकर्षण बल विपरीत दिशाओं से महासागरीय जल पर पड़ता है, परिणामस्वरूप, निम्न ज्वार-भाटा आता है। ऐसे ज्वार को लघु ज्वार-भाटा कहते हैं।

उच्च ज्वार नौसचालन में सहायक होता है। ये जल-स्तर को तट की ऊँचाई तक पहुँचाते हैं। ये जहाज को बंदरगाह तक पहुँचाने मे सहायक होते हैं। उच्च ज्वार मछली पकड़ने में भी मदद करते हैं। उच्च ज्वार के दौरान अनेक मछलियाँ तट के निकट आ जाती है। इसके फलस्वरूप मछुआरे बिना कठिनाई के मछलियाँ पकड़ पाते हैं। कुछ स्थानों पर ज्वार भाटे से होने वाले जल के उतार-चढ़ाव का उपयोग विद्युत उत्पन्न करने के लिए किया जाता है।

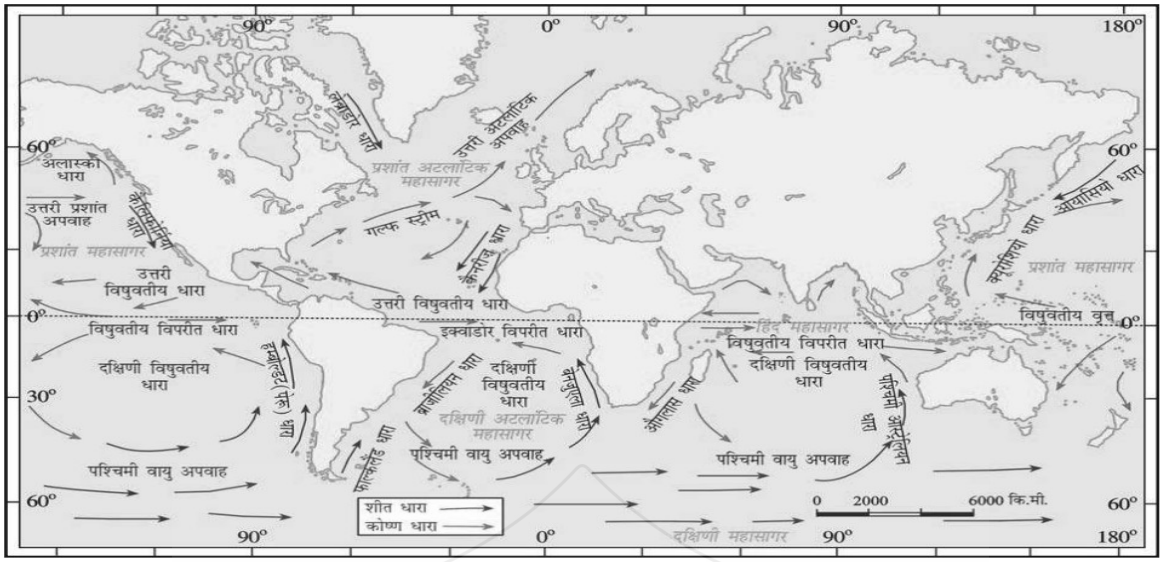


सूर्य एवं चंद्रमा के शक्तिशाली गुरुत्वाकर्षण बल के कारण पृथ्वी की सतह पर ज्वार-भाटे आते हैं। जब पृथ्वी का जल चंद्रमा के निकट होता है उस समय चंद्रमा के गुरुत्वाकर्षण बल से जल अभिकर्षित होता हैं, जिसके कारण उच्च ज्वार आते हैं। पूर्णिमा एवं अमावस्या के दिनों में सूर्य, चंद्रमा एवं पृथ्वी तीनों एक सीध में होते हैं और इस समय सबसे ऊँचे ज्वार उठते हैं। इस ज्वार को बृहत् ज्वार कहते हैं। लेकिन जब चाँद अपने प्रथम एवं अंतिम चतुर्थांश में होता है, तो पृथ्वी एवं सूर्य का गुरुत्वाकर्षण वल विपरीत दिशाओं से महासागरीय जल पर पड़ता है, परिणामस्वरूप, निम्न ज्वार-भाटा आता है। ऐसे ज्वार को लघु ज्वार-भाटा कहते हैं।

उच्च ज्वार नौसंचालन में सहायक होता है। ये जल-स्तर को तट की ऊँचाई तक पहुँचाते हैं। ये जहाज को बंदरगाह तक पहुँचाने में सहायक होते हैं। उच्च ज्वार मछली पकड़ने में भी मदद करते हैं। उच्च ज्वार के दौरान अनेक मछलियाँ तट के निकट आ जाती हैं। इसके फलस्वरूप मछुआरे बिना कठिनाई के मछलियाँ पकड़ पाते हैं। कुछ स्थानों पर ज्वार-भाटे से होने वाले जल के उतार-चढ़ाव का उपयोग विद्युत उत्पन्न करने के लिए किया जाता है।

महासागरीय धाराएँ

महासागरीय धाराएँ, निश्चित दिशा में महासागरीय सतह पर नियमित रूप से वहने वाली जल की धाराएँ होती हैं। महासागरीय धाराएँ गर्म या ठंडी हो सकती हैं। सामान्यतः गर्म महासागरीय धाराएँ, भूमध्य रेखा के निकट उत्पन्न होती हैं एवं ध्रुवों की ओर प्रवाहित होती हैं। ठंडी धाराएँ, ध्रुवों या उच्च अक्षांशों से उष्णकटिबंधीय या निम्न अक्षांशों की ओर प्रवाहित होती हैं। लेब्राडोर महासागरीय धाराएँ, शीत जलधाराएँ होती हैं; जबकि गल्फस्ट्रीम गर्म जलधाराएँ होती हैं। महासागरीय धाराएँ, किसी क्षेत्र के तापमान को प्रभावित करती हैं। गर्म धाराओं से स्थलीय सतह का तापमान गर्म हो जाता है। जिस स्थान पर गर्म एवं शीत जलधाराएँ मिलती हैं, वह स्थान विश्वभर में सर्वोत्तम मत्स्यन क्षेत्र माना जाता है। जापान के आस-पास एवं उत्तर अमेरिका के पूर्वी तट इसके कुछ उदाहरण हैं।



चित्र 5.6 : महासागरीय धाराएँ

जहाँ गर्म एवं ठंडी जलधाराएँ मिलती हैं, वहाँ कुहरे वाला मौसम बनता है। इसके फलस्वरूप नौसंचालन में बाधा उत्पन्न होती है।

महासागर	जलधारा का नाम	प्रकार (गर्म/ठंडी)	प्रभाव	उपयोगिता
अटलांटिक महासागर	गल्फ स्ट्रीम	गर्म	यूरोप को गर्म रखती है, समुद्री व्यापार तेज होता है	यूरोपीय जलवायु का मुख्य कारण
	लैब्राडोर	ठंडी	कनाडा तट को ठंडा, गल्फ स्ट्रीम से टकराकर कोहरा	न्यूफाउंडलैंड में कोहरा व मत्स्य क्षेत्र
	ब्राजील करंट	गर्म	अमेज़न तट पर वर्षा व गर्मी	दक्षिण अमेरिकी जलवायु में भूमिका
	बेंगुएला	ठंडी	नामीब मरुस्थल, ठंडी व शुष्क जलवायु	मरुस्थलीकरण + मत्स्य अपवहन
	नॉर्थ अटलांटिक ड्रिफ्ट	गर्म	ब्रिटेन, स्कैंडिनेविया को गर्म व नम बनाती है	गल्फ स्ट्रीम की शाखा
प्रशांत महासागर	कुरोशियो	गर्म	जापान तट पर नमी, तूफानों की तीव्रता	एशिया की पूर्वी तटीय जलवायु
	कैलिफोर्निया	ठंडी	अमेरिका के पश्चिमी तट को ठंडा व शुष्क बनाती है	तटीय मरुस्थल, कोहरा
	हम्बोल्ट / पेरू	ठंडी	पेरू तट ठंडा, एल नीनो प्रभाव, मत्स्य समृद्धि	El Niño लिंक + प्रीलिम्स/मेंस में बार-बार पूछा गया
	अलास्का	गर्म	अलास्का को अपेक्षाकृत गर्म बनाती है	उच्च अक्षांशीय गर्म जलधारा
	ईस्ट ऑस्ट्रेलियन करंट	गर्म	ऑस्ट्रेलिया के पूर्वी तट पर वर्षा व गर्मी	पूर्वी तटीय जलवायु में भूमिका
हिंद महासागर	अगुल्हास	गर्म	दक्षिण अफ्रीका के पूर्वी तट को गर्म करती है	मानसून व दक्षिणी अफ्रीकी जलवायु
	सोमाली जलधारा	ठंडी (ग्रीष्म कालीन)	मानसून में ठंडी होती है, अपवहन से मत्स्य समृद्धि	भारतीय मानसून से गहरा संबंध
	उत्तर विषुवतीय जलधारा	गर्म	भारतीय तटों पर उष्ण जल लाती है	मानसून की पृष्ठभूमि तैयार करती है
दक्षिण महासागर	वेस्ट विंड ड्रिफ्ट	ठंडी	अंटार्कटिका को घेरे रहती है, वैश्विक तापमान संतुलन	वैश्विक महासागरीय संचरण का आधार
आर्कटिक महासागर	आर्कटिक जलधाराएँ	ठंडी	बर्फ निर्माण, समुद्री पारिस्थितिकी बनाए रखती हैं	ध्रुवीय जलवायु अध्ययन हेतु महत्त्वपूर्ण

प्राकृतिक वनस्पति एवं वन्य जीवन

आमतौर पर प्राकृतिक वनस्पति को निम्न तीन मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है :

(क) वन : जो वृक्षों के लिए उपयुक्त तापमान एवं परिपूर्ण वर्षा वाले क्षेत्रों में उगते हैं। इन कारकों के आधार पर सघन एवं खुले वन विकसित होते हैं।

(ख) घासस्थल : जो मध्यम वर्षा वाले क्षेत्र में विकसित होते हैं।

(ग) काँटेदार झाड़ियाँ : काँटेदार झाड़ एवं झाड़ियाँ केवल शुष्क क्षेत्रों में पैदा होते हैं।

सलीमा हिमालय की यात्रा का अपना यह अनुभव अपने पिता को बता रही थी। उसके पिता विश्व के विभिन्न स्थानों पर जा चुके थे। उन्होंने सलीमा को विभिन्न महाद्वीपों के विभिन्न भागों में पाई जाने वाली विविध प्रकार की वनस्पतियों के बारे में बताया। उन्होंने उपधुवीय प्रदेशों में शंकुधारी वन, रेगिस्तानों में काँटेदार झाड़ियों, आर्द्र प्रदेशों में घने उष्णकटिबंधीय दृढ़ काष्ठ वनों के बारे में कई अन्य जानकारियाँ दी। सलीमा समझ गई कि हिमालय के क्षेत्रों में लगभग सभी प्रकार की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं, जो भूमध्य रेखा से ध्रुव की ओर जाने पर मिलती हैं।

प्राकृतिक वनस्पतियों के प्रकार में बदलाव का मुख्य कारण जलवायु का बदलाव है। आइए हम विश्व की विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक वनस्पतियों, उनके गुण एवं वहाँ प्रवास करने वाले वन्य जीवों की जानकारी प्राप्त करें।

वन

उष्णकटिबंधीय सदाबहार वन

इन वनों को उष्णकटिबंधीय वर्षा वन भी कहते हैं। ये घने वन भूमध्य रेखा एवं उष्णकटिबंध के पास पाए जाते हैं। ये क्षेत्र गर्म होते हैं एवं पूरे वर्ष यहाँ अत्यधिक वर्षा होती है। चूँकि यहाँ का मौसम कभी शुष्क नहीं होता, इसलिए यहाँ के पेड़ों की पत्तियाँ पूरी तरह नहीं झड़ती। इसलिए इन्हें सदाबहार कहते हैं। काफी घने वृक्षों की मोटी वितान के कारण दिन के समय भी सूर्य का प्रकाश वन के अंदर तक नहीं पहुँच पाता है। आमतौर पर यहाँ दृढ़ काष्ठ वृक्ष जैसे रोजवुड, आबनूस, महोगनी आदि पाए जाते हैं।

उष्णकटिबंधीय पर्णपाती वन

उष्णकटिबंधीय पर्णपाती वन मानसूनी वन होते हैं जो भारत, उत्तरी आस्ट्रेलिया एवं मध्य अमेरिका के बड़े हिस्सों में पाए जाते हैं। इन क्षेत्रों में मौसमी परिवर्तन होते रहते हैं। जल संरक्षित रखने के लिए शुष्क मौसम में यहाँ के वृक्ष पत्तियाँ झाड़ देते हैं। इन वनों में पाए जाने वाले दृढ़ काष्ठ वृक्षों में साल, सागवान, नीम तथा शीशम हैं। दृढ़ काष्ठ वृक्ष, फर्नीचर, यातायात एवं निर्माण सामग्री बनाने के लिए बहुत उपयोगी होते हैं। इन प्रदेशों में आमतौर पर पाए जाने वाले जानवर हैं-बाघ, शेर, हाथी, गोल्डन लंगूर एवं बंदर आदि।

शीतोष्ण सदाबहार वन

शीतोष्ण सदाबहार वन मध्य अक्षांश के तटीय प्रदेशों में स्थित हैं। ये सामान्यतः महाद्वीपों के पूर्वी किनारों पर पाए जाते हैं-जैसे दक्षिण-पूर्व अमेरिका, दक्षिण चीन एवं दक्षिण-पूर्वी ब्राजील। यहाँ बांज, चीड़ एवं यूकेलिप्टस जैसे दृढ़ एवं मुलायम दोनों प्रकार के पेड़ पाए जाते हैं।

शीतोष्ण पर्णपाती वन

उच्च अक्षांश की ओर बढ़ने पर अधिक शीतोष्ण पर्णपाती वन मिलते हैं। ये उत्तर-पूर्वी अमेरिका, नीन, न्यूज़ीलैंड, चिली एवं पश्चिमी यूरोप के तटीय प्रदेशों में पाए जाते हैं। ये अपनी पत्तियाँ शुष्क मौसम में झाड़ देते हैं। यहाँ पाए जाने वाले पेड़ हैं-बांज, ऐश, बीच, आदि। हिरण, लोमड़ी, भेड़िये, यहाँ के आम जानवर हैं। फ़ीजेंट तथा मोनाल जैसे पक्षी भी यहाँ पाए जाते हैं।

भूमध्यसागरीय वनस्पति

आप जान चुके हैं कि महाद्वीपों के पूर्व एवं उत्तर-पूर्वी किनारों के अधिकांश भाग शीतोष्ण सदाबहार एवं पर्णपाती पेड़ों से ढँके हैं। महाद्वीपों के पश्चिमी एवं दक्षिण-पश्चिमी किनारे भिन्न हैं। यहाँ भूमध्यसागरीय वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। यह अधिकतर यूरोप, अफ्रीका एवं एशिया के भूमध्यसागर के समीप वाले प्रदेशों में पाई जाती हैं। इसलिए इसका यह नाम पड़ा। ये वनस्पतियाँ भूमध्यसागर के बाहरी प्रदेशों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका के केलिफोर्निया, दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका, दक्षिण-पश्चिमी दक्षिण अमेरिका एवं दक्षिण-पश्चिमी आस्ट्रेलिया में भी पाई जाती हैं। इन प्रदेशों में गर्म शुष्क ग्रीष्म एवं वर्षा वाली मृदु शीत ऋतुएँ होती हैं। इन क्षेत्रों में आमतौर पर संतरा, अंजीर, जैतून एवं अंगूर जैसे निंबु-वंश (सिट्स) के फल पैदा किए जाते हैं, क्योंकि लोगों ने अपनी इच्छानुसार कृषि करने के लिए यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति को हटा दिया है। यहाँ वन्य जीवन कम है।

शंकुधारी वन

उत्तरी गोलार्द्ध के उच्च अक्षांशों (50°-70°) में भव्य शंकुधारी वन पाए जाते हैं। इन्हें 'टैगा' भी कहते हैं। ये वन अधिक ऊँचाइयों पर भी पाए जाते हैं। इन्हीं वृक्षों को सलीमा ने हिमालय में प्रचुर मात्रा में देखा था। ये लंबे, नरम काष्ठ वाले सदाबहार वृक्ष होते हैं। इन वृक्षों के काष्ठ का उपयोग लुगदी बनाने के लिए किया जाता है, जो सामान्य तथा अखबारी कागज बनाने के काम आती है। नरम काष्ठ का उपयोग माचिस एवं पैकिंग के लिए बक्से बनाने के लिए भी किया जाता है। चीड़, देवदार आदि इन वनों के मुख्य पेड़ हैं। यहाँ सामान्यतः रजत लोमड़ी, मिंक, ध्रुवीय भालू जैसे जानवर पाए जाते हैं।

घासस्थल

विभिन्न प्रदेशों में घासस्थल

विभिन्न नामों से जाने जाते हैं :

उष्णकटिबंधीय घासस्थल
पूर्वी अफ्रीका - सवाना
ब्राजील- कंपोस
वेनेजुएला- लानोस

उष्णकटिबंधीय घासस्थल ये वन भूमध्य रेखा के किसी भी तरफ उग जाते हैं और भूमध्य रेखा के दोनों ओर से उष्णकटिबंध क्षेत्रों तक फैले हैं (चित्र 6.14)। यहाँ वनस्पति निम्न से मध्य वर्षा वाले क्षेत्रों में पैदा होती है। यह घास काफी ऊँची लगभग 3 से 4 मीटर की ऊँचाई तक बढ़ सकती है। अफ्रीका का सवाना घासस्थल इसी प्रकार का है। सामान्य रूप से उष्णकटिबंधीय घासस्थल में हाथी, जेबरा, जिराफ, हिरण, तेंदुआ आदि जानवर पाए जाते हैं।

शीतोष्ण कटिबंधीय घासस्थल
अर्जेन्टीना- चैंपास
उत्तरी अमेरिका - प्रेअरी
दक्षिण अफ्रीका- वेल्ड
मध्य एशिया- स्टेपी
आस्ट्रेलिया- डान

शीतोष्ण घासस्थल ये मध्य अक्षांशीय क्षेत्रों और महाद्वीपों के भीतरी भागों में पाए जाते हैं। यहाँ की घास आमतौर पर छोटी एवं पौष्टिक होती है। शीतोष्ण प्रदेशों में सामान्यतः जंगली भैंस, बाइसन, एंटीलोप पाए जाते हैं।

कँटीली झाड़ियाँ : शुष्क रेगिस्तान जैसे प्रदेशों में पाई जाती हैं।

विश्व के प्रमुख जलवायविक प्रकार

जलवायविक प्रकार	मुख्य विशेषताएँ	भौगोलिक वितरण	प्रमुख स्थल/देश
भूमध्यरेखीय (Equatorial)	वर्षभर अधिक वर्षा (>2000mm), उच्च तापमान (25–27°C), आर्द्रता > 80%, सघन वर्षावन	0°–5° अक्षांश (भूमध्यरेखा के पास)	अमेजन बेसिन, कांगो बेसिन, इंडोनेशिया, मलेशिया, पपुआ न्यू गिनी
उष्णकटिबंधीय मानसूनी (Monsoon)	ग्रीष्म में भारी वर्षा, शीत में शुष्कता, तापमान चरम, मानसूनी हवाओं से नियंत्रित	10°–30° अक्षांश, दक्षिण व दक्षिण-पूर्व एशिया	भारत, बांग्लादेश, म्यांमार, थाईलैंड, वियतनाम
उष्णकटिबंधीय शुष्क/अर्धशुष्क (Hot Desert)	वर्षा < 250 mm, उच्च तापांतर, रेतीली भूमि, वनस्पति न्यूनतम	15°–30° अक्षांश, पश्चिमी तटीय मरुस्थल	सहारा, थार, अटाकामा, नामीब, अरबी मरुस्थल
सवाना (Tropical Wet & Dry)	ग्रीष्म में वर्षा, शीत में शुष्क, लंबी घासें, खुले वृक्ष	10°–20° अक्षांश, भूमध्यरेखा के उत्तर-दक्षिण	केन्या, तंज़ानिया, ब्राज़ील का भाग, वेनेजुएला
उष्णकटिबंधीय समुद्री (Tropical Marine)	नम जलवायु, तूफानों की आशंका, सम तापमान, वर्षा मध्यम	उष्णकटिबंधीय द्वीपीय व तटीय क्षेत्र	कैरिबियन द्वीप, फिलीपींस, हवाई, श्रीलंका
भूमध्यसागरीय (Mediterranean)	ग्रीष्म में शुष्क, शीत में वर्षा, जैतून, अंगूर की खेती	30°–40° अक्षांश, पश्चिमी महाद्वीपीय तट	दक्षिणी यूरोप, कैलिफोर्निया, दक्षिण अफ्रीका, दक्षिण-पश्चिम ऑस्ट्रेलिया
शीतोष्ण महासागरीय (Marine West Coast)	सम तापमान, वर्ष भर समान वर्षा, आर्द्र जलवायु	40°–60° अक्षांश, पश्चिमी तट	ब्रिटेन, पश्चिमी यूरोप, न्यूज़ीलैंड, वैंकूवर
महाद्वीपीय (Continental)	उच्च तापांतर, कम वर्षा, कठोर सर्दियाँ, गर्म ग्रीष्म	45°–65° अक्षांश, आंतरिक महाद्वीपीय भाग	रूस, मंगोलिया, कनाडा, मध्य एशिया
शीतोष्ण घासभूमि (Steppe)	250–500 mm वर्षा, घासें, गर्म ग्रीष्म, ठंडी सर्दी	महाद्वीपीय जलवायु से घिरे क्षेत्र	यूक्रेन, कज़ाखस्तान, अमेरिका के प्रेरी, अर्जेंटीना का पम्पा
टुंड्रा (Tundra)	पेड़ नहीं, केवल लाइकेन और शैवाल, तापमान 0°C से नीचे, बर्फीली भूमि	60°–75°N अक्षांश, आर्कटिक परिधि	साइबेरिया, अलास्का, उत्तरी कनाडा, ग्रीनलैंड
शीत मरुस्थल (Cold Desert)	अत्यधिक ठंडी और शुष्क जलवायु, कम वर्षा, पत्थरीली ज़मीन	उच्च पठारी व ध्रुवीय क्षेत्र	लद्दाख, अंटार्कटिका, गॉबी मरुस्थल
पर्वतीय जलवायु (Highland)	ऊँचाई अनुसार जलवायु में विविधता, सामान्यतः ठंडी व आर्द्र	विश्व के ऊँचे पर्वतीय क्षेत्र	हिमालय, आल्प्स, रॉकी, एंडीज़

मानव-पर्यावरण अन्योन्यक्रिया : उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्ण प्रदेश

अमेजन बेसिन में जीवन

अमेजन बेसिन के विषय में जानने से पहले हम मानचित्र देखें । ध्यान दें कि उष्णकटिबंधीय प्रदेश कर्क रेखा और मकर रेखा के मध्य स्थित हैं। भूमध्य रेखा के 10 उत्तर से 10° दक्षिण के मध्य के भाग को भूमध्यरेखीय प्रदेश कहते है। अमेजन नदी इसी प्रदेश से होकर बहती है। ध्यान दें कि यह पश्चिम में पर्वतों से निकल कर पूर्व में अंधमहासागर में कैसे पहुँचती है।

जिस स्थान पर कोई नदी किसी अन्य जल राशि में मिलती है उसे नदी का मुहाना कहते हैं। अमेजन नदी में बहुत सारी सहायक नवियाँ मिलकर अमेजन बेसिन का निर्माण करती हैं। यह नदी बेसिन ब्राजील के भागों, पेरू के कुछ भागों, बोलीविया, इक्वाडोर, कोलंबिया तथा वेनेजुएला के छोटे भाग से अपवाहित होती है।

जलवायु

जैसा कि अब आप जानते हैं अमेजन बेसिन भूमध्य रेखा के आस-पास फैला है और पूरे वर्ष यहाँ गर्म एवं नम जलवायु रहती है। यहाँ का मौसम दिन एवं रात दोनों ही समय लगभग समान रूप से गर्म एवं आर्द्र होता है तथा शरीर में चिपचिपाहट महसूस होती है। इस प्रदेश में लगभग प्रतिदिन वर्षा होती है और वह भी बिना किसी पूर्व चेतावनी के। दिन का तापमान उच्च एवं आर्द्रता अति उच्च होती है। रात के समय तापमान कम हो जाता है लेकिन आर्द्रता वैसी ही बनी रहती है।

वर्षा वन

इन प्रदेशों में अत्यधिक वर्षा के कारण यहाँ की भूमि पर सघन वन उग जाते हैं । वन इतने सघन होते हैं कि पत्तियों तथा शाखाओं से 'छत' सी बन जाती है जिसके कारण सूर्य का प्रकाश धरातल तक नहीं पहुँच पाता है। यहाँ की भूमि प्रकाश रहित एवं नम बनी रहती है। यहाँ केवल वही वनस्पति पनप सकती है जिसमें छाया में बढ़ने की क्षमता हो। परजीवी पौधों के रूप में यहाँ आर्किड एवं ब्रोमिलायड पैदा होते हैं।

वर्षावन में प्राणिजात की प्रचुरता होती है। टूकन, गुंजन पक्षी, रंगीन पक्षति वाले पक्षी एवं भोजन के लिए बड़ी चोंच वाले विभिन्न प्रकार के पक्षी जो भारत में पाए जाने वाले सामान्य पक्षियों से भिन्न होते हैं यहाँ पाए जाते हैं। प्राणियों में बंदर, स्लॉथ एवं चीटी खाने वाले टैपीर भी यहाँ पाए जाते हैं। साँप एवं सरीसर्प की विभिन्न प्रजातियाँ भी इन वनों में पाई जाती हैं। मगर, साँप, अजगर तथा एनाकोंडा एवं बोआ कुछ ऐसी ही प्रजातियाँ हैं। इसके अतिरिक्त हजारों कीड़े-मकोड़े भी इस बेसिन में निवास करते हैं। मांस खाने वाली पिरान्या मत्स्य समेत मछलियों की विभिन्न प्रजातियाँ भी अमेजन नदी में पाई जाती हैं। इस प्रकार जीवों की विविधता की दृष्टि से यह बेसिन असाधारण रूप से समृद्ध है।

वर्षावन के निवासी

यहाँ के लोग छोटे-से क्षेत्र में वन के कुछ वृक्षों को काटकर अपने भोजन के लिए फसल उगाते हैं। यहाँ के पुरुष शिकार करते हैं तथा नदी में मछली पकड़ते हैं जबकि महिलाएँ फसलों का ध्यान रखती हैं। वे मुख्यतः टेपियोका, अनन्नास एवं शकरकंद उगाते हैं। क्योंकि मछली या शिकार मिलना अनिश्चित होता है ऐसे में महिलाएँ ही अपनी उगाई शाक-सब्जियों से अपने परिवार का भरण-पोषण करती हैं। वे "कर्तन एवं दहन कृषि पद्धति" का प्रयोग करते हैं। इनका मुख्य आहार मेनियोक है, जिसे कसावा भी कहते हैं तथा यह आलू की तरह जमीन के अंदर पैदा होता है। ये चींटियों की रानी एवं अंडकोष भी खाते हैं। कॉफी, मक्का एवं कोको जैसी नगदी फसल भी यहाँ उगाई जाती हैं।

वर्षावन अत्यधिक मात्रा में घरों के लिए लकड़ी प्रदान करते हैं। कुछ परिवार मधुमक्खी के छत्ते के आकार वाले छप्पर के घरों में रहते हैं। जबकि कुछ लोग 'मलोका' कहे जाने वाले बड़े अपार्टमेंट जैसे घरों में रहते हैं जिनकी छत तीव्र ढलान वाली होती हैं।

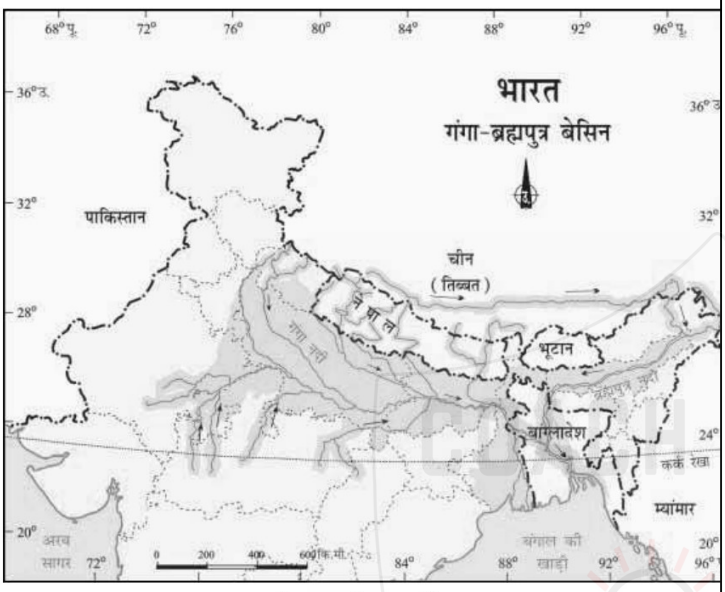
अमेजन बेसिन के लोगों का जीवन धीरे-धीरे बदल रहा है। पुराने समय में वन के अंदर पहुँचने के लिए नदी मार्ग ही एकमात्र उपाय था। 1970 में ट्रांस अमेजन महामार्ग बनने से वर्षावन के सभी भागों तक पहुँचना संभव हो गया। अनेक स्थानों पर पहुँचने के लिए हवाईजहाजों तथा हेलीकॉप्टरों का उपयोग किया जाता है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप वहाँ की मूल आबादी को उस क्षेत्र से बाहर निकलकर नए क्षेत्र में बसना पड़ा जहाँ वे अपने पौराणिक तरीके से खेती करते रहे हैं।

विकास की गतिविधियों के कारण जैविक विविधता वाले वर्षावन धीरे-धीरे नष्ट हो रहे हैं। ऐसा अनुमान है कि प्रतिवर्ष अमेजन बेसिन के वर्षावन का बड़ा भाग लुप्त होता जा रहा है। आप देख सकते हैं कि वर्षावनों के लुप्त होने से व्यापक प्रभाव होता है (चित्र 8.6)। वर्षा के कारण मिट्टी की ऊपरी परत बह जाती है एवं सघन वन बंजर भूमि में बदल जाता है।

गंगा-ब्रह्मपुत्र बेसिन में जीवन

गंगा तथा ब्रह्मपुत्र की सहायक नदियाँ मिलकर भारतीय उपमहाद्वीप में गंगा-ब्रह्मपुत्र बेसिन का निर्माण करती है)। यह बेसिन उपोष्ण में 10° उत्तर से 30° उत्तर अक्षांश के मध्य स्थित है। घाघरा, सोन, चंबल, गंडक, कोसी जैसी गंगा की सहायक नदियाँ एवं ब्रह्मपुत्र की सहायक नदियाँ इसमें अपवाहित होती हैं।

गंगा एवं ब्रह्मपुत्र के मैदान, पर्वत एवं हिमालय के गिरिपाद तथा सुंदरवन डेल्टा इस बेसिन की मुख्य विशेषताएँ हैं। मैदानी क्षेत्र में अनेक चापझील पाई जाती हैं। यहाँ की जलवायु मुख्यतः मानसूनी हैं। मानसून में मध्य जून से मध्य सितंबर के बीच वर्षा होती है। ग्रीष्म ऋतु में गर्मी एवं शीत ऋतु में ठंड होती है।



चित्र 8.8 : गंगा-ब्रह्मपुत्र बेसिन

बेसिन क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की स्थलाकृति हैं। तीव्र ढाल वाले पर्वतीय क्षेत्र बसने के लिए प्रतिकूल हैं अतः गंगा-ब्रह्मपुत्र बेसिन के पर्वतीय क्षेत्र में कम लोग रहते हैं। मानव प्रवास के लिए मैदानी क्षेत्र सबसे उपयुक्त है, अतः यहाँ जनसंख्या घनत्व अधिक है। यहाँ की मिट्टी उपजाऊ है। जिन स्थानों पर फसल उगाने के लिए समतल भूमि उपलब्ध है वहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। धान यहाँ की मुख्य फसल है। चूँकि धान की खेती के लिए पर्याप्त जल की आवश्यकता होती है. यह उसी क्षेत्र में उगाया जाता है जहाँ अधिक वर्षा होती है। यहाँ उगायी जाने वाली अन्य फसलें गेहूँ, मक्का, ज्वार, चना एवं बाजरा हैं। गन्ना एवं जूट जैसी नगदी फसलें भी उगायी जाती हैं। मैदान के कुछ क्षेत्रों में केले के बागान भी देखे जाते हैं। पश्चिम बंगाल एवं असम में चाय के बागान मिलते हैं। विहार एवं असम के कुछ भागों में सिल्क के कीड़ों का संवर्धन कर सिल्क का उत्पादन किया जाता है। मंद ढलान वाले पर्वतों एवं पहाड़ियों पर वेदिकाओं में फसलें उगायी जाती हैं। विभिन्न भू-आकृतियों के अनुसार वनस्पति में भी विभिन्नता पायी जाती है। गंगा-ब्रह्मपुत्र के मैदानों में सागवान, साखू एवं पीपल के साथ उष्णकटिबंधीय पर्णपाती पेड़ भी पाए जाते हैं। ब्रह्मपुत्र के मैदानी क्षेत्रों में घने बाँस के घने झुरमुट पाए जाते हैं। डेल्टा क्षेत्र मैंग्रोव वन से घिरा है। उत्तराखंड, सिक्किम एवं अरुणाचल प्रदेश की ठंडी जलवायु एवं तीव्र ढाल वाले भागों में चीड़. देवदार एवं फर जैसे शंकुधारी पेड़ पाए जाते हैं।

बेसिन में विविध प्रकार के वन्यजीव पाए जाते हैं। इनमें हाथी, बाघ, हिरण एवं बंदर आदि सामान्य रूप से पाए जाने वाले जीव हैं। एक सींग वाला गैंडा ब्रह्मपुत्र के मैदानों में पाया जाता है । डेल्टा क्षेत्र में बंगाल टाइगर, मगर एवं घड़ियाल पाए जाते हैं । नदी के साफ़ जल, झील एवं बंगाल की खाड़ी में प्रचुर मात्रा में जलीय जीव पाए जाते हैं। रोहू, कतला एवं हिलसा मछलियों की सबसे लोकप्रिय प्रजातियाँ हैं। मछली एवं चावल इस क्षेत्र में रहने वाले लोगों का मुख्य आहार है।

गंगा-ब्रह्मपुत्र के मैदानों में कई बड़े शहर एवं कस्बे स्थित हैं। इलाहाबाद, कानपुर, वाराणसी, लखनऊ, पटना एवं कोलकाता जैसे 10 लाख से अधिक आबादी वाले शहर गंगा नदी के तट पर ही स्थित हैं । इन शहरों तथा यहाँ स्थित उद्योगों का गंदा पानी बहकर नदी में ही जाता है जिससे नदी प्रदूषित होती है।

बेसिन में यातायात का सुविकसित तंत्र उपस्थित है। आप देख सकते हैं कि गंगा-ब्रह्मपुत्र बेसिन में यातायात के चार मार्ग सुविकसित हैं। मैदानी इलाकों के लोग सड़कमार्ग एवं रेलमार्ग द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते हैं। नदी के तटीय क्षेत्रों में जलमार्ग यातायात का प्रभावशाली माध्यम है। कोलकाता हुगली नदी पर स्थित एक महत्त्वपूर्ण पत्तन है। मैदानी क्षेत्र में कई बड़े हवाई पत्तन भी स्थित हैं।

पर्यटन इस बेसिन की एक महत्त्वपूर्ण क्रिया है। आगरा में यमुना के किनारे स्थित ताजमहल, इलाहाबाद में गंगा एवं यमुना नदी का संगम, उत्तर प्रदेश एवं बिहार में बौद्ध स्तूप, लखनऊ का इमामबाड़ा, असम का काजीरंगा एवं मानस वन्य प्राणी अभयवन तथा अरुणाचल प्रदेश की विशिष्ट जनजातीय संस्कृति जैसे कई दर्शनीय स्थल हैं ।

शीतोष्ण घासस्थलों में जीवन

- जिन स्थानों पर पेड़ ही मुख्य वनस्पति होते हैं. उन्हें हम 'वन' कहते हैं। इसी प्रकार जिन प्रदेशों के पादप जीवन में प्रमुखतः घास की अधिकता होती है, उसे 'घासस्थल' कहते हैं। पृथ्वी की सतह का लगभग एक-चौथाई हिस्सा घासस्थल है। यहाँ पनपने वाले पौधों के प्रकार यहाँ की जलवायु एवं मिट्टी पर निर्भर करते हैं। घासस्थल के निर्माण में जलवायु की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, इसलिए आमतौर पर जलवायु के आधार पर विश्व के घासस्थलों को दो मुख्य श्रेणियों में बाँटा जाता है-शीतोष्ण प्रदेश के घासस्थल एवं उष्णकटिबंधीय प्रदेश के घासस्थल।

प्रेअरी

- उत्तरी अमेरिका के शीतोष्ण घासस्थल को प्रेअरी कहते हैं। ये समतल, मंद ढलान या पहाड़ियों वाले प्रदेश हैं, जहाँ पेड़ कम तथा घास अधिक होती है। वास्तव में यह घास का विशाल क्षेत्र है। अधिकांश भागों में प्रेअरी, वृक्ष रहित हैं, परंतु निचले मैदानों के निकट नदी-घाटियों के साथ-साथ यहाँ वन भी पाए जाते हैं। दो मीटर तक ऊँची घास यहाँ के भूदृश्य की प्रधानता है। वास्तव में यह एक "घास का सागर" है।
- प्रेअरी, पश्चिम में रॉकी पर्वत एवं पूर्व में ग्रेट लेक से घिरे हुए हैं। प्रेअरी, संयुक्त राज्य अमेरिका एवं कनाडा के कुछ भागों तक फैले हुए हैं। अमेरिका के प्रेअरी का अपवाहन मिसीसिपी की सहायक नदियाँ तथा कनाडा के प्रेअरी का अपवाहन सासकेच्वान नदी की सहायक नदियाँ करती हैं।

जलवायु

- महाद्वीप के मध्य स्थित होने के कारण यहाँ चरम तापमान वाली महाद्वीपीय जलवायु होती है। ग्रीष्म ऋतु में तापमान लगभग 20° सेल्सियस होता है, जबकि शीत ऋतु में कनाडा के विनीपेग में तापमान हिमांक से 20° सेल्सियस भी दर्ज किया गया है। शीत ऋतु में यह प्रदेश बर्फ़ की एक मोटी परत से ढँक जाता है।
- यहाँ वार्षिक वर्षा सामान्य होती है, जो घास के विकास के लिए अनुकूल है। उत्तर-दक्षिण अवरोध की अनुपस्थिति में यहाँ 'चिनूक' नामक एक स्थानीय पवन बहती है।

वनस्पतिजात एवं प्राणिजात

- प्रेअरी सामान्यतः पेड़विहीन होते हैं। जहाँ जल उपलब्ध होता है, वहाँ शरपत (विलो), आल्डर एवं पॉप्लर जैसे पेड़ उगते हैं। 50 सेंटीमीटर से अधिक वर्षा वाले प्रदेश कृषि के लिए उपयुक्त होते हैं, क्योंकि यहाँ की मिट्टी उपजाऊ होती है। यद्यपि इस क्षेत्र की मुख्य फसल मक्का है, जबकि अन्य दूसरी उगने वाली फसलें आलू, सोयाबीन, कपास एवं अल्फा-अल्फा हैं। जिन क्षेत्रों में वर्षा काफी कम एवं अनिश्चित होती है, वहाँ पैदा होने वाली घास छोटी एवं नुकीली होती है। ये प्रदेश मवेशियों को पालने के लिए उपयुक्त होते हैं। विशाल मवेशी फार्म को रैंच एवं उसकी देखभाल करने वाले को 'काओबॉय' कहते हैं)। बाइसन या अमेरिकी भैंस इस प्रदेश का सबसे महत्त्वपूर्ण पशु है । निरंतर शिकार के कारण ये पशु लगभग लुप्त हो गए और अब इन्हें सुरक्षित प्रजातियों की श्रेणी में रखा जाता है। इन प्रदेशों में पाए जाने वाले अन्य जीव हैं-खरगोश, काइयोट, गोफर एवं प्रेअरी कुत्ता।

लोग

- इस प्रदेश के लोग काफी परिश्रमी होते हैं। अपने विपुल प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के लिए उन्होंने प्रौद्योगिकी का सफलतापूर्वक विकास कर लिया है। विश्व के दो सबसे अधिक विकसित देश संयुक्त राज्य अमेरिका एवं कनाडा में यह प्रदेश स्थित हैं। कृषि की वैज्ञानिक विधियों एवं ट्रैक्टर, हारवेस्टर तथा कंबाइन के उपयोग से उत्तरी अमेरिका सबसे बड़ा खाद्यान्न उत्पादक बन गया है। गेहूँ के अत्याधिक उत्पादन के कारण प्रेअरी को विश्व का धान्यागार भी कहते हैं।
- दुग्ध उत्पादन एक अन्य प्रमुख उद्योग है। डेयरी क्षेत्र ग्रेट लेक से पूर्व में अटलांटिक तट तक फैला हुआ है। दुग्ध उत्पादन एवं व्यापक स्तर पर कृषि, दोनों खाद्य प्रक्रमण उद्योग को बढ़ावा दे रहे हैं।
- कोयला एवं लोहा जैसे खनिज पदार्थों के विशाल भंडार तथा सड़क, रेल एवं नहर की समुचित व्यवस्था के कारण यह क्षेत्र विश्व का सबसे बड़ा औद्योगिक प्रदेश बन गया है।

वेल्ड

- दक्षिण अफ्रीका के शीतोष्ण घासस्थल को वेल्ड कहते हैं । वेल्ड 600 मीटर से 1100 मीटर तक की विभिन्न उँचाई वाले उर्मिल पठार होते हैं। यह ड्रैकेस्वर्ग पर्वतों से घिरा है। इसके पश्चिम में कालाहारी रेगिस्तान स्थित है। इसके उत्तरपूर्व में 'उच्च वेल्ड' स्थित है, जिसकी उँचाई कुछ स्थानों पर 1600 मीटर से भी अधिक है। अक्तीका का मानचित्र देखिए। वेल्ड से घिरे देशों के नाम बताइए। ऑरेंज एवं लिमपोपो नदी की सहायक नदियाँ इस प्रदेश को सिंचित करती हैं।

जलवायु

- हिंद महासागर के प्रभाव के कारण वेल्ड की जलवायु नम होती है। शीत ऋतु ठंडी एवं शुष्क होती है। इस दौरान तापमान 50 सेल्सियस से 10° सेल्सियस के मध्य रहता है एवं जुलाई सबसे अधिक ठंडा महीना होता है। ग्रीष्म ऋतु अल्पकालिक एवं गर्म होती है। ग्रीष्म ऋतु में जोहांसबर्ग का तापमान लगभग 20° सेल्सियस दर्ज किया जाता है। वेल्ड क्षेत्र में वर्षा नवंबर से फरवरी के बीच ग्रीष्म कालीन महीनों में होती है। यह वेल्ड के तटों पर गर्म महासागरीय जलधारा प्रवाहित होने के कारण होता है। यदि शीत ऋतु में जून से अगस्त

तक के महीनों में वर्षा कम होती है, तो यह क्षेत्र सूखाग्रस्त हो सकता है।

वनस्पतिजात एवं प्राणिजात

- यहाँ वनस्पति विरल है। अधिकतर स्थल घास से ढँके रहते हैं। लाल घास वेल्ड की झाड़ियों में पैदा होती हैं। बबूल एवं मारोला ऊँचे हुए वेल्ड में उगते देखे गए हैं। वेल्ड के प्रमुख जानवर शेर, तेंदुआ, चीता एवं कुडु हैं।

निवासी

- वेल्ड, पशुपालन एवं खनन के लिए प्रसिद्ध है। वेल्ड की मिट्टी अधिक उपजाऊ नहीं होती है। यद्यपि जहाँ उपजाऊ भूमि है, वहाँ फ़सल उगाई जाती हैं। मक्का, गेहूँ, ज्वार, अखरोट एवं आलू यहाँ की मुख्य फसलें हैं। तम्बाकू, गन्ना एवं कपास जैसी नकदी फसलें भी यहाँ उगाई जाती हैं।
- भेड़ पालन यहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय है। भेड़ मुख्यतः ऊन के लिए पाली जाती है तथा इससे वेल्ड में ऊनी उद्योग विकसित हुआ है। मेरिनो भेड़ एक लोकप्रिय प्रजाति है तथा दुग्ध उत्पादन यहाँ का दूसरा महत्त्वपूर्ण व्यवसाय है। पशुपालन गर्म एवं नम प्रदेशों में किया जाता है एवं मक्खन, चीज जैसे दुग्ध पदार्थों का उत्पादन घरेलू उपयोग एवं निर्यात के लिए किया जाता है।
- वेल्ड में खनिजों का प्रचुर भंडार है। जिन स्थानों पर लोहा एवं कोयला उपलब्ध है, वहाँ लोहा एवं इस्पात उद्योग विकसित हो गया है। सोना एवं हीरे का खनन इस प्रदेश के लोगों का मुख्य व्यवसाय है। जोहांसबर्ग को विश्व की स्वर्ण राजधानी भी कहा जाता है। किंबरले हीरे की खान के लिए प्रसिद्ध है। हीरा एवं सोने के खनन के कारण दक्षिण अफ्रीका तथा ब्रिटेन के बीच व्यापारिक संबंध स्थापित हुए एवं धीरे-धीरे दक्षिण अफ्रीका, ब्रिटेन का उपनिवेश बन गया। इस प्रचुर खनिज संपदा वाले प्रदेश में यातायात की सुविकसित व्यवस्था है।

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

रेगिस्तान में जीवन

पेड़-पौधे, पशुओं एवं मनुष्यों के लिए जल ही जीवन है। जहाँ पीने के लिए जल न हो. मवेशियों को चरने के लिए घास न हो एवं फसलों के उगने के लिए जल न हो, ऐसे स्थान पर किसी भी जीव के लिए जीवन कठिन ही होगा।

अब हम विश्व के उन स्थानों के बारे में पढ़ेंगे जहाँ लोग अत्यधिक कष्टकारी तापमान में भी जीना सीख चुके हैं। इनमें से कुछ स्थान आग की तरह गर्म हैं, तो कुछ बर्फ़ की तरह ठंडे हैं। ये विश्व के रेगिस्तानी क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में कम वर्षा, विरल वनस्पति एवं चरम तापमान होते हैं। तापमान के आधार पर रेगिस्तान गर्म या ठंडे हो सकते हैं। इन स्थानों में जहाँ कहीं भी थोड़ा-बहुत जल उपलब्ध होता है, लोग वहाँ कृषि करने के लिए बस जाते हैं।

गर्म रेगिस्तान-सहारा

विश्व एवं अफ्रीका महाद्वीप के मानचित्र को देखिए। उत्तरी अफ्रीका के बड़े भू-भाग पर फैले सहारा के रेगिस्तान का पता लगाएँ। यह विश्व का सबसे बड़ा रेगिस्तान है। यह लगभग 8.54 लाख वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में फैला हुआ है। क्या आपको याद है कि भारत का क्षेत्रफल 3.2 लाख वर्ग किलोमीटर है? सहारा रेगिस्तान ग्यारह देशों से घिरा हुआ है। ये देश हैं- अल्जीरिया, चाड, मिस्र, लीबिया, माली, मौरितानिया, मोरक्को, नाइजर, सूडान, ट्यूनिशिया एवं पश्चिमी सहारा।

रेगिस्तान के बारे में सोचते समय आपके मस्तिष्क में तुरंत ही रेत का दृश्य उभरता है। परंतु सहारा मरुस्थल बालू की विशाल परतों से ढका हुआ ही नहीं वरन् वहाँ बजरी के मैदान और नग्न चट्टानी सतह वाले उत्थित पठार भी पाए जाते हैं।

जलवायु

सहारा रेगिस्तान की जलवायु अत्यधिक गर्म एवं शुष्क है। यहाँ की वर्षा ऋतु अल्पकाल के लिए होती है। यहाँ आकाश बादल रहित एवं निर्मल होता है। यहाँ नमी संचय होने की अपेक्षा तेजी से वाष्पित हो जाती है। दिन अविश्वसनीय रूप से गर्म होते हैं। दिन के समय तापमान 50° सेल्सियस से ऊपर पहुँच जाता है, जिससे रेत एवं नग्न चट्टानें अत्यधिक गर्म हो जाती हैं। इनके ताप का विकिरण होने से चारों तरफ़ सब कुछ गर्म हो जाता है। रातें अत्यधिक ठंडी होती हैं तथा तापमान गिरकर हिमांक बिंदु, लगभग 0° सेल्सियस तक पहुँच जाता है।

वनस्पतिजात एवं प्राणिजात

सहारा रेगिस्तान की वनस्पतियों में कैक्टस, खजूर के पेड़ एवं ऐकेशिया पाए जाते हैं। यहाँ कुछ स्थानों पर मरूद्यान-खजूर के पेड़ों से घिरे हरित द्वीप पाए जाते हैं।

ऊँट, लकड़बग्घा, सियार, लोमड़ी, बिच्छू, साँपों की विभिन्न जातियाँ एवं छिपकलियाँ यहाँ के प्रमुख जीव-जंतु हैं।

लोग

सहारा रेगिस्तान की कष्टकारी जलवायु में भी विभिन्न समुदायों के लोग निवास करते हैं, जो भिन्न-भिन्न क्रियाकलापों में भाग लेते हैं। इनमें बेदुईन एवं तुआरेग भी शामिल हैं। चलवासी जनजाति वाले ये लोग बकरी, भेड़, ऊँट एवं घोड़े जैसे पशुधन को पालते हैं। इन पशुओं से इन लोगों को दूध मिलता है, इनकी खाल से ये पेटी, जूते, पानी की बोतल बनाने के लिए चमड़ा प्राप्त करते हैं तथा पशुओं के बालों का उपयोग चटाई, कालीन, कपड़े एवं कंबल बनाने के लिए होता है। धूल भरी आँधियों एवं गर्म वायु से बचने के लिए ये लोग भारी वस्त्र पहनते हैं।

सहारा में मरूद्यान एवं मिस्र में नील घाटी लोगों को निवास में मदद करती है। यहाँ जल की उपलब्धता होने से लोग खजूर के पेड़ उगाते हैं। यहाँ चावल, गेहूँ, जौ एवं सेम जैसी फसलें भी उगाई जाती हैं। मिस्र में उगाए जाने वाली कपास पूरे विश्व में प्रसिद्ध है।

तेल की खोज संपूर्ण विश्व में अत्यधिक माँग वाले, इस उत्पाद का अल्जीरिया, लीबिया एवं मिस्र में होने के कारण सहारा रेगिस्तान में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। इस क्षेत्र में प्राप्त अन्य महत्वपूर्ण खनिजों में लोहा, फॉस्फोरस, मैंगनीज एवं यूरेनियम सम्मिलित हैं।

सहारा की सांस्कृतिक जीवनशैली में भी परिवर्तन आ रहा है। आज यहाँ मस्जिदों से ऊँचे काँच की खिड़कियों वाले भवन तथा ऊँटों के प्राचीन मार्ग के स्थान पर सुपर महामार्ग बन गए हैं। नमक के व्यापार में ऊँटों का स्थान ट्रक ले रहे हैं। तुआरेग लोग विदेशी पर्यटकों के लिए मार्गदर्शक का काम कर रहे हैं। आज अनेक चलवासी जनजाति के लोग शहरी जीवन की ओर जा रहे हैं, जहाँ वे तेल एवं गैस के कार्यों में नौकरी ढूँढ़ते हैं।

ठंडा रेगिस्तान-लद्दाख

जम्मू एवं कश्मीर के पूर्व में बृहत् हिमालय में स्थित लद्दाख एक ठंडा रेगिस्तान है । इसके उत्तर में काराकोरम पर्वत श्रेणियाँ एवं दक्षिण में जास्कर पर्वत स्थित है। लद्दाख से होकर अनेक नदियाँ बहती हैं, जिनमें सिंधु नदी प्रमुख है। ये नदियाँ गहरी घाटियों एवं महाखड्ड (गॉर्ज) का निर्माण करती हैं। लद्दाख में अनेक हिमानियाँ हैं जैसे गैंग्री हिमानी।

लद्दाख की ऊँचाई कारगिल में लगभग 3000 मीटर से लेकर काराकोरम में 8000 मीटर से भी अधिक पाई जाती है। अधिक ऊँचाई के कारण यहाँ की जलवायु अत्यधिक शीतल एवं शुष्क होती है। इस ऊँचाई पर वायु परत पतली होती है जिससे सूर्य की गर्मी की अत्यधिक तीव्रता महसूस होती है। ग्रीष्म ऋतु में दिन का तापमान 0° सेल्सियस से कुछ ही अधिक होता है एवं रात में तापमान शून्य से 30° सेल्सियस से नीचे चला जाता

है। शीत ऋतु में यह बर्फीला ठंडा हो जाता है. तापमान लगभग हर समय 40° सेल्सियस से नीचे ही रहता है। चूँकि यह हिमालय के वृष्टि-छाया क्षेत्र में स्थित है. अतः यहाँ वर्षा बहुत ही कम होती है. मुश्किल से 10 सेंटीमीटर प्रति वर्ष। यह क्षेत्र बर्फीली हवाओं एवं तेज जलाने वाले सूर्य ताप का अनुभव करता है। यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि यदि आप सूर्य की धूप में इस तरह बैठे कि आपके पैर छाया में हों. तो आप एक साथ एक समय पर ही ऊष्माघात एवं तुषार-उपधात से ग्रसित हो सकते हैं।

वनस्पतिजात एवं प्राणिजात

यहाँ उच्च शुष्कता के कारण वनस्पति विरल है। यहाँ जानवरों के चरने के लिए कहीं-कहीं पर ही घास एवं छोटी झाड़ियाँ मिलती हैं। घाटी में शरपत (विलां) एवं पॉप्लर के उपवन देखे जा सकते हैं। ग्रीष्म ऋतु में सेव, खुवानी एवं अखरोट जैसे पेड़ पल्लवित होते हैं। लद्दाख में पक्षियों की विभिन्न प्रजातियाँ नजर आती हैं। इनमें रॉबिन, रेडस्टार्ट, तिब्बती स्नांकॉक, रैवेन एवं हुप यहाँ पाए जाने वाले सामान्य पक्षी है। इनमें से कुछ प्रवासी पक्षी है। लद्दाख के पशुओं में जंगली बकरी, जंगली भेड़, याक एवं विशेष प्रकार के कुत्ते आदि पाए जाते हैं। इन पशुओं को दूध, मांस एवं खाल प्राप्त करने के लिए पाला जाता है। याक के दूध का उपयोग पनीर एवं मक्खन बनाने के लिए होता है। भेड़ एवं बकरी के बालों का उपयोग ऊनी वस्त्र बनाने के लिए किया जाता है।

लोग

क्या आप लद्दाख एवं तिब्बत तथा मध्य एशिया के निवासियों के बीच कोई समानता पाते हैं? यहाँ के अधिकांश लोग या तो मुसलमान हैं या बौद्ध। वास्तव में लद्दाख क्षेत्र में अनेक बौद्ध मठ अपने परंपरागत' गोंपा' के साथ स्थित है। कुछ प्रसिद्ध मठ हैं हेमिस, थिकसे, शे एवं लामायुरू

ग्रीष्म ऋतु में यहाँ के निवासी जौ, आलू, मटर, संम एवं शलजम की खेती करते हैं। शीत ऋतु में जलवायु इतनी कष्टकारी होती है कि लोग धार्मिक अनुष्ठानों एवं उत्सवों में अपने आपको व्यस्त रखते हैं। यहाँ की महिलाएँ अत्यधिक परिश्रमी होती हैं। वे केवल घर एवं खेतों में ही काम नहीं करती बल्कि छोटे व्यवसाय एवं दुकानें भी संभालती हैं। लद्दाख की राजधानी लेह, सड़क एवं वायुमार्ग द्वारा भलीभाँति जुड़ी हुई है। राष्ट्रीय राजमार्ग । ए लेह को जोजीला दरां होते हुए कश्मीर घाटी से जोड़ता है। क्या आप हिमालय के कुछ अन्य दरों के बारे में बता सकते हैं?

यहाँ का मुख्य क्रियाकलाप पर्यटन है, देश-विदेश से अनेक पर्यटक यहाँ पर्यटन के लिए आते हैं। गोपा-दर्शन, घास के मैदानों व हिमनदों की सैर एवं उत्सवों तथा अनुष्ठानों को देखना यहाँ के प्रमुख पर्यटक आकर्षण हैं।

आधुनिकीकरण के फलस्वरूप यहाँ के जनजीवन में परिवर्तन आ रहा है। लेकिन लद्दाख के लोगों ने शताब्दियों से प्रकृति के साथ समन्वय एवं संतुलन करना सीखा है। जल एवं ईधन जैसे संसाधनों की कमी के कारण ये आवश्यकतानुसार एवं मितव्ययिता से ही इनका उपयोग करते हैं और कुछ भी व्यर्थ नहीं करते।

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

CLASS-08

1. संसाधन
2. भूमि, मृदा, जल, प्राकृतिक वनस्पति और वन्य जीवन संसाधन
3. खनिज और शक्ति ससाधन
4. कृषि
5. उद्योग
6. मानव संसाधन

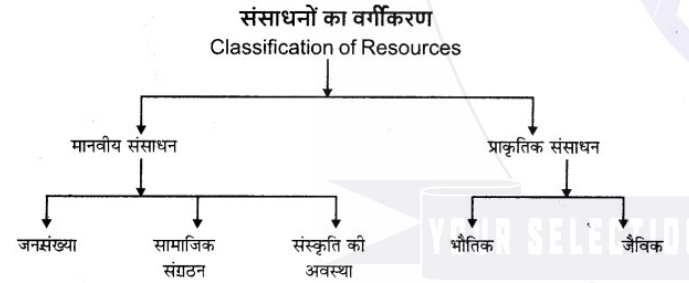
COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

संसाधन

- "प्रत्येक वस्तु जिसका उपयोग आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया जा सकता है, यह संसाधन है।"
- कुछ संसाधनों का आर्थिक मूल्य होता है जबकि कुछ संसाधनों का आर्थिक मूल्य नहीं होता है। उदाहरणार्थ धातुओं का आर्थिक मूल्य होता है लेकिन एक मनोरम भूदृश्य का आर्थिक मूल्य नहीं होता है। परन्तु ये दोनों संसाधन महत्त्वपूर्ण है और मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं।
- समय और प्रौद्योगिकी दी महत्त्वपूर्ण कारक है जी पदार्थों को संसाधन में परिवर्तित कर सकते हैं। दोनों लोगों की आवश्यकताओं से संबंधित हैं। लोग स्वयं ही सबसे महत्त्वपूर्ण संसाधन हैं। ये लोगों के विचार, ज्ञान आविष्कार और खोज ही हैं जो और अधिक संसाधनों की रथन करते हैं। प्रत्येक खोज अथवा आविष्कार से बहुत से अन्य खांज एवं आविष्कार होते हैं। आग की खोज में खाना पकाने की पद्धति एवं अन्य प्रक्रियाओं का प्रचलन हुआ जबकि पहिए के आविष्कार से अन्ततः परिवहन की नवीनतम विधियों का विकास हुआ। जलविद्युत बनाने की प्रौद्योगिकी ने तेजी से बहते जल से उर्जा उत्पन्न करके, उसे एक महत्त्वपूर्ण संसाधन "एक बहुत बना दिया है।

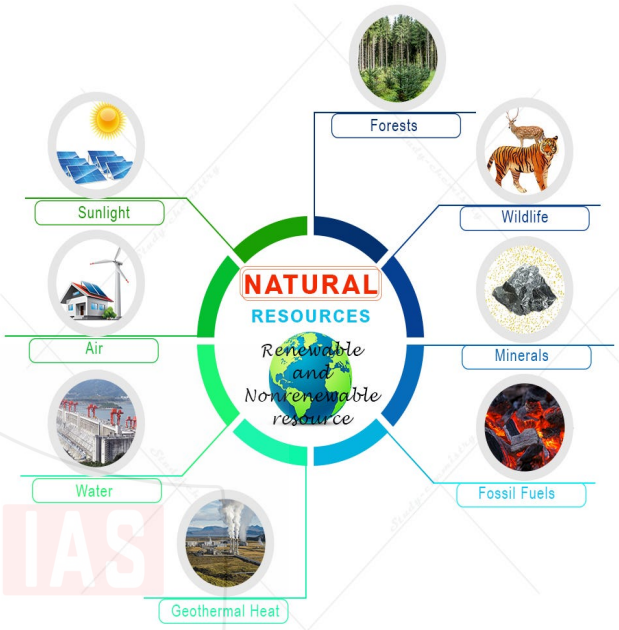
संसाधनों के प्रकार

सामान्यतः संसाधनों को प्राकृतिक मानव निर्मित और मानव में वर्गीकृत किया गया है।



प्राकृतिक ससाधन

- जो संसाधन प्रकृति से प्राप्त होते हैं और अधिक संशोधन के बिना उपयोग में साए जाते हैं. प्रकृतिक संसाधन कहलाये हैं। वायु, जिसमें हम साँस लेते हैं. हमारी नदियों और इखेलों का जल मृदा और सखनिज, सभी प्राकृतिक संसाधन हैं। इन संसाधनों में से बहुत से प्रकृति के निःशुल्क उपहार हैं और सीधे ही उपयोग में लाए जा सकते हैं। कुछ परिस्थितियों में प्राकृतिक संसाधन का सबसे अच्छी तरह उपयोग करने के लिए औसारों और प्रश्द्योगिकी की आवश्यकता हो सकती है।
- विभिन्न समूहों में प्राकृतिक संसाधने का वर्गीकरण उनके विकास एवं प्रयोग के स्ता उद्गम भहार एवं वित्ता के अनुसार किया जाता है। विकास और उपयोग के आधार पर संसाधनों को दो वर्गों में रखा जा सकता है वास्तविक संसाधन और समाज्य संसाधना
-



- वास्तविक समाधन ये संसाधन होते हैं जिनकी मात्रा ज्ञात होती है। इन संसाधनों का इस समय उपयोग किया जा रहा है। जर्मनी के सर प्रदेश में कोयले. पश्चिम एशिया में खनिज तेल, महाराष्ट्र में दक्कन पठार की काली मिट्टी के भरपूर निक्षेप सभी वास्तविक संसाधन हैं।
- सभा संसाधन ये संसाधन हैं जिनकी सम्पूर्ण माझा ज्ञात नहीं हो सकती है और इस समय इनका प्रयोग नहीं किया जा रहा है। इन संसाधनों का उपयोग भविष्य में किया जा सकता है। इस समय जो हमारा प्रौद्योगिकी का स्तर है यह सम्भवतः इन संसाधनों को आसानी से प्रयोग करने के लिए पर्याप्त रूप से उन्नत नहीं है। लद्दाख में पाया गया यूरेनियम संभाव्य संसाधन का एक उदाहरण है जिसका उपयोग भविष्य में किया जा सकता है। 200 वर्ष पूर्व तीव्र गति वाली पवने एक संभाव्य संसाधन थी, किन्तु आज वे वास्तविक संसाधन हैं। जैसे कि नीदरलैण्ड के पवन फामों में पवन चक्की के प्रयोग से ऊर्जा उत्पन्न की जाती है। इस प्रकार के पवन फार्म, तमिलनाडु के नगरकोइल तथा गुजरात के तट पर देखे जा सकते हैं।
- आपके आधार पर संसाधनी को अब और जैग संसाधनों में बाँटा जा सकता है। अजैव संसाधन निर्जीव वस्तुएँ होती हैं जबकि जैव संसाधन सजीव होते हैं। मृदा, चट्टाने और खनिज अजैव संसाधन है। परन्तु पौधे और जंतु जैव संसाधन हैं।
- प्राकृतिक संसाधनों को विस्तृत रूप से नोकरणीय और अनयीकरणीय संसाधनों में विभाजित किया जा सकता है।
- नवीकरणीय संसाधन ये संसाधन है जो शीघ्रता से नवीकृत अथवा पुनः पूरित हो जाते हैं। इनमें से कुछ असीमित है और उन पर मानवीय क्रियाओं का प्रभाव नहीं होता, जैसे नवीकरणीय संसाधनों,

जैसे सौर और पवन ऊर्जा। लेकिन फिर भी कुछ जल. मुदा और बन का लापरवाही से किया गया उपयोग उनके भंडार को प्रभावित कर सकता है। जल असीमित नवीकरणीय संसाधन प्रतीत होता है। फिर भी जल की कमी और प्राकृतिक जल स्रोतों का सूखना आज विश्व के बहुत से भागों में एक बड़ी समस्या है।

- अनवीकरणीय संसाधन ये संसाधन है जिनका भंडार सीमित है। भंडार के एक बार समाप्त होने के बाद उनके नवीकृत अथवा पुनः पूरित होने में हणारी वर्ष लग सकते हैं। यह अवधि मानव जीवन की अवधि से बहुत अधिक है. इस प्रकार के संसाधन अनवीकरणीय कहलाते हैं। कोयला, पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस इसके कुछ उदाहरण हैं।
- संसाधनों के वितरण के आधार पर ये सर्वव्यापक अथवा स्थानिक हो सकते हैं। जो संसाधन सभी जगह पाए जाते हैं. जैसे वायु जिसमें हम साँस लेते हैं. सर्वव्यापक है। लेकिन वे संसाधन जो कुछ निश्चित स्थानों पर ही पाए जाते हैं. स्थानिक कहलाते हैं, जैसे ताँबा और लौह अयस्क।
- प्राकृतिक संसाधनों का वितरण भूभाग, जलवायु ऊँचाई जैसे अनेक भौतिक कारकों पर निर्भर करता है। पृथ्वी पर इन कारकों में विभिन्नता होने के कारण संसाधनों का वितरण असमान है।

मानव निर्मित संसाधन



- कभी-कभी प्राकृतिक पदार्थ तब संसाधन बन जाते हैं जब उनका मूल रूप बदल दिया जाता है। लौह अयस्क उस समय तक संसाधन नहीं था जब तक लोगों ने उससे लोहा बनाना नहीं सीखा था। लोग प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग पुल. सड़क, मशीन और वाहन बनाने में करते हैं जे मानव निमित संसाधन के नाम से जाने जाते हैं। प्रौद्योगिकी भी एक मानव निर्मित संसाधन है।
- "इसीलिए हम प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करके मानव निर्मित संसाधन बनाते हैं"

मानव संसाधन

- लोग और अधिक संसाधन चनाने के लिए प्रकृति का सबसे अच्छा उपयोग तभी कर सकते है जब उनके पास ऐसा करने का ज्ञान, कौशल तथा प्रौद्योगिकी उपलब्ध हो। इसलिए मनुष्य एक विशिष्ट प्रकार का संसाधन है। अतः लोग मानव संसाधन हैं। शिक्षा और स्वास्थ्य, लोगों को बहुमूल्य संसाधन बनाने में मदद करते हैं। अधिक संसाधनों के निर्माण में समर्थ होने के लिए लोगों की कौशल में सुधार करना मानव संसाधन विकास कहलाता है।

संसाधन सरक्षण

- संसाधनों का सतर्कता पूर्वक उपयोग करना और उन्हें नयीकरण के लिए समय देना, संसाधन संरक्षण कहलाता है। संसाधनों का उपयोग करने की आवश्यकता और भविष्य के लिए उनके संरक्षण में संतुलन बनाए रखना, सतपोषनीय विकासम कहलाता है। संसाधनों के संरक्षण के अनेक तरीके हैं। प्रत्येक व्यक्ति उपभांग को कम करके वस्तुओं के पुनःचक्रण और पुनः उपयोग द्वारा योगदान दे सकता है। अन्ततः यह एक विभिन्नता बनाता है क्योंकि सभी जीयन एक-दूसरे से जुड़े हैं।

भूमि, मृदा, जल, प्राकृतिक वनस्पति और वन्य जीवन संसाधन

- भूमि की गुणवत्ता, मृदा, जल, प्राकृतिक वनस्पति, प्राणियों और प्रौद्योगिकी के उपयोग की भिन्नता के कारण है। इन स्थानों का एक-दूसरे से भिन्न होने का मुख्य कारण इस प्रकार के संसाधनों की उपलब्धता है।

भूमि

- सभी महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधनों में भूमि भी शामिल है। भूपृष्ठ के कुल क्षेत्रफल का लगभग 30 प्रतिशत भाग भूमि है। यही नहीं इस थोड़े से प्रतिशत के भी सभी भाग आवास योग्य नहीं हैं।
- मुख्यतः भूमि और जलवायु के भिन्न-भिन्न लक्षणों के कारण विश्व के विभिन्न भागों में जनसंख्या का वितरण असमान पाया जाता है। ऊबड़-खाबड़ स्थलाकृति, पर्वतों के तीव्र ढाल, जलाक्रांत संभावित निम्न क्षेत्र, मरूस्थल क्षेत्र एवं सघन वन क्षेत्र सामान्यतः विरल अथवा निर्जन है। उर्वर मैदानों और नदी घाटियों में कृषि के लिए उपयुक्त भूमि उपलब्ध हैं। इसलिए, ये स्थान विश्व के सघन बसे क्षेत्र हैं।

भूमि उपयोग

- भूमि का उपयोग विभिन्न कार्यों के लिए किया जाता है, जैसे कृषि, वानिकी, खनन, सड़कों और उद्योगों की स्थापना। साधारणतः इसे भूमि उपयोग कहते हैं। क्या आप माम्बा और पीटर के परिवारों के भूमि उपयोग के विभिन्न तरीकों की सूची बना सकते हैं?
- भूमि का उपयोग भौतिक कारकों द्वारा निर्धारित किया जाता है, जैसे स्थलाकृति, मृदा, जलवायु, खनिज और जल की उपलब्धता। मानवीय कारक जैसे जनसंख्या और प्रौद्योगिकी भी भूमि उपयोग प्रतिरू प के महत्त्वपूर्ण निर्धारक हैं।
- निजी भूमि और सामुदायिक भूमि के आधार पर भी भूमि को बाँटा जा सकता है, निजी भूमि व्यक्तियों के स्वामित्व में होती है जबकि सामुदायिक भूमि समुदाय के स्वामित्व में होती है। सामान्य रूप से इसका उपयोग समुदाय से संबंधित व्यक्तियों के लिए किया जाता है, जैसे चारा, फलों, नट या औषधीय बूटियों को एकत्रित करना। इन सामुदायिक भूमि को साझा संपत्ति संसाधन भी कहते हैं।
- जनसंख्या और उनकी माँग सदैव बढ़ती रहती हैं लेकिन भूमि की उपलब्धता सीमित है। स्थान के अनुसार भूमि की गुणवता में अन्तर होता है। लोगों ने सामुदायिक भूमि पर व्यापारिक क्षेत्र बनाने, नगरीय क्षेत्रों में घर बनाने और ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि का विस्तार करने के लिए अनाधिकृत हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया है। आज भूमि उपयोग प्रतिरूप में व्यापक परिवर्तन हमारे समाज में सांस्कृतिक परिवर्तनों को दर्शाते हैं। वर्तमान में कृषि और निर्माण सम्बन्धी गतिविधियों के प्रसार के कारण निम्नीकरण, भूस् खलन, मृदा अपरदन, मरूस्थलीकरण पर्यावरण के लिए प्रमुख खतरा है।

भूमि संसाधन का संरक्षण

- बढ़ती जनसंख्या तथा इसकी बढ़ती माँगों के कारण वन भूमि और कृषि योग्य भूमि का बड़े पैमाने पर विनाश हुआ है। इससे इस प्राकृतिक संसाधन के समाप्त होने का डर पैदा हो गया है। इसीलिए विनाश की वर्तमान दर को अवश्य ही रोकना चाहिए। वनरोपण, भूमि उद्धार, रासायनिक कीटनाशकों और उर्वरकों के विनियमित उपयोग तथा अतिचारण पर रोक आदि भूमि संरक्षण के लिए प्रयुक्त कुछ सामान्य तरीके हैं।

मृदा

- पृथ्वी के पृष्ठ पर दानेदार कणों के आवरण की पतली परत मृदा कहलाती है। यह भूमि से निकटता से जुड़ी हुई है। स्थल रूप मृदा के प्रकार को निर्धारित करते हैं। मृदा का निर्माण चट्टानों से प्राप्त खनिजों और जैव पदार्थ तथा भूमि पर पाए जाने वाले खनिजों से होता है। यह अपक्षय की प्रक्रिया के माध्यम से बनती है। खनिजों और जैव पदार्थों का सही मिश्रण मृदा को उपजाऊ बनाता है।

भूस्खलन

भूस्खलन को सामान्य रूप से शैल, मलबा या ढाल से गिरने वाली मिट्टी के बृहत संचलन के रूप में परिभाषित किया जाता है। वे प्रायः भूकंप, बाढ़ और ज्वालामुखी के साथ घटित होते हैं। लबे समय तक भारी वर्षा होने से भूस्खलन होता है। यह नदी के प्रवाह को कुछ समय के लिए अवरुद्ध कर देता है। नदी अवरुद्धता के अचानक फूट पड़ने से निचली घाटियों के आवासों में विध्वंस आ जाता है। पहाड़ी भू-भाग में, भूस्खलन एक मुख्य और विस्तृत रूप से फैली प्राकृतिक आपदा है जो प्रायः जीवन और संपत्ति को आघात पहुँचाती है और चिंता का एक मुख्य विषय है।

एक वस्तुस्थिति अध्ययन

हिमाचल प्रदेश के किन्नौर जिले में रेकांग पीओ के निकट पंजी गाँव में बड़े भूस्खलन के कारण राष्ट्रीय महामार्ग-22 की पुरानी हिंदुस्तान-तिब्बत सड़क का 200 मीटर तक का भाग नष्ट हो गया। यह भूस्खलन पंजी गाँव में तीव्र विस्फोटन द्वारा हुआ था। विस्फोटन के कारण ढाल का यह कमजोर क्षेत्र नीचे गिर गया, जिसके कारण सड़क और गाँव के आस-पास के क्षेत्र को क्षति पहुंची। पंजी गाँव को किसी संभावित मानव विनाश से बचाने के लिए पूर्ण रूप से खाली करा दिया गया था।

न्यूनीकरण क्रियाविधि

वैज्ञानिक प्रविधियों के विकास से हमें समझने की शक्ति मिली है कि भूस्खलन उत्पन्न होने के कौन-कौन से कारक हैं और उनका प्रबन्धन कैसे करना है। भूस्खलन को रोकने की कुछ प्रविधियाँ निम्न है:

भूस्खलन प्रभावी क्षेत्रों का मानचित्र बनाकर इसमें प्रभावित होने वाले स्थानों को इंगित करना। इस प्रकार इन क्षेत्रों को आवास बनाने के लिए छोड़ा जा सकता है।

भूमि को खिसकने से बचाने के लिए प्रतिधारी दीवार का निर्माण। भूस्खलन को रोकने का सबसे प्रभावी तरीका वनस्पति आवरण में वृद्धि है।

सतही अपवाह तथा झरना प्रवाहों के साथ-साथ भूस्खलन की गतिशीलता को नियंत्रित करने के लिए पृष्ठीय अपवाह नियंत्रण उपाय कार्यान्वित किए गए है।

मृदा

- जनक शैल, रंग, गठन, रासायनिक गुणधर्म, खनिज, मात्रा, पारगम्यता को निर्धारित करती है।
- उच्चावच तुगता और ढाल मृदा के संचय को निर्धारित करते हैं।
- वनस्पतिजात, प्राणिजात और सूक्ष्म जीव ह्यूमस निर्माण की दर को प्रभावित करते हैं।
- जलवायु, तापमान, वर्षा, अपक्षय और हामस निर्माण की दर को प्रभावित करते हैं।
- समय, मृदा परिच्छेदिका को मोटाई को निश्चित करता है।

मृदा निर्माण के कारक

- मृदा निर्माण के मुख्य कारक जनक शैल का स्वरूप और जलवायविक कारक हैं। मृदा निर्माण के अन्य कारक स्थलाकृति, जैव पदाथों की भूमिका और मृदा निर्माण के संघटन में लगा समय है। अलग-अलग स्थानों में ये भिन्न-भिन्न हैं।

मृदा का निम्नीकरण और संरक्षण के उपाय

- मृदा अपरदन और क्षीणता मृदा संसाधन के लिए दो मुख्य खतरे हैं। मानवीय और प्राकृतिक दोनों ही कारकों से मृदाओं का निम्नीकरण हो सकता है। मृदा के निम्नीकरण में सहायक कारक वनोन्मूलन, अतिचारण, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग, वर्षा दोहन, भूस्खलन और बाढ़ हैं।

मृदा संरक्षण की कुछ विधियाँ निम्न प्रकार हैं:

- मल्च बनाना: पौधों के बीच अनावरित भूमि जैव पदार्थ जैसे प्रवाल से ढक दी जाती है। इससे मृदा की आर्द्रता रूकी रहती है।
- वेदिका फार्म : ये तीव ढालों पर बनाए जाते हैं। ताकि सपाट सतह फसल उगाने के लिए उपलब्ध हो जाए। इनसे पृष्ठीय प्रवाह और मृदा अपरदन कम हो सकता है।
- समोच्चरेखीय जुताई: एक पहाड़ी ढाल पर समोच्च रेखाओं के सामान्तर जुताई ढाल से नीचे बहते जल के लिए एक प्राकृतिक अवरोध का निर्माण करती है ।
- रक्षक मेखलाएँ तटीय प्रदेशों और शुष्क प्रदेशों में पवन गति रोकने के लिए वृक्ष कतारों में लगाए जाते हैं ताकि मृदा आवरण को बचाया जा सकें ।
- समोच्चरेखीय रोधिकाएँ समोच्चरेखाओं पर रोधिकाएँ बनाने के लिए पत्थरों, घास, मृदा का उपयोग किया जाता है। रोधिकाओं के सामने जल एकत्र करने के लिए खाइयाँ बनाई जाती हैं।
- चट्टान बाँध यह जल के प्रवाह को कम करने के लिए बनाए जाते हैं। यह नालियों की रक्षा करते हैं और मृदा क्षति को रोकते हैं। बीच की फसल उगाना वर्षा दोहन से मृदा को सुरक्षित रखने के लिए अलग-अलग समय पर भिन्न-भिन्न फसलें एकांतर कतारों में उगाई जाती हैं।

जल

- जल एक महत्त्वपूर्ण नवीकरणीय प्राकृतिक संसाधन है, भूपृष्ठ का तीन-चौथाई भाग जल से ढका है। इसीलिए इसे 'जल ग्रह' कहना उपयुक्त है। लगभग 3.5 अरब वर्ष पहले जीवन, आदि महासागरों में ही प्रारंभ हुआ था। यद्यपि आज भी महासागर पृथ्वी की सतह के दो-तिहाई भाग को ढके हुए हैं और विविध प्रकार के पौधों और जंतुओं को मदद करते हैं। महासागरों का जल लवणीय है और मानवीय उपभोग के लिए उपयुक्त नहीं है। अलवण जल केवल 2.7 प्रतिशत ही है। इसका लगभग 70 प्रतिशत भाग बर्फ की चादरों और हिमानियों के रूप में अंटार्कटिका, ग्रीनलैंड और पर्वतीय प्रदेशों में पाया जाता है। अपनी स्थिति के कारण ये मनुष्य की पहुँच के बाहर है। केवल एक प्रतिशत अलवण जल उपलब्ध है और वह मानव उपभोग के लिए उपयुक्त है। यह भौम जल, नदियों और झीलों में पृष्ठीय जल के रूप में तथा वायुमंडल में जलवाष्प के रूप में पाया जाता है।
- इसलिए अलवणीय जल पृथ्वी का सबसे अधिक मूल्यवान पदार्थ है। पृथ्वी पर जल न बढ़ाया जा सकता है और न घटाया जा सकता है। इसकी कुल मात्रा स्थिर रहती है। इसकी प्रचुरता में विविधता प्रतीत होती है क्योंकि यह वाष्पीकरण, वर्षण और वाह की प्रक्रियाओं द्वारा महासागरों, वायु, भूमि और पुनः महासागरों में चक्रण द्वारा निरंतर गतिशील है। जैसा कि आप जानते हैं इसे 'जल चक्र' कहते हैं। मनुष्य जल की बड़ी मात्रा का उपयोग न केवल पीने और धुलाई में ही करता है वरन उत्पादन प्रक्रिया में भी करता है। जल कृषि, उद्योगों तथा बाँधों के जलाशयों के माध्यम से विद्युत उत्पादन करने में भी प्रयोग किया जाता है। जल स्रोतों के सूखने अथवा जल प्रदूषण के कारण अलवणीय जल की आपूर्ति की कमी के मुख्य कारक बढ़ती जनसंख्या, भोजन और नकदी फसलों की बढ़ती माँग, बढ़ता नगरीकरण और बेहतर होता जीवन स्तर हैं।

जल उपलब्धता की समस्याएँ

- विश्व के कई प्रदेशों में जल की कमी है। अधिकांश अफ्रीका, पश्चिमी एशिया, दक्षिणी एशिया, पश्चिमी संयुक्त राज्य अमेरिका के भाग, उत्तर-पश्चिमी मैकस्किो, दक्षिण अमेरिका के भाग और संपूर्ण आस्ट्रेलिया अलवणीय जल की आपूर्ति की कमी का सामना कर रहे हैं। वे देश ऐसे जलवायु प्रदेशों में स्थित हैं जहाँ अकसर सूखा

पड़ता है। उनमें जलाभाव की अधिक समस्या बनी रहती है। इस प्रकार जल का अभाव मौसमी अथवा वार्षिक वर्षण में विविधता के परिणामस्वरूप हो सकता है अथवा अति उपयोग और जल स्रोतों के संदूषण के कारण भी जल का अभाव हो सकता है।

जल संसाधनों का संरक्षण

- आज के विश्व में शुद्ध तथा पर्याप्त जल स्रोतों तक पहुँचना एक बड़ी समस्या बन गई है। इस क्षीण होते संसाधन के संरक्षण के लिए कदम उठाने चाहिए। यद्यपि जल एक नवीकरणीय संसाधन है तथापि इसका अतिउपयोग और प्रदूषण इसे उपयोग के लिए अनुपयुक्त बना देते हैं। अशोधित या आशिक रूप से शोधित वाहित मल, कृषि रसायनों का विसर्जन और जल निकायों में औद्योगिक बहिः स्राव जल के प्रमुख संदूषक हैं। इनमें शामिल नाइट्रेट धातुएँ और पीड़कनाशी, जल को प्रदूषित कर देते हैं। इनमें से अधिकांश रसायन अजैव निम्नीकरणीय होने के कारण जल द्वारा मानव शरीर में पहुँच जाते हैं। इन प्रदूषकों को जल निकायों में छोड़ने से पूर्व बहिःस्रावों को उपयुक्त विधि से शोधित करके जल प्रदूषण नियंत्रित किया जा सकता है।
- वन और अन्य वनस्पति आवरण धरातलीय प्रवाह को मंद करते हैं और भूमिगत जल को पुनः पूरित करते हैं। जल संग्रहण पृष्ठीय प्रवाह को बचाने की दूसरी विधि है।
- जल का उपयोग खेतों की सिंचाई के लिए किया जाता है। जल रिसाव को कम करने के लिए नहरों को ठीक से पक्का करना चाहिए। रिसाव और वाष्पीकरण से होने वाली जल क्षति को रोकने के लिए क्षेत्र की स्प्रिंकलरों से सिंचाई करना अधिक प्रभावी विधि है। वाष्पीकरण की अधिक दर वाले शुष्क प्रदेशों में सिंचाई की ड्रिप अथवा टपकन विधि वहुत उपयोगी होती है। संरक्षण की इन विधियों को अपनाकर बहुमूल्य जल संसाधन को संरक्षित किया जा सकता है।

प्राकृतिक वनस्पति और वन्य जीवन

- स्कूल के बच्चे हस्तशिल्प प्रदर्शनी में घूम रहे थे। प्रदर्शनी की वस्तुएँ देश के भिन्न-भिन्न भागों से एकत्रित की गई थीं। मोना ने एक थैला हाथ में उठाया और उत्साह से कहा, "यह एक सुंदर हैंड बैग है।" अध्यापिका ने कहा, "हाँ, यह जूट से बना है।" "क्या आप उन टोकरियों, दीप छत्रों और कुर्सियों को देखते हैं? वे बेंत और बाँस की बनी हैं। भारत के पूर्वी और उत्तरी पूर्वी आर्द्र प्रदेशों में बाँस प्रचुर मात्रा में पैदा किया जाता है।" जेस्सी रेशमी स्कार्फ देखखकर उत्साहित थी। "यह खूबसूरत स्कार्फ देखो।" अध्यापिका ने स्पष्ट किया कि रेशम रेशमकीटों से प्राप्त किया जाता है जो शहतूत के पेड़ों पर पाले जाते हैं। बच्चे समझ गए कि पौधे हमें अनेक विभिन्न उत्पाद प्रदान करते हैं जिनका उपयोग हम अपने दैनिक जीवन में करते हैं।
- प्राकृतिक वनस्पति और वन्य जीवन केवल स्थलमंडल. जलमंडल और वायुमंडल के बीच जुड़े एक सँकरे क्षेत्र में ही पाए जाते हैं जिसे हम जैवमंडल कहते हैं। जैवमंडल में सभी जीवित जातियाँ जीवित रहने के लिए एक-दूसरे से परस्पर संबंधित और निर्भर रहती हैं। इस जीवन आधारित तंत्र को पारितंत्र कहते हैं। वनस्पति और वन्य जीवन बहुमूल्य संसाधन हैं। पौधे हमें इमारती लकड़ी देते हैं, प्राणियों को आश्रय देते हैं, ऑक्सीजन उत्पन्न करते है जिसमें हम साँस लेते हैं, फसलों को उगाने के लिए आवश्यक मृदा की सुरक्षा करते हैं. रक्षक मेखला के रूप में कार्य करते हैं, भूमिगत जल के संग्रह में सहायता करते हैं, हमें फल, लैटेक्स, तारपीन का तेल, गोंद, औषधीय पौधे और कागज प्रदान करते हैं जो आपके अध्ययन के लिए अत्यधिक आवश्यक है। पौधों के असंख्य उपयोग हैं उनमें आप कुछ और जोड़ सकते हैं।
- वन्य जीवन के अंतर्गत जंतु, पक्षी, कीट एवं जलीय जीव रूप आते हैं। उनसे हमें दूध, मांस, खाल और ऊन प्राप्त होती है। कीट जैसे मधुमक्खी हमें शहद देती हैं, फूलों के परागण में मदद करती है और पारितंत्र में अपघटक के रूप में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। चिड़ियाँ अपने भोजन के लिए कीटों पर निर्भर हैं और अपघटकों के रूप में कार्य करती हैं। गिद्ध मृत जीव-जंतुओं को खाने के कारण एक अपमार्जक है और पर्यावरण का एक महत्त्वपूर्ण शोधक समझा जाता है। इसलिए प्राणी चाहे बड़े हों अथवा छोटे सभी पारितंत्र के संतुलन को बनाए रखने के लिए अनिवार्य हैं।

प्राकृतिक वनस्पति का वितरण

- वनस्पति की वृद्धि मुख्य रूप से तापमान और आर्द्रता पर निर्भर करती है। विश्व की वनस्पति के मुख्य प्रकारों को चार वर्गों में रखा जा सकता है, जैसे वन, घास स्थल, गुल्म और टुंड्रा।
- भारी वर्षा वाले क्षेत्रों में विशाल वृक्ष उग सकते हैं। इस प्रकार वन प्रचुर जल आपूर्ति वाले क्षेत्रों में ही पाए जाते हैं। जैसे-जैसे आर्द्रता कम होती है
- वृक्षों का आकार और उनकी सघनता कम हो जाती है। सामान्य वर्षा वाले क्षेत्रों में छोटे आकार वाले वृक्ष और घास उगती है जिससे विश्व के घास स्थलों का निर्माण होता है। कम वर्षा वाले शुष्क प्रदेशों में कँटीली झाड़ियाँ एवं गुल्म उगते हैं। इस प्रकार के क्षेत्रों में पौधों की जड़ें गहरी होती हैं। वाष्पोत्सर्जन से होने वाली आर्द्रता की हानि को घटाने के लिए इन पेड़ों की पत्तियाँ काँटेदार और मोमी सतह वाली होती हैं। शीत ध्रुवीय प्रदेशों की टुंड्रा वनस्पति में मॉस और लाइकेन सम्मिलित हैं।
- वनों को उनकी पत्तियाँ गिराने के आधार पर प्रायः सदाहरित वन और पर्णपाती वन के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। सदाहरित वन उन्हें कहते हैं जिन वनों के वृक्ष वर्ष के किसी भी ऋतु में अपनी पत्तियाँ एक साथ नहीं गिराते हैं। पर्णपाती वन ऐसे वन हैं- जिनके वृक्ष

वाष्पोत्सर्जन से होने वाली हानि को रोकने के लिए किसी विशेष ऋतु में अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं। ये वन विभिन्न अक्षांशों में इनकी स्थिति के आधार पर उष्ण कटिबंधीय अथवा शीतोष्ण कटिबंधीय में वर्गीकृत किए गए हैं। आप पिछली कक्षा में विभिन्न प्रकारों के वन, उनके वितरण और उनसे संबंधित प्राणी जीवन के बारे में विस्तार से पढ़ चुके हैं।

- पिछली दो शताब्दियों में विश्व में जितने लोग थे इस समय उनसे कहीं अधिक लोग हैं। बढ़ती जनसंख्या के पोषण के लिए, फ़सलों को उगाने के लिए, वनों के विशाल क्षेत्रों से वृक्ष काट दिए गए हैं। विश्व भर में वनों का आवरण तेजी से समाप्त हो रहा है। इस बहुमूल्य संसाधन के संरक्षण की तुरंत आवश्यकता है।

प्राकृतिक वनस्पति और वन्य जीवन का संरक्षण

- वन हमारी संपदा है। पौधे जंतुओं को आश्रय प्रदान करते हैं और साथ ही पारितंत्र को भी अनुरक्षित रखते हैं। जलवायु में परिवर्तन और मानव हस्तक्षेप के कारण पौधों और जंतुओं के प्राकृतिक आवास नष्ट हो सकते हैं। बहुत-सी जातियाँ असुरक्षित अथवा संकटापन्न हैं और कुछ लुप्त होने के कगार पर हैं। वनोन्मूलन, मृदा अपरदन, निर्माण कार्य, दावानल और भूस्खलन में से कुछ मानव-निर्मित और प्राकृतिक कारक हैं जो मिलकर इन महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधनों के लुप्त होने की प्रक्रिया को बढ़ावा देते हैं। आज की मुख्य चिंताओं में से एक अनधिकार शिकार करने की संख्या का बढ़ना है जिससे कुछ खास प्रजातियों की संख्या में तेजी से कमी आई है। पशु खाल, चमड़ा, नाखून, दाँत और पंखों के साथ-साथ सींगों के एकत्रीकरण और गैर-कानूनी व्यापार के लिए जंतुओं का अनधिकार शिकार किया गया है। इनमें से कुछ जंतु चीता, शेर, हाथी, ब्लैकबक, मगरमच्छ, दरियाई घोड़ा, हिम तेंदुआ, शुतुरमुर्ग और मोर हैं। इनका संरक्षण जागरुकता बढ़ाकर किया जा सकता है।
- राष्ट्रीय उद्यान, वन्य जीव अभयारण्य, जैवमंडल निचय, हमारी प्राकृतिक वनस्पति और वन्य जीवन को सुरक्षित रखने के लिए बनाए जाते हैं। सँकरी घाटियों, झीलों और आर्द्रभूमि का संरक्षण मूल्यवान संसाधन नष्ट होने से बचाने के लिए आवश्यक है।
- यदि प्रजातियों की सापेक्ष संख्या को भंग न किया जाए तो पर्यावरण में संतुलन बना रहता है। विश्व के अनेक भागों में मनुष्य ने अपने क्रिया कलापों से अनेक प्रजातियों के प्राकृतिक आवासों में उथल-पुथल कर दी है। अनेक पक्षियों और जीव-जंतुओं के अंधाधुंध शिकार के कारण या तो वे विलुप्त हो गए हैं या विलुप्त होने के कगार पर हैं। प्रादेशिक और सामुदायिक स्तर पर जागरूकता कार्यक्रमों जैसे सामाजिक वानिकी, वनमहोत्सव को प्रोत्साहित करना चाहिए। स्कूल के बच्चों को पक्षी देखने, प्राकृतिक कैंपों में जाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि वे विविध जातियों के निवास का अवलोकन कर सकें।
- बहुत से देशों ने कानून बना दिया है कि पक्षियों और पशुओं को मारना और उनका व्यापार करना गैर-कानूनी है। भारत में शेरों, चीतों, हिरणों, भारतीय सारंग और मोर के मारनं पर प्रतिबंध लगाया गया है।
- एक अंतर्राष्ट्रीय परिपाटी सी.आई.टी.ई.एस. (द कन्वेंशन ऑन इंटरनेश्नल ट्रेड इन इनडेंजर्ड स्पीशीष ऑफ वाइल्ड फौना एंड फ्लौरा) की स्थापना की गई है जिसने प्राणियों और पक्षियों की अनेक जातियों की सूची तैयार की है। इस सूची में दिए गए सभी पक्षियों और प्राणियों के व्यापार करने पर प्रतिबंध लगाया गया है।

जैवमंडल निचय

यह वैश्विक नेटवर्क द्वारा जुड़े रक्षित क्षेत्रों की एक श्रृंखला है जिसे संरक्षण और विकास के बीच संबंध को प्रदर्शित करने के इरादे से बनाया गया है।

COACHUPMAT
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

खनिज और शक्ति संसाधन

- प्राकृतिक रूप से प्राप्त होने वाला पदार्थ जिसका निश्चित रासायनिक संघटन हो, वह एक खनिज है। खनिज सभी स्थानों पर समान रूप से वितरित नहीं हैं। वे किसी विशेष क्षेत्र में या शैल समूहों में संकेंद्रित हैं। कुछ खनिज ऐसे क्षेत्रों में पाए जाते हैं जो आसानी से अभिगम्य नहीं हैं जैसे आर्कटिक महासागर संस्तर और अंटार्कटिका।
- खनिज विभिन्न प्रकार के भूवैज्ञानिक परिवेश में अलग-अलग दशाओं में निर्मित होते हैं। वे बिना किसी मानवीय हस्तक्षेप के, प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा निर्मित होते हैं। वे अपने भौतिक गुणों, जैसे रंग, घनत्व, कठोरता और रासायनिक गुणों यथा विलेयता के आधार पर पहचाने जा सकते हैं।

शैल खनिज अवयवों के अनिश्चित संघटन वाले एक या एक से अधिक खनिजों का एक समूहन है।

शैल जिनसे खनिजों का खनन किया जाता है. अयस्क कहे जाते हैं।

यद्यपि 2,800 से अधिक खनिजों की पहचान की गई है जिनमें से केवल लगभग 100 अयस्क खनिज समझे जाते हैं। इस तरह कोई भी आसानी से बता सकता है कि सभी खनिज शैल हैं लेकिन सभी शैल खनिज नहीं है।

खनिजों के प्रकार

- पृथ्वी पर तीन हजार से अधिक विभिन्न खनिज हैं। संरचना के आधार पर, खनिजों को मुख्यतः धात्विक और अधात्विक खनिजों में वर्गीकृत किया गया है
- बात्विक खनिजों में धातु कच्चे रूप में होती है। धातुएँ कठोर पदार्थ है, जो ऊष्मा और विद्युत को सुचालित करती हैं और जिनमें द्युति या चमक की विशेषता होती है। लौह अयस्क, बॉक्साइट, मैंगनीज अयस्क इनके कुछ उदाहरण हैं। धात्विक खनिज लौह अथवा अलौह हो सकते हैं। लौह खनिजों, जैसे लौह अयस्क, मैंगनीज और क्रोमाइट में लोहा होता है। अलौह खनिज में लोहा नहीं होता है किंतु कुछ अन्य धातु, यथा सोना, चाँदी, ताँवा या सीसा हो सकती है।
- अधात्विक खनिजों में धातुएँ नहीं होती है। चूना पत्थर, अभ्रक और जिप्सम इन खनिजों के उदाहरण हैं। खनिज ईंधन जैसे कोयला और पेट्रोलियम भी अधात्विक खनिज हैं।
- खनिजों को खनन, प्रवेधन या आखनन द्वारा निष्कर्षित किया जा सकता है
- पृथ्वी की सतह के अंदर दबी शैलों से खनिजों को बाहर निकालने की प्रक्रिया खनन कहलाती है। खनिज जां कम गहराई में स्थित हैं वे पृष्ठीय स्तर को हटाकर निकाले जाते हैं, इसे विवृत खनन कहते हैं। गहन बंधन जिन्हें कूपक कहते हैं, अधिक गहराई में स्थित खनिज निक्षेपों तक पहुँचने के लिए बनाए जाते हैं। इसे कूपकी खनन कहते हैं। पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस धरातल के बहुत नीचे पाए जाते हैं। उन्हें बाहर निकालने के लिए गहन कूपों की खुदाई की जाती है, इसे प्रबंधन कहते हैं । सतह के निकट स्थित खनिजों को जिस प्रक्रिया द्वारा आसानी से खोदकर निकाला जाता है. उसे आखनन कहते हैं।

खानिजों का वितरण

- खनिज विभिन्न प्रकार की शैलों में पाए जाते हैं। कुछ आग्नेय शैलों में पाए जाते हैं. कुछ कायांतरित शैलों में जबकि अन्य अवसादी शैलों में पाए जाते है। धात्विक खनिज आग्नेय और कायांतरित शैल समूहों, जिनसे विशाल पठारों का निर्माण होता है, में पाए जाते हैं। उत्तरी स्वीडन में लौह अयस्क, औटेरियो (कनाडा) में ताँबा और निकेल के निक्षेप, दक्षिण अफ्रीका में लोहा, निकेल, क्रोमाइट और प्लेटिनम, आग्नेय और कायांतरित शैलों में पाए जाने वाले खनिजों के उदाहरण हैं। मैदानों और नवीन वलित पर्वतों के अवसादी शैल समूहों में अधात्विक खनिज जैसे चूना पत्थर पाए जाते हैं। फ्रांस के कॉकेशस प्रदेश के चूना पत्थर निक्षेप, जार्जिया और यूक्रेन के मैंगनीज निक्षेप और अल्जीरिया के फास्फेट संस्तर इसके कुछ उदाहरण है। खनिज इंधन जैसे कोयला और पेट्रोलियम भी अवसादी स्तर में पाए जाते हैं।

एशिया

- चीन और भारत के पास विशाल लौह अयस्क निक्षेप हैं। यह महाद्वीप विश्व का आधे से अधिक टिन उत्पादन करता है। चीन, मलेशिया और इंडोनेशिया विश्व के अग्रणी टिन उत्पादकों में है। चीन सीसा, एन्टीमनी और टंगस्टन के उत्पादन में भी अग्रणी है। एशिया में मैंगनीज, बॉक्साइट, निकेल, जस्ता और ताँबा के भी निक्षेप हैं।

यूरोप

- यूरोप विश्व में लौह अयस्क का अग्रणी उत्पादक है। रूस, यूक्रेन, स्वीडन और फ्रांस लौह अयस्क के विशाल निक्षेप वाले देश हैं। ताँबा, सीसा, जस्ता, मैंगनीज और निकेल खनिजों के निक्षेप पूर्वी यूरोप और यूरोपीय रूस में पाए जाते हैं।

उत्तर अमेरिका

- उत्तर अमेरिका में खनिज निक्षेप तीन क्षेत्रों में अवस्थित हैं- ग्रेट लेक के उत्तर में कनाडियन शील्ड प्रदेश, अप्लेशियन प्रदेश और पश्चिम की पर्वत श्रृंखलाएँ। लौह अयस्क, निकेल, सोना, यूरेनियम और ताँबा का खनन कनाडियन शील्ड प्रदेश में और कोयले का अप्लेशियन प्रदेश में होता है। पश्चिमी कार्डीलेरा में ताँबा, सीसा, जस्ता, सोना और चाँदी के विशाल निक्षेप हैं।

दक्षिण अमेरिका

- ब्राजील विश्व में उच्च कोटि के लौह अयस्क का सबसे बड़ा उत्पादक है। चिली और पेरू ताँबे के अग्रणी उत्पादक हैं। ब्राजील

और बोलीविया विश्व में टिन के सबसे बड़े उत्पादकों में से हैं। दक्षिण अमेरिका के पास सोना, चाँदी, जस्ता, क्रोमियम, मैगनीज, बॉक्साइट, अभ्रक, प्लैटिनम, एसबेस्टस और हीरा के विशाल निक्षेप भी हैं। खनिज तेल वेनेजुएला, अर्जेंटीना, चिली, पेरू और कोलंबिया में पाया जाता है।

अफ्रीका

- अफ्रीका खनिज संसाधनों में धनी है। यह हीरा, सोना और प्लेटिनम का विश्व में सबसे बड़ा उत्पादक है। दक्षिण अफ्रीका, जिम्बाब्वे और जायरे विश्व के सोने का एक बड़ा भाग उत्पादित करते हैं। ताँबा, लौह अयस्क, क्रोमियम, यूरेनियम, कोबाल्ट और बॉक्साइट दक्षिण अफ्रीका में पाए जाने वाले अन्य खनिज हैं। तेल नाइजीरिया, लीबिया और अंगोला में पाया जाता है।

आस्ट्रेलिया

- आस्ट्रेलिया विश्व में वॉक्साइट का सबसे बड़ा उत्पादक है। यह सोना, हीरा, लौह अयस्क, टिन और निकेल का अग्रणी उत्पादक है। यह ताँबा, सीसा, जस्ता और मैंगनीज में भी संपन्न है। पश्चिम आस्ट्रेलिया के कालगूलर्जी और कूलगार्डी क्षेत्रों में सोने के सबसे बड़े निक्षेप हैं।

अंटार्कटिका

- विभिन्न खनिज निक्षेपों, पूर्वानुमान से कुछ संभवतः विशाल, के लिए अंटार्कटिका का भूविज्ञान पर्याप्त रूप से सुप्रसिद्ध है। ट्रांस-अंटार्कटिक पर्वत में कोयले और पूर्वी अंटार्कटिका के प्रिंस चार्ल्स पर्वत के निकट लोहे के महत्त्वपूर्ण मात्रा में निक्षेपों का पूर्वानुमान किया गया है। लौह अयस्क, सोना, चाँदी और तेल भी वाणिज्यिक मात्रा में उपलब्ध हैं।

भारत में वितरण

- लोहाः भारत में उच्च कोटि के लौह अयस्क निक्षेप हैं। यह खनिज मुख्यतः झारखंड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, गोवा, महाराष्ट्र और कर्नाटक में पाया जाता है।
- बॉक्साइटः इसके के मुख्य उत्पादक क्षेत्र झारखंड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और तमिलनाडु हैं।
- अधकः अभ्रक निक्षेप मुख्यतः झारखंड, बिहार, आंध्र प्रदेश और राजस्थान में पाए जाते हैं। भारत विश्व में अभ्रक का सबसे बड़ा उत्पादक और निर्यातक है।
- तांबाः यह मुख्यतः राजस्थान, मध्य प्रदेश, झारखंड, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में उत्पादित होता है।
- मैंगनीजः भारत के मैंगनीज निक्षेप महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में स्थित हैं। सोनाः भारत में कर्नाटक में कोलार में सोने के निक्षेप हैं। ये खानें विश्व की गहरी खानों में से एक हैं जो इस अयस्क के खनन को बहुत खर्चीली प्रक्रिया बनाती हैं।
- चूना पत्थरः भारत में चूना पत्थर उत्पादन करने वाले महत्त्वपूर्ण राज्य बिहार, झारखंड, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, गुजरात और तमिलनाडु हैं।
- नमकः यह समुद्र, झील और शैलों से प्राप्त किया जाता है । भारत नमक का अग्रणी उत्पादक और निर्यातक है।

खनिजों के उपयोग

- खखनिजों का उपयोग कई उद्योगों में होता है। रत्नों के लिए प्रयोग किए जाने वाले खनिज प्रायः कठोर होते हैं। इन्हें आभूषण बनाने के लिए विभिन्न शैलियों में जड़ा जाता है। ताँबा एक अन्य
- धातु है जिसका उपयोग सिक्के से लेकर पाइप तक प्रत्येक वस्तु में किया जाता है। कंप्यूटर उद्योग में प्रयुक्त होने वाला सिलिकन, क्वार्ट्ज से प्राप्त किया जाता है। एलुमिनियम जिसे उसके अयस्क बॉक्साइट से प्राप्त किया जाता है, का उपयोग ऑटोमोबाइल और हवाई जहाज, बोतलबंदी उद्योग, भवन निर्माण और रसोई के बर्तन तक में होता है।

खनिजों का संरक्षण

- खनिज अनवीकरणीय संसाधन हैं। खनिजों के निर्माण और संचयन में हजारों वर्ष लगते हैं। मानवीय उपभोग की दर की तुलना में निर्माण की दर बहुत धीमी है। खनन की प्रक्रिया में बर्बादी को घटाना आवश्यक है। धातुओं का पुनर्चक्रण एक अन्य तरीका है जिससे खनिज संसाधनों को संरक्षित किया जा सकता है।

शक्ति संसाधन

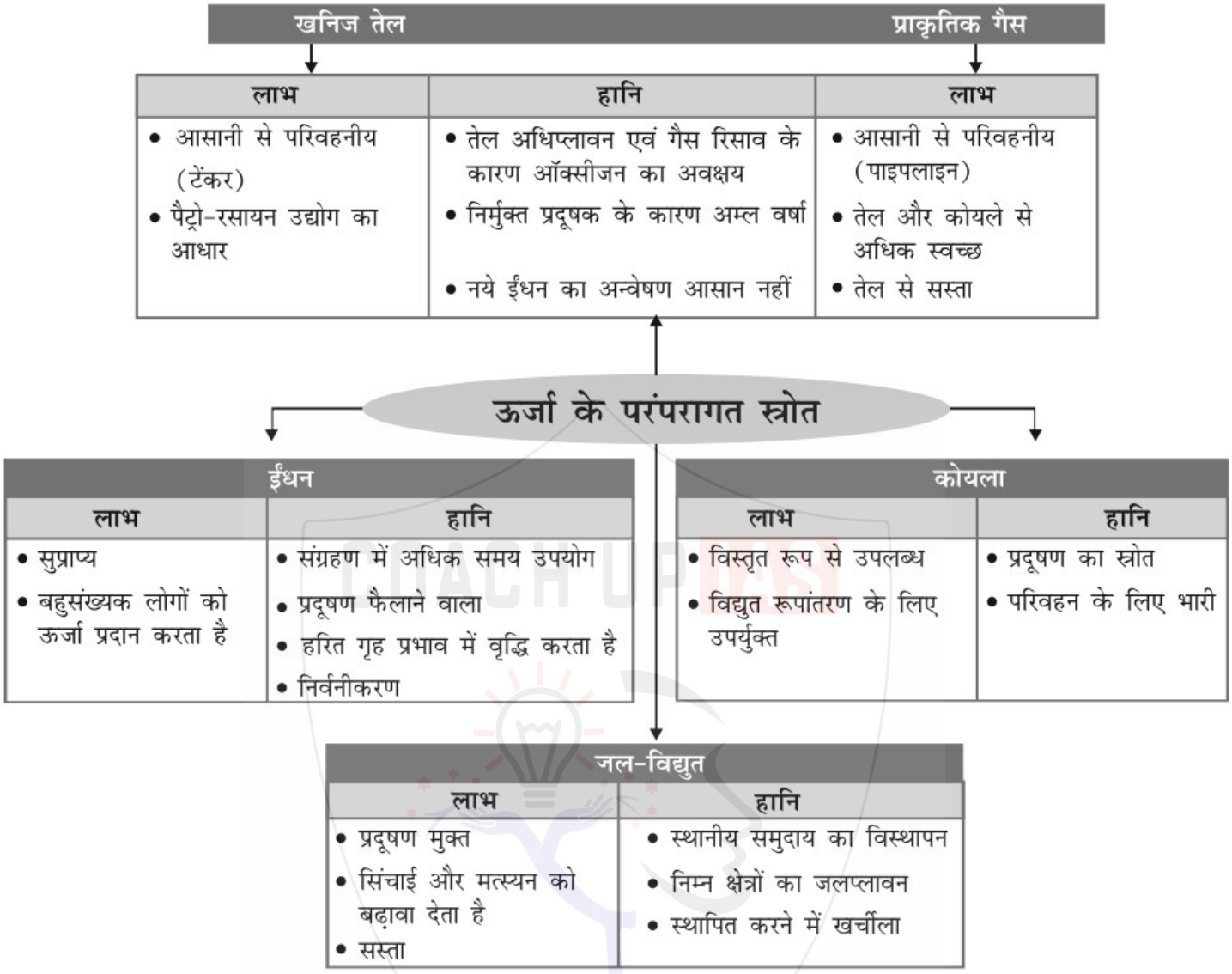
- शक्ति अथवा ऊर्जा हमारे जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हमें उद्योग, कृषि, परिवहन, संचार और प्रतिरक्षा के लिए भी शक्ति की आवश्यकता होती है। ऊर्जा संसाधनों को विस्तृत रूप से परंपरागत और गैर-परंपरागत संसाधनों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

परंपरागत स्त्रोत

- ऊर्जा के परंपरागत स्रोत वे हैं जो लंबे समय से सामान्य उपयोग में लाए जा रहे हैं। इंधन और जीवाश्मी इंधन परंपरागत ऊर्जा के दो मुख्य स्रोत हैं।

ईंधन

- इसका उपयोग पकाने और ऊष्मा प्राप्त करने के लिए व्यापक रूप से होता है। हमारे देश में ग्रामीणों द्वारा उपयोग की गई पचास प्रतिशत से अधिक ऊर्जा ईंधन से प्राप्त होती है।
- पौधों और जानवरों के अवशेष जो लाखों वर्षों तक धरती के अंदर दबे रहे थे, ताप और दाब के प्रभाव से जीवाश्मी ईंधनों में परिवर्तित हो गए। जीवाश्मी इंधन, जैसे कोयला, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस



परंपरागत ऊजां के मुख्य स्रोत हैं। इन खनिजों के भंडार सीमित हैं। विश्व की बढ़ती जनसंख्या जिस दर से इनका उपयोग कर रही है वह इनके निर्माण की दर से कहीं अधिक है। इसलिए ये शीघ्र ही समाप्त होने वाले हैं।

कोयला

- यह बहुतायत में पाया जाने वाला जीवाश्मी ईंधन है। इसका उपयोग घरेलू ईंधन, उद्योगों जैसे लोहा और इस्पात, वाष्प इंजनों और विद्युत उत्पन्न करने में किया जाता है। कोयले से प्राप्त विद्युत को तापीय ऊर्जा कहा जाता है। कोयला जिसका हम आज उपयोग कर रहे हैं वह लाखों वर्ष पूर्व विशाल फर्न और दलदल के पृथ्वी की परतों में दबने से बना। कोयला इसलिए अंतर्हित धूप के रूप में जाना जाता है।
- विश्व में अग्रणी कोयला उत्पादक देशों में चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, रूस, दक्षिण अफ्रीका और फ्रांस हैं। भारत के कोयला उत्पादक क्षेत्र रानीगंज पश्चिमी बंगाल में तथा झरिया, धनबाद और बोकारो झारखंड में हैं।

पेट्रोलियम

- पेट्रोल जिससे आपकी कार चलती है और तेल जो आपकी साइकिल को चरमराने से रोकता है, दोनों की शुरुआत गाढ़े, काले द्रव से होती है जिसे पेट्रोलियम कहते हैं। यह शैलों की परतों के मध्य पाया जाता है और उसका वेधन अपतटीय व तटीय क्षेत्रों में स्थित तेल क्षेत्रों से किया जाता है। तदुपरांत इसे परिष्करणशाला भेजा जाता है जहाँ अपरिष्कृत पेट्रोलियम के प्रक्रमण से विभिन्न तरह के उत्पाद जैसे डीजल, पेट्रोल, मिट्टी का तेल, मोम, प्लास्टिक और स्नेहक तैयार किए जाते हैं। पेट्रोलियम और इससे बने उत्पादों को काला सोना कहा जाता है अपरिष्कृत क्योंकि ये बहत अधिक मल्यवान हैं। पेटोलियम के मुख्य उत्पादक देश ईरान, इराक, सऊदी अरब और कतर हैं। अन्य मुख्य उत्पादक संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, वेनेजुएला और अल्जीरिया हैं। भारत में मुख्य उत्पादक क्षेत्र असम में डिग्बोई, मुंबई में 'बाम्बे हाई' तथा कृष्णा और गोदावरी नदियों के डेल्टा हैं।

प्राकृतिक गैस

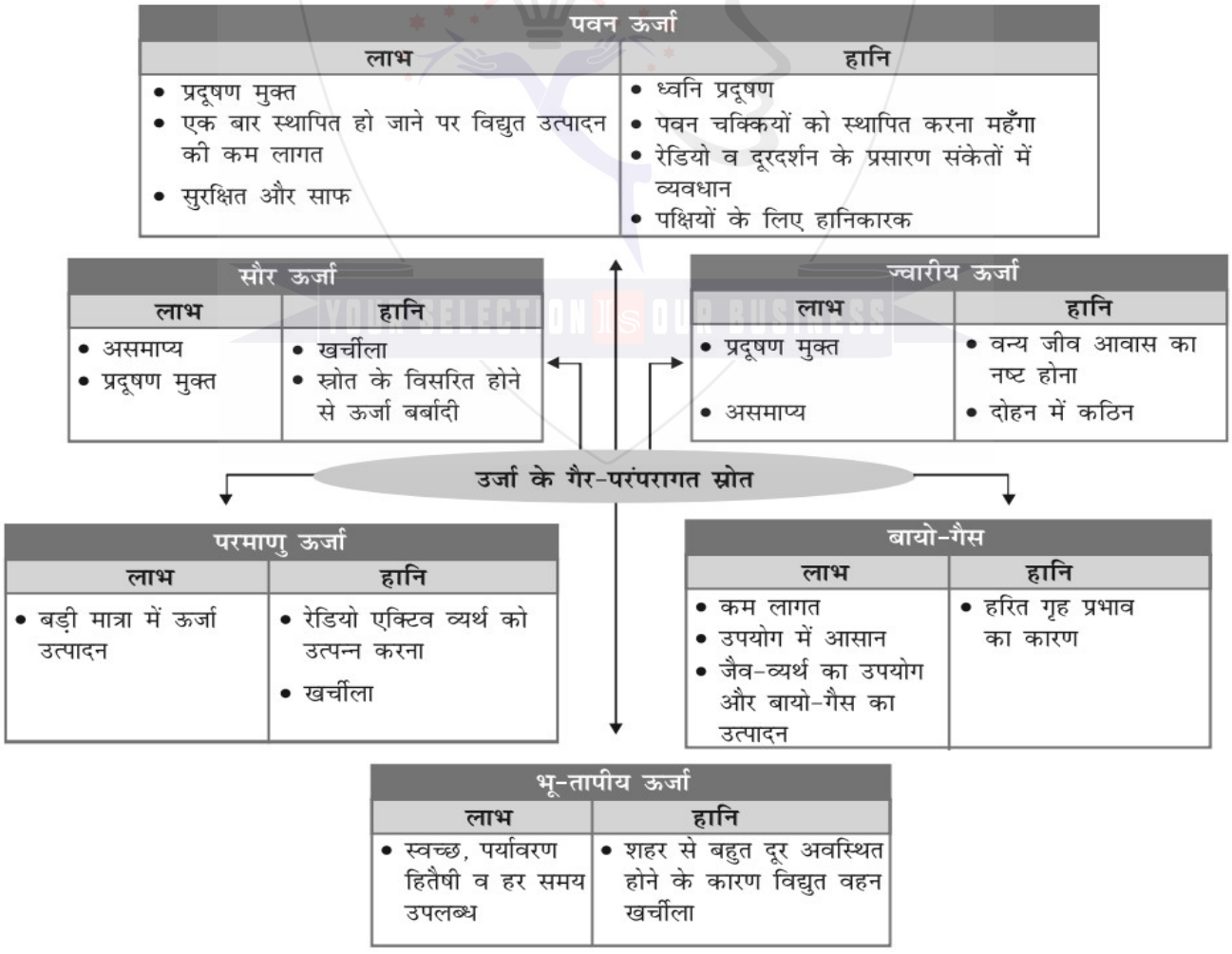
- प्राकृतिक गैस पेट्रोलियम निक्षेपों के साथ पायी जाती है और तब निर्मुक्त होती है जब अपरिष्कृत तेल को धरातल पर लाया जाता है। इसका प्रयोग घरेलू और वाणिज्यिक ईंधनों के रूप में किया जा सकता है। रूस, नार्वे, यू.के. और नीदरलैंड प्राकृतिक गैस के प्रमुख उत्पादक हैं।
- भारत में जैसलमेर, कृष्णा-गोदावरी डेल्टा, त्रिपुरा और मुंबई के कुछ अपतटीय क्षेत्रों में प्राकृतिक गैस संसाधन हैं। विश्व के बहुत कम देशों के पास प्राकृतिक गैस के अपने पर्याप्त भंडार हैं।
- हमारे द्वारा जीवाश्मी ईंधनों के उपभोग की तीव्र वृद्धि ने चिंताजनक दर से इन्हें समाप्ति तक पहुँचा दिया है। इन ईंधनों के जलने से निकलने वाले विषैले प्रदूषक भी चिंता का विषय है। जीवाश्मी ईंधन का अनियंत्रित जलना अनियंत्रित टोंटी के टपकने के समान है जो अंततः सूख जाती है। इसने हमारा ध्यान ऊर्जा के विभिन्न गैर-परंपरागत स्रोतों के दोहन की ओर बढ़ाया जो कि जीवाश्मी ईंधनों के स्वच्छतर विकल्प हैं।

जल विद्युत

- बाँधों में वर्षा जल अथवा नदी जल ऊँचाई से गिराने के लिए संग्रहित किया जाता है। बाँध के अंदर से पाइप के द्वारा बहता जल बाँध के नीचे स्थित टरबाइन के ऊपर गिरता है। घूमते हुए ब्लेड जेनरेटर को विद्युत के लिए घुमाते हैं। यह जल विद्युत कहलाती है। विद्युत उत्पन्न करने के बाद जो जल बहता है
- उसका उपयोग कृषि में किया जाता है। विश्व की ऊर्जा का एक चौथाई हिस्सा जल विद्युत से उत्पन्न होता है। विश्व में जल विद्युत के अग्रणी उत्पादक देश पराग्वे, नार्वे, ब्राजील और चीन हैं। भारत में कुछ महत्त्वपूर्ण जल विद्युत केंद्र भाखड़ा नंगल, गाँधी सागर, नागार्जुन सागर और दामोदर नदी घाटी परियोजनाएँ हैं।

ऊर्जा के गैर-परंपरागत स्रोत

- जीवाश्मी ईंधनों के बढ़ते उपयोग से ऊर्जा के गैर-परंपरागत स्रोत का अभाव उत्पन्न हो रहा है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यदि वर्तमान दर से इनका उपभोग लगातार होता रहा तो इन ईंधनों के भंडार समाप्त हो जाएँगे। इसके अतिरिक्त. इनका उपयोग पर्यावरणीय प्रदूषण भी पैदा करता है। इसलिए, गैर-परंपरागत स्रोत जैसे सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा जो कि नवीकरणीय हैं, के उपयोग की आवश्यकता है।



सौर ऊर्जा

- सूर्य की ऊष्मा और प्रकाश ऊर्जा हमारे द्वारा प्रतिदिन अनुभव की जा सकती है। सूर्य से प्राप्त सौर ऊर्जा, सौर सेलों में विद्युत उत्पन्न करने के लिए प्रयोग की जा सकती सौर पैनलों से तापन व प्रकाश है। इनमें से कई सेलों को सौर ऊर्जा प्राप्त करने के लिए सौर **पैनल** के लिए शक्ति उत्पन्न करने के लिए जोड़ा जाता है। धूप की प्रचुरता वाले उष्ण कटिबंधीय देशों के लिए सौर ऊर्जा के उपयोग की प्रौद्योगिकी बहुत लाभदायक है। सौर ऊर्जा उपयोग का सौर तापक, सौर कुकर, सोलर ड्रायर के साथ-साथ समुदाय को रोशनी देने और यातायात संकेतों में भी होता है।

पवन ऊर्जा

- पवन ऊर्जा का एक असमाप्य स्त्रोत है। पवन चक्कियों का उपयोग अनाजों को पीसने और जल निकालने के लिए चिरकाल से चला आ रहा है। वर्तमान पवन चक्कियों में तीव्र गति से चलती हवाएँ पवन चक्की को घुमाती हैं जो विद्युत उत्पादन करने के लिए जेनरेटर से जुड़ी होती हैं। पवन चक्कियों के समूह से युक्त पवन फार्म तटीय क्षेत्रों और पर्वत घाटियों में जहाँ प्रबल और लगातार हवाएँ चलती हैं. वहाँ स्थित हैं। पवन फार्म नीदरलैंड, जर्मनी, डेनमार्क, यूके, यूएसए तथा स्पेन में पाए जाते हैं जो पवन ऊर्जा उत्पादन में उल्लेखनीय हैं।

परमाणु ऊर्जा

- परमाणु ऊर्जा प्राकृतिक तौर से प्राप्त रेडियोसक्रिय पदार्थ जैसे नियम और थोरियम के परमाणुओं के केंद्रक में संग्रहित ऊर्जा से प्राप्त की जाती है। ये पदार्थ नाभिकीय रिएक्टरों में
- नाभिकीय विखंडन से गुजरते हैं और उत्सर्जन ऊर्जा की प्राप्ति होती है। परमाणु ऊर्जा के सबसे बड़े उत्पादक संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोप हैं। भारत में राजस्थान और झारखंड के पास यूरेनियम
- के विशाल निक्षेप हैं। थोरियम विशाल मात्रा में केरल के मोनोजाडट बालू में पाए जाते हैं। भारत में स्थित परमाणु ऊर्जा के केंद्र तमिलनाडु में कलपक्कम. महाराष्ट्र में तारापुर, राजस्थान में कोटा के निकट राणाप्रताप सागर, उत्तर प्रदेश में नरोरा और कर्नाटक में कैगा हैं।

भूतापीय ऊर्जा

- ताप ऊर्जा जो पृथ्वी से प्राप्त की जाती है भूतापीय ऊर्जा कहलाती है। पृथ्वी के अंदर गहराई बढ़ने के साथ तापमान में लगातार वृद्धि होती जाती है। कभी-कभी यह तापमान ऊर्जा भू-सतह पर गर्म जल के झरनों के रूप में प्रकट हो सकती है। यह ताप ऊर्जा शक्ति उत्पादन करने में प्रयुक्त की जा सकती है। वर्षों से गर्म जल के स्रोतों के रूप में भूतापीय ऊर्जा खाना बनाने, ऊष्मा प्राप्त करने और नहाने के लिए प्रयोग में लाई जाती है। यूएसए विश्व का सबसे बड़ा भूतापीय ऊर्जा का सयंत्र है. इसके बाद न्यूजीलैंड, आइसलैंड, फिलीपींस और मध्य अमेरिका हैं। भारत में भूतापीय ऊर्जा का संयंत्र हिमाचल प्रदेश में मणिकरण और लद्दाख में पूगाघाटी में स्थित हैं।

ज्वारीय ऊर्जा

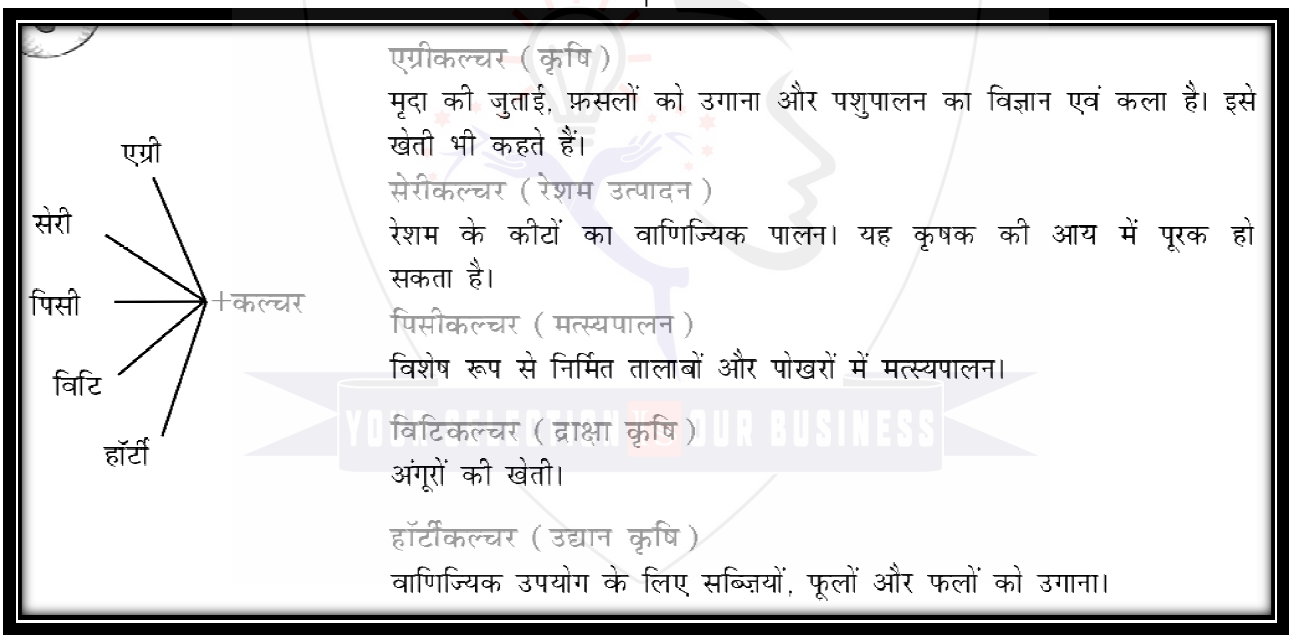
- ज्वार से उत्पन्न ऊर्जा को ज्वारीय ऊर्जा कहते हैं। इस ऊर्जा का विदोहन समुद्र के सैकरे मुहाने में बाँध के निर्माण से किया जाता है। उच्च ज्वार के समय ज्वारों की ऊर्जा का उपयोग बाँध में स्थापित टरबाइन को घुमाने के लिए किया जाता है। रूस, फ्रांस और भारत में कच्छ की खाड़ी में विशाल ज्वारीय मिल के क्षेत्र हैं।

बायोगैस

- जैविक अपशिष्ट जैसे मृत पौधे और जंतुओं के अवशेष, पशुओं का गोबर, रसोई के अपशिष्ट को गैसीय ईंधन में बदला जा सकता है. इसे बायोगैस कहते हैं। जैविक अपशिष्ट बैक्टीरिया द्वारा बायोगैस संयंत्र में अपघटित होते हैं जो कि अनिवार्य रूप में मिथेन और कार्बन डाईऑक्साइड का मिश्रण है। बायोगैस खाना पकाने तथा विद्युत उत्पादन का सर्वोत्तम ईंधन है और इससे प्रति वर्ष बडी मात्रा में जैव खाद का उत्पादन होता है।
- ऊर्जा सर्वव्यापी है लेकिन इस ऊर्जा का विदोहन बहुत ही कठिन और खचर्चीला है। हममें से प्रत्येक व्यक्ति ऊर्जा को नष्ट न करके एक भिन्नता ला सकते हैं। ऊर्जा की बचत ही ऊर्जा का उत्पादन है। अभी कार्य करें एवं ऊर्जा के भविष्य को सुनहरा बनाएँ।

कृषि

- गुरप्रीत, मधु और टीना एक गाँव से गुज्जर रहे थे, वहाँ उन लोगों ने एक किसान को खेत की जुताई करते हुए देखा। किसान ने उन लोगों से कहा कि वह गेहूँ की बुआई कर रहा है और मृदा को अधिक उपजाऊ बनाने के लिए अभी खाद डाला है। उसने बच्चों से कहा कि गेहूं मंडी में अच्छी कीमत पर विकेगा, जहाँ से उसे आटे में परिवर्तित करके कारखाने में डबलरोटी और बिस्कुट बनाने के लिए ले जाया जाएगा।
- पौधे से परिष्कृत उत्पाद तक के रूपांतरण में तीन प्रकार की आर्थिक क्रियाएँ सम्मिलित हैं। ये प्राथमिक. द्वितीयक और तृतीयक क्रियाएँ हैं।
- प्राथमिक क्रियाओं के अंतर्गत उन सभी क्रियाओं को शामिल किया जाता है जिनका संबंध प्राकृतिक संसाधनों के उत्पादन और निष्कर्षण से है।
- कृषि, मत्स्यन और संग्रहण इनके अच्छे उदाहरण हैं। द्वितीयक क्रियाएँ इन संसाधनों के प्रसंस्करण से संबंधित हैं। इस्पात विनिर्माण, डबलरोटी पकाना और कपड़ा बुनना इन क्रियाओं के उदाहरण हैं। तृतीयक क्रियाएँ प्राथमिक और द्वितीयक क्षेत्र को सेवा कार्यों द्वारा सहयोग प्रदान करती हैं। यातायात. व्यापार, बैंकिंग, बीमा और विज्ञापन तृतीयक क्रियाओं के उदाहरण हैं।
- कृषि एक प्राथमिक क्रिया है। फसलों, फलों, सब्जियों, फूलों को उगाना और पशुधन पालन इसमें शामिल हैं। विश्व में पचास प्रतिशत लोग कृषि से संबंधित क्रियाओं में संलग्न हैं। भारत की दो-तिहाई जनसंख्या अब तक कृषि पर निर्भर है।
- अनुकूल स्थलाकृति. मृदा और जलवायु कृषि क्रियाकलाप के लिए अनिवार्य हैं। जिस भूमि पर फसलें उगाई जाती हैं. कृषिगत भूमि कहलाती है। कृषि क्रियाकलाप विश्व के उन्हीं प्रदेशों में संकेंद्रित हैं जहाँ फसल उगाने के लिए उपयुक्त कारक विद्यमान हैं।



कृषि तंत्र

- कृषि या खेती को एक तंत्र के रूप में देखा जा सकता है। इसके महत्त्वपूर्ण जुताई, बुआई,निवेश-बीज, उर्वरक, मशीनरी और श्रमिक हैं।
- सिंचाई, निराई और कटाई इसकी कुछ संक्रियाएँ हैं। इस तंत्र के निर्गतों के अंतर्गत फ़सल, ऊन, डेरी और कुक्कुट उत्पाद आते हैं।

कृषि के प्रकार

- विश्व में कृषि विभिन्न तरीकों से की जाती है। भौगोलिक दशाओं. उत्पाद की माँग, श्रम और प्रौद्योगिकी के स्तर के आधार पर कृषि दो मुख्य प्रकारों में वर्गीकृत की जा सकती है। ये हैं निर्वाह कृषि और वाणिज्यिक कृषि।

निर्वाह कृषि

- इस प्रकार की कृषि कृषक परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए की जाती है। पारंपरिक रूप से कम उपज प्राप्त करने के लिए निम्न स्तरीय प्रौद्योगिकी और पारिवारिक श्रम का उपयोग किया जाता है। निर्वाह कृषि को पुनः गहन निर्वाह कृषि और आदिम निर्वाह कृषि में वर्गीकृत किया जा सकता है।
- गहन निर्वाह कृषि में किसान एक छोटे भूखंड पर साधारण औज़ारों और अधिक श्रम से खेती करता है। अधिक धूप वाले दिनों से युक्त

जलवायु और उर्वर मृदा वाले खेत में, एक वर्ष में एक से अधिक फ़सलें उगाई जा सकती हैं। चावल मुख्य फ़सल होती है। अन्य फ़सलों में गेहूँ, मक्का, दलहन और तिलहन शामिल हैं। गहन निर्वाह कृषि दक्षिणी, दक्षिण-पूर्वी और पूर्वी एशिया के सघन जनसंख्या वाले मानसूनी प्रदेशों में प्रचलित है।

- आदिम निर्वाह कृषि में स्थानांतरी कृषि और चलवासी पशुचारण शामिल हैं।
- स्थानांतरी कृषि अमेजन बेसिन के सघन वन क्षेत्रों, उष्ण कटिबंधीय अफ्रीका, दक्षिण-पूर्व एशिया और उत्तरी-पूर्वी भारत के भागों में प्रचलित है। ये भारी वर्षा और वनस्पति के तीव्र पुनर्जनन वाले क्षेत्र हैं। वृक्षों को काटकर और जलाकर भूखंड को साफ़ किया जाता है। तब राख को मृदा में मिलाया जाता है तथा मक्का, रतालू, आलू और कसावा जैसी फ़सलों को उगाया जाता है। भूमि की उर्वरता की समाप्ति के बाद वह भूमि छोड़ दी जाती है और कृषक नए भूखंड पर चला जाता है। स्थानांतरी कृषि को 'कर्तन एवं दहन' कृषि के रूप में भी जाना जाता है।
- चलवासी पशुचारण सहारा के अर्धशुष्क और शुष्क प्रदेशों में, मध्य एशिया और भारत के कुछ भागों जैसे राजस्थान तथा जम्मू और कश्मीर में प्रचलित है। इस प्रकार की कृषि में पशुचारक अपने पशुओं के साथ चारे और पानी के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर निश्चित मार्गों से घूमते हैं। इस प्रकार की गतिविधि जलवायविक बाधाओं और भूभाग की प्रतिक्रियास्वरूप उत्पन्न होती है। पशुचारक मुख्यतः भेड़, ऊँट, मवेशी, याक और बकरियाँ पालते हैं। ये पशुचारकों और उनके परिवारों के लिए दूध, मांस, ऊन, खाल और अन्य उत्पाद उपलब्ध कराते हैं।

वाणिज्यिक कृषि

- वाणिज्यिक कृषि में फ़सल उत्पादन और पशुपालन बाज़ार में विक्रय हेतु किया जाता है। इसमें विस्तृत कृषित क्षेत्र और अधिक पूँजी का उपयोग किया जाता है। अधिकांश कार्य मशीनों के द्वारा किया जाता है। वाणिज्यिक कृषि में वाणिज्यिक अनाज कृषि, मिश्रित कृषि और रोपण कृषि शामिल हैं।
- वाणिज्यिक अनाज कृषि में फ़सलें वाणिज्यिक उद्देश्य से उगाई जाती हैं। गेहूँ और मक्का सामान्य रूप से उगाई जाने वाली फ़सलें हैं। उत्तर अमेरिका, यूरोप और एशिया के शीतोष्ण घास के मैदान वाणिज्यिक अनाज कृषि के प्रमुख क्षेत्र हैं। ये क्षेत्र सैकड़ों हेक्टेयर के बड़े फार्मों से युक्त बिरल आबादी वाले हैं। अत्यधिक ठंड वर्धनकाल को बाधित करती है और केवल एक ही फ़सल उगाई जा सकती है।
- मिश्रित कृषि में भूमि का उपयोग भोजन व चारे की फ़सलें उगाने और पशुधन पालन के लिए किया जाता है। यह यूरोप, पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका, अर्जेंटीना, दक्षिण-पूर्वी आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और दक्षिण अफ्रीका में प्रचलित है।
- रोपण कृषि वाणिज्यिक कृषि का एक प्रकार है जहाँ चाय, कहवा, काजू, रबड़, केला अथवा कपास की एकल फ़सल उगाई जाती है। इसमें वृहत पैमाने पर श्रम और पूँजी की आवश्यकता होती है। उत्पाद का प्रसंस्करण खेतों पर ही या निकट के कारखानों में किया जा सकता है। इस प्रकार, इस कृषि में परिवहन जाल के विकास की अनिवार्यता होती है।
- रोपण कृषि के मुख्य क्षेत्र विश्व के उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में पाए जाते हैं। मलेशिया में रबड़, ब्राजील में कहवा, भारत और श्रीलंका में चाय इसके कुछ उदाहरण हैं।

मुख्य फ़सलें

- बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विविध प्रकार की फ़सलें उगाई जाती हैं। फ़सलें कृषि आधारित उद्योगों के लिए भी कच्चे माल की आपूर्ति करती हैं। गेहूं, चावल, मक्का और बाजरा मुख्य खाद्य फसलें हैं। जूट और कपास रेशेदार फ़सलें हैं। चाय और कहवा मुख्य पेय फ़सले हैं।
- चावल : यह विश्व की मुख्य खाद्य फ़सल है। यह उष्ण कटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय प्रदेशों का मुख्य आहार है। चावल के लिए उच्च तापमान, अधिक आर्द्रता एवं वर्षा की आवश्यकता होती है। यह फ़सल चीका युक्त जलोढ़ मृदा जिसमें जल रोकने की क्षमता हो, में सर्वोत्तम ढंग से बढ़ती है। चीन चावल उत्पादन में अग्रणी है। इसके बाद क्रमशः भारत, जापान, श्रीलंका और मिस्र हैं। अनुकूल जलवायविक दशाओं जैसे पश्चिमी बंगाल और बांग्लादेश में एक वर्ष में दो से तीन फ़सलें उगाई जाती हैं।
- गहू गेहूँ के वर्धन काल में मध्यम तापमान एवं वर्षा और सस्य कर्तन (फसल की कटाई) के समय तेज धूप की आवश्यकता होती है। इसका विकास सु-अपवाहित दुमट मृदा में सर्वोत्तम ढंग से होता है। गेहूँ संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, अर्जेंटीना, रूस, यूक्रेन, आस्ट्रेलिया और भारत में विस्तृत रूप से उगाया जाता है। भारत में यह शीत ऋतु में उगाया जाता है।
- मिलेट: ये मोटे अनाज के रूप में भी जाने जाती हैं और कम उपजाऊ तथा बलुई मृदा में उगाए जा सकती हैं। ये ऐसी फ़सल हैं जिसे कम वर्षा और उच्च से मध्यम तापमान तथा पर्याप्त सूर्य प्रकाश की आवश्यकता होती है। ज्वार, बाजरा और रागी भारत में उगाए जाते हैं। नाइजीरिया, चीन और नाइजर इसके अन्य उत्पादक देश हैं।
- मक्का इसके लिए मध्यम तापमान, वर्षा और अधिक धूप की आवश्यकता होती है। इसे सु-अपवाहित उपजाऊ मृदा की आवश्यकता होती है। मक्का उत्तर अमेरिका, ब्राजील, चीन, रूस, कनाडा, भारत और मेक्सिकों में उगाई जाती है। कपास इसकी वृद्धि के लिए उच्च तापमान, हल्की वर्षा, दो सौ से दो सौ दस पालारहित दिन और तेज़ चमकीली धूप की आवश्यकता होती है। यह काली और जलोढ़ मृदा में सर्वोत्तम उगती है। चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका,

भारत, पाकिस्तान, ब्राजील और मिस्र कपास के अग्रणी उत्पादक हैं। यह सूती वस्त्र उद्योग के लिए एक महत्त्वपूर्ण कच्चा माल है।

पटसन

- पटसन इसको 'सुनहरा रेशा' के रूप में भी जाना जाता है। यह जलोढ़ मृदा में अच्छे ढंग से विकसित होता है और इसे उच्च तापमान, भारी वर्षा और आर्द्र जलवायु की आवश्यकता होती है। यह फ़सल उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में उगायी जाती है। भारत और बांग्लादेश पटसन के अग्रणी उत्पादक हैं।
- कॉफी इसके लिए गर्म एवं आर्द्र जलवायु और सु-अपवाहित दोमट मृदा की आवश्यकता होती है। इस फ़सल की वृद्धि के लिए पर्वतीय ढाल अधिक उपयुक्त होती है। ब्राजील कॉफी का अग्रणी उत्पादक है। इसके पश्चात् कोलंबिया और भारत हैं।
- चायः बागानों में उगायी जाने वाली एक पेय फ़सल है। इसकी कोमल पत्तियों की वृद्धि के लिए ठंडी जलवायु और वर्ष भर समवितरित उच्च वर्षा की आवश्यकता होती है। इसके लिए सु-अपवाहित दुमट मृदा और मंद ढाल की आवश्यकता होती है। पत्तियों को चुनने के लिए अधिक संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता होती है।

कृषि का विकास

- कृषि विकास का संबंध बढ़ती जनसंख्या की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए कृषि के उत्पादन को बढ़ाने की दिशा में किए जाने वाले प्रयासों से है। यह कई तरीकों से प्राप्त किया जा सकता है. जैसे बोए गए क्षेत्र में विस्तार करके, बोई जाने वाली फ़सलों की संख्या बढ़ाकर, सिंचाई सुविधाओं में सुधार करके, उर्वरकों और उच्च उपज देने वाले बीजों के प्रयोग द्वारा। कृषि का मशीनीकरण भी कृषि के विकास का एक अन्य पहलू है। कृषि के विकास का चरम लक्ष्य खाद्य सुरक्षा को बढ़ाना है।
- कृषि का विकास विश्व के विभिन्न भागों में विभिन्न गतियों से हुआ है। अधिक जनसंख्या वाले विकासशील देश अधिकतर गहन कृषि करते हैं. जहाँ छोटी जोतों पर सामान्यतः जीविकोपार्जन के लिए फ़सलें उगाई जाती हैं। बड़ी जोतें वाणिज्यिक कृषि के लिए अधिक उपयुक्त होती हैं जैसे-संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और आस्ट्रेलिया में।

भारत का एक फार्म

- उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले में आदिलाबाद एक छोटा-सा गाँव है। मुन्नालाल इस गाँव का एक छोटा किसान है जिसके पास लगभग 1.5 हेक्टेयर का एक फार्म है। उसका आवास मुख्य गाँव में है। वह अधिक उपज देने वाले बीजों को बाज़ार से वर्षों के एकांतर पर खरीदता है। उसकी भूमि उर्वर है और वह वर्ष में कम-से-कम दो फ़सलें, सामान्यतः गेहूँ या चावल और दालें, उगाता है। किसान अपने मित्रों और बुजुर्गों के साथ-साथ सरकारी कृषि अधिकारियों से कृषि कार्यों के संबंध में सलाह लेता है। वह अपने खेत की जुताई के लिए भाड़े पर ट्रैक्टर लेता है, यद्यपि उसके कुछ मित्र अभी भी बैलों से खेतों को जोतने की परंपरागत विधि का प्रयोग करते हैं। समीप के खेत में एक नलकूप है. जिसे वह अपने खेत की सिंचाई के लिए भाड़े पर लेता है। मुन्नालाल के पास दो भैंस और कुछ मुर्गियाँ भी हैं। वह निकट के शहर में स्थित सहकारी भंडार में दूध बेचता है। वह वहाँ का एक सदस्य है। सहकारी समिति उसके जानवरों के लिए चारे के प्रकार, पशुधन के स्वास्थ्य के सुरक्षात्मक उपायों और कृत्रिम गर्भाधान के संबंध में भी सलाह देती है। कृषि के विविध कार्यों में परिवार के सभी सदस्य उसकी सहायता करते हैं। कभी-कभी वह बैंक या कृषि सहकारी समिति से बीजों की उच्च उपज वाली किस्मों और औज़ारों को खरीदने के लिए ऋण लेता है। वह अपने उत्पाद को निकट के शहर में स्थित मंडी में बेचता है। अधिकांश किसानों के पास भंडारण सुविधाओं की कमी होती है, इसलिए वे बाजार के अनुकूल न होने पर भी अपने उत्पादों को बेचने के लिए विवश होते हैं। हाल के वर्षों में, सरकार ने भंडारण की सुविधाओं के विकास के लिए कुछ कदम उठाए हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका का एक फार्म

- संयुक्त राज्य अमेरिका में एक फार्म का औसत आकार भारतीय फार्म की तुलना में बहुत बड़ा होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में एक प्रारूपिक फार्म का आकार 250 हेक्टेयर होता है। किसान सामान्यतः फार्म में रहता है। मक्का, सोयाबीन, गेहूँ और चुकंदर उगाई जाने वाली कुछ महत्त्वपूर्ण फ़सलें हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के मध्य-पश्चिम में स्थित आयोवा राज्य के एक किसान जो होरन के पास 300 हेक्टेयर भूमि है। वह अपने खेत में मक्का तब उगाता है जब वह आश्वस्त हो कि मृदा और जल संसाधन इस फ़सल की आवश्यकता को पूरा कर देंगे। फ़सल को नुकसान पहुँचाने वाले पीड़कों पर नियंत्रण के लिए पर्याप्त उपाय किए जाते हैं। समय-समय पर वह मृदा के नमूनों को मृदा परीक्षण प्रयोगशाला में जाँच के लिए भेजता है कि उसमें पर्याप्त पोषक हैं या नहीं। ये
- परिणाम जो होरन को वैज्ञानिक उर्वरक कार्यक्रम की योजना बनाने में मदद करते हैं। उसका कंप्यूटर उपग्रह से जुड़ा हुआ है जो उसे उसके खेत की यथार्थ तस्वीर देता है। यह रासायनिक उर्वरकों और पीड़कनाशकों का आवश्यकतानुसार प्रयोग करने में उसकी मदद करता है। वह ट्रेक्टरों, बीज बोने की मशीनों, समतलक, संयुक्त हार्वेस्टर और थ्रेसर का उपयोग कृषि संबंधी विविध संक्रियाओं में करता है। अनाज स्वचालित अन्न भंडार में संचित किए जाते हैं अथवा बाजार अभिकरणों (मार्केट-एजेंसियों) में भेजे जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में किसान एक व्यवसायी की तरह काम करता है न कि एक खेतिहर किसान की तरह।

उद्योग

- क्या आपने कभी यह विचार किया है कि लिखने की अभ्यास पुस्तिका जो आप इस्तेमाल में लाते हैं, वह विनिर्माण की लंबी प्रक्रिया के बाद आपके पास पहुँचती है। इसके जीवन की शुरुआत वृक्ष से होती है। उसे काटा जाता है और लुगदी-मिल तक ले जाया जाता है। वहाँ वृक्षों की लकड़ी को संसाधित एवं काष्ठ-लुगदी में परिवर्तित किया जाता है। काष्ठ-लुगदी को रासायनिक द्रव्य के साथ मिलाया जाता है और अंततः मशीनों के द्वारा कागज़ के रूप में परिवर्तित किया जाता है। यह कागज्ज प्रेस में जाता है जहाँ रसायनों से निर्मित स्याही का इस्तेमाल पृष्ठों पर रेखाएँ छापने में किया जाता है। इसके उपरांत पृष्ठों को अभ्यास पुस्तिका के रूप में बाँधकर व पैक करके बिक्री के लिए बाजार भेज दिया जाता है। अंत में यह आपके हाथों में पहुँचती है।
- द्वितीयक क्रियाकलाप या विनिर्माण में कच्चे माल को लोगों के लिए अधिक मूल्य के उत्पादों के रूप में परिवर्तित किया जाता है, जैसा कि आपने देखा लुगदी कागज के रूप में और कागज अभ्यास पुस्तिका के रूप में। ये विनिर्माण प्रक्रिया के दो चरणों को प्रदर्शित करते हैं।
- उद्योग का संबंध आर्थिक गतिविधि से है जो कि वस्तुओं के उत्पादन, खनिजों के निष्कर्षण अथवा सेवाओं की व्यवस्था से संबंधित है। इस प्रकार लोहा और इस्पात उद्योग वस्तुओं के उत्पादन से संबंधित है. कोयला खनन उद्योग कोयले को धरती से निकालने से संबंधित है तथा पर्यटन सेवा देने से संबंधित उद्योग है।

उद्योगों का वर्गीकरण

- उद्योगों का वर्गीकरण कच्चा माल, आकार और स्वामित्व के आधार पर किया जा सकता है।
- कच्चा माल : कच्चे माल के उपयोग के आधार पर उद्योग कृषि आधारित, खनिज आधारित, समुद्र आधारित और वन आधारित हो सकते हैं।
- कृषि आधारित उद्योग कच्चे माल के रूप में वनस्पति और जंतु आधारित उत्पादों का उपयोग करते हैं। खाद्य संसाधन, वनस्पति तेल, सूती वस्त्र, डेयरी उत्पाद और चर्म उद्योग कृषि आधारित उद्योगों के उदाहरण हैं। खनिज आधारित उद्योग प्राथमिक उद्योग हैं जो खनिज अयस्कों का उपयोग कच्चे माल के रूप में करते हैं। इन उद्योगों के उत्पाद अन्य उद्योगों का पोषण करते हैं। अयस्क से निर्मित लोहा खनिज आधारित उद्योग का उत्पाद है। यह कई अन्य उत्पादों के विनिर्माण के लिए कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, जैसे भारी मशीनों, भवन निर्माण सामग्री तथा रेल के डिब्बे बनाने में। समुद्र आधारित उद्योग सागरों और महासागरों से प्राप्त उत्पादों का उपयोग कच्चे माल के रूप में करते हैं। समुद्री खाद्य प्रसंस्करण उद्योग और मत्स्य तेल निर्माण इसके कुछ उदाहरण हैं। वन आधारित उद्योग वनों से प्राप्त उत्पाद का उपयोग कच्चे माल के रूप में करते हैं। लुगदी एवं कागज, औषध रसायन, फर्नीचर और भवन निर्माण वनों से संबंधित उद्योग हैं।
- आकार : उद्योग के आकार का तात्पर्य निवेश की गई पूँजी की राशि, नियोजित लोगों की संख्या और उत्पादन की मात्रा से है। आकार के आधार पर उद्योगों को दो भागों में बाँटा जा सकता है लघु आकार के उद्योग और बृहत आकार के उद्योग। कुटीर या घरेलू उद्योग छोटे पैमाने के उद्योग हैं जिसमें दस्तकारों के द्वारा उत्पादों का निर्माण हाथ से होता है। टोकरी बुनाई, मिट्टी के बर्तन और अन्य हस्तनिर्मित वस्तुएँ कुटीर उद्योगों के उदाहरण हैं। बड़े पैमाने के उद्योग जो बड़ी मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, उनकी तुलना में छोटे पैमाने के उद्योग कम पूँजी व प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हैं। बड़े पैमाने के उद्योगों में पूँजी का निवेश अधिक और प्रयुक्त प्रौद्योगिकी उच्चस्तरीय होती है। रेशम बुनाई और खाद्य प्रक्रमण उद्योग लघु पैमाने के उद्योग हैं (चित्र 5.1)। ऑटोमोबाइल और भारी मशीनों का उत्पादन बड़े पैमाने के उद्योग हैं।
- स्वामित्व : स्वामित्व के आधार पर उद्योगों को निजी क्षेत्र, राज्य स्वामित्व अथवा सार्वजनिक क्षेत्र, संयुक्त क्षेत्र और सहकारी क्षेत्र में वर्गीकृत किया जा सकता है। निजी क्षेत्र के उद्योगों का स्वामित्व और संचालन या तो एक व्यक्ति द्वारा या व्यक्तियों के समूह द्वारा किया जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का स्वामित्व और संचालन सरकार द्वारा होता है, जैसे- हिंदुस्तान एरोनॉटिक्स लिमिटेड और स्टील ऑथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड। संयुक्त क्षेत्र के उद्योगों का स्वामित्व और संचालन राज्यों और व्यक्तियों अथवा व्यक्तियों के समूह द्वारा होता है। मारुति उद्योग लिमिटेड संयुक्त क्षेत्र के उद्योग का एक उदाहरण है। सहकारी क्षेत्र के उद्योगों का स्वामित्व और संचालन कच्चे माल के उत्पादकों या पूर्तिकारों, कामगारों अथवा दोनों द्वारा होता है। आनंद मिल्क यूनियन लिमिटेड एवं सुधा डेयरी सहकारी उपक्रम के उत्तम उदाहरण हैं।

उद्योगों की अवस्थिति को प्रभावित करने वाले कारक

- वे कारक जो उद्योगों की अवस्थिति को प्रभावित करते हैं- कच्चेमाल की उपलब्धता, भूमि, जल,
- श्रम, शक्ति, पूँजी, परिवहन और बाज़ार हैं। उद्योग उन्हीं स्थानों पर केंद्रित होते हैं जहाँ इनमें से कुछ या ये सभी कारक आसानी से उपलब्ध होते हैं। कभी-कभी सरकार कम दाम पर विद्युत उपलब्धता, कम परिवहन लागत तथा अन्य अवसंरचना जैसे प्रोत्साहन प्रदान करती है ताकि पिछड़े क्षेत्रों में भी उद्योग स्थापित किया जा सके। औद्योगीकरण से प्रायः नगरों और शहरों का विकास एवं वृद्धि होती है।

औद्योगिक तंत्र

- औद्योगिक तंत्र में निवेश, प्रक्रम और निर्गत शामिल हैं। निवेश में कच्चे माल, श्रम और भूमि की लागत, जल की उपलब्धता,

परिवहन, विद्युत और अन्य अवसंरचना शामिल हैं। प्रक्रम में कई तरह के क्रियाकलाप शामिल हैं जो कच्चे माल को परिष्कृत माल में परिवर्तित करते हैं। निर्गत अंतिम उत्पाद और इससे अर्जित आय है। सूती वस्त्र उद्योग के संदर्भ में कपास, मानव श्रम, कारखाना और परिवहन लागत निवेश हो सकते हैं। प्रक्रमों में ओटाई, कटाई. बनाई रंगाई और छपाई शामिल है। कमीज जिसे आप पहनते हैं वह उत्पादन है।

औद्योगिक प्रदेश

- औद्योगिक प्रदेश का विकास तब होता है जब कई तरह के उद्योग एक-दूसरे के निकट स्थित होते हैं और वे अपनी निकटता के लाभआपस में बाँटते हैं। विश्व के प्रमुख औद्योगिक प्रदेश पूर्वोत्तर अमेरिका, पश्चिमी और मध्य यूरोप, पूर्वी यूरोप और पूर्वी एशिया हैं। मुख्य औद्योगिक प्रदेश अधिकांशतः शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों. समुद्री पत्तनों के समीप और विशेष तौर पर कोयला क्षेत्रों के निकट स्थित होते हैं।
- भारत में अनेक औद्योगिक प्रदेश हैं, जैसे मुंबई-पुणे समूह, बंगलौर, तमिलनाडु प्रदेश, हुगली प्रदेश. अहमदाबाद-वडोदरा प्रदेश, छोटानागपुर औद्योगिक प्रदेश, विशाखापट्नम गुंटूर औद्योगिक प्रदेश, गुड़गाँव-दिल्ली-मेरठ औद्योगिक प्रदेश और कोल्लम-तिरुवनंतपुरम औद्योगिक प्रदेश।

औद्योगिक विपदा

उद्योगों में दुर्घटना/विपदा मुख्य रूप से तकनीकी विफलता या संकट उत्पन्न करने वाले पदार्थों के बेतरतीब उपयोग के कारण घटित होती है। भोपाल में 3 दिसंबर 1984 को लगभग 00.30 बजे घटित, अब तक की सबसे त्रासदपूर्ण औद्योगिक दुर्घटना है। यह एक प्रौद्योगिकीय दुर्घटना थी जिसमें यूनियन कार्बाइड के कीटनाशी कारखाने से हाइड्रोजन सायनाइट तथा प्रतिक्रियाशील उत्पादों के साथ-साथ अत्यंत विषैली मिथाइल आइसोसायनेट (एम.आई.सी.) गैस का रिसाव हुआ था। 1989 में सरकारी सूचना के अनुसार 35598 व्यक्तियों की मृत्यु हो गई थी। हजारों लोग जो बच गए वो आज भी एक या अधिक बीमारियों जैसे, अंधापन, प्रतिरक्षा तंत्र विकृति, आआंत्रशोथ विकृतियों आदि से पीड़ित हैं।

23 दिसंबर 2005 में चीन के गाओ कायो. चोंगगिंग में गैस कूप विस्फोट से 243 लोगों की मृत्यु तथा 9000 लोग दुर्घटनाग्रस्त हो गए थे और इन स्थानों से 64.000 लोगों को विस्थापित्त किया गया था। कई लोग विस्फोट के बाद न भाग सकने के कारण मर गए। वे जो समय पर भाग पाए उनकी आँखें, त्वचा और फेफड़े गैस से क्षतिग्रस्त हो गए थे।

जोखिम कम करने के उपाय

1. भने बसे आवासीय क्षेत्रों को औद्योगिक क्षेत्रों से अलग बहुत दूर रखा जाना चाहिए।
2. उद्योगों के समीप बसने वाले लोगों को दुर्घटना होने की स्थिति में विषैले या खतरनाक पदार्थों के संग्रहण और उनके संभव प्रभावों का ज्ञान होना चाहिए।
3. आग की चेतावनी और अग्निशमन की व्यवस्था को उन्नत किया जाना चाहिए।
4. विषैले पदार्थों के भंडारण क्षमता को सीमा होनी चाहिए।
5. उद्योगों में प्रदूषण नियंत्रण के उपाय को उन्नत किया जाना चाहिए।

प्रमुख उद्योगों का वितरण

- विश्व के प्रमुख उद्योग लोहा-इस्पात उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग और सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग हैं। लोहा इस्पात उद्योग और वस्त्र उद्योग काफ़ी पुराने उद्योग हैं जबकि सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग एक नया उभरता उद्योग है। वे देश जिसमें लोहा-इस्पात उद्योग अवस्थित हैं- जर्मनी, संयुक्त राज्य
- अमेरिका, चीन, जापान और रूस हैं। वस्त्र उद्योग भारत, हांगकांग, दक्षिण कोरिया, जापान और ताइवान में संकेंद्रित हैं। सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग के मुख्य केंद्र मध्यवर्ती कैलिफोर्निया के सिलिकॉन घाटी में और भारत के बंगलौर प्रदेश में हैं।

लोहा-इस्पात उद्योग

- अन्य उद्योगों की तरह लोहा-इस्पात उद्योग में भी बहुत से निवेश, प्रक्रम और निर्गत शामिल हैं। यह एक पोषक उद्योग है जिसके उत्पाद अन्य उद्योगों के लिए कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त होते हैं। उद्योग के लिए निवेश में श्रम, पूँजी, स्थान और अन्य अवसंरचना के साथ-साथ लौह अयस्क, कोयला और चूना पत्थर कच्चे माल के रूप में सम्मिलित हैं। लौह अयस्क से इस्पात निर्माण की प्रक्रिया में कई चरण शामिल हैं। कच्चे माल को झोंका भट्टी में रखा जाता है। जहाँ यह प्रगलित होता है । इसके बाद यह परिशोधित होता है। प्राप्त उत्पाद इस्पात होता है। जो अन्य उद्योगों में कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।
- इस्पात कड़ा होता है और इसे आसानी से काटा और आकार दिया जा सकता है अथवा इससे तार बनाए जा सकते हैं। ऐलुमिनियम, निकल, तांबा जैसी अन्य धातुओं को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में इस्पात में मिलाकर इसकी मिश्र धातुएँ बनाई जा सकती हैं। मिश्र धातु इस्पात को असामान्य कठोरता, दृढ़ता और जंग प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करती है।
- इस्पात प्रायः आधुनिक उद्योगों का मेरुदंड कहलाता है। लगभग सारी वस्तुएँ जिनका हम लोग उपभोग करते हैं वे या तो लोहा या इस्पात से बने हैं अथवा इन धातुओं से निर्मित औजारों और मशीनों से बने हैं। पोत, रेलगाड़ी, ट्रक और ऑटो अधिकांशतः इस्पात से बने हैं। यहाँ तक कि सेफ्टी पिन और सुईयाँ, जिनका उपयोग आप करते हैं वे भी इस्पात से बनती हैं। तेल कूप इस्पात से बनी मशीनों से बेधित किए जाते हैं। इस्पात की पाइपलाइन से तेल परिवाहित किया जाता है। खनिजों का खनन इस्पात के उपकरणों से होता है। कृषि के यंत्र प्रायः इस्पात के बने होते हैं। विशाल भवनों का ढाँचा इस्पात का बनाया जाता है। 1800 ई. के पूर्व इस्पात उद्योग वहाँ स्थित थे जहाँ कच्चा माल, विद्युत आपूर्ति और बहता जल आसानी से उपलब्ध थे। बाद में उद्योग के लिए आदर्श स्थिति कोयला क्षेत्र के समीप,

नहरों और रेलवे के निकट थी। 1950 के बाद लोहा और इस्पात उद्योग समुद्रपत्तन के निकट सपाट भूमि के विशाल क्षेत्रों में केंद्रित होने शुरू हुए। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि इस्पात निर्माण का कार्य इस समय तक बहुत विशाल हो गया और लौह अयस्क विदेशों से आयात करना पड़ता था।

- भारत में लोहा-इस्पात उद्योग कच्चा माल, सस्ते श्रमिक, परिवहन और बाज़ार का लाभ लेते हुए विकसित हुए। सभी महत्त्वपूर्ण इस्पात उत्पादक केंद्र, जैसे- भिलाई, दुर्गापुर, बर्नपुर, जमशेदपुर, राउरकेला, बोकारो एक ही प्रदेश में स्थित हैं जो चार राज्यों में फैले हैं। वे चार राज्य हैं पश्चिम बंगाल, झारखंड, उड़ीसा और छत्तीसगढ़। भद्रावती और विजयनगर कर्नाटक में, विशाखापट्नम आंध्रप्रदेश में, सलेम तमिलनाडु में अन्य महत्त्वपूर्ण इस्पात के केंद्र हैं जो स्थानीय संसाधनों का उपयोग कर रहे हैं। भारत का इस्पात उत्पादन 1947 में 10 लाख टन से बढ़कर 2002 में 3 करोड़ टन हो गया।
- टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी (टिस्को), जमशेदपुरः 1947 से पूर्व भारत में केवल एक इस्पात का कारखाना था टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड (टिस्को)। यह निजी स्वामित्व में था। स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार ने यह कार्य अपने हाथ में लिया और बहुत से लोहा इस्पात संयंत्र स्थापित किए। झारखंड में स्वर्णरेखा और खरकई नदियों के संगम के समीप साकची में सन् 1907 में टिस्को की शुरुआत की गई थी। भौगोलिक रूप से जमशेदपुर, देश में लोहा-इस्पात केंद्र के रूप में सर्वाधिक सुविधाजनक स्थान पर है।
- साकची को कई कारणों से इस्पात संयंत्र स्थापित करने के लिए चुना गया। यह स्थान बंगाल-नागपुर रेलमार्ग पर कालीमाटी स्टेशन से मात्र 32 किमी. की दूरी पर था। यह स्थान लौह अयस्क, कोयला और मैंगनीज निक्षेपों के साथ-साथ कोलकाता के निकट भी था, जहाँ विशाल बाज़ार उपलब्ध था। टिस्को को झरिया कोयला क्षेत्रों से कोयला और उड़ीसा तथा छत्तीसगढ़ से लौह अयस्क, चूना पत्थर, डोलोमाइट और मैंगनीज प्राप्त होता है। खरकई और स्वर्णरेखा नदियों से पर्याप्त जल की आपूर्ति होती है। सरकारी प्रोत्साहनों से इसे प्रर्याप्त पूँजी उपलब्ध हुई।
- जमशेदपुर में टिस्को की स्थापना के बाद कई अन्य औद्योगिक संयंत्र स्थापित किए गए। इनमें रसायन, इंजनों के पुर्जे, कृषि उपकरण, मशीनें, टिन की चादरें, केबल और तार का उत्पादन किया जाता है।
- भारत में लोहा इस्पात उद्योग के विकास से त्वरित औद्योगिक विकास आरंभ हुआ। भारतीय उद्योग के लगभग सभी क्षेत्र अधिकांशतः अपने आधारभूत अवसंरचना के लिए लोहा-इस्पात उद्योग पर निर्भर हैं। भारतीय लोहा-इस्पात उद्योग में बृहत् समाकलित इस्पात संयंत्रों के साथ-साथ लघु इस्पात मिल भी सम्मिलित हैं। इसमें द्वितीयक उत्पादक, रॉलिंग मिल और सहायक उद्योग भी शामिल हैं।
- पिट्सबर्गः यह संयुक्त राज्य अमेरिका का एक महत्त्वपूर्ण इस्पात नगर है। पिट्सबर्ग के इस्पात उद्योग को स्थानीय सुविधाएँ उपलब्ध हैं। कच्चा माल जैसे कोयला पिट्सबर्ग में ही उपलब्ध है जबकि लौह अयस्क मिनेसोटा की लोहे की खानों से प्राप्त होता है जो पिट्सबर्ग से लगभग 1500 किमी. दूर है। इन खानों और पिट्सबर्ग के बीच नौ परिवहन का सर्वोत्तम मार्ग-ग्रेट लेक्स जलमार्ग आता है। यह अयस्क के नौपरिवहन हेतु सस्ता मार्ग है। ग्रेट लेक्स से पिट्सबर्ग क्षेत्र तक लौह अयस्क रेलगाड़ियों से लाया जाता है। ओहियो, मोनोगहेला और एल्घनी नदियों से पर्याप्त जल प्राप्त होता है।
- आज पिट्सबर्ग में बहुत कम बड़े इस्पात मिल हैं। ये मिल पिट्सबर्ग के ऊपर मोनोगहेला और एल्बनी नदी की घाटियों में तथा पिट्सबर्ग के नीचे ओहियो नदी के सहारे स्थित है। परिष्कृत इस्पात स्थल और जल दोनों मार्गों द्वारा बाजार में भेजा जाता है।
- पिट्सबर्ग क्षेत्र में इस्पात मिलों के अतिरिक्त कई अन्य कारखाने हैं। ये रेल, रेल पटरी उपकरण और भारी मशीनों के उत्पादन में इस्पात का प्रयोग कच्चे माल के रूप में करते हैं।

सूती वस्त्र उद्योग

- धागे से कपड़े की बुनाई एक प्राचीन कला है। कपास, ऊन, सिल्क, जूट और पटसन का प्रयोग वस्त्र निर्माण में होता है। उपयोग में लाए गए कच्चे माल के आधार पर वस्त्र उद्योग का वर्गीकरण किया जा सकता है। रेशे वस्त्र उद्योग के कच्चे माल हैं। रेशे प्राकृतिक या मानवनिर्मित हो सकते हैं। प्राकृतिक रेशे ऊन, सिल्क, कपास, लिनन और जूट से प्राप्त किए जाते हैं। मानव निर्मित रेशों में नाइलॉन, पॉलिएस्टर, ऐक्रिलिक और रेयॉन शामिल हैं।
- सूती वस्त्र उद्योग विश्व के प्राचीनतम उद्योगों में से एक है। 18वीं सदी की औद्योगिक क्रांति तक सूती वस्त्र हस्तकताई तकनीकों एवं हथकरघों से बनाया जाता था। 18वीं सदी में पावरलूम ने पहले ग्रेट ब्रिटेन में और बाद में विश्व के अन्य दूसरे भागों में सूती वस्त्र उद्योग के विकास को आगे बढ़ाया। आज भारत, चीन, जापान और संयुक्त राज्य अमेरिका सूती वस्त्र के महत्त्वपूर्ण उत्पादक हैं।
- भारत में अच्छी गुणवत्ता के सूती वस्त्र उत्पादन करने की गौरवपूर्ण परंपरा रही है। ब्रिटिश शासन से पूर्व, हाथ से कते और हाथ से बुने हुए वस्त्रों का एक विस्तृत भारतीय बाजार था। ढाका का मलमल, मसूलीपट्टनम की छींट, कालीकट के केलिको तथा बुरहानपुर, सूरत व वदोदरा के सुनहरी जरी के काम वाले सूती वस्त्र गुणवत्ता और डिजाइनों के लिए विश्वविख्यात थे। लेकिन हाथ से बने होने के कारण सूती वस्त्र का उत्पादन महँगा और बनने में अधिक समय लेता था। इसलिए परंपरागत सूती वस्त्र उद्योग पश्चिम के नए वस्त्र मिलों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सका, जो सस्ते व अच्छी गुणवत्ता वाले वस्त्रों का निर्माण करते थे।
- पहला सफल आधुनिक वस्त्र मिल मुंबई में 1854 ई. में स्थापित किया गया। कोषण आर्द्र जलवायु, मशीन आयात के लिए पत्तन, कच्चे माल की उपलब्धता और दक्ष श्रमिक इस प्रदेश में इस उद्योग के द्रुत फैलाव में सहायक रहा।

- प्रारंभ में यह उद्योग महाराष्ट्र और गुजरात राज्य में अनुकूल आर्द्र जलवायु के कारण पनपा। लेकिन वर्तमान में आर्द्रता कृत्रिम रूप से उत्पन्न की जा सकती है और कच्ची कपास शुद्ध होती है एवं वस्त्र उत्पादन प्रक्रिया में इसका वजन कम नहीं होता, इसलिए यह उद्योग भारत के विभिन्न भागों में फैल गया है। कोयंबटूर, कानपुर, चेन्नई, अहमदाबाद, मुंबई, कोलकाता, लुधियाना, पांडिचेरी और पानीपत कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण केंद्र हैं।
- अहमदाबाद: अहमदाबाद गुजरात में साबरमती नदी के तट पर स्थित है। 1859 में यहाँ पहली सूती मिल स्थापित हुई थी। यह यथा शीघ्र ही मुंबई के बाद भारत का दूसरा सबसे बड़ा वस्त्र-निर्माता नगर बन गया। अहमदाबाद को प्रायः 'भारत का मानचेस्टर' कहा जाता है। अनुकूल अवस्थिति कारक अहमदाबाद में सूती वस्त्र उद्योग के विकास में सहायक थे। अहमदाबाद कपास उत्पन्न करने वाले क्षेत्र के केंद्र में स्थित है। यहाँ कच्चा माल आसानी से उपलब्ध होता है। आर्द्र जलवायु कताई और बुनाई के लिए आदर्श जलवायु है। सपाट भूभाग और भूमि की आसानी से उपलब्धता मिलों की स्थापना में उपयुक्त है। गुजरात और महाराष्ट्र राज्य की घनी आबादी इस उद्योग को कुशल और अर्धकुशल श्रमिक उपलब्ध कराते हैं। सुविक सित सड़कें और रेल मार्गों का जाल सूती वस्त्र को देश के विभिन्न भागों में आसानी से पहुँचाने में मदद करता है। इस तरह इसकी बाजार तक सरल पहुँच उपलब्ध है। नजदीक में मुंबई पत्तन, इसे मशीनों का आयात करने और सूती वस्त्र के निर्यात की सुविधा प्रदान करता है।
- परंतु हाल के वर्षों में, अहमदाबाद के सूती मिलों की कुछ समस्याएँ हैं। बहुत से वस्त्र मिल बंद हो चुके। देश में नए वस्त्र केंद्रों का विकास और अहमदाबाद के मिलों में मशीन प्रौद्योगिकी का नवीकरण न होना इसका प्रमुख कारण है।
- ओसाका : ओसाका जापान का एक महत्त्वपूर्ण वस्त्र-निर्माण केंद्र है।
- यह 'जापान का मानचेस्टर' के नाम से भी जाना जाता है। ओसाका में सूती वस्त्र उद्योग का विकास कई भौगोलिक कारणों से हुआ है। ओसाका के चारों ओर का विस्तृत मैदान सूती वस्त्र मिलों के विकास के लिए आसानी से भूमि की उपलब्धता सुनिश्चित करता है। कोष्ण आर्द्र जलवायु कताई व बुनाई के लिए बहुत ही उपयुक्त है। योडो नदी मिलों के लिए पर्याप्त जल उपलब्ध कराती है। श्रमिक आसानी से उपलब्ध हैं। पत्तन की अवस्थिति कच्चे कपास को आयात करने और वस्त्रों के निर्यात की सुविधा उपलब्ध कराती है। ओसाका का वस्त्र उद्योग पूर्णतः आयातित कच्चे मालों के ऊपर निर्भर है। कपास मिस्र, भारत, चीन और यू.एस.ए. से आयात की जाती है। परिष्कृत उत्पाद अधिकांशतः निर्यात किया जाता है। उच्च गुणवत्ता और कम मूल्य की वजह से उसका एक अच्छा बाजार है। यद्यपि देश का यह एक महत्त्वपूर्ण उद्योग है लेकिन हाल ही में ओसाका के सूती वस्त्र उद्योग का स्थान अन्य उद्योग, जैसे लौह-इस्पात, मशीनरी, जहाजरानी, ऑटोमोबाईल, विद्युत उपकरण और सीमेंट लेते जा रहे हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी

- कल्पना कीजिए यदि कंपनी कार्य दिन में चौबीस घंटे संचालित रहे तो कितना कार्य संपादित किया जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका और बंगलौर, भारत की कुछ सॉफ्टवेयर कंपनियों ने ऐसा करने के लिए समझौता किया है। पूरे विश्व में इस तरह के शिफ्ट में काम करने के कई रास्ते हैं। उदाहरण के तौर पर दो सॉफ्टवेयर व्यवसायी कैलिफोर्निया की सिलिकॉन घाटी और बंगलौर में स्मिता एक ही परियोजना पर कार्य कर रहे हैं। जब स्मिता बंगलौर में सोती है, डैनी कैलीफोर्निया में काम करता है। अपने कार्य दिन की समाप्ति पर वह कार्य की प्रगति का अद्यतन संदेश स्मिता को भेजता है। कुछ घंटे पश्चात्, जब बंगलौर में स्मिता कार्य पर पहुँचती है, तो वह पाती है कि एक संदेश उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। वह सीधे तौर पर परियोजना के कार्य से जुड़ जाती है। अपने कार्य दिन की समाप्ति के बाद वह अपने कार्य के परिणाम पुनः कैलिफोर्निया भेजती है। इस प्रकार वे संवाद और कार्य साथ-साथ करते हैं। यह इस प्रकार से है मानो दोनों सटे कार्यालयों में बैठे हुए हों।
- सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग सूचना के संग्रहण, प्रक्रम और वितरण को व्यवहार में लाते हैं। वर्तमान में यह उद्योग भू-मंडलीय हो गया है। प्रौद्योगिकी, राजनीतिक, सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के कारण ऐसा हुआ है। मुख्य कारक जो इस उद्योग की अवस्थिति को निर्धारित करते हैं वह संसाधन उपलब्धता, लागत और अवसंरचना (बुनियादी ढाँचा) हैं। सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग के मुख्य नाभिक्षेत्र कैलिफोर्निया के सिलिकॉन घाटी और भारत के बंगलौर में हैं।
- बंगलौर दक्कन पठार पर अवस्थित है जहाँ से इसका नाम 'सिलिकॉन पठार' पड़ा। यह शहर वर्ष भर मृदु जलवायु के लिए प्रसिद्ध है। सिलिकॉन घाटी, सांताक्लारा घाटी का एक भाग है जो उत्तर अमेरिका में रॉकी पर्वतमाला के निकट अवस्थित है। इस क्षेत्र की जलवायु शीतोष्ण है। यहाँ शायद ही कभी तापमान ०० सेंटीग्रेड से नीचे जाता है। सिलिकॉन पठार, बंगलौर और सिलिकॉन घाटी कैलिफोर्निया के अवस्थितिक लाभ को नीचे दिखाया गया है। आप इन दोनों शहरों के बीच समानताओं पर ध्यान दे सकते हैं।
- भारत के महानगरीय केंद्रों में अन्य उभरते सूचना प्रौद्योगिकी नाभि क्षेत्र हैं, जैसे मुंबई, नयी दिल्ली, हैदराबाद और चेन्नई। अन्य स्थान जैसे गुड़गाँव, पुणे, तिरुअनंतपुरम, कोच्चि और चंडीगढ़ सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग के महत्त्वपूर्ण केंद्र हैं। बंगलौर के पास हमेशा विशिष्ट लाभरहा है। इस शहर को मध्यम और उच्च प्रबंधन प्रतिभा बड़ी संख्या में उपलब्ध है।

मानव संसाधन

- लोग ही एक राष्ट्र के सबसे बड़े संसाधन होते हैं। प्रकृति की देन केवल उस समय महत्त्वपूर्ण होती है जब वह लोगों के लिए उपयोगी होती है। लोग अपनी आवश्यकताओं और योग्यताओं से उसे संसाधन में परिवर्तित कर देते हैं। इस प्रकार मानव संसाधन ही अंतिम संसाधन है। स्वस्थ, शिक्षित और अभिप्रेरित लोग अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप संसाधनों का विकास करते हैं।
- अन्य संसाधनों की भाँति मानव संसाधन विश्व में समान रूप से वितरित नहीं है। अपने शैक्षिक स्तर, आयु और लिंग में वे एक-दूसरे से भिन्न हैं। उनकी संख्या और लक्षण भी बदलते रहते हैं।

जनसंख्या का वितरण

- भूपृष्ठ पर जिस प्रकार लोग फैले हैं. उसे जनसंख्या वितरण का प्रतिरूप कहते हैं। विश्व की जनसंख्या का 90 प्रतिशत से अधिक भाग भूपृष्ठ के लगभग 10 प्रतिशत भाग पर निवास करता है। विश्व में जनसंख्या का वितरण अत्यंत असमान है। कुछ क्षेत्र बहुत घने बसे हैं और कुछ विरल बसे क्षेत्र हैं।
- दक्षिण और दक्षिण पूर्वी एशिया, यूरोप और उत्तर-पूर्वी उत्तर अमेरिका घने बसे क्षेत्र हैं। उच्च अक्षांशीय क्षेत्रों, उष्णकटिबंधीय मरुस्थलों, उच्च पर्वतों और विषुवतीय वनों के क्षेत्रों में बहुत कम लोग रहते हैं।
- विषुवत वृत्त के दक्षिण की अपेक्षा विषुवत वृत्त के उत्तर में बहुत अधिक लोग रहते हैं। विश्व की कुल जनसंख्या के लगभग तीन-चौथाई लोग दो महाद्वीपों एशिया और अफ्रीका में रहते हैं। विश्व के 60 प्रतिशत लोग केवल दस देशों में रहते हैं। इन सभी देशों में 10 करोड़ से अधिक लोग रहते हैं।

जनसंख्या का घनत्व

- पृथ्वी पृष्ठ के एक इकाई क्षेत्र में रहने वाले लोगों की संख्या को जनसंख्या का घनत्व कहते हैं। सामान्य रूप से यह प्रतिवर्ग किलोमीटर में व्यक्त किया जाता है। संपूर्ण विश्व का औसत जनसंख्या घनत्व 45 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। सबसे अधिक जनसंख्या घनत्व दक्षिण मध्य एशिया में है, इसके पश्चात क्रमशः पूर्वी एशिया एवं दक्षिण पूर्वी एशिया में है।

जनसंख्या वितरण को प्रभावित करने वाले कारक

भौगोलिक कारक

- स्थलाकृति : लोग सदैव पर्वतों और पठारों की तुलना में मैदानी भागों में ही रहना पसंद करते हैं क्योंकि ये क्षेत्र खेती, विनिर्माण और सेवा क्रियाओं के लिए उपयुक्त होते हैं। गंगा के मैदान विश्व के सबसे अधिक घने बसे क्षेत्र हैं जबकि एंडीज, आल्पस और हिमालय जैसे पर्वत विरल बसे हुए हैं।
- जलवायु : लोग सामान्य रूप से चरम जलवायु जो अत्यधिक गरम अथवा अत्यधिक ठंडी जैसे सहारा मरुस्थल, रूस के ध्रुवीय प्रदेश, कनाडा और अंटार्कटिक में रहने से बचते हैं।
- मृदा : उपजाऊ मृदाएँ कृषि के लिए उपयुक्त भूमि प्रदान करती हैं। भारत में गंगा और ब्रह्मपुत्र, चीन में हह्वांग ही, चांग जियांग तथा मिस्र में नील नदी के उपजाऊ मैदान घने बसे हुए क्षेत्र हैं।
- जल लोग उन क्षेत्रों में रहने को प्राथमिकता देते हैं जहाँ अलवणीय जल आसानी से उपलब्ध होता है। विश्व की नदी घाटियाँ घने बसे क्षेत्र हैं जबकि मरुस्थल विरल जनसंख्या वाले हैं।
- खनिज : खनिज निक्षेपों वाले क्षेत्र अधिक बसे हुए हैं। दक्षिणी अफ्रीका की हीरे की खानें और मध्य पूर्व में तेल की खोज ने इन क्षेत्रों में लोगों को रहने के लिए प्रेरित किया है।

सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक कारक

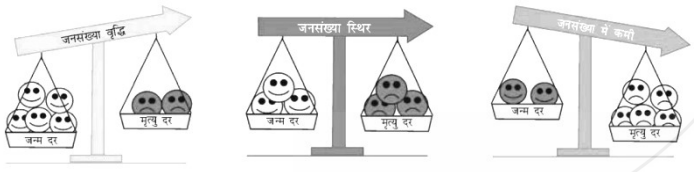
- आर्थिक कारक औद्योगिक क्षेत्र रोजगार के अवसर प्रदान करते हैं। लोग बड़ी संख्या में इन क्षेत्रों की ओर आकर्षित होते हैं। जापान में ओसाका और भारत में मुंबई दो घने बसे क्षेत्र हैं।
- सांस्कृतिक कारक धर्म और सांस्कृतिक महत्ता वाले स्थान लोगों को आकर्षित करते हैं। वाराणसी, येरूसलम और वेटिकन सिटी इसके कुछ उदाहरण हैं।
- सामाजिक कारक : अच्छे आवास, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं के क्षेत्र अत्यधिक घने बसे हैं, उदाहरण के लिए पुणे।

जनसंख्या परिवर्तन

- जनसंख्या परिवर्तन से तात्पर्य एक निश्चित अवधि के दौरान लोगों की संख्या में परिवर्तन से है। विश्व की जनसंख्या स्थिर नहीं रही है। यह कई गुना बढ़ गई है जैसा चित्र 6.3 में दिखाया गया है। क्यों? ऐसा वास्तव में जन्म और मृत्यु की संख्या में परिवर्तन के कारण हुआ है। मानव इतिहास की लंबी अवधि में, सन् 1800 तक विश्व की जनसंख्या धीरे-धीरे बढ़ी है। बड़ी संख्या में बच्चे जन्म लेते थे लेकिन शीघ्र ही उनकी मृत्यु भी हो जाती थी। ऐसा इसलिए था क्योंकि वहाँ उचित स्वास्थ्य सुविधाएँ नहीं थी। सभी लोगों के लिए पर्याप्त भोजन उपलब्ध नहीं था। किसान सभी लोगों की भोजन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त उत्पादन करने में सक्षम नहीं थे। इसके परिणामस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि बहुत कम थीं।
- सन् 1820 में, विश्व की जनसंख्या एक अरब हो गई थी। 150 वर्षों बाद. 1970 के प्रारंभ में विश्व की जनसंख्या 3 अरब पहुँच गई। इसे प्रायः जनसंख्या विस्फोट कहते हैं। 1999 में, 30 वर्ष की अवधि से

कम में जनसंख्या दुगुनी 6 अरब हो गई। इस वृद्धि का मुख्य कारण खाद्य आपूर्ति एवं औषधियों के कारण मृत्यु दर कम होना है। जबकि जन्म दर अभी भी बहुत अधिक रही।

- जन्मों को साधारणतः जन्म दर में आँका जाता है। जन्मदर अर्थात् प्रति 1000 व्यक्तियों पर जीवित जन्मों की संख्या में मापा जाता है। मृत्युवर को प्रति 1000 व्यक्तियों पर मृतकों की संख्या में मापा जाता है। किसी क्षेत्र विशेष में लोगों के आने-जाने को प्रवास कहते हैं।



मृत्यु दर से जन्म दर का अधिक होना : जनसंख्या वृद्धि | *जन्म दर और मृत्यु दर का समान होना : जनसंख्या एक जैसी रहती है* | *जन्म दर से मृत्यु दर का अधिक होना : जनसंख्या कम होना*

- जन्म और मृत्यु जनसंख्या परिवर्तन के प्राकृतिक कारण हैं। एक देश के जन्म दर और मृत्यु दर के बीच के अंतर को प्राकृतिक वृद्धि दर कहते हैं। विश्व में जनसंख्या के बढ़ने का मुख्य कारण प्राकृतिक वृद्धि दर का तीव्रता से बढ़ना है।
- प्रवास एक अन्य कारण है जिससे जनसंख्या के आकार में परिवर्तन होता है। लोग एक देश में अथवा देशों के बीच एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकते हैं। उत्प्रवासी वे लोग होते हैं जो देश को छोड़ते हैं, आप्रवासी वे लोग होते हैं जो देश में आते हैं।
- संयुक्त राज्य अमेरिका और आस्ट्रेलिया जैसे देशों में भीतरी प्रवास अथवा आप्रवास द्वारा संख्या बढ़ी है। सूडान देश एक ऐसा उदाहरण है जिसमें लोगों के बाहर चले जाने अथवा उत्प्रवास के कारण जनसंख्या में कमी का अनुभव किया गया है।
- अंतर्राष्ट्रीय प्रवास की सामान्य प्रवृत्ति यह है कि लोग अच्छे आर्थिक अवसरों की खोज में कम विकसित राष्ट्रों से अधिक विकसित राष्ट्रों में चले जाते हैं। देशों के अंदर बड़ी संख्या में लोग रोजगार, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं की खोज में ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों की ओर चले जाते हैं।

जनसंख्या परिवर्तन के प्रतिरूप

- जनसंख्या वृद्धि की दर विश्व में अलग-अलग है (चित्र 6.5)। यद्यपि विश्व की कुल जनसंख्या तीव्रता से बढ़ रही है, तथापि सभी देशों में यह वृद्धि अनुभव नहीं की जा रही है। कुछ देशों में जैसे केन्या में जनसंख्या वृद्धि दर ऊँची है। उन देशों में जन्म दर और मृत्यु दर दोनों ही उच्च हैं। हाल ही में स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के साथ मृत्यु दर कम हो गई है परंतु जन्म दर अभी भी अधिक है जिससे वृद्धि दर बढ़ रही है।
- अन्य देशों में जैसे यूनाइटेड किंगडम में निम्न जन्मदर और मृत्यु दर के कारण जनसंख्या वृद्धि की दर मंद है।

YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

Class-9

1. भारत आकार और स्थिति
2. अपवाह तंत्र
3. जलवायु
4. प्राकृतिक वनस्पति
5. मृदा
6. प्राकृतिक संकट एवं आपदाए

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

भारत आकार और स्थिति

- पिछले पाँच दशकों में भारत ने सामाजिक-आर्थिक रूप से बहुमुखी उन्नति की है। कृषि, उद्योग, तकनीकी और सर्वांगीण आर्थिक विकास में अद्भुत प्रगति हुई है। भारत का विश्व इतिहास में भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

स्थिति

- भारत एक विशाल देश है। यह उत्तरी गोलार्ध में स्थित है (चित्र 1.1) और इसका मुख्य भाग 84' उत्तर से 37°6′ उत्तर अक्षांश तथा 68°7' पूर्व से 97°25′ पूर्व देशांतर तक है। कर्क रेखा 23°30′ उत्तर में देश को लगभग दो बराबर भागों में बाँटती है। मुख्य भूभाग के दक्षिण-पूर्व में, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह बंगाल की खाड़ी में तथा दक्षिण-पश्चिम में लक्षद्वीप द्वीप समूह अरब सागर में स्थित हैं।
- भारतीय संघ राज्य का सबमें दक्षिणी बिंदु, जो इंदिरा बिंदु कहा जाता था. सन् 2004 में सुनामी लहरों के कारण समुद्र में जलमग्न हो गया।

आकार

- भारत के भूभाग का कुल क्षेत्रफल लगभग 32.8 लाख वर्ग कि.मी. है। भारत का क्षेत्रफल विश्व के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 2.4 प्रतिशत है। चित्र 1.2 से स्पष्ट है कि भारत विश्व का सातवाँ बड़ा देश है। भारत की स्थल सीमा रेखा लगभग 15.200 कि.मी. और समुद्री तट रेखा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह तथा लक्षद्वीप समूह के साथ 7,516.6 कि.मी. है।
- भारत के उत्तर-पश्चिम, उत्तर तथा उत्तर-पूर्वी सीमा पर नवीनतम वलित पर्वत है। इसके दक्षिण का भूभाग उत्तर में चौड़ा है और 22° उत्तरी अक्षांश से हिंद महासागर की ओर संकरा होता गया है। इसके पश्चिम में अरब सागर तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी स्थित है।
- चित्र 1.3 में देखिए कि अक्षांश और देशांतर का विस्तार लगभग 30° है। परंतु फिर भी पूर्व-पश्चिम का विस्तार उत्तर-दक्षिण के विस्तार की अपेक्षा कम प्रतीत होता है।
- गुजरात से अरुणाचल प्रदेश के स्थानीय समय में दो घंटे का अंतर है अतः 82°30' पूर्व देशांतर रेखा को भारत की मानक याम्योत्तर माना गया है जो कि उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर से गुजरती है। अक्षांश का प्रभाव दक्षिण से उत्तर की ओर, दिन और रात की अवधि पर पड़ता है।

भारत तथा विश्व

- भारतीय भूखंड एशिया महाद्वीप के पूर्व और पश्चिम के मध्य में स्थित है। भारतीय भूभाग एशिया महाद्वीप का दक्षिणी विस्तार है। हिंद महासागर जो कि पश्चिम में यूरोपीय देशों और पूर्वी एशियाई देशों को मिलाता है भारत को केंद्रीय स्थिति प्रदान करता है। देखिए, दक्षिण का पठार हिंद महासागर में शीर्षवत् फैला हुआ है और पश्चिम एशिया, अफ्रीका और यूरोप के देशों के साथ-साथ पूर्वी एशिया के देशों से भी पूर्वी तट के माध्यम से निकटतम संबंध बनाए हुए है। हिंद महासागर में किसी भी देश की तटीय सीमा भारत जैसी नहीं है। भारत की इसी महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण एक महासागर का नाम इसके नाम पर रखा गया है।
- भारत का विश्व के देशों के साथ संपर्क युगों पुराना है परंतु यह संबंध समुद्री जलमार्गों की अपेक्षा भूभागों से होकर था। उत्तरी पर्वतों के दरों से अनेक यात्री प्राचीन काल में भारत आए। जबकि समुद्री मार्ग बहुत समय तक ज्ञात नहीं थे।
- इन मार्गों से प्राचीन समय से विचारों और वस्तुओं का आदान-प्रदान होता रहा है। भारत का पश्चिम मध्य और पूर्वी एशिया तथा दक्षिणी एशिया के पड़ोसी देशों के साथ एक अद्भुत संपर्क रहा है। इसी प्रकार उपनिषदों के विचार, रामायण तथा पंचतंत्र की कहानियाँ, भारतीय अंक एवं दशमलव प्रणाली आदि संसार के विभिन्न भागों तक पहुँच सके। मसाले, मलमल आदि कपड़े तथा व्यापार के अन्य समान भारत से विभिन्न देशों को ले जाए जाते थे। इसके विपरीत यूनानी स्थापत्यकला तथा पश्चिमी एशिया की वास्तुकला के प्रतीक मीनारों तथा गुंबदों का प्रभाव हमारे देश के विभिन्न भागों में देखा गया।

भारत के पड़ोसी देश

- भारत का दक्षिण एशिया में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत में 28 राज्य और 7 केंद्र शासित क्षेत्र हैं।
- भारत की भूमि की सीमाएँ उत्तर-पश्चिम में पाकिस्तान और अफ़गानिस्तान के साथ, उत्तर में चीन (तिब्बत) नेपाल और भूटान के साथ तथा पूर्व में म्यांमार व बांग्लादेश के साथ हैं। दक्षिण में समुद्र पार हमारे पड़ोसी दो द्वीप समूह राष्ट्र श्रीलंका और मालदीव हैं। भारत और श्रीलंका के बीच में छोटा समुद्री रास्ता पाक जलसंधि तथा मन्नार की खाड़ी है। मालदीव, लक्षद्वीप समूह के दक्षिण में स्थित है।
- अपने पड़ोसी देशों के साथ भारत के भौगोलिक और ऐतिहासिक संबंध बहुत अच्छे रहे हैं। अपनी एटलस में एशिया के मानचित्र में देखा कि भारत कैसे अलग दिखाई देता है।

भारत का भौतिक स्वरूप

- जै सा कि आप जानते हैं कि भारत विभिन्न स्थलाकृतियों वाला एक विशाल देश है। आप किस प्रकार के क्षेत्र/भूभाग में रहते हैं? यदि आप मैदानी क्षेत्र में रहते हैं. तो आप वहाँ के दूर तक फैले विशाल मैदानों से परिचित होंगे और यदि पर्वतीय क्षेत्र के निवासी हैं, तो आप पर्वतीय ढलानों और घाटियों से भली-भाँति परिचित होंगे। वास्तव में, हमारे देश में हर प्रकार की भू-आकृतियाँ पायी जाती हैं. जैसे पर्वत, मैदान, मरुस्थल पठार तथा द्वीप समूह। आप यह सोच रहे होंगे कि यह विभिन्न प्रकार की भू-आकृतियाँ कैसे बनीं? अब हम भारत की मुख्य भू-आकृतियों की विशेषताएँ तथा उनकी संरचना के बारे में जानेंगे।
- यहाँ विभिन्न प्रकार की शैलें पायी जाती हैं, जिनमें से कुछ संगमरमर की तरह कठोर होती हैं, जिसका प्रयोग ताजमहल के निर्माण में हुआ है एवं कुछ सेलखड़ी की तरह मुलायम होती हैं. जिसका प्रयोग टेल्कम पाउडर बनाने में होता है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर मृदा के रंगों में भिन्नता पायी जाती है क्योंकि मृदा विभिन्न प्रकार की शैलों से बनी होती हैं। क्या आपने कभी इन विविधताओं के कारणों के बारे में सोचा है? इनमें से अधिकतर विविधताएँ शैलों के निर्माण में विभिन्नता के कारण होती हैं।
- भारत एक विशाल भूभाग है। इसका निर्माण विभिन्न भूगर्भीय कालों के दौरान हुआ है. जिसने इसके उच्चावचों को प्रभावित किया है। भूगर्भीय निर्माणों के अतिरिक्त. कई अन्य प्रक्रियाओं जैसे अपक्षय, अपरदन तथा निक्षेपण के द्वारा वर्तमान उच्चावचों का निर्माण तथा संशोधन हुआ है।
- कुछ प्रमाणों पर आधारित सिद्धांतों की सहायता से भूगर्भशास्त्रियों ने इन भौतिक आकृतियों के निर्माण की व्याख्या करने की कोशिश की है। इसी तरह का एक सर्वमान्य सिद्धांत, प्लेट विवर्तनिक का सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार, पृथ्वी की ऊपरी पर्पटी सात बड़ी एवं कुछ छोटी प्लेटों से बनी है (चित्र 2.2)1
- प्लेटों की गति के कारण प्लेटों के अंदर एवं ऊपर की ओर स्थित महाद्वीपीय शैलों में दबाव उत्पन्न होता है। इसके परिणामस्वरूप वलन, अंशीकरण तथा ज्वालामुखीय क्रियाएँ होती हैं। सामान्य तौर पर इन प्लेटों की गतियों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है (चित्र 2.1)। कुछ प्लेटें एक-दूसरे के करीब आती हैं और अभिसारित परिसीमा का निर्माण करती है। जबकि कुछ प्लेट एक दूसरे से दूर जाती हैं और अपसारित परिसीमा का निर्माण करती हैं। जब दो प्लेट एक-दूसरे के करीब आती हैं, तब या तो वे टकराकर टूट सकती हैं या एक प्लेट फिसल कर दूसरी प्लेट के नीचे जा सकती है। कभी-कभी वे एक-दूसरे के साथ क्षैतिज दिशा में भी गति कर सकती हैं और रूपांतर परिसीमा का निर्माण करती हैं। इन प्लेटों में लाखों वर्षों से हो रही गति के कारण महाद्वीपों की स्थिति तथा आकार में परिवर्तन आया है। भारत की वर्तमान स्थलाकृति का विकास भी इस प्रकार की गतियों से प्रभावित हुआ है।
- क्या आप जानते है? विश्व के अधिकतर ज्वालामुखी एवं भूकंप संभावी क्षेत्र, प्लेट के किनारों पर स्थित हैं। लेकिन कुछ प्लेट के अंदर भी पाये जाते हैं।
- सबसे प्राचीन भूभाग (अर्थात् प्रायद्वीपीय भाग) गोंडवाना भूमि का एक हिस्सा था। गोंडवाना भूभाग के विशाल क्षेत्र में भारत् आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका तथा अंटार्कटिक के क्षेत्र शामिल थे। संवहनीय धाराओं ने भू-पर्पटी को अनेक टुकड़ों में विभाजित कर दिया और इस प्रकार भारत-आस्ट्रेलिया की प्लेट गोंडवाना भूमि से अलग होने के बाद उत्तर दिशा की ओर प्रवाहित होने लगी। उत्तर दिशा की ओर प्रवाह के परिणामस्वरूप ये प्लेट अपने से अधिक विशाल प्लेट, यूरेशियन प्लेट से टकरायी। इस टकराव के कारण इन दोनो प्लेटों के बीच स्थित 'टेथिस' भू-अभिनति के अवसादी चट्टान, वलित होकर हिमालय तथा पश्चिम एशिया की पर्वतीय श्रृंखला के रूप में विकसित हो गये।
- गोंडवाना भूमिः ये प्राचीन विशाल महाद्वीप पैजिया का दक्षिणतम भाग है. जिसके उत्तर में अंगारा भूमि है।
- 'टेथिस' के हिमालय के रूप में ऊपर उठने तथा प्रायद्वीपीय पठार के उत्तरी किनारे के नीचे धँसने के परिणामस्वरूप एक बहुत बड़ी द्रोणी का निर्माण हुआ। समय के साथ-साथ यह बेसिन उत्तर के पर्वतों एवं दक्षिण के प्रायद्वीपीय पठारों से बहने वाली नदियों के अवसादी निक्षेपों द्वारा धीरे-धीरे भर गया। इस प्रकार जलोढ़ निक्षेपों से निर्मित एक विस्तृत समतल भूभाग भारत के उत्तरी मैदान के रूप में विकसित हो गया।
- भारत की भूमि बहुत अधिक भौतिक विभिन्नताओं को दर्शाती है। भूगर्भीय तौर पर प्रायद्वीपीय पठार पृथ्वी की सतह का प्राचीनतम भाग है। इसे भूमि का एक बहुत ही स्थिर भाग माना जाता था। परंतु हाल के भूकंपों ने इसे गलत साबित किया है। हिमालय एवं उत्तरी मैदान हाल में बनी स्थलाकृतियाँ हैं। भूगर्भ वैज्ञानिकों के अनुसार हिमालय पर्वत एक अस्थिर भाग है। हिमालय की पूरी पर्वत श्रृंखला एक युवा स्थलाकृति को दर्शाती है, जिसमें ऊँचे शिखर, गहरी घाटियाँ तथा तेज बहने वाली नदियाँ हैं। उत्तरी मैदान जलोढ़ निक्षेपों से बने हैं। प्रायद्वीपीय पठार आग्नेय तथा रूपांतरित शैलों वाली कम ऊँची पहाड़ियों एवं चौड़ी घाटियों से बना है।

मुख्य भौगोलिक वितरण

भारत की भौगोलिक आकृतियों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) हिमालय पर्वत श्रृंखला
(2) उत्तरी मैदान
(3) प्रायद्वीपीय पठार
(4) भारतीय मरुस्थल
(5) तटीय मैदान
(6) द्वीप समूह

हिमालय पर्वत

- भारत की उत्तरी सीमा पर विस्तृत हिमालय भूगर्भीय रूप से युवा एवं बनावट के दृष्टिकोण से वलित पर्वत श्रृंखला है। ये पर्वत श्रृंखलाएँ पश्चिम-पूर्व दिशा में सिंधु से लेकर ब्रह्मपुत्र तक फैली हैं। हिमालय विश्व की सबसे ऊँची पर्वत श्रेणी है और एक अत्यधिक असम अवरोधों में से एक है। ये 2.400 किमी की लंबाई में फैले एक अर्द्धवृत्त का निर्माण करते हैं। इसकी चौड़ाई कश्मीर में 400 कि॰मी॰ एवं अरुणाचल में 150 कि॰मी॰ है। पश्चिमी भाग की अपेक्षा पूर्वी भाग की ऊँचाई में अधिक विविधता पाई जाती है। अपने पूरे देशांतरीय विस्तार के साथ हिमालय को तीन भागों में बाँट सकते हैं। इन श्रृंखलाओं के बीच बहुत अधिक संख्या में घाटियाँ पाई जाती हैं। सबसे उत्तरी भाग में स्थित श्रृंखला को महान या आंतरिक हिमालय या हिमाद्रि कहते हैं। यह सबसे अधिक सतत् श्रृंखला है. जिसमें 6.000 मीटर की औसत ऊँचाई वाले सर्वाधिक ऊँचे शिखर हैं। इसमें हिमालय के सभी मुख्य शिखर हैं।

हिमालय के कुछ ऊँचे शिखर

शिखर	*देश*	*ऊँचाई (मीटर)*
माउंट एवरेस्ट	नेपाल	8,848
कंचनजुंगा	भारत	8,598
मकालु	नेपाल	8,481
धौलागिरि	नेपाल	8,172
नंगा पर्वत	भारत	8,126
अन्नपूर्णा	नेपाल	8,078
नंदादेवी	भारत	7,817
कामेट	भारत	7,756
नामचा बरुआ	भारत	7,756
गुरुला मंधाता	नेपाल	7,728

महान हिमालय के वलय की प्रकृति असंममित है।

- हिमालय के इस भाग का क्रोड ग्रेनाइट का बना है। यह श्रृंखला हमेशा बर्फ से ढँकी रहती है तथा इससे बहुत-सी हिमानियों का प्रवाह होता है।
- हिमाद्रि के दक्षिण में स्थित श्रृंखला सबसे अधिक असम है एवं हिमाचल या निम्न हिमालय के नाम से जानी जाती है। इन श्रृंखलाओं का निर्माण मुख्यतः अत्याधिक संपीडित तथा परिवर्तित शैलों से हुआ हैं। इनकी ऊँचाई 3.700 मीटर से 4,500 मीटर के बीच तथा औसत चौड़ाई 50 किलोमीटर है। जबकि पीर पंजाल श्रृंखला सबसे लंबी तथा सबसे महत्त्वपूर्ण श्रृंखला है. धौलाधर एवं महाभारत श्रृंखलाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। इसी श्रृंखला में कश्मीर की घाटी तथा हिमाचल के कांगड़ा एवं कुल्लू की घाटियाँ स्थित हैं। इस क्षेत्र को पहाड़ी नगरों के लिए जाना जाता है।
- हिमालय की सबसे बाहरी श्रृंखला को शिवालिक कहा जाता है। इनकी चौड़ाई 10 से 50 कि॰मी॰ तथा ऊँचाई 900 से 1.100 मीटर के बीच है। ये श्रृंखलाएँ, उत्तर में स्थित मुख्य हिमालय की श्रृंखलाओं से नदियों द्वारा लायी गयी असंपिडित अवसादों से बनी है। ये घाटियाँ बजरी तथा जलोढ़ की मोटी परत से ढँकी हुई हैं। निम्न हिमाचल तथा शिवालिक के बीच में स्थित लंबवत् घाटी को दून के नाम से जाना जाता है। कुछ प्रसिद्ध दून हैं- देहरादून, कोटलीदून एवं पाटलीदून।
- इस उत्तर-दक्षिण के अतिरिक्त हिमालय को पश्चिम से पूर्व तक स्थित क्षेत्रों के आधार पर भी विभाजित किया गया है। इन वर्गीकरणों को नदी घाटियों की सीमाओं के आधार पर किया गया है। उदाहरण के लिए, सतलुज एवं सिंधु के बीच स्थित हिमालय के भाग को पंजाब हिमालय के नाम से जाना जाता है। लेकिन पश्चिम से पूर्व तक क्रमशः इसे कश्मीर तथा हिमाचल हिमालय के नाम से भी जाना जाता है। सतलुज तथा काली नदियों के बीच स्थित हिमालय के भाग को कुमाँऊ हिमालय के नाम से भी जाना जाता है। काली तथा तिस्ता नदियाँ, नेपाल हिमालय का एवं तिस्ता तथा दिहांग नदियाँ असम हिमालय का सीमांकन करती है। हिमालय के कुछ क्षेत्रीय नाम पता कीजिए।
- ब्रह्मपुत्र हिमालय की सबसे पूर्वी सीमा बनाती है। दिहांग महाखड्ड (गार्ज) के बाद हिमालय दक्षिण की ओर एक तीखा मोड़ बनाते हुए भारत की पूर्वी सीमा के साथ फैल जाता है। इन्हें पूर्वाचल या पूर्वी पहाड़ियों तथा पर्वत श्रृंखलाओं के नाम से जाना जाता है। ये पहाड़ियाँ उत्तर-पूर्वी राज्यों से होकर गुजरती हैं तथा मज़बूत बलुआ पत्थरों, जो अवसादी शैल है, से बनी है। ये घने जंगलों से ढँकी हैं तथा अधिकतर समानांतर श्रृंखलाओं एवं घाटियों के रूप में फैली हैं। पूर्वाचल में पटकाई, नागा. मिजो तथा मणिपुर पहाड़ियाँ शामिल हैं।

उत्तरी मैदान

- उत्तरी मैदान तीन प्रमुख नदी प्रणालियों सिंधु, गंगा एवं ब्रह्मपुत्र तथा इनकी सहायक नदियों से बना है। यह मैदान जलोढ़ मृदा से बना है। लाखों वर्षों में हिमालय के गिरिपाद में स्थित बहुत बड़े बेसिन (द्रोणी) में जलोढ़ों का निक्षेप हुआ. जिससे इस उपजाऊ मैदान का निर्माण हुआ है। इसका विस्तार 7 लाख वर्ग किमी के क्षेत्र पर है। यह मैदान लगभग 2,400 किमी लंबा एवं 240 से 320 किमी चौड़ा है। यह सघन जनसंख्या वाला भौगोलिक क्षेत्र है। समृद्ध मृदा आवरण, प्रर्याप्त पानी की उपलब्धता एवं अनुकूल जलवायु के कारण कृषि की दृष्टि से यह भारत का अत्यधिक उत्पादक क्षेत्र है। उत्तरी पर्वतों से आने वाली नदियाँ निक्षेपण कार्य में लगी हैं। नदी के निचले भागों में ढाल कम होने के कारण नदी की गति कम हो जाती है. जिसके परिणामस्वरूप नदीय द्वीपों का निर्माण होता है। ये नदियाँ अपने निचले भाग में गाद एकत्र हो जाने के कारण बहुत-सी धाराओं में बँट जाती हैं। इन धाराओं को वितरिकाएँ कहा जाता है।
- उत्तरी मैदान को मोटे तौर पर तीन उपवर्गों में विभाजित किया गया है। उत्तरी मैदान के पश्चिमी भाग को पंजाब का मैदान कहा जाता है। सिंधु तथा इसकी सहायक नदियों के द्वारा बनाये गए इस मैदान का बहुत बड़ा भाग पाकिस्तान में स्थित है। सिंधु तथा इसकी सहायक नदियाँ झेलम, चेनाब. रावी. व्यास तथा सतलुज हिमालय से निकलती हैं। मैदान के इस भाग में दोआबों की संख्या बहुत अधिक है।

- गंगा के मैदान का विस्तार घग्घर तथा तिस्ता नदियों के बीच है। यह उत्तरी भारत के राज्यों हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड के कुछ भाग तथा पश्चिम बंगाल में फैला है। ब्रह्मपुत्र का मैदान इसके पश्चिम विशेषकर असम में स्थित है।
- उत्तरी मैदानों की व्याख्या सामान्यतः इसके उच्चावचों में बिना किसी विविधता वाले समतल स्थल के रूप में की जाती है। यह सही नहीं है। इन विस्तृत मैदानों की भौगोलिक आकृतियों में भी विविधता है। आकृतिक भिन्नता के आधार पर उत्तरी मैदानों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। नदियाँ पर्वतों से नीचे उतरते समय शिवालिक की ढाल पर 8 से 16 किमी के चौड़ी पट्टी में गुटिका का निक्षेपण करती हैं। इसे 'भावर' के नाम से जाना जाता है। सभी सरिताएँ इस भाबर पट्टी में विलुप्त हो जाती हैं। इस पट्टी के दक्षिण में ये सरिताएँ एवं नदियाँ पुनः निकल आती हैं। एवं नम तथा दलदली क्षेत्र का निर्माण करती हैं, जिसे 'तराई' कहा जाता है। यह वन्य प्राणियों से भरा घने जंगलों का क्षेत्र था। बँटवारे के बाद पाकिस्तान से आए शरणार्थियों को कृषि योग्य भूमि उपलब्ध कराने के लिए इस जंगल को काटा जा चुका है। इस क्षेत्र के दुधवा राष्ट्रीय पार्क की स्थिति ज्ञात कीजिए।
- उत्तरी मैदान का सबसे विशालतम भाग पुराने जलोढ़ का बना है। वे नदियों के बाढ़ वाले मैदान के ऊपर स्थित हैं तथा वेदिका जैसी आकृति प्रदर्शित करते हैं। इस भाग को 'भांगर' के नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्र की मृदा में चूनेदार निक्षेप पाए जाते हैं. जिसे स्थानीय भाषा में 'कंकड़' कहा जाता है। बाढ़ वाले मैदानों के नये तथा युवा निक्षेपों को 'खादर' कहा जाता है। इनका लगभग प्रत्येक वर्ष पुनर्निर्माण होता है. इसलिए ये उपजाऊ होते हैं तथा गहन खेती के लिए आदर्श होते हैं।

प्रायद्वीपीय पठार

- प्रायद्वीपीय पठार एक मेज की आकृति वाला स्थल है जो पुराने क्रिस्टलीय, आग्नेय तथा रूपांतरित शैलों से बना है। यह गोंडवाना भूमि के टूटने एवं अपवाह के कारण बना था तथा यही कारण है कि यह प्राचीनतम भूभाग का एक हिस्सा है। इस पठारी भाग में चौड़ी तथा छिछली घाटियाँ एवं गोलाकार पहाड़ियाँ हैं। इस पठार के दो मुख्य भाग हैं- 'मध्य उच्चभूमि' तथा 'दक्कन का पठार'। नर्मदा नदी के उत्तर में प्रायद्वीपीय पठार का वह भाग जो कि मालवा के पठार के अधिकतर भागों पर फैला है उसे मध्य उच्चभूमि के नाम से जाना जाता है। विंध्य श्रृंखला दक्षिण में मध्य उच्चभूमि तथा उत्तर-पश्चिम में अरावली से घिरी है। पश्चिम में यह धीरे-धीरे राजस्थान के बलुई तथा पथरीले मरुस्थल से मिल जाता है। इस क्षेत्र में बहने वाली नदियाँ, चंबल, सिंध, बेतवा तथा केन दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की तरफ बहती हैं. इस प्रकार वे इस क्षेत्र के ढाल को दर्शाती हैं। मध्य उच्चभूमि पश्चिम में चौड़ी लेकिन पूर्व में संकीर्ण है। इस पठार के पूर्वी विस्तार को स्थानीय रूप से बुंदेलखंड तथा बघेलखंड के नाम से जाना जाता है। इसके और पूर्व के विस्तार को दामोदर नदी द्वारा अपवाहित छोटा नागपुर पठार दर्शाता है।
- दक्षिण का पठार एक त्रिभुजाकार भूभाग है. जो नर्मदा नदी के दक्षिण में स्थित है। उत्तर में इसके चौडे आधार पर सतपुड़ा की श्रृंखला है. जबकि महादेव, कैमूर की पहाड़ी तथा मैकाल श्रृंखला इसके पूर्वी विस्तार हैं। भारत के भौतिक मानचित्र पर इन पहाड़ियों एवं श्रृंखलाओं को स्थिति को ज्ञात करें। दक्षिण का पठार पश्चिम में ऊँचा एवं पूर्व की ओर कम ढाल वाला है। इस पठार का एक भाग उत्तर-पूर्व में भी देखा जाता है. जिसे स्थानीय रूप से 'मेघालय', 'कार्बी एंगलींग पठार' तथा 'उत्तर कचार पहाड़ी' के नाम से जाना जाता है। यह एक भ्रंश के द्वारा छोटा नागपुर पठार से अलग हो गया है। पश्चिम से पूर्व की ओर तीन महत्त्वपूर्ण श्रृंखलाएँ गारो. खासी तथा जयतिया हैं।
- दक्षिण के पठार के पूर्वी एवं पश्चिमी सिरे पर क्रमशः पूर्वी तथा पश्चिमी घाट स्थित हैं। पश्चिमी घाट, पश्चिमी तट के समानांतर स्थित है। वे सतत् हैं तथा उन्हें केवल दरों के द्वारा ही पार किया जा सकता है। भारत के भौतिक मानचित्र में थाल घाट, भोर घाट तथा पाल घाट की स्थिति ज्ञात करें।
- पश्चिमी घाट, पूर्वी घाट की अपेक्षा ऊँचे हैं। पूर्वी घाट के 600 मीटर की औसत ऊँचाई की तुलना में पश्चिमी घाट की ऊँचाई 900 से 1.600 मीटर है। पूर्वी घाट का विस्तार महानदी घाटी से दक्षिण में नीलगिरी तक है। पूर्वी घाट का विस्तार सतत् नहीं है। ये अनियमित हैं एवं बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियों ने इनको काट दिया है। पश्चिमी घाट में पर्वतीय वर्षा होती है। यह वर्षा घाट के पश्चिमी ढाल पर आर्द्र हवा के टकराकर ऊपर उठने के कारण होती है। पश्चिमी घाट को विभिन्न स्थानीय नामों से जाना जाता है। पश्चिमी घाट को ऊँचाई, उत्तर से दक्षिण की ओर बढ़ती जाती है। इस भाग के शिखर ऊँचे हैं, जैसे अनाई मुडी (2.695 मी) तथा डोडा बेटा (2,633 मी०)। पूर्वी घाट का सबसे ऊँचा शिखर महेंद्रगिरी (1.500 मो०) है। पूर्वी घाट के दक्षिण-पश्चिम में शेवराय तथा जावेडी की पहाड़ियाँ स्थित हैं। उड्गमंडलम्, जिसे ऊटी के नाम से जाना जाता है तथा कोडईकनाल जैसे प्रसिद्ध पहाड़ी नगरों की स्थिति मानचित्र में ज्ञात कीजिए।
- प्रायद्वीपीय पठार की एक विशेषता यहाँ पायी जाने वाली काली मृदा है. जिसे 'दक्कन ट्रैप' के नाम से भी जाना जाता है। इसकी उत्पत्ति ज्वालामुखी से हुई है. इसलिए इसके शैल आग्नेय हैं। वास्तव में इन शैलों का समय के साथ अपरदन हुआ है. जिनसे काली मृदा का निर्माण हुआ है। अरावली की पहाड़ियाँ प्रायद्वीपीय पठार के पश्चिमी एवं उत्तर-पश्चिमी किनारे पर स्थित है। ये बहुत अधिक अपरदित एवं खंडित पहाड़ियाँ हैं। ये गुजरात से लेकर दिल्ली तक दक्षिण-पश्चिम एवं उत्तर-पूर्व दिशा में फैली हैं।

भारतीय मरुस्थल

- अरावली पहाड़ी के पश्चिमी किनारे पर थार का मरुस्थल स्थित है। यह बालू के टिब्बों से ढँका एक तरंगित मैदान है। इस क्षेत्र में प्रति वर्ष 150 मिमी से भी कम वर्षा होती है। इस शुष्क जलवायु वाले क्षेत्र में वनस्पति बहुत कम है। वर्षा ऋतु में ही कुछ सरिताएँ दिखती हैं और उसके बाद वे बालू में ही विलीन हो जाती हैं। पर्याप्त जल नहीं मिलने से वे समुद्र तक नहीं पहुँच पाती हैं। केवल 'लूनी' ही इस क्षेत्र की सबसे बड़ी नदी है।

- बरकान (अर्धचंद्राकार बालू का टीला) का विस्तार बहुत अधिक क्षेत्र पर होता है. लेकिन लंबवत् टीले भारत-पाकिस्तान सीमा के समीप प्रमुखता से पाए जाते हैं। यदि आप जैसलमेर जाएँ, तो बरकान के समूह देख सकते हैं।

तटीय मैदान

- प्रायद्वीपीय पठार के किनारों संकीर्ण तटीय पट्टीयों का विस्तार है। यह पश्चिम में अरब सागर से लेकर पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक विस्तृत है। पश्चिमी तट पश्चिमी घाट तथा अरब सागर के बीच स्थित एक संकीर्ण मैदान है। इस मैदान के तीन भाग हैं। तट के उत्तरी भाग को कोंकण (मुंबई तथा गोवा). मध्य भाग को कन्नड मैदान एवं दक्षिणी भाग को मालाबार तट कहा जाता है।
- बंगाल की खाड़ी के साथ विस्तृत मैदान चौड़ा एवं समतल है। उत्तरी भाग में इसे 'उत्तरी सरकार' कहा जाता है। जबकि दक्षिणी भाग 'कोरोमंडल' तट के नाम से जाना जाता है। बड़ी नदियाँ, जैसे महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी इस तट पर विशाल डेल्टा का निर्माण करती हैं। चिल्का झील पूर्वी तट पर स्थित एक महत्त्वपूर्ण भू-लक्षण है।

द्वीप समूह

- केरल के मालाबार तट के पास स्थित लक्षद्वीप की स्थिति को ज्ञात कीजिए। द्वीपों का यह समूह छोटे प्रवाल द्वीपों से बना है। पहले इनको लकादीव, मीनीकाय तथा एमीनदीव के नाम से जाना जाता था। 1973 में इनका नाम लक्षद्वीप रखा गया। यह 32 वर्ग कि॰मी॰ के छोटे से क्षेत्र में फैला है। कावारत्ती द्वीप लक्षद्वीप का प्रशासनिक मुख्यालय है। इस द्वीप समूह पर पादप तथा जंतु के बहुत से प्रकार पाए जाते हैं। पिटली द्वीप, जहाँ मनुष्य का निवास नहीं है, वहाँ एक पक्षी अभयारण्य है।
- अब बंगाल की खाड़ी में उत्तर से दक्षिण के तरफ फैले द्वीपों की श्रृंखला की ओर ध्यान दीजिए। ये अंडमान एवं निकोबार द्वीप हैं। यह द्वीप समूह आकार में बड़े संख्या में बहुल तथा बिखरे हुए हैं।

प्रवाल

प्रवाल पॉलिप्स कम समय तक जीवित रहने वाले सूक्ष्म प्राणी हैं, जो कि समूह में रहते हैं। इनका विकास छिछले तथा गर्म जल में होता है। इनसे कैल्शियम कार्बोनेट का स्राव होता है। प्रवाल स्राव एवं प्रवाल अस्थियाँ टीले के रूप में निक्षेपित होती हैं। ये मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं- 1. प्रवाल रोधिका, 2. तटीय प्रवाल भित्ति तथा 3. प्रवाल वलय द्वीप आस्ट्रेलिया का 'ग्रेट बैरियर रीफ प्रवाल रोधिका का अच्छा उदाहरण है। प्रवाल वलय द्वीप गोलाकार या हार्स शू आकार वाले रोधिका होते हैं।

- यह द्वीप समूह मुख्यतः दो भागों में बाँटा गया है उत्तर में अंडमान तथा दक्षिण में निकोबार। यह माना जाता है कि यह द्वीप समूह निमज्जित पर्वत श्रेणियों के शिखर हैं। यह द्वीप समूह देश की सुरक्षा के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन द्वीप समूहों में पाए जाने वाले पादप एवं जंतुओं में बहुत अधिक विविधता है। ये द्वीप विषवत् वृत के समीप स्थित हैं एवं यहाँ की जलवायु विषुवतीय है तथा यह घने जंगलों से आच्छादित है।
- विभिन्न भू-आकृतिक विभागों का विस्तृत विवरण प्रत्येक विभाग की विशेषताएँ स्पष्ट करता है परंतु यह स्पष्ट है कि ये विभाग एक-दूसरे के पूरक हैं और वे देश को प्राकृतिक संसाधनों में समृद्ध बनाते हैं। उत्तरी पर्वत जल एवं वनों के प्रमुख स्रोत हैं। उत्तरी मैदान देश के अन्न भंडार हैं। इनसे प्राचीन सभ्यताओं के विकास को आधार मिला। पठारी भाग खनिजों के भंडार हैं. जिसने देश के औद्योगीकरण में विशेष भूमिका निभाई है। तटीय क्षेत्र मत्स्यन और पोत संबंधी क्रिया-कलापों के लिए उपयुक्त स्थान हैं। इस प्रकार देश की विविध भौतिक आकृतियाँ भविष्य में विकास की अनेक संभावनाएँ प्रदान करती हैं।

YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

अपवाह

- अपवाह शब्द एक क्षेत्र के नदी तंत्र की व्याख्या करता है। भारत के भौतिक मानचित्र को देखिए। आप पाएँगे कि विभिन्न दिशाओं से छोटी-छोटी धाराएँ आकर एक साथ मिल जाती हैं तथा एक मुख्य नदी का निर्माण करती हैं, अंततः इनका निकास किसी बड़े जलाशय, जैसे झील या समुद्र या महासागर में होता है। एक नदी तंत्र द्वारा जिस क्षेत्र का जल प्रवाहित होता है उसे एक अपवाह द्रोणी कहते हैं। मानचित्र का अवलोकन करने पर यह पता चलता है कि कोई भी
- ऊँचा क्षेत्र, जैसे- पर्वत या उच्च भूमि दो पड़ोसी अपवाह द्रोणियों को एक दूसरे से अलग करती है। इस प्रकार की उच्च भूमि को जल विभाजक कहते हैं।

भारत में अपवाह तंत्र

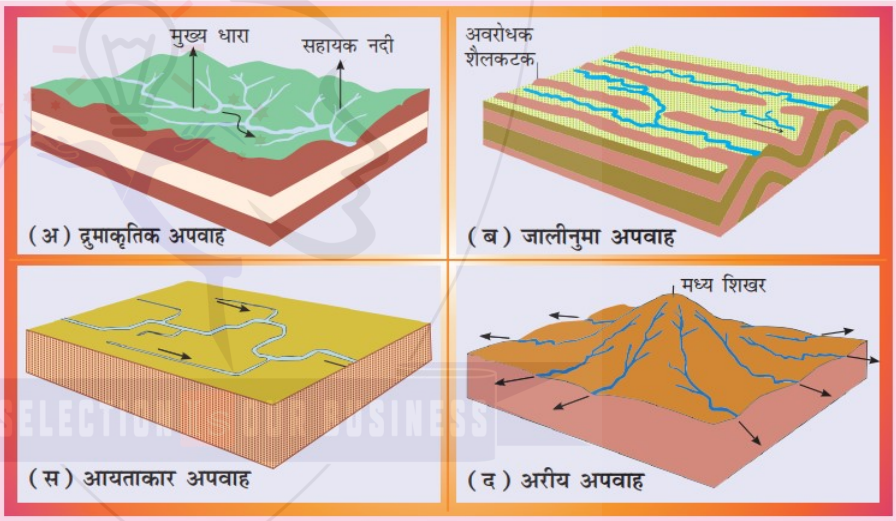
- भारत के अपवाह तंत्र का नियंत्रण मुख्यतः भौगोलिक आकृतियों के द्वारा होता है। इस आधार पर भारतीय नदियों को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया है-

हिमालय की नदियाँ तथा प्रायद्वीपीय नदियाँ

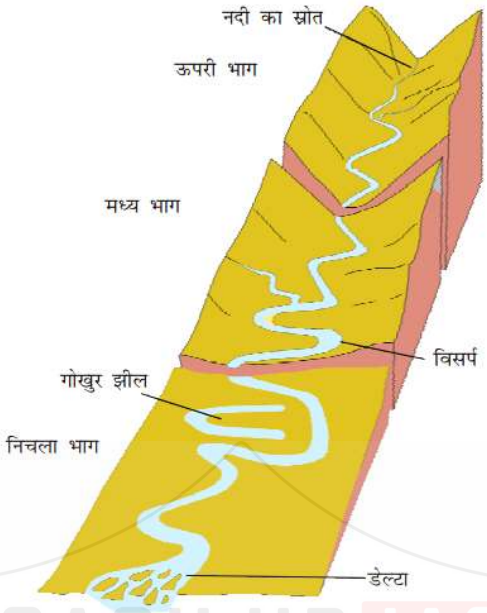
- भारत के दो मुख्य भौगोलिक क्षेत्रों से उत्पन्न होने के कारण हिमालय तथा प्रायद्वीपीय नदियाँ एक-दूसरे से भिन्न हैं। हिमालय की अधिकतर नदियाँ बारहमासी नदियाँ होती हैं। इनमें वर्ष भर पानी रहता है, क्योंकि इन्हें वर्षा के अतिरिक्त ऊँचे पर्वतों से पिघलने वाले हिम द्वारा भी जल प्राप्त होता है। हिमालय की दो मुख्य नदियाँ सिंधु तथा ब्रह्मपुत्र इस पर्वतीय श्रृंखला के उत्तरी भाग से निकलती हैं। इन नदियों ने पर्वतों को काटकर गॉजों का निर्माण किया है। हिमालय की नदियाँ अपने उत्पत्ति के स्थान से लेकर समुद्र तक के लंबे रास्ते को तय करती हैं।

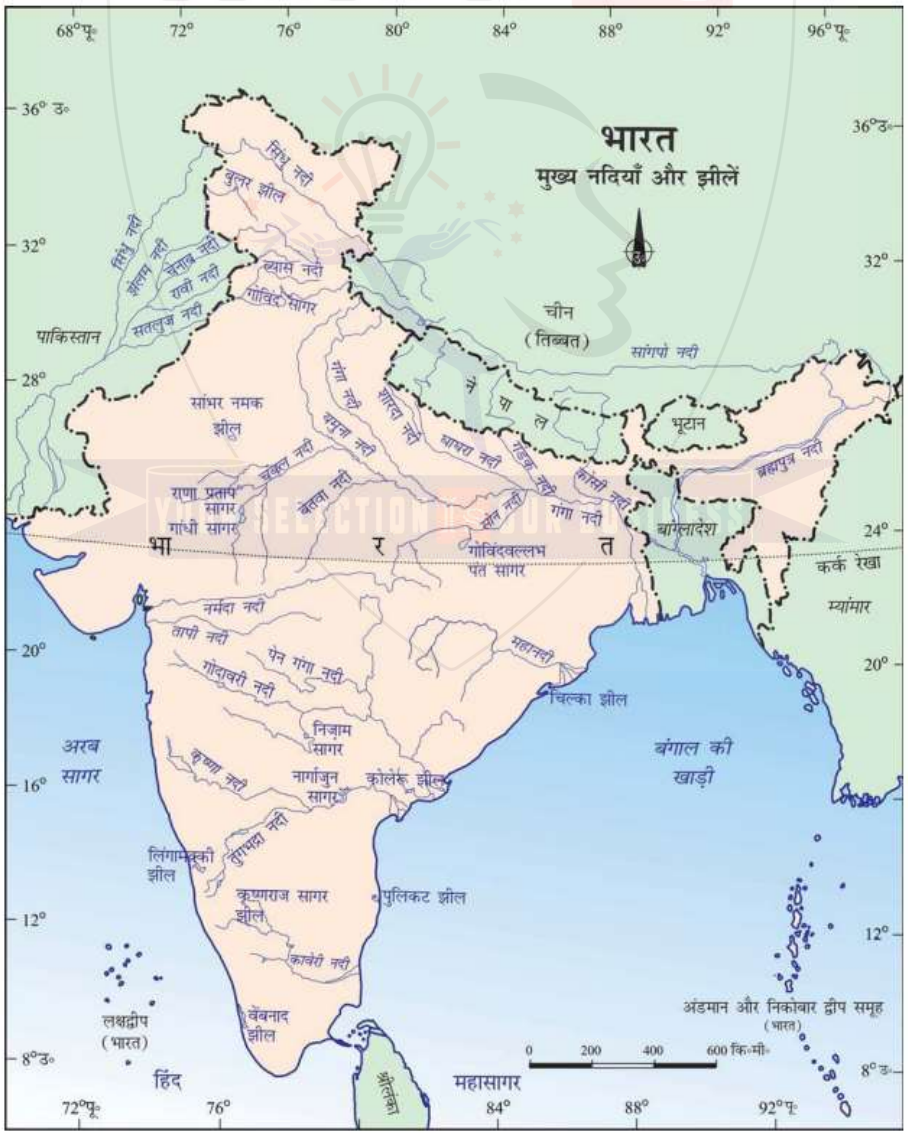
अपवाह प्रतिरूप

एक अपवाह प्रतिरूप में धाराएँ एक निश्चित प्रतिरूप का निर्माण करती हैं, जो कि उस क्षेत्र की भूमि की ढाल, जलवायु संबंधी अवस्थाओं तथा अध:स्थ शैल संरचना पर आधारित है। यह द्रुमाकृतिक, जालीनुमा, आयताकार तथा अरीय अपवाह प्रतिरूप है। द्रुमाकृतिक प्रतिरूप तब बनता है जब धाराएँ उस स्थान के भूस्थल की ढाल के अनुसार बहती हैं। इस प्रतिरूप में मुख्य धारा तथा उसकी सहायक नदियाँ एक वृक्ष की शाखाओं की भाँति प्रतीत होती हैं। जब सहायक नदियाँ मुख्य नदी से समकोण पर मिलती हैं तब जालीनुमा प्रतिरूप का निर्माण करती है। जालीनुमा प्रतिरूप वहाँ विकसित करता है जहाँ कठोर और मुलायम चट्टानें समानांतर पायी जाती हैं। आयताकार अपवाह प्रतिरूप प्रबल संधित शैलीय भूभाग पर विकसित करता है। अरीय प्रतिरूप तब विकसित होता है जब केंद्रीय शिखर या गुम्बद जैसी संरचना धारायें विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित होती हैं। विभिन्न प्रकार के अपवाह प्रतिरूप का संयोजन एक ही अपवाह द्रोणी में भी पाया जा सकता है।



- ये अपने मार्ग के ऊपरी भागों में तीव्र अपरदन क्रिया करती हैं तथा अपने साथ भारी मात्रा में सिल्ट एवं बालू का संवहन करती हैं। मध्य एवं निचले भागों में ये नदियाँ विसर्प, गोखुर झील तथा अपने बाढ़ वाले मैदानों में बहुत-सी अन्य निक्षेपण आकृतियों का निर्माण करती हैं। ये पूर्ण विकसित डेल्टाओं का भी निर्माण करती हैं (चित्र 3.3)। अधिकतर प्रायद्वीपीय नदियाँ मौसमी होती हैं, क्योंकि इनका प्रवाह वर्षा पर निर्भर करता है। शुष्क मौसम में बड़ी नदियों का जल भी घटकर छोटी-छोटी धाराओं में बहने लगता है। हिमालय की नदियों की तुलना में प्रायद्वीपीय नदियों की लंबाई कम तथा छिछली हैं। फिर भी इनमें से कुछ केंद्रीय उच्चभूमि से निकलती हैं तथा पश्चिम की तरफ बहती हैं। क्या आप इस प्रकार की दो बड़ी नदियों को पहचान सकते हैं? प्रायद्वीपीय भारत की अधिकतर नदियाँ पश्चिमी घाट से निकलती हैं तथा बंगाल की खाड़ी की तरफ बहती हैं।





चित्र 3.4 : मुख्य नदियाँ और झीलें

हिमालय की नदियाँ

- सिंधु, गंगा तथा ब्रह्मपुत्र हिमालय से निकलने वाली प्रमुख नदियाँ हैं। ये नदियाँ लंबी हैं तथा अनेक महत्त्वपूर्ण एवं बड़ी सहायक नदियाँ आकर इनमें मिलती हैं। किसी नदी तथा उसकी सहायक नदियों को नदी तंत्र कहा जाता है।

सिंधु नदी तंत्र

- सिंधु नदी का उद्गम मानसरोवर झील के निकट तिब्बत में है। पश्चिम की ओर बहती हुई यह नदी भारत में जम्मू कश्मीर के लद्दाख जिले से प्रवेश करती है। इस भाग में यह एक बहुत ही सुंदर दर्शनीय गार्ज का निर्माण करती है। इस क्षेत्र में बहुत-सी सहायक नदियाँ जैसे जास्कर, नूबरा, श्योक तथा हुंज़ा इस नदी में मिलती हैं। सिंधु नदी बलूचिस्तान तथा गिलगित से बहते हुए अटक में पर्वतीय क्षेत्र से बाहर निकलती है। सतलुज, ब्यास, रावी, चेनाब तथा झेलम आपस में मिलकर पाकिस्तान में मिठानकोट के पास सिंधु नदी में मिल जाती हैं। इसके बाद यह नदी दक्षिण की तरफ बहती है तथा अंत में कराची से पूर्व की ओर अरब सागर में मिल जाती है। सिंधु नदी के मैदान का ढाल बहुत धीमा है। सिंधु द्रोणी का एकतिहाई से कुछ अधिक भाग भारत के जम्मू-कश्मीर, हिमाचल तथा पंजाब में तथा शेष भाग पाकिस्तान में स्थित है। 2,900 कि॰मी॰ लंबी सिंधु नदी विश्व की लंबी नदियों में से एक है।

सिंधु जल समझौता संधि के अनुच्छेदों (1960) के अनुसार भारत इस नदी प्रक्रम के संपूर्ण जल का केवल 20 प्रतिशत जल उपयोग कर सकता है। इस जल का उपयोग हम पंजाब, हरियाणा एवं राजस्थान के दक्षिण-पश्चिम भागों में सिंचाई के लिए करते हैं।

गंगा नदी तंत्र

- गंगा की मुख्य धारा 'भागीरथी' गंगोत्री हिमानी से निकलती है तथा अलकनंदा उत्तराखण्ड के देवप्रयाग में इससे मिलती हैं। हरिद्वार के पास गंगा पर्वतीय भाग को छोड़कर मैदानी भाग में प्रवेश करती है।
- हिमालय से निकलने वाली बहुत सी नदियाँ आकर गंगा में मिलती हैं, इनमें से कुछ प्रमुख नदियाँ हैं-
- यमुना, घाघरा, गंडक तथा कोसी। यमुना नदी हिमालय के यमुनोत्री हिमानी से निकलती है। यह गंगा के दाहिने किनारे के समानांतर बहती है तथा इलाहाबाद में गंगा में मिल जाती है। घाघरा, गंडक तथा कोसी, नेपाल हिमालय से निकलती हैं। इनके कारण प्रत्येक वर्ष उत्तरी मैदान के कुछ हिस्से में बाढ़ आती है, जिससे बड़े पैमाने पर जान-माल का नुकसान होता है, लेकिन ये वे नदियाँ हैं. जो मिट्टी को उपजाऊपन प्रदान कर कृषि योग्य भूमि बना देती हैं।
- प्रायद्वीपीय उच्चभूमि से आने वाली मुख्य सहायक नदियाँ चंबल, बेतवा तथा सोन हैं। ये अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों से निकलती हैं। इनकी लंबाई कम तथा इनमें पानी की मात्रा भी कम होती है। ज्ञात कीजिए कि ये नदियाँ कैसे तथा कहाँ गंगा में मिलती हैं।
- बाएँ तथा दाहिने किनारे की सहायक नदियों के जल से परिपूर्ण होकर गंगा पूर्व दिशा में, पश्चिम बंगाल के फरक्का तक बहती है। यह गंगा डेल्टा का सबसे उत्तरी बिंदु है। यहाँ नदी दो भागों में बँट जाती है, भागीरथी हुगली (जो इसकी एक वितरिका है), दक्षिण की तरफ बहती है तथा डेल्टा के मैदान से होते हुए बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है। मुख्य धारा दक्षिण की ओर बहती हुई बांग्लादेश में प्रवेश करती है एवं ब्रह्मपुत्र नदी इससे आकर मिल जाती है। अंतिम चरण में गंगा और ब्रह्मपुत्र समुद्र में विलीन होने से पहले मेघना के नाम से जानी जाती हैं। गंगा एवं ब्रह्मपुत्र के जल वाली यह वृहद् नदी बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है। इन नदियों के द्वारा बनाए गए डेल्टा को सुंदरवन डेल्टा के नाम से जाना जाता है।

सुंदरवन डेल्टा का नाम वहाँ पाये जानेवाले सुंदरी पादप से लिया गया है।

- सुंदरवन डेल्टा विश्व का सबसे बड़ा एवं तेजी से वृद्धि करने वाला डेल्टा है। यहाँ रॉयल बंगाल टाईगर भी पाये जाते हैं।
- गंगा की लंबाई 2.500 किमी से अधिक है। चित्र 3.4 देखें, क्या आप गंगा नदी के अपवाह तंत्र को पहचान सकते हैं? अंबाला नगर, सिंधु तथा गंगा नदी तंत्रों के बीच जल-विभाजक पर स्थित है। अंबाला से सुंदरवन तक मैदान की लंबाई लगभग 1.800 किमी है, परंतु इसके ढाल में गिरावट मुश्किल से 300 मीटर है। दूसरे शब्दों में, प्रति 6 किमी की दूरी पर ढाल में गिरावट केवल । मीटर है। इसलिए इन नदियों में अनेक बड़े-बड़े विसर्प बन जाते हैं।

ब्रह्मपुत्र नदी तंत्र

- ब्रह्मपुत्र नदी तिब्बत की मानसरोवर झील के पूर्व तथा सिंधु एवं सतलुज के स्रोतों के काफी नजदीक से निकलती है। इसकी लंबाई सिंधु से कुछ अधिक है. परंतु इसका अधिकतर मार्ग भारत से बाहर स्थित है। यह हिमालय के समानांतर पूर्व की ओर बहती है। नामचा बारवा शिखर (7,757 मीटर) के पास पहुँचकर यह अंग्रेजी के यू (U) अक्षर जैसा मोड़ बनाकर भारत के अरुणाचल प्रदेश में गॉर्ज के माध्यम से प्रवेश करती है। यहाँ इसे दिहाँग के नाम से जाना जाता है तथा दिबांग, लोहित, केनुला एवं दूसरी सहायक नदियाँ इससे मिलकर असम में ब्रह्मपुत्र का निर्माण करती हैं।
- तिब्बत एक शीत एवं शुष्क क्षेत्र है। अतः यहाँ इस नदी में जल एवं सिल्ट की मात्रा बहुत कम होती है। भारत में यह उच्च वर्षा वाले क्षेत्र से होकर गुजरती है। यहाँ नदी में जल एवं सिल्ट की मात्रा बढ़ जाती है। असम में ब्रह्मपुत्र अनेक धाराओं में बहकर एक गुफित नदी के रूप में बहती है तथा बहुत से नदीय द्वीपों का निर्माण करती है। क्या आपको ब्रह्मपुत्र के द्वारा बनाए गए

- विश्व के सबसे बड़े नदीय द्वीप का नाम याद है? प्रत्येक वर्ष वर्षा ऋतु में यह नदी अपने किनारों से ऊपर बहने लगती है एवं बाढ़ के द्वारा असम तथा बांग्लादेश में बहुत अधिक क्षति पहुँचाती है। उत्तर भारत
- की अन्य नदियों के विपरीत, ब्रह्मपुत्र नदी में सिल्ट निक्षेपण की मात्रा बहुत अधिक होती है। इसके कारण नदी की सतह बढ़ जाती है और यह बार-बार अपनी धारा के मार्ग में परिवर्तन लाती है।

प्रायद्वीपीय नदियाँ

- प्रायद्वीपीय भारत में मुख्य जल विभाजक का निर्माण पश्चिमी घाट द्वारा होता है, जो पश्चिमी तट के निकट उत्तर से दक्षिण की ओर स्थित है। प्रायद्वीपीय भाग की अधिकतर मुख्य नदियाँ जैसे महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी पूर्व की ओर बहती हैं तथा बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। ये नदियाँ अपने मुहाने पर डेल्टा का निर्माण करती हैं। पश्चिमी घाट से पश्चिम में बहने वाली अनेक छोटी धाराएँ हैं। नर्मदा एवं तापी, दो ही बड़ी नदियाँ हैं जो कि पश्चिम की तरफ बहती हैं और ज्वारनदमुख का निर्माण करती हैं। प्रायद्वीपीय नदियों की अपवाह द्रोणियाँ आकार में अपेक्षाकृत छोटी हैं।

नर्मदा द्रोणी

- नर्मदा का उद्गम मध्य प्रदेश में अमरकंटक पहाड़ी के निकट है। यह पश्चिम की ओर एक भ्रंश घाटी में बहती है। समुद्र तक पहुँचने के क्रम में यह नदी बहुत से दर्शनीय स्थलों का निर्माण करती है। जबलपुर के निकट संगमरमर के शैलों में यह नदी गहरे गार्ज से बहती है तथा जहाँ यह नदी तीव्र ढाल से गिरती है, वहाँ 'धुँआधार प्रपात' का निर्माण करती है।
- नर्मदा की सभी सहायक नदियाँ बहुत छोटी हैं, इनमें से अधिकतर समकोण पर मुख्य धारा से मिलती हैं। नर्मदा द्रोणी मध्य प्रदेश तथा गुजरात के कुछ भागों में विस्तृत है।

तापी द्रोणी

- तापी का उद्गम मध्य प्रदेश के बेतुल जिले में सतपुड़ा की श्रृंखलाओं में है। यह भी नर्मदा के समानांतर एक भ्रंश घाटी में बहती है, लेकिन इसकी लंबाई बहुत कम है। इसकी
- द्रोणी मध्यप्रदेश, गुजरात तथा महाराष्ट्र राज्य में है।
- अरब सागर तथा पश्चिमी घाट के बीच का तटीय मैदान बहुत अधिक संकीर्ण है। इसलिए तटीय नदियों की लंबाई बहुत कम है। पश्चिम की ओर बहने वाली मुख्य नदियाँ साबरमती, माही, भारत पुजा तथा पेरियार हैं। उन राज्यों के नाम बताइए जहाँ ये नदियाँ बहती हैं।

गोदावरी द्रोणी

- गोदावरी सबसे बड़ी प्रायद्वीपीय नदी है। यह महाराष्ट्र के नासिक जिले में पश्चिम घाट की ढालों से निकलती है।
- इसकी लंबाई लगभग 1,500 कि॰मी है। यह बहकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। प्रायद्वीपीय नदियों में इसका अपवाह तंत्र सबसे बड़ा है। इसकी द्रोणी महाराष्ट्र (नदी द्रोणी का 50 प्रतिशत भाग), मध्य प्रदेश, उड़ीसा तथा आंध्र प्रदेश में स्थित है। गोदावरी में अनेक सहायक नदियाँ मिलती हैं, जैसे पूर्णा, वर्धा, प्रान्हिता, मांजरा, वेनगंगा तथा पेनगंगा। इनमें से अंतिम तीनों सहायक नदियाँ बहुत बड़ी हैं। बड़े आकार और विस्तार के कारण इसे 'दक्षिण गंगा' के नाम से भी जाना जाता है।

महानदी द्रोणी

- महानदी का उद्गम छत्तीसगढ़ की उच्चभूमि से है तथा यह उड़ीसा से बहते हुए बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है। इस नदी की लंबाई 860 किमी है। इसकी अपवाह द्रोणी महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, झारखंड तथा उड़ीसा में है।

कृष्णा द्रोणी

- महाराष्ट्र के पश्चिमी घाट में महावालेश्वर के निकट एक स्त्रोत से निकलकर कृष्णा लगभग 1,400 कि॰मी॰ बहकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। तुंगभद्रा, कोयना, घाटप्रभा, मुसी तथा भीमा इसकी कुछ सहायक नदियाँ हैं। इसकी द्रोणी महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा आंध्र प्रदेश में फैली है।

कावेरी द्रोणी

- कावेरी पश्चिमी घाट के ब्रह्मगिरी श्रृंखला से निकलती है तथा तमिलनाडु में कुडलूर के दक्षिण में बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है। इसकी लंबाई 760 कि॰मी है। इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ हैं अमरावती, भवानी, हेमावती तथा काबिनि। इसकी द्रोणी तमिलनाडु, केरल तथा कर्नाटक में विस्तृत है।

दूसरा सबसे बड़ा जलप्रपात कावेरी नदी बनाती है। इसे शिवसमुंदरम् के नाम से जाना जाता है। प्रपात द्वारा उत्पादित विद्युत मैसूर, बंगलोर तथा कोलार स्वर्ण-क्षेत्र को प्रदान की जाती है।

- इन बड़ी नदियों के अतिरिक्त कुछ छोटी नदियाँ हैं. जो पूर्व की तरफ बहती हैं। दामोदर, ब्रह्मनी, वैतरणी तथा सुवर्ण रेखा कुछ महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं। अपने एटलस में इनकी स्थिति ज्ञात कीजिए।

पृथ्वी के धरातल का लगभग 71 प्रतिशत भाग जल से बँका है, लेकिन इसका 97 प्रतिशत जल लवणीय है। केवल 3 प्रतिशत ही स्वच्छ जल के रूप में उपलब्ध है, जिसका तीन-चौथाई भाग हिमानी के रूप में है।

झीलें

- कश्मीर घाटी तथा प्रसिद्ध डल झील, नाववाले घरों तथा शिकारा से तो आप परिचित ही होंगे, जो प्रत्येक वर्ष हजारों पर्यटकों को आकर्षित करते हैं। इसी प्रकार, आप अन्य झील वाले स्थानों पर भी गए होंगे तथा वहाँ नौकायान, तैराकी एवं अन्य जलीय खेलों का आनंद लिया होगा। कल्पना कीजिए की अगर कश्मीर, नैनीताल एवं दूसरे पर्यटन स्थलों पर झीलें नहीं होतीं, तब क्या वे उतना ही आकर्षित करते जितना कि आज करते हैं? क्या आपने कभी यह जानने की कोशिश की है कि इन पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए किसी स्थान पर झीलों का क्या महत्त्व है? पर्यटकों के आकर्षण के अतिरिक्त, मानव के लिए अन्य कारणों से भी झीलों का महत्त्व है। पृथ्वी की सतह के गर्त वाले भागों में जहाँ जल जमा हो जाता है, उसे झील कहते हैं।

बड़े आकार वाली झीलों को समुद्र कहा जाता है, जैसे केस्पियन, मृत तथा अरल सागर।

- भारत में भी बहुत-सी झीलें हैं। ये एक दूसरे से आकार तथा अन्य लक्षणों में भिन्न हैं। अधिकतर झीलें स्थायी होती हैं तथा कुछ में केवल वर्षा ऋतु में ही पानी होता है, जैसे अंतर्देशीय अपवाह वाले अर्धशुष्क क्षेत्रों को द्रोणी वाली झीलें। यहाँ कुछ ऐसी झीलें हैं. जिनका निर्माण हिमानियों एवं बर्फ चादर की क्रिया के फलस्वरूप हुआ है। जबकि कुछ अन्य झीलों का निर्माण वायु, नदियों एवं मानवीय क्रियाकलापों के कारण हुआ है।
- एक विसर्प नदी बाढ़ वाले क्षेत्रों में कटकर गौखुर झील का निर्माण करती है। स्पिट तथा बार (रोधिका) तटीय क्षेत्रों में लैगून का निर्माण करते हैं, जैसे चिल्का झील, पुलीकट झील तथा कोलेरू झील। अंतर्देशीय भागों वाली झीलें कभी-कभी मौसमी होती हैं, उदाहरण के लिए राजस्थान की सांभर झील, जो एक लवण जल वाली झील है। इसके जल का उपयोग नमक के निर्माण के लिए किया जाता है।
- मीठे पानी की अधिकांश झीलें हिमालय क्षेत्र में हैं। ये मुख्यतः हिमानी द्वारा बनी हैं। दूसरे शब्दों में, ये तब बनीं जब हिमानियों ने या कोई द्रोणी गहरी बनायी, जो बाद में हिम पिघलने से भर गयी, या किसी क्षेत्र में शिलाओं अथवा मिट्टी से हिमानी मार्ग बँध गये। इसके विपरीत, जम्मू तथा कश्मीर की वूलर झील भूगर्भीय क्रियाओं से बनी है। यह भारत की सबसे बड़ी मीठे पानी वाली प्राकृतिक झील है। डल झील, भीमताल, नैनीताल, लोकताक तथा बड़ापानी कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण मीठे पानी की झीलें हैं।
- इसके अतिरिक्त, जल विद्युत उत्पादन के लिए नदियों पर बाँध बनाने से भी झील का निर्माण हो जाता है, जैसे गुरु गोबिंद सागर (भाखड़ा नंगल परियोजना)।
- झीलें मानव के लिए अत्यधिक लाभदायक होती हैं।
- एक झील नदी के बहाव को सुचारु बनाने में सहायक होती है। अत्यधिक वर्षा के समय यह बाढ़ को रोकती है तथा सूखे के मौसम में यह पानी के बहाव को संतुलित करने में सहायता करती है। झीलों का प्रयोग जलविद्युत उत्पन्न करने में भी किया जा सकता है। ये आस-पास के क्षेत्रों की जलवायु को सामान्य बनाती हैं. जलीय पारितंत्र को संतुलित रखती हैं, झीलों की प्राकृतिक सुंदरता व पर्यटन को बढ़ाती हैं तथा हमें मनोरंजन प्रदान करती हैं।

नदियों का अर्थव्यवस्था में महत्त्व

- संपूर्ण मानव इतिहास में नदियों का अत्यधिक महत्त्व रहा है। नदियों का जल मूल प्राकृतिक संसाधन है तथा अनेक मानवीय क्रियाकलापों के लिए अनिवार्य है। यही कारण है कि नदियों के तट ने प्राचीन काल से ही अधिवासियों को अपनी ओर आकर्षित किया है। ये गाँव अब बड़े शहरों में परिवर्तित हो चुके हैं। अपने राज्य के उन शहरों की एक सूची तैयार कीजिए जो नदी के किनारे स्थित हैं। किंतु भारत जैसे देश के लिए, जहाँ कि अधिकांश जनसंख्या जीविका के लिए कृषि पर निर्भर है, वहाँ सिंचाई, नौसंचालन, जलविद्युत निर्माण में नदियों का महत्त्व बहुत अधिक है।

नदी प्रदूषण

- नदी जल की घरेलू, औद्योगिक तथा कृषि में बढ़ती माँग के कारण, इसकी गुणवत्ता प्रभावित हुई है। इसके परिणामस्वरूप, नदियों से अधिक जल की निकासी होती है तथा इनका आयतन घटता जाता है। दूसरी ओर, उद्योगों का प्रदूषण तथा अपरिष्कृत कचरे नदी में मिलते रहते हैं। यह केवल जल की गुणवत्ता को ही नहीं, बल्कि नदी के स्वतः स्वच्छीकरण की क्षमता को भी प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए. दिए गए समुचित जल प्रवाह में गंगा का जल लगभग 20 किमी क्षेत्र में फैले बड़े शहरों की गंदगी को तनु करके समाहित कर सकता है। लेकिन लगातार बढ़ते हुए औद्योगीकरण एवं शहरीकरण के कारण ऐसा संभव नहीं हो पाता तथा अनेक नदियों में प्रदूषण का स्तर बढ़ता जा रहा है। नदियों में बढ़ते प्रदूषण के कारण इनको स्वच्छ बनाने के लिए अनेक कार्य योजनाएँ लागू की गयी हैं। क्या आपने कभी ऐसी कार्य योजनाओं के बारे में सुना है? नदी के प्रदूषित जल से हमारा स्वास्थ्य किस प्रकार प्रभावित होता है? 'बिना स्वच्छ जल का मानव जीवन', इस विषय पर विचार करें तथा अपनी कक्षा में एक वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन करें।

राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना (NRCP)

गंगा कार्य योजना के क्रियाकलापों का पहला चरण 1985 में आरंभ किया गया एवं इसे 31 मार्च, 2000 को बंद किया गया था। राष्ट्रीय नदी संरक्षण प्राधिकरण की कार्यकारी समिति ने गंगा कार्य योजना के प्रथम चरण की प्रगति की समीक्षा की तथा गंगा कार्य योजना के प्रथम चरण से प्राप्त अनुभवों के आधार पर आवश्यक सुझाव दिए। इस कार्य योजना को देश की प्रमुख प्रदूषित नदियों में राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना के अंतर्गत लागू किया गया है।

गंगा कार्य योजना के दूसरे बरण को राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना के अंतर्गत शामिल कर लिया गया है। विस्तृत राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना में अब 16 राज्यों की 27 नदियों के किनारे बसे 152 शहर शामिल हैं। इस कार्य योजना के तहत 57 जिलों में प्रदूषण को कम करने के लिए कार्य किया जा रहा है। प्रदूषण को कम करने वाली कुल 215 योजनाओं को स्वीकृति दी गयी है। अभी तक 69 योजनाएँ इस कार्य योजना के तहत पूरी हो चुकी हैं। इसके अंतर्गत, लाखों लीटर प्रदूषित जल को रोककर उसकी दिशा में परिवर्तन करके परिष्करण करने का लक्ष्य रखा गया है।

जलवायु

- एक विशाल क्षेत्र में लंबे समयावधि (30 वर्ष से अधिक) में मौसम की अवस्थाओं तथा विविधताओं का कुल योग ही जलवायु है। मौसम एक विशेष समय में एक क्षेत्र के वायुमंडल की अवस्था को बताता है। मौसम तथा जलवायु के तत्त्व, जैसे तापमान, वायुमंडलीय दाब, पवन, आर्द्रता तथा वर्षण एक ही होते हैं। आपने अवश्य ध्यान दिया होगा कि मौसम की अवस्था प्रायः एक दिन में ही कई बार बदलती है। लेकिन फिर भी कुछ सप्ताह, महीनों तक वायुमंडलीय अवस्था लगभग एक समान ही बनी रहती है, जैसे दिन गर्म या ठंडे, हवादार या शांत, आसमान बादलों से घिरा या साफ तथा आर्द्र या शुष्क हो सकते हैं। महीनों के औसत वायुमंडलीय अवस्था के आधार पर वर्ष को ग्रीष्म शीत या वर्षा ऋतुओं में विभाजित किया गया है।
- विश्व को अनेक जलवायु प्रदेशों में बाँटा गया है।
- भारत की जलवायु को मानसूनी जलवायु कहा जाता है। एशिया में इस प्रकार की जलवायु मुख्यतः दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व में पाई जाती है। सामान्य प्रतिरूप में लगभग एकरूपता होते हुए भी देश की जलवायु-अवस्था में स्पष्ट प्रादेशिक भिन्नताएँ हैं। आइए, हम दो महत्त्वपूर्ण तत्त्व तापमान एवं वर्षण को लेकर देखें कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर तथा एक मौसम से दूसरे मौसम में इनमें किस प्रकार की भिन्नता है।
- गर्मियों में, राजस्थान के मरुस्थल में कुछ स्थानों का तापमान लगभग 50 से तक पहुँच जाता है, जबकि जम्मू-कश्मीर के पहलगाम में तापमान लगभग 20 से रहता है। सर्दी की रात में, जम्मू-कश्मीर में द्रास का तापमान -45° से० तक हो सकता है, जबकि थिरुवनंथपुरम् में यह 22 से हो सकता है।
- क्या आप जानते हैं? कुछ क्षेत्रों में रात एवं दिन के तापमान में बहुत अधिक अंतर होता है। धार के मरुस्थल में दिन का तापमान 50 से तक हो सकता है, जबकि उसी रात यह नीचे गिर कर 15' से तक पहुँच सकता है। दूसरी ओर, केरल या अंडमान एवं निकोबार में दिन तथा रात का तापमान लगभग समान ही रहता है।
- अब वर्षण की ओर ध्यान दें। वर्षण के रूप तथा प्रकार में ही नहीं, बल्कि इसकी मात्रा एवं ऋतु के अनुसार वितरण में भी भिन्नता होती है। हिमालय में वर्षण अधिकतर हिम के रूप में होता है तथा देश के शेष भाग में यह वर्षा के रूप में होता है। वार्षिक वर्षण में भिन्नता मेघालय में 400 सेमी से लेकर लद्दाख एवं पश्चिमी राजस्थान में यह 10 सेमी से भी कम होती है। देश के अधिकतर भागों में जून से सितंबर तक वर्षा होती है, लेकिन कुछ क्षेत्रों जैसे तमिलनाडु तट पर अधिकतर वर्षा अक्टूबर एवं नवंबर में होती है।
- सामान्य रूप से तटीय क्षेत्रों के तापमान में अंतर कम होता है। देश के आंतरिक भागों में मौसमी या ऋतुनिष्ठ अंतर अधिक होता है। उत्तरी मैदान में वर्षा की मात्रा सामान्यतः पूर्व से पश्चिम की ओर घटती जाती है। ये भिन्नताएँ लोगों के जीवन में विविधता लाती हैं, जो उनके भोजन, वस्त्र और घरों के प्रकार में दिखती हैं।

जलवायवी नियंत्रण

- किसी भी क्षेत्र की जलवायु को नियंत्रित करने वाले छः प्रमुख कारक हैं अक्षांश, तुंगता (ऊँचाई), वायु दाब एवं पवन तंत्र, समुद्र से दूरी, महासागरीय धाराएँ तथा उच्चावच लक्षण।
- पृथ्वी की गोलाई के कारण, इसे प्राप्त सौर ऊर्जा की मात्रा अक्षांशों के अनुसार अलग-अलग होती है। इसके परिणामस्वरूप तापमान विषुवत वृत्त से ध्रुवों की ओर सामान्यतः घटता जाता है। जब कोई व्यक्ति पृथ्वी की सतह से ऊँचाई की ओर जाता है. तो वायुमंडल की सघनता कम हो जाती है तथा तापमान घट जाता है। इसलिए पहाड़ियाँ गर्मी के मौसम में भी ठंडी होती हैं। किसी भी क्षेत्र का वायु दाब एवं पवन तंत्र उस स्थान के अक्षांश तथा ऊँचाई पर निर्भर करती है। इस प्रकार यह तापमान एवं वर्षा के वितरण को प्रभावित करता है। समुद्र का जलवायु पर समकारी प्रभाव पड़ता है, जैसे-जैसे समुद्र से दूरी बढ़ती है यह प्रभाव कम होता जाता है एवं लोग विषम मौसमी अवस्थाओं को महसूस करते हैं। इसे महाद्वीपीय अवस्था (गर्मी में बहुत अधिक गर्म एवं सर्दी में बहुत अधिक ठंडा) कहते हैं। महासागरीय धाराएँ समुद्र से तट की ओर चलने वाली हवाओं के साथ तटीय क्षेत्रों की जलवायु को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए, कोई भी तटीय क्षेत्र जहाँ गर्म या ठंडी जलधाराएँ बहती हैं और वायु की दिशा समुद्र से तट की ओर हो, तब वह तट गर्म या ठंडा हो जाएगा।
- अंत में, किसी स्थान की जलवायु को निर्धारित करने में उच्चावच को भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। ऊँचे पर्वत ठंडी अथवा गर्म वायु को अवरोधित करते हैं। यदि उनकी ऊँचाई इतनी हो कि वे वर्षा लाने वाली वायु के रास्तों को रोकने में सक्षम होते हैं, तो ये उस क्षेत्र में वर्षा का कारण भी बन सकते हैं। पर्वतों के पवनविमुख ढाल अपेक्षाकृत सूखे रहते हैं।

भारत की जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक अक्षांश

- कर्क वृत्त देश के मध्य भाग, पश्चिम में कच्छ के रन से लेकर पूर्व में मिजोरम, से होकर गुजरती है। देश का लगभग आधा भाग कर्क वृत्त के दक्षिण में स्थित है, जो उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र है। कर्क वृत्त के उत्तर में स्थित शेष भाग उपोष्ण कटिबंधीय है। इसलिए भारत की जलवायु में उष्ण कटिबंधीय जलवायु एवं उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु दोनों की विशेषताएँ उपस्थित हैं।

ऊँचाई

भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत है। इसकी औसत ऊँचाई लगभग 6,000 मीटर है। भारत का तटीय क्षेत्र भी विशाल है, जहाँ अधिकतम ऊँचाई लगभग 30 मीटर है। हिमालय मध्य एशिया से आने वाली ठंडी हवाओं

को भारतीय उपमहाद्वीप में प्रवेश करने से रोकता है। इन्हीं पर्वतों के कारण इस क्षेत्र में मध्य एशिया की तुलना में ठंड कम पड़ती है।

वायु दाब एवं पवन

- भारत में जलवायु तथा संबंधित मौसमी अवस्थाएँ निम्नलिखित वायुमंडलीय अवस्थाओं से संचालित होती हैं:

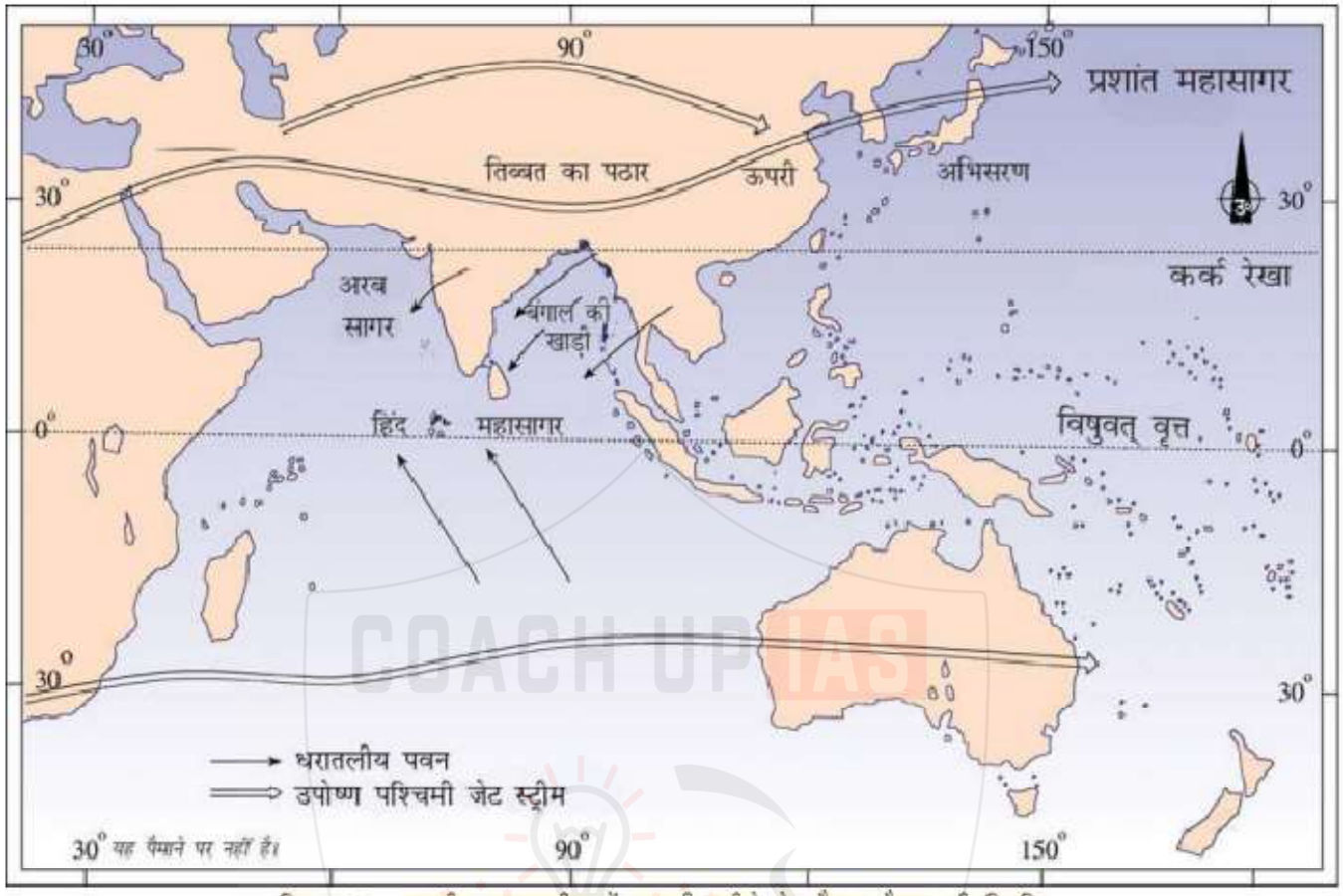
वायु दाब एवं धरातलीय पवनें

- भारत उत्तर-पूर्वी व्यापारिक पवनों (Trade Winds) वाले क्षेत्र में स्थित है। ये पवनें उत्तरी गोलार्द्ध के उपोष्ण कटिबंधीय उच्च दाब पट्टियों से उत्पन्न होती हैं। ये दक्षिण की ओर बहती, कोरिआलिस बल के कारण दाहिनी ओर विक्षेपित होकर विषुवतीय निम्न दाब वाले क्षेत्रों की ओर बढ़ती हैं। सामान्यतः इन पवनों में नमी की मात्रा बहुत कम होती है. क्योंकि ये स्थलीय भागों पर उत्पन्न होती हैं एवं बहती हैं। इसलिए इन पवनों के द्वारा वर्षा कम या नहीं होती है। इस प्रकार भारत को शुष्क क्षेत्र होना चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं है। आइए देखें क्यों?
- कोरिआलिस वलः पृथ्वी के घूर्णन के कारण उत्पन्न आभासी बात को कोरिआलिस बल कहते हैं। इस बल के कारण पवने उत्तरी गोलार्द्ध में दाहिनी ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में बाई ओर विक्षेपित हो जाती हैं। इसे फेरेल का नियम भी कहा जाता है।
- भारत की वायु दाब एवं पवन तंत्र अद्वितीय है। शीत ऋतु में. हिमालय के उत्तर में उच्च दाब होता है। इस क्षेत्र की ठंडी शुष्क हवाएँ दक्षिण में निम्न दाब वाले महासागरीय क्षेत्र के ऊपर बहती हैं। ग्रीष्म ऋतु में, आंतरिक एशिया एवं उत्तर-पूर्वी भारत के ऊपर निम्न दाब का क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है। इसके कारण गर्मी के दिनों में वायु की दिशा पूरी तरह से परिवर्तित हो जाती है। वायु दक्षिण में स्थित हिंद महासागर के उच्च दाब वाले क्षेत्र से दक्षिण-पूर्वी दिशा में बहते हुए विषुवत् वृत्त को पार कर दाहिनी ओर मुड़ते हुए भारतीय उपमहाद्वीप पर स्थित निम्न दाब की ओर बहने लगती हैं। इन्हें
- दक्षिण-पश्चिम मानसून पवनों के नाम से जाना जाता है।
- ये पवनें कोष्ण महासागरों के ऊपर से बहती हैं, नमी ग्रहण करती हैं तथा भारत की मुख्य भूमि पर वर्षा करती हैं।
- इस प्रदेश में, ऊपरी वायु परिसंचरण पश्चिमी प्रवाह के प्रभाव में रहता है। इस प्रवाह का एक मुख्य घटक जेट धारा है।
- जेट धाराएँ लगभग 27 से 30° उत्तर अक्षांशों के बीच स्थित होती हैं, इसलिए इन्हें उपोष्ण कटिबंधीय पश्चिमी जेट धाराएँ कहा जाता है। भारत में, ये जेट धाराएँ ग्रीष्म ऋतु को छोड़कर पूरे वर्ष हिमालय के
- जेट धाराः ये एक संकरी पट्टी में स्थित श्रीभमंडल में अत्यधिक ऊँचाई (12,000 मीटर से अधिक) वाली पश्चिमी हवाएँ होती हैं। इनकी गति गर्मी में 110 किमी प्रति घंटा एवं सदर्दी में 184 किमी प्रति घंटा होती है। बहुत-सी अलग-अलग जेट धाराओं को पहचाना गया है। उनमें सबसे स्थिर मध्य अक्षांशीय एवं उपोष्ण कटिबंधीय जेट धाराएँ हैं।
- दक्षिण में प्रवाहित हाती हैं। इस पश्चिमी प्रवाह के द्वारा देश के उत्तर एवं उत्तर-पश्चिमी भाग में पश्चिमी चक्रवाती विक्षोभ आते हैं। गर्मियों में, सूर्य की आभासी गति के साथ ही उपोष्ण कटिबंधीय पश्चिमी जेट धारा हिमालय के उत्तर में चली जाती है। एक पूर्वी जेट धारा जिसे उपोष्ण कटिबंधीय पूर्वी जेट धारा कहा जाता है गर्मी के महीनों में प्रायद्वीपीय भारत के ऊपर लगभग 14° उत्तरी अक्षांश में प्रवाहित होती है।

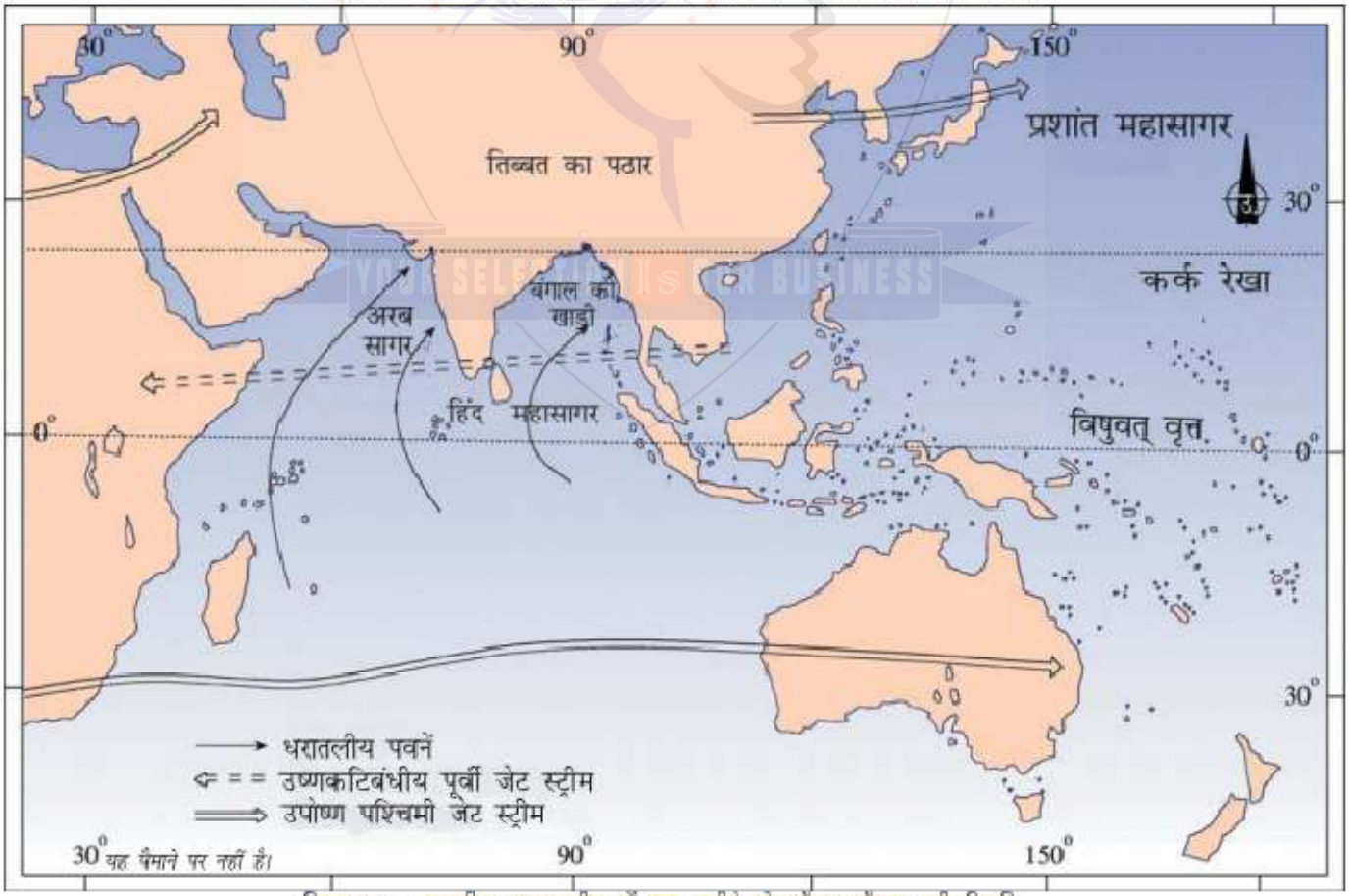
पश्चिमी चक्रवातीय विक्षोभ

- सर्दी के महीनों में उत्पन्न होने वाला पश्चिमी चक्रवातीय विक्षोभ भूमध्यसागरीय क्षेत्र से आने वाले पश्चिमी प्रवाह के कारण होता है। वे प्रायः भारत के उत्तर एवं उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों को प्रभावित करते हैं। उष्ण कटिबंधीय चक्रवात मानसूनी महीनों के साथ-साथ अक्टूबर एवं नवंबर के महीनों में आते है तथा ये पूर्वी प्रवाह के एक भाग होते हैं एवं देश के तटीय क्षेत्रों को प्रभावित करते हैं।

COACH UPSC
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS



चित्र 4.2 : भारतीय उपमहाद्वीप में जनवरी महीने के दौरान मौसम की स्थिति



चित्र 4.3 : भारतीय उपमहाद्वीप में जून महीने के दौरान मौसम की स्थिति

भारत की जलवायु मानसूनी पवनों से बहुत अधिक प्रभावित है। ऐतिहासिक काल में भारत आने वाले नाविकों ने सबसे पहले मानसून परिघटना पर ध्यान दिया था। पवन तंत्र की दिशा उलट जाने (उत्क्रमन) के कारण उन्हें लाभ हुआ। चूंकि, उनके जहाज पवन के प्रवाह की दिशा पर निर्भर थे। अरबवासी जो व्यापारियों की तरह भारत आए थे उन लोगों ने पवन तंत्र के इस मौसमी उत्क्रमण को मानसून का नाम दिया।

मानसून का प्रभाव उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में लगभग 20° उत्तर एवं 20' दक्षिण के बीच रहता है। मानसून की प्रक्रिया को समझने के लिए निम्नलिखित तथ्य महत्त्वपूर्ण हैं-

(अ) स्थल तथा जल के गर्म एवं ठंडे होने की विक्रेदी प्रक्रिया के कारण भारत के स्थल भाग पर निम्न दाब का क्षेत्र उत्पन्न होता है, जबकि इसके आस-पास के समुद्रों के ऊपर उच्च दाब का क्षेत्र बनता है।

(ब) ग्रीष्म ऋतु के दिनों में अंतः उष्ण कटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र की स्थिति गंगा के मैदान की ओर खिसक जाती है (यह विषुवतीय गतं है, जो प्रायः विषुवत् वृत्त से 5 उत्तर में स्थित होता है। इसे मानसून ऋतु में मानसून गर्त के नाम से भी जाना जाता है।)

(स) हिंद महासागर में मेडागास्कर के पूर्व लगभग 20° दक्षिण अक्षांश के ऊपर उच्च दाब वाला क्षेत्र होता है। इस उच्य दाब वाले क्षेत्र की स्थिति एवं तीव्रता भारतीय मानसून को प्रभावित करती है।

ग्रीष्म ऋतु में. तिब्बत का पठार बहुत अधिक गर्म हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप पठार के ऊपर

(द) समुद्र तल से लगभग 9 किमी की ऊँचाई पर तीव्र ऊर्ध्वाधर वायु धाराओं एवं उच्च दाब का निर्माण होता है।

(य) ग्रीष्म ऋतु में हिमालय के उत्तर-पश्चिमी जेट धाराओं का तथा भारतीय प्रायद्वीप के ऊपर उष्ण कटिबंधीय पूर्वी बेट धाराओं का प्रभाव होता है।

अंतः उष्ण कटिबंधीय अधिसरण क्षेत्र ये विषुक्तीय अक्षांशों में विस्तृत गर्त एवं निम्न दाब का क्षेत्र होता है। यहीं पर उत्तर-पूर्वी एवं दक्षिण-पूर्वी व्यापारिक पवनें आपस में मिलती हैं। यह अभिसरण क्षेत्र विषुवत् मूत के लगभग समानांतर होता है, लेकिन सूर्य की आभासी गति के साथ-साथ यह उत्तर या दक्षिण को ओर खिसकता है।

इसके अतिरिक्त, दक्षिणी महासागरों के ऊपर दाब की अवस्थाओं में परिवर्तन भी मानसून को प्रभावित करता है। सामान्यतः जब दक्षिण प्रशांत महासागर के उष्ण कटिबंधीय पूर्वी भाग में उच्च दाब होता है तब हिंद महासागर के उष्ण कटिबंधीय पूर्वी भाग में निम्न दाब होता है, लेकिन कुछ विशेष वर्षों में वायु दाब की स्थिति विपरीत हो जाती है तथा पूर्वी प्रशांत महासागर के ऊपर हिंद महासागर की तुलना में निम्न दाब का क्षेत्र बन जाता है। दाव की अवस्था में इस नियतकालिक परिवर्तन को दक्षिणी दोलन के नाम से जाना जाता है। डार्विन, उत्तरी आस्ट्रेलिया (हिंद महासागर 12'30' दक्षिण/131° पूर्व) तथा ताहिती (प्रशांत महासागर 18 दक्षिण/149° पश्चिम) के दाब के अंतर की गणना मानसून की तीव्रता के पूर्वानुमान के लिए की जाती है। अगर दाब का अंतर ऋणात्मक है तो इसका अर्थ होगा औसत से कम तथा विलंब से आने वाला मानसून। एलनीनो, दक्षिणी दोलन से जुड़ा हुआ एक लक्षण है। यह एक गर्म समुद्री जल धारा है,

जो पेरू की ठंडी धारा के स्थान पर प्रत्येक 2 या 5 वर्ष के अंतराल में पेरू तट से होकर बहती है। दाब की अवस्था में परिवर्तन का संबंध एलनीनो से है। इसलिए इस परिघटना को एसो (ENSO) (एलनीनो दक्षिणी दोलन) कहा जाता है।

एलनीनोः ठंडी पेरू जलधारा के स्थान पर अस्थायी तौर पर गर्म जलधारा के विकास को एलनीनी का नाम दिया गया है। एल निनो स्पैनिश शब्द है, जिसका अर्थ होता है बच्चा तथा जो कि बेबी क्राइस्ट को व्यक्त करता है. क्योंकि यह धारा क्रिसमस के समय कहना शुरू करती है। एल निनी की उपस्थिति समुद्र की सतह के तापमान को बढ़ा देती है तथा उस क्षेत्र में व्यापारिक पवनों को शिथिल कर देती है।

मानसून का आगमन एवं वापसी

व्यापारिक पवनों के विपरीत मानसूनी पवनें नियमित नहीं हैं. लेकिन ये स्पंदमान प्रकृति की होती हैं। उष्ण कटिबंधीय समुद्रों के ऊपर प्रवाह के दौरान ये विभिन्न वायुमंडलीय अवस्थाओं से प्रभावित होती हैं। मानसून का समय जून के आरंभ से लेकर मध्य सितंबर तक, 100 से 120 दिनों के बीच होता है। इसके आगमन के समय सामान्य वर्षों में अचानक वृद्धि) हो जाती है तथा लगातार कई दिनों तक यह जारी रहती है। इसे मानसून प्रस्फोट (फटना) कहते हैं तथा इसे मानसून पूर्व बौछारों से पृथक किया जा सकता है। सामान्यतः जून के प्रथम सप्ताह में मानसून भारतीय प्रायद्वीप के दक्षिणी छोर से प्रवेश करता है। इसके बाद यह दो भागों में बँट जाता है अरब सागर शाखा एवं बंगाल की खाड़ी शाखा। अरब सागर शाखा लगभग दस दिन बाद, 10 जून के आस-पास मुंबई पहुँचती है। यह एक तीन्न प्रगति है। बंगाल की खाड़ी शाखा भी तीव्रता से आगे की ओर बढ़ती है तथा जून के प्रथम सप्ताह में असम पहुँच जाती है। ऊँचे पर्वतों के कारण मानसून पवनें पश्चिम में गंगा के मैदान की ओर मुड़ जाती है। मध्य जून तक अरब सागर शाखा सौराष्ट्र, कच्छ एवं देश के मध्य भागों में पहुँच जाती है। अरब सागर शाखा एवं बंगाल की खाड़ी शाखा, दोनो गंगा के मैदान के उत्तर-पश्चिम भाग में आपस में मिल जाती हैं। दिल्ली में सामान्यतः मानसूनी वर्षा बंगाल की खाड़ी शाखा से जून के अंतिम सप्ताह में (लगभग 29 जून तक) होती है। जुलाई के प्रथम सप्ताह तक मानसून पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा तथा पूर्वी राजस्थान में पहुँच जाता है। मध्य जुलाई तक मानसून हिमाचल प्रदेश एवं देश के शेष हिस्सों में पहुँच जाता है।

मानसून की वापसी अपेक्षाकृत एक क्रमिक प्रक्रिया है (चित्र 4.4) जो भारत के उत्तर-पश्चिमी राज्यों से सितंबर में प्रारंभ हो जाती है। मध्य अक्तूबर तक मानसून प्रायद्वीप के उत्तरी भाग से पूरी तरह पीछे हट जाता है। प्रायद्वीप के दक्षिणी आधे भाग में वापसी की गति तीव्र होती है। दिसंबर के प्रारंभ तक देश के शेष भाग से मानसून की वापसी हो जाती है।

द्वीपों पर मानसून की सबसे पहली वर्षा होती है। यह क्रमशः दक्षिण से उत्तर की ओर अप्रैल के अंतिम सप्ताह से लेकर मई के प्रथम सप्ताह तक होती है। मानसून की वापसी भी क्रमशः दिसंबर के प्रथम सप्ताह से जनवरी के प्रथम सप्ताह तक उत्तर से दक्षिण की ओर होती है। इस समय देश का शेष भाग शीत ऋतु के प्रभाव में होता है।

ऋतुएँ

मानसूनी जलवायु की विशेषता एक विशिष्ट मौसमी प्रतिरूप होता है। एक ऋतु से दूसरे ऋतु में मौसम की अवस्थाओं में बहुत अधिक परिवर्तन होता है। विशेषकर देश के आंतरिक भागों में, ये परिवर्तन अधिक मात्रा में परिलक्षित होते हैं। तटीय क्षेत्रों के तापमान में बहुत अधिक भिन्नता नहीं होती है, यद्यपि यहाँ वर्षा के प्रारूपों में भिन्नताएँ होती हैं। आप अपने क्षेत्र में कितने प्रकार की ऋतुओं का अनुभव करते हैं। भारत में मुख्यतः चार ऋतुओं को पहचाना जा सकता है। ये हैं, शीत ऋतु, ग्रीष्म ऋतु, कुछ क्षेत्रीय विविधताओं के साथ मानसून के आगमन तथा वापसी का काल।

शीत ऋतु



उत्तरी भारत में शीत ऋतु मध्य नवंबर से आरंभहोकर फरवरी तक रहती है। भारत के उत्तरी भाग में दिसंबर एवं जनवरी सबसे ठंडे महीने होते हैं। तापमान दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ने पर घटता जाता है। पूर्वी तट पर चेन्नई का औसत तापमान 24 सेल्सियस से 25 सेल्सियस के बीच होता है, जबकि उत्तरी मैदान में यह 10 सेल्सियस से 15 सेल्सियस के बीच होता है। दिन गर्म तथा रातें ठंडी होती हैं। उत्तर में तुषारापात सामान्य है तथा हिमालय के उपरी ढालों पर हिमपात होता है।

इस ऋतु में, देश में उत्तर-पूर्वी व्यापारिक पवनें प्रवाहित होती हैं। ये स्थल से समुद्र की ओर बहती हैं तथा इसलिए देश के अधिकतर भाग में शुष्क मौसम होता है। इन पवनों के कारण कुछ मात्रा में वर्षा तमिलनाडु के तट पर होती है, क्योंकि वहाँ ये पवनें समुद्र से स्थल की ओर बहती हैं।

देश के उत्तरी भाग में, एक कमजोर उच्च दाब का क्षेत्र बन जाता है, जिसमें हल्की पवने इस क्षेत्र से बाहर की ओर प्रवाहित होती है। उच्चावच से प्रभावित होकर ये पवन पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम से गंगा घाटी में बहती हैं। सामान्यतः इस मौसम में आसमान साफ, तापमान तथा आर्द्रता कम एवं पवनें शिथिल तथा परिवर्तित होती हैं।

शीत ऋतु में उत्तरी मैदानों में पश्चिम एवं उत्तर-पश्चिम से चक्रवाती विक्षोभ का अंतवांह विशेष लक्षण है। यह कम दाब वाली प्रणाली भूमध्यसागर एवं पश्चिमी एशिया के ऊपर उत्पन्न होती है तथा पश्चिमी पवनों के साथ भारत में प्रवेश करती है। इसके कारण शीतकाल में मैदानों में वर्षा होती है तथा पर्वतों पर हिमपात, जिसकी उस समय बहुत अधिक आवश्यकता होती है। यद्यपि शीतकाल में वर्षा, जिसे स्थानीय तौर पर 'महावट' कहा जाता है, की कुल मात्रा कम होती है, लेकिन ये रबी फसलों के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण होती है।

प्रायद्वीपीय भागों में शीत ऋतु स्पष्ट नहीं होती है। समुद्री पवनों के प्रभाव के कारण शीत ऋतु में भी यहाँ तापमान के प्रारूप में न के बराबर परिवर्तन होता है।

ग्रीष्म ऋतु

सूर्य के उत्तर की ओर आभासी गति के कारण भूमंडलीय ताप पट्टी उत्तर की तरफ खिसक जाती है। मार्च से मई तक भारत में ग्रीष्म ऋतु होती है। ताप पट्टी के स्थानांतरण के प्रभाव का पता विभिन्न अक्षांशों पर मार्च से मई के दौरान रिकॉर्ड किए गए तापमान को देखकर लगाया जा सकता है। मार्च में दक्कन के पठार का उच्च तापमान लगभग 38° सेल्सियस होता है। अप्रैल में मध्य प्रदेश एवं गुजरात का तापमान लगभग 42' सेल्सियस होता है। मई में देश के उत्तर-पश्चिमी भागों का तापमान समान्यतः 45° सेल्सियस होता है। प्रायद्वीपीय भारत में समुद्री प्रभाव के कारण तापमान कम होता है।

देश के उत्तरी भाग में, ग्रीष्मकाल में तापमान में वृद्धि होती है तथा वायु दाब में कमी आती है। मई के अंत में, उत्तर-पश्चिम में थार के रेगिस्तान से

लेकर पूर्व एवं दक्षिण-पूर्व में पटना तथा छोटा नागपुर पठार तक एक कम दाब का लंबवत क्षेत्र उत्पन्न होता है। पवन का परिसंचरण इस गर्त के चारों ओर प्रारंभ होता है।

लू, ग्रीष्मकाल का एक प्रभावी लक्षण है। ये धूल भरी गर्म एवं शुष्क पवनें होती हैं, जो कि दिन के समय भारत के उत्तर एवं उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में चलती हैं। कभी-कभी ये देर शाम तक जारी रहती हैं। इस हवा का सीधा प्रभाव घातक भी हो सकता है। उत्तरी भारत में मई महीने के दौरान सामान्यतः धूल भरी आँधियाँ आती हैं। ये आँधियाँ अस्थायी रूप से आराम पहुँचाती हैं, क्योंकि ये तापमान को कम कर देती हैं तथा अपने साथ ठंडे समीर एवं हल्की वर्षा लाती हैं। इस मौसम में कभी-कभी तीव्र हवाओं के साथ गरज वाली मूसलाधार वर्षा भी होती है. इसके साथ प्रायः हिम वृष्टि भी होती है। वैशाख के महीने में होने के कारण पश्चिम बंगाल में इसे 'काल वैशाखी' कहा जाता है।

ग्रीष्म ऋतु के अंत में कर्नाटक एवं केरल में प्रायः पूर्व-मानसूनी वर्षा होती है। इसके कारण आम जल्दी पक जाते हैं तथा प्रायः इसे 'आम्र वर्षा' भी कहा जाता है।

वर्षा ऋतु या मानसून का आगमन



चित्र 4.5 : मानसून का अंत

जून के प्रारंभ में उत्तरी मैदानों में निम्न दाब को अवस्था तीव्र हो जाती है। यह दक्षिणी गोलार्द्ध की व्यापारिक पवनों को आकर्षित करता है। ये दक्षिण-पूर्व व्यापारिक पवनें, दक्षिणी समुद्रों के उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में उत्पन्न होती हैं। चूंकि, ये पवने गर्म महासागरों के ऊपर से होकर गुजरती हैं, इसलिए ये अपने साथ इस महाद्वीप में बहुत अधिक मात्रा में नमी लाती हैं। ये पवनें तीव्र होती हैं तथा 30 किमी प्रति घंटे के औसत वेग से चलती हैं। सुदूर उत्तर-पूर्वी भाग को छोड़कर ये मानसूनी पवने देश के शेष भाग में लगभग 1 महीने में पहुँच जाती हैं।

दक्षिण-पश्चिम मानसून का भारत में अंतर्वाह यहाँ के मौसम को पूरी तरह परिवर्तित कर देता है। मौसम के प्रारंभ में पश्चिम घाट के पवनमुखी भागों में भारी वर्षा (लगभग 250 सेमी से अधिक होती है। दक्कन का पठार एवं मध्य प्रदेश के कुछ भाग में भी वर्षा होती है, यद्यपि ये क्षेत्र वृष्टि छाया क्षेत्र में आते हैं। इस मौसम की अधिकतर वर्षा देश के उत्तर-पूर्वी भागों में होती है। खासी पहाड़ी के दक्षिणी श्रृंखलाओं में स्थित मासिनराम विश्व में सबसे अधिक औसत वर्षा प्राप्त करता है। गंगा की घाटी में पूर्व से पश्चिम की ओर वर्षा की मात्रा घटती जाती है। राजस्थान एवं गुजरात के कुछ भागों में बहुत कम वर्षा होती है।

मानसून से संबंधित एक अन्य परिघटना है, 'वर्षा में विराम'। इस प्रकार, इसमें आर्द्र एवं शुष्क दोनों तरह के अंतराल होते हैं। दूसरे शब्दों में, मानसूनी वर्षा एक समय में कुछ दिनों तक ही होती है। इनमें वर्षा रहित अंतराल भी होते हैं। मानसून में आने वाले ये विराम मानसूनी गर्त की गति से संबंधित होते हैं। विभिन्न कारणों से गर्त एवं इसका अक्ष उत्तर या दक्षिण की ओर खिसकता रहता है. जिसके कारण वर्षों का स्थानिक वितरण सुनिश्चित होता है। जब मानसून के गर्त का अक्ष मैदान के ऊपर होता है तब इन भागों में वर्षा अच्छी होती है। दूसरी ओर जब अक्ष हिमालय के समीप चला जाता है तब मैदानों में लंबे समय तक शुष्क अवस्था रहती है तथा हिमालय की नदियों के पर्वतीय जलग्रहण क्षेत्रों में विस्तृत वर्षा होती है। इस भारी वर्षा के कारण मैदानी क्षेत्रों में विनाशकारी बाड़ें आती हैं एवं जान एवं माल की भारी क्षति होती है। उष्ण कटिबंधीय निम्न दाब की तीव्रता एवं आवृत्ति भी मानसूनी वर्षा की मात्रा एवं समय को निर्धारित करती है। यह निम्न दाब का क्षेत्र बंगाल की खाड़ी के ऊपर बनता है तथा मुख्य स्थलीय भाग को पार कर जाता है। यह गर्त निम्न दाब के मानसून गर्त के अक्ष के अनुसार होता है। मानसून को इसकी अनिश्चितता के लिए जाना जाता है। शुष्क एवं आई स्थितियों की तीव्रता, आवृत्ति एवं समय काल में भिन्नता होती है। इसके कारण यदि एक भाग में बाढ़ आती है तो दूसरे भाग में सूखा पड़ता है। इसका आगमन एवं वापसी प्रायः अव्यवस्थित होता है। इसलिए यह कभी-कभी देश के किसानों की कृषि कार्यों को अव्यवस्थित कर देता है।

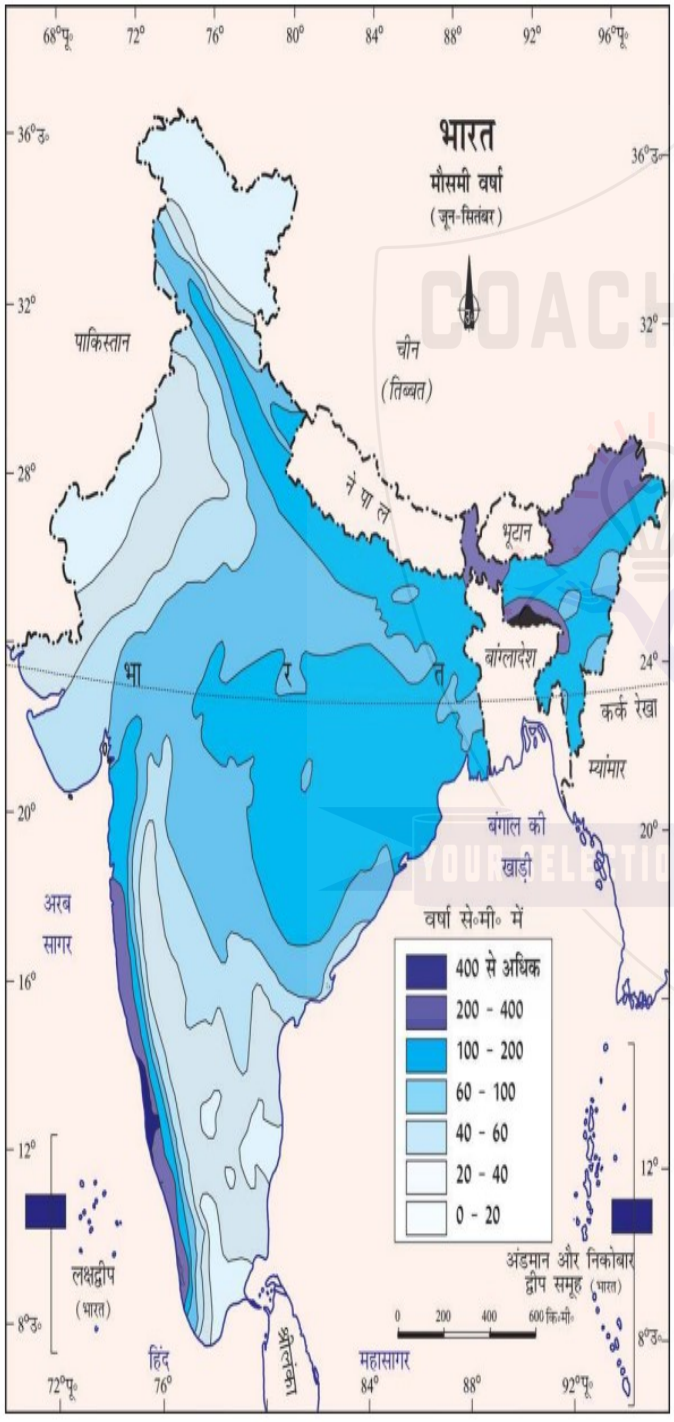
मानसून की वापसी (परिवर्तनीय मौसम)

अक्तूबर-नवंबर के दौरान दक्षिण की तरफ सूर्य के आभासी गति के कारण मानसून गर्त या निम्न दाब वाला गर्त, उत्तरी मैदानों के ऊपर शिथिल हो जाता है। धीरे-धीरे उच्च दाब प्रणाली इसका स्थान ले लेती है। दक्षिण-पश्चिम मानसून शिथिल हो जाते हैं तथा धीरे-धीरे पीछे की ओर हटने लगते हैं। अक्तूबर के प्रारंभ में मानसून पवनें उत्तर के मैदान से हट जाती हैं।

अक्तूबर एवं नवंबर का महीना, गर्म वर्षा ऋतु से शीत ऋतु में परिवर्तन का काल होता है। मानसून की वापसी होने से आसमान साफ एवं तापमान में

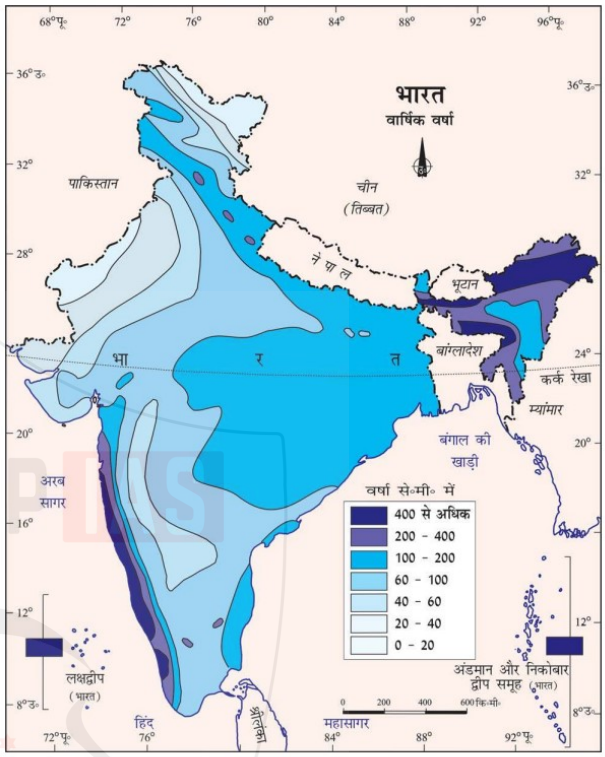
वृद्धि हो जाती है। दिन का तापमान उच्च होता है, जबकि रातें ठंडी एवं सुहावनी होती हैं। स्थल अभी भी आई होता है। उच्च तापमान एवं आर्द्रता वाली अवस्था के कारण दिन का मौसम असह्य हो जाता है। इसे सामान्यतः 'क्वार की उमस' के नाम से जाना जाता है। अक्तूबर के उत्तरार्द्ध में, विशेषकर उत्तरी भारत में तापमान तेजी से गिरने लगता है।

क्या आप जानते हैं? मासिनराम विश्व में सबसे अधिक वर्षा वाला क्षेत्र है तथा स्टैलैग्माइट एवं स्टैलैक्टाइट गुफाओं के लिए प्रसिद्ध है।



चित्र 4.6 : मौसमी वर्षा (जून-सितंबर)

नवंबर के प्रारंभ में, उत्तर-पश्चिम भारत के ऊपर निम्न दाब वाली अवस्था बंगाल की खाड़ी पर स्थानांतरित हो जाती है। यह स्थानांतरण चक्रवाती निम्न दाब से संबंधित होता है, जो कि अंडमान सागर के ऊपर उत्पन्न होता है।



चित्र 4.7 : वार्षिक वर्षा

ये चक्रवात सामान्यतः भारत के पूर्वी तट को पार करते हैं, जिनके कारण व्यापक एवं भारी वर्षा होती है। ये उष्ण कटिबंधीय चक्रवात प्रायः विनाशकारी होते हैं। गोदावरी, कृष्णा एवं कावेरी नदियों के सघन आबादी वाले डेल्टा प्रदेशों में अक्सर चक्रवात आते हैं, जिसके कारण बड़े पैमाने पर जान एवं माल की क्षति होती है। कभी-कभी ये चक्रवात उड़ीसा, पश्चिम बंगाल एवं बांग्लादेश के तटीय क्षेत्रों में भी पहुँच जाते हैं। कोरोमंडल तट पर अधिकतर वर्षा इन्हीं चक्रवातों तथा अवदाबों से होती हैं।

वर्षा का वितरण

पश्चिमी तट के भागों एवं उत्तर-पूर्वी भारत में लगभग 400 सेंमी वार्षिक वर्षा होती है किंतु, पश्चिमी राजस्थान एवं इससे सटे पंजाब, हरियाणा एवं गुजरात के भागों में 60 सेंमी से भी कम वर्षा होती है। दक्षिणी पठार के आंतरिक भागों एवं सहयाद्री के पूर्व में भी वर्षा की मात्रा समान रूप से कम होती है। इन क्षेत्रों में वर्षा की मात्रा कम क्यों होती है? जम्मू-कश्मीर के लेह में भी वर्षण की मात्रा काफी कम होती है। देश के शेष हिस्से में वर्षा की मात्रा मध्यम रहती है। हिमपात हिमालयी क्षेत्रों तक ही सीमित होता है।

मानसून की प्रकृति के परिणामस्वरूप एक वर्ष से दूसरे वर्ष होने वाले वार्षिक वर्षा की मात्रा में भिन्नता होती है। वर्षा की विषमता निम्न वर्षा

वाले क्षेत्र जैसे राजस्थान, गुजरात के कुछ भाग तथा पश्चिमी घाटों के वृष्टि छाया प्रदेशों में अधिक पाई जाती है। अतः अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में बाड़ें अधिक आती हैं, जबकि निम्न वर्षा वाले क्षेत्रों में सूखे की आशंका बनी रहती है।

मानसून एकता का परिचायक

आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि हिमालय अत्यंत ठंडी पवनों से भारतीय उपमहाद्वीप की रक्षा करता है। इसके कारण अपेक्षाकृत उच्च अक्षांशों के बावजूद उत्तरी भारत में निरंतर ऊँचा तापमान बना रहता है। इसी प्रकार प्रायद्वीपीय पठार में तीनों ओर से समुद्रों के प्रभाव के कारण न तो अधिक गर्मी पड़ती है और न अधिक सर्दी। इस समकारी प्रभाव के कारण तापमान को दिशाओं में बहुत कम अंतर पाए जाते हैं। परंतु फिर भी भारतीय प्रायद्वीप पर मानसून की एकता का प्रभाव बहुत ही स्पष्ट है। पवन की दिशाओं का ऋतुओं के अनुसार परिवर्तन तथा उनसे संबंधित ऋतु की दशाएँ ऋतु-चक्रों को एक लय प्रदान करती हैं। वर्षा की अनिश्चितताएँ तथा उसका असमान वितरण मानसून का एक विशिष्ट लक्षण है। संपूर्ण भारतीय भूदृश्य, इसके जीव तथा वनस्पति, इसका कृषि-चक्र, मानव-जीवन तथा उनके त्यौहार-उत्सव, सभी इस मानसूनी लय के चारों ओर घूम रहे हैं। उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक संपूर्ण भारतवासी प्रति वर्ष मानसून के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं। ये मानसूनी पवनें हमें जल प्रदान कर कृषि की प्रक्रिया में तेजी लाती हैं एवं संपूर्ण देश को एक सूत्र में बाँधती हैं। नदी घाटियाँ जो इन जलों का संवहन करती हैं, उन्हें भी एक नदी घाटी इकाई का नाम दिया जाता है।

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

प्राकृतिक वनस्पति तथा वन्य प्राणी

भारत एक विशाल देश है। अतः इसमें आप अनेक प्रकार की जैव रूपों की कल्पना कर सकते हैं।

हमारा देश भारत विश्व के मुख्य 12 जैव विविधता वाले देशों में से एक है। लगभग 47.000 विभिन्न जातियों के पौधे पाए जाने के कारण यह देश विश्व में दसवें स्थान पर और एशिया के देशों में चौथे स्थान पर है। भारत में लगभग 15.000 फूलों के पौधे हैं जो कि विश्व में फूलों के पौधों का 6 प्रतिशत है। इस देश में बहुत से बिना फूलों के पौधे हैं जैसे कि फर्न, शैवाल (एलेगी) तथा कवक (फंजाई) भी पाए जाते है। भारत में लगभग 89,000 जातियों के जानवर तथा विभिन्न प्रकार की मछलियाँ, ताजे तथा समुद्री पानी की पाई जाती हैं।

प्राकृतिक वनस्पति का अर्थ है कि वनस्पति का वह भाग, जो कि मनुष्य की सहायता के बिना अपने आप पैदा होता है और लंबे समय तक उस पर मानवी प्रभाव नहीं पड़ता। इसे अक्षत वनस्पति कहते हैं। अतः विभिन्न प्रकार की कृषिकृत फसलें, फल और बागान, वनस्पति का भाग तो हैं परंतु प्राकृतिक वनस्पति नहीं है।

क्या आप जानते हैं? वह वनस्पति जो कि मूलरूप से भारतीय है उसे 'देशज' कहते हैं लेकिन जो पौधे भारत के बाहर से आए हैं उन्हें 'विदेशज पौधे' कहते हैं।

वनस्पति-जगत शब्द का अर्थ किसी विशेष क्षेत्र में किसी समय में पौधों की उत्पत्ति से है। इस तरह प्राणि जगत जानवरों के विषय में बतलाता है। वनस्पति तथा वन्य प्राणियों में इतनी विविधता निम्नलिखित कारणों से है।

धरातल/ भूभाग

भूमि का वनस्पति पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। क्या पर्वत, पठार तथा मैदान और शीतोष्ण कटिबंधों में एक ही प्रकार की वनस्पति नहीं हो सकती? धरातल के स्वभाव का वनस्पति पर बहुत प्रभाव पड़ता है। उपजाऊ भूमि पर प्रायः कृषि की जाती है। ऊबड़ तथा असमतल भूभाग पर जंगल तथा घास के मैदान हैं. जिन में वन्य प्राणियों को आश्रय मिलता है।

मृदा

विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग प्रकार की मृदा पाई जाती है, जो विविध प्रकार की वनस्पति का आधार है। मरुस्थल की बलुई मृदा में कंटीली झाड़ियाँ तथा नदियों के डेल्टा क्षेत्र में पर्णपाती वन पाए जाते हैं। पर्वतों की ढलानों में जहाँ मृदा की परत गहरी है शंकुधारी वन पाए जाते हैं।

तापमान

वनस्पति की विविधता तथा विशेषताएँ तापमान और वायु की नमी पर भी निर्भर करती हैं। हिमालय पर्वत की ढलानों तथा प्रायद्वीप के पहाड़ियों पर 915 मी की ऊँचाई से ऊपर तापमान में गिरावट वनस्पति के पनपने और बढ़ने को प्रभावित करती है और उसे उष्ण कटिबंधीय से उपोष्ण, शीतोष्ण तथा अल्पाइन वनस्पतियों में परिवर्तित करती है।

सारणी 5.1 : वनस्पति खंडों के तापमान की विशेषताएँ

वनस्पति खंड	*औसत वार्षिक तापमान (डिग्री से०)*	*जनवरी में औसत तापमान (डिग्री से०)*	*टिप्पणी*
उष्ण	24° से० से अधिक	18° से० से अधिक	कोई पाला नहीं
उपोष्ण	17° से० से 24° से०	10° से० से 18° से०	पाला कभी-कभी
शीतोष्ण	7° से० से 17° से०	-1° से० से (-10)° से०	कभी पाला कभी बर्फ
अल्पाइन	7° से० कम	-1° से० कम	बर्फ

स्रोत : भारत का पर्यावरण एटलस, जून 2001, केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, दिल्ली

सूर्य का प्रकाश- किसी भी स्थान पर सूर्य के प्रकाश का समय, उस स्थान के अक्षांश. समुद्र तल से ऊँचाई एवं ऋतु पर निर्भर करता है। प्रकाश अधिक समय तक मिलने के कारण वृक्ष गर्मी की ऋतु में जल्दी बढ़ते हैं।

(ज्ञात कीजिए हिमालय पर्वत की दक्षिणी खलानों पर उत्तरी बलानों की अपेक्षा ज्यादा सघन वनस्पति क्यों है?

वर्षण

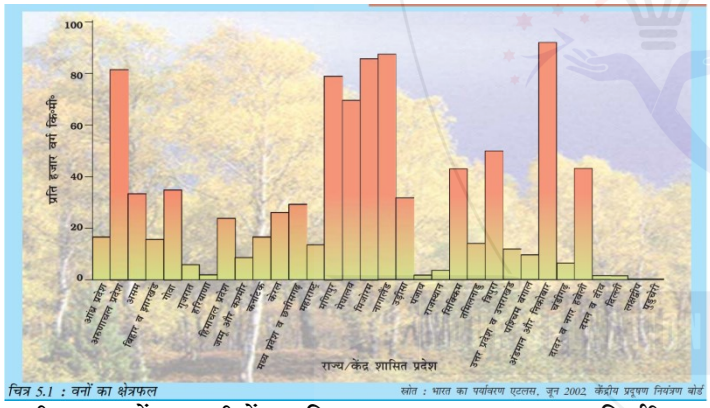
भारत में लगभग सारी वर्षा आगे बढ़ते हुए दक्षिण-पश्चिमी मानसून (जून से सितंबर तक) एवं पीछे हटते उत्तर-पूर्वी मानसून से होती है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में कम वर्षा वाले क्षेत्रों की अपेक्षा सघन वन पाए जाते हैं।

क्या आपने कभी सोचा है कि वन मनुष्य के लिए क्यों आवश्यक हैं? वन नवीकरण योग्य संसाधन हैं और वातारण की गुणवत्ता बढ़ाने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। ये स्थानीय जलवायु, मृदा अपरदन तथा नदियों की धारा नियंत्रित करते हैं। ये बहुत सारे उद्योगों के आधार हैं तथा कई समुदायों को जीविका प्रदान करते हैं। ये मनोरम प्राकृतिक दृश्यों के कारण पर्यटकों को आकर्षित करते हैं। ये पवन तथा तापमान को नियंत्रित करते हैं और वर्षा लाने में भी सहायता करते हैं। इनसे मृदा को जीवाश्म मिलता है और वन्य प्राणियों को आश्रय।

भारतीय प्राकृतिक वनस्पति में कई कारणों से बहुत बदलाव आया है जैसे कि कृषि के लिए अधिक क्षेत्र की माँग, उद्योगों का विकास. शहरीकरण की परियोजनाएँ

और पशुओं के लिए चारे की व्यवस्था के कारण वन्य क्षेत्र कम हो रहा है।

पारिस्थितिक तंत्र



चित्र 5.1 : वनों का क्षेत्रफल
स्रोत : भारत का पर्यावरण एटलस, जून 2002, केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड

पृथ्वी पर पादपों तथा जीवों का वितरण मुख्यतः जलवायु द्वारा निर्धारित होता है। किसी क्षेत्र के पादपों की प्रकृति काफी हद तक उस क्षेत्र के प्राणी जीवन को प्रभावित करती है। जब वनस्पति बदल जाती है तो प्राणी जीवन भी बदल जाता है। किसी भी क्षेत्र के पादप तथा प्राणी आपस में तथा अपने भौतिक पर्यावरण से अंतर्संबंधित होते हैं और एक पारिस्थितिक तंत्र का निर्माण करते हैं। मनुष्य भी इस पारिस्थितिक तंत्र का अविच्छिन्न भाग है। मानव कैसे किसी स्थान के पारिस्थितिक तंत्र को प्रभावित करता है? मनुष्य, वन्य जीवन और वनस्पति को अपने लाभ के लिए प्रयोग करता है। मनुष्य अपने लालच के कारण इन संसाधनों का अधिकतम प्रयोग करता है। वह वृक्षों को काट कर और जानवरों को मार कर पारिस्थितिक तंत्र में असंतुलन पैदा करता है। परिणामस्वरूप कुछ प्रजातियों के विलुप्त होने का भय होता है।

क्या आप जानते हैं कि धरातल पर एक विशिष्ट प्रकार की वनस्पति या प्राणी जीवन वाले विशाल पारिस्थितिक तंत्र को 'जीवोम' (Biome) कहते हैं। जीवोम की पहचान पादप पर आधारित होती है।

वनस्पति के प्रकार

हमारे देश में निम्न प्रकार की प्राकृतिक वनस्पतियाँ पाई जाती हैं 1

प्राकृतिक वनस्पति तथा वन्य प्राणी

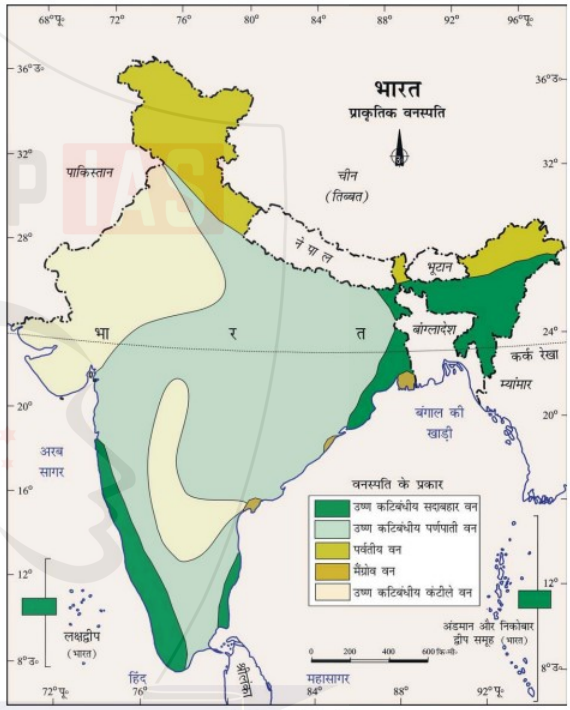
(i) उष्ण कटिबंधीय सदाबहार वन

(ii) उष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन

(iii) उष्ण कटिबंधीय कंटीले वन तथा झाड़ियाँ

(iv) पर्वतीय वन

(v) मैंग्रोव वन



चित्र 5.3 : प्राकृतिक वनस्पति
मानचित्र को देखकर पता लगाए कि कुछ राज्यों में वनों का विस्तार अधिक क्यों है?

उष्ण कटिबंधीय वर्षा वन

ये वन पश्चिमी घाटों के अधिक वर्षों वाले क्षेत्रों, लक्षद्वीप, अंडमान और निकोबार द्वीप समूहों असम के ऊपरी भागों तथा तमिलनाडु के तट तक सीमित हैं। ये उन क्षेत्रों में भली-भाँति विकसित हैं जहाँ 200 सेमी से अधिक वर्षा के साथ एक थोड़े समय के लिए शुष्क ऋतु पाई जाती है। इन वनों में वृक्ष 60 मी या इससे अधिक ऊँचाई तक पहुँचते हैं। चूंकि ये क्षेत्र वर्ष भर गर्म तथा आई रहते हैं अतः यहाँ हर प्रकार की वनस्पति वृक्ष. झाड़ियाँ व लताएँ उगती हैं और वनों में इनकी विभिन्न ऊँचाईयों से कई स्तर देखने को मिलते हैं। वृक्षों में पतझड़ होने का कोई निश्चित समय नहीं होता। अतः यह वन साल भर हरे-भरे लगते हैं।

इन वनों में पाए जाने वाले व्यापारिक महत्त्व के कुछ वृक्ष आबनूस (एबोनी), महोगनी, रोजवुड, रबड़ और सिंकोना हैं।

इन वनों में सामान्य रूप से पा. जाने वाले जानवर हाथी, बंदर लैमूर और हिरण हैं। एक सींग वाले गैंडे. असम और पश्चिमी बंगाल के दलदली क्षेत्र में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त इन जंगलों में कई प्रकार के पक्षी, चमगादड़ तथा कई रेंगने वाले जीव भी पाए जाते हैं।

उष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन

ये भारत में सबसे बड़े क्षेत्र में फैले हुए वन हैं। इन्हें मानसूनी वन भी कहते हैं और ये उन क्षेत्रों में विस्तृत हैं जहाँ 70 सेमी से 200 सेमी तक वर्षा होती है। इस प्रकार के वनों में वृक्ष शुष्क ग्रीष्म ऋतु में छः से आठ सप्ताह के लिए अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं।

जल की उपलब्धि के आधार पर इन वनों को आई तथा शुष्क पर्णपाती वनों में विभाजित किया जाता है। इनमें से आर्द्र या नम पर्णपाती वन उन क्षेत्रों में पाए जाते हैं जहाँ 100 सेमी 200 सेमी तक वर्षा होती है। अतः ऐसे वन देश के पूर्वी भागों, उत्तरी-पूर्वी राज्यों हिमालय के गिरिपद प्रदेशों झारखंड, पश्चिमी उड़ीसा, छत्तीसगढ़ तथा पश्चिमी घाटों के पूर्वी ढालों में पाए जाते हैं। सागोन इन वनों की सबसे प्रमुख प्रजाति है। बाँस, साल, शीशम् चंदन, रवैर कुसुम, अर्जुन तथा शहतूत के वृक्ष व्यापारिक महत्त्व वाली प्रजातियाँ हैं।

शुष्क पर्णपाती वन उन क्षेत्रों में पाए जाते हैं जहाँ वर्षा 70 सेमी से 100 सेमी के बीच होती है। ये वन प्रायद्वीपीय पठार के ऐसे वर्षा वाले क्षेत्रों. उत्तर प्रदेश तथा बिहार के मैदानों में पाए जाते हैं। विस्तृत क्षेत्रों में प्रायः सागोन, साल, पीपल तथा नीम के वृक्ष उगते हैं। इन क्षेत्रों के बहुत बड़े भाग कृषि कार्य में प्रयोग हेतु साफ कर लिए गए हैं और कुछ भागों में पशुचारण भी होता है।

इन जंगलों में पाए जाने वाले जानवर प्रायः सिंह, शेर सूअर, हिरण और हाथी हैं। विविध प्रकार के पक्षी, छिपकली. सौंप और कछुए भी यहाँ पाए जाते हैं।

कंटीले वन तथा झाड़ियाँ

जिन क्षेत्रों में 70 सेमी से कम वर्षा होती है. वहाँ प्राकृतिक वनस्पति में कंटीले वन तथा झाड़ियाँ पाई जाती हैं। इस प्रकार की वनस्पति देश के उत्तरी-पश्चिमी भागों में पाई जाती है जिनमें गुजरात, राजस्थान, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा हरियाणा के अर्थ शुष्क क्षेत्र सम्मिलित हैं। अकासिया, खजूर (पाम), यूफोरविया तथा नागफनी (कैक्टाई) यहाँ की मुख्य पादप प्रजातियाँ हैं। इन वनों के वृक्ष बिखरे हुए होते हैं। इनकी जड़े लंबी तथा जल की तलाश में चारों ओर फैली होती हैं। पत्तियाँ प्रायः छोटी होती हैं जिनसे वाष्पीकरण कम से कम हो सके। शुष्क भागों में झाड़ियाँ और कंटीले पादप पाए जाते हैं। इन जंगलों में प्रायः चूहे. खरगोश, लोमड़ी. भेड़िए, शेर, सिंह, जंगली गधा, घोड़े तथा ऊँट पाए जाते हैं।

पर्वतीय वन

पर्वतीय क्षेत्रों में तापमान की कमी तथा ऊँचाई के साथ-साथ प्राकृतिक वनस्पति में भी अंतर दिखाई देता है। वनस्पति में जिस प्रकार का अंतर हम उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों से टुंड्रा की ओर देखते हैं उसी प्रकार का अंतर पर्वतीय भागों में ऊँचाई के साथ-साथ देखने को मिलता है। 1,000 मी० से 2,000 मी० तक की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में आर्द्र शीतोष्ण कटिबंधीय वन पाए जाते हैं। इनमें चौड़ी पत्ती वाले ओक तथा चेस्टनट जैसे वृक्षों की प्रधानता होती है। 1.500 से 3.000 मी की ऊँचाई के बीच शंकुधारी वृक्ष जैसे चीड़ (पाइन), देवदार, सिल्वर -फर, स्यूस, सीडर आदि पाए जाते हैं। ये वन प्रायः हिमालय की दक्षिणी ढलानों, दक्षिण और उत्तर-पूर्व भारत के अधिक ऊँचाई वाले भागों में पाए जाते हैं। अधिक ऊँचाई पर प्रायः शीतोष्ण कटिबंधीय घास के मैदान पाए जाते हैं। प्रायः 3.600 मी० से अधिक ऊँचाई पर शीतोष्ण कटिबंधीय वनों तथा घास के मैदानों का स्थान अल्पाइन वनस्पति ले लेती है। सिल्वर-फर, जूनिपर, पाइन व वर्च इन वनों के मुख्य वृक्ष हैं। जैसे-जैसे हिमरेखा के निकट पहुँचते हैं इन वृक्षों के आकार छोटे होते जाते हैं। अंततः झाड़ियों के रूप के बाद वे अल्पाइन घास के मैदानों में विलीन हो जाते हैं। इनका उपयोग गुज्जर तथा बक्करवाल जैसी घुमक्कड़ जातियों द्वारा पशुचारण के लिए किया जाता है। अधिक ऊँचाई वाले भागों में मॉस, लिचन घास टुंड्रा वनस्पति का एक भाग है।

इन वनों में प्रायः कश्मीरी महामृग, चितरा हिरण, जंगली भेड़, खरगोश, तिब्बतीय बारहसिंघा, याक, हिम तेंदुआ. गिलहरी. रीछ, आइबैक्स. कहीं-कहीं लाल पांडा घने बालों वाली भेड़ तथा बकरियाँ पाई जाती हैं।

औषधीय पादप

भारत प्राचीन समय से अपने मसालों तथा जड़ी-बूटियों के लिए विख्यात रहा है। आयुर्वेद में लगभग 2,000 पादपों का वर्णन है और कम से कम 500 तो निरंतर प्रयोग में आते रहे हैं। 'विश्व संरक्षण संघ' ने लाल सूची के अंतर्गत 352 पादपों की गणना की है जिसमें से 52 पादप अति संकटग्रस्त हैं और 49 पादपों को विनष्ट होने का खतरा है। भारत में प्रायः औषधि के लिए प्रयोग होने वाले कुछ निम्नलिखित पादप हैं:

सर्पगंधा : यह रक्तचाप के निदान के लिए प्रयोग होता है और केवल भारत में ही पाया जाता है।

जामुन : पके हुए फल से सिरका बनाया जाता है जो कि वायुसारी और मूत्रवर्धक है और इसमें पाचन शक्ति के भी गुण है। बीज का बनाया हुआ पाउडर मधुमेह (Diabetes) रोग में सहायता करता है।

अर्जुन : ताजे पत्तों का निकाला हुआ रस कान के दर्द के इलाज में सहायता करता है। यह रक्तचाप की नियमिता के लिए भी लाभदायक है।

बबूल : इसके पत्ते आँख की फुंसी के लिए लाभदायक हैं। इससे प्राप्त गोंद का प्रयोग शारीरिक शक्ति को वृद्धि के लिए

होता है। : जैव और जीवाणु प्रतिरोधक है। नीम

तुलसी पादप जुकाम और खाँसी की दवा में इसका प्रयोग होता है।

कचनार : फोड़ा (अल्सर) व दमा रोगों के लिए प्रयोग होता है। इस पौधे की जड़ और कलौ पाचन शक्ति में सहायता करती है।

अपने क्षेत्र के औषधीय पादपों की पहचान करो। कौन-से पौधे औषधि के लिए प्रयोग होते हैं और उस स्थान के लोग उनका कौन-सी बीमारियों के लिए प्रयोग करते हैं। प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र मनुष्य के जीवन के लिए अनिवार्य है। क्या यह संभव है कि प्राकृतिक पर्यावरण का निरंतर होता जा रहा विनाश रोका जा सके?

मैंग्रोव वन

यह वनस्पति तटवर्तीय क्षेत्रों में जहाँ ज्वार-भाटा आते हैं. की सबसे महत्त्वपूर्ण वनस्पति है। मिट्टी और बालू इन तटों पर एकत्रित हो जाती है। घने मैंग्रोव एक प्रकार की वनस्पति है जिसमें पौधों की जड़ें पानी में डूबी रहती हैं। गंगा, ब्रह्मपुत्र, महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी नदियों के डेल्टा भाग में यह वनस्पति मिलती है। गंगा-ब्रह्मपुत्र डेल्टा में सुंदरी वृक्ष पाए जाते हैं जिनसे मजबूत लकड़ी प्राप्त होती है। नारियल, ताड़, क्योड़ा वं ऐंगार के वृक्ष भी इन भागों में पाए जाते हैं।

इस क्षेत्र का रॉयल बंगाल टाइगर प्रसिद्ध जानवर है। इसके अतिरिक्त कछुए, मगरमच्छ, घड़ियाल एवं कई प्रकार के साँप भी इन जंगलों में मिलते हैं।

आभओ विचार करें यदि वनस्पति और जानवर धरती से अदृश्य हो जाएँ? क्या मनुष्य उन अवस्थाओं में जीवित रह पाएगा? जैव विविधता क्यों अनिवार्य है और इसका संरक्षण क्यों आवश्यक है?

वन्य प्राणी

वनस्पति की भाँति ही. भारत विभिन्न प्रकार की प्राणी संपत्ति में भी धनी है। यहाँ जीवों पहचान की 89,000 प्रजातियाँ मिलती हैं। देश में 1.200 से अधिक पक्षियों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं। यह कुल विश्व का 13 प्रतिशत है। यहाँ मछलियों की 2.500 प्रजातियाँ हैं जो विश्व को लगभग 12 प्रतिशत है। भारत में विश्व के 5 से 8 प्रतिशत तक उभयचरी, सरीसृप तथा स्तनधारी जानवर भी पाए जाते हैं।

स्तनधारी जानवरों में हाथी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। ये असम् कर्नाटक और केरल के उष्ण तथा आर्द्र वनों में पाए जाते हैं। एक सींग वाले गैंडे अन्य जानवर हैं



चित्र 5.8: वन्य प्राणी निचय

जो पश्चिमी बंगाल तथा असम के दलदली क्षेत्रों में रहते हैं। कच्छ के रन तथा थार मरुस्थल में क्रमशः जंगली गधे तथा ऊँट रहते हैं। भारतीय भैंसा, नील गाय, चौसिंघा छोटा मृग (गजल) तथा विभिन्न प्रजातियों वाले हिरण आदि कुछ अन्य जानवर हैं जो भारत में पाए जाते हैं। यहाँ बंदरों की भी अनेक प्रजातियाँ पाई जाती हैं।

क्या आप जानते हैं? भारत जीव सुरक्षा अधिनियम सन् 1972 में लागू किया गया था।

भारत विश्व का अकेला देश है जहाँ शेर तथा बाघ दोनों पाए जाते हैं। भारतीय शेरों का प्राकृतिक वास स्थल गुजरात में गिर जंगल है। बाघ मध्य प्रदेश तथा झारखंड के वनों, पश्चिमी बंगाल के सुंदरवन तथा हिमालयी क्षेत्रों में पाए जाते हैं। बिल्ली जाति के सदस्यों में तेंदुआ भी है। यह शिकारी जानवरों में मुख्य है।

हिमालयी क्षेत्रों में पाए जाने वाले जानवर अपेक्षाकृत कठोर जलवायु को सहन करने वाले होते हैं जो अत्यधिक ठंड में भी जीवित रहते हैं। लद्दाख की बर्फीली ऊँचाइयों में याक पाए जाते हैं जो गुच्छेदार सींगो वाला बैल जैसा जीव है जिसका भार लगभग एक टन होता है। तिब्बतीय बारहसिंघा, भारल (नौली भेड़), जंगली भेड़ तथा कियांग (तिब्बती जंगली गधे) भी यहाँ पाए जाते हैं। कहीं-कहीं लाल पांडा भी कुछ भागों में मिलते हैं।

नदियों, झीलों तथा समुद्री क्षेत्रों में कछुए, मगरमच्छ और घड़ियाल पाए जाते हैं। घड़ियाल, मगरमच्छ की प्रजाति का एक ऐसा प्रतिनिधि है जो विश्व में केवल भारत में पाया जाता है।

भारत में अनेक रंग-बिरंगे पक्षी पाए जाते हैं। मोर, बत्तख, तोता, मैना, सारस तथा कबूतर आदि कुछ पक्षी प्रजातियाँ हैं जो देश के वनों तथा आर्द्र क्षेत्रों में रहती हैं।

प्रवासी पक्षी

भारत के कुछ दलदली भाग प्रवासी पक्षियों के लिए प्रसिद्ध है। शीत ऋतु में साइबेरियन सारस बहुत संख्या में यहाँ आते हैं। इन पक्षियों का एक मनपसंद स्थान कच्छ का रन है। जिस स्थान पर मरुभूमि समुद्र से मिलती है वहाँ लाल सुंदर कलंगी वाली फ्लेमिंगोए हजारों की संख्या में आती हैं और खारे कीचड़ के ढेर बनाकर उनमें घोंसले बनाती है और बच्चों को पालती है। देश में अनेकों दर्शनीय दृश्यों में से यह भी एक है। क्या यह हमारी कीमती धरोहर नहीं है?

हमने अपनी फसलें जैव-विविध पर्यावरण से चुनी है यानि खाने योग्य पौधों के निचय से। हमने बहुत से औषधि पादपों का प्रयोग कर उनका चुनाव किया है। दूध देने वाले पशु भी प्रकृति द्वारा दिए बहुत सारे जानवरों में से चुने गए हैं। जानवर हमें बोझा ढोने, कृषि कार्य तथा यातायात के साधन के रूप में मदद करते हैं। इनसे माँस, एवं अंडे भी प्राप्त होते हैं। मछली से पौष्टिक आहार मिलता है। बहुत से कीड़े-मकौड़े फसलों, फलों और वृक्षों के परागण में मदद करते हैं और हानिकारक कीड़ों पर जैविक नियंत्रण रखते हैं। प्रत्येक प्रजाति का पारिस्थितिक तंत्र में योगदान है। अतः उनका संरक्षण अनिवार्य है। जैसा पहले बताया गया है कि मनुष्यों द्वारा पादपों और जीवों के अत्यधिक उपयोग के कारण पारिस्थतिक तंत्र असंतुलित हो गया है। लगभग 1.300 पादप प्रजातियाँ संकट में हैं तथा 20 प्रजातियाँ विनष्ट हो चुकी हैं। काफी वन्य जीवन प्रजातियाँ भी संकट में हैं और कुछ विनष्ट हो चुकी हैं।

पारिस्थितिक तंत्र के असंतुलन का मुख्य कारण लालची व्यापारियों का अपने व्यवसाय के लिए अत्यधिक शिकार करना है। रासायनिक और औद्योगिक अवशिष्ट तथा तेज़ाबी जमाव के कारण प्रदूषण, विदेशी प्रजातियों का प्रवेश, कृषि तथा निवास के लिए वनों की अंधाधुन कटाई पारिस्थितिक तंत्र के असंतुलन का कारण हैं।

अपने देश की पादप और जीव संपत्ति की सुरक्षा के लिए सरकार ने कई कदम उठाए हैं:

(1) देश में चौदह जीव मंडल निचय (आरक्षित क्षेत्र) स्थापित किए गए हैं। इनमें से चार सुंदरवन (पश्चिम बंगाल), नंदादेवी (उत्तराखण्ड), मनार की खाड़ी (तमिलनाडु) और नीलगिरी (केरल कर्नाटक तथा तमिलनाडु) की गणना विश्व के जीव मंडल निचय में की गई है।

चौदह जीव मंडल निचय (आरक्षित क्षेत्र)

- सुंदरवन
- मन्नार की खाड़ी
- नीलगिरी
- नंदादेवी
- नाकरेक
- ग्रेट निकोबार
- मानस
- सिमलीपाल
- दिहांग दिबांग
- डिवु साइकवोवा
- अगस्त्यमलाई
- कंचनजंगा
- पंचमढ़ी
- अचनकमर अमरकंटक

(ii) सन् 1992 से सरकार द्वारा पादप उद्यानों को वित्तीय तथा तकनीकी सहायता देने की योजना बनाई है।

(iii) शेर संरक्षण, गैंडा संरक्षण, भारतीय भैसा संरक्षण तथा पारिस्थितिक तंत्र के संतुलन के लिए कई योजनाएँ बनाई गई हैं।

(iv) 89 नेशनल पार्क, 490 वन्य प्राणी अभयवन और कई चिड़ियाघर राष्ट्र की पादप और जीव संपत्ति की रक्षा के लिए बनाए गए हैं।

हम सभी को अपनी अति जीविता के लिए प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र के महत्व को समझना चाहिए। यह तब संभव है जब प्राकृतिक पर्यावरण का अंधविनाश तत्काल समाप्त कर दिया जाए।

Class-10

1. संसाधन एवं विकास
2. वन एवं वन्य जीव संसाधन
3. जल संसाधन
4. कृषि
5. खनिज तथा ऊर्जा संसाधन
6. विनिमांण उद्योग
7. राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की जीवन रेखाएँ

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

संसाधन एवं विकास

हमारे पर्यावरण में उपलब्ध प्रत्येक वस्तु जो हमारी आवश्कताओं को पूरा करने में प्रयुक्त की जा सकती है और जिसको बनाने के लिए प्रौद्योगिकी उपलब्ध है. जो आर्थिक रूप से संभाव्य और सास्कृतिक रूप से मान्य है. एक 'संसाधन' है। हमारे पर्यावरण में उपलब्ध वस्तुओं की रूपांतरण प्रक्रिया प्रकृति, प्रौद्योगिकी और संस्थाओं के परस्पर अंतर्संबंध में निहित है। मानव प्रौद्योगिकी द्वारा प्रकृति के साथ क्रिया करते हैं और अपने आर्थिक विकास की गति को तेज करने के लिए संस्थाओं का निर्माण करते हैं।

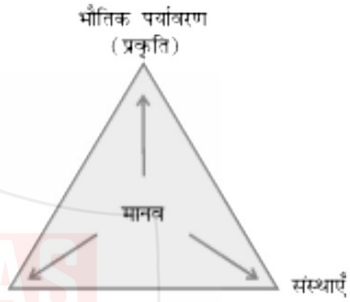
क्या आप भी अन्य बहुत से लोगों की तरह संसाधनों को प्राकृतिक उपहार समझते हैं? ऐसा नहीं है। संसाधन मानवीय क्रियाओं का परिणाम है। मानव स्वयं संसाधनों का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं। वे पर्यावरण में पाए जाने वाले पदार्थों को ससाधनों में परिवर्तित करते हैं तथा उन्हें प्रयोग करते हैं। इन संसाधनों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

(क) उत्पत्ति के आधार पर जैव और अजैव

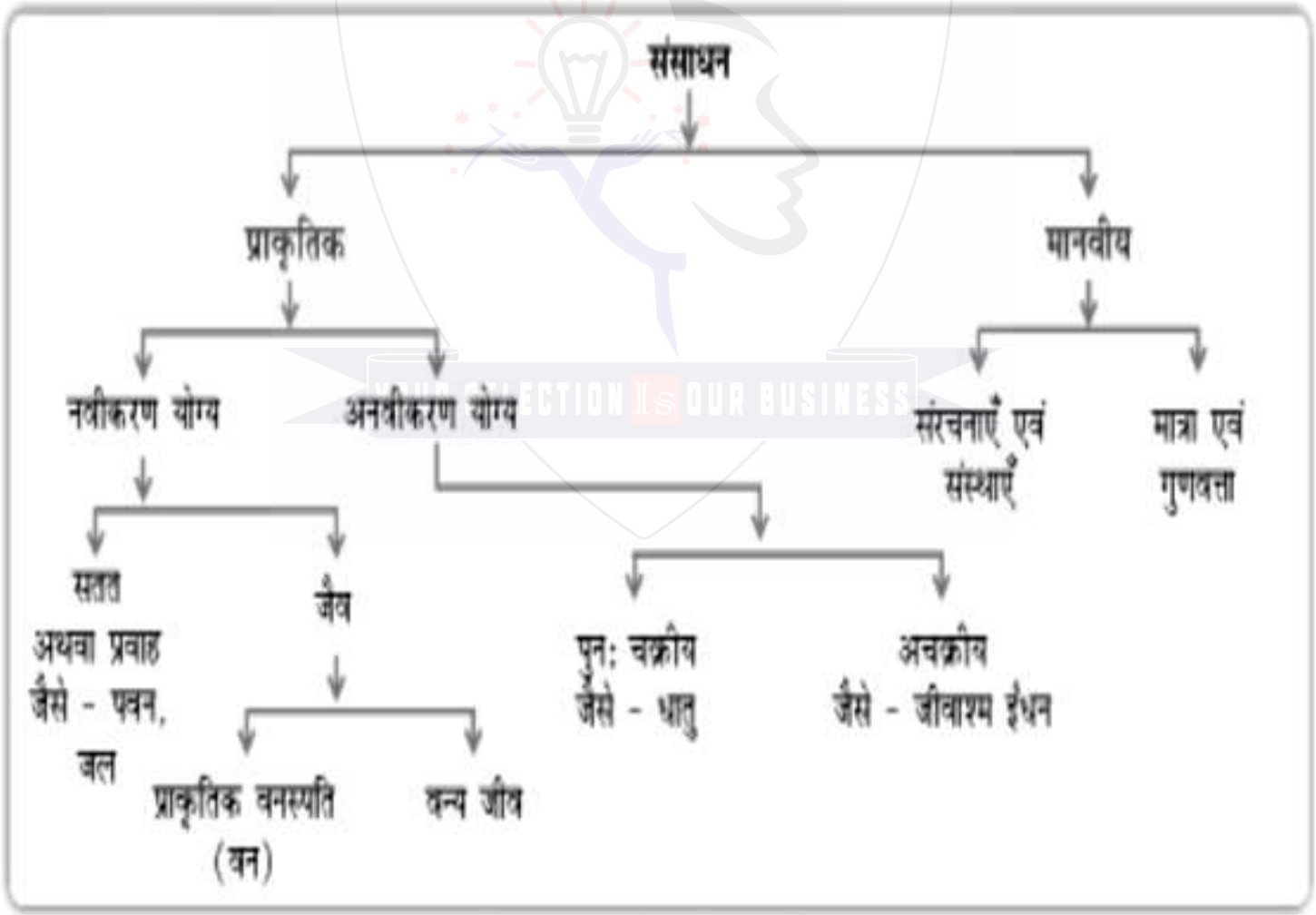
(ख) समाध्यता के आधार पर अनवीकरण योग्य नवीकरण योग्य और

(ग) स्वामित्व के आधार पर व्यक्तिगत, सामुदायिक. राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय

(घ) विकास के स्तर के आधार पर संभावी, विकसित भडार और संचित कोष



चित्र 1.1 – प्रकृति, प्रौद्योगिक और संस्थाओं के मध्य अंतर्संबंध



चित्र 1.2 – संसाधनों का वर्गीकरण

संसाधनों के प्रकार

उत्पत्ति के आधार पर

जैव संसाधन इन संसाधनों की प्राप्ति जीवमंडल से होती है और इनमें जीवन व्याप्त है. जैसे मनुष्य, वनस्पतिजात. प्राणिजात, मत्स्य जीवन, पशुधन आदि।

अजैव संसाधन वे सारे संसाधन जो निर्जीव वस्तुओं से वने है, अजैव संसाधन कहलाते है। उदाहरणार्थ, चट्टानें और धातुएँ।

समाप्यता के आधार पर

नवीकरण योग्य संसाधन वे संसाधन जिन्हें भौतिक, रासायनिक या यांत्रिक प्रक्रियाओं द्वारा नवीकृत या पुनः उत्पन्न किया जा सकता है. उन्हें नवीकरण योग्य अथवा पुनः पूर्ति योग्य संसाधन कहा जाता है। उदाहरणार्थ, सौर तथा पवन ऊर्जा, जल, वन व वन्य जीवन। इन संसाधनों को सतत् अथवा प्रवाह संसाधनों में विभाजित किया गया है ।

अनवीकरण योग्य संसाधन इन संसाधनों का विकास एक लंबे भू-वैज्ञानिक अंतराल में होता है। खनिज और जीवाश्म ईंधन इस प्रकार के संसाधनों के उदाहरण हैं। इनके बनने में लाखों वर्ष लग जाते हैं। इनमें से कुछ संसाधन जैसे धातुएँ पुनः चक्रीय हैं और कुछ संसाधन जैसे जीवाश्म ईंधन अचक्रीय हैं व एक बार के प्रयोग के साथ ही खत्म हो जाते हैं।

स्वामित्व के आधार पर

व्यक्तिगत संसाधन संसाधन निजी व्यक्तियों के स्वामित्व में भी होते हैं। बहुत से किसानों के पास सरकार द्वारा आवटित भूमि होती है जिसके बदले में वे सरकार को लगान चुकाते है। गाँव में बहुत से लोग भूमि के स्वामी भी होते हैं और बहुत से लोग भूमिहीन होते हैं। शहरों में लोग भूखंड, घरों व अन्य जायदाद के मालिक होते हैं। बाग, चारागाह, तालाब और कुओं का जल आदि संसाधनों के निजी स्वामित्व के कुछ उदाहरण है। अपने परिवार के संसाधनों की एक सूची तैयार कीजिए।

सामुदायिक स्वामित्व वाले संसाधन ये संसाधन समुदाय के सभी सदस्यों को उपलब्ध होते हैं। गाँव की शामिलात भूमि (चारण भूमि, श्मशान भूमि, तालाब इत्यादि) और नगरीय क्षेत्रों के सार्वजनिक पार्क, पिकनिक स्थल और खखेल के मैदान, वहाँ रहने वाले सभी लोगों के लिए उपलब्ध हैं।

राष्ट्रीय संसाधन तकनीकी तौर पर देश में पाये जाने वाले सारे संसाधन राष्ट्रीय है। देश की सरकार को कानूनी अधिकार है कि वह व्यक्तिगत संसाधनों को भी आम जनता के हित में अधिग्रहित कर सकती है। आपने देखा होगा कि सड़कें, नहरें और रेल लाइनें व्यक्तिगत स्वामित्व वाले खेतों में बनी हुई है। शहरी विकास प्राधिकरणों को सरकार ने भूमि अधिग्रहण का अधिकार दिया हुआ है। सारे खनिज पदार्थ, जल संसाधन, वन, वन्य जीवन, राजनीतिक सीमाओं के अंदर सारी भूमि और 12 समुद्री मील (19.2 किमी.) तक महासागरीय क्षेत्र (भू-भागीय समुद्र) व इसमें पाए जाने वाले संसाधन राष्ट्र की संपदा हैं।

अंतर्राष्ट्रीय संसाधन कुछ अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ संसाधनों को नियंत्रित करती हैं। तट रेखा से 200 किमी. की दूरी (अपवर्जक आर्थिक क्षेत्र) से परे खुले महासागरीय संसाधनों पर किसी देश का अधिकार नहीं है। इन संसाधनों को अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की सहमति के बिना उपयोग नहीं किया जा सकता।

क्या आप जानते हैं?-

क्या आप जानते है कि भारत के पास अपवर्जक आर्थिक क्षेत्र से दूर हिन्द महासागर की तलहटी से मैगनीज पंथियों का खनन करने का अधिकार है। कुछ अन्य अंतर्राष्ट्रीय संरराधनों की पहचान करें।

विकास के स्तर के आधार पर

संभावी संसाधन यह वे संसाधन है जो किसी प्रदेश में विद्यमान होते हैं परंतु इनका उपयोग नहीं किया गया है। उदाहरण के तौर पर भारत के पश्चिमी भाग, विशेषकर राजस्थान और गुजरात में पवन और सौर ऊर्जा संसाधनों को अपार संभावना है. परंतु इनका सही ढंग से विकास नहीं हुआ है।

विकसित संसाधन वे संसाधन जिनका सर्वेक्षण किया जा चुका है और उनके उपयोग की गुणवत्ता और मात्रा निर्धारित की जा चुकी है, विकसित संसाधन कहलाते हैं। संसाधनों का विकास प्रौद्योगिकी और उनकी संभाव्यता के स्तर पर निर्भर करता है।

भंडार पर्यावरण में उपलब्ध वे पदार्थ जो मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं परंतु उपयुक्त प्रौद्योगिकी के अभाव में उसकी पहुँच से बाहर हैं, भंडार में शामिल हैं। उदाहरण के लिए, जल दो ज्वलनशील गैसों, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का यौगिक है तथा यह ऊर्जा का मुख्य स्रोत बन सकता है। परंतु इस उद्देश्य से.. इनका प्रयोग करने के लिए हमारे पास आवश्यक तकनीकी ज्ञान नहीं है।

संचित कोष यह संसाधन भंडार का ही हिस्सा है, जिन्हें उपलब्ध तकनीकी ज्ञान की सहायता से प्रयोग में लाया जा सकता है. परंतु इनका उपयोग अभी आरंभ नहीं हुआ है। इनका उपयोग भविष्य में आवश्यकता पूर्ति के लिए किया जा सकता है। नदियों के जल को विद्युत पैदा करने में प्रयुक्त किया जा सकता है, परंतु वर्तमान समय में इसका उपयोग सीमित पैमाने पर ही हो रहा है। इस प्रकार बाँधों में जल, वन आदि संचित कोष हैं जिनका उपयोग भविष्य में किया जा सकता है। क्रियाकलाप

संसाधनों का विकास

संसाधन जिस प्रकार, मनुष्य के जीवन यापन के लिए अति आवश्यक हैं, उसी प्रकार जीवन की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। ऐसा विश्वास किया जाता था कि संसाधन प्रकृति की देन है। परिणामस्वरूप,

मानव ने इनका अंधाधुंध उपयोग किया है, जिससे निम्नलिखित मुख्य समस्याएँ पैदा हो गई हैं।

कुछ व्यक्तियों के लालचवश संसाधनों का हास संसाधन समाज के कुछ ही लोगों के हाथ में आ गए हैं, जिससे समाज दो हिस्सों संसाधन संपन्न एवं संसाधनहीन अर्थात् अमीर और गरीब में बँट गया।

संसाधनों के अंधाधुंध शोषण से वैश्विक पारिस्थितिकी संकट पैदा हो गया है जैसे भूमंडलीय तापन, ओजोन परत अवक्षय, पर्यावरण प्रदूषण और भूमि निम्नीकरण आदि हैं।

मानव जीवन की गुणवत्ता और विश्व शांति बनाए रखने के लिए संसाधनों का समाज में न्यायसंगत बँटवारा आवश्यक हो गया है। यदि कुछ ही व्यक्तियों तथा देशों द्वारा संसाधनों का वर्तमान दोहन जारी रहता है, तो हमारी पृथ्वी का भविष्य खतरे में पड़ सकता है।

इसलिए, हर तरह के जीवन का अस्तित्व बनाए रखने के लिए संसाधनों के उपयोग की योजना बनाना अति आवश्यक है। सतत् अस्तित्व सही अर्थ में सतत् पोषणीय विकास का ही एक हिस्सा है।

सतत् पोषणीय विकास

3 सतत पोषणीय आर्थिक विकास का अर्थ है कि विकास पयांवरण को बिना नुकसान पहुंचाए हो और वर्तमान विकास की प्रक्रिया भविष्य को पौड़ियों की आवश्यकता की अवहेलना न करें।

रियो डी जेनेरो पृथ्वी सम्मेलन, 1992

जून 1992 में 100 से भी अधिक राष्ट्राध्यक्ष ब्राजील के शहर रियो डी जनेरी में प्रथम अंतर्राष्ट्रीय पृथ्वी सम्मेलन में एकत्रित हुए। सम्मेलन का आयोजन विश्व स्तर पर उभरते पर्यावरण संरक्षण और सामाजिक-आर्थिक विकास की समस्याओं का हल ढूँढने के लिए किया गया था। इस सम्मेलन में एकत्रित नेताओं ने भूमंडलीय जलवायु परिवर्तन और जैविक विविधता पर एक चिणा पत्र पर हस्ताक्षर किया। रियो सम्मेलन में भूमंडलीय वन सिद्धांतों (Forest Principles) पर सहमति जताई और 21 वीं शताब्दी में सतत् पोचचीय विकास के लिए एजेंडा 21 को स्वीकृति प्रदान की।

एजेंडा 21

यह एक घोषणा है जिसे 1992 में ब्राजील के शहर रियो डी जेनेरों में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण और विकास सम्मेलन (UNCED) के तत्वाधान में राष्ट्राध्यक्षों द्वारा स्वीकृत किया गया था। इसका उद्देश्य भूमंडलीय सतत् पोषणीय विकास हासिल करना है। यह एक कार्यसूची है जिसका उद्देश्य समान हितों, पारस्परिक आवश्यकताओं एवं सम्मिलित जिम्मेदारियों के अनुसार विश्व सहयोग के द्वारा पर्यावरणीय कति, गरीबी और रोगों से निपटना है। एजेंडा 21 का मुख्य उद्देश्य यह है कि प्रत्येक स्थानीय निकाय अपना स्थानीय एजेंडा 21 तैयार करे।

संसाधन नियोजन

संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग के लिए नियोजन एक सर्वमान्य रणनीति है। इसलिए भारत जैसे देश में जहाँ संसाधनों को उपलब्धता में बहुत अधिक विविधता है. यह और भी महत्त्वपूर्ण है। यहाँ ऐसे प्रदेश भी हैं जहाँ एक तरह के संसाधनों की प्रचुरता है, परंतु दूसरे तरह के संसाधनों की कमी है। कुछ ऐसे प्रदेश भी हैं जो संसाधनों की उपलब्धता के संदर्भ में आत्मनिर्भर हैं और कुछ ऐसे भी प्रदेश हैं जहाँ महत्त्वपूर्ण संसाधनों की अत्यधिक कमी है। उदाहरणार्थ, झारखंड, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ आदि प्रांतों में खनिजों और कोयले के प्रचुर भंडार हैं। अरुणाचल प्रदेश में जल संसाधन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं. परंतु मूल विकास की कमी है। राजस्थान में पवन और सौर ऊर्जा संसाधनों की बहुतायत है. लेकिन जल संसाधनों की कमी है। लद्दाख का शीत मरुस्थल देश के अन्य भागों से अलग-थलग पड़ता है। यह प्रदेश सांस्कृतिक विरासत का धनी है परंतु यहाँ जल, आधारभूत अवसंरचना तथा कुछ महत्त्वपूर्ण खनिजों की कमी है। इसलिए राष्ट्रीय, प्रांतीय, प्रादेशिक और स्थानीय स्तर पर संतुलित संसाधन नियोजन की आवश्यकता है।

भारत में संसाधन नियोजन

संसाधन नियोजन एक जटिल प्रक्रिया है. जिसमें निम्नलिखित सोपान हैं (क) देश के विभिन्न प्रदेशों में संसाधनों की पहचान कर उनकी तालिका बनाना। इस कार्य में क्षेत्रीय सर्वेक्षण, मानचित्र बनाना और संसाधनों का गुणात्मक एवं मात्रात्मक अनुमान लगाना व मापन करना है। (ख) संसाधन विकास योजनाएँ लागू करने के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकी, कौशल और संस्थागत नियोजन ढाँचा तैयार करना। (ग) संसाधन विकास योजनाओं और राष्ट्रीय विकास योजना में समन्वय स्थापित करना।

स्वाधीनता के बाद भारत में संसाधन नियोजन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही प्रयास किए गए।

किसी क्षेत्र के विकास के लिए संसाधनों की उपलब्धता

एक आवश्यक शर्त है। परंतु प्रौद्योगिकी और संस्थाओं में तदनरूपी परिवर्तनों के अभाव में मात्र संसाधनों की उपलब्धता से ही विकास संभव नहीं है। देश में बहुत से क्षेत्र हैं जो संसाधन समृद्ध होते हुए भी आर्थिक रूप से पिछड़े प्रदेशों की गिनती में आते हैं। इसके विपरीत कुछ ऐसे प्रदेश भी हैं जो संसाधनों की कमी होते हुए भी आर्थिक रूप से विकसित हैं।

क्या आप संसाधन संपन्न परंतु आर्थिक रूप से पिछड़े और संसाधन विहीन परंतु आर्थिक रूप से विकसित प्रदेशों के नाम बता सकते हैं? ऐसी परिस्थिति होने के कारण बताएँ।

उपनिवेशन का इतिहास हमें बताता है कि उपनिवेशों में संसाधन संपन्न प्रदेश, विदेशी आक्रमणकारियों के लिए मुख्य आकर्षण रहे हैं। उपनिवेशकारी देशों ने बेहतर प्रौद्योगिकी के सहारे उपनिवेशों के संसाधनों का शोषण किया तथा उन पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। अतः संसाधन किसी प्रदेश के विकास में तभी योगदान दे सकते हैं, जब वहाँ उपयुक्त प्रौद्योगिकी विकास और संस्थागत परिवर्तन किए जाएँ। उपनिवेशन के विभिन्न चरणों में भारत ने इन सबका अनुभव किया है। अतः भारत में विकास सामान्यतः तथा संसाधन विकास लोगों के मुख्यतः संसाधनों की उपलकाता पर ही आधारित नहीं था बल्कि इसमें प्रौद्योगिकी, मानव संसाधन की गुणवत्ता और ऐतिहासिक अनुभव का भी योगदान रहा है।

संसाधनों का संरक्षण संसाधन किसी भी तरह के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। परंतु संसाधनों का विवेकहीन उपभोग और अति उपयोग के कारण कई सामाजिक-आर्थिक और पयांवरणीय समस्याएँ पैदा हो सकती हैं। इन समस्याओं से बचाव के लिए विभिन्न स्तरों पर संसाधनों का संरक्षण आवश्यक है। भूतकाल से ही संसाधनों का संरक्षण बहुत से नेताओं और चिंतकों के लिए चिंता का विषय रहा है। उदाहरणार्थ, गांधी जी ने संसाधनों के संरक्षण पर अपनी चिंता इन शब्दों में व्यक्त की है - हमारे पास हर व्यक्ति की आवश्यकता पूर्ति के लिए बहुत कुछ है, लेकिन किसी के लालच की संतुष्टि के लिए नहीं। अर्थात् हमारे पास पेट भरने के लिए बहुत है लेकिन पेटी भरने के लिए नहीं। उनके अनुसार विश्व स्तर पर संसाधन हास के लिए लालची और स्वार्थी व्यक्ति तथा आधुनिक प्रौद्योगिकी की शोषणात्मक प्रवृत्ति जिम्मेदार है। वे अत्यधिक उत्पादन के विरुद्ध थे और इसके स्थान पर अधिक बड़े जनसमुदाय द्वारा उत्पादन के पक्षधर थे।

भू-संसाधन

हम भूमि पर रहते हैं. इसी पर अनेकों आर्थिक क्रियाकलाप करते हैं और विभिन्न रूपों में इसका उपयोग करते हैं। अतः भूमि एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। प्राकृतिक वनस्पति, वन्य जीवन, मानव जीवन, आर्थिक क्रियाएँ, परिवहन तथा संचार व्यवस्थाएँ भूमि पर ही आधारित हैं। परंतु भूमि एक सीमित संसाधन है. इसलिए उपलब्ध भूमि का विभिन्न उद्देश्यों के लिए उपयोग सावधानी और योजनाबद्ध तरीके से होना चाहिए।

भारत में भूमि पर विभिन्न प्रकार की भू-आकृतियाँ जैसे पर्वत, पठार, मैदान और द्वीप पाए जाते हैं। लगभग 43 प्रतिशत भू-क्षेत्र मैदान हैं जो कृषि और उद्योग के विकास के लिए सुविधाजनक हैं। पर्वत पूरे भू-क्षेत्र के 30 प्रतिशत भाग पर विस्तृत हैं। वे कुछ बारहमासी नदियों के प्रवाह को सुनिश्चित करते है. पर्यटन विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करता है और पारिस्थितिकी के लिए महत्त्वपूर्ण है। देश के क्षेत्रफल का लगभग 27 प्रतिशत हिस्सा पठारी क्षेत्र है। इस क्षेत्र में खनिजों, जीवाश्म इंधन और वनों का अपार संचय कोष है।

भू-उपयोग

भू-संसाधनों का उपयोग निम्नलिखित उद्देश्यों से किया जाता है-

1. वन

2. कृषि के लिए अनुपलब्ध भूमि

(अ) बंजर तथा कृषि अयोग्य भूमि

(ब) गैर-कृषि प्रयोजनों में लगाई गई भूमि जैसे इमारत. सड़क, उद्योग इत्यादि।

3. परती भूमि के अतिरिक्त अन्य कृषि अयोग्य भूमि

(अ) स्थायी चरागाहें तथा अन्य गोचर भूमि

(ब) विविध वृक्षों, वृक्ष फसलों, तथा उपवनों के अधीन भूमि (जो शुद्ध बोए गए क्षेत्र में शामिल नहीं है)

(स) कृषि योग्य बंजर भूमि जहाँ पाँच से अधिक वर्षों से खेती न की गई हो।

4. परती भूमि

(अ) वर्तमान परती (जहाँ एक कृषि वर्ष या उससे कम समय से खेती न की गई हो)

(ब) वर्तमान परती भूमि के अतिरिक्त अन्य परती भूमि या पुरातन परती (जहाँ 1 से 5 कृषि वर्ष से खेती न की गई हो)

5. शुद्ध (निवल) बोया गया क्षेत्र

एक कृषि वर्ष में एक बार से अधिक बोए गए क्षेत्र को शुद्ध (निवल) बोए गए क्षेत्र में जोड़ दिया जाए तो वह सकल कृषित क्षेत्र कहलाता है।

भारत में भू-उपयोग प्रारूप

भू-उपयोग को निर्धारित करने वाले तत्त्वों में भौतिक कारक जैसे भू-आकृति, जलवायु और मृदा के प्रकार तथा मानवीय कारक जैसे जनसंख्या घनत्व, प्रौद्योगिक क्षमता, संस्कृति और परंपराएँ इत्यादि शामिल हैं।

भारत का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 32.8 लाख वर्ग किमी है। परंतु इसके 93 प्रतिशत भाग के ही भू-उपयोग आँकड़े उपलब्ध हैं क्योंकि पूर्वोत्तर प्रांतों में असम को छोड़कर अन्य प्रांतों के सूचित क्षेत्र के बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं है। इसके अलावा जम्मू और कश्मीर में पाकिस्तान और चीन अधिकृत क्षेत्रों के भूमि उपयोग का सर्वेक्षण भी नहीं हुआ है।

स्थायी चरागाहों के अंतर्गत भी भूमि कम हुई है। पशुधन की इतनी बड़ी संख्या के लिए चारा उपलब्ध कराने में कैसे समर्थ होंगे? और इसके क्या परिणाम होंगे ? वर्तमान परती भूमि के अतिरिक्त अन्य परती भूमि

अनुपजाऊ हैं और इन पर फसलें उगाने के लिए कृषि लागत बहुत ज्यादा है। अतः इस भूमि में दो या तीन वर्षों में इनको एक या दो बार बोया जाता है और यदि इसे शुद्ध (निवल) बांये गए क्षेत्र में शामिल कर लिया जाता है तब भी भारत के कुल सूचित क्षेत्र के लगभग 54 प्रतिशत हिस्से पर ही खेती हो सकती है।

शुद्ध (निवल) बोये गए क्षेत्र का प्रतिशत भी विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न है। पंजाब और हरियाणा में 80 प्रतिशत भूमि पर खेती होती है, परंतु अरुणाचल प्रदेश. मिजोरम, मणिपुर और अंडमान निकोबार द्वीप समूह में 10 प्रतिशत से भी कम क्षेत्र बोया जाता है।

इन राज्यों में शुद्ध (निवल) बोये गए क्षेत्र के कम अनुपात के लिए उत्तरदायी कारणों को ज्ञात कीजिए।

हमारे देश में राष्ट्रीय वन नीति (1952) द्वारा निर्धारित वनों के अंतर्गत 33 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र वांछित हैं। जिसकी तुलना में वन के अंतर्गत क्षेत्र काफी कम है। वन नीति द्वारा निर्धारित यह सीमा पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक है। वन क्षेत्रों के आस पास रहने वाले लाखों लोगों की आजीविका इस पर निर्भर करती है। भू-उपयोग का एक भाग बंजर भूमि और दूसरा गैर-कृषि प्रयोजनों में लगाई गई भूमि कहलाता है। बंजर भूमि में पहाड़ी चट्टानें, सूखी और मरुस्थलीय भूमि शामिल हैं। गैर-कृषि प्रयोजनों में लगाई भूमि में बस्तियाँ सड़कें रेल लाइन, उद्योग इत्यादि आते हैं। लंबे समय तक लगातार भूमि संरक्षण और प्रबंधन की अवहेलना करने एवं लगातार भू-उपयोग के कारण भू-संसाधनों का निम्नीकरण हो रहा है। इसके कारण समाज और पर्यावरण पर गंभीर आपदा आ सकती है।

भूमि निम्नीकरण और संरक्षण उपाय

भूमि एक ऐसा संसाधन है जिसका उपयोग हमारे पूर्वज करते आए हैं तथा भावी पीढ़ी भी इसी भूमि का उपयोग करेंगी। हम भोजन, मकान और कपड़े की अपनी मूल आवश्यकताओं का 95 प्रतिशत भाग भूमि से प्राप्त करते हैं। मानव कार्यकलापों के कारण न केवल भूमि का निम्नीकरण हो रहा है बल्कि भूमि को नुकसान पहुँचाने वाली प्राकृतिक ताकतों को भी बल मिला है।

इस समय भारत में लगभग 13 करोड़ हेक्टेयर भूमि निम्नीकृत है। इसमें से लगभग 28 प्रतिशत भूमि निम्नीकृत वनों के अंतर्गत है, 56 प्रतिशत क्षेत्र जल अपरदित है और शेष क्षेत्र लवणीय और क्षारीय है। कुछ मानव क्रियाओं जैसे वनोन्मूलन, अति पशुचारण, खनन ने भी भूमि के निम्नीकरण में मुख्य भूमिका निभाई है।

खनन के उपरांत खदाई वाले स्थानों को गहरे खवयं और मलबे के साथ खुला छोड़ दिया जाता है।

खनन के कारण झारखंड. छत्तीसगढ़ मध्य पदंश और उड़ीस जैसे राज्यों में वनोन्मूलन भूमि निम्नीकरण का कारण बना है। गुजरत राजस्थान, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में अति पशुचारण भूमि निम्नीकरण का मुख्य कारण है। पंजाब, हरियचा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में अधिक सिचाई भूमि निम्नीकरण के लिए उत्तरदायी है। अति सिवन से उत्पन्न जलाकातता भी भूमि निम्नीकरण के लिए उस्थायी है जिससे मृदा में लवचीयता और क्षारीयता बढ़ जाती है। खनिज प्रक्रियाएँ जैसे सीमेट उद्योग में चूना पत्थर को पोसना और मृदा बर्तन उद्योग में जूने (खड़िय मृदा) और संलाई के प्रबंग से बहुत अधिक मात्र में वायुमंडल में भात विसर्जित होती है। जब इसकी परत भूमि पर जम जाती है तो मुदा की जल संखने की प्रक्रिय अवरुद्ध हो जाती है। पिछले कुछ वर्षों से देश के विभिन्न भागों में औयांगिक जल निकास से बाहर आने वाला अपशिष्ट पदार्थ भूमि और जल प्रदूषण का मुख्य खंत ही

भूमि निम्नीकरण की समस्याओं को सुलझाने के का तरीके से वचारांपच और घरगाले का उचित प्रबंधन इसमे कुछ हद तक मदद कर सकते है पेड़ों की रक्षक मेखल (shelter belti, पश्चारण नियंत्रण और रेतीले ठेलें को काँटार झाँड्य लगाकर स्थिर बनाने की प्रक्रिय से भी भूमि कटाव को रंकधाम को क सकती है। बजर भूमि के उचित प्रबंधन, खनन नियंत्रण और औद्योगिक जल को परिकरण के पश्चात् विसर्जित करके जल और भूमि प्रदूषच को कम किया जा सकता है।

मृदा संसाधन

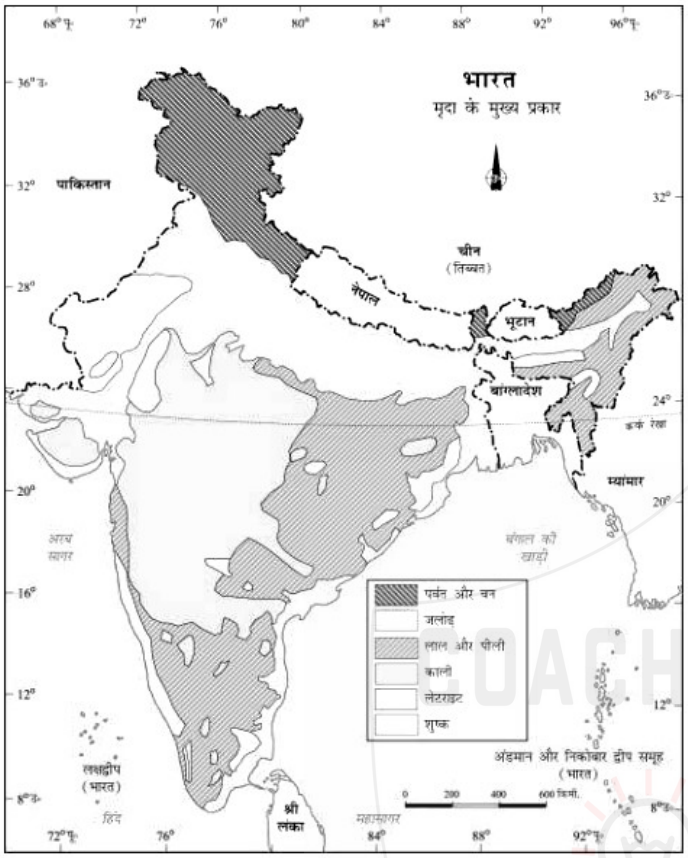
मिट्टले अथवा मुदा सबसे महत्वपूर्ण नवीकरण के यप्राकृतिक संसाधन है। यह पौधों के विकास का माध्यम है जो पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार के जीवों का पांच कही है। मृदा एक जेका तंत्र है। कुछ सेंटीमीटर गहरी मृदा बनने में लाखों वर्ष लग जाते है। मृदा बनने की प्रक्रिय में उच्चावच, जनक शैल अथवा संकेतर शैल, जलवायु, वनस्पति और अन्य वैजैव पदार्थ और समय मुख्य कारक ही प्रकृति के अनेकों तत्त्व जैसे तापमान परिवर्तन. बहते जल को क्रिय पवन, हिमनदी और अपघटन क्रियाएँ आदि मृदा बनने की प्रक्रिय में योगदान देती है। मृदा में होने वाले रासायनिक और जैविक परिवर्तन भी महत्वपूर्ण है। मृदा जैव (ह्यूमस) और अजैव येनों प्रकार के पदार्थों से बनती है। (चित्र 1.6)

मृदा बनने को प्रक्रिया को निर्धारित करने वाले तत्त्वों, उनके रंग, गहराई, गठन, आयु व रासायनिक और भौतिक गुणों के आधार पर भास की मृाओं को निम्नलिखित प्रकारों में बाँठ जा सकता है।

मृदाओं का वर्गीकरण

भास में अनेक प्रकार के उच्चावच भू-आकृय जलवायु और वनस्पतियाँ पाई जाती है। इस कारण अनेक प्रकार की मुदाएँ विकसित हुई ही

जलोड़ मृवा यह मुद्दा विस्तृत रूप से फैली हुई है और यह देश की महत्वपूचं मृदा है। वास्तव में संपूर्ण उत्तरे मैदान जलोद मुरा से बना है। यह मुराएँ हिमालय की तीन महत्वपूर्ण नये तां सिंधु, गंगा और बापुत्र नदियों द्वारा लाए गए



भारत – मृदा के मुख्य प्रकार

निक्षेपों से बनी हैं। एक सँकरे गलियारे के द्वारा ये मृदाएँ राजस्थान और गुजरात तक फैली हैं। पूर्वी तटीय मैदान विशेषकर महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नदियों के डेल्टे भी जलोढ़ मृदा से बने हैं।

जलोढ़ मृदा में रेत. सिल्ट और मृत्तिका के विभिन्न अनुपात पाए जाते हैं। जैसे हम नदी के मुहाने से घाटी में ऊपर की ओर जाते हैं मृदा के कणों का आकार बढ़ता चला जाता है। नदी घाटी के ऊपरी भाग में, जैसे ढाल भंग के समीप मोटे कण वाली मृदाएँ पाई जाती हैं। ऐसी मृदाएँ पर्वतों की तलहटी पर बने मैदानों जैसे द्वार, 'चो' क्षेत्र और तराई में आमतौर पर पाई जाती है।

कणों के आकार या घटकों के अलावा मृदाओं की पहचान उनकी आयु से भी होती है। आयु के आधार पर जलोढ़ मृदाएँ दो प्रकार की है पुराना जलोढ़ (बांगर) और नया जलोढ़ (खादर)। बांगर मृदा में 'कंकर' ग्रंथियों की मात्रा ज्यादा होती है। खादर मृदा में बांगर मृदा की तुलना में ज्यादा महीन कण पाए जाते हैं।

जलोद मृदाएँ बहुत उपजाऊ होती हैं। अधिकतर जलोढ़ मृदाएँ पोटाश, फास्फोरस और चूनायुक्त होती हैं जो इनको गन्ने, चावल, गेहूँ और अन्य अनाजों और दलहन फसलों की खेती के लिए उपयुक्त बनाती है। अधिक उपजाऊपन के कारण जलोढ़ मृदा वाले क्षेत्रों में गहन कृषि की जाती है और यहाँ जनसंख्या घनत्व भी अधिक है। सूखे क्षेत्रों की मृदाएँ अधिक क्षारीय होती है। इन मृदाओं का सही उपचार और सिंचाई करके इनकी पैदावार बढ़ाई जा सकती है।

काली मृदा

इन मृदाओं का रंग काला है और इन्हे 'रेगर' मृदाएँ भी कहा जाता है। काली मृदा कपास की खेती के लिए उचित समझी जाती है और काली कपास मुदा के नाम से भी जाना जाता है। यह माना जाता है कि जलवायु और जनक शैलों ने काली मृदा के बनने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इस प्रकार की मृदाएँ दक्कन पठार (बेसाल्ट) क्षेत्र के उत्तर पश्चिमी भागों में पाई जाती हैं और लावा जनक शैलों से बनी है। ये मृदाएँ महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, मालवा. मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ के पठार पर पाई जाती हैं और दक्षिण पूर्वी दिशा में गोदावरी और कृष्णा नदियों की घाटियों तक फैली हैं।

काली मृदा बहुत महीन कणों अर्थात् मृत्तिका से बनी है। इसकी नमी धारण करने की क्षमता बहुत होती है। इसके अलावा ये मृदाएँ कैल्शियम कार्बोनेट. मैगनीशियम, पोटाश और चूने जैसे पौष्टिक तत्त्वों से परिपूर्ण होती हैं। परंतु इनमें फास्फोरस की मात्रा कम होती है। गर्म और शुष्क मौसम में इन मृदाओं में गहरी दरारें पड़ जाती हैं जिससे इनमें अच्छो तरह वायु मिश्रण हो जाता है। गीली होने पर ये मृदाएँ चिपचिपी हो जाती है और इन को जोतना मुश्किल होता है। इसलिए, इसकी जुताई मानसून प्रारंभ होने की पहली बौछार से ही शुरू कर दी जाती है।

लाल और पीली मृदा

लाल मृदा दक्कन पठार के पूर्वी और दक्षिणी हिस्सों में रवेदार आग्नेय चट्टानों पर कम वर्षा वाले भागों में विकसित हुई है। लाल और पीली मृदाएँ उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्य गंगा मैदान के दक्षिणी छोर पर और पश्चिमी घाट में पहाड़ी पद पर पाई जाती है। इन मृदाओं का लाल रंग रवेदार आग्नेय और रूपांतरित चट्टानों में लौह धातु के प्रसार के कारण होता है। इनका पीला रंग इनमें जलयोजन के कारण होता है।

लेटराइट मृदा

लेटराइट शब्द ग्रीक भाषा के शब्द लेटर (Later) से लिया गया है जिसका अर्थ है इंट। लेटराइट मृदा उच्च तापमान और अत्यधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में विकसित होती है। यह भारी वर्षा से अत्यधिक निश्चालन (leaching) का परिणाम है। इस मृदा में ह्यूमस की मात्रा कम पाई जाती है क्योंकि अत्यधिक तापमान के कारण जैविक पदार्थों को अपघटित करने वाले बैक्टीरिया नष्ट हो जाते हैं। लेटराइट मृदा पर अधिक मात्रा में खाद और रासायनिक उर्वरक डाल कर ही खेती की जा सकती है। ये मृदाएँ मुख्य तौर पर कनांटक, केरल, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश और उड़ीसा तथा असम के पहाड़ी क्षेत्र में पाई जाती है। मृदा संरक्षण की उचित तकनीक अपना कर इन मृदाओं पर कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु में चाय और कॉफी उगाई जाती है। तमिलनाडु, आंध प्रदेश और केरल की लाल लेटराइट मृदाएँ काजू की फसल के लिए अधिक उपयुक्त है।

मरुस्थली मृदा

मरुस्थली मृदाओं का रंग लाल और भूरा होता है। ये मृदाएँ आम तौर पर रेतीली और लवणीय होती है। कुछ क्षेत्रों में नमक की मात्रा इतनी अधिक है कि झीलों से जल वाष्पीकृत करके खाने का नमक भी बनाया जाता है। शुष्क जलवायु और उच्च तापमान के कारण जलवाष्पन दर अधिक है और मृदाओं में ह्यूमस और नमी की मात्रा कम होती है। मृदा की सतह के नीचे कैल्शियम की मात्रा बढ़ती चली जाती है और नीचे की परतों में चूने के कंकर की सतह पाई जाती है। इसके कारण मृदा में जल अंतः स्यंदन (infiltration) अवरुद्ध हो जाता है। इस मृदा को सही तरीके से सिंचित करके कृषि योग्य बनाया जा सकता है. जैसा कि पश्चिमी राजस्थान में हो रहा है।

वन मृदा

ये मृदाएँ आमतौर पर पहाड़ी और पर्वतीय क्षेत्रों में पाई जाती है जहाँ पर्याप्त वर्षा-वन उपलब्ध हैं। इन मुदाओं के गठन में पर्वतीय पर्यावरण के अनुसार बदलाव आता है। नदी घाटियों में ये मृदाएँ दोमट और सिल्टदार होती है परंतु ऊपरी ढालों पर इनका गठन मोटे कणों का होता है। हिमालय के हिमाच्छादित क्षेत्रों में इन मृथाओं का बहुत अपरदन होता है और ये अधिसिलिक (acidic) तथा ह्यूमस रहित होती है। नदी घाटियों के निचले क्षेत्रों. विशेषकर नदी सोपानों और जलोढ़ पंखों. आदि में ये मृदाएँ उपजाऊ होती हैं।

मृदा अपरदन और संरक्षण

मृदा के कटाव और उसके बहाव की प्रक्रिया को मृदा अपरदन कहा जाता है। मृदा के बनने और अपरदन की क्रियाएँ आमतौर पर साथ-साथ चलती है और दोनों में संतुलन होता है। परंतु मानवीय क्रियाओं जैसे वनोन्मूलन, अति पञ्चचारण, निर्माण और खनन इत्यादि से कई बार यह संतुलन भंग हो जाता है तथा प्राकृतिक तत्त्व जैसे पवन, हिमनदी और जल मृदा अपरदन करते हैं। बहता जल मृत्तिकायुक्त मृदाओं को काटते हुए गहरी वाहिकाएँ बनाता है. जिन्हें अवनलिकाएँ कहते हैं। ऐसी भूमि जोतने योग्य नहीं रहती और इसे उत्खात भूमि (bad land) कहते हैं। चंबल बेसिन में ऐसी भूमि को खड्ड (ravine) भूमि कहा जाता है। कई बार जल विस्तृत क्षेत्र को ढके हुए ढाल के साथ नीचे की ओर बहता है। ऐसी स्थिति में इस क्षेत्र की ऊपरी मृदा घुलकर जल के साथ बह जाती है। इसे चादर अपरदन (Sheet erosion) कहा जाता है। पवन द्वारा मैदान अथवा ढालू क्षेत्र से मृदा को उड़ा ले जाने की प्रक्रिया को पवन अपरदन कहा जाता है। कृषि के गलत तरीकों से भी मृदा अपरदन होता है। गलत ढंग से हल चलाने जैसे ढाल पर ऊपर से नीचे की ओर हल चलाने से वाहिकाएँ बन जाती हैं. जिसके अंदर से बहता पानी आसानी से मृदा का कटाव करता है।

ढाल वाली भूमि पर समोच्च रेखाओं के समानांतर हल चलाने से डाल के साथ जल बहाव की गति घटती है। इसे समोच्च जुताई (contour ploughing) कहीं जाता है। ढाल वाली भूमि पर सोपान बनाए जा सकते हैं। सोपान कृषि अपरदन को नियंत्रित करती है। पश्चिमी और मध्य हिमालय में सोपान अथवा सीढ़ीदार कृषि काफी विकसित है। बड़े खेतों को पट्टियों में बाँटा जाता है। फसलों के बीच में घास की पट्टियाँ उगाई जाती हैं। ये पवनों द्वारा जनित बल को कमजोर करती हैं। इस तरीके को पट्टी कृषि (strip farming) कहते हैं। पेड़ों को कतारों में लगाकर रक्षक (shelter belt) मेखला बनाना भी पवनों की गति कम करता है। इन रक्षक पट्टियों का पश्चिम भारत में रेत के टीलों के स्थायीकरण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

भारत के पर्यावरण की दशा

सुखोमाजरी गाँव और झबुआ जिले ने यह कर दिखाया है कि भूमि निम्नीकरण प्रक्रिया को पलटा जा सकता है। सुखोमाजरी में वृक्ष घनत्व 1976 में 13 प्रति हेक्टेयर था जो कि 1992 में बढ़कर 1272 प्रति हेक्टेयर हो गया।

पर्यावरण के पुनर्जनन से अधिक संसाधन उपलब्धता, कृषि और पशुपालन में सुधार के परिणामस्वरूप आमदनी बढ़ती है और समाज में आर्थिक समृद्धि आती है। सुखांमाजरी में 1979 से 1984 के बीच परिवारों की औसत वार्षिक आमदनी 10,000 से 15.000 रुपये थी।

पर्यावरण की पुनस्थापना के लिए लोगों द्वारा इसका प्रबंधन आवश्यक है। मध्य प्रदेश सरकार ने लोगों को स्वयं फैसला लेने का अधिकार दिया है और वे प्रदेश की 29 लाख हेक्टेयर भूमि भारत का लगभग एक प्रतिशत क्षेत्रफल को जल विभाजक प्रबंधन द्वारा हरा-भरा बना रहे हैं।

वन एवं वन्य जीव संसाधन

इस ग्रह पर हम सूक्ष्म जीवाणुओं और वैक्टीरिया, जॉक से लेकर वटवृक्ष, हाथी और ब्लू व्हेल तक करोड़ों दूसरे जीवधारियों के साथ रहते हैं। यह पूरा आवासीय स्थल जिस पर हम रहते है. अत्यधिक जैव-विविधताओं से भरा हुआ है। मानव और दूसरे जीवधारी एक जटिल पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करते हैं. जिसका हम मात्र एक हिस्सा है और अपने अस्तित्व के लिए इसके विभिन्न तत्त्वों पर निर्भर करते हैं। उदाहरणतया, वायु जिसमें हम साँस लेते हैं. जल जिसे हम पीते हैं और मृदा जो अनाज पैदा करती है. जिसके बिना हम जीवित नहीं रह सकते; पौधे, पशु और सूक्ष्मजीवी इनका पुनः सृजन करते हैं। वन पारिस्थितिकी तंत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि ये प्राथमिक उत्पादक है जिन पर दूसरे सभी जीव निर्भर करते हैं।

वन्य जीवन और कृषि फसल उपजातियों में अत्यधिक जैव विविधताएँ पाई जाती हैं यह आकार और कार्य में विभिन्न हैं परंतु अंतर्निर्भरताओं के जटिल जाल द्वारा एक तंत्र में गूंधी हुई हैं।

भारत में वनस्पतिजात और प्राणिजात

यदि आप आस पास नजर दौड़ाते हैं. तो आप पाएँगे कि कुछ ऐसे प्राणी और पौधे हैं जो आपके क्षेत्र में ही पाए जाते हैं। वास्तव में भारत, जैव विविधता के संदर्भ में विश्व के सबसे समृद्ध देशों में से एक है। यहाँ विश्व की सारी जैव उपजातियों की 8 प्रतिशत संख्या (लगभग 16 लाख) पाई जाती है। ये अभी खोजी जाने वाली उपजातियों से दो या तीन गुणा है। आप पहले ही भारत में पाए जाने वाले वनों और वन्य जीव संसाधनों के क्षेत्रफल और किस्मों के बारे में पढ़ चुके हैं। आपने सोचा होगा कि इन संसाधनों का आपके दैनिक जीवन में क्या महत्त्व है। ये विविध वनस्पतिजात और प्राणिजात हमारे हर रोज के जीवन में इतने गुथे हुए हैं कि हम इसकी कद्र नहीं करते। परंतु पर्यावरण के प्रति हमारी असंवेदना के कारण पिछले कुछ समय से इन संसाधनों पर भारी दवाब बढ़ा है।

क्या आप जानते हैं?

क्या आप जानते हैं कि हमारे देश में लगभग 81,000 बभजीवन उपजातियों और लगभग 47,000 वनस्पति उपजातियाँ पाई जाती हैं। वनस्पति उपजातियों में से लगभग 15,000 उपजातियाँ भारतीय मूल की (स्थानीय) है।

कुछ अनुमान यह कहते हैं कि भारत में 10 प्रतिशत वन्य वनस्पतिजात और 20 प्रतिशत स्तनधारियों को लुप्त होने का खतरा हैं। इनमें से कई उपजातियाँ तो नाजुक अवस्था में है और लुप्त होने के कगार पर है। इनमें चीता, गुलाबी सिर वाली बत्तख, पहाड़ी कोयल (Quail) और जंगली चित्तीदार उल्लू और मधुका इनसिगनिस (महुआ की जगली किस्म) और हुवरड़िया हेप्टान्यूरोन (घास की प्रजाति) जैसे पौधे शामिल है। वास्तव में कोई भी नहीं बता सकता कि अब तक कितनी प्रजातियाँ लुप्त हो चुकी हैं। आज हमारा ध्यान अधिक बड़े और दिखाई देने वाले प्राणियों और पौधे के लुप्त होने पर अधिक केंद्रित है परंतु छोटे प्राणी जैसे कौट और पौधे भी महत्त्वपूर्ण होते हैं।

क्या आप जानते हैं?

क्या आप जानते हैं कि भारत में बड़े प्रषियों में से स्तनधारियों की 79 जातियाँ, पक्षियों की 44 जातियाँ, सरीसृपें की 15 जातियाँ और जलस्थलचरों की 3 जातियाँ लुप्त होने का खतरा बन हुआ है। लगभग 1500 पादप जातियं के भी लुप्त होने का खतरा है। फूलदार वनस्पत्ति और रीहधारी प्राणियों के सुप्त होने की दर सुप्त होने की प्रकृतिक दर से 50 से 100 गुषा ज्यादा है।

लुप्त होते वन

भारत में जिस पैमाने पर वन कटाई हो रही है. वह विचलित कर देने वाली बात है। देश में वन आवरण के अंतर्गत अनुमानित 637,293 वर्ग किमी, वेत्रफल है। यह देश के कुल गौगोलिक क्षेत्रफल का 19.39 प्रतिशत हिस्सा है। (सथान बन 11.48 प्रतिशत, खुला चन 7,76 प्रतिशत और मांच 15 प्रतिशत)। स्टेट ऑफ फोरेस्ट रिपोर्ट (1999) के अनुसार वर्ष 1997 से सपन बर्न के क्षेत्र में 10,098 चर्ग किमों की वृद्धि हुई है। परंतु वन क्षेत्र में यह वृद्धि विभिन्न संगठनों द्वारा बूचारोपण से हुई है। यह रिघंटे प्राकृतिक बन और वृक्षारोपण (कृत्रिम वन) में अंतर नहीं करती। इसलिए इस रिपोर्ट के आधार पर प्राकृतिक वनों के वास्तविक हास का ठोक तरह से अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

संरक्षण और प्राकृतिक संसाधन संरक्षण संघ (IUCN) के अनुसार इनको निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है -

सामान्य जातियाँ ये वे जातियाँ हैं जिनकी संख्या जीवित रहने के लिए सामान्य मानी जाती है, जैसे-पशु. साल. चीड़ और कृन्तक (रोडेंट्स) इत्यादि।

संकटग्रस्त जातियाँ ये वे जातियाँ हैं जिनके लुप्त होने का खतरा है। जिन विषम परिस्थितियों के कारण इनकी संख्या कम हुई है, यदि वे जारी रहती हैं तो इन जातियों का जीवित रहना कठिन है। काला हिरण, मगरमच्छ, भारतीय जंगली गधा, गैंडा, शेर-पूँछ वाला बंदर, संगाई (मणिपुरी हिरण) इत्यादि इस प्रकार की जातियों के उदाहरण हैं।

सुभेद्य (Vulnerable) जातियाँ ये वे जातियाँ हैं जिनकी संख्या घट रही है। यदि इनकी संख्या पर विपरीत प्रभाव डालने वाली परिस्थितियाँ नहीं बदली जाती और इनकी संख्या घटती रहती है तो यह संकटग्रस्त जातियों की श्रेणी में शामिल हो जाएँगी। नीली भेड़, एशियाई हाथी. गंगा नदी की डॉल्फिन इत्यादि इस प्रकार की जातियों के उदाहरण हैं।

दुर्लभ जातियाँ इन जातियों की संख्या बहुत कम या सुभेद्य हैं और यदि इनको प्रभावित करने वाली विषम परिस्थितियाँ नहीं परिवर्तित होती तो यह संकटग्रस्त जातियों की श्रेणी में आ सकती हैं।

स्थानिक जातियाँ प्राकृतिक या भौगोलिक सीमाओं से अलग विशेष क्षेत्रों में पाई जाने वाली जातियाँ अंडमानी टील (teal). निकोबारी कबूतर, अंडमानी जंगली सुअर और अरुणाचल के मिथुन इन जातियों के उदाहरण हैं।

लुप्त जातियाँ ये वे जातियाँ हैं जो इनके रहने के आवासों में खोज करने पर अनुपस्थित पाई गई हैं। ये उपजातियाँ स्थानीय क्षेत्र, प्रदेश, देश, महाद्वीप या पूरी पृथ्वी से ही लुप्त हो गई हैं। ऐसी उपजातियों में एशियाई चीता और गुलाबी सिरवाली बत्तख शामिल हैं।

वे प्रतिकूल कारक कौन से हैं जिनसे वनस्पतिजात और प्राणिजात का ऐसा भयानक ह्रास हुआ है?

यदि आप चारों और नजर दौडाएँगे तो आप पाएँगे कि किस प्रकार हमने प्रकृति को संसाधनों में परिवर्तित कर दिया है। हमें लकड़ी, छाल, पत्ते. रबड़, दवाईयाँ. भोजन, इंधन. चारा. खाद इत्यादि प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से वनों और वन्य जीवन से प्राप्त होता है इसलिए हम ही हैं जिन्होंने वन और वन्यजीवन को नुकसान पहुँचाया है। भारत में वनों को सबसे बड़ा नुकसान उपनिवेश काल में रेललाइन, कृषि, व्यवसाय, वाणिज्य वानिकी और खनन क्रियाओं में वृद्धि से हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी वन संसाधनों के सिकुड़ने से कृषि का फैलाव महत्त्वपूर्ण कारकों में से एक रहा है। भारत में वन सर्वेक्षण के अनुसार 1951 और 1980 के बीच लगभग 26.200 वर्ग किमी. वन क्षेत्र कृषि भूमि में परिवर्तित किया गया। अधिकतर जनजातीय क्षेत्रों, विशेषकर पूर्वोत्तर और मध्य भारत में स्थानांतरी (झूम) खेती अथवा 'स्लैश और बर्न' खेती के चलते वनों की कटाई या निम्नीकरण हुआ है।

क्या उपनिवेशी वन नीति को दोषी माना जाए?

हमारे कुछ पर्यावरण विशेषज्ञों के अनुसार भारत के कई क्षेत्रों में 'संवर्द्धन (enrichment) वृक्षारोपण अर्थात् वाणिज्य की दृष्टि से कुछ या एकल वृक्ष जातियों के बड़े पैमाने पर रोपण करने से पेड़ों की दूसरी जातियाँ खत्म हो गई। उदाहरण के तौर पर सागवान के एकल रोपण से दक्षिण भारत में अन्य प्राकृतिक बन बर्याद हो गए और हिमालय में चीड़ पाईन के रोषग से हिमालयन ओक और रोडोडदोन (rhododendron) क्कों का नुकसान हुआ।

बड़ी विकास परियोजनाओं ने भी वनों को बहुत नुकसान पहुंचाया है। 1952 से नदी घाटी परियोजनाओं के कारण 5000 वर्ग किमी से अधिक वन क्षेत्रों को साफ करना पड़ा है यह प्रक्रिया अभी भी जारी है और मध्य प्रदेश में 4.00.000 हैक्टेयर से अधिक वन क्षेत्र नर्मदा सागर परियोजना के पूर्ण हो जाने से जलमग्न हो जाएगा। वनों की बबांदी में खनन ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पश्चिम बंगाल में बक्सा टाईगर रिजर्व (reserve), डोलोमाइट के खनन के कारण गंभीर खतरे में है। इसने कई प्रजातियों के प्राकृतिक आवासों को नुकसान पहुंचाया है और कई जातियों जिसमें भारतीय हाथी भी शामिल हैं. के आवागमन मार्ग को बाधित किया है।

बहुत से वन अधिकारी और पयांवरणविद् यह मानतं हैं कि वन संसाधनों की बबांदी में पशुचारण और इंधन के लिए लकड़ी कटाई मुख्य भूमिका निभाते हैं। यद्यपि इसमें कुछ सच्चाई हो सकती है परंतु चारें और इंधन हेतु लकड़ी की आवश्यकता पूर्ति मुख्यतः पेड़ों की टहनियाँ काटकर की जाती हैं न कि पूरे पेड़ काटकर।

वन

पारिस्थिकी तत्र देश के मूल्यवान वन पदार्थों, खनिजा और अन्य संसाधनों के संचय कोष हैं जो तेजी से विकसित होती औद्योगिक शहरी अर्थव्यवस्था की माँग की पूर्ति के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। ये आरक्षित क्षेत्र अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग मायने रखते है और विभिन्न वर्गों के बीच संघर्ष के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करते हैं।

हिमालयन यव (Yew) संकट में

हिमालयन यव (गौड़ की प्रकार का सदावहार वृक्ष) एक औषधीय पौधा है जो हिमाचल प्रदेश और अरुणाचल प्रदेश के कई क्षेत्रों में पाया जाता है। पेड़ की छाल, पत्तियों, टहनियों और जड़ों से टकसोल (taxol) नामक रसायन निकाला जाता है तथा इसे कुछ कैंसर रोगों के उपचार के लिए प्रयोग किया जाता है। इससे बनाई गई दवई विश्व में सबसे अधिक विकने खली कैंसर औषधि है। इसके अत्याधिक निष्कासन में इस बनस्पति जाति को खतरा पैदा हो गया है। पिछले एक दशक में हिमाचल प्रदेश और अरुणाचल प्रदेश में विभिन्न क्षेत्रों में यथ के हजरों पेड़ सूख गए है।

भारत में जैव-विविधता को कम करने वाले कारकों में वन्य जीव के आवास का विनाश, जंगली जानवरों को मारना व आखेटन, पर्यावरणीय प्रदूषण व विषाक्तिकरण और दावानल आदि शामिल हैं। पर्यावरण विनाश के अन्य मुख्य कारकों में संसाधनों का असमान बंटवारा व उनका असमान उपभोग और पयांवरण के रख-रखाव की जिम्मेदारी में असमानता शामिल हैं। आमतौर पर विकासशील देशों में पयांवरण विनाश का मुख्य दोषी अत्यधिक जनसंख्या को माना जाता है। यद्यपि एक अमेरिकी नागरिक का औसत संसाधन उपभोग एक सोमाली नागरिक के औसत उपभोग से 40 गुणा ज्यादा है। इसी प्रकार शायद भारत के 5 प्रतिशत धनी लोग 25 प्रतिशत गरीब लोगों की तुलना में अपने संसाधन उपभोग द्वारा पर्यावरण को अधिक नुकसान पहुंचाते हैं तथा इन 5 प्रतिशत लोगों की पर्यावरण रख-रखाव में भी कोई जिम्मेदारी नहीं है। प्रश्न यह है कि कौन, क्या, कहाँ से और कितना उपभोग कर रहा है?

क्या आप जानते हैं?

क्या आप जानते हैं कि भारत के आधे से अधिक प्राकृतिक वन लगभग खत्म हो चुके हैं? एक-तिहाई जलमग्न भूमि (wetlandi सूख चुकी है. 70 प्रतिशत धरातरीय जल क्षेत्र (water bodies) प्रदुषित हैं. 40 प्रतिशत मैग्रोच क्षेत्र सुप्त हो चुका है और जगली जानवरों के शिकार और व्यापार तथा वाणिज्य की दृष्टि से कीमती पेड़-पौधों की कटाई के करण हजारों वनस्पति और कन्य जीव जातियाँ लुप्त होने के कगार पर पहुंच गई हैं।

वनों और वन्य जीवन का विनाश मात्र जीव विज्ञान का विषय ही नहीं है। जैव संसाधनों का विनाश सांस्कृतिक विविधता के विनाश से जुड़ा हुआ है। जैव विनाश के कारण कई मूल जातियाँ और वनों पर आधारित समुदाय निर्धन होते जा रहे हैं और आर्थिक रूप से हाशिये पर पहुँच गए हैं। यह समुदाय खाने पीने औषधि, संस्कृति. अध्यात्म इत्यादि के लिए वनों और वन्य जीवों पर निर्भर है। गरीब वर्ग में भी महिलाएँ पुरुषों की तुलना में अधिक प्रभावित हैं। कई समाजों में खाना, चारा, जल और अन्य आवश्यकता की वस्तुओं को इकट्ठा करने की मुख्य जिम्मेदारी महिलाओं की ही होती है। जैसे ही इन संसाधनों की कमी होती जा रही है. महिलाओं पर कार्य भार बढ़ता जा रहा है और कई बार तो उनको संसाधन इकट्ठा करने के लिए 10 किमी से भी अधिक पैदल चलना पड़ता है। इससे उन्हें गंभीर स्वास्थ्य समस्याएँ झेलनी पड़ती हैं. काम का समय बढ़ने के कारण घर और बच्चों की उपेक्षा होती है जिसके गंभीर सामाजिक दुष्परिणाम हो सकते हैं। वन कटाई के परोक्ष परिणाम जैसे सूखा, और बाढ़ भी गरीब तबके को सबसे अधिक प्रभावित करता है। इस स्थिति में गरीबी, पयांवरण निम्नीकरण का सीधा परिणाम होता है। भारतीय उपमहाद्वीप में वन और वन्य जीवन मानव जीवन के लिए बहुत कल्याणकारी है। अतः यह आवश्यक है कि वन और वन्य जीवन के संरक्षण के लिए सही नीति अपनाई जाए।

भारत में वन और वन्य जीवन का संरक्षण

वन्य जीवन और वनों में तेज गति से हो रहे हास के कारण इनका संरक्षण वहुत आवश्यक हो गया है। परंतु हमें वनों और वन्य जीवन का संरक्षण करना आवश्यक क्यों है? संरक्षण से पारिस्थितिकी विविधता बनी रहती है तथा हमारे जीवन साध्य संसाधन जल, वायु और मृदा बने रहते हैं। यह विभिन्न जातियों में बेहतर जनन के लिए वनस्पति और पशुओं में जीस (genetic) विविधता को भी संरक्षित करती है। उदाहरण के तौर पर हम कृषि में अभी भी पारंपरिक फसलों पर निर्भर हैं। जलीय जैव विविधता मोटे तौर पर मछली पालन बनाए रखने पर निर्भर है।

1960 और 1970 के दशकों के दौरान, पर्यावरण संरक्षकों ने राष्ट्रीय वन्यजीवन सुरक्षा कार्यक्रम की पुरजोर माँग की। भारतीय वन्यजीवन (रक्षण) अधिनियम 1972 में लागू किया गया जिसमें वन्य जीवों के आवास रक्षण के अनेक प्रावधान थे। सारे भारत में रवित जातियों की सूची भी प्रकाशित की गई। इस कार्यक्रम के तहत बची हुई संकटग्रस्त जातियों के बचाव पर. शिकार प्रतिबंधन पर, वन्यजीव आवासों का कानूनी रक्षण तथा जंगली जीवों के व्यापार पर रोक लगाने आदि पर प्रवल जोर दिया गया है। तत्पश्चात् केंद्रीय सरकार व कई राज्य सरकारों ने राष्ट्रीय उद्यान और वन्य जीव पशुविहार (sanctuary) स्थापित किए जिनके बारे में आप पहले पढ़ चुके हैं। केंद्रीय सरकार ने कई परियोजनाओं की भी घोषणा की जिनका उद्देश्य गंभीर खतरे में पड़े कुछ विशेष वन प्राणियों को रक्षण प्रदान करना था। इन प्राणियों में बाघ. एक सींग वाला गैंडा, कश्मीरी हिरण अथवा हगुल (hangul), तीन प्रकार के मगरमच्छ स्वच्छ जल मगरमच्छ, लवणीय जल मगरमच्छ और घड़ियाल. एशियाई शेर, और अन्य प्राणी शामिल हैं। इसके अतिरिक्त. कुछ समय पहले भारतीय हाथी, काला हिरण, चिंकारा, भारतीय गोडावन (bustard) और हिम तेंदुओं आदि के शिकार और व्यापार पर संपूर्ण अथवा आशिक प्रतिबंध लगाकर कानूनी रक्षण दिया है।

बाघ परियोजना

वन्य जीवन संरचना में बाघ (टॉईगर) एक महत्त्वपूर्ण जातो जाति है। 1973 में अधिकारियों ने पाया कि देश में 20 बों शताब्दी के अरभ में बांधों को संख्या अनुमानित संख्या 55,000 से घटकर मात्र 1,827 रह गई है। बाघों को मारकर उनको व्यापार के लिए चोरी करना, आवासीय स्थलों का सिकुड़ना, भोजन के लिए आवश्यक जाली उपजातियों की संख्या कम होना और जनसंख्या में वृद्धि बाघों की पटती संख्या के मुख्य करण हैं। बापी की खाल का व्यापार, और उनकी हडिडयों का एशियाई देशों में परपरागत औषधियों में प्रयोग के कारण यह जति विलुप्त होने की कगार पर पहुंच गई है। चूंकि भारत और नेपाल दुनिया को दो-तिहाई बाघों को आवास उपलब्य करवाते हैं. अतः ये देश ही शिकार बोरी और गैर-कानूनी व्यापार करने वालों के मुख्य निशाने पर हैं। 'प्रोजेक्ट डांगर' विश्व की बेहतरीन वन्य जीव परियोजनाओं में से एक है और इसकी शुरुआत 1973 में हुई। शुरू में इसमें बहुत सफलत प्राप्त हुई क्योंकि बाधों की संख्या बदकर 1985 में 4,002 और 1989 में 4.334 हो गई थी। परतु 1993 में इनकी संख्या घटकर 3.600 तक पहुंच गई। भारत में 37.761 कां किमी. पर फैले हुए 27 बाप रिजर्व (Tiger reserves) है। बाथ संरक्षण मात्र एक संकटग्रस्त जाति को बचाने का प्रयास नहीं है, अपितु इसका उद्देश्य महुत बड़े आकार के वैषजति को भी बचाना है। उत्तरांचल में करिबेट राष्ट्रीय उद्यान, पश्चिम बंगाल में सुदरवन राष्ट्रीय उद्यान, मध्य प्रदेश में बांधवाद राष्ट्रीय उद्यान, राजस्थान में सरिस्का क्य जीव पशुविहार (sanctuary), असम में मानस बाय रिजर्व (reserve) और केरल में पेरियार कच रिजर्व (reserve) भारत में बाघ संरक्षण परियोजनाओं के उदाहरण है।

आजकल संरक्षण परियोजनाएँ जैव विविधताओं पर केंद्रित होती हैं न कि इसके विभिन्न घटकों पर। संरक्षण के विभिन्न तरीकों की गहनता से खोज की जा रही है। संरक्षण नियोजन में कीरों को भी महत्त्व मिल रहा है। वन्य जीव अधिनियम 1980 और 1986 के तहत् सैकड़ों तितलियों पतंगों, भृगों और एक ड्रैगनफ्लाई को भी संरक्षित जातियों में शामिल किया गया है। 1991 में पौधों की भी 6 जातियाँ पहली बार इस सूची में रखी गई।

वन और वन्य जीव संसाधनों के प्रकार और वितरण (यदि हम वन और वन्य जीव संसाधनों को संरक्षित करना चाहे, तो उनका प्रबंधन, नियंत्रण और विनियमन अपेक्षाकृत कठिन है। भारत में अधिकतर वन और वन्य जीवन या तो प्रत्यक्ष रूप में सरकार के अधिकार क्षेत्र में है या वन विभाग अथवा अन्य विभागों के जरिये सरकार के प्रबंधन में हैं। इन्हें निम्नलिखित वर्गों में बाँटा गया है-

(क) आरक्षित वन देश में आधे से अधिक वन क्षेत्र आरक्षित वन घोषित किए गए हैं। जहाँ तक वन और वन्य प्राणियों के संरक्षण की बात है. आरक्षित वनों को सर्वाधिक मूल्यवान माना जाता है।

(ख) रक्षित वन वन विभाग के अनुसार देश के कुल वन क्षेत्र का एक-तिहाई हिस्सा रक्षित है। इन वनों को और अधिक नष्ट होने से बचाने के लिए इनकी सुरक्षा की जाती है।

(ग) अवर्गीकृत वन अन्य सभी प्रकार के वन और बंजरभूमि जो सरकार, व्यक्तियों और समुदायों के स्वामित्व में होते हैं. अवर्गीकृत वन कहे जाते हैं।

आरक्षित और रक्षित वन ऐसे स्थायी वन क्षेत्र है जिनका रख-रखाव इमारती लकड़ी. अन्य वन पदार्थो और उनके बचाव के लिए किया जाता है। मध्य प्रदेश में स्थायी वनों के अंतर्गत सर्वाधिक क्षेत्र है जोकि प्रदेश के कुल वन क्षेत्र का भी 75 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त जम्मू और कश्मीर, आंध्र प्रदेश, उत्तराखण्ड केरल, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र में भी कुल वनों में एक बड़ा अनुपात आरक्षित वनों का है; जबकि बिहार, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उड़ीसा और राजस्थान में कुल वनों में रक्षित वनों का एक बड़ा अनुपात है। पूर्वोत्तर के सभी राज्यों में और गुजरात में अधिकतर वन क्षेत्र अवर्गीकृत वन है तथा स्थानीय समुदायों के प्रबंधन में हैं।

समुदाय और वन संरक्षण

वन संरक्षण की नीतियाँ हमारे देश में कोई नई बात नहीं है। हम आमतौर पर इस बात से अनजान हैं कि वन हमारे देश में कुछ मानव प्रजातियों के आवास भी है। भारत के कुछ क्षेत्रों में तो स्थानीय समुदाय सरकारी अधिकारियों के साथ मिलकर अपने आवास स्थलों के संरक्षण में जुटे हैं क्योंकि इसी से हो दीर्घकाल में उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है। सरिस्का बाघ रिजर्व में राजस्थान के गाँवों के लोग वन्य जीव रक्षण अधिनियम के तहत वहाँ से खनन कार्य बन्द करवाने के लिए संघर्षरत हैं। कई क्षेत्रों में तो लोग स्वयं वन्य जीव आवासों की रक्षा कर रहे हैं और सरकार की ओर से हस्तक्षेप भी स्वीकार नहीं कर रहे हैं। राजस्थान के अलवर जिले में 5 गाँवों के लोगों ने तो ।, 200 हेक्टेयर वन भूमि भैरोंदेव डाकव 'सोंचुरी' घोषित कर दी जिसके अपने ही नियम कानून है; जो शिकार वर्जित करते हैं तथा बाहरी लोगों की घुसपैठ से यहाँ के वन्य जीवन को बचाते हैं।

पवित्र पेड़ों के झुरमट विविध और दुर्लभ जातियों की संपत्ति

प्रकृति की पूजा सदियों पुराना जनजातीय विश्वास है. जिसका आवार प्रकृति के हर रूप की रक्षा करन है। इन्हीं विश्वसमें ने विभिन्न वर्ग को मूल एवं कौमार्य रूप में बचा कर रखा है। जिन्हें पवित्र पेड़ों के झुरमुट (देवी-देवताओं के वन) कहते हैं। बनों के इन भागों में या तो बनों के ऐसे बड़े भागों में स्थानीय लोग ही घुसतं तथा न ही किसी और को छेड़छाड़ करने देते।

हिमालय में प्रसिद्ध चिपको आंदोलन कई क्षेत्रों में वन कटाई रोकने में ही कामयाब नहीं रहा अपितु यह भी दिखाया कि स्थानीय पौधों को जातियों को प्रयोग करके सामुदायिक वनीकरण अभियान को सफल बनाया जा सकता है। पारंपरिक संरक्षण तरीकों को पुनर्जीवित अथवा परिस्थिकी कृषि के नए तरीकों का विकास अब व्यापक हो गया है। टिहरी में किसानों का बीज बचाओ आंदोलन और नवदानय ने दिखा दिया है कि रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग के बिना भी विविध फसल उत्पादन द्वारा आर्थिक रूप से व्यवहार्य कृषि उत्पादन संभव है।

भारत में संयुक्त वन प्रबंधन कार्यक्रम क्षरित वनों के प्रबंध और पुनर्निर्माण में स्थानीय समुदायों की भूमिका के महत्त्व को उजागर करते हैं। औपचारिक रूप में इन कार्यक्रमों की शुरुआत 1988 में हुई जब उड़ीसा राज्य ने संयुक्त वन प्रबंधन का पहला प्रस्ताव पास किया। वन विभाग के अतर्गत 'सयुक्त वन प्रबधन' क्षरित वनों के बचाव के लिए कार्य करता है और इसमें गाँव के स्तर पर संस्थाएँ बनाई जाती है जिसमें ग्रामीण और वन विभाग के अधिकारी संयुक्त रूप में कार्य करते हैं। इसके बदले ये समुदाय मध्य स्तरीय लाभ जैसे गैर-इमारती वन उत्पादों के हकदारी होते हैं तथा सफल संरक्षण से प्राप्त इमारती लकड़ी लाभ में भी भागीदार होते हैं।

भारत में पर्यावरण के विनाश और पुनर्निमांण की क्रियाशीलताओं से सीख मिलती है कि स्थानीय समुदायों को हर जगह प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन में शामिल करना चाहिए। परंतु स्थानीय समुदायों को फैसले लेने को प्रक्रिया में मुख्य भूमिका में आने में अभी देर है। अतः वे हो विकास क्रियाएँ मान्य होनी चाहिए जो जनमानस पर केंद्रित हों. पर्यावरण हितैषी हो और आर्थिक रूप से प्रतिफलित हों।

"पेड़ एक विशेष असीमित दयालु और उदारपूर्ण जीवभारी हैं जो अपने सतत् पोषण के लिए कोई माँग नहीं करता और दानशीलतापूर्वक अपने जीवन की क्रियाओं को भेंट करता है। यह सभी की रक्षा करता है और स्वप पर कुल्हाड़ी चलाने वाले विनाशक को भी छाया प्रदान करता है।"

जल संसाधन

तीन चौथाई धरातल जल से ढका हुआ है, परंतु इसमें प्रयोग में लाने योग्य अलवणीय जल का अनुपात बहुत कम है। यह अलवणीय जल हमें सतही अपवाह और भौमजल स्रोत से प्राप्त होता है जिनका लगातार नवीकरण और पुनर्भरण जलीय चक्र द्वारा होता रहता है। सारा जल जलीय चक्र में गतिशील रहता है जिससे जल नवीकरण सुनिश्चित होता है।

आप को आश्चर्य हो रहा होगा कि जब पृथ्वी का तीन-चौथाई भाग जल से घिरा है और जल एक नवीकरण योग्य संसाधन है तब भी विश्व के अनेक देशों और क्षेत्रों में जल की कमी कैसे है? ऐसी भविष्यवाणी क्यों की जा रही है कि 2025 में 20 करोड़ लोग जल की नितांत कमी झेलेंगे?

जल कुछ तथ्य और आँकड़े

विश्व में जल के कुल आयतन का 96.5 6.5 प्रतिशत भाग महासागरों में पाया जाता है और केवल 2.5 प्रतिशत अलवणीय जल है। विश्व में अलवणीय जल का लगभग 70 प्रतिशत भाग अंटार्कटिका, ग्रीनलैंड और पर्वतीय क्षेत्रों में बर्फ की चादरों और हिमनदों के रूप में मिलता है. जबकि 30 प्रतिशत से थोड़ा-सा कम भौमजल के जलभृत (aquifer) के रूप में पाया जाता है।

भारत विश्व की वृष्टि का 4 प्रतिशत हिस्सा प्राप्त करता है और प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष जल उपलब्धता के संदर्भ में विश्व में इसका 133 वाँ स्थान है।

भारत में कुल नवीकरण योग्य जल संसाधन 1,897 वर्ग किमी. प्रति वर्ष अनुमानित है।

भविष्यवाणी है कि 2025 तक भारत का एक बड़ा हिस्सा विश्व के अन्य देशों और क्षेत्रों की तरह जल की नितान्त कमी महसूस करेगा।- स्रोत- संयुक्त राष्ट्र विश्व जल विकास रिपोर्ट, 2003

जल दुर्लभता और जल संरक्षण एवं प्रबंधन की आवश्यकता

जल के विशाल भंडार और इसके नवीकरण योग्य गुणों के होते हुए यह सोचना भी मुश्किल है कि हमें जल दुर्लभता का सामना करना पड़ सकता है। जैसे ही हम जल की कमी की बात करते हैं तो हमें तत्काल ही कम वर्षा वाले क्षेत्रों या सूखाग्रस्त इलाकों का ध्यान आता है। हमारे मानस पटल पर तुरंत राजस्थान के मरुस्थल और जल से भरे मटके संतुलित करती हुई और जल भरने के लिए लंबा रास्ता तय करती पनिहारिनों के चित्र चित्रित हो जाते हैं। यह सच है कि वर्षा में वार्षिक और मौसमी परिवर्तन के कारण जल संसाधनों की उपलब्धता में समय और स्थान के अनुसार विभिन्नता है। परंतु अधिकतया जल की कमी इसके अतिशोषण, अत्यधिक प्रयोग और समाज के विभिन्न वर्गों में जल के असमान वितरण के कारण होती है।

स्वीडेन के एक विशेषज्ञ, फाल्कन मार्क के अनुसार बत्त की कमी तब होती है जब प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन 1000 घन मीटर से कम जल उपलब्ध होता है।

क्या यह संभव है कि किसी क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में जल संसाधन होने के बावजूद भी वहाँ जल की दुर्लभता हो? हमारे कई शहर इसके उदाहरण है। अतः जल दुर्लभता अत्यधिक और बढ़ती जनसंख्या और उसके परिणामस्वरूप जल की बढ़ती माँग और उसके असमान वितरण का परिणाम हो सकता है। जल. अधिक जनसंख्या के लिए घरेलू उपयोग में ही नहीं बल्कि अधिक अनाज उगाने के लिए भी चाहिए। अतः अनाज का उत्पादन बढ़ाने के लिए जल संसाधनों का अतिशोषण करके ही सिंचित क्षेत्र बढ़ाया जा सकता है और शुष्क ऋतु में भी खेती की जा सकती है।

आपने टेलीविजन विज्ञापनों में देखा होगा कि बहुत से किसानों के खेतों पर अपने निजी कुएँ और नलकूप है जिनसे सिचाई करके वे उत्पादन बढ़ा रहे है। परंतु आपने सोचा है कि इसका परिणाम क्या हो सकता है? इसके कारण भीम जलस्तर नीचे गिर सकता है और लांगों के लिए जल की उपलब्धता में कमी हो सकती है और भोजन सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है।

स्वतंत्रता के बाद भारत तेजी से औद्योगीकरण और शहरीकरण हुआ और विकास के अवसर प्राप्त हुए। आजकल हर जगह बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ (MNCs) बड़े औद्योगिक घरानों के रूप में फैली हुई है। उद्योगों की बढ़ती हुई संख्या के कारण अलवणीय जल ससाधनों पर दबाव बढ़ रहा है। उद्योगों को अत्यधिक जल के अलावा उनको चलाने के लिए ऊर्जा की भी आवश्यकता होती है और इसकी काफी हद तक पूर्ति जल विद्युत से होती है। वर्तमान समय में भारत में कुल विद्युत का लगभग 22 प्रतिशत भाग जल विद्युत से प्राप्त होता है। इसके अलावा शहरों की बढ़ती संख्या और जनसंख्या तथा शहरी जीवन शैली के कारण न केवल जल और ऊर्जा की आवश्यकता में बढ़ोतरी हुई है अपितु इनसे सबंधित समस्याएँ और भी गहरी हुई हैं। यदि आप शहरी आवास समितियों या कालोनियों पर नत्तर डालें तो आप पाएँगे कि उनके अंदर जल पूर्ति के लिए नलकूप स्थापित

किए गए हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि शहरों में जल संसाधनों का अति शोषण हो रहा है और इनकी कमी होती जा रही है।

अब तक हमने जल दुर्लभता के मात्रात्मक पहलू की ही बात की है। आओ. हम ऐसी स्थिति के बारे में विचार करें जहाँ लोगों की आवश्यकता के लिए काफ़ी जल संसाधन हैं. परंतु फिर भी इन क्षेत्रों में जल की दुर्लभता है। यह दुर्लभता जल की खराब गुणवत्ता के कारण हो सकती है। पिछले कुछ वर्षों से यह चिता का विषय बनता जा रहा है कि

लोगों की आवश्यकता के लिए प्रचुर मात्रा में जल उपलब्ध होने के बावजूद यह घरेलू और औद्योगिक अपशिष्टयें, रसायनों, कीटनाशको और कृषि में प्रयुक्त उर्वरकों द्वारा प्रदूषित है और मानव उपयोग के लिए खतरनाक है।

भारत की नदियाँ विशेषकर छोटी सरिताएँ जहरीली धाराओं में परिवर्तित हो गई है और बड़ी नदियाँ जैसे गया और यमुना कोई भी शुद्ध नहीं है। बढ़ती जनसंख्या, कृषि आधुनिकीकरण, नगरीकरण और औद्योगीकरण का भारत की नदियों पर अत्यधिक दुष्प्रभाव है और हर दिन गहराता जा रहा है... इससे संपूर्ण जीवन खतरे में है- स्रोत द सिटीजन्स फिफ्थ रिपोर्ट, सी एस ई. 1999

आपने अनुभव कर लिया होगा कि समय की माँग है कि हम अपने जल संसाधनों का संरक्षण और प्रबंधन करें, स्वयं को स्वास्थ्य संबंधी खतरों से बचाएँ, खाद्यान्न सुरक्षा, अपनी आजीविका और उत्पादक क्रियाओं की निरंतरता को सुनिश्चित करें. और हमारे प्राकृतिक पारितत्रों को निम्नीकृत (degradation) होने से बचाएँ। जल संसाधनों के अतिशोषण और कुप्रबंधन से इन संसाधनों का हास हो सकता है और पारिस्थितिकी संकट की समस्या पैदा हो सकती है जिसका हमारे जीवन पर गंभीर प्रभाव हो सकता है।

बहु-उद्देशीय नदी परियोजनाएँ और समन्वित

जल संसाधन प्रबंधन

हम जल का संरक्षण और प्रबंधन कैसे करें? पुरातत्त्व वैज्ञानिक और ऐतिहासिक अभिलेख/दस्तावेज (record) बताते हैं कि हमने प्राचीन काल से सिंचाई के लिए पत्थरों और मलबे से वाँध, जलाशय अथवा झीलों के तटबंध और नहरों जैसी उत्कृष्ट जलीय कृतियाँ बनाई हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि हमने यह परिपाटी आधुनिक भारत में भी जारी रखी है और अधिकतर नदियों के बेसिनों में बाँध बनाए हैं।

प्राचीन भारत में जलीय कृतियाँ

इंसा में एक शताब्दी पहले इलाहाबाद के नजदीक त्रिगवेरा में गंगा नदी की बाड़ के जत्त को संरक्षित करने के लिए एक उत्कृष्ट जल संग्रहण तत्र बनाया गया था।

चन्द्रगुप्त मौर्य के समय बृहत् स्तर पर बाँध, झील और सिंचाई तंत्री का निर्माण करवाया गया।

कलिंग (उड़ीसा), नागार्जुनकोडा (आंध्र प्रदेश) बेन्नूर (कर्नाटक) और कोल्हापुर (महाराष्ट्र) में उत्कृष्ट सिंचाई तंत्र होने के सबूत मिलते हैं।

अपने समय की सबसे बड़ी कृत्रिम झीलों में से एक, भोपाल झील 11वीं शताब्दी में बनाई गई।

14 वीं शताब्दी में शन्तुतमिश ने दिल्ली में सिरी फोर्ट क्षेत्र में जल की सप्लाई के लिए ही खास (एक विशिष्ट तालाब) बनवाया।

स्रोत डाईंग विजडम, सी एस ई, 1997

बाँध क्या हैं और वे हमें जल संरक्षण और प्रबंधन में कैसे सहायक हैं? परम्परागत बाँध, नदियों और वर्षा जल को इकट्ठा करके बाद में उसे खेतों की सिंचाई के लिए उपलब्ध करवाते थे। आज कल बाँध सिर्फ सिंचाई के लिए नहीं बनाए जाते अपितु उनका उद्देश्य विद्युत उत्पादन, घरेलू और औद्योगिक उपयोग, जल आपूर्ति, बाढ़ नियंत्रण, मनोरंजन, आंतरिक नीचालन और मछली पालन भी है। इसलिए वाँधों को बहुउद्देशीय परियोजनाएँ भी कहा जाता है जहाँ एकत्रित जल के अनेकों उपयोग समन्वित होते हैं। उदाहरण के तौर पर सतलुज-ब्यास बेसिन में भाखड़ा नांगल परियोजना जल विद्युत उत्पादन और सिंचाई दोनों के काम में आती है। इसी प्रकार महानदी बेसिन में हीराकुड परियोजना जलसंरक्षण और बाढ़ नियंत्रण का समन्वय है।

बाँध बहते जल को रोकने, दिशा देने या बहाव कम करने करने के लिए खड़ी की गई बाधा है जो आमतौर पर जलाशय झील अथवा जलभरण बनाती हैं। बाँध का अर्थ जलाशय से लिया जात है न कि इसके बाँचे से। अधिकतर बाँपों में एक वलयाँ हिस्स होत है जिसके ऊपर से या अन्दर से जल रुक-रुक कर या लगतार बहता है। बाँधों का वर्गीकरण उनकी सरं चना और उद्देश्य या ऊँचाई के अनुसार किया जाता है। संरचना और उनमें प्रयुक्त परायों के आकार पर बाँधों को लकड़ी के बाँध, तटबंध चाँप या पाका बंद के अलवा कई उपवर्गों में बाँटा जा सकता है। ऊंचाई के अनुसार बाँधों को बड़े बाँ और मुख्य बाँधा नीचे चाँध, मध्यम बाँध और उच्च बाँवों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

स्वतंत्रता के बाद शुरू की गई समन्वित जल संसाधन प्रबंधन उपागम पर आधारित बहुउद्देशीय परियोजनाओं को उपनिवेशन काल में बनी बाधाओं को पार करते हुए देश को विकास और समृद्धि के रास्ते पर ले जाने वाले वाहन के रूप में देखा गया। जवाहरलाल नेहरू गर्व से बाँधों को 'आधुनिक भारत के मंदिर' कहा करते थे। उनका मानना था कि इन परियोजनाओं के चलते कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था, औद्योगीकरण और नगरीय अर्थव्यवस्था समन्वित रूप से विकास करेगी।

पिछले कुछ वर्षों में बहुउद्देशीय परियोजनाएँ और बड़े बाँध कई कारणों से परिनिरीक्षण और विरोध के विषय बन गए हैं। नदियों पर बाँध बनाने और उनका बहाव नियंत्रित करने से उनका प्राकृतिक बहाव अवरुद्ध होता है, जिसके कारण तलछट बहाव कम हो जाता है और अत्यधिक तलछट जलाशय की तली पर जमा होता रहता है जिससे नदी का तल अधिक चट्टानी हो जाता है. और नदी जलीय जीव आवासों में भोजन की कमी हो जाती है। बाँध नदियों को टुकड़ों में बाँट देते हैं जिससे विशेषकर अंडे देने की ऋतु में जलीय जीवों का नदियों में स्थानांतरण अवरुद्ध हो जाता है। बाढ़ के मैदान में बनाए जाने वाले जलाशयों द्वारा वहाँ मौजूद वनस्पति और मिट्टियाँ जल में डूब जाती हैं जो कालांतर में अपघटित हो जाती है।

बहुउद्देशीय परियोजनाएँ और बड़े बाँध नए सामाजिक आंदोलनों जैसे 'नर्मदा बचाओ आंदोलन' और 'टिहरी बाँध आंदोलन' के कारण भी बन गए हैं। इन परियोजनाओं का विरोध मुख्य रूप से स्थानीय समुदायों के वृहद स्तर पर विस्थापन के कारण है। आमतौर पर स्थानीय लोगों को उनकी जमीन, आजीविका और संसाधनों से लगाव एवं नियंत्रण देश की बेहतरी के लिए कुर्बान करना पडता है। इसलिए, अगर स्थानीय लोगों को इन परियोजनाओं का लाभ नहीं मिल रहा है तो किसको मिल रहा है? शायद जमींदारों और बड़े किसानों को या उद्योगपतियों

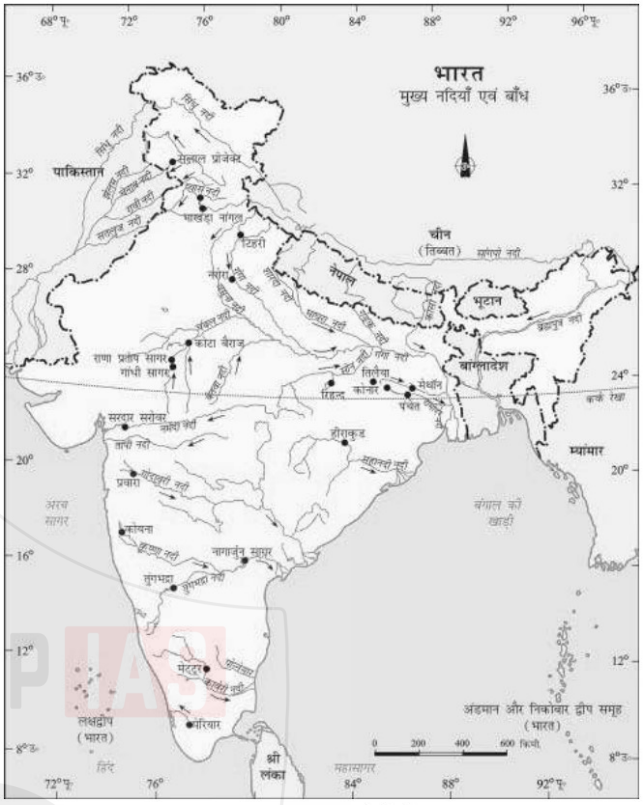
और कुछ नगरीय केंद्रों को। गाँव के भूमिहीनों को लीजिए, क्या वे वास्तव में ऐसी परियोजनाओं से लाभउठाते हैं?

नर्मदा क्याओ आदोलन एक गैर सरकारी संगठन (एन जी ओ) है जो जनजातीय लोगों, किसानों, पर्यावरणविदों और मानवाधिकार कार्यकर्ताओं को गुजरात में नर्मदा नदी पर सरदार सरोवर बाँध के विरोध में लामबंद करता है। मूल रूप से शुरू में यहाँ आंदोलन जगेलों के कैंच के पानी में डूबने जैसे पर्यावरणीय मुद्दों पर केंद्रित या हाल ही में इस आदोलन का लक्ष्य बाँध से विस्थापित गरीय तंगों को सरकार से संपूर्ण पुनर्वास सुविधाएँ दिखाना हो गया है।

संगों ने सोचा कि उनकी यातनाएँ व्यर्थ नहीं जाएगी.. विस्थापन का शोक स्वीकार किया यह विश्वास करके की सिचाई के प्रसार से वे मालामाल हो जाएँगे। प्रायः रिहद के उत्तरजीवियों ने हमें बताया कि उन्होंने अपने कष्टों को देश के लिए कुर्बानों के रूप में स्वीकार किया। परंतु अब तोस साल के कई अनुगन के बाद जब उनकी आजीविका और अधिक जोखिमपूर्ण हो गई है पूछतं जा रहे हैं "हमें ही देश के लिए कुर्बानी देने के लिए क्यों चुना गया?"

स्रोत एस. शर्मा बेलो आफ र रिवर टाईबल कनफ्लिक्ट्स ओवर डेवलपमेंट इन नर्मदा वेली, ए बायोस्कर, 1995 से उद्धृत।

सिंचाई ने कई क्षेत्रों में फसल प्रारूप परिवर्तित कर दिया है जहाँ किसान जलगहन और वाणिज्य फसलों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। इससे मृदाओं के लवणीकरण जैसे गंभीर पारिस्थितिकीय परिणाम हो सकते हैं। इसी दौरान इसने अमीर भूमि मालिकों और गरीब भूमिहीनों में सामाजिक दूरी बढ़ाकर सामाजिक परिदृश्य बदल दिया है। जैसा कि हम देख सकते हैं कि बाँध उसी जल के अलग-अलग उपयोग और लाभ चाहने वाले लोगों के बीच संघपं पैदा करते हैं। गुजरात में साबरमती बेसिन में सूखे के दौरान नगरीय क्षेत्रों में अधिक जल आपूर्ति देने पर परेशान किसान उपद्रव पर उत्तारू हो गए। बहुद्देशीय परियोजनाओं के लागत और लाभ के बँटवारे को लेकर अंतर्राज्यीय झगड़े आम होते जा रहे हैं।



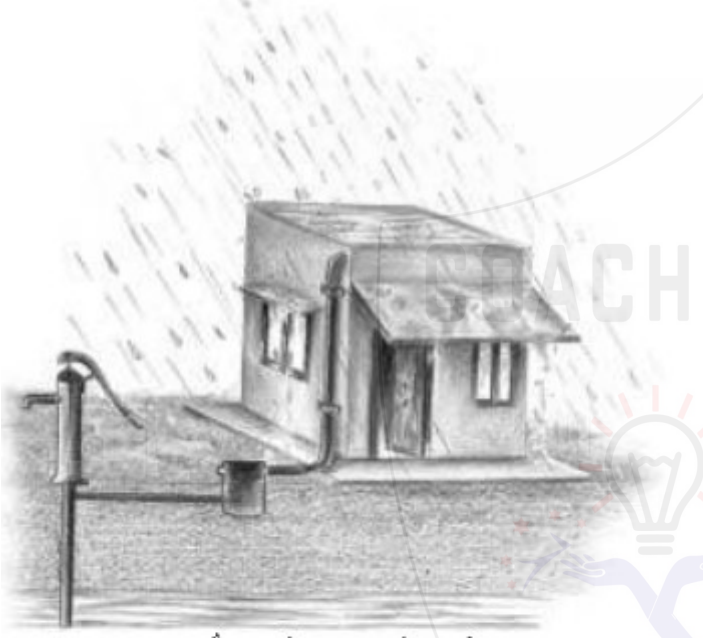
भारत – मुख्य नदियाँ और बाँध

नदी परियोजनाओं पर उठी अधिकतर आपत्तियाँ उनके उद्देश्यों में विफल हो जाने पर हैं। यह एक विडंबना ही है कि जो बाँध बाढ़ नियंत्रण के लिए बनाए जाते हैं उनके जलाशयों में तलछट जमा होने से वे बाढ़ आने का कारण बन जाते हैं। अत्यधिक वर्षा होने की दशा में तो बड़े बाँध भी कई बार बाढ़ नियंत्रण में असफल रहते हैं। आपने पढ़ा होगा कि वर्ष 2006 में महाराष्ट्र और गुजरात में भारी वर्षा के दौरान बाँधों से छोड़े गए जल की वजह से बाढ़ की स्थिति और भी विकट हो गई। इन बाढ़ों से न केवल जान और माल का नुकसान हुआ अपितु बृहत् स्तर पर मृदा अपरदन भी हुआ। बाँध के जलाशय पर तलछट जमा होने का अर्थ यह भी है कि यह तलछट जो कि एक प्राकृतिक उर्वरक है बाढ़ के मैदानों तक नहीं पहुँचती जिसके कारण भूमि निम्नीकरण की समस्याएँ बढ़ती हैं। यह भी माना जाता है कि बहुउद्देशीय योजनाओं के कारण भूकंप आने की संभावना भी बढ़ जाती है और अत्यधिक जल के उपयोग से जल-जनित बीमारियाँ, फसलों में कीटाणु-जनित बीमारियाँ और प्रदूषण फैलते हैं।

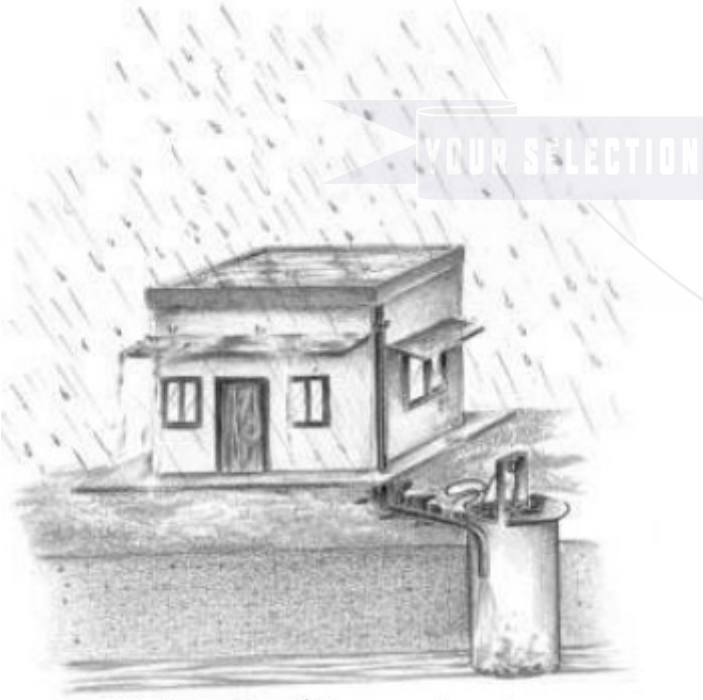
वर्षा जल संग्रहण

बहुत से लोगों का मानना है कि बहुउद्देशीय परियोजनाओं के अलाभप्रद असर और उन पर उठे विवादों के चलते वर्षाजल संग्रहण तंत्र इनके सामाजिक-आर्थिक और पारिस्थितिक तौर पर व्यवहार्थ विकल्प हो सकते हैं। प्राचीन भारत में उत्कृष्ट जलीय निर्माणों के साथ-साथ जल संग्रहण ढाँचे भी पाए जाते थे। लोगों को वर्षा पद्धति और मृदा के गुणों के बारे में गहरा ज्ञान था। उन्होंने स्थानीय पारिस्थितिकीय परिस्थितियों और उनकी जल आवश्यकतानुसार वर्षाजल, भौमजल, नदी जल और बाढ़ जल संग्रहण के अनेक तरीके विकसित कर लिए थे। पहाड़ी और पर्वतीय

क्षेत्रों में लोगों ने 'गुल' अथवा 'कुल' (पश्चिमी हिमालय) जैसी वाहिकाएँ, नदी की धारा का रास्ता बदलकर खेतों में सिंचाई के लिए बनाई हैं। पश्चिमी भारत, विशेषकर राजस्थान में पीने का जल एकत्रित करने के लिए 'छत वर्षा जल संग्रहण' का तरीका आम था। पश्चिम बंगाल में बाढ़ के मैदान में लोग अपने खेतों की सिंचाई के लिए बाढ़ जल वाहिकाएँ बनाते थे। शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में खेतों में वर्षा जल एकत्रित करने के लिए गड्ढे बनाए जाते थे ताकि मृदा को सिंचित किया जा सके और संरक्षित जल को खेती के लिए उपयोग में लाया जा सके। राजस्थान के जिले जैसलमेर में 'खादीन' और अन्य क्षेत्रों में 'जोहड़' इसके उदाहरण हैं।



(अ) हैंडपंप के माध्यम से पुनर्भरण



(ब) बेकार पड़े कुएँ के माध्यम से पुनर्भरण

चित्र 3.4 – छत वर्षाजल संग्रहण

पी वी सी पाइप का इस्तेमाल करके छत का वर्षाजल एकत्रित किया जाता है।

रेत और इंट प्रयोग करके जल का छनन (filter) किया जाता है।

भूमिगत पाइप के द्वारा जल हौज तक ले जाया जाता है जहाँ से

इसे तुरंत प्रयोग किया जा सकता है। हौज से अतिरिक्त जल कुएँ तक ले जाया जाता है। कुएँ का बल भूमिगत जल का पुनर्भरण करता है। बाद में इस जल का उपयोग किया जा सकता है।

राजस्थान के अर्ध-शुष्क और शुष्क क्षेत्रों विशेषकर बीकानेर, फलोदी और बाड़मेर में, लगभग हर घर में पीने का पानी संग्रहित करने के लिए भूमिगत टैंक अथवा 'टाँका' हुआ करते थे। इसका आकार एक बड़े कमरे जितना हो सकता है। फलोदी में एक घर में 6.1 मीटर गहरा, 4.27 मीटर लंबा और 2.44 मीटर चौड़ा टाँका था। टांका यहाँ सुविकसित छत वर्षाजल संग्रहण तंत्र का अभिन्न हिस्सा होता है जिसे मुख्य घर या आँगन में बनाया जाता था। वे घरों की ढलवाँ छतों से पाइप द्वारा जुड़े हुए थे। छत से वर्षा का पानी इन नलों से होकर भूमिगत टाँका तक पहुँचता था जहाँ इसे एकत्रित किया जाता था। वर्षों का पहला जल छत और नलों को साफ करने में प्रयोग होता था और उसे संग्रहित नहीं किया जाता था। इसके बाद होने वाली वर्षा का जल संग्रह किया जाता था।

टाँका में वर्षा जल अगली वर्षा ऋतु तक संग्रहित किया जा सकता है। यह इसे जल की कमी वाली ग्रीष्म ऋतु तक पीने का जल उपलब्ध करवाने वाला जल स्रोत बनाता है। वर्षाजल अथवा 'पालर पानी' जैसा कि इसे इन क्षेत्रों में पुकारा जाता है, प्राकृतिक जल का शुद्धतम रूप समझा जाता है। कुछ घरों में तो टाँको के साथ भूमिगत कमरे भी बनाए जाते हैं क्योंकि जल का यह स्रोत इन कमरों को भी ठंडा रखता था जिससे ग्रीष्म ऋतु में गर्मी से राहत मिलती है।

यह दुख की बात है कि आज पश्चिमी राजस्थान में छत वर्षाजल संग्रहण की रीति इंदिरा गांधी नहर से उपलब्ध बारहमासी पेयजल के कारण कम होती जा रही है। हालाँकि कुछ घरों में टाँकों की सुविधा अभी भी है क्योंकि उन्हें नल के पानी का स्वाद पसन्द नहीं है। सौभाग्य से आज भी भारत के कई ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में जल सरेक्षण और संग्रहण का यह तरीका प्रयोग में लाया जा रहा है। कर्नाटक के मैसूर जिले में स्थित एक सुदूर गाँव गंडाथुर में ग्रामीणों ने अपने घर में जल आवश्यकता पूर्ति छत वर्षाजल संग्रहण की व्यवस्था की हुई है। गाँव के लगभग 200 घरों में यह व्यवस्था है और

बाँस ड्रिप सिंचाई प्रणाली

मेघालय में नदियों व झरनों के जल को बाँस द्वारा बने पाइप द्वारा एकत्रित करके 200 वर्ष पुरानी विधि प्रचलित है। लगभग 18 से 20 लीटर सिचाई पानी बाँस पाइप में आ जाता है तथा उसे सैकड़ों मीटर की दूरी तक ले जाया जाता है। अंत में पानी का बहाव 20 से 80 बूँद प्रति मिनट तक घटाकर पौधे पर छोड़ दिया जाता है।

चित्र। पहाड़ी शिखरों पर सदानीरा झरनों की दिशा परिवर्तित करने के लिए बाँस के पाइपों का उपयोग किया जाता है। इन पाइपों के माध्यम से गुरुत्वाकर्षण द्वारा जल पहाड़ के निचले स्थानों तक पहुंचाया जाता है।

चित्र 2 तथा 3 बाँस से निर्मित चैनल से पौधे के स्थान तक जल का बहाव परिवर्तित किया जाता है। पौधे तक बाँस पाइप से बनाई व बिछाई गई विभिन्न जल शाखाओं में जल वितरित किया जाता है। पाइपों में जल प्रवाह इनकी स्थितियों में परिवर्तन करके नियंत्रित किया जाता है।

चित्र 4 यदि पाइपों को सड़क पार ले जाना हो तो उन्हें भूमि पर ऊँचाई से ले जाया जाता है।

चित्र 5 व 6 संकुचित किये हुए चैनल संक्शन और पथांतरण इकाई जल सिंचाई के अंतिम चरण में प्रयुक्त की जाती है। अंतिम चैनल सेक्शन से पौधे की जड़ों के निकट जल गिराया जाता है।

इस गाँव ने वर्षा जल संपन्न गाँव की ख्याति अर्जित की है। यहाँ प्रयोग किए जा रहे वर्षा जल संग्रहण ढाँचों के बारे में अधिक जानकारी के लिए चित्र 3.4 को देखें। इस गाँव में हर वर्ष लगभग 1.000 मिलीमीटर वर्षा होती है और 10 भराई के साथ यहाँ संग्रहण दक्षता 80 प्रतिशत है। यहाँ हर घर लगभग प्रत्येक वर्ष 50.000 मीटर जल का संग्रह और उपयोग कर सकता है। 20 घरों द्वारा हर वर्ष लगभग 1000.000 लीटर जल एकत्रित किया जाता है।

एक रोचक तथ्य

तमिलनाडु देश का एक मात्र राज्य है जहाँ पूरे राज्य में हर घर में छत वर्षाजल संग्रहण ढाँचों का बनाना आवश्यक कर दिया गया है। इस संदर्भ में दोषी व्यक्तियों पर कानूनी कार्यवाही हो सकती है।

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

कृषि

कृषि की दृष्टि से भारत एक महत्त्वपूर्ण देश है। इसकी दो-तिहाई जनसंख्या कृषि कार्यों में संलग्न है। कृषि एक प्राथमिक क्रिया है जो हमारे लिए अधिकांश खाद्यान्न उत्पन्न करती है। खाद्यान्नों के अतिरिक्त यह विभिन्न उद्योगों के लिए कच्चा माल भी पैदा करती है। इसके अतिरिक्ति, कुछ उत्पादों जैसे चाय, कॉफी, मसाले इत्यादि का भी निर्यात किया जाता है।

कृषि के प्रकार

कृषि हमारे देश की प्राचीन आर्थिक क्रिया है। पिछले हजारों वर्षों के दौरान भौतिक पर्यावरण, प्रौद्योगिकी और सामाजिक-सांस्कृतिक रीति-रिवाजों के अनुसार खेती करने की विधियों में सार्थक परिवर्तन हुआ है। जीवन निर्वाह खेती से लेकर वाणिज्य खेती तक कृषि के अनेक प्रकार हैं। वर्तमान समय में भारत के विभिन्न भागों में निम्नलिखित प्रकार के कृषि तंत्र अपनाए गए हैं।

प्रारंभिक जीविका निर्वाह कृषि

इस प्रकार की कृषि भारत के कुछ भागों में अभी भी की जाती है। प्रारंभिक जीवन निर्वाह कृषि भूमि के छोटे टुकड़ों पर आदिम कृषि औजारों जैसे लकड़ी के हल, डाओ (dao) और खुदाई करने वाली छड़ी तथा परिवार अथवा समुदाय श्रम की मदद से की जाती है। इस प्रकार की कृषि प्रायः मानसून, मृदा की प्राकृतिक उर्वरता और फसल उगाने के लिए अन्य पर्यावरणीय परिस्थितियों की उपुयक्तता पर निर्भर करती है।

यह 'कर्तन दहन प्रणाली' (slash and burn) कृषि है। किसान जमीन के टुकड़े साफ करके उन पर अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए अनाज व अन्य खाद्य फसलें उगाते हैं। जब मृदा की उर्वरता कम हो जाती है तो किसान उस भूमि के टुकड़े से स्थानांतरित हो जाते हैं और कृषि के लिए भूमि का दूसरा टुकड़ा साफ करते हैं। कृषि के इस प्रकार के स्थानांतरण से प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा मिट्टी की उर्वरता शक्ति बढ़ जाती है। चूँकि किसान उर्वरक अथवा अन्य आधुनिक तकनीकों का प्रयोग नहीं करते, इसलिए इस प्रकार की कृषि में उत्पादकता कम होती है। देश के विभिन्न भागों में इस प्रकार की कृषि को विभिन्न नामों से जाना जाता है।

उत्तर-पूर्वी राज्यों असम, मेघालय, मिजोरम और नागालैंड में इसे 'झूम' कहा जाता है; मणिपुर में पामलू (pamlou) और छत्तीसगढ़ के बस्तर जिले और अंडमान निकोबार द्वीप समूह में इसे 'दीपा' कहा जाता है।

'झूम' 'कर्तन दहन प्रणाली' (slash and burn) कृषि को मैक्सिको और मध्य अमेरिका में 'मिल्पा' वेनेजुएला में 'कोनुको', ब्राजील में 'रोका', मध्य अफ्रीका में 'मसीले', इंडोनेशिया में 'लदांग' और वियतनाम में 'रे' के नाम से जाना जाता है।

भारत में भी यह प्रारंभिक किस्म की खेती अनेक नामों से जानी जाती है. जैसे मध्य प्रदेश में 'बेबर या दहिया, आंध्रप्रदेश में 'पांडु' अथवा 'पेंडा' उड़ीसा में 'पामाडाबी' या 'कोमान' या 'बरीगाँ', पश्चिम घाट में 'कुमारी', दक्षिण-पूर्वी राजस्थान में 'वालरें' या 'वाल्टरे', हिमालयन क्षेत्र में 'खिल' झारखंड में 'कुरुवा' और उत्तर पूर्वी प्रदेशों में 'झूम' आदि।

गहन जीविका कृषि

इस प्रकार की कृषि उन क्षेत्रों में की जाती है जहाँ भूमि पर जनसंख्या का दबाव अधिक होता है। यह श्रम-गहन खेती है जहाँ अधिक उत्पादन के लिए अधिक मात्रा में जैव रासायनिक निवेशों और सिंचाई का प्रयोग किया जाता है।

भूस्वामित्व में विरासत के अधिकार के कारण पीढ़ी दर पीढ़ी जांतों का आकार छंटा और अलाभप्रद होत जा रहा है और किसान वैकल्पिक रोजगार न होने के कारण सीमित भूमि से अधिकतम पैदावार लेने की कोशिश करते हैं। अतः कृषि भूमि पर बहुत अधिक दबाव है।

वाणिज्यिक कृषि

इस प्रकार की कृषि के मुख्य लक्षण आधुनिक निवेशों जैसे अधिक पैदावार देने वाले बीज रासायनिक उर्वरकों और कोटनाशकों के प्रयोग से उच्च पैदावार प्राप्त करना है। कृषि के वाणिज्यीकरण का स्तर विभिन्न प्रदेशों में अलग-अलग है। उदाहरण के लिए हरियाणा और पजाय में चावल वाणिज्य को एक फसल है परतु उड़ीसा में यह एक जीविका फसल है।

रोपण कृषि भी एक प्रकार की वाणिज्यिक खेती है। इस प्रकार की खेती में लबे-चौड़े क्षेत्र में एकल फसल बोई जाती है। संपण कृषि, उद्योग और कृषि के बीच एक अतरापृष्ठ (interface) है। रोपण कृषि व्यापक क्षेत्र में की जाती है जो अत्यधिक पूँजी और श्रमिकों की सहायता से की जाती है। इससे प्राप्त सारा उत्पादन उद्योग में कच्चे माल के रूप में प्रयोग होत है।

भारत में चाय, कॉफी, रबड़, गन्ना केला इत्यादि महत्वपूर्ण रोपण फसले हैं। असम और उत्तरी बाल में चाय, कर्नाटक में कॉफी वहाँ की मुख्य रोपण फसले है। चूंकि रोपण कृषि में उत्पादन विक्री के लिए होता है इसलिए इसके विकास में परिवहन और संचार साधन से संबंधित उद्योग और बाजार महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं।

शस्य प्रारूप

आपने भारत की भौतिक विविधताओं और संस्कृतियों की बहुलताओं के सबंध में अध्ययन किया है। ये देश में कृषि पद्धतियों और शस्य प्रारूपों में प्रतिबिंबित होता है। इसीलिए, देश में बोई जाने वाली फसलों में अनेक प्रकार के खाद्यान्न और रेशे वाली फसलें, सब्जियाँ, फल, मसाले इत्यादि

शामिल हैं। भारत में तीन शस्य ऋतुएँ हैं. जो इस प्रकार हैं रबी, खरीफ और जायद।

रबी फसलों को शीत ऋतु में अक्तूबर से दिसंबर के मध्य बोया जाता है और ग्रीष्म ऋतु में अप्रैल से जून के मध्य काटा जाता है। गेहूँ, जौ, मटर, चना और सरसों कुछ मुख्य रबी फसलें हैं। यद्यपि ये फसलें देश के विस्तृत भाग में बोई जाती हैं उत्तर और उत्तरी पश्चिमी राज्य जैसे पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेश गेहूँ और अन्य रबी फसलों के उत्पादन के लिए महत्त्वपूर्ण राज्य हैं। शीत ऋतु में शीतोष्ण पश्चिमी विक्षोभों से होने वाली वर्षा इन फसलों के अधिक उत्पादन में सहायक होती है। [पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और राजस्थान के कुछ भागों में हरित क्रांति की सफलता भी उपर्युक्त रबी फसलों की वृद्धि में एक महत्त्वपूर्ण कारक है।

खरीफ फसलें देश के विभिन्न क्षेत्रों में मानसून के आगमन के साथ बोई जाती हैं और सितंबर-अक्तूबर में काट ली जाती हैं। इस ऋतु में बोई जाने वाली मुख्य फसलों में चावल, मक्का, ज्वार, बाजरा, तुर (अरहर), मूँग, उड़द, कपास, जूट, मूँगफली और सोयाबीन शामिल हैं। चावल की खेती मुख्य रूप से असम, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल और महाराष्ट्र विशेषकर कोंकण तटीय क्षेत्रों, उत्तर प्रदेश और बिहार में की जाती है। पिछले कुछ वर्षों में चावल पंजाब और हरियाणा में बोई जाने वाली महत्त्वपूर्ण फसल बन गई है। असम, पश्चिमी बंगाल और उड़ीसा में धान की तीन फसलें ऑस, अमन और बोरो बोई जाती हैं।

रबी और खरीफ फसल ऋतुओं के बीच ग्रीष्म ऋतु में बोई जाने वाली फसल को जायद कहा जाता है। जायद ऋतु में मुख्यत तरबूज, खरबूजे, खीरे, सब्जियों और चारे की फसलों की खेती की जाती है। गन्ने की फसल को तैयार होने में लगभग एक वर्ष लगता है।

मुख्य फसलें

मिट्टी, जलवायु और कृषि पद्धति में अंतर के कारण देश के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रकार की खाद्य और अखाद्य फसलें उगाई जाती हैं। भारत में उगाई जाने वाली मुख्य फसलें चावल, गेहूँ, मोटे अनाज, दालें, चाय, कॉफी, गन्ना, तिलहन, कपास और जूट इत्यादि हैं।

चावल भारत में अधिकांश लोगों का खाद्यान्न चावल है। हमारा देश चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा चावल उत्पादक देश है। यह एक खरीफ की फसल है जिसे उगाने के लिए उच्च तापमान (25 सेल्सियस से ऊपर) और अधिक आर्द्रता (100 सेमी. से अधिक वर्षा) की आवश्यकता होती है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में इसे सिंचाई करके उगाया जाता है।

चावल उत्तर और उत्तर-पूर्वी मैदानों, तटीय क्षेत्रों और डेल्टाई प्रदेशों में उगाया जाता है। नहरों के जाल और नलकूपों की सघनता के कारण पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और राजस्थान के कुछ कम वर्षा वाले क्षेत्रों में चावल की फसल उगाना संभव हो पाया है।

गेहूं - गेहूँ भारत की दूसरी सबसे महत्त्वपूर्ण खाद्यान्न फसल है। जो देश के उत्तर और उत्तर-पश्चिमी भागों में पैदा की जाती है। रबी की फसल को उगाने के लिए शीत ऋतु और पकने के समय खिली धूप की आवश्यकता होती है। इसे उगाने के लिए समान रूप से वितरित 50 से 75 सेमी. वार्षिक वर्षा की आवश्यकता होती है। देश में गेहूँ उगाने वाले दो मुख्य क्षेत्र हैं उत्तर-पश्चिम में गंगा-सतलुज का मैदान और दक्कन का काली मिट्टी वाला प्रदेश। पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्य प्रदेश के कुछ भाग गेहूँ पैदा करने वाले मुख्य राज्य हैं।

मोटे अनाज (Millets) ज्वार, बाजरा और रागी भारत में उगाए जाने वाले मुख्य मोटे अनाज हैं। यद्यपि इन्हे मोटा अनाज कहा जाता है परंतु इनमें पोषक तत्त्वों की मात्रा अत्यधिक होती है। उदाहरणतया, रागी में प्रचुर मात्रा में लोहा, कैल्शियम, सूक्ष्म पोषक और भूसी मिलती है। क्षेत्रफल और उत्पादन की दृष्टि से ज्वार देश की तीसरी महत्त्वपूर्ण खाद्यान्न फसल है। यह फसल वर्षा पर निर्भर होती है। अधिकतर आर्द्र क्षेत्रों में उगाए जाने के कारण इसके लिए सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। महाराष्ट्र राज्य इस फसल का सबसे बड़ा उत्पादक है तथा कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश इसके अन्य मुख्य उत्पादक राज्य हैं।

बाजरा यह बलुआ और उथली काली मिट्टी पर उगाया जाता है। राजस्थान बाजरा का सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है और उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात और हरियाणा इसके अन्य मुख्य उत्पादक राज्य हैं। रागी शुष्क प्रदेशों की फसल है और यह लाल, काली, बलुआ, दोमट और उथली काली मिट्टी पर अच्छी तरह उगायी जाती है। कर्नाटक रागी का सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है और इसके बाद तमिलनाडु दूसरा प्रमुख उत्पादक राज्य है। इन राज्यों के अलावा हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, सिक्किम, झारखंड और अरुणाचल प्रदेश में भी रागी महत्त्वपूर्ण फसल है।

मक्का यह एक ऐसी फसल है जो खाद्यान्न व चारा दोनों रूप में प्रयोग होती है। यह एक खरीफ फसल है जो 21 सेल्सियस से 27 सेल्सियस तापमान में और पुरानी जलोढ़ मिट्टी पर अच्छी प्रकार से उगायी जाती है। बिहार जैसे कुछ राज्यों में मक्का रबी की ऋतु में भी उगाई जाती है। आधुनिक प्रौद्योगिक निवेशों जैसे उच्च पैदावार देने वाले बीजों, उर्वरकों और सिंचाई के उपयोग से मक्का का उत्पादन बढ़ा है। कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, बिहार, आंध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश मक्का के मुख्य उत्पादक राज्य हैं।

दालें भारत विश्व में दालों का सबसे बड़ा उत्पादक तथा उपभोक्ता देश है। शाकाहारी खाने में दालें सबसे अधिक प्रोटीन दायक होती हैं। तुर (अरहर), उड़द, मूँग, मसूर, मटर और चना भारत की मुख्य दलहनी फसले हैं। क्या आप बता सकते हैं कि इनमें से कौन-सी दालें खरीफ में और कौन-सी दालें रबी में उगाई जाती हैं? दालों को कम नमी की आवश्यकता होती है और इन्हें शुष्क परिस्थितियों में भी उगाया जा सकता है। फलीदार फसलें होने के नाते अरहर को छोड़कर अन्य सभी दालें वायु से नाइट्रोजन

लेकर भूमि की उर्वरता को बनाए रखती हैं। अतः इन फसलों को आमतौर पर अन्य फसलों के आवर्तन (rotating) में बोया जाता है। भारत में मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र और कर्नाटक दाल के मुख्य उत्पादक राज्य हैं।

खाद्यान्नों के अलावा अन्य खाद्य फसलें

गन्ना गन्ना एक उष्ण और उपोष्ण कटिबंधीय फसल है। यह फसल 21 सेल्सियस से 27 सेल्सियस तापमान और 75 सेमी. से 100 सेमी. वार्षिक वर्षा वाली उष्ण और आर्द्र जलवायु में बोई जाती है। कम वर्षा वाले प्रदेशों में सिंचाई की आवश्यकता होती है। इसे अनेक मिट्टियों में उगाया जा सकता है तथा इसके लिए बुआई से लेकर कटाई तक काफी शारीरिक श्रम की आवश्यकता होती है। ब्राजील के बाद भारत गन्ने का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। यह चीनी, गुड़, खांडसारी और शीरा बनाने के काम आता है। उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, बिहार, पंजाब और हरियाणा गन्ना के मुख्य उत्पादक राज्य हैं।

तिलहन - भारत विश्व में सबसे बड़ा तिलहन उत्पादक देश है। देश में कुल बोए गए क्षेत्र के 12 प्रतिशत भाग पर कई तिलहन की फसलें उगाई जाती हैं। मूँगफली, सरसों, नारियल, तिल, सोयाबीन, अरंडी, बिनौला, अलसी और सूरजमुखी भारत में उगाई जाने वाली मुख्य तिलहन फसलें हैं। इनमें से अधिकतर खाद्य हैं और खाना बनाने में प्रयोग किए जाते हैं। परंतु इनमें से कुछ तेल के बीजों को साबुन, प्रसाधन (श्रृंगार का सामान) और उबटन उद्योग में कच्चे माल के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। मूँगफली खरीफ की फसल है तथा देश में मुख्य तिलहनों के कुल उत्पादन का आधा भाग इसी फसल से प्राप्त होता है। आंध्र प्रदेश मूँगफली का सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है और इसके बाद तमिलनाडु, कर्नाटक, गुजरात और महाराष्ट्र दूसरे मुख्य उत्पादक राज्य हैं। अलसी और सरसों रबी की फसलें हैं। तिल उत्तरी भारत में खरीफ की फसल है और दक्षिणी भारत में रबी की। अरंडी, खरीफ और रबी दोनों ही फसल ऋतुओं में बोया जाता है।

चाय चाय की खेती रोपण कृषि का एक उदाहरण है। यह एक महत्त्वपूर्ण पेय पदार्थ की फसल है जिसे शुरुआत में अंग्रेज भारत में लाए थे। आज अधिकतर चाय बागानों के मालिक भारतीय हैं। चाय का पौधा उष्ण और उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु, ह्यूमस और जीवांश युक्त गहरी मिट्टी तथा सुगम जल निकास वाले ढलवाँ क्षेत्रों में भलीभाँति उगाया जाता है। चाय की झाड़ियों को उगाने के लिए वर्ष भर कोष्ण, नम और पालारहित जलवायु की आवश्यकता होती है। वर्ष भर समान रूप से होने वाली वर्षा की बौछारें इसकी कोमल पत्तियों के विकास में सहायक होती हैं।

चाय एक श्रम-सघन उद्योग है। इसके लिए प्रचुर मात्रा में सस्ता और कुशल श्रम चाहिए। इसकी ताजगी बनाए रखने के लिए चाय की पत्तियाँ बागान में ही संसाधित की जाती हैं। चाय के मुख्य उत्पादक क्षेत्रों में असम, पश्चिमी बंगाल में दार्जिलिंग और जलपाईगुड़ी जिलों की पहाड़ियाँ, तमिलनाडु और केरल हैं। इनके अलावा हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, मेघालय, आंध्र प्रदेश और त्रिपुरा आदि राज्यों में भी चाय उगाई जाती है। भारत विश्व का अग्रणी चाय उत्पादक और निर्यातक देश है।

कॉफी भारत विश्व की लगभग 4 प्रतिशत कॉफी का उत्पादन करता है। भारतीय कॉफी अपनी गुणवत्ता के लिए विश्वविख्यात है। हमारे देश में अरेबिका किस्म की कॉफी पैदा की जाती है जो आरम्भ में यमन से लाई गई थी। इस किस्म की कॉफी की विश्व भर में अधिक माँग है। इसकी कृषि की शुरुआत बाबा बूदन पहाड़ियों से हुई और आज भी इसकी खेती नीलगिरि की पहाड़ियों के आस पास कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु में की जाती है। बागवानी फसलें भारत विश्व में सबसे अधिक फलों और सब्जियों का उत्पादन करता है। भारत उष्ण और शीतोष्ण कटिबंधीय दोनों ही प्रकार के फलों का उत्पादक है। भारतीय फलों जिनमें महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल के आम, नागपुर और चेरापूँजी (मेघालय) के संतरे, केरल, मिजोरम, महाराष्ट्र, और तमिलनाडु के केले, उत्तर प्रदेश और बिहार की लीची मेघालय के अनन्नास. अनन्नास, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र के अंगूर अंगूर तथा हिमाचल प्रदेश और जम्मू व कश्मीर के सेब, नाशपाती, खूबानी और अखरोट की विश्वभर में बहुत माँग है।

भारत विश्व की लगभग 13 प्रतिशत सब्जियों का उत्पादन करता है। भारत का मटर फूलगोभी, प्याज, बंदगोभी, टमाटर, बैंगन और आलू उत्पादन में प्रमुख स्थान है।

अखाद्य फसलें

रबड़

रबड़ भूमध्यरेखीय क्षेत्र की फसल है परंतु विशेष परिस्थितियों में उष्ण और उपोष्ण क्षेत्रों में भी उगाई जाती है। इसको 200 सेमी. से अधिक वर्षा और 25 सेल्सियस से अधिक तापमान वाली नम और आर्द्र जलवायु की आवश्यकता होती है।

रबड़ एक महत्त्वपूर्ण कच्चा माल है जो उद्योगों में प्रयुक्त होता है। इसे मुख्य रूप से केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक, अंडमान निकोबार द्वीप समूह और मेघालय में गारो पहाड़ियों में उगाया जाता है। प्राकृतिक रबड़ के उत्पादन में भारत को विश्व में पाँचवा स्थान प्राप्त है।

रेशेदार फसलें कपास, जूट, सन और प्राकृतिक रेशम भारत में उगाई जाने वाली चार मुख्य रेशेदार फसलें हैं। इनमें से पहली तीन मिट्टी में फसल उगाने से प्राप्त होती हैं और चौथा रेशम के कीड़े के कोकून से प्राप्त होता है

जो मलबरी पेड़ की हरी पत्तियों पर पलता है। रेशम उत्पादन के लिए रेशम के कीड़ों का पालन 'रेशम उत्पादन' (Sericulture) कहलाता है।

कपास भारत को कपास के पौधे का मूल स्थान माना जाता है। सूती कपड़ा उद्योग में कपास एक मुख्य कच्चा माल है। कपास उत्पादन में भारत का विश्व में तृतीय स्थान है। दक्कन पठार के शुष्कतर भागों में

काली मिट्टी कपास उत्पादन के लिए उपयुक्त मानी जाती है। इस फसल को उगाने के लिए उच्च तापमान, हल्की वर्षा या सिंचाई, 210 पाला रहित दिन और खिली धूप की आवश्यकता होती है। यह खरीफ की फसल है और इसे पककर तैयार होने में 6 से 8 महीने लगते हैं। महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश कपास के मुख्य उत्पादक राज्य हैं।

जूट जूट को सुनहरा रेशा कहा जाता है। जूट की फसल बाढ़ के मैदानों में जलनिकास वाली उर्वरक मिट्टी में उगाई जाती है जहाँ हर वर्ष बाढ़ से आई नई मिट्टी जमा होती रहती है। इसके बढ़ने के समय उच्च तापमान की आवश्यकता होती है। पश्चिम बंगाल, बिहार, असम और उड़ीसा तथा मेघालय जूट के मुख्य उत्पादक राज्य हैं। इसका प्रयोग बोरियाँ, चटाई, रस्सी, तंतु व धागे, गलीचे और दूसरी दस्तकारी की वस्तुएँ बनाने में किया जाता है। इसकी उच्च लागत के कारण और कृत्रिम रेशों और पैकिंग सामग्री, विशेषकर नाइलोन की कीमत कम होने के कारण, बाजार में इसकी माँग कम हो रही है।

प्रौद्योगिकीय और संस्थागत सुधार

जैसा कि पहले बताया गया है कि भारत में कृषि हजारों वर्षों से की जा रही है। परंतु प्रौद्योगिकी और संस्थागत परिवर्तन के अभाव में लगातार भूमि संसाधन के प्रयोग से कृषि का विकास अवरुद्ध हो जाता है तथा इसकी गति मंद हो जाती है। सिंचाई के साधनों का विकास होने के उपरांत भी देश के एक बहुत बड़े भाग में अभी भी किसान खेती-बाड़ी के लिए मानसून और भूमि की प्राकृतिक उर्वरता पर निर्भर हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण चुनौती है। 60 प्रतिशत से भी अधिक लोगों को आजीविका प्रदान करने वाली कृषि में कुछ गंभीर तकनीकी एवं संस्थागत सुधार लाने की आवश्यकता है। स्वतंत्रता के पश्चात् देश में संस्थागत सुधार करने के लिए जोतों की चकबंदी, सहकारिता तथा जमींदारी आदि समाप्त करने को प्राथमिकता दी गयी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में भूमि सुधार मुख्य लक्ष्य था। भूमि पर पुश्तैनी अधिकार के कारण यह टुकड़ों में बँटती जा रही थी जिसकी चकबंदी करना अनिवार्य था।

भूमि सुधार के कानून तो बने परंतु इनके लागू करने में ढील की गई। 1960 और 1970 के दशकों में भारत सरकार ने कई प्रकार के कृषि सुधारों की शुरुआत की। पैकेज टेक्नोलॉजी पर आधारित हरित क्रांति तथा श्वेत क्रांति (ऑपरेशन फ्लड) जैसी कृषि सुधार के लिए कुछ रणनीतियाँ आरंभ की गई थी। परंतु इसके कारण विकास कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित रह गया। इसलिए 1980 तथा 1990 के दशकों में व्यापक भूमि विकास कार्यक्रम शुरू किया गया जो संस्थागत और तकनीकी सुधारों पर आधारित था। इस दिशा में उठाए गए कुछ महत्त्वपूर्ण कदमों में सूखा, बाढ़, चक्रवात, आग तथा बीमारी के लिए फसल बीमा के प्रावधान और किसानों को कम दर पर ऋण सुविधाएँ प्रदान करने के लिए ग्रामीण बैंकों, सहकारी समितियों और बैंकों की स्थापना सम्मिलित थे।

किसानों के लाभ के लिए भारत सरकार ने 'किसान क्रेडिट कार्ड और व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा योजना (पीएआईएस) भी शुरू की है। इसके अलावा आकाशवाणी और दूरदर्शन पर किसानों के लिए मौसम की जानकारी के बुलेटिन और कृषि कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। किसानों को बिचौलियों और दलालों के शोषण से बचाने के लिए न्यूनतम सहायता मूल्य और कुछ महत्त्वपूर्ण फसलों के लाभदायक खरीद मूल्यों की सरकार घोषणा करती है।

कृषि की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, रोजगार और उत्पादन में योगदान

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी रही है। सकल घरेलू उत्पाद में कृषि के योगदान का अनुपात 1951 से लगातार घटने के उपरांत भी यह 2001 में देश की लगभग 63 प्रतिशत जनसंख्या के लिए रोजगार और आजीविका का साधन थी।

कृषि का सकल घरेलू उत्पाद में घटता अंश गंभीर चिंता का विषय है क्योंकि कृषि में किसी भी प्रकार की गिरावट और प्रगतिरोध अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में गिरावट लाएँगे जो समाज के लिए व्यापक निहितार्थ हैं।

कृषि के महत्त्व को समझते हुए भारत सरकार ने इसके आधुनिकीकरण के लिए भरसक प्रयास किए हैं। भारतीय कृषि में सुधार के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद व कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना, पशु चिकित्सा सेवाएँ और पशु प्रजनन केंद्र की स्थापना, बागवानी विकास, मौसम विज्ञान और मौसम के पूर्वानुमान के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास को वरीयता दी गई।

तालिका 4.1 – भारत : सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि (प्रतिशत) और प्रमुख खंड

खंड	1980-91	1992-2001	2002-07 (दसवीं योजना प्रक्षेपित)
कृषि	3.6	3.3	4.0
उद्योग	7.1	6.5	9.5
सेवाएँ	6.7	8.2	9.1
सकल घरेलू उत्पाद	5.6	6.4	8.0

तालिका 4.1 से स्पष्ट होता है कि पिछले वर्षों में सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि हुई है परंतु इससे देश में पर्याप्त मात्रा में रोज़गार के अवसर उपलब्ध नहीं हो रहे हैं। कृषि में विकास दर कम हो रही है जो कि एक चिंताजनक स्थिति है। वर्तमान में भारतीय किसान को अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा से एक बड़ी चुनौती का सामना कृषि सेक्टर में विशेष रूप से करना पड़ रहा है और हमारी सरकार कृषि सेक्टर में विशेष रूप से सिंचाई, ऊर्जा, ग्रामीण सड़कों, मंडियों और यंत्रीकरण में सार्वजनिक पूँजी के निवेश को कम करती जा रही है। रासायनिक उर्वरकों पर सहायिकी कम करने से उत्पादन लागत बढ़ रही है। इसके अतिरिक्त कृषि उत्पादों पर आयात कर घटाने से

भी देश में कृषि पर हानिकारक प्रभाव पड़ा है। किसान कृषि में पूँजी निवेश कम कर रहे हैं जिसके कारण कृषि में रोजगार घट रहे हैं।

खाद्य सुरक्षा

आप जानते हैं कि भोजन एक आधारभूत आवश्यकता है और देश के प्रत्येक नागरिक को ऐसा भोजन मिलना चाहिए जो न्यूनतम पोषण स्तर प्रदान करे। यदि हमारी जनसंख्या के किसी भाग को यह उपलब्ध नहीं होता तो वह खंड खाद्य सुरक्षा से वंचित है। हमारे देश के कुछ प्रदेशों, विशेषतः आर्थिक दृष्टि से कम विकसित राज्यों, जहाँ अधिक निर्धनता व्याप्त है, वहाँ उन लोगों का अनुपात अधिक है जिन्हें खाद्य सुरक्षा प्राप्त नहीं है। देश के सुदूर क्षेत्रों में प्राकृतिक आपदाओं और अनिश्चित खाद्य आपूर्ति की अधिक संभावना होती है। समाज के सभी वर्गों को खाद्य उपलब्धता सुनिश्चित कराने के लिए हमारी सरकार ने सावधानीपूर्वक राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा प्रणाली की रचना की है। इसके दो घटक हैं; (क) बफर स्टॉक (ख) सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पी डी एस)। जैसा कि आप जानते हैं सार्वजनिक वितरण प्रणाली एक कार्यक्रम है जो ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में खाद्य पदार्थ और अन्य आवश्यक वस्तुएँ सस्ती दरों पर उपलब्ध कराती है।

भारत की खाद्य सुरक्षा नीति का प्राथमिक उद्देश्य सामान्य लोगों को खरीद सकने योग्य कीमतों पर खाद्यान्नों की उपलब्धता को सुनिश्चित करना है। इससे निर्धन भोजन प्राप्त करने में समर्थ हुए हैं। इस नीति का केन्द्र कृषि उत्पादन में वृद्धि और भंडारों को बनाए रखने के लिए चावल और गेहूँ की अधिक प्राप्ति के लिए समर्थन मूल्य को निर्धारित करना है। खाद्यान्नों की अधिक प्राप्ति और भंडारण की व्यवस्था फ़ूड कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया (एफ सी आई) करती है जबकि इसके वितरण को सार्वजनिक वितरण प्रणाली सुनिश्चित करती है।

भारतीय खाद्य निगम (एफ सी आई) सरकार द्वारा घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्यों पर किसानों से खाद्यान्न प्राप्त करती है। सरकार उर्वरक, ऊर्जा और जल जैसे कृषि निवेशों पर सहायिकी (Subsidies) उपलब्ध कराती थी। अब इन सहायिकियों का बोझ उठाना असहनीय हो रहा है और इससे इन दुर्लभ निवेशों का बड़े पैमाने पर दुरुपयोग भी हुआ है। जल और उर्वरकों के अधिक और अविवेकपूर्ण प्रयोग से जलाक्रांतता, लवणता और सूक्ष्म पोषक तत्त्वों की कमी की समस्याएँ पैदा हो गई हैं।

ऊँचा न्यूनतम समर्थन मूल्य, निवेशों में सहायिकी और एफ सी आई द्वारा शर्तिया खरीद ने शस्य प्रारूप को बिगाड़ दिया है। जो न्यूनतम समर्थन मूल्य उन्हें मिलता है उसके लिए गेहूँ और चावल की अधिक फसलें उगाई जा रही हैं। पंजाब और हरियाणा इसके अग्रणी उदाहरण हैं।

जैसा कि आप जानते हैं कि उपभोक्ताओं को दो वर्गों में बाँट दिया गया है गरीबी रेखा से नीचे (Below Poverty Line BPL) और गरीबी रेखा से ऊपर (Above Poverty Line APL) और प्रत्येक वर्ग के लिए कीमतें अलग-अलग हैं। परंतु यह वर्गीकरण पूर्ण नहीं है क्योंकि इससे अनेक हकदार गरीब लोग बी पी एल वर्ग से बाहर हो गए हैं। कई ए पी एल श्रेणी के लोग एक फसल खराब होने से ही बी पी एल श्रेणी में आ जाते हैं और प्रशासकीय दृष्टि से ऐसे परिवर्तनों को समायोजित करना कठिन हो जाता है।

यदि सरकार उपयुक्त कृषि अवसंरचना ऋणों की सुविधा उपलब्ध कराती है और नई प्रौद्योगिकी के प्रयोग को बढ़ावा देती है तो प्रत्येक जिला और ब्लॉक को खाद्यान्नों के पैदावार में आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। केवल गेहूँ और चावल पर ध्यान देने की अपेक्षा उस क्षेत्र में उगने वाली खाद्य फसलों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए जिसमें वृद्धि की बेहतर संभावनाएँ हों। सिंचाई सुविधाओं और विद्युत उपलब्ध करवाने जैसे आवश्यक अवसंरचना को बढ़ावा देने से कृषि में निजी पूँजी निवेश को बढ़ावा मिलेगा। सतत् पोषणीय आधार पर खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि, और अनाजों के व्यापार को बंधन से मुक्ति से भारी मात्रा में रोजगार पैदा होंगे और ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी भी घटेगी।

धीरे-धीरे खाद्य फसलों की कृषि का स्थान फलों, सब्जियों, तिलहनों और औद्योगिक फसलों की कृषि लेती जा रही है। इससे अनाजों और दालों के अंतर्गत निवल बोया गया क्षेत्र कम होता जा रहा है। भारत की बढ़ती जनसंख्या के साथ घटता खाद्य उत्पादन देश की भविष्य की खाद्य सुरक्षा पर प्रश्न चिह्न लगाता है। भूमि के आवासन (Housing) इत्यादि जैसे गैर-कृषि भू-उपयोगों और कृषि के बीच बढ़ती भूमि की प्रतिस्पर्धा के कारण बोए गए निवल क्षेत्र में कमी आई है। भूमि की उत्पादकता ने घटती प्रवृति दर्शानी आरम्भ कर दी है। उर्वरक, पीड़कनाशी और कीटनाशी, जिन्होंने कभी नाटकीय परिणाम प्रस्तुत किए थे, को अब मिट्टी के निम्नीकरण का दोषी माना जा रहा है। जल की कालिक कमी के कारण सिंचित क्षेत्र में कमी आई है। असक्षम जल प्रबंधन से जलाक्रांतता और लवणता की समस्याएँ खड़ी हो गई हैं।

इसका एक मुख्य कारण भूमि निम्नीकरण है। किसानों को मुफ्त बिजली उपलब्ध करवाने के कारण जल-सघन फसलें उगाने के लिए कुछ क्षेत्र के किसानों को सिंचाई के लिए अधिकाधिक भूमिगत जल को पंपों के द्वारा निकालने का प्रोत्साहन मिला। कम वर्षा वाले क्षेत्रों जैसे पंजाब में चावल तथा महाराष्ट्र में गन्ने की खेती इसके उदाहरण हैं। इससे भूमिगत जलभृत् (Aquifer) में जल का भंडारण कम होता जा रहा है। परिणामस्वरूप कई कुएँ और नलकूप सूख गए हैं। इससे सीमांत और छोटे किसान कृषि छोड़ने पर मजबूर हो गए हैं।

बड़े किसानों को उनके गहरे नलकूपों से अभी भी पानी उपलब्ध है परंतु बहुत से दूसरे किसान जल की कमी की समस्या का सामना कर रहे हैं। अपर्याप्त भंडारण सुविधाएँ और बाज़ार के आभाव में भी किसान हतोत्साहित होते हैं। इस प्रकार किसान उत्पादन और बाज़ार की अनियमितता से बुरी तरह प्रभावित होते हैं। उनको दोहरा नुकसान उठाना पड़ता है। एक तो उन्हें कृषि लागतों जैसे उच्च पैदावार वाले बीजों, उर्वरकों इत्यादि के लिए अधिक दाम देने पड़ते हैं और दूसरी ओर खरीद

मूल्य बढ़ाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। किसानों की पैदावार एक साथ मंडी में पहुँचती है जिसके कारण खरीद मूल्य कम मिलता है परंतु उन्हें मज़बूरी में अपने उत्पाद बेचने पड़ते हैं। इसलिए, छोटे किसानों की सुरक्षा बिना खाद्य सुरक्षा संभव नहीं है।

वैश्वीकरण का कृषि पर प्रभाव

वैश्वीकरण कोई नई घटना नहीं है। उपनिवेश काल में भी यही स्थिति मौजूद थी। उन्नीसवीं शताब्दी में जब यूरोपीय व्यापारी भारत आए तो उस समय भी भारतीय मसाले विश्व के विभिन्न देशों में निर्यात किए जाते थे और दक्षिण भारत में किसानों को इन फसलों को उगाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। आज भी गर्म मसाले भारत से निर्यात किए जाने वाली मुख्य वस्तुओं में शामिल हैं। ब्रिटिश काल में अंग्रेज व्यापारी भारत के कपास क्षेत्र की ओर आकर्षित हुए और भारतीय कपास को ब्रिटेन में सूती वस्त्र उद्योग के लिए कच्चे माल के रूप में निर्यात किया गया। मैनचेस्टर और लिवरपूल में सूती वस्त्र उद्योग भारत में पैदा होने वाली उत्तम किस्म की कपास की उपलब्धता पर फली-फूली। आपने 1917 में बिहार में हुए चम्पारन आंदोलन के बारे में पढ़ा होगा। इसकी शुरुआत इसलिए हुई कि इस क्षेत्र के किसानों पर नील की खेती करने के लिए दबाव डाला गया था। नील ब्रिटेन के सूती वस्त्र उद्योग के लिए कच्चा माल था। ये किसान इसलिए भड़के क्योंकि उन्हें अपने उपभोग के लिए अनाज उगाने से मना कर दिया गया था। 1990 के बाद, वैश्वीकरण के तहत् भारतीय किसानों को कई नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। चावल, कपास, रबड़, चाय, कॉफी, जूट और मसालों का मुख्य उत्पादक होने के बावजूद भारतीय कृषि विश्व के विकसित देशों से स्पर्धा करने में असमर्थ है क्योंकि उन देशों में कृषि को अत्यधिक सहायिकी दी जाती है।

आज भारतीय कृषि दोराहे पर है। भारतीय कृषि को सक्षम और लाभदायक बनाना है तो सीमांत और छोटे किसानों की स्थिति सुधारने पर जोर देना होगा। हरित क्रांति ने लंबा-चौड़ा वायदा किया परंतु आज यह कई विवादों से घिरी है। यह आरोप लगाया जाता रहा है कि हरित क्रांति के दौरान रसायनों के अधिक प्रयोग, जलभृतों के सूखने और जैव विविधता विलुप्त होने के कारण भूमि का निम्नीकरण हुआ है। आज 'जीन क्रांति' संकेत शब्द है। जिसमें जननिक इंजीनियरी सम्मिलित है।

वास्तव में कार्बनिक (organic) कृषि का आज अधिक प्रचलन है क्योंकि यह उर्वरकों तथा कीटनाशकों जैसे कारखानों में निर्मित रसायनों के बिना की जाती है। इसलिए पर्यावरण पर इसका नकारात्क प्रभाव नहीं पड़ता।

कुछ अर्थशास्त्रियों का यह भी मानना है कि बढ़ती जनसंख्या के कारण घटते आकार के जोतों पर यदि खाद्यान्नों की खेती ही होती रही तो भारतीय किसानों का भविष्य अंधकारमय है। भारत में लगभग 60 करोड़ लोग लगभग 25 करोड़ हैक्टेयर भूमि पर निर्भर हैं। इस प्रकार एक व्यक्ति के हिस्से में औसतन आधा हैक्टेयर से भी कम कृषि भूमि आती है। भारतीय किसानों को शस्यावर्तन करना चाहिए और खाद्यान्नों के स्थान पर कीमती फसलें उगानी चाहिए। इससे आमदनी अधिक होगी और इसके साथ पर्यावरण निम्नीकरण में कमी आएगी। फलों, औषधीय पौधों, बायो-डीजल फसलों (जटरोफा और जोजोबा), फूलों और सब्जियों को उगाने के लिए चावल या गन्ने से बहुत कम सिंचाई की आवश्यकता है। भारत में जलवायु विविधता का विभिन्न प्रकार की कीमती फसलें उगाकर उपयोग किया जा सकता है।

अनाज के स्थान पर ऊँचे मूल्य की फसलों को उगाकर शस्य प्रारूप में परिवर्तन का अर्थ होगा कि भारत को खाद्य पदार्थों का आयात करना पड़ेगा। 1960 के दशक में इसे एक आपदा के रूप में देखा गया होता। परंतु यदि हम कीमती फसलों के उत्पाद निर्यात करके खाद्यान्न आयात करते हैं तो हम भी चिली, इजराइल और इटली की अर्थव्यवस्थाओं का अनुकरण करेंगे जो विभिन्न कृषि उत्पाद (फल, शराब, जैतून विशेषकर बीज) निर्यात करके खाद्य पदार्थ आयात करते हैं। क्या हम यह खतरा मोल लेने को तैयार है? इस विषय पर वाद-विवाद कीजिए।

खनिज तथा ऊर्जा संसाधन

खनिज हमारे जीवन के अति अनिवार्य भाग हैं। लगभग हर चीज़ जो हम इस्तेमाल करते हैं एक छोटी सूई से लेकर एक बड़ी इमारत तक. या फिर एक बड़ा जहाज आदि सभी खनिजों से बने हैं। रेलवे लाइन और सड़क के पत्थर, हमारे औजार तथा मशीनें सभी खनिजों से बने हैं। कारें, बसें, रेलगाड़ियाँ, हवाई जहाज सभी खनिजों से निर्मित हैं और धरती से प्राप्त ऊर्जा के साधनों द्वारा चालित होते हैं। यहाँ तक कि भोजन में भी खनिज होते हैं जिसे हम खाते हैं। मनुष्य ने विकास की सभी अवस्थाओं में अपनी जीविका तथा सजावट, त्योहारों व धार्मिक अनुष्ठान के लिए खनिजों का प्रयोग किया है।

खनिज क्या है?

भू-वैज्ञानिकों के अनुसार खनिज एक प्राकृतिक रूप से विद्यमान समरूप तत्त्व है जिसकी एक निश्चित आंतरिक संरचना है। खनिज प्रकृति में अनेक रूपों में पाए जाते हैं जिसमें कठोर हीरा व नरम चूना तक सम्मिलित हैं। खनिज इतने विविध क्यों हैं?

आप चट्टानों के विषय में पहले ही पढ़ चुके हैं। चट्टानें खनिजों के समरूप तत्त्वों के यौगिक हैं। कुछ चट्टानें जैसे चूना पत्थर केवल एक ही खनिज से बनी है; लेकिन अधिकतर चट्टानें विभिन्न अनुपातों के अनेक खनिजों का योग हैं। यद्यपि 2000 से अधिक खनिजों की पहचान की जा चुकी है, लेकिन अधिकतर चट्टानों में केवल कुछ ही खनिजों की बहुतायत है।

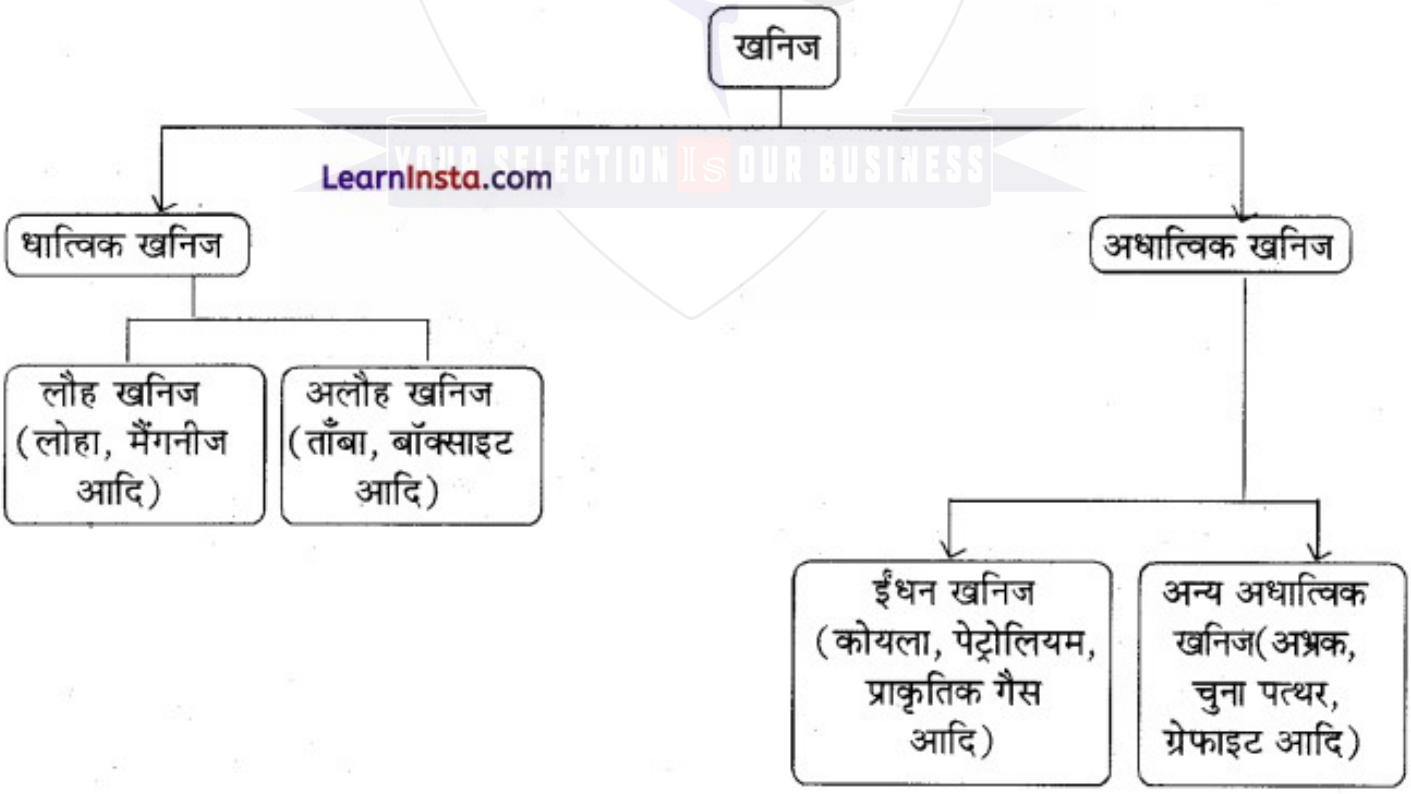
एक खनिज विशेष जो निश्चित तत्त्वों का योग है, उन तत्त्वों का निर्माण उस समय के भौतिक व रासायनिक परिस्थितियों का परिणाम है। इसके फलस्वरूप ही खनिजों में विविध रंग, कठोरता, चमक, घनत्व तथा विविध क्रिस्टल पाए जाते हैं। भू-वैज्ञानिक इन्हीं विशेषताओं के आधार पर खनिजों का वर्गीकरण करते हैं।

भूगोलविदों व भू-वैज्ञानिकों द्वारा खनिजों का अध्ययन

भूगोलविद् स्थलाकृतियों की बेहतर जानकारी हेतु खनिजों का अध्ययन भू-पृष्ठ के एक अंश के रूप में करते हैं। भूगोलवेत्ता खनिज संसाधनों के वितरण व खनिजों से संबंधित आर्थिक क्रियाओं में ज्यादा रूचि रखते हैं। परंतु एक भू-वैज्ञानिक, खनिजों की निर्माण प्रक्रिया, इनकी आयु व खनिजों के भौतिक व रासायनिक संगठन से संबंधित विषयों की जानकारी रखते हैं।

सामान्य व वाणिज्यिक (व्यापारिक) उद्देश्य हेतु खनिज निम्न प्रकार से वर्गीकृत किये जाते हैं

खनिजों का वर्गीकरण



खनन का आर्थिक महत्त्व तभी है जब अयस्क में खनिजों का संचयन पर्याप्त मात्रा में हो। खनिजों के खनन की सुविधा इनके निर्माण व संरचना पर निर्भर हैं। खनन सुविधा इसके मूल्य को निर्धारित करती है। अतः हमारे लिए मुख्य शैल समूहों को समझना अत्यंत आवश्यक है जिनमें ये खनिज पाये जाते हैं।

खनिज प्रायः निम्न शैल समूहों से प्राप्त होते हैं :

(क) आग्नेय तथा कायांतरित चट्टानों में खनिज दरारों, जोड़ों, भ्रंशों व विदरों में मिलते हैं। छोटे जमाव शिराओं के रूप में और बृहत् जमाव परत के रूप में पाए जाते हैं। इनका निर्माण भी अधिकतर उस समय होता है जब ये तरल अथवा गैसीय अवस्था में दरारों के सहारे भू-पृष्ठ की ओर धकेले जाते हैं। ऊपर आते हुए ये ठंडे होकर जम जाते हैं। मुख्य धात्विक खनिज जैसे जस्ता, ताँबा, जिंक और सीसा आदि इसी तरह शिराओं व जमावों के रूप में प्राप्त होते हैं।

(ख) अनेक खनिज अवसादी चट्टानों के अनेक खनिज संस्तरों या परतों में पाए जाते हैं। इनका निर्माण क्षैतिज परतों में निक्षेपण, संचयन व जमाव का परिणाम है। कोयला तथा कुछ अन्य प्रकार के लौह अयस्कों का निर्माण लंबी अवधि तक अत्यधिक

(ग) खनिजों के निर्माण की एक अन्य विधि धरातलीय चट्टानों का अपघटन है। चट्टानों के घुलनशील तत्त्वों के अपरदन के पश्चात् अयस्क वाली अवशिष्ट चट्टानें रह जाती हैं। बॉक्साइट का निर्माण इसी प्रकार होता है।

(घ) पहाड़ियों के आधार तथा घाटी तल की रेत में जलोढ़ जमाव के रूप में भी कुछ खनिज पाए जाते हैं। ये निक्षेप 'प्लेसर निक्षेप' के नाम से जाने जाते हैं। इनमें प्रायः ऐसे खनिज होते हैं जो जल द्वारा घर्षित नहीं होते। इन खनिजों में सोना, चाँदी, टिन व प्लेटिनम प्रमुख हैं।

(ङ) महासागरीय जल में भी विशाल मात्रा में खनिज पाए जाते हैं लेकिन इनमें से अधिकांश के व्यापक रूप से विसरित होने के कारण इनकी आर्थिक सार्थकता कम है। फिर भी सामान्य नमक, मैगनीशियम तथा ब्रोमाइन ज्यादातर समुद्री जल से ही प्रग्रहित (derived) होते हैं। महासागरीय तली भी मैंगनीज ग्रंथिकाओं (nodules) में धनी हैं

खनिजों उपलब्धता

सामान्यतः खनिज 'अयस्कों' में पाए जाते हैं। किसी भी खनिज में अन्य अवयवों या तत्त्वों के मिश्रण या संचयन

ऊष्मा व दबाव का परिणाम है। अवसादी चट्टानों में दूसरी श्रेणी के खनिजों में जिप्सम, पोटाश, नमक व सोडियम सम्मिलित हैं। इनका निर्माण विशेषकर शुष्क प्रदेशों में वाष्पीकरण के फलस्वरूप होता है।

।

भारत अच्छे और विविध प्रकार के खनिज संसाधनों में सौभाग्यशाली है. यद्यपि इनका वितरण असमान है। मोटे तौर पर प्रायद्वीपीय चट्टानों में कोयले. धात्विक खनिज, अभ्रक व अन्य अनेक अधात्विक खनिजों के अधिकांश भंडार संचित हैं। प्रायद्वीप के पश्चिमी और पूर्वी पाश्ोां पर गुजरात और असम की तलछटी चट्टानों में अधिकांश खनिज तेल निक्षेप पाए जाते हैं। प्रायद्वीपीय शैल क्रम के साथ राजस्थान में अनेक अलौह खनिज पाए जाते हैं। उत्तरी भारत के विस्तृत जलोढ़ मैदान आर्थिक महत्त्व के खनिजों से लगभग विहीन है। ये विभिन्नताएँ खनिजों की रचना में अंतग्रस्त भू-गर्भिक संरचना, प्रक्रियाओं और समय के कारण हैं।

आइए. अब हम भारत में कुछ प्रमुख खनिजों के वितरण का अध्ययन करें। सदैव स्मरण रखें कि अयस्क में खनिज का सांद्रेण उत्खनन की सुगमता और बाज़ार की निकटता, किसी संचय (reserve) की आर्थिक जीव्यता (Viability) को प्रभावित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः माँग की पूर्ति के लिए अनेक संभव विकल्पों में से चयन करना पड़ता है। ऐसा हो जाने के बाद एक खनिज 'निक्षेप' अथवा 'भंडार' खदान में परिवर्तित हो जाता है।

लौह खनिज

लौह खनिज धात्विक खनिजों के कुल उत्पादन मूल्य के तीन-चौथाई भाग का योगदान करते हैं। ये धातु शोधन उद्योगों के विकास को मजबूत आधार प्रदान करते हैं। भारत अपनी घरेलू माँग को पूरा करने के पश्चात् बड़ी मात्रा में धात्विक खनिजों का निर्यात करता है।

लौह अयस्क (Iron Ore)

लौह अयस्क एक आधारभूत खनिज है तथा औद्योगिक विकास की रीढ़ है। भारत में लौह अयस्क के विपुल संसाधन विद्यमान हैं। भारत उच्च कोटि के लोहांशयुक्त लौह अयस्क में धनी है। मैग्नेटाइट सर्वोत्तम प्रकार का लौह अयस्क है जिसमें 70 प्रतिशत लोहांश पाया जाता है। इसमें सर्वश्रेष्ठ चुंबकीय गुण होते हैं. जो विद्युत उद्योगों में विशेष रूप से उपयोगी हैं। हेमेटाइट सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण औद्योगिक लौह अयस्क है जिसका अधिकतम मात्रा में उपभोग हुआ है। किंतु इसमें लोहांश की मात्रा मैग्नेटाइट की अपेक्षा थोड़ी-सी कम होती है। (इसमें लोहांश 50 से 60 प्रतिशत तक पाया जाता है।)

भारत में लौह अयस्क की पेटियाँ हैं—

उड़ीसा-झारखंड पेटी उड़ीसा में उच्च कोटि का हेमेटाइट किस्म का लौह अयस्क मयूरभंज व केंदूझर जिलों में बादाम पहाड़ खदानों से निकाला जाता है। इसी से सन्निद्ध झारखंड के सिंहभूम जिले में गुआ तथा नोआमुंडी से हेमेटाइट अयस्क का खनन किया जाता है।

दुर्ग-बस्तर-चन्द्रपुर पेटी यह पेटी महाराष्ट्र व छत्तीसगढ़ राज्यों के अंतर्गत पाई जाती है। छत्तीसगढ़ के बस्तर जिले में बेलाडिला पहाड़ी श्रृंखलाओं में अति उत्तम कोटि का हेमेटाइट पाया जाता है जिसमें इस गुणवत्ता के

लौह के 14 जमाव मिलते हैं। इसमें इस्पात बनाने में आवश्यक सर्वश्रेष्ठ भौतिक गुण विद्यमान हैं। इन खदानों का लौह अयस्क विशाखापट्टनम् पत्तन से जापान तथा दक्षिण कोरिया को निर्यात किया जाता है।

बेलारी-चिदुर्ग, चिकमगलूर-तुमकुर पेटी कर्नाटक की इस पेटी में लौह अयस्क की वृहत् राशि संचित है। कर्नाटक में पश्चिमी घाट में अवस्थित कुद्रेमुख की खानें शत् प्रतिशत निर्यात इकाई हैं। कुद्रेमुख निक्षेप संसार के सबसे बड़े निक्षेपों में से एक माने जाते हैं। लौह अयस्क कर्दम (Slurry) रूप में पाइपलाइन द्वारा मैंगलोर के निकट एक पत्तन पर भेजा जाता है। महाराष्ट्र-गोआ पेटी यह पेटी गोआ तथा महाराष्ट्र राज्य के रत्नागिरी जिले में स्थित है। यद्यपि यहाँ का लोहा उत्तम प्रकार का नहीं है तथापि इसका दक्षता से दोहन किया जाता है। मरमागाओ पत्तन से इसका निर्यात किया जाता है।

मैंगनीज

मैंगनीज़ मुख्य रूप से इस्पात के विनिर्माण में प्रयोग किया जाता है। एक टन इस्पात बनाने में लगभग 10 किग्रा. मैंगनीज की आवश्यकता होती है। इसका उपयोग ब्लीचिंग पाउडर, कीटनाशक दवाएँ व पेंट बनाने में किया जाता है।

भारत में उड़ीसा मैंगनीज का सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है। वर्ष 2000-01 में देश के कुल उत्पादन का एक तिहाई भाग यहाँ से प्राप्त हुआ।

अलौह खनिज

भारत में अलौह खनिजों की संचित राशि व उत्पादन अधिक संतोषजनक नहीं है। यद्यपि ये खनिज जिनमें ताँबा, बॉक्साइट, सीसा और सोना आते हैं. धातु शोधन, इंजीनियरिंग व विद्युत उद्योगों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आइए! हम ताँबा बॉक्साइट का वितरण समझें।

ताँबा

भारत में ताँबे के भंडार व उत्पादन क्रातिक रूप से न्यून हैं। घातवर्ध्य (malleable), तन्य और ताप सुचालक होने के कारण ताँबे का उपयोग मुख्यतः बिजली के तार बनाने, इलैक्ट्रोनिक्स और रसायन उद्योगों में किया जाता है। मध्य प्रदेश की बालाघाट खदानें देश का लगभग 52 प्रतिशत ताँबा उत्पन्न करती हैं। झारखंड का सिंहभूम जिला भी ताँबे का मुख्य उत्पादक है। राजस्थान की खेतड़ी खदानें भी ताँबे के लिए प्रसिद्ध थीं।

विनिर्माण उद्योग

कच्चे पदार्थ को मूल्यवान उत्पाद में परिवर्तित कर अधिक मात्रा में वस्तुओं के उत्पादन को विनिर्माण या वस्तु निर्माण कहा जाता है। क्या आप जानते है कागज लकड़ी से, चीनी गन्ने से, लोहा इस्पात लौह अयस्क से तथा एल्यूमिनियम बॉक्साइट से निर्मित है। क्या आप यह भी जानते हैं कि कई किस्म के कपड़े ऐसे रेशों से बनते हैं जो रेशा उद्योग में बनते हैं।

द्वितीयक कार्यों में लगे व्यक्ति कच्चे माल को परिष्कृत वस्तुओं में परिवर्तित करते हैं। स्टील, कार, कपड़ा उद्योग, बेकरी तथा पेय पदार्थों संबंधी उद्योगों में लगे श्रमिक इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं। कुछ व्यक्ति सेवाएँ प्रदान करने में रोजगार पाते हैं। इस अध्याय में हम द्वितीयक क्रियाओं के अंतर्गत विनिर्माण उद्योगों के विषय में पढ़ेंगे।

किसी देश की आर्थिक उन्नति विनिर्माण उद्योगों के विकास से मापी जाती है।

विनिर्माण का महत्त्व

विनिर्माण उद्योग सामान्यतः विकास की तथा विशेषतः आर्थिक विकास की रीढ़ समझे जाते है, क्योंकिविनिर्माण उद्योग न केवल कृषि के आधुनिकीकरण में सहायक हैं वरन् द्वितीयक व तृतीयक सेवाओं में रोजगार उपलब्ध कराकर कृषि पर हमारी निर्भरता को कम करते हैं।

देश में औद्योगिक विकास बेरोजगारी तथा गरीबी उन्मूलन की एक आवश्यक शर्त है। भारत में सार्वजनिक तथा संयुक्त क्षेत्र में लगे उद्योग, इसी विचार पर आधारित थे। जनजातीय तथा पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना का उद्देश्य भी क्षेत्रीय असमानताओं को कम करना था।

निर्मित वस्तुओं का निर्यात वाणिज्य व्यापार को बढ़ाता है जिससे अपेक्षित विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है।

वे देश ही विकसित हैं जो कच्चे माल को विभिन्न तथा अधिक मूल्यवान तैयार माल में विनिर्मित करते है। भारत का विकास विविध व शीघ्र औद्योगिक विकास में निहित हैं।

कृषि तथा उद्योग एक दूसरे से पृथक नहीं हैं ये एक दूसरे के पूरक हैं। उदाहरणार्थ, भारत में कृषि पर आधारित उद्योगों ने कृषि पैदावार बढ़ोतरी को प्रोत्साहित किया है। ये उद्योग कच्चे माल के लिए कृषि पर निर्भर है तथा इनके द्वारा निर्मित उत्पाद जैसे सिंचाई के लिए पप, उर्वरक, कीटनाशक दवाएँ, प्लास्टिक पाइप, मशीनें व कृषि औजार आदि पर किसान निर्भर है। इसलिए विनिर्माण उद्योग के विकास तथा स्पर्धा से न केवल कृषि उत्पादन को बढ़ावा मिला है. अपितु उत्पादन प्रक्रिया भी सक्षम हुई है।

आज वैश्वीकरण के युग में हमारे उद्योगों को अधिक प्रतिस्पर्धी तथा सक्षम होने की आवश्यकता है। केवल आत्मनिर्भरता ही काफी नहीं है। हमारी वस्तुएँ गुणवत्ता में अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हो तभी हम अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा कर पाएँगें।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में उद्योगों का योगदान

पिछले दो दशकों से सकल घरेलू उत्पाद में विनिर्माण उद्योग का योगदान 27 प्रतिशत में से 17 प्रतिशत ही है क्योंकि 10 प्रतिशत भाग खनिज खनन, गैस तथा विद्युत ऊर्जा का योगदान है।

भारत की अपेक्षा अन्य पूर्वी एशियाई देशों में विनिर्माण का योगदान सकल घरेलू उत्पाद का 25 से 35 प्रतिशत है। पिछले एक दशक से भारतीय विनिर्माण क्षेत्र में 7 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ोतरी हुई है। बढ़ोतरी की यह दर अगले दशक में 12 प्रतिशत अपेक्षित है। वर्ष 2003 से विनिर्माण क्षेत्र का विकास 9 से 10 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से हुआ है। उपयुक्त सरकारी नीतियों तथा औद्योगिक उत्पादन में बढ़ोतरी के नए प्रयासों से अर्थशास्त्रियों का अनुमान है कि विनिर्माण उद्योग अगले एक दशक में अपना लक्ष्य पूरा कर सकता है। इस उद्देश्य से राष्ट्रीय विनिर्माण प्रतिस्पर्धा परिषद् (National Manufacturing Competitiveness Council) की स्थापना की गयी है।

औद्योगिक अवस्थिति

उद्योगों की स्थापना स्वभावतः जटिल है। इनकी स्थापना कच्चे माल की उपलब्धता, श्रमिक, पूँजी, शक्ति के साधन तथा बाजार आदि की उपलब्धता से प्रभावित होती है। इन सभी कारकों का एक स्थान पर पाया जाना लगभग असंभव है। फलस्वरूप विनिर्माण उद्योग की स्थापना के लिए वही स्थान उपयुक्त हैं जहाँ ये कारक उपलब्ध हों अथवा जहाँ इन्हें कम कीमत पर उपलब्ध कराया जा सकता है। औद्योगिक प्रक्रिया के प्रारंभ होने के साथ-साथ नगरीकरण प्रारंभ होता है। कभी-कभी उद्योग शहरों में या उनके निकट लगाए जाते हैं। इस प्रकार औद्योगीकरण तथा नगरीकरण साथ-साथ चलते हैं। नगर उद्योगों को बाजार तथा सेवाएँ जैसे बैंकिंग, बीमा, परिवहन, श्रमिक तथा वित्तीय सलाह आदि उपलब्ध कराते है। नगर केंद्रों द्वारा दी गई सुविधाओं से लाभावित, कई बार बहुत से उद्योग नगरों के आस पास ही केंद्रित हो जाते हैं जिसे 'समूहन बचत' (Agglomeration economies) कहा जाता है। ऐसे स्थानों पर धीरे-धीरे बड़ा औद्योगिक समूहन स्थापित हो जाता है।

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

उद्योगों का वर्गीकरण

रोजमर्रा के इस्तेमाल की विभिन्न औद्योगिक उत्पादों की सूची बनाएँ जैसे ट्रांजिस्टर, बिजली का बल्ब, वनस्पति तेल, -सीमेंट, काँच का सामान, पैट्रोल, माचिस, स्कूटर, वाहन, दवाईयाँ आदि। यदि हम विशेष मापदंडों के आधार पर विभिन्न उद्योगों का वर्गीकरण करते हैं तो विनिर्माण को आसानी से समझ सकेंगे।

उद्योगों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है

प्रयुक्त कच्चे माल के स्रोत के आधार पर -

कृषि आधारित सूती वस्त्र, ऊनी वस्त्र, पटसन, रेशम वस्त्र, रबर, चीनी, चाय, काफी तथा वनस्पति तेल उद्योग।

खनिज आधारित लोहा तथा इस्पात, सीमेंट, एल्यूमिनियम, मशीन, औजार तथा पेट्रोरासायन उद्योग।

प्रमुख भूमिका के आधार पर -

आधारभूत उद्योग जिनके उत्पादन या कच्चे माल पर दूसरे उद्योग निर्भर हैं जैसे-लोहा इस्पात, ताँबा प्रगलन व एल्यूमिनियम प्रगलन उद्योग।

उपभोक्ता उद्योग जो उत्पादन उपभोक्ताओं के सीधे उपयोग हेतु करते हैं जैसे चीनी, दंतमंजन, कागज, पंखे, सिलाई मशीन आदि।

पूँजी निवेश के आधार पर -

एक लघु उद्योग को परिसंपत्ति की एक इकाई पर अधिकतम निवेश मूल्य के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया जाता है। यह निवेश सीमा, समय के साथ परिवर्तित होती रहती है। अधिकतम स्वीकार्य निवेश के आधार पर की जाती है। यह निवेश मूल्य समय के साथ बदला गया है। वर्तमान में अधिकतम निवेश एक करोड़ रूपये तक स्वीकार्य है। अगर किसी उद्योग में यह निवेश एक करोड़ रुपये से अधिक है तो उसे बृहत् उद्योग कहा जाएगा।

स्वामित्व के आधार पर -

सार्वजनिक क्षेत्र में लगे सरकारी एजेंसियों द्वारा प्रबंधित तथा सरकार द्वारा संचालित उद्योग जैसे भारत हैवी इलैक्ट्रिकल लिमिटेड (BHEL) तथा स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (SAIL) आदि।

निजी क्षेत्र के उद्योग जिनका एक व्यक्ति के स्वामित्व में और उसके द्वारा संचालित अथवा लोगों के स्वामित्व में या उनके द्वारा संचालित है। टिस्को, बजाज ऑटो लिमिटेड, डाबर उद्योग आदि।

संयुक्त उद्योग वैसे उद्योग जो राज्य सरकार और निजी -क्षेत्र के संयुक्त प्रयास से चलाये जाते हैं। जैसे ऑयल इंडिया लिमिटेड (OIL)।

सहकारी उद्योग- जिनका स्वामित्व कच्चे माल की पूर्ति करने वाले उत्पादकों, श्रमिकों या दोनों के हाथों में होता है। संसाधनों का कोष संयुक्त होता है तथा लाभ-हानि का विभाजन भी अनुपातिक होता है जैसे महाराष्ट्र के चीनी उद्योग, केरल के नारियल पर आधारित उद्योग।

कच्चे तथा तैयार माल की मात्रा व भार के आधार पर -

भारी उद्योग जैसे लोहा तथा इस्पात आदि।

हल्के उद्योग जो कम भार वाले कच्चे माल का प्रयोग कर हल्के तैयार माल का उत्पादन करते हैं जैसे- विद्युतीय उद्योग।

कृषि आधारित उद्योग

सूती वस्त्र, पटसन, रेशम, ऊनी वस्त्र, चीनी तथा वनस्पति तेल आदि उद्योग कृषि से प्राप्त कच्चे माल पर आधारित हैं।

वस्त्र उद्योग- भारतीय अर्थव्यवस्था में वस्त्र उद्योग का

अपना अलग महत्त्व है क्योंकि इसका औद्योगिक उत्पादन में महत्त्वपूर्ण (14 प्रतिशत) योगदान है। यह लगभग 350 लाख व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध करवाकर कृषि के पश्चात् दूसरा बड़ा उद्योग है तथा लगभग 24.6 प्रतिशत विदेशी मुद्रा अर्जित करता है। सकल घरेलू उत्पाद में इसकी भागीदारी लगभग 4 प्रतिशत है। देश का यह अकेला उद्योग है जो कच्चे माल से उच्चतम अतिरिक्त मूल्य उत्पाद तक की श्रृंखला में परिपूर्ण तथा आत्मनिर्भर है।

सूती वस्त्र उद्योग - प्राचीन भारत में सूती वस्त्र हाथ से

कताई और हथकरघा बुनाई तकनीकों से बनाये जाते थे। अठारहवीं शताब्दी के बाद विद्युतीय करघों का उपयोग होने लगा। औपनिवेशिक काल के दौरान हमारे परंपरागत उद्योगों को बहुत हानि हुई क्योंकि हमारे उद्योग इंग्लैंड के मशीन निर्मित वस्त्रों से स्पर्धा नहीं कर पाये।

पहला सफल सूती वस्त्र उद्योग 1854 में मुंबई में लगाया लगाया गया।

यूरोप दो विश्व युद्धों से जूझ रहा था तथा भारत इंग्लैंड के अधीन था। ऐसे में इंग्लैंड में कपड़े की माँग आपूर्ति हेतु भारतीय सूती वस्त्र उद्योग को प्रोत्साहन मिला।

आज देश में लगभग 1600 सूती तथा कृत्रिम रेशे की कपड़ा मिले हैं। इनमें से 80 प्रतिशत निजी क्षेत्र में तथा शेष सार्वजनिक व सहकारी क्षेत्र में हैं। इनके अंतर्गत कई हज़ार छोटी इकाइयाँ हैं जिनमें 4 से 10 हथकरघे हैं।

आरंभिक वर्षों में सूती वस्त्र उद्योग महाराष्ट्र तथा गुजरात के कपास उत्पादन क्षेत्रों तक ही सीमित थे। कपास की उपलब्धता, बाज़ार, परिवहन, पत्तनों की समीपता, श्रम, नमीयुक्त जलवायु आदि कारकों ने

इसके स्थानीयकरण को बढ़ावा दिया। इस उद्योग का कृषि से निकट का संबंध है और कृषकों, कपास चुनने वालों, गाँठ बनाने वालों, कताई करने वालों, रंगाई करने वालों, डिजाइन बनाने वालों, पैकेट बनाने वालों और सिलाई करने वालों को यह जीविका प्रदान करता है। इस उद्योग के कारण रसायन रंजक मिल स्टोर तथा पैकेजिंग सामग्री और इंजीनियरिंग उद्योग की माँग बढ़ती है फलस्वरूप इन उद्योगों का विकास होता है।

यद्यपि कताई कार्य महाराष्ट्र, गुजरात तथा तमिलनाडु में केंद्रित है लेकिन सूती, रेशम, ज़री कशीदाकारी आदि में बुनाई के परंपरागत कौशल और डिजाइन देने के लिए बुनाई अत्यधिक विकेंद्रीकृत है। भारत में कताई उत्पादन विश्व स्तर का है लेकिन बुना वस्त्र कम गुणवत्ता वाला है क्योंकि यह देश में उत्पादित उच्च स्तरीय धागे का अधिक प्रयोग नहीं कर पाता। बुनाई का कार्य हथकरघों, विद्युतकरघों व मिलों में होता है।

हाथ से बुनी खादी कुटीर उद्योग के रूप में बुनकरों को उनके घरों में बड़े पैमाने पर रोजगार प्रदान कराता है।

महात्मा गांधी ने सूत कातने तथा खादी बुनने पर क्यों बल दिया?

तालिका 6.1 – भारत के विभिन्न क्षेत्रों में वस्त्र उत्पादन

क्षेत्र	कुल उत्पादन का भाग	लूमेज (Loomage)
कारखाने (Mills)	6.00 प्रतिशत	1.33 लाख
विद्युत करघे	54.17 प्रतिशत	14 लाख
हथकरघे	23.000 प्रतिशत	NA

टिप्पणी – बुनाई, कटाई तथा अन्य प्रक्रमण का 90 प्रतिशत विकेंद्रित क्षेत्र में है।

हमारे देश में विद्युत चालित करघों तथा हथकरघों द्वारा निर्मित लूमेज की अपेक्षा कारखानों द्वारा निर्मित लूमेज (Loomage) को कम रखना क्यों महत्त्वपूर्ण है?

भारत जापान को सूत का निर्यात करता है। भारत में बने सूती वस्त्र के अन्य आयातक देश संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैंड, रूस, फ्रांस, पूर्वी यूरोपीय देश, नेपाल, सिंगापुर, श्रीलंका तथा अफ्रीका के देश हैं।

तकुओं (spindles) की क्षमता के रूप में भारत को विश्व में दूसरा स्थान प्राप्त है। इनमें चीन का प्रथम स्थान है जहाँ इनकी संख्या वर्ष 2003-2004 के अनुसार 340 लाख है। 1980 के दशक के मध्य से कताई क्षेत्र को भरपूर महत्त्व दिया जा रहा है।

सूती रेशे के विश्व व्यापार में हमारे देश की भागीदारी काफी महत्त्वपूर्ण है। यह कुल अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का लगभग एक चौथाई भाग है। लेकिन तैयार वस्त्र के कुल व्यापार में यह हिस्सा केवल 4 प्रतिशत ही है। हमारे कताई कारखाने विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं और हम जो सूत पैदा करते हैं उसका उपभोग करने में सक्षम हैं। लेकिन बुनाई और कताई तथा प्रक्रमण इकाईयाँ देश में उत्पन्न किये गये उच्च कोटि के धागे का उपयोग नहीं कर पाती है। इस क्षेत्र में कुछ ही बड़े और आधुनिक कारखाने हैं तथा अधिकतर छोटी व बिखरी हुई इकाइयाँ ही है जिसका उत्पादन स्थानीय बाज़ार की माँग को ही पूरा कर पाता है। यह इस उद्योग की एक बड़ी कमी है जिसके परिणामस्वरूप हमारे बहुत से कताई करने वाले सूती धागे का निर्यात करते हैं जबकि परिधान निर्माताओं को कपड़ा आयात करना पड़ता है।

धागा 85 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से बेचा जाता है। अगर यह पतलून के रूप में बेचा जाए तो इसकी कीमत 800 रु. प्रति किलोग्राम है। रेशे से धागा, धागे से कपड़ा और कपड़े से परिधान बनाने के प्रत्येक चरण पर मूल्य में वृद्धि होती है।

हमारे लिए अधिक मात्रा में धागे के निर्यात की अपेक्षा अपने बुनाई क्षेत्र को सुधारना क्यों आवश्यक है?

यद्यपि लंबे रेशे वाली कपास के उत्पादन में महत्त्वपूर्ण वृद्धि (2004-05, 9232 लाख गाँठें) दर्ज की गई है तथापि इसे आयात करने की आवश्यकता महसूस की जाती है। विशेषतः बुनाई व अन्य संबंधित क्षेत्रों में अनियमित विद्युत आपूर्ति को दूर करने तथा नई मशीनरी के उपयोग की आवश्यकता है। अन्य समस्याओं में कम श्रमिक उत्पादकता तथा कृत्रिम वस्त्र उद्योग से प्रतिस्पर्धा आदि हैं।

पटसन उद्योग भारत पटसन व पटसन निर्मित समान -का सबसे बड़ा उत्पादक है तथा बांग्लादेश के पश्चात् दूसरा बड़ा निर्यातक भी है। भारत में लगभग 70 पटसन उद्योग हैं। इनमें अधिकांश पश्चिम बंगाल में हुगली नदी तट पर 98 किमी. लंबी तथा 3 किमी. चौड़ी एक सँकरी मेखला में स्थित है।

पहला पटसन उद्योग कोलकाता के निकट रिशरा में 1859 में लगाया गया। 1947 में देश के विभाजन के पश्चात् पटसन मिलें तो भारत में रह गई लेकिन तीन-चौथाई जूट उत्पादक क्षेत्र पूर्वी पाकिस्तान अर्थात् बांग्लादेश में चले गए।

हुगली नदी तट पर इनके स्थित होने के निम्न कारण पटसन उत्पादक क्षेत्रों की निकटता, सस्ता जल हैं परिवहन, सड़क, रेल व जल परिवहन का जाल, कच्चे माल का मिलों तक ले जाने में सहायक होना, कच्चे पटसन को संसाधित करने में प्रचुर जल, पश्चिम बंगाल तथा समीपवर्ती राज्य उड़ीसा, बिहार व उत्तर प्रदेश से सस्ता श्रमिक उपलब्ध होना, कोलकाता का एक बड़े नगरीय केंद्र के रूप बैंकिंग, बीमा और जूट के सामान के निर्यात के लिए पत्तन की सुविधाएँ प्रदान करना आदि सम्मिलित हैं।

पटसन उद्योग प्रत्यक्ष रूप से 2.61 लाख श्रमिकों को और जूट व मेस्टा की खेती करने वाले अन्य 40 लाख छोटे व सीमांत कृषकों को रोजगार मुहैया कराता है। इस उद्योग से अन्य अनेक लोग अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हैं।

इस उद्योग की चुनौतियों में अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कृत्रिम वस्त्रों से और बांग्लादेश, ब्राजील फिलीपीन्स, मिश्र तथा थाईलैंड जैसे अन्य देशों से कड़ी प्रतिस्पर्धा शामिल है। यद्यपि पटसन पैंकिंग की अनिवार्य प्रयोग की सरकारी नीति के कारण इसकी घरेलू माँग बढ़ी है तथापि माँग बढ़ाने हेतु उत्पाद में विविधता भी आवश्यक है। सन् 2005 में राष्ट्रीय पटसन नीति अपनाई गई जिसका मुख्य उद्देश्य पटसन का उत्पादन बढ़ाना, गुणवत्ता में सुधार, पटसन उत्पादक किसानों को अच्छा मूल्य दिलाना तथा प्रति हैक्टेयर उत्पादकता को बढ़ाना था। पटसन के प्रमुख खरीददार-अमेरिका, कनाडा, रूस, अरब देश, इंग्लैंड और आस्ट्रेलिया हैं। बढ़ते वैश्विक पर्यावरण अनुकूलन, जैवनिम्नीकरणीय पदार्थों के लिए विश्व की बढ़ती जागरूकता ने पुनः जूट उत्पादों के लिए अवसर प्रदान किया है।

चीनी उद्योग भारत का चीनी उत्पादन में विश्व में -

दूसरा स्थान है लेकिन गुड़ व खांडसारी के उत्पादन में इसका प्रथम स्थान है। इस उद्योग में प्रयुक्त कच्चा माल भारी होता है तथा ढुलाई में इसके सूक्रोस की मात्रा घट जाती है। चीनी उद्योग की आदर्श स्थिति क्या होनी चाहिए? देश में 460 से अधिक चीनी मिलें हैं जो उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, गुजरात, पंजाब, हरियाणा तथा मध्य प्रदेश राज्यों में फैली हैं। चीनी मिलों का 60 प्रतिशत उत्तर प्रदेश तथा बिहार में है। यह उद्योग मौसमी है, अतः सहकारी क्षेत्र के लिए उपयुक्त है। क्या आप बता सकते हैं ऐसा क्यों है?

पिछले कुछ वर्षों से इन मिलों की संख्या दक्षिणी और पश्चिमी राज्यों में विशेषकर महाराष्ट्र में बढ़ी है। इसका मुख्य कारण यहाँ के गन्ने में अधिक सूक्रोस की मात्रा है। अपेक्षाकृत ठंडी जलवायु भी गुणकारी है। इसके अतिरिक्त इन राज्यों में सहकारी समितियाँ भी सफल रही हैं।

इस उद्योग की प्रमुख चुनौतियाँ इस प्रकार हैं -इस उद्योग का अल्पकालिक होना, पुरानी व असक्षम तकनीक का इस्तेमाल, परिवहन असक्षमता से गन्ने का समय पर कारखानों में न पहुँचना तथा खोई (Baggasse) का अधिकतम इस्तेमाल न कर पाना।

खनिज आधारित उद्योग

वे उद्योग जो खनिज व धातुओं को कच्चे माल के रूप में प्रयोग करते हैं, खनिज आधारित उद्योग कहलाते हैं। क्या आप इस वर्ग में आने वाले कुछ उद्योगों का नाम बता सकते हैं?

लोहा तथा इस्पात उद्योग

लोहा तथा इस्पात उद्योग एक आधारभूत (basic) उद्योग है क्योंकि अन्य सभी भारी, हल्के और मध्यम उद्योग इनसे बनी मशीनरी पर निर्भर हैं। विविध प्रकार के इंजीनियरिंग सामान, निर्माण सामग्री, रक्षा, चिकित्सा, टेलीफोन वैज्ञानिक उपकरण और विभिन्न प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं के निर्माण के लिए इस्पात की आवश्यकता होती है।

इस्पात के उत्पादन तथा खपत को प्रायः एक देश के विकास का पैमाना माना जाता है। लोहा तथा इस्पात एक भारी उद्योग है क्योंकि इसमें प्रयुक्त कच्चा तथा तैयार माल दोनों ही भारी और स्थूल होते हैं और इसके लिए अधिक परिवहन लागत की आवश्यकता होती है। इस उद्योग के लिए लौह अयस्क, कोकिंग कोल तथा चूना पत्थर का अनुपात लगभग 4:2:1 का है। इस्पात को कठोर बनाने के लिए इसमें मैंगनीज़ की कुछ मात्रा की भी आवश्यकता होती है।

इस्पात उद्योगों की आदर्श स्थापना कहाँ होनी चाहिये? यह याद रहे कि इससे निर्मित माल को बाज़ार तथा उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के लिए भी सक्षम परिवहन की आवश्यकता है।

भारत 328 लाख टन इस्पात का विनिर्माण कर संसार में कच्चा इस्पात उत्पादकों में नवें स्थान पर है। यह स्पंज (Sponge) लौह का सबसे बड़ा उत्पादक है। इस्पात के अधिक उत्पादन के बावजूद भी यहाँ प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति खपत केवल 32 किलोग्राम है।

इस समय भारत में 10 मुख्य संकलित उद्योग तथा बहुत से छोटे इस्पात संयंत्र हैं।

मिनी इस्पात उद्योग छोटे संयंत्र हैं जिनमें विद्युत भट्टी. रद्दी इस्पात व स्पंज आयरन का प्रयोग होता है। इनमें रि-रोलर्स होते हैं जिनमें इस्पात सिल्लियों का इस्तेमाल किया जाता है। ये हल्के स्टील या निर्धारित अनुपात के मृदु व मिश्रित इस्पात का उत्पादन करते हैं।

एक संकलित इस्पात संयंत्र एक बड़ा संयंत्र होता है। जिसमें कच्चे माल को एक स्थान पर एकत्रित करने से लेकर इस्पात बनाने उसे ढालने और उसे आकार देने तक की प्रत्येक क्रिया की जाती है।

सार्वजनिक क्षेत्र के सभी लगभग उपक्रम अपने इस्पात को स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया (SAIL) के माध्यम से बेचते हैं जबकि टिस्को (TISCO) या स्टील के नाम से अपने उत्पाद को स्वयं बेचती हैं।

1950 के दशक में भारत तथा चीन ने लगभग एक समान मात्रा में इस्पात उत्पादित किया था। आज चीन इस्पात का सबसे बड़ा उत्पादक है। इस्पात की सर्वाधिक खपत वाला देश भी चीन है। वर्ष 2004 में भारत इस्पात का सबसे बड़ा निर्यातक था जिसकी अंतरर्राष्ट्रीय व्यापार में हिस्सेदारी 2.25 प्रतिशत थी। छोटानागपुर के पठारी क्षेत्र में अधिकांश लोहा तथा इस्पात उद्योग संकेंद्रित हैं। इस प्रदेश में इस उद्योग के विकास के लिए अधिक अनुकूल सापेक्षिक परिस्थितियाँ हैं। इनमें लौह अयस्क की कम लागत, उच्च कोटि के कच्चे माल की निकटता, सस्ते श्रमिक और स्थानीय बाजार में इनके माँग की विशाल संभाव्यता सम्मिलित है। यद्यपि भारत संसार का एक महत्त्वपूर्ण लौह-इस्पात उत्पादक देश है तथापि हम इनके पूर्ण संभाव्य का विकास नहीं कर पाए हैं। इसके निम्न कारण हैं (क) उच्च लागत तथा कोकिंग कोयले की -सीमित उपलब्धता, (ख) कम

श्रमिक उत्पादकता. (ग) ऊर्जा की अनियमित पूर्ति तथा (घ) अविकसित अवसंरचना आदि।

हम भी उच्च कोटि का इस्पात दूसरे देशों से आयात करते हैं। हालाँकि हमारा कुल इस्पात उत्पादन घरेलू माँग पूर्ति हेतु पर्याप्त है।

निजी क्षेत्र में उद्यमियों के प्रयत्न से तथा उदारीकरण व प्रत्यक्ष विदेशी निवेश ने इस उद्योग को प्रोत्साहन दिया है। इस्पात उद्योग को अधिक स्पर्धावान बनाने के लिए अनुसंधान और विकास के संसाधनों को नियत करने की आवश्यकता है।

एल्यूमिनियम प्रगलन (Smelting)

भारत में एल्यूमिनियम प्रगलन दूसरा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण धातु शोधन उद्योग है। यह हल्का, जंग अवरोधी, ऊष्मा का सुचालक, लचीला तथा अन्य धातुओं के मिश्रण से अधिक कठोर बनाया जा सकता है। हवाई जहाज बनाने में, बर्तन तथा तार बनाने में इसका प्रयोग किया जाता है। कई उद्योगों में इसका महत्त्व इस्पात, ताँबा, जस्ता व सीसे के विकल्प के रूप में प्रयुक्त होने से बढ़ा है।

रसायन उद्योग

भारत में रसायन उद्योग तेजी से विकसित हो रहा तथा फैल रहा है। इसकी भागीदारी सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 3 प्रतिशत है। यह उद्योग एशिया का तीसरा बड़ा तथा विश्व में आकार की दृष्टि से 12वें स्थान पर है। इसमें लघु तथा बृहत् दोनों प्रकार की विनिर्माण इकाइयाँ सम्मिलित हैं। अकार्बनिक और कार्बनिक दोनों क्षेत्रों में तीव्र वृद्धि दर्ज की गई है।

अकार्बनिक रसायनों में सलफ्यूरिक अम्ल (उर्वरक, कृत्रिम वस्त्र, प्लास्टिक, गोंद, रंग-रोगन, डाई आदि के निर्माण में प्रयुक्त), नाइट्रिक अम्ल, क्षार, सोडा ऐश (soda ash), (काँच, साबुन, शोधक या अपमार्जक, कागज में प्रयुक्त होने वाले रसायन) तथा कास्टिक सोडा आदि शामिल हैं। इन उद्योगों का देश में विस्तृत फैलाव है

कार्बनिक रसायनों में पेट्रोरसायन शामिल हैं जो कृत्रिम वस्त्र, कृत्रिम रबर, प्लास्टिक, रंजक पदार्थ, दवाईयाँ, औषध रसायनों के बनाने में प्रयोग किये जाते हैं। ये उद्योग तेल शोधन शालाओं या पेट्रोरसायन संयंत्रों के समीप स्थापित हैं।

रसायन उद्योग अपने आप में एक बड़ा उपभोक्ता भी है। आधारभूत रसायन एक प्रक्रिया द्वारा अन्य रसायन उत्पन्न करते हैं जिनका उपयोग औद्योगिक अनुप्रयोग, कृषि अथवा उपभोक्ता बाज़ारों के लिए किया जाता है। ऐसे ही उत्पादों की एक सूची बनाएँ।

उर्वरक उद्योग

उर्वरक उद्योग नाइट्रोजनी उर्वरक (मुख्यतः यूरिया), फास्फेटिक उर्वरक (D.A.P.) तथा अमोनियम फास्फेट और मिश्रित उर्वरक जिसमें तीन मुख्य पोषक उर्वरक नाइट्रोजन, फास्फेट व पोटाश शामिल हैं, के उत्पादन क्षेत्रों के इर्द-गिर्द केंद्रित हैं। तीसरा अर्थात् पोटाश पूर्णतः आयात किया जाता है क्योंकि हमारे देश में वाणिज्यिक रूप से या किसी भी रूप में प्रयुक्त होने वाला पोटाश या पोटाशियम यौगिकों के भंडार नहीं है।

हरित क्रांति के पश्चात् यह उद्योग देश के अन्य अनेक भागों में भी फैल गया। गुजरात, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, पंजाब और केरल राज्य कुल उर्वरक उत्पादन का लगभग 50 प्रतिशत उत्पादन करते हैं। अन्य महत्त्वपूर्ण उत्पादक राज्य आंध्र प्रदेश, ओडिशा, राजस्थान, बिहार, महाराष्ट्र, असम, पश्चिम बंगाल, गोआ, दिल्ली, मध्य प्रदेश तथा कर्नाटक हैं।

सीमेंट उद्योग

निर्माण कार्यों जैसे घर, कारखाने, पुल, सड़कें, हवाई अड्डा, बाँध तथा अन्य व्यापारिक प्रतिष्ठानों के निर्माण में सीमेंट आवश्यक है। इस उद्योग को भारी व स्थूल कच्चे माल जैसे चूना पत्थर, सिलिका और जिप्सम की आवश्यकता होती है। रेल परिवहन के अतिरिक्त इसमें कोयला तथा विद्युत ऊर्जा भी आवश्यक है।

इस उद्योग की इकाइयाँ गुजरात में लगाई गई हैं. क्योंकि यहाँ से इसे खाड़ी के देशों के बाज़ार की उपलब्धता है।

पहला सीमेंट उद्योग सन् 1904 में चेन्नई में लगाया गया था। स्वतंत्रता के पश्चात् इस उद्योग का प्रसार हुआ।

गुणवत्ता में सुधार के कारण, भारत की बड़ी घरेलू माँग के अतिरिक्त, पूर्वी. एशिया, मध्यपूर्व, अफ्रीका तथा दक्षिण एशिया के बाजारों में माँग बढ़ी है। यह उद्योग उत्पादन तथा निर्यात दोनों ही रूपों में प्रगति पर है। इस उद्योग को बनाये रखने के लिए पर्याप्त घरेलू माँग और पूर्ति में वृद्धि करने के प्रयास किये जा रहे हैं।

मोटरगाड़ी उद्योग

मोटरगाड़ी यात्रियों तथा सामान के तीव्र परिवहन के साधन हैं। भारत में विभिन्न केंद्रों पर ट्रक, बसें, कारें, मोटर साइकिल, स्कूटर, तिपहिया तथा बहुउपयोगी वाहन निर्मित किये जाते हैं। उदारीकरण के पश्चात्, नए और आधुनिक मॉडल के वाहनों का बाजार तथा वाहनों की माँग बढ़ी है, जिससे इस उद्योग में विशेषकर कार, दोपहिया तथा तिपहिया वाहनों में अपार वृद्धि हुई है। यह उद्योग दिल्ली, गुड़गाँव, मुंबई, पुणे, चेन्नई, कोलकाता. लखनऊ, इंदौर, हैदराबाद, जमशेदपुर तथा बेंगलूरु के आस पास स्थित हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी तथा इलैक्ट्रोनिक उद्योग

इलैक्ट्रोनिक उद्योग के अंतर्गत आने वाले उत्पादों में ट्रांजिस्टर से लेकर टेलीविजन, टेलीफ़ोन, सेल्यूलर टेलीकॉम, टेलीफ़ोन एक्सचेंज, राडार, कंप्यूटर तथा दूरसंचार उद्योग के लिए उपयोगी अनेक अन्य उपकरण तक बनाये जाते हैं। बेंगलुरु भारत की इलैक्ट्रॉनिक राजधानी के रूप में उभरा है। इलैक्ट्रोनिक सामान के अन्य महत्त्वपूर्ण उत्पादक केंद्र मुंबई, दिल्ली, हैदराबाद, पुणे, चेन्नई, कोलकाता तथा लखनऊ हैं। इस उद्योग का सर्वाधिक संकेंद्रण बेंगलुरु, नोएडा, मुम्बई, चेन्नई, हैदराबाद और पुणे में है। यह भी अत्यन्त रोचक है कि भारत में सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग के सफल होने का कारण हार्डवेयर व सॉफ़्टवेयर का निरंतर विकास है।

औद्योगिक प्रदूषण तथा पर्यावरण निम्नीकरण

यद्यपि उद्योगों की भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि व विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका है, तथापि इनके द्वारा बढ़ते भूमि, वायु, जल तथा पर्यावरण प्रदूषण को भी नकारा नहीं जा सकता। उद्योग चार प्रकार के प्रदूषण के लिए उत्तरदायी हैं (क) वायु (ख) जल (ग) भूमि (घ) ध्वनि। प्रदूषण करने वाले उद्योगों में ताप विद्युतगृह भी सम्मिलित हैं।

वायु प्रदूषण अधिक अनुपात में अनचाही गैसों की उपस्थिति जैसे सल्फर डाइऑक्साइड तथा कार्बन मोनोऑक्साइड वायु प्रदूषण का कारण है। वायु में निलंबित कणनुमा पदार्थों में ठोस व द्रवीय दोनों ही प्रकार के कण होते हैं जैसे धूलि, स्प्रे, कुहासा तथा धुआँ। रसायन व कागज उद्योग, ईंटों के भट्ट, तेल शोधनशालाएँ, प्रगलन उद्योग, जीवाश्म ईंधन दहन तथा छोटे-बड़े कारखाने प्रदूषण के नियमों का उल्लंघन करते हुए धुआँ निष्कासित करते हैं। जहरीली गैसों का रिसाव बहुत भयानक तथा दूरगामी प्रभावों वाला हो सकता है। क्या आप भोपाल गैस त्रासदी के विषय में जानते हैं? वायु प्रदूषण, मानव स्वास्थ्य, पशुओं, पौधों, इमारतों तथा पूरे पर्यावरण पर दुष्प्रभाव डालते हैं।

जल प्रदूषण उद्योगों द्वारा कार्बनिक तथा अकार्बनिक अपशिष्ट पदार्थों के नदी में छोड़ने से जल प्रदूषण फैलता हैं। जल प्रदूषण के प्रमुख कारक - कागज, लुग्दी, रसायन, वस्त्र, तथा रंगाई उद्योग, तेल शोधन शालाएँ, चमड़ा उद्योग तथा इलैक्ट्रोप्लेटिंग उद्योग हैं

जो रंग, अपमार्जक, अम्ल, लवण तथा भारी धातुएँ जैसे सीसा, पारा, कीटनाशक, उर्वरक, कार्बन, प्लास्टिक और रबर सहित कृत्रिम रसायन आदि जल में वाहित करते हैं। भारत के मुख्य अपशिष्ट पदार्थों में फ्लाई एश, फोस्फो-जिप्सम तथा लोहा-इस्पात की अशुद्धियाँ (slag) हैं।

तापीय प्रदूषण जब कारखानों तथा तापघरों से गर्म जल को बिना ठंडा किए ही नदियों तथा तालाबों में छोड़ दिया जाता है, तो जल में तापीय प्रदूषण होता है। जलीय जीवन पर इसका क्या प्रभाव होगा बताएँ?

परमाणु ऊर्जा संयंत्रों के अपशिष्ट व परमाणु शस्त्र उत्पादक कारखानों से कैंसर, जन्मजात विकार तथा अकाल प्रसव जैसी बीमारियाँ होती हैं। मृदा व जल प्रदूषण आपस में संबंधित हैं। मलबे का ढेर विशेषकर काँच, हानिकारक रसायन, औद्योगिक बहाव, पैकिंग, लवण तथा कूड़ा-कर्कट मृदा को अनुपजाऊ बनाता है। वर्षा जल के साथ ये प्रदूषक जमीन से रिसते हुए भूमिगत जल तक पहुँच कर उसे भी प्रदूषित कर देते हैं।

ध्वनि प्रदूषण ध्वनि प्रदूषण से खिन्नता तथा उत्तेजना ही नहीं वरन् श्रवण असक्षमता, हृदय गति, रक्त चाप तथा अन्य कायिक व्यथाएँ भी बढ़ती हैं। अनचाही ध्वनि, उत्तेजना व मानसिक चिंता का स्रोत है। औद्योगिक तथा निर्माण कार्य, कारखानों के उपकरण, जेनरेटर, लकड़ी चीरने के कारखाने, गैस यांत्रिकी तथा विद्युत ड्रिल (Drill) भी अधिक ध्वनि उत्पन्न करते हैं।

पर्यावरणीय निम्नीकरण की रोकथाम

कारखानों द्वारा निष्कासित एक लिटर अपशिष्ट से लगभग आठ गुणा स्वच्छ जल दूषित होता है। औद्योगिक प्रदूषण से स्वच्छ जल को कैसे बचाया जा सकता है, इसके कुछ निम्न सुझाव हैं –

(क) विभिन्न प्रक्रियाओं में जल का न्यूनतम उपयोग तथा जल का दो या अधिक उत्तरोत्तर अवस्थाओं में पुनर्चक्रण द्वारा पुनः उपयोग।

(ख) जल की आवश्यकता पूर्ति हेतु वर्षा जल संग्रहण।

(ग) नदियों व तालाबों में गर्म जल तथा अपशिष्ट पदार्थों को प्रवाहित करने से पहले उनका शोधन करना। औद्योगिक अपशिष्ट का शोधन तीन चरणों में किया जा सकता है-

(अ) यांत्रिक साधनों द्वारा प्राथमिक शोधन। इसमें अपशिष्ट पदार्थों की छँटाई, उनके छोटे-छोटे टुकड़े करना, ढकना तथा तलछट जमाव आदि सम्मिलित हैं।

(ब) जैविक प्रक्रियाओं द्वारा द्वितयीक शोधन।

(स) जैविक, रासायनिक तथा भौतिक प्रक्रियाओं द्वारा तृतीयक शोधन। इसमें अपशिष्ट जल को पुनर्चक्रण द्वारा पुनः प्रयोग योग्य बनाया जाता है।

जहाँ भूमिगत जल का स्तर कम है, वहाँ उद्योगों द्वारा इसके अधिक निष्कासन पर कानूनी प्रतिबंध होना चाहिये। वायु में निलंबित प्रदूषण को कम करने के लिए कारखानों में ऊँची चिमनियाँ, चिमनियों में एलेक्ट्रोस्टैटिक अवक्षेपण (eletrostatic precipitators), स्क्रबर उपकरण तथा गैसीय प्रदूषक पदार्थों को जड़त्वीय रूप से पृथक करने के लिए उपकरण होना चाहिये। कारखानों में कोयले की अपेक्षा तेल व गैस के प्रयोग से धुएँ के निष्कासन में कमी लायी जा सकती है। मशीनों व उपकरणों का उपयोग किया जा सकता है तथा जेनरेटरों में साइलेंसर (silencers) लगाया जा सकता है। ऐसी मशीनरी का प्रयोग किया जाए जो ऊर्जा सक्षम हों तथा कम ध्वनि प्रदूषण करे। ध्वनि अवशोषित करने वाले उपकरणों के इस्तेमाल के साथ कानों पर शोर नियंत्रण उपकरण भी पहनने चाहिये।

सतत् पोषणीय विकास की चुनौतियों के लिए पर्यावरणीय संचेतना से युक्त आर्थिक विकास की जरूरत है।

राष्ट्रीय ताप विद्युतग्रह (NTPC) द्वारा
दिखाया गया मार्ग

भारत में राष्ट्रीय ताप विद्युतगृह कारपोरेशन विद्युत प्रदान करने वाली मुख्य निगम है। इसके पास पर्यावरण प्रबंधनतंत्र (EMS) 14001 के लिए आई एस ओ (ISO) प्रमाण पत्र है। यह निगम प्राकृतिक पर्यावरण और संसाधन जैसे जल, खनिज तेल, गैस तथा ईंधन संरक्षण नीति का हिमायती है तथा इन्हें ध्यान में रखकर ही विद्युत संयंत्रों की स्थापना करता है। ऐसा निम्न उपायों द्वारा संभव है

(अ) आधुनिकतम तकनीकों पर आधारित उपकरणों का सही उपयोग करके तथा विद्यमान उपकरणों में सुधार।

(ब) अधिकतम राख का इस्तेमाल कर अपशिष्ट पदार्थों का न्यून उत्पादन।

(स) पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने के लिए हरित क्षेत्र की सुरक्षा तथा वृक्षारोपण के लिए प्रेरित करना।

(द) तरल अपशिष्ट प्रबंधन, राख युक्त जलीय पुनर्चक्रण तथा राख-संग्रह (Ash pond) प्रबंधन द्वारा पर्यावरण प्रदूषण को कम करना।

(ध) सभी ऊर्जा संयंत्रों का पारिस्थितिकीय रूप से मॉनीटर तथा समीक्षा करना एवं ऑनलाइन आँकड़ों का प्रबंधन करना।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की जीवन रेखाएँ

हम अपने प्रतिदिन के जीवन में विभिन्न सामग्रियों एवं सेवाओं का प्रयोग करते हैं। इनमें से कुछ हमारे आस पास उपलब्ध होती हैं, जबकि कुछ अन्य चीज़ों की जरूरतें दूसरे स्थानों से लाकर पूरी की जाती हैं। वस्तुएँ तथा सेवाएँ माँग स्थल से आपूर्ति स्थल पर अपने आप नहीं पहुँच जाती। वस्तुओं तथा सेवाओं के आपूर्ति स्थानों से माँग स्थानों तक ले जाने हेतु परिवहन की आवश्यकता होती है। कुछ व्यक्ति इसको उपलब्ध करवाने में संलग्न हैं। जो व्यक्ति उत्पाद को परिवहन द्वारा उपभोक्ताओं तक पहुँचाते हैं; उन्हें व्यापारी कहा जाता है। अतः एक देश के विकास की गति वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन के साथ उनके एक स्थान से दूसरे स्थान तक वहन (movement) की सुविधा पर भी निर्भर करना पड़ता है। इसलिए सक्षम परिवहन के साधन तीव्र विकास हेतु पूर्व अपेक्षित हैं।

वस्तुओं तथा सेवाओं का लाना ले जाना पृथ्वी के तीन महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों पर किया जाता है स्थल, जल तथा वायु। इन्हीं के आधार पर परिवहन को स्थल, जल व वायु परिवहन में वर्गीकृत किया जा सकता है।

बहुत समय तक व्यापार तथा परिवहन सुविधा एक सीमित क्षेत्र तक ही किया जाता था। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के विकास के साथ व्यापार व परिवहन के प्रभाव क्षेत्र में विस्तृत वृद्धि हुई है। सक्षम व तीव्र गति वाले परिवहन से आज संसार एक बड़े गाँव में परिवर्तित हो गया है। परिवहन का यह विकास संचार साधनों के विकास की सहायता से ही संभव हो सका है। इसीलिए परिवहन, संचार व व्यापार एक दूसरे के पूरक हैं।

आज भारत अपने विशाल आकार, विविधताओं, भाषाई तथा सामाजिक व सांस्कृतिक बहुलताओं के बावजूद संसार के सभी क्षेत्रों से सुचारू रूप से जुड़ा हुआ है। रेल, वायु एवं जल परिवहन, समाचारपत्र, रेडियो, दूरदर्शन, सिनेमा तथा इंटरनेट आदि इसके सामाजिक-आर्थिक विकास में अनेक प्रकार से सहायक हैं। स्थानिक से अंतर्राष्ट्रीय स्तरीय व्यापार ने अर्थव्यवस्था को जीवन शक्ति दी है। इसने हमारे जीवन को समृद्ध किया है तथा आरामदायक जीवन के लिए सुविधाओं व साधनों में बढ़ोतरी की है।

इस अध्याय में आप पढ़ेंगे कि किस प्रकार आधुनिक संचार तथा परिवहन के साधन हमारे देश और इसकी आधुनिक अर्थव्यवस्था को संचालित करते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि सघन व सक्षम परिवहन का जाल तथा संचार के साधन आज विश्व, राष्ट्र व स्थानीय व्यापार हेतु पूर्व-अपेक्षित हैं।

परिवहन (Transport)

स्थल परिवहन

भारत विश्व के सर्वाधिक सड़क जाल वाले देशों में से एक है. यह सड़क जाल लगभग 23 लाख किमी. है। भारत में सड़क परिवहन, रेल परिवहन से पहले प्रारंभहुआ। निर्माण तथा व्यवस्था में सड़क परिवहन, रेल परिवहन की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक है। रेल परिवहन की अपेक्षा सड़क परिवहन की बढ़ती महत्ता निम्न कारणों से है -

रेलवे लाइन की अपेक्षा सड़कों की निर्माण लागत बहुत कम है।

अपेक्षाकृत ऊबड़-खाबड़ व विच्छिन्न भू-भागों पर सड़कें बनाई जा सकती हैं।

अधिक ढाल प्रवणता तथा पहाड़ी क्षेत्रों में भी सड़कें निर्मित की जा सकती हैं।

अपेक्षाकृत कम व्यक्तियों, कम दूरी व कम वस्तुओं के परिवहन में सड़क मितव्ययी है।

यह घर-घर सेवाएँ उपलब्ध करवाता है तथा सामान चढ़ाने व उतारने की लागत भी अपेक्षाकृत कम है।

सड़क परिवहन, अन्य परिवहन साधनों के उपयोग में एक कड़ी के रूप में भी कार्य करता है, जैसे सड़कें, रेलवे स्टेशन, वायु व समुद्री पत्तनों को जोड़ती हैं।

भारत में सड़कों की सक्षमता के आधार पर इन्हें निम्न छः वर्गों में वर्गीकृत किया गया है। राष्ट्रीय राजमार्गों के मानचित्र देखें तथा इन सड़कों की महत्त्वपूर्ण भूमिका बताएँ।

स्वर्णिम चतुर्भुज महा राजमार्ग (Golden Quadrilateral Super Highways) - भारत सरकार ने दिल्ली-कोलकत्ता, चेन्नई-मुंबई व दिल्ली को जोड़ने वाली 6 लेन वाली महा राजमार्गों की सड़क परियोजना प्रारंभ की है। इस परियोजना के तहत दो गलियारे प्रस्तावित हैं प्रथम उत्तर-दक्षिण गलियारा जो श्रीनगर को कन्याकुमारी से जोड़ता है तथा द्वितीय जो पूर्व-पश्चिम गलियारा जो सिलचर (असम) तथा पोरबंदर (गुजरात) को जोड़ता है। इस महा राजमार्ग का प्रमुख उद्देश्य भारत के मेगासिटी (Mega cities) के मध्य की दूरी व परिवहन समय को न्यूनतम करना है। यह राजमार्ग परियोजना भारत के राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (NHAI) के अधिकार क्षेत्र में है।

राष्ट्रीय राजमार्ग (National Highways) राष्ट्रीय राजमार्ग देश के दूरस्थ भागों को जोड़ते हैं। ये प्राथमिक सड़क तंत्र हैं जिनका निर्माण व रखरखाव केंद्रीय लोक निर्माण विभाग (CPWD) के अधिकार क्षेत्र में है। अनेक प्रमुख राष्ट्रीय राजमार्ग उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम दिशाओं में फैले हैं। दिल्ली व अमृतसर के मध्य ऐतिहासिक शेरशाह सूरी मार्ग राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या-1, के नाम से जाना जाता है।

राज्य राजमार्ग (State Highways) -राज्यों की राजधानियों को जिला मुख्यालयों से जोड़ने वाली सड़कें राज्य राजमार्ग कहलाती हैं। राज्य तथा

केंद्रशासित क्षेत्रों में इनकी व्यवस्था तथा निर्माण का दायित्व राज्य के सार्वजनिक निर्माण विभाग (PWD) का होता है।

जिला मार्ग ये सड़कें जिले के विभिन्न प्रशासनिक केंद्रों को जिला मुख्यालय से जोड़ती हैं। इन सड़कों की व्यवस्था का उत्तरदायित्व जिला परिषद् का है।

अन्य सड़कें इस वर्ग के अंतर्गत वे सड़कें आती हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों तथा गाँवों को शहरों से जोड़ती हैं। 'प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क परियोजना' के तहत इन सड़कों के विकास को विशेष प्रोत्साहन मिला है। इस परियोजना के कुछ विशेष प्रावधान हैं जिसमें देश के प्रत्येक गाँव को प्रमुख शहरों से पक्की सड़कों (वे सड़कें जिन पर वर्ष भर वाहन चल सकें) द्वारा जोड़ना प्रस्तावित है।

सीमांत सड़कें उपरोक्त सड़कों के अतिरिक्त, भारत सरकार प्राधिकरण के अधीन सीमा सड़क संगठन है जो देश के सीमांत क्षेत्रों में सड़कों का निर्माण व उनकी देख-रेख करता है। यह संगठन 1960 में बनाया गया जिसका कार्य उत्तर तथा उतरी-पूर्वी क्षेत्रों में सामरिक महत्त्व की सड़कों का विकास करना था। इन सड़कों के विकास से दुर्गम क्षेत्रों में अभिगम्यता बढ़ी है तथा ये इन क्षेत्रों के आर्थिक विकास में भी सहायक हुई हैं।

सड़क निर्माण में प्रयुक्त पदार्थ के आधार पर भी सड़कों को कच्ची व पक्की सड़कों में वर्गीकृत किया जाता है। पक्की सड़कें, सीमेंट, कंक्रीट व तारकोल द्वारा निर्मित होती है. अतः ये बारहमासी सड़कें हैं। कच्ची सड़कें वर्षा ऋतु में अनुपयोगी हो जाती है।

सड़क घनत्व

प्रति सौ वर्ग किमी. क्षेत्र में सड़कों की लंबाई को सड़क घनत्व कहा जाता है। देश में सड़कों का वितरण एक समान नहीं है। इनका घनत्व जम्मू-कश्मीर में 10 किमी. प्रति सौ वर्ग किमी. से केरल में 375 किमी. प्रति सौ वर्ग किमी. तक है; जबकि वर्ष 1996-97 के अनुसार सड़कों का औसत राष्ट्रीय घनत्व 75 किमी. प्रति सौ वर्ग किमी. था। भारत में सड़क परिवहन अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। यातायात (traffic) व यात्रियों की संख्या को देखते हुए सड़कों का जाल अपर्याप्त है। लगभग आधी सड़कें कच्ची हैं तथा वर्षा ऋतु के दौरान इनका उपयोग सीमित हो जाता है। राष्ट्रीय राजमार्ग भी अपर्याप्त हैं। इसके साथ ही शहरों में भी सड़कें अत्यंत तंग तथा भीड़ भरी हैं तथा इन पर बने पुल व पुलिया (culverts) पुराने तथा तंग हैं।

रेल परिवहन

भारत में रेल परिवहन, वस्तुओं तथा यात्रियों के परिवहन का प्रमुख साधन है। रेल परिवहन अनेक कार्यों में सहायक है जैसे व्यापार, भ्रमण, तीर्थ यात्राएँ व लंबी दूरी तक सामान का परिवहन आदि। एक प्रमुख परिवहन के साधन के अतिरिक्त, पिछले 150 वर्षों से भी अधिक समय से भारतीय रेल एक महत्त्वपूर्ण समंवयक के रूप में भी जानी जाती है। भारतीय रेलवे देश की अर्थव्यवस्था, उद्योगों व कृषि के तीव्र गति से विकास के लिए उत्तरदायी है। 31 मार्च 2004 के दिन भारतीय रेल परिवहन की मार्गीय लंबाई 63,221 किमी. थी, जिस पर 7031 स्टेशन थे, तथा इसमें 7817 रेल इंजन, 5321 यात्री सेवा वाहन, 4904 अन्य कोच वाहन तथा 228,170 माल गाड़ियाँ सम्मिलित थीं।

छोटी पहाड़ियों और सुरंगों आदि से होकर गुजरते हैं। हिमालय पर्वतीय क्षेत्र भी दुर्लभ उच्चावच, विरल जनसंख्या तथा आर्थिक अवसरों की कमी के कारण रेलवे लाइन के निर्माण में प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है। इसी प्रकार, पश्चिमी राजस्थान, गुजरात के दलदली भाग, मध्यप्रदेश के वन-क्षेत्र, छत्तीसगढ़, उड़ीसा व झारखंड में रेल लाइन निर्माण करना कठिन है। सह्याद्रि तथा उससे सन्निध क्षेत्र को भी घाट या दरों के द्वारा ही पार कर पाना संभव है। कुछ वर्ष पहले भारत के महत्त्वपूर्ण आर्थिक क्षेत्र में पश्चिमी तट के साथ कोंकण रेलवे के विकास ने यात्री व वस्तुओं के आवागमन को सुविधाजनक बनाया है। यद्यपि यहाँ असंख्य समस्याएँ भी हैं, जैसे भूस्खलन तथा -किसी-किसी भाग में रेलवे ट्रैक का धँसना आदि।

तालिका 7.1 भारत – रेलवे मार्ग

भारतीय रेल 63, 221 किमी. लंबे मार्ग को अनेक गेज पर तय करती है।

गेज मीटर में	रूट (किमी.)	वहन मार्ग (किमी.)	कुल मार्ग (किमी.)
बड़ी लाइन (1. 676)	46, 807	66, 754	88, 547
मीटर लाइन (1.000)	13, 209	13, 976	16, 489
छोटी लाइन (0.762 & 0.610)	3, 124	3, 129	3, 450
कुल	**63, 221**	**83, 859**	**1, 08, 486**

स्रोत – भारत 2006

भारतीय रेल परिवहन को 16 रेल प्रखंडों में पुनः संकलित किया गया है।

देश में रेल परिवहन के वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों में भू-आकृतिक, आर्थिक व प्रशासकीय कारक प्रमुख हैं। उत्तरी मैदान अपनी विस्तृत समतल भूमि, सघन जनसंख्या घनत्व, संपन्न कृषि व प्रचुर संसाधनों के कारण रेल परिवहन के विकास व वृद्धि में सहायक रहा है, यद्यपि असंख्य नदियों के विस्तृत जल मार्गों पर पुलों के निर्माण में कुछ बाधाएँ आई है। प्रायद्वीप भारत में, रेलमार्ग ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी क्षेत्रों, आज राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में परिवहन के अन्य सभी साधनों की अपेक्षा रेल परिवहन प्रमुख हो गया है। यद्यपि रेल परिवहन समस्याओं से मुक्त नहीं है। बहुत से यात्री बिना टिकट यात्रा करते हैं। रेल संपत्ति की हानि तथा चोरी जैसी समस्याएँ भी पूर्णतया समाप्त नहीं हुई हैं। जंजीर खींच कर यात्री कहीं भी अनावश्यक रूप से गाड़ी रोकते हैं, जिससे रेलवे को भारी हानि उठानी पड़ती है। जरा सोचिए, हम अपनी रेलगाड़ियों को निर्धारित समय पर चलने में कैसे मदद कर सकते हैं?

पाइपलाइन

भारत के परिवहन मानचित्र पर पाइपलाइन एक नया परिवहन का साधन है। पहले पाइपलाइन का उपयोग शहरों व उद्योगों में पानी पहुँचाने हेतु होता था। आज इसका प्रयोग कच्चा तेल, पेट्रोल उत्पाद तथा तेल से प्राप्त प्राकृतिक तथा गैस क्षेत्र से उपलब्ध गैस शोधनशालाओं, उर्वरक कारखानों व बड़े ताप विद्युत गृहों तक पहुँचाने में किया जाता है। ठोस पदार्थों को तरल अवस्था (Slurry) में परिवर्तित कर पाइपलाइनों द्वारा ले जाया जाता है। सुदूर आंतरिक भागों में स्थित शोधनशालाएँ जैसे बरौनी, मथुरा, पानीपत तथा गैस पर आधारित उर्वरक कारखानों की स्थापना पाइपलाइनों के जाल के कारण ही संभव हो पाई है। पाइपलाइन बिछाने की प्रारंभिक लागत अधिक है लेकिन इसको चलाने की (Running) लागत न्यूनतम है। वाहनांतरण देरी तथा हानियाँ इसमें लगभग नहीं के बराबर है।

देश में पाइपलाइन परिवहन के तीन प्रमुख जाल हैं-

ऊपरी असम के तेल क्षेत्रों से गुवाहाटी, बरौनी व इलाहाबाद के रास्ते कानपुर (उत्तर प्रदेश) तक। इसकी एक शाखा बरौनी से राजबंध होकर हल्दिया तक है दूसरी राजबंध से मौरी ग्राम तक तथा गुवाहाटी से सिलिगुड़ी तक है।

गुजरात में सलाया से वीरमगाँव, मथुरा, दिल्ली व सोनीपत के रास्ते पंजाब में जालंधर तक। इसकी अन्य शाखा वडोदरा के निकट कोयली को चक्शु व अन्य स्थानों से जोड़ती है।

गैस पाइपलाइन गुजरात में हजीरा को उत्तर प्रदेश में जगदीशपुर से मिलाती है। यह मध्य प्रदेश के विजयपुर के रास्ते होकर जाती है। इसकी शाखाएँ राजस्थान में कोटा, तथा उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर, बबराला व अन्य स्थानों पर हैं।

जल परिवहन

भारत के लोग अनंतकाल से समुद्री यात्राएँ करते रहे हैं। इसके नाविकों ने दूर तथा पास के क्षेत्रों में भारतीय संस्कृति व व्यापार को फैलाया है। जल परिवहन, परिवहन का सबसे सस्ता साधन है। यह भारी व स्थूलकाय वस्तुएँ ढोने में अनुकूल है। यह परिवहन साधनों में ऊर्जा सक्षम तथा पर्यावरण अनुकूल हैं। भारत में अंतः स्थलीय नौसंचालन जलमार्ग 14,500 किमी. लंबा है। इसमें केवल 3,700 किमी. मार्ग ही मशीनीकृत नौकाओं द्वारा तय किया जाता है। निम्न जलमार्गों को भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय जलमार्ग घोषित किया गया है

हल्दिया तथा इलाहाबाद के मध्य गंगा जलमार्ग जो 1620 किमी. लंबा है नौगम्य जलमार्ग संख्या-1 -

सदिया व धुबरी के मध्य 891 किमी. लंबा ब्रह्मपुत्र नदी जल मार्ग नौगम्य जलमार्ग संख्या-2 -

केरल में पश्चिम-तटीय नहर (कोट्टापुरम से कोम्मान तक, उद्योगमंडल तथा चंपक्कारा नहरें 205 किमी.) नौगम्य जलमार्ग संख्या-3

अन्य सक्षम आंतरिक जलमार्गों में गोदावरी, कृष्णा, बराक, सुंदरवन, बकिंघम नहर, ब्राह्मणी, पूर्वी-पश्चिमी नहर तथा दामोदर घाटी नहर निगम आदि शामिल हैं।

इन सबके अतिरिक्त, विदेशी व्यापार भारतीय तट पर स्थित पत्तनों द्वारा किया जाता है। देश का 95 प्रतिशत व्यापार (मुद्रा रूप में 68 प्रतिशत) समुद्रों द्वारा ही होता है।

प्रमुख समुद्री पत्तन

भारत की 7,516.6 किमी. लंबी समुद्री तट रेखा के साथ 12 प्रमुख तथा 181 मध्यम व छोटे पत्तन हैं। ये प्रमुख पत्तन देश का 95 प्रतिशत विदेशी व्यापार संचालित करते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के कच्छ में कांडला पत्तन पहले पत्तन के रूप में विकसित किया गया। ऐसा देश विभाजन से कराची पत्तन की कमी को पूरा करने तथा मुंबई से होने वाले व्यापारिक दबाव को कम करने के लिए था। कांडला एक ज्वारीय पत्तन है। यह जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान व गुजरात के औद्योगिक तथा खाद्यान्नों के आयात-निर्यात को संचालित करता है।

मुंबई वृहत्तम पत्तन है जिसके प्राकृतिक खुले, विस्तृत व सुचारु पोताश्रय हैं। मुंबई पत्तन के अधिक परिवहन को ध्यान में रखकर इसके सामने जवाहरलाल नेहरू पत्तन विकसित किया गया जो इस पूरे क्षेत्र को एक समूह पत्तन की सुविधा भी प्रदान कर सके। लौह अयस्क के निर्यात के संदर्भ में मारमागाओ पत्तन देश का महत्त्वपूर्ण पत्तन है। यहाँ से देश के कुल निर्यात का आधा (50 प्रतिशत) लौह अयस्क निर्यात किया जाता है। कर्नाटक में स्थित न्यू-मैंगलोर पत्तन कुद्रेमुख खानों से निकले लौह अयस्क का निर्यात करता है। सुदूर दक्षिण-पश्चिम में कोची पत्तन है; यह एक लैगून के मुहाने पर स्थित एक प्राकृतिक पोताश्रय है।

पूर्वी तट के साथ तमिलनाडु में दक्षिण-पूर्वी छोर पर तूतीकोरन पत्तन है। यह एक प्राकृतिक पोताश्रय है तथा इसकी पृष्ठभूमि भी अत्यंत समृद्ध है। अतः यह पत्तन हमारे पड़ोसी देशों जैसे श्रीलंका, मालदीव आदि तथा - भारत के तटीय क्षेत्रों की भिन्न वस्तुओं के व्यापार को संचालित करता है। चेन्नई हमारे देश का प्राचीनतम कृत्रिम पत्तन है। व्यापार की मात्रा तथा लदे सामान के संदर्भ में इसका मुंबई के बाद दूसरा स्थान है। विशाखापट्नम स्थल से घिरा, गहरा व सुरक्षित पत्तन है। प्रारम्भ में यह पत्तन लौह अयस्क निर्यातक के रूप में विकसित किया गया था। उड़ीसा में स्थित पारादीप पत्तन विशेषत: लौह अयस्क का निर्यात करता है। कोलकाता एक अंत: स्थलीय नदीय (Riverine) पत्तन है। यह पत्तन गंगा-ब्रह्मपुत्र बेसिन के वृहत् व समृद्ध पृष्ठभूमि को सेवाएँ प्रदान करता है। ज्वारीय (Tidal) पत्तन होने के कारण तथा हुगली के तलछट जमाव से

इसे नियमित रूप से साफ करना पड़ता है। कोलकाता पत्तन पर बढ़ते व्यापार को कम करने हेतु हल्दिया सहायक पत्तन के रूप में विकसित किया गया है।

वायु परिवहन

आज वायु परिवहन तीव्रतम, आरामदायक व प्रतिष्ठित परिवहन का साधन है। इसके द्वारा अति दुर्गम स्थानों जैसे ऊँचे पर्वत, मरुस्थलों, घने जंगलों व लंबे समुद्री रास्तों को सुगमता से पार किया जा सकता है। वायु परिवहन के अभाव में, देश के उत्तरी पूर्वी राज्यों के विषय में सोचें, जहाँ बड़ी नदियाँ, विच्छिन्न धरातल, घने जंगल, निरंतर बाढ़ आदि एक सामान्य बात है। हवाई यात्रा ने इसे अधिक अभिगम्य बना दिया है।

सन् 1953 में वायु परिवहन का राष्ट्रीयकरण किया गया। व्यवहारिक तौर पर इंडियन एयर लाइंस, एलाइंस एयर (इंडियन एयरलाइंस की अनुशंगी), तथा कई निजी एयरलाइंस घरेलु विमान सेवाएँ उपलब्ध कराती है। एयर इंडिया अंतर्राष्ट्रीय वायु सेवाएँ प्रदान करती है। पवन हंस हेलीकाप्टर लिमिटेड, तेल व प्राकृतिक गैस आयोग को इसकी अपतटीय संक्रियाओं में तथा अगम्य व दुर्लभभू-भागों जैसे उत्तरी-पूर्वी राज्यों तथा जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश व उत्तराखण्ड के आंतरिक क्षेत्रों में हेलीकाप्टर सेवाएँ उपलब्ध करवाता है। इंडियन एयरलाइंस की सक्रियाएँ पड़ोसी देशों दक्षिण एशिया, दक्षिण-पूर्वी एशिया और मध्य एशिया तक विस्तृत हैं।

इंडियन एयरलाइंस से जुड़े देशों के नाम बताएँ।

हवाई यात्रा सभी व्यक्तियों की पहुँच में नहीं है। केवल उत्तरी-पूर्वी राज्यों में इन सेवाओं को आम आदमी तक उपलब्ध करवाने हेतु विशेष प्रबंध किये गए हैं।

संचार सेवाएँ

जब से मानव पृथ्वी पर अवतरित हुआ है, उसने विभिन्न संचार माध्यमों का प्रयोग किया है। लेकिन आधुनिक समय में बदलाव की गति तीव्र है। संदेश प्राप्तकर्ता या संदेश भेजने वाले के गतिविहीन रहते हुए भी लंबी दूरी का संचार बहुत आसान है। निजी दूरसंचार तथा जनसंचार में दूरदर्शन, रेडियो, समाचार पत्र समूह, प्रेस तथा सिनेमा, आदि देश के प्रमुख संचार साधन हैं। भारत का डाक-संचार तंत्र विश्व का वृहत्तम है। यह पार्सल, निजी पत्र व्यवहार तथा तार आदि को संचालित करता है। कार्ड व लिफाफा बंद चिट्ठी, पहली श्रेणी की डाक समझी जाती है तथा विभिन्न स्थानों पर वायुयान द्वारा पहुँचाए जाते हैं। द्वितीय श्रेणी की डाक में रजिस्टर्ड पैकेट, किताबें, अखबार तथा मैगज़ीन शामिल हैं। ये धरातलीय डाक द्वारा पहुँचाए जाते हैं तथा इनके लिए स्थल व जल परिवहन का प्रयोग किया जाता है। बड़े शहरों व नगरों में डाक-संचार में शीघ्रता हेतु. हाल ही में छः डाक मार्ग बनाए गए हैं। इन्हें राजधानी मार्ग, मेट्रो चैनल, ग्रीन चैनल, व्यापार (Business) चैनल, भारी चैनल तथा दस्तावेज़ चैनल के नाम से जाना जाता है।

दूर संचार-तंत्र में भारत एशिया महाद्वीप में अग्रणी है। नगरीय क्षेत्रों के अतिरिक्त, भारत के दो तिहाई से अधिक गाँव एस टी डी दूरभाष सेवा से जुड़े हैं। सूचनाओं के प्रसार को आधार स्तर से उच्च स्तर तक समृद्ध करने हेतु भारत सरकार ने देश के प्रत्येक गाँव में चौबीस घंटे एस टी डी सुविधा के विशेष प्रबंध किये हैं।

पूरे देश भर में एस टी डी की दरों को भी नियमित किया है। यह सब सूचना, संचार व अंतरिक्ष प्रोद्यौगिकी के समवित विकास से ही संभव हो पाया है।

जन-संचार, मानव को मनोरंजन के साथ बहुत से राष्ट्रीय कार्यक्रमों व नीतियों के विषय में जागरूक करता है। इसमें रेडियो, दूरदर्शन, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, किताबें तथा चलचित्र सम्मिलित हैं। आकाशवाणी (आल इंडिया रेडियो) राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा स्थानीय भाषा में देश के विभिन्न भागों में अनेक वर्गों के व्यक्तियों के लिए विविध कार्यक्रम प्रसारित करता है। दूरदर्शन, देश का राष्ट्रीय समाचार व संदेश माध्यम है तथा विश्व के बृहत्तम संचार-तंत्र में एक है। यह विभिन्न आयु वर्ग के व्यक्तियों हेतु मनोरंजक, ज्ञानवर्धक, व खेल जगत संबंधी कार्यक्रम प्रसारित करता है।

भारत में वर्ष भर अनेक समाचार पत्र तथा सामयिक पत्रिकाएँ प्रकाशित की जाती हैं। ये पत्रिकाएँ सामयिक होने के नाते (जैसे मासिक, साप्ताहिक आदि) कई प्रकार की हैं। समाचार पत्र लगभग 100 भाषाओं तथा बोलियों में प्रकाशित होते हैं। क्या आप जानते हैं कि हमारे देश में सर्वाधिक समाचार पत्र हिंदी भाषा में प्रकाशित होते हैं तथा इसके बाद अंग्रेजी व उर्दू के समाचार पत्र आते हैं। भारत विश्व में सर्वाधिक चलचित्रों का उत्पादक भी है। यह कम अवधि वाली फिल्में.. वीडियो फीचर फिल्म तथा छोटी वीडियो फिल्में बनाता है। भारतीय व विदेशी सभी फिल्मों को प्रमाणित करने का अधिकार केंद्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड (Central Board of Film Certification) को है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

राज्यों व देशों में व्यक्तियों के बीच वस्तुओं का आदान-प्रदान व्यापार कहलाता है। बाज़ार एक ऐसी जगह है जहाँ इसका विनिमय होता है। दो देशों के मध्य यह व्यापार अंतरर्राष्ट्रीय व्यापार कहलाता है। यह समुद्री, हवाई व स्थलीय मागों द्वारा हो सकता है। यद्यपि स्थानीय व्यापार शहरों, कस्बों व गाँवों में होता है, राज्यस्तरीय व्यापार दो या अधिक राज्यों के मध्य होता है। एक देश के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रगति उसके आर्थिक वैभव का सूचक है। इसीलिए इसे राष्ट्र का आर्थिक बैरोमीटर भी कहा जाता है।

सभी देश अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर निर्भर हैं क्योंकि संसाधनों की उपलब्धता क्षेत्रीय है अर्थात् इनका वितरण असमान है। आयात तथा निर्यात व्यापार के घटक हैं। आयात व निर्यात का अंतर ही देश के व्यापार संतुलन को निर्धारित करता है। अगर निर्यात मूल्य आयात मूल्य से अधिक हो तो उसे

अनुकूल व्यापार संतुलन कहते हैं। इसके विपरीत निर्यात की अपेक्षा अधिक आयात असंतुलित व्यापार कहलाता है।

विश्व के सभी भौगोलिक प्रदेशों तथा सभी व्यापारिक खंडों के साथ भारत के व्यापारिक संबंध हैं। पिछले कुछ वर्षों से वर्ष 2004-05 तक निर्यात वृद्धि वाली वस्तुएँ निम्न हैं कृषि वर्षों से संबंधित उत्पाद (वृद्धि 2.53%), खनिज व अयस्क (9.12%), रत्न व जवाहरात (26.75%), रसायन व संबंधित उत्पाद (24.45%), इंजिनियरिंग सामाज (35.63%), तथा पेट्रोलियम उत्पाद (86.12%) आदि।

भारत में आयातित वस्तुओं में पेट्रोलियम तथा पेट्रोलियम उत्पाद (वृद्धि 41.87%), मोती व बहुमूल्य रत्न (29.26%), अकार्बनिक रसायन (29.39%), कोयला, कोक तथा कोयले का गोला (briquettes) (94.17%), मशीनरी (12.56%) आदि शामिल हैं। एक समूह के रूप में भारी वस्तुओं के आयात में 39.09 प्रतिशत (कुल आयात का) वृद्धि हुई है। इस समूह में उर्वरक, खाद्यान्न, वनस्पति तेल व छपाई मशीनें भी शामिल हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में पिछले 15 वर्षों में भारी बदलाव आया है। वस्तुओं के आदान-प्रदान की अपेक्षा सूचनाओं, ज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का आदान-प्रदान बढ़ा है। भारत अंतरर्राष्ट्रीय स्तर पर एक सॉफ्टवेयर महाशक्ति के रूप में उभरा है तथा सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से अत्यधिक विदेशी मुद्रा अर्जित कर रहा है।

पर्यटन एक व्यापार के रूप में

पिछले तीन दशकों में भारत में पर्यटन उद्योग में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है। वर्ष 2003 की अपेक्षा 2004 के दौरान, देश में विदेशी पर्यटकों के आगमन में 23.5 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गई, जिससे 21,828 करोड़ विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई।

प्रत्येक वर्ष, भारत में 26 लाख से अधिक विदेशी पर्यटक आते हैं। 150 लाख से अधिक व्यक्ति पर्यटन उद्योग में प्रत्यक्ष रूप से संलग्न हैं। पर्यटन राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहित करता है तथा स्थानीय हस्तकला व सांस्कृतिक उद्यमों को प्रश्रय देता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह हमें संस्कृति तथा विरासत की समझ विकसित करने में सहायक है। विदेशी पर्यटक भारत में विरासत पर्यटन, पारि-पर्यटन (eco-tourism), रोमांचकारी पर्यटन, सांस्कृतिक पर्यटन, चिकित्सा पर्यटन तथा व्यापारिक पर्यटन के लिए आते हैं।

भारत में विदेशी पर्यटकों के लिए राजस्थान, गोआ, जम्मू व कश्मीर तथा दक्षिण भारत के मंदिरों के नगर प्रमुख दर्शनीय स्थल हैं। उत्तर-पूर्वी भारत व हिमालय के अंदरूनी भाग संभाव्य पर्यटन विकास स्थल हैं, लेकिन सामरिक कारणों से इनके विकास को अब तक प्रोत्साहित नहीं किया गया है। यद्यपि पर्यटन उद्योग विकास का एक उज्जवल भविष्य है।

COACHUP
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

Class- 11

भौतिक भूगोल का मूल सिद्धांत

1. पृथ्वी की उत्पत्ति एवं विकास
2. पृथ्वी की आंतरिक संरचना
3. महासागरों और महाद्वीपों का वितरण
4. खनिज एवं शैल
5. भू-आकृतिक प्रक्रियाएँ

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

पृथ्वी की उत्पत्ति एवं विकास

पृथ्वी की उत्पत्ति

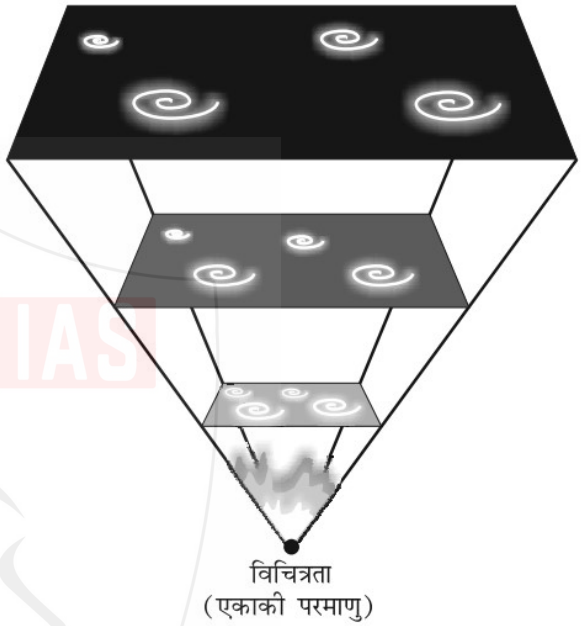
पृथ्वी की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न दार्शनिकों व वैज्ञानिकों ने अनेक परिकल्पनाएँ प्रस्तुत की हैं। इनमें से एक प्रारंभिक एवं लोकप्रिय मत जर्मन दार्शनिक इमैनुअल कान्ट (Immanuel Kant) का है। 1796 ई० में गणितज्ञ लाप्लेस (Laplace) ने इसका संशोधन प्रस्तुत किया जो नीहारिका परिकल्पना (Nebular hypothesis) के नाम से जाना जाता है। इस परिकल्पना के अनुसार ग्रहों का निर्माण धीमी गति से घूमते हुए पदार्थों के बादल से हुआ जो कि सूर्य की युवा अवस्था से संबद्ध थे। बाद में 1900 ई० में चेम्बरलेन और मोल्टन (Chamberlain & Moulton) ने कहा कि ब्रह्मांड में एक अन्य भ्रमणशील तारा सूर्य के नजदीक से गुजरा। इसके परिणाम स्वरूप तारे के गुरूत्वाकर्षण से सूर्य-सतह से सिगार के आकार का कुछ पदार्थ निकलकर अलग हो गया। यह तारा जब सूर्य से दूर चला गया तो सूर्य-सतह से बाहर निकला हुआ यह पदार्थ सूर्य के चारों तरफ घूमने लगा और यही धीरे-धीरे संघनित होकर ग्रहों के रूप में परिवर्तित हो गया। पहले सर जेम्स जींस (Sir James Jeans) और बाद में सर हॅरोल्ड जैफरी (Sir Harold Jeffrey) ने इस मत का समर्थन किया। यद्यपि कुछ समय बाद के तर्क सूर्य के साथ एक और साथी तारे के होने की बात मानते हैं। ये तर्क "द्वैतारक सिद्धांत" (Binary theories) के नाम से जाने जाते हैं। 1950 ई० में रूस के ऑटो शिमिड (Otto schmidt) व जर्मनी के कार्ल वाइजास्कर (Carl weizascar) ने नीहारिका परिकल्पना (Nebular hypothesis) में कुछ संशोधन किया, जिसमें विवरण भिन्न था। उनके विचार से सूर्य एक सौर नीहारिका से घिरा हुआ था जो मुख्यतः हाइड्रोजन. हीलीयम और धूलिकणों की बनी थी। इन कणों के घर्षण व टकराने (Collision) से एक चपटी तश्तरी की आकृति के बादल का निर्माण हुआ और अभिवृद्धि (Accretion) प्रक्रम द्वारा ही ग्रहों का निर्माण हुआ। अंततोगत्वा, वैज्ञानिकों ने पृथ्वी या अन्य ग्रहों की ही नहीं वरन् पूरे ब्रह्मांड की उत्पत्ति संबंधी समस्याओं को समझने का प्रयास किया।

आधुनिक सिद्धांत

ब्रह्मांड की उत्पत्ति

आधुनिक समय में ब्रह्मांड की उत्पत्ति संबंधी सर्वमान्य सिद्धांत बिग बैंग सिद्धांत (Big bang theory) है। इसे विस्तारित ब्रह्मांड परिकल्पना (Expanding universe hypothesis) भी कहा जाता है। 1920 ई० में एडविन हब्बल (Edwin Hubble) ने प्रमाण दिये कि ब्रह्मांड का विस्तार हो रहा है। समय बीतने के साथ आकाशगंगाएँ एक दूसरे से दूर हो रही हैं। आप प्रयोग कर जान सकते हैं कि ब्रह्मांड विस्तार का क्या अर्थ है। एक गुब्बारा लें और उसपर कुछ निशान लगाएँ जिनको आकाशगंगायें मान लें। जब आप इस गुब्बारे को फुलाएँगे, गुब्बारे पर लगे ये निशान गुब्बारे के फैलने के साथ-साथ एक दूसरे से दूर जाते प्रतीत होंगे। इसी प्रकार आकाशगंगाओं के बीच की दूरी भी बढ़ रही है और परिणामस्वरूप ब्रह्मांड विस्तारित हो रहा है। यद्यपि आप यह पाएँगे कि गुब्बारे पर लगे चिह्नों के बीच की दूरी के अतिरिक्त, चिह्न स्वयं भी बढ़ रहे हैं। जबकि यह तथ्य के अनुरूप नहीं है। वैज्ञानिक मानते हैं कि आकाशगंगाओं के बीच की दूरी बढ़ रही है, परंतु प्रेक्षण आकाशगंगाओं के विस्तार को नहीं सिद्ध करते। अतः गुब्बारे का उदाहरण आंशिक रूप से ही मान्य है।

बिग बैंग सिद्धांत के अनुसार ब्रह्मांड का विस्तार निम्न अवस्थाओं में हुआ है:



चित्र 2.1 : बिग बैंग

(i) आरम्भ में वे सभी पदार्थ, जिनसे ब्रह्मांड बना है, अति छोटे गोलक (एकाकी परमाणु) के रूप में एक ही स्थान पर स्थित थे। जिसका आयतन अत्यधिक सूक्ष्म एवं तापमान तथा घनत्व अनंत था।

(ii) बिग बैंग की प्रक्रिया में इस अति छोटे गोलक में भीषण विस्फोट हुआ। इस प्रकार की विस्फोट प्रक्रिया से वृहत् विस्तार हुआ। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि बिग बैंग की घटना आज से 13.7 अरब वर्षों पहले हुई थी। ब्रह्मांड का विस्तार आज भी जारी है। विस्तार के कारण कुछ ऊर्जा पदार्थ में परिवर्तित हो गई। विस्फोट (Bang) के बाद एक सैकेंड के अल्पांश के अंतर्गत ही वृहत् विस्तार हुआ। इसके बाद विस्तार की गति धीमी पड़ गई। बिग बैंग होने के आरंभिक तीन मिनट के अंर्तगत ही पहले परमाणु का निर्माण हुआ।

(iii) बिग बैंग से 3 लाख वर्षों के दौरान, तापमान 4500 केल्विन तक गिर गया और परमाणवीय पदार्थ का निर्माण हुआ। ब्रह्मांड पारदर्शी हो गया।

ब्रह्मांड के विस्तार का अर्थ है आकाशगंगाओं के बीच की दूरी में विस्तार का होना। हॉयल (Hoyle) ने इसका विकल्प 'स्थिर अवस्था संकल्पना' (Steady state concept) के नाम से प्रस्तुत किया। इस संकल्पना के अनुसार ब्रह्मांड किसी भी समय में एक ही जैसा रहा है। यद्यपि ब्रह्मांड के

विस्तार संबंधी अनेक प्रमाणों के मिलने पर वैज्ञानिक समुदाय अब ब्रह्मांड विस्तार सिद्धांत के ही पक्षधर हैं।

तारों का निर्माण

प्रारंभिक ब्रह्मांड में ऊर्जा व पदार्थ का वितरण समान नहीं था। घनत्व में आरंभिक भिन्नता से गुरुत्वाकर्षण बलों में भिन्नता आई, जिसके परिणामस्वरूप पदार्थ का एकत्रण हुआ। यही एकत्रण आकाशगंगाओं के विकास का आधार बना। एक आकाशगंगा असंख्य तारों का समूह है। आकाशगंगाओं का विस्तार इतना अधिक होता है कि उनकी दूरी हजारों प्रकाश वर्षों में (Light years) मापी जाती है। एक अकेली आकाशगंगा का व्यास 80 हजार से 1 लाख 50 हजार प्रकाश वर्ष के बीच हो सकता है। एक आकाशगंगा के निर्माण की शुरूआत हाइड्रोजन गैस से बने विशाल बादल के संचयन से होती है जिसे नीहारिका (Nebula) कहा गया। क्रमशः इस बढ़ती हुई नीहारिका में गैस के झुंड विकसित हुए। ये झुंड बढ़ते-बढ़ते घने गैसीय पिंड बने, जिनसे तारों का निर्माण आरंभ हुआ। ऐसा विश्वास किया जाता है कि तारों का निर्माण लगभग 5 से 6 अरब वर्षों पहले हुआ।

प्रकाश वर्ष (Light year) समय का नहीं वरन् दूरी का माप है। प्रकाश की गति 3 लाख कि० मी० प्रति सैकेंड है। विचारणीय है कि एक साल में प्रकाश जितनी दूरी तय करेगा, वह एक प्रकाश वर्ष होगा। यह 9.4611012 कि० मी० के बराबर है। पृथ्वी व सूर्य की औसत दूरी 14 करोड़ 95 लाख, 98 हजार किलोमीटर है। प्रकाश वर्ष के संदर्भ में यह प्रकाश वर्ष का केवल 8.311 है।

ग्रहों का निर्माण

ग्रहों के विकास की निम्नलिखित अवस्थाएँ मानी जाती हैं:

(i) तारे नीहारिका के अंदर गैस के गुंथित झुंड हैं। इन गुंथित झुंडों में गुरुत्वाकर्षण बल से गैसीय बादल में क्रोड का निर्माण हुआ और इस गैसीय क्रोड के चारों तरफ गैस व धूलकणों की घूमती हुई तश्तरी (Rotating disc) विकसित हुई।

(ii) अगली अवस्था में गैसीय बादल का संघनन आरंभ हुआ और क्रोड को ढकने वाला पदार्थ छोटे गोलों के रूप में विकसित हुआ। ये छोटे गोले संसंजन (अणुओं में पारस्परिक आकर्षण) प्रक्रिया द्वारा ग्रहाणुओं (Planetesimals) में विकसित हुए। संघटन (Collision) की क्रिया द्वारा बड़े पिंड बनने शुरू हुए और गुरुत्वाकर्षण बल के परिणामस्वरूप ये आपस में जुड़ गए। छोटे पिंडों की अधिक संख्या ही ग्रहाणु है।

(iii) अंतिम अवस्था में इन अनेक छोटे ग्रहाणुओं के सहवर्धित होने पर कुछ बड़े पिंड ग्रहों के रूप में बने।

सौरमंडल

हमारे सौरमंडल में आठ ग्रह हैं। नीहारिका को सौरमंडल का जनक माना जाता है उसके ध्वस्त होने व क्रोड के बनने की शुरूआत लगभग 5 से 5.6 अरब वर्षों पहले हुई व ग्रह लगभग 4.6 से 4.56 अरब वर्षों पहले बने। हमारे सौरमंडल में सूर्य (तारा), 8 ग्रह, 63 उपग्रह, लाखों छोटे पिंड जैसे-क्षुद्र ग्रह (ग्रहों के टुकड़े) (Asteroids), धूमकेतु (Comets) एवं वृहत् मात्रा में धूलिकण व गैस हैं।

इन आठ ग्रहों में बुध, शुक्र, पृथ्वी व मंगल भीतरी ग्रह (Inner planets) कहलाते हैं, क्योंकि ये सूर्य व छुद्रग्रहों की पट्टी, के बीच स्थित हैं। अन्य चार ग्रह बाहरी ग्रह (Outer planets) कहलाते हैं। पहले चार ग्रह पार्थिव (Terrestrial) ग्रह भी कहे जाते हैं। इसका अर्थ है कि ये ग्रह पृथ्वी की भाँति ही शैलों और धातुओं से बने हैं और अपेक्षाकृत अधिक घनत्व वाले ग्रह हैं। अन्य चार ग्रह गैस से बने विशाल ग्रह या जोवियन (Jovian) ग्रह कहलाते हैं। जोवियन का अर्थ है बृहस्पति (Jupiter) की तरह। इनमें से अधिकतर पार्थिव ग्रहों से विशाल हैं और हाइड्रोजन व हीलीयम से बना सघन वायुमंडल है। सभी ग्रहों का निर्माण लगभग 4.6 अरब वर्षों पहले एक ही समय में हुआ।

अभी तक प्लूटो को भी एक ग्रह माना जाता था। परन्तु अंतर्राष्ट्रीय खगोलिकी संगठन ने अपनी बैठक (अगस्त 2006) में यह निर्णय लिया कि कुछ समय पहले खोजे गए अन्य खगोलीय पिण्ड (2003 U*B_{313}) तथा प्लूटो 'बोने ग्रह' कहे जा सकते हैं।

(i) पार्थिव ग्रह जनक तारे के बहुत समीप बनें जहाँ अत्यधिक तापमान के कारण गैसें संघनित नहीं हो पाई और घनीभूत भी न हो सकीं। जोवियन ग्रहों की रचना अपेक्षाकृत अधिक दूरी पर हुई।

(ii) सौर वायु सूर्य के नज़दीक ज्यादा शक्तिशाली थी। अतः पार्थिव ग्रहों से ज्यादा मात्रा में गैस व धूलकण उड़ा ले गई। सौर पवन इतनी शक्तिशाली न होने के कारण जोवियन ग्रहों से गैसों को नहीं हटा पाई।

(iii) पार्थिव ग्रहों के छोटे होने से इनकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति भी कम रही जिसके परिणामस्वरूप इनसे निकली हुई गैस इनपर रुकी नहीं रह सकी।

चंद्रमा

चंद्रमा पृथ्वी का अकेला प्राकृतिक उपग्रह है। पृथ्वी की तरह चंद्रमा की उत्पत्ति संबंधी मत प्रस्तुत किए गए हैं। सन् 1838 ई० में, सर जार्ज डार्विन (Sir George Darwin) ने सुझाया कि प्रारंभ में पृथ्वी व चंद्रमा तेजी से घूमते एक ही पिंड थे। यह पूरा पिंड डंबल (बीच से पतला व किनारों से मोटा) की आकृति में परिवर्तित हुआ और अंततोगत्वा टूट गया। उनके अनुसार चंद्रमा का निमार्ण उसी पदार्थ से हुआ है जहाँ आज प्रशांत महासागर एक गर्त के रूप में मौजूद है।

यद्यपि वतर्मान समय के वैज्ञानिक इनमें से किसी भी व्याख्या को स्वीकार नहीं करते। ऐसा विश्वास किया जाता है कि पृथ्वी के उपग्रह के रूप में चंद्रमा की उत्पत्ति एक बड़े टकराव (Giant impact) का नतीजा है जिसे 'द बिग स्प्लैट' (The big splat) कहा गया है। ऐसा मानना है कि पृथ्वी के बनने के कुछ समय बाद ही मंगल ग्रह के 1 से 3 गुणा बड़े आकार का पिंड पृथ्वी से टकराया। इस टकराव से पृथ्वी का एक हिस्सा टूटकर अंतरिक्ष में बिखर गया। टकराव से अलग हुआ यह पदार्थ फिर पृथ्वी के कक्ष में घूमने लगा और क्रमशः आज का चंद्रमा बना। यह घटना या चंद्रमा की उत्पत्ति लगभग 4.44 अरब वर्षों पहले हुई।

पृथ्वी का उद्भव

क्या आप जानते हैं कि प्रारंभ में पृथ्वी चट्टानी, गर्म और वीरान ग्रह थी, जिसका वायुमंडल विरल था जो हाइड्रोजन व हीलीयम से बना था। यह आज की पृथ्वी के वायुमंडल से बहुत अलग था। अतः कुछ ऐसी घटनाएँ एवं क्रियाएँ अवश्य हुई होंगी जिनके कारण चट्टानी, वीरान और गर्म पृथ्वी

एक ऐसे सुंदर ग्रह में परिवर्तित हुई जहाँ बहुत सा पानी, तथा जीवन के लिए अनुकूल वातावरण उपलब्ध हुआ। अगले कुछ भागों में आप पढ़ेंगे कि आज से 460 करोड़ सालों के दौरान इस ग्रह पर जीवन का विकास कैसे हुआ।

पृथ्वी की संरचना परतदार है। वायुमंडल के बाहरी छोर से पृथ्वी के क्रोड तक जो पदार्थ हैं वे एक समान नहीं हैं। वायुमंडलीय पदार्थ का घनत्व सबसे कम है। पृथ्वी की सतह से इसके भीतरी भाग तक अनेक मंडल हैं और हर एक भाग के पदार्थ की अलग विशेषताएँ हैं।

स्थलमंडल का विकास

ग्रहाणु व दूसरे खगोलीय पिंड ज्यादातर एक जैसे ही घने और हल्के पदार्थों के मिश्रण से बने हैं। उल्काओं के अध्ययन से हमें इस बात का पता चलता है। बहुत से ग्रहाणुओं के इकट्ठा होने से ग्रह बनें। पृथ्वी की रचना भी इसी प्रकम के अनुरूप हुई है। जब पदार्थ गुरुत्वबल के कारण संहत हो रहा था, तो उन इकट्ठा होते पिंडों ने पदार्थ को प्रभावित किया। इससे अत्यधिक ऊष्मा उत्पन्न हुई। यह क्रिया जारी रही और उत्पन्न ताप से पदार्थ पिघलने/गलने लगा। ऐसा पृथ्वी की उत्पत्ति के दौरान और उत्पत्ति के तुरंत बाद हुआ। अत्यधिक ताप के कारण, पृथ्वी आंशिक रूप से द्रव अवस्था में रह गई और तापमान की अधिकता के कारण ही हल्के और भारी घनत्व के मिश्रण वाले पदार्थों घनत्व के अंतर के कारण अलग होना शुरू हो गए। इसी अलगाव से भारी पदार्थ (जैसे लोहा), पृथ्वी के केन्द्र में चले गए और हल्के पदार्थ पृथ्वी की सतह या ऊपरी भाग की तरफ आ गए। समय के साथ यह और ठंडे हुए और ठोस रूप में परिवर्तित होकर छोटे आकार के हो गए। अंततोगत्वा यह पृथ्वी की भूपर्पटी के रूप में विकसित हो गए। हल्के व भारी घनत्व वाले पदार्थों के पृथक होने की इस प्रक्रिया को विभेदन (Differentiation) कहा जाता है। चंद्रमा की उत्पत्ति के दौरान, भीषण संघट्ट (Giant impact) के कारण, पृथ्वी का तापमान पुनः बढ़ा या फिर ऊर्जा उत्पन्न हुई और यह विभेदन का दूसरा चरण था। विभेदन की इस प्रक्रिया द्वारा पृथ्वी का पदार्थ अनेक परतों में अलग हो गया। पृथ्वी के धरातल से क्रोड तक कई परतें पाई जाती हैं। जैसे-पर्पटी (Crust), प्रावार (Mantle), बाह्य क्रोड (Outer core) और आंतरिक क्रोड (Inner core)। पृथ्वी के ऊपरी भाग से आंतरिक भाग तक पदार्थ का घनत्व बढ़ता है। हर परत की विशेषताओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन हम अगले अध्याय में करेंगे।

वायुमंडल व जलमंडल का विकास

पृथ्वी के वायुमंडल की वर्तमान संरचना में नाइट्रोजन एवं ऑक्सीजन का प्रमुख योगदान है। वायुमंडल की संरचना व संगठन आठवें अध्याय में बतायी गयी है।

वर्तमान वायुमंडल के विकास की तीन अवस्थाएँ हैं। इसकी पहली अवस्था में आदिकालिक वायुमंडलीय गैसों का ह्रास है। दूसरी अवस्था में, पृथ्वी के भीतर से निकली भाप एवं जलवाष्प ने वायुमंडल के विकास में सहयोग किया। अंत में वायुमंडल की संरचना को जैव मंडल के प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया (Photosynthesis) ने संशोधि त किया।

प्रारंभिक वायुमंडल जिसमें हाइड्रोजन व हीलियम की अधिकता थी, सौर पवन के कारण पृथ्वी से दूर हो गया। ऐसा केवल पृथ्वी पर ही नहीं, वरन् सभी पार्थिव ग्रहों पर हुआ। अर्थात् सभी पार्थिव ग्रहों से, सौर पवन के प्रभाव के कारण, आदिकालिक वायुमंडल या तो दूर धकेल दिया गया या समाप्त हो गया। यह वायुमंडल के विकास की पहली अवस्था थी।

पृथ्वी के ठंडा होने और विभेदन के दौरान, पृथ्वी के अंदरूनी भाग से बहुत सी गैसें व जलवाष्प बाहर निकले। इसी से आज के वायुमंडल का उद्भव हुआ। आरंभ में वायुमंडल में जलवाष्प, नाइट्रोजन, कार्बन डाई ऑक्साइड, मीथेन व अमोनिया अधिक मात्रा में, और स्वतंत्र ऑक्सीजन बहुत कम थी। वह प्रक्रिया जिससे पृथ्वी के भीतरी भाग से गैसें धरती पर आईं, इसे गैस उत्सर्जन (Degassing) कहा जाता है। लगातार ज्वालामुखी विस्फोट से वायुमंडल में जलवाष्प व गैस बढ़ने लगी। पृथ्वी के ठंडा होने के साथ-साथ जलवाष्प का संघनन शुरू हो गया। वायुमंडल में उपस्थित कार्बन डाई ऑक्साइड के वर्षा के पानी में घुलने से तापमान में और अधिक गिरावट आई। फलस्वरूप अधिक संघनन व अत्यधिक वर्षा हुई। पृथ्वी के धरातल पर वर्षा का जल गर्तों में इकट्ठा होने लगा, जिससे महासागर बनें। पृथ्वी पर उपस्थित महासागर पृथ्वी की उत्पत्ति से लगभग 50 करोड़ सालों के अंतर्गत बनें। इससे हमें पता चलता है कि महासागर 400 करोड़ साल पुराने हैं। लगभग 380 करोड़ सालों पहले जीवन का विकास आरंभ हुआ। यद्यपि लगभर 250 से 300 करोड़ सालों पहले प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया विकसित हुई। लंबे समय तक जीवन केवल महासागरों तक सीमित रहा। प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा ऑक्सीजन में बढ़ोतरी महासागरों की देन है। धीरे-धीरे महासागर ऑक्सीजन से संतृप्त हो गए और वायुमंडल में ऑक्सीजन की मात्रा 200 करोड़ वर्ष पूर्व पूर्ण रूप से भर गई।

जीवन की उत्पत्ति

पृथ्वी की उत्पत्ति का अंतिम चरण जीवन की उत्पत्ति व विकास से संबंधित है। निःसंदेह पृथ्वी का आरंभिक वायुमंडल जीवन के विकास के लिए अनुकूल नहीं था। आधुनिक वैज्ञानिक, जीवन की उत्पत्ति को एक तरह की रासायनिक प्रतिक्रिया बताते हैं, जिससे पहले जटिल जैव (कार्बनिक) अणु (Complex organic molecules) बने और उनका समूहन हुआ। यह समूहन ऐसा था जो अपने आपको दोहराता था। (पुनः बनने में सक्षम था), और निर्जीव पदार्थ को जीवित तत्त्व में परिवर्तित कर सका। हमारे ग्रह पर जीवन के चिह्न अलग-अलग समय की चट्टानों में पाए जाने वाले जीवाश्म के रूप में हैं। 300 करोड़ साल पुरानी भूगर्भिक शैलों में पाई जाने वाली सूक्ष्मदर्शी संरचना आज की शैवाल (Blue green algae) की संरचना से मिलती जुलती है। यह कल्पना की जा सकती है कि इससे पहले समय में साधारण संरचना वाली शैवाल रही होगी। यह माना जाता है कि जीवन का विकास लगभग 380 करोड़ वर्षों पहले आरंभ हुआ। एक कोशीय जीवाणु से आज के मनुष्य तक जीवन के विकास का सार भूवैज्ञानिक काल मापक्रम से प्राप्त किया जा सकता है। जो भूवैज्ञानिक काल मापक्रम में दर्शाया गया है।

पृथ्वी की आंतरिक संरचना

पृ थ्वी की प्रकृति के बारे में आप किस प्रकार का अनुमान लगाते हैं? क्या आपके अनुमान के अनुसार पृथ्वी क्रिकेट की गेंद की तरह एक ठोस गेंद है, या यह एक खोखली गेंद है, जिसपर चट्टानों की मोटी परत स्थलमंडल है। क्या आपने कभी टेलीविजन पर ज्वालामुखी उद्गार दिखाते हुए चित्रों को देखा है? क्या आपको ज्वालामुखी से निकलते हुए गर्म लावा, मिट्टी, धुआँ, आग तथा मैग्मा याद है? पृथ्वी के आंतरिक भाग को अप्रत्यक्ष प्रमाणों के आधार पर समझा जा सकता है, क्योंकि पृथ्वी के आंतरिक भाग में न तो कोई पहुँच सका है और न पहुँच सकता है।

पृथ्वी के धरातल का विन्यास मुख्यतः भूगर्भ में होने वाली प्रक्रियाओं का परिणाम है। बहिर्जात व अंतर्जात प्रक्रियाएँ लगातार भूदृश्य को आकार देती रहती हैं। अंतर्जात प्रक्रियाओं के प्रभाव को अनदेखा कर किसी भी क्षेत्र की भूआकृति की प्रकृति को समझना अधूरा होगा। (अर्थात् किसी भी प्रदेश की भूआकृति को समझने के लिए भूगर्भिक क्रियाओं के प्रभाव को जानना आवश्यक है।) मानव जीवन मुख्यतः अपनी क्षेत्रीय भूआकृति से प्रभावित होता है। इसलिए भूदृश्य के विकास को प्रभावित करने वाले सभी कारकों के विषय में जानना आवश्यक है। यह समझने के लिए कि पृथ्वी में कंपन क्यों होता है, या सुनामी लहरें कैसे पैदा होती हैं, यह जरूरी है कि हमें पृथ्वी की आंतरिक संरचना का विस्तृत ज्ञान हो। पिछले अध्याय में आपने पढ़ा कि पृथ्वी का निर्माण करने वाली, भू-पर्पी (Crust) से क्रोड (Core) तक सभी पदार्थ परतों के रूप में विभाजित है। यह जानना भी अत्यंत रोचक है कि वैज्ञानिकों ने कैसे इन परतों के संबंध में जानकारी प्राप्त की और प्रत्येक परत की विशेषताओं के बारे में अनुमान लगाया। यह अध्याय इसी विषय से संबंधित है।

भूगर्भ की जानकारी के साधन

पृथ्वी की त्रिज्या 6.370 कि०मी० है। पृथ्वी की आंतरिक परिस्थितियों के कारण यह संभव नहीं है कि कोई पृथ्वी के केंद्र तक पहुँचकर उसका निरीक्षण कर सके या वहाँ के पदार्थ का कुछ नमूना प्राप्त कर सके। यह आश्चर्य की बात है कि ऐसी परिस्थितियों में भी वैज्ञानिक हमें यह बताने में सक्षम हुए कि भूगर्म की संरचना कैसी है और इतनी गहराई पर किस प्रकार के पदार्थ पाए जाते हैं? पृथ्वी की आंतरिक संरचना के विषय में हमारी अधिकतर जानकारी परोक्ष रूप से प्राप्त अनुमानों पर आधारित है। तथापि इस जानकारी का कुछ भाग प्रत्यक्ष प्रेक्षणों और पदार्थ के विश्लेषण पर भी आधारित है।

प्रत्यक्ष स्त्रोत

पृथ्वी से सबसे आसानी से उपलब्ध ठोस पदार्थ धरातलीय चट्टानें हैं, अथवा वे चट्टानें है, जो हम खनन क्षेत्रों से प्राप्त करते हैं। दक्षिणी अफ्रीका की सोने की खानें 3 से 4 किमी तक गहरी हैं। इससे अधिक गहराई में जा पाना असंभव है, क्योंकि उतनी गहराई पर तापमान बहुत अधिक होता है। खनन के अतिरिक्त वैज्ञानिक, विभिन्न परियोजनाओं के अंतर्गत पृथ्वी की आंतरिक स्थिति को जानने के लिए पर्पटी में गहराई तक छानबीन कर रहे हैं। संसार भर के वैज्ञानिक दो मुख्य परियोजनाओं पर काम कर रहे हैं। ये हैं गहरे समुद्र में प्रवेधन परियोजना (Deep ocean drilling project) व समन्वित महासागरीय प्रबंधन परियोजना (Integrated ocean drilling project)। आज तक सबसे गहरा प्रवेधन (Drill) आर्कटिक महासागर में कोला (Kola) क्षेत्र में 12 कि0मी0 की गहराई तक किया गया है। इन परियोजनाओं तथा बहुत सी अन्य गहरी खुदाई परियोजनाओं के अंतर्गत, विभिन्न गहराई से प्राप्त पदार्थों के विश्लेषण से हमें पृथ्वी की आंतरिक संरचना से संबंधित असाधारण जानकारी प्राप्त हुई है।

ज्वालामुखी उद्गार प्रत्यक्ष जानकारी का एक अन्य स्रोत है। जब कभी भी ज्वालामुखी उद्गार से लावा पृथ्वी के धरातल पर आता है, यह प्रयोगशाला अन्वेषण के लिए उपलब्ध होता है। यद्यपि इस बात का निश्चय कर पाना कठिन होता है कि यह मैग्मा कितनी गहराई से निकला है।

अप्रत्यक्ष स्रोत

पदार्थ के गुणधर्म के विश्लेषण से पृथ्वी के आंतरिक भाग की अप्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त होती है। खनन क्रिया से हमें पता चलता है कि पृथ्वी के धरातल में गहराई बढ़ने के साथ-साथ तापमान एवं दबाव में वृद्धि होती है। इतना ही नहीं, हमें यह भी पता चलता है कि गहराई बढ़ने के साथ-साथ पदार्थ का घनत्व भी बढ़ता है। तापमान, दबाव व घनत्व में इस परिवर्तन की दर को आँका जा सकता है। पृथ्वी की कुल मोटाई को ध्यान में रखते हुए, वैज्ञानिकों ने विभिन्न गहराइयों पर पदार्थ के तापमान, दबाव एवं घनत्व के मान को अनुमानित किया है। प्रत्येक परत के संदर्भ में इन लक्षणों का सविस्तार वर्णन इसी अध्याय में आगे किया गया है।

पृथ्वी की आंतरिक जानकारी का दूसरा अप्रत्यक्ष स्रोत उल्काएँ हैं, जो कभी-कभी धरती तक पहुँचती हैं। हाँलाकि, हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उल्काओं के विश्लेषण के लिए उपलब्ध पदार्थ पृथ्वी के आंतरिक भाग से प्राप्त नहीं होते हैं। परंतु उल्काओं से प्राप्त पदार्थ और उनकी संरचना पृथ्वी से मिलती-जुलती है। ये (उल्काएँ) वैसे ही पदार्थ के बने ठोस पिंड हैं, जिनसे हमारा ग्रह (पृथ्वी) बना है। अतः पृथ्वी की आंतरिक जानकारी के लिए उल्काओं का अध्ययन एक अन्य महत्वपूर्ण स्रोत है।

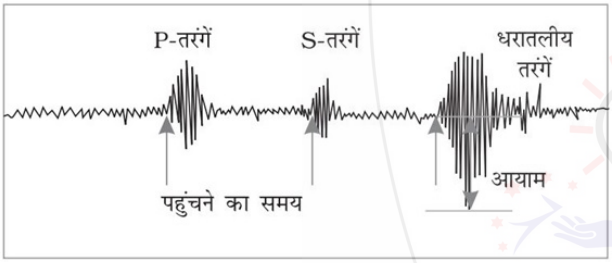
भौतिक भूगोल के मूल सिद्धांत

अन्य अप्रत्यक्ष स्रोतों में गुरुत्वाकर्षण, चुंबकीय क्षेत्र, व भूकंप संबंधी क्रियाएँ शामिल हैं। पृथ्वी के धरातल पर भी विभिन्न अक्षांशों पर गुरुत्वाकर्षण बल एक समान नहीं होता है। यह (गुरुत्वाकर्षण बल) ध्रुवों पर अधिक एवं भूमध्यरेखा पर कम होता है। पृथ्वी के केंद्र से दूरी के

कारण गुरुत्वाकर्षण बल ध्रुवों पर कम और भूमध्यरेखा पर अधिक होता है। गुरुत्व का मान पदार्थ के द्रव्यमान के अनुसार भी बदलता है। पृथ्वी के भीतर पदार्थों का असमान वितरण भी इस भिन्नता को प्रभावित करता है। अलग-अलग स्थानों पर गुरुत्वाकर्षण की भिन्नता अनेक अन्य कारकों से भी प्रभावित होती है। इस भिन्नता को गुरुत्व विसंगति (Gravity anomaly) कहा जाता है। गुरुत्व विसंगति हमें भूपर्पटी में पदार्थ के द्रव्यमान के वितरण की जानकारी देती है। चुंबकीय सर्वेक्षण भी भूपर्पटी में चुंबकीय पदार्थ के वितरण की जानकारी देते हैं। भूकंपीय गतिविधियाँ भी पृथ्वी की आंतरिक जानकारी का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। अतः हम कुछ विस्तार से इस पर चर्चा करेंगे।

भूकंप

भूकंपीय तरंगों का अध्ययन, पृथ्वी की आंतरिक परतों का संपूर्ण चित्र प्रस्तुत करता है। साधारण भाषा में भूकंप का अर्थ है- पृथ्वी का कंपन। यह एक प्राकृतिक घटना है। ऊर्जा के निकलने के कारण तरंगें उत्पन्न होती हैं, जो सभी दिशाओं में फैलकर भूकंप लाती हैं।



चित्र 3.1: भूकंप-अभिलेख

पृथ्वी में कंपन क्यों होता है?

प्रायः भ्रंश के किनारे-किनारे ही ऊर्जा निकलती है। भूपर्पटी की शैलों में गहन दरारें ही भ्रंश होती हैं। भ्रंश के दोनों तरफ शैलें विपरीत दिशा में गति करती हैं। जहाँ ऊपर के शैलखंड दबाव डालते हैं, उनके आपस का घर्षण उन्हें परस्पर बाँधे रहता है। फिर भी, अलग होने की प्रवृत्ति के कारण एक समय पर घर्षण का प्रभाव कम हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप शैलखंड विकृत होकर अचानक एक दूसरे के विपरीत दिशा में सरक जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप ऊर्जा निकलती है और ऊर्जा तरंगें सभी दिशाओं में गतिमान होती हैं। वह स्थान जहाँ से ऊर्जा निकलती है, भूकंप का उद्गम केन्द्र (Focus) कहलाता है। इसे अवकेंद्र (Hypocentre) भी कहा जाता है। ऊर्जा तरंगें अलग-अलग दिशाओं में चलती हुई पृथ्वी की सतह तक पहुँचती हैं। भूतल पर वह बिंदु जो उद्गम केंद्र के समीपतम होता है, अधिकेंद्र (Epicentre) कहलाता है। अधिकेंद्र पर ही सबसे पहले तरंगों को महसूस किया जाता है। अधिकेंद्र उद्गम केंद्र के ठीक ऊपर (90° के कोण पर) होता है।

भूकंपीय तरंगें (Earthquake waves)

सभी प्राकृतिक भूकंप स्थलमंडल (Lithosphere) में ही आते हैं। इसी अध्याय में आगे आप पृथ्वी की विभिन्न परतों के बारे में पढ़ेंगे। अभी इतना समझ लेना पर्याप्त है कि स्थलमंडल पृथ्वी के धरातल से 200 कि0मी0 तक की गहराई वाले भाग को कहते हैं। भूकपमापी यंत्र (Seismograph) सतह पर पहुँचने वाली भूकपतरंगों को अभिलेखित करता है। चित्र 3.1 भूकंपीय तरंगों का अभिलेखीय वक्र (Curve) दिखाता है। यह वक्र तीन अलग बनावट वाली तरंगों को प्रदर्शित करता है। बुनियादी तौर पर भूकंपीय तरंगें दो प्रकार की हैं भूगर्भिक तरंगें (Body waves) व धरातलीय तरंगे (Surface waves)। भूगर्भिक तरंगें उद्गम केंद्र से ऊर्जा के मुक्त के दौरान पैदा होती हैं और पृथ्वी के अंदरूनी भाग से होकर सभी दिशाओं में आगे बढ़ती हैं। इसलिए इन्हें भूगर्भिक तरंगें कहा जाता है। भूगर्भिक तरंगों एवं धरातलीय शैलों के मध्य अन्योन्य क्रिया के कारण नई तरंगें उत्पन्न होती हैं जिन्हें धरातलीय तरंगें कहा जाता है। ये तरगें धरातल के साथ-साथ चलती हैं। तरंगों का वेग अलग-अलग घनत्व वाले पदार्थों से गुजरने पर परिवर्तित हो जाता है। अधिक घनत्व वाले पदार्थों में तरंगों का वेग अधिक होता है। पदार्थों के घनत्व में भिन्नताएँ होने के कारण परावर्तन (Reflection) एवं आवर्तन (Refraction) होता है, जिससे इन तरंगों की दिशा भी बदलती है।

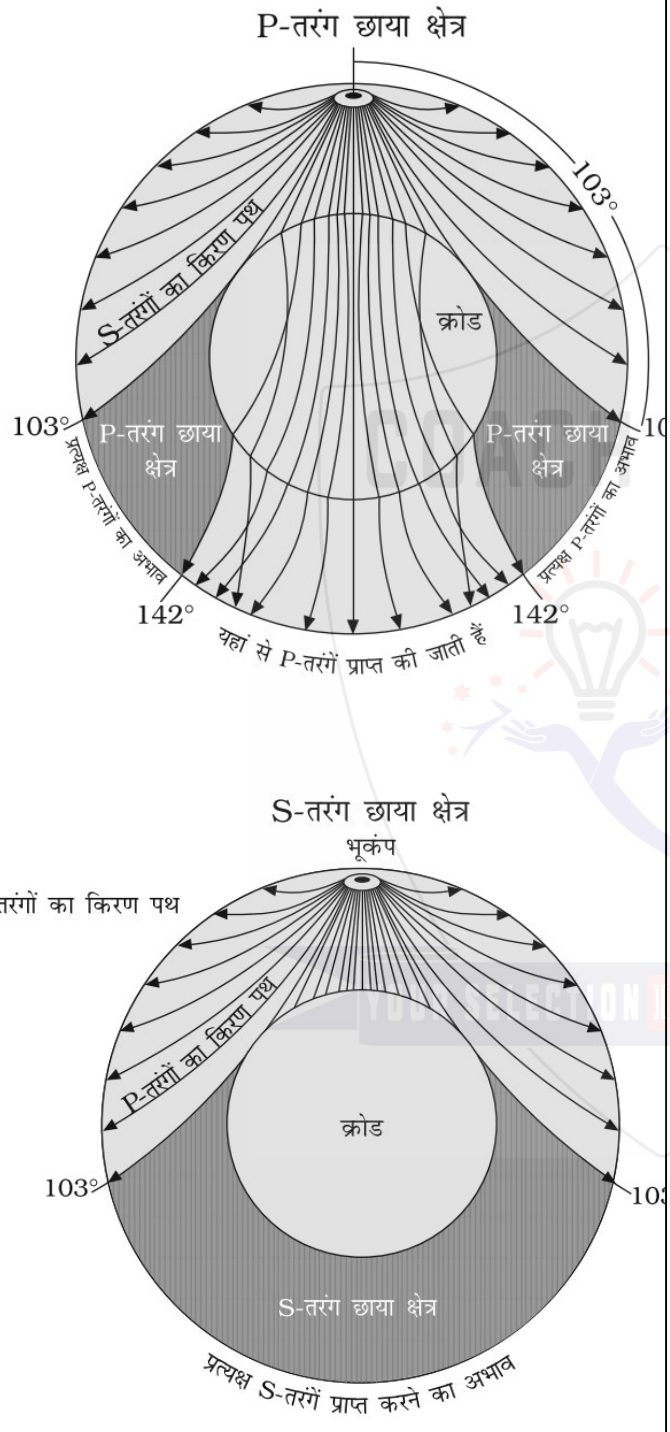
भूगर्भीय तरंगें भी दो प्रकार की होती हैं। इन्हें 'P' तरंगें व 'S' तरंगें कहा जाता है। 'P' तरंगें तीव्र गति से चलने वाली तरंगें हैं और धरातल पर सबसे पहले पहुँचती हैं। इन्हें 'प्राथमिक तरंगें' भी कहा जाता है। 'P' तरंगें ध्वनि तरंगों जैसी होती हैं। ये गैस, तरल व ठोस तीनों प्रकार के पदार्थों से गुजर सकती हैं। 'S' तरंगें धरातल पर कुछ समय अंतराल के बाद पहुँचती हैं। ये 'द्वितीयक तरंगें' कहलाती हैं। 'S' तरंगों के विषय में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि ये केवल ठोस पदार्थों के ही माध्यम से चलती हैं। 'S' तरंगों की यह एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इसी विशेषता ने वैज्ञानिकों को भूगर्भीय संरचना समझने में मदद की। परावर्तन (Reflection) से तरंगें प्रतिध्वनित होकर वापस लौट आती हैं, जबकि आवर्तन (Refrection) से तरंगें कई दिशाओं में चलती हैं। भूकंपलेखी पर बने आरेख से तरंगों की दिशा-भिन्नता का अनुमान लगाया जाता है। धरातलीय तरंगें भूकंपलेखी पर अंत में अभिलेखित होती हैं। ये तरंगें ज्यादा विनाशकारी होती हैं। इनसे शैल विस्थापित होती हैं और इमारतें गिर जाती हैं।

भूकंपीय तरंगों का संचरण

भिन्न-भिन्न प्रकार की भूकंपीय तरंगों के संचरित होने की प्रणाली भिन्न-भिन्न होती है। जैसे ही ये संचरित होती हैं तो शैलों में कंपन पैदा होती है। 'P' तरंगों से कंपन की दिशा तरंगों की दिशा के समानांतर ही होती है। यह संचरण गति की दिशा में ही पदार्थ पर दबाव डालती है। इसके (दबाव) के फलस्वरूप पदार्थ के घनत्व में भिन्नता आती है और शैलों में संकुचन व फैलाव की प्रक्रिया पैदा होती है। अन्य तीन तरह की तरंगें संचरण गति के समकोण दिशा में कंपन पैदा करती हैं। 'S' तरंगें ऊर्ध्वाधर तल में, तरंगों की दिशा के समकोण पर कंपन पैदा करती हैं। अतः ये जिस पदार्थ से

गुजरती हैं उसमें उभार व गर्त बनाती हैं। धरातलीय तरंगें सबसे अधिक विनाशकारी समझी जाती हैं।

छाया क्षेत्र का उद्भव



चित्र 3.2 (अ) और (ब) भूकंपीय छाया क्षेत्र (Earthquake shadow zones)

भूकंपलेखी यंत्र (Seismograph) पर दूरस्थ स्थानों से आने वाली भूकंपीय तरंगें अभिलेखित होती हैं। यद्यपि कुछ ऐसे क्षेत्र भी हैं जहाँ कोई भी भूकंपीय तरंग (Shadow zone) कहा जाता है। विभिन्न भूकंपीय घटनाओं के अध्ययन से पता चलता है कि एक भूकंप का छाया क्षेत्र दूसरे भूकंप के छाया क्षेत्र से सर्वथा भिन्न होता है। चित्र 3.2 अ और ब में 'P' व 'S' तरंगों का छाया क्षेत्र प्रदर्शित किया गया है। यह देखा जाता है कि भूकंपलेखी भूकंप अधिकेंद्र से 105° के भीतर किसी भी दूरी पर 'P' व 'S' दोनों ही तरंगों का अभिलेखन करते हैं। भूकंपलेखी, अधिकेंद्र से 145° से परे केवल 'P' तरंगों के पहुँचने को ही दर्ज करते हैं और 'S' तरंगों को अभिलेखित नहीं करते। अतः वैज्ञानिकों का मानना है कि भूकंप अधिकेंद्र से 105° और 145° के बीच का क्षेत्र (जहाँ कोई भी भूकंपीय तरंग अभिलेखित नहीं होती) दोनों प्रकार की तरगों के लिए छाया क्षेत्र (Shadow zone) हैं। 105° के परे पूरे क्षेत्र में 'S' तरंगें नहीं पहुँचतीं। 'S' तरंगों का छाया क्षेत्र 'P' तरंगों के छाया क्षेत्र से अधिक विस्तृत है। भूकंप अधिकेंद्र के 105° से 145° तक 'P' तरंगों का छाया क्षेत्र एक पट्टी (Band) के रूप में पृथ्वी के चारों तरफ प्रतीत होता है। 'S' तरंगों का छाया क्षेत्र न केवल विस्तार में बड़ा है, वरन् यह पृथ्वी के 40 प्रतिशत भाग से भी अधिक है। अगर आपको भूकंप अधिकेंद्र का पता हो तो आप किसी भी भूकंप का छाया क्षेत्र रेखांकित कर सकते हैं। (किसी भूकंप अधिकेंद्र को जानने का विवरण बॉक्स में पृष्ठ 28 में दिया गया है।)

भूकंप प्रकार

(i) सामान्यतः विवर्तनिक (Tectonic) भूकंप ही अधिक आते हैं। ये भूकंप भ्रंशतल के किनारे चट्टानों के सरक जाने के कारण उत्पन्न होते हैं।

(ii) एक विशिष्ट वर्ग के विवर्तनिक भूकंप को ही ज्वालामुखीजन्य (Volcanic) भूकंप समझा जाता है। ये भूकंप अधिकांशतः सक्रिय ज्वालामुखी क्षेत्रों तक ही सीमित रहते हैं।

(iii) खनन क्षेत्रों में कभी-कभी अत्यधिक खनन कार्य से भूमिगत खानों की छत ढह जाती है, जिससे हल्के झटके महसूस किए जाते हैं। इन्हें नियात (Collapse) भूकंप कहा जाता है।

(iv) कभी-कभी परमाणु व रासायनिक विस्फोट से भी भूमि में कंपन होती है। इस तरह के झटकों को विस्फोट (Explosion) भूकंप कहते हैं।

(v) जो भूकंप बड़े बाँध वाले क्षेत्रों में आते हैं, उन्हें बाँध जनित (Reservoir induced) भूकंप कहा जाता है।

भूकंपों की माप

भूकंपीय घटनाओं का मापन भूकंपीय तीव्रता के आधार पर अथवा आघात की तीव्रता के आधार पर किया जाता है। भूकंपीय तीव्रता की मापनी 'रिक्टर स्केल' (Richter scale) के नाम से जानी जाती है। भूकंपीय तीव्रता भूकंप के दौरान ऊर्जा मुक्त होने से संबंधित है। इस

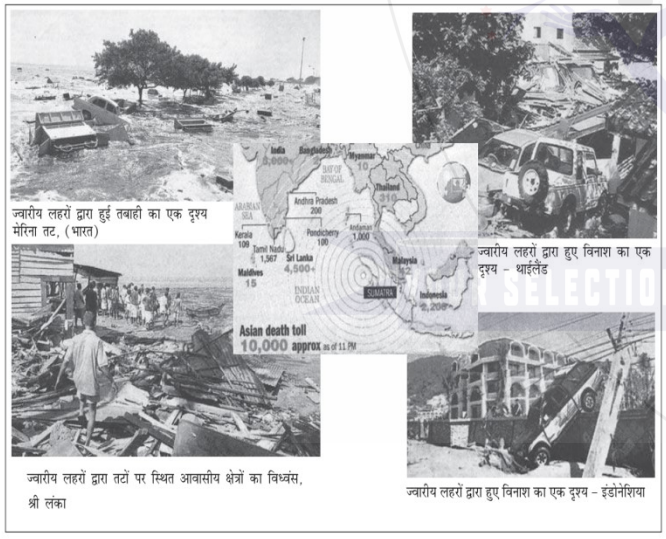
भूकंप द्वारा हुए नुकसान का एक दृश्य उरी (LOC) में स्थित अमन सेतु (भारत)

मापनी के अनुसार भूकंप की तीव्रता 0 से 10 तक होती है। आघात की तीव्रता/गहनता (Intensity scale) को इटली के भूकंप वैज्ञानिक मरकैली (Mercalli) के नाम पर जाना जाता है। यह झटकों से हुई प्रत्यक्ष हानि द्वारा निर्धारित की जाती है। इसकी गहनता का 1 से 12 तक होती है।

भूकंप के प्रभाव

भूकंप एक प्राकृतिक आपदा है। भूकंपीय आपदा से होने वाले प्रकोप निम्न हैं

(i) भूमि का हिलना
(ii) धरातलीय विसंगति
(iii) भू-स्खलन/पंकस्खलन
(iv) मृदा द्रवण (Soil liquefaction)
(v) धरातल का एक तरफ झुकना
(vi) हिमस्खलन
(vii) धरातलीय विस्थापन
(viii) बाँध व तटबंध के टूटने से बाढ़
(ix) आग लगना
(x) इमारतों का टूटना तथा ढाँचों का ध्वस्त होना
(xi) वस्तुओं का गिरना
(xii) सुनामी।



उपरोक्त सूचीबद्ध प्रभावों में से पहले छः का प्रभाव स्थलरूपों पर देखा जा सकता है जबकि अन्य को उस क्षेत्र में होने वाले जन व धन की हानि से समझा जा सकता है। 'सुनामी' का प्रभाव तभी पड़ेगा जब भूकंप का अधिकेंद्र समुद्री अधस्तल पर हो और भूकंप की तीव्रता बहुत अधिक हो। 'सुनामी' अपने आप में भूकंप नहीं है, ये वास्तव में लहरें हैं जो भूकंपीय तरंगों से उत्पन्न होती हैं। यद्यपि मूल रूप से कंपन की क्रिया कुछ सेकेंड ही रहती है, फिर भी यदि भूकंप की तीव्रता रिक्टर स्केल पर 5 से अधिक है तो इसके परिणाम अत्यधिक विनाशकारी होते हैं।

भूकंप की आवृत्ति

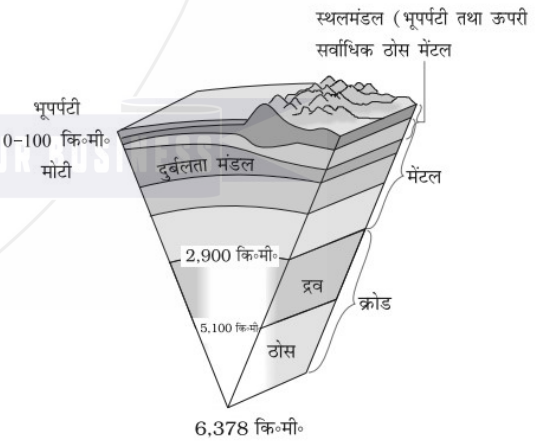
भूकंप एक प्राकृतिक आपदा है। तीव्र भूकंप के झटकों से जन व धन की अधिक हानि होती है। फिर भी ऐसा नहीं है कि विश्व के सभी भागों में तीव्र भूकंप ही आते हैं। केवल वही क्षेत्र जो भ्रंश के समीप हैं, ऐसे तीव्र झटके महसूस करते हैं। हम ज्वालामुखी व भूकंप के वितरण का वर्णन अगले अध्याय में पढ़ेंगे।

प्रायः यह देखा गया है कि रिक्टर स्केल पर 8 से अधिक तीव्रता वाले भूकंप के आने की संभावना बहुत ही कम होती है जो 1-2 वर्षों में एक ही बार आते हैं। जबकि हल्के भूकंप लगभग हर मिनट पृथ्वी के किसी न किसी भाग में महसूस किए जाते हैं।

पृथ्वी की संरचना

भूपर्पटी (The Crust)

यह ठोस पृथ्वी का सबसे बाहरी भाग है। यह बहुत भंगुर (Brittle) भाग है जिसमें जल्दी टूट जाने की प्रवृत्ति पाई जाती है। भूपर्पटी की मोटाई महाद्वीपों व महासागरों के नीचे अलग-अलग है। महासागरों में भूपर्पटी की मोटाई महाद्वीपों की तुलना में कम है। महासागरों के नीचे इसकी औसत मोटाई 5 कि0० मी० है, जबकि महाद्वीपों के नीचे यह 30 कि० मी० तक है। मुख्य पर्वतीय श्रृंखलाओं के क्षेत्र में यह मोटाई और भी अधिक है। हिमालय पर्वत श्रेणियों के नीचे भूपर्पटी की मोटाई लगभग 70 कि0मी0 तक है। भूपर्पटी भारी चट्टानों से बना है और इसका घनत्व 3 ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर है। महासागरों के नीचे भूपर्पटी की चट्टानें बेसाल्ट निर्मित हैं। महासागरों के नीचे इनका घनत्व 2.7 ग्राम प्रति घन से०मी० है।



चित्र 3.3 : पृथ्वी का आंतरिक भाग

मैंटल (The Mantle)

भूगर्भ में पर्पटी के नीचे का भाग मैंटल कहलाता है। यह मोहो असांतत्य से आरंभ होकर 2,900 कि० मी० की गहराई तक पाया जाता है। मैंटल का ऊपरी भाग दुर्बलतामंडल (Asthenosphere) कहा जाता है। 'एस्थेनो' (Astheno) शब्द का अर्थ दुर्बलता से है। इसका विस्तार 400 कि0मी0

तक आँका गया है। ज्वालामुखी उद्‌गार के दौरान जो लावा धरातल पर पहुँचता है, उसका मुख्य स्रोत यही है। इसका घनत्व भूपर्पटी की चट्टानों से अधिक है। (अर्थात् 3.4 ग्राम प्रति घन से०मी० से अधिक है।) भूपर्पटी एवं मैंटल का ऊपरी भाग मिलकर स्थलमंडल (Lithosphere) कहलाते हैं। इसकी मोटाई 10 से 200 कि0 मी० के बीच पाई जाती है। निचले मैंटल का विस्तार दुर्बलतामंडल के समाप्त हो जाने के बाद तक है। यह ठोस अवस्था में है।

क्रोड (The Core)

जैसा कि पहले ही इंगित किया जा चुका है कि भूकंपीय तरंगों के वेग ने पृथ्वी के क्रोड को समझने में सहायता की है। क्रोड व मैंटल की सीमा 2,900 कि०मी० की गहराई पर है। बाह्य क्रोड (Outer core) तरल अवस्था में है जबकि आंतरिक क्रोड (Inner core) ठोस अवस्था में है। मैंटल व क्रोड की सीमा पर चट्टानों का घनत्व लगभग 5 ग्राम प्रति घन से० मी० तथा केंद्र में 6,300 कि0मी0 की गहराई तक घनत्व लगभग 13 ग्राम प्रति घन से०मी० तक हो जाता है। इससे यह पता चलता है कि क्रोड भारी पदार्थों मुख्यतः निकिल (Nickle) व लोहे (Ferrum) का बना है। इसे 'निफे' (Nife) परत के नाम से भी जाना जाता है।

ज्वालामुखी व ज्वालामुखी निर्मित स्थलरूप

आपने अनेक बार ज्वालामुखी के चित्र देखे होंगे। ज्वालामुखी वह स्थान है जहाँ से निकलकर गैसें, राख और तरल चट्टानी पदार्थ, लावा पृथ्वी के धरातल तक पहुँचता है। यदि यह पदार्थ कुछ समय पहले ही बाहर आया हो या अभी निकल रहा हो तो वह ज्वालामुखी सक्रिय ज्वालामुखी कहलाता है। तरल चट्टानी पदार्थ दुर्बलता मण्डल से निकल कर धरातल पर पहुँचता है। जब तक यह पदार्थ मैंटल के ऊपरी भाग में है, यह मैग्मा कहलाता है। जब यह भूपटल के ऊपर या धरातल पर पहुँचता है तो लावा कहा जाता है। वह पदार्थ जो धरातल पर पहुँचता है, उसमें लावा प्रवाह, लावा के जमे हुए टुकड़ों का मलवा (ज्वलखण्डाश्मि), (Pyroclastic debris) ज्वालामुखी बम, राख, धूलकण व गैसें जैसे- नाइट्रोजन यौगिक, सल्फर यौगिक और कुछ मात्रा में क्लोरीन, हाइड्रोजन व आर्गन शामिल होते हैं।

ज्वालामुखी उद्‌गार की प्रवृत्ति और धरातल पर विकसित आकृतियों के आधार पर ज्वालामुखियों को वर्गीकृत किया जाता है। कुछ मुख्य ज्वालामुखी निम्न प्रकार से हैं:

शील्ड ज्वालामुखी (Shield volcanoes)

बेसाल्ट प्रवाह को छोड़कर, पृथ्वी पर पाए जाने वाले सभी ज्वालामुखियों में शील्ड ज्वालामुखी सबसे विशाल है। हवाई द्वीप के ज्वालामुखी इसके सबसे अच्छे उदाहरण हैं। ये ज्वालामुखी मुख्यतः बेसाल्ट से निर्मित होते हैं जो तरल लावा के ठंडे होने से बनते हैं। यह लावा उद्‌गार के समय बहुत तरल होता है। इसी कारण इन ज्वालामुखियों का ढाल तीव्र नहीं होता। यदि किसी तरह निकास नालिका (Vent) से पानी भीतर चला जाए तो ये ज्वालामुखी विस्फोटक भी हो जाते हैं। अन्यथा कम विस्फोटक होना ही इनकी विशेषता है। इन ज्वालामुखियों से लावा फव्वारे के रूप में बाहर आता है और निकास पर एक शंकु (Cone) बनाता है, जो सिंडर शंकु (Cindar Cone) के रूप में विकसित होता है।

मिश्रित ज्वालामुखी (Composite volcanoes)

इन ज्वालामुखियों से बेसाल्ट की अपेक्षा अधिक ठंडे व श्यान (गाढ़ा या चिपचिपा) लावा उद्‌गार होते हैं। प्रायः ये ज्वालामुखी भीषण विस्फोटक होते हैं। इनसे लावा के साथ भारी मात्रा में ज्वलखण्डाश्मि (Pyroclastic) पदार्थ व राख भी धरातल पर पहुँचती हैं। यह पदार्थ निकास नली के आस-पास परतों के रूप में जमा हो जाते हैं जिनके जमाव मिश्रित ज्वालामुखी के रूप में दिखते हैं।

ज्वालामुखी कुंड (Caldera)

ये पृथ्वी पर पाए जाने वाले सबसे अधिक विस्फोटक ज्वालामुखी हैं। आमतौर पर ये इतने विस्फोटक होते हैं कि जब इनमें विस्फोट होता है तब वे ऊँचा ढाँचा बनाने के बजाय स्वयं नीचे धँस जाते हैं। धँसे हुए विध्वंस गर्त (लावा के गिरने से जो गड्ढे बनते हैं) ही ज्वालामुखी कुंड (Caldera) कहलाते हैं। इनका यह विस्फोटक रूप बताता है कि इन्हें लावा प्रदान करने वाले मैग्मा के भंडार न केवल विशाल हैं, वरन् इनके बहुत पास स्थित हैं। इनके द्वारा निर्मित पहाड़ी मिश्रित ज्वालामुखी की तरह प्रतीत होती है।

बेसाल्ट प्रवाह क्षेत्र (Flood basalt provinces)

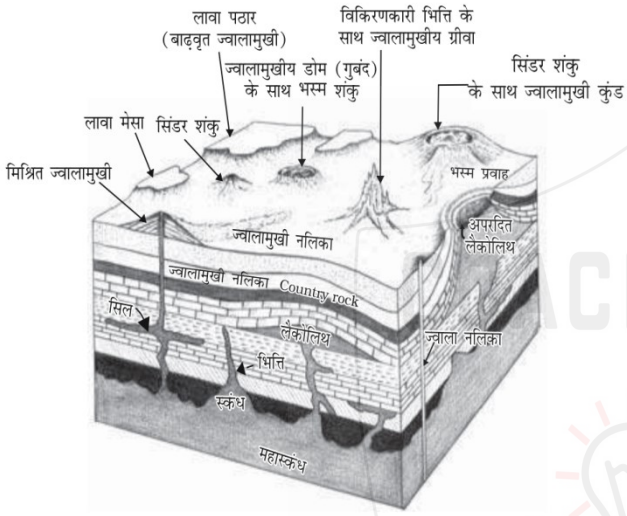
ये ज्वालामुखी अत्यधिक तरल लावा उगलते हैं जो बहुत दूर तक बह निकलता है। संसार के कुछ भाग हजारों वर्ग कि०मी० घने लावा प्रवाह से ढके हैं। इनमें लावा प्रवाह क्रमानुसार होता है और कुछ प्रवाह 50 मीटर से भी अधिक मोटे हो जाते हैं। कई बार अकेला प्रवाह सैकड़ों कि०मी० दूर तक फैल जाता है। भारत का दक्कन ट्रैप, जिस पर वर्तमान महाराष्ट्र पठार का ज्यादातर भाग पाया जाता है, वृहत् बेसाल्ट लावा प्रवाह क्षेत्र है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि आज की अपेक्षा, आरंभ में एक अधिक वृहत् क्षेत्र इस प्रवाह से ढका था।

मध्य-महासागरीय कटक ज्वालामुखी

इन ज्वालामुखियों का उद्‌गार महासागरों में होता है। मध्य महासागरीय कटक एक श्रृंखला है जो 70.000 कि0मी0 से अधिक लंबी है और जो सभी महासागरीय बेसिनों में फैली है। इस कटक के मध्यवर्ती भाग में लगातार उद्‌गार होता रहता है। अगले अध्याय में हम इसे विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे।

ज्वालामुखी स्थलाकृतियाँ (Volcanic Landforms) अंतर्वेधी आकृतियाँ

ज्वालामुखी उद्गार से जो लावा निकलता है, उसके ठंडा होने से आग्नेय शैल बनती हैं। लावा का यह जमाव या तो धरातल पर पहुँच कर होता है या धरातल तक पहुँचने से पहले ही भूपटल के नीचे शैल परतों में ही हो जाता है। लावा के ठंडा होने के स्थान के आधार पर आग्नेय शैलों का वर्गीकरण किया जाता है 1. ज्वालामुखी शैलों -(जब लावा धरातल पर पहुँच कर ठंडा होता है) और 2. पातालीय (Plutonic) शैल (जब लावा धरातल के नीचे ही ठंडा होकर जम जाता है)। जब लावा भूपटल के



चित्र 3.4 : ज्वालामुखी स्थालाकृतियाँ

भीतर ही ठंडा हो जाता है तो कई आकृतियाँ बनती हैं। ये आकृतियाँ अंतर्वेधी आकृतियाँ (Intrusive forms) कहलाती हैं। इनमें से कुछ चित्र 3.4 में दिखाए गए हैं।

बैथोलिथ (Batholiths)

यदि मैग्मा का बड़ा पिंड भूपर्पटी में अधिक गहराई पर ठंडा हो जाए तो यह एक गुंबद के आकार में विकसित हो जाता है। अनाच्छादन प्रक्रियाओं के द्वारा ऊपरी पदार्थ के हट जाने पर ही यह धरातल पर प्रकट होते हैं। ये विशाल क्षेत्र में फैले होते हैं और कभी-कभी इनकी गहराई भी कई कि0मी0 तक होती है। ये ग्रेनाइट के बने पिंड हैं। इन्हें बैथोलिथ कहा जाता है जो मैग्मा भंडारों के जमे हुए भाग हैं।

लैकोलिथ (Lacoliths)

ये गुंबदनुमा विशाल अन्तर्वेधी चट्टानें हैं जिनका तल समतल व एक पाइपरूपी वाहक नली से नीचे से जुड़ा होता है। इनकी आकृति धरातल पर पाए जाने वाले मिश्रित ज्वालामुखी के गुंबद से मिलती है। अंतर केवल यह होता है कि लैकोलिथ गहराई में पाया जाता है। कर्नाटक के पठार में ग्रेनाइट चट्टानों की बनी ऐसी ही गुंबदनुमा पहाड़ियाँ हैं। इनमें से अधिकतर अब अपपत्रित (Exfoliated) हो चुकी हैं व धरातल पर देखी जा सकती हैं। ये लैकोलिथ व बैथोलिथ के अच्छे उदाहरण हैं।

लैपोलिथ, फैकोलिथ व सिल (Lapolith, phacolith and sills)

ऊपर उठते लावे का कुछ भाग क्षैतिज दिशा में पाए जाने वाले कमजोर धरातल में चला जाता है। यहाँ यह अलग-अलग आकृतियों में जम जाता है। यदि यह तश्तरी (Saucer) के आकार में जम जाए, तो यह लैपोलिथ कहलाता है। कई बार अन्तर्वेधी आग्नेय चट्टानों की मोड़दार अवस्था में अपनति (Anticline) के ऊपर व अभिनति (Syncline) के तल में लावा का जमाव पाया जाता है। ये परतनुमा/लहरदार चट्टानें एक निश्चित वाहक नली से मैग्मा भंडारों से जुड़ी होती हैं। (जो क्रमशः बैथोलिथ में विकसित होते हैं) यह ही फैकोलिथ कहलाते हैं।

अंतर्वेधी आग्नेय चट्टानों का क्षैतिज तल में एक चादर के रूप में ठंडा होना सिल या शीट कहलाता है। जमाव की मोटाई के आधार पर इन्हें विभाजित किया जाता है-कम मोटाई वाले जमाव को शीट व घने मोटाई वाले जमाव सिल कहलाते हैं।

डाइक

जब लावा का प्रवाह दरारों में धरातल के लगभग समकोण होता है और अगर यह इसी अवस्था में ठंडा हो जाए तो एक दीवार की भाँति संरचना बनाता है। यही संरचना डाइक कहलाती है। पश्चिम महाराष्ट्र क्षेत्र की अंतर्वेधी आग्नेय चट्टानों में यह आकृति बहुतायत में पाई जाती है। ज्वालामुखी उद्गार से बने दक्कन ट्रेप के विकास में डाइक उद्गार की वाहक समझी जाती हैं।

महासागरों और महाद्वीपों का वितरण

महाद्वीपों और महासागरों की अवस्थिति, जैसाकि आज मानचित्र पर दिखाई देती है. हमेशा से ऐसी नहीं रही है। इसके अतिरिक्त, यह भी एक तथ्य है कि आने वाले समय में भी महाद्वीप व महासागरों की स्थिति आज जैसी नहीं रहेगी। अगर ऐसा है तो प्रश्न यह है कि पुराकाल में इनकी अवस्थिति कैसी थी? इनकी अवस्थिति में परिवर्तन क्यों और कैसे होता है? यदि यह सच है कि महाद्वीपों और महासागरों की अवस्थिति में परिवर्तन हुआ है और अभी भी हो रहा है. तो आप यह जानकर आश्चर्यचकित होंगे कि वैज्ञानिक यह सब कैसे जानते हैं? उन्होंने इन महाद्वीपों एवं महासागरों की पहले की स्थिति का निर्धारण कैसे किया होगा? इन्हीं प्रश्नों के उत्तर और इनसे संबंधित प्रश्न ही इस अध्याय का विषय हैं।

महाद्वीपीय प्रवाह (Continental drift)

अटलांटिक महासागरीय तटरेखा की आकृति को ध्यान से देखें। इस महासागर के दोनों तरफ की तटरेखा में आश्चर्यजनक सममिति (Symmetry) है। इसी समानता के कारण बहुत से वैज्ञानिकों ने दक्षिण व उत्तर अमेरिका तथा यूरोप व अफ्रीका के एक साथ जुड़े होने की संभावना को व्यक्त किया। विज्ञान के इतिहास के ज्ञात अभिलेखों से पता चलता है कि सन् 1596 में एक डच मानचित्रवेत्ता अब्राहम ऑस्टेलियस (Abraham Ortelius) ने सर्वप्रथम इस संभावना को व्यक्त किया था। एन्टोनियो पैलेग्रीनी (Antonio Pellegrini) ने एक मानचित्र बनाया, जिसमें तीनों महाद्वीपों को इकट्ठा दिखाया गया था। जर्मन मौसमविद अल्फ्रेड वेगनर (Alfred wegner) ने "महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत" सन् 1912 में प्रस्तावित किया। यह सिद्धांत महाद्वीप एवं महासागरों के वितरण से ही संबंधित था।

इस सिद्धांत की आधारभूत संकल्पना यह थी कि सभी महाद्वीप एक अकेले भूखंड में जुड़े हुए थे। वेगनर के अनुसार आज के सभी महाद्वीप इस भूखंड के भाग थे तथा यह एक बड़े महासागर से घिरा हुआ था। उन्होंने इस बड़े महाद्वीप को पैजिया (Pangaea) का नाम दिया। पैजिया का अर्थ है- संपूर्ण पृथ्वी। विशाल महासागर को पैंथालासा (Panthalassa) कहा, जिसका अर्थ है-जल ही जल। वेगनर के तर्क के अनुसार लगभग 20 करोड़ वर्ष पहले इस बड़े महाद्वीप पैजिया का विभाजन आरंभ हुआ। पैजिया पहले दो बड़े महाद्वीपीय पिंडों लारेशिया (Laurasia) और गोंडवानालैंड (Gondwanaland) क्रमशः उत्तरी व दक्षिणी भूखंडों के रूप में विभक्त हुआ। इसके बाद लारेशिया व गोडवानालैंड धीरे-धीरे अनेक छोटे हिस्सों में बँट गए, जो आज के महाद्वीप के रूप हैं। महाद्वीपीय विस्थापन के पक्ष में अनेक प्रमाण भी प्रस्तुत किए गए हैं, इनमें से कुछ इस प्रकार हैं।

महाद्वीपीय विस्थापन के पक्ष में प्रमाण (Evidences in support of continental drift)

महाद्वीपों में साम्य

दक्षिण अमेरिका व अफ्रीका के आमने-सामने की तटरेखाएँ अद्भुत व त्रुटिरहित साम्य दिखाती हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि 1964 ई० में बुलर्ड (Bullard) ने एक कंप्यूटर प्रोग्राम की सहायता से अटलांटिक तटों को जोड़ते हुए एक मानचित्र तैयार किया था। तटों का यह साम्य बिल्कुल सही सिद्ध हुआ। साम्य बिठाने की यह कोशिश आज की तटरेखा की अपेक्षा 1,000 फैदम की गहराई की तटरेखा के साथ की गई थी।

महासागरों के पार चट्टानों की आयु में समानता

आधुनिक समय में विकसित की गई रेडियोमिट्रिक काल निर्धारण (Radiometric dating) विधि से महासागरों के पार महाद्वीपों की चट्टानों के निर्माण के समय को सरलता से जाना जा सकता है। 200 करोड़ वर्ष प्राचीन शैल समूहों की एक पट्टी ब्राजील तट और पश्चिमी अफ्रीका के तट पर मिलती हैं, जो आपस में मेल खाती है। दक्षिण अमेरिका व अफ्रीका की तटरेखा के साथ पाए जाने वाले आरंभिक समुद्री निक्षेप जुरेसिक काल (Jurassic age) के हैं। इससे यह पता चलता है कि इस समय से पहले महासागर की उपस्थिति वहाँ नहीं थी।

टिलाइट (Tillite)

टिलाइट वे अवसादी चट्टानें हैं, जो हिमानी निक्षेपण से निर्मित होती हैं। भारत में पाए जाने वाले गोंडवाना श्रेणी के तलछटों के प्रतिरूप दक्षिण गोलार्ध के छः विभिन्न स्थलखंडों में मिलते हैं। गोंडवाना श्रेणी के आधार तल में घने टिलाइट हैं, जो विस्तृत व लंबे समय तक हिमआवरण या हिमाच्छादन की ओर इंगित करते हैं। इसी क्रम के प्रतिरूप भारत के अतिरिक्त अफ्रीका, फॉकलैंड द्वीप, मैडागास्कर, अंटार्कटिक और आस्ट्रेलिया में मिलते हैं। गोंडवाना श्रेणी के तलछटों की यह समानता स्पष्ट करती है कि इन स्थलखंडों के इतिहास में भी समानता रही है। हिमानी निर्मित टिलाइट चट्टानें पुरातन जलवायु और महाद्वीपों के विस्थापन के स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

प्लेसर निक्षेप (Placer deposits)

घाना तट पर सोने के बड़े निक्षेपों की उपस्थिति व उद्गम चट्टानों की अनुपस्थिति एक आश्चर्यजनक तथ्य है। सोनायुक्त शिराएँ (Gold bearing veins) ब्राजील में पाई जाती हैं। अतः यह स्पष्ट है कि घाना में मिलने वाले सोने के निक्षेप ब्राजील पठार से उस समय निकले होंगे, जब ये दोनों महाद्वीप एक दूसरे से जुड़े थे।

जीवाश्मों का वितरण (Distribution of fossils)

यदि समुद्री अवरोधक के दोनों विपरीत किनारों पर जल व स्थल में पाए जाने वाले पौधों व जंतुओं की समान प्रजातियाँ पाई जाए, तो उनके

वितरण की व्याख्या में समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रेक्षण से कि 'लैमूर' भारत, मैडागास्कर व अफ्रीका में मिलते हैं, कुछ वैज्ञानिकों ने इन तीनों स्थलखंडों को जोड़कर एक सतत् स्थलखंड 'लेमूरिया' (Lemuria) की उपस्थिति को स्वीकारा। मेसोसारस (Mesosaurus) नाम के छोटे रेंगने वाले जीव केवल उथले खारे पानी में ही रह सकते थे- इनकी अस्थियाँ केवल दक्षिण अफ्रीका के दक्षिणी केप प्रांत और ब्राजील में इरावर शैल समूह में ही मिलते हैं। ये दोनों स्थान आज एक दूसरे से 4800 कि0मी0 की दूरी पर हैं और इनके बीच में एक महासागर विद्यमान है।

प्रवाह संबंधी बल (Force for drifting)

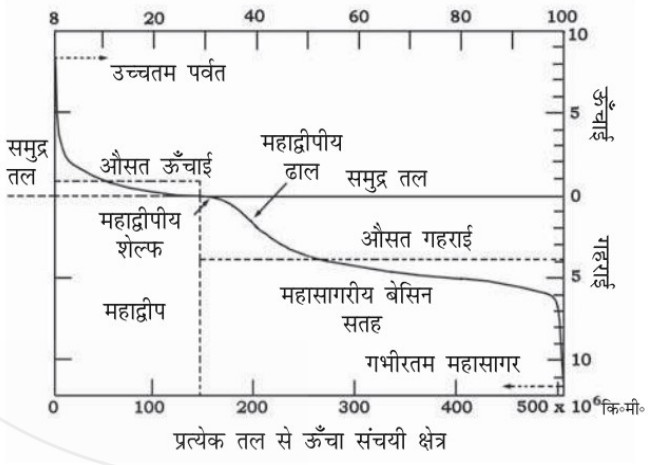
वेगनर के अनुसार महाद्वीपीय विस्थापन के दो कारण थेः (1) पोलर या ध्रुवीय फ्लीइंग बल (Polar fleeing force) और (2) ज्वारीय बल (Tidal force) ध्रुवीय फ्लीइंग बल पृथ्वी के घूर्णन से संबंधित है। आप जानते हैं कि पृथ्वी की आकृति एक संपूर्ण गोले जैसी नहीं है; वरन् यह भूमध्यरेखा पर उभरी हुई है। यह उभार पृथ्वी के घूर्णन के कारण है। दूसरा बल, जो वेगनर महोदय ने सुझाया वह ज्वारीय बल है, जो सूर्य व चंद्रमा के आकर्षण से संबद्ध है, जिससे महासागरों में ज्वार पैदा होते हैं। वेगनर का मानना था कि करोड़ों वर्षों के दौरान ये बल प्रभावशाली होकर विस्थापन के लिए सक्षम हो गए। यद्यपि बहुत से वैज्ञानिक इन दोनों ही बलों को महाद्वीपीय विस्थापन के लिए सर्वथा अपर्याप्त समझते हैं।

संवहन-धारा सिद्धांत (Convectional current theory)

1930 के दशक में आर्थर होम्स (Arthur Holmes) ने मैंटल (Mantle) भाग में संवहन धाराओं के प्रभाव की संभावना व्यक्त की। ये धाराएँ रेडियोएक्टिव तत्त्वों से उत्पन्न ताप भिन्नता से मैंटल भाग में उत्पन्न होती हैं। होम्स ने तर्क दिया कि पूरे मैंटल भाग में इस प्रकार की धाराओं का तंत्र विद्यमान है। यह उन प्रवाह बलों की व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास था, जिसके आधार पर समकालीन वैज्ञानिकों ने महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत को नकार दिया।

महासागरीय अधस्तल का मानचित्रण (Mapping of the ocean floor)

महासागरों की बनावट और आकार पर विस्तृत शोध, यह स्पष्ट करते हैं कि महासागरों का अधस्तल एक विस्तृत मैदान नहीं है, वरन् उनमें भी उच्चावच पाया जाता है। युद्धोत्तर काल (Post-war period) महासागरीय अधस्तल के निरूपण अभियान ने महासागरीय उच्चावच संबंधी विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की और यह दिखाया कि इसके अधस्तली में जलमग्न पर्वतीय कटके व गहरी खाइयाँ हैं, जो प्रायः महाद्वीपों के किनारों पर स्थित हैं। मध्य महासागरीय कटके ज्वालामुखी उद्गार के रूप में सबसे अधिक सक्रिय पायी गई। महासागरीय पर्पटी की चट्टानों के काल निर्धारण (Dating) ने यह तथ्य स्पष्ट कर दिया कि महासागरों के नितल की चट्टानें महाद्वीपीय भागों में पाई जाने वाली चट्टानों की अपेक्षा नवीन हैं। महासागरीय कटक के दोनों तरफ की चट्टानें, जो कटक से बराबर दूरी पर स्थित हैं, उन की आयु व रचना में भी आश्चर्यजनक समानता पाई जाती है।



चित्र 4.1 : महासागरीय अधस्तल (Ocean floor)

महासागरीय अधस्तल की बनावट (Ocean floor configuration)

इस भाग में हम महासागरीय तल की बनावट से संबंधित कुछ ऐसे तथ्यों का अध्ययन करेंगे, जो महासागर व महाद्वीपों के वितरण को समझने में मददगार होंगे। महासागरीय तल की आकृतियाँ अध्याय 13 में विस्तार से वर्णित हैं। गहराई व उच्चावच के प्रकार के आधार पर. महासागरीय तल को तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है।

ये भाग हैं

(1) महाद्वीपीय सीमा,

(2) गहरे समुद्री बेसिन और

(3) मध्य-महासागरीय कटक।

महाद्वीपीय सीमा (Continental margins)

ये महाद्वीपीय किनारों और गहरे समुद्री बेसिन के बीच का भाग है। इसमें महाद्वीपीय मग्नतट, महाद्वीपीय ढाल, महाद्वीपीय उभार और गहरी महासागरीय खाइयाँ आदि शामिल हैं। महासागरों व महाद्वीपों के वितरण को समझने के लिए गहरी-महासागरीय खाइयों के क्षेत्र विशेष महत्वपूर्ण और रोचक हैं।

वितलीय मैदान (Abyssal Plains)

ये विस्तृत मैदान महाद्वीपीय तटों व मध्य महासागरीय कटकों के बीच पाए जाते हैं। वितलीय मैदान, वह क्षेत्र हैं, जहाँ महाद्वीपों से बहाकर लाए गए अवसाद इनके तटों से दूर निक्षेपित होते हैं।

मध्य महासागरीय कटक (Mid-oceanic ridges)

मध्य महासागरीय कटक आपस में जुड़े हुए पर्वतों की एकश्रृंखला बनाती है। महासागरीय जल में डूबी हुई. यह पृथ्वी के धरातल पर पाई जाने वाली संभवतः सबसे लंबी पर्वत शृंखला है। इन कटकों के मध्यवर्ती शिखार पर एक रिफ्ट, एक प्रभाजक पठार और इसकी लंबाई के साथ-साथ पार्श्व मंडल इसकी विशेषता है। मध्यवर्ती भाग में उपस्थित द्रोणी वास्तव में

सक्रिय ज्वालामुखी क्षेत्र है। पिछले अध्याय में मध्य-महासागरीय ज्वालामुखी के रूप में ऐसे ज्वालामुखियों की जानकारी दी गई है।

भूकंप व ज्वालामुखियों का वितरण (Distribution of earthquakes and volcanoes)

भूकंपीय गतिविधि और ज्वालामुखी वितरण का दिए गए मानिचत्र 4.5 (अ) और (ब) में अध्ययन करें। आप अटलांटिक महासागर के मध्यवर्ती भाग में, तट रेखा के लगभग समानांतर, एक बिंदु रेखा देखेंगे। यह आगे हिंद महासागर तक जाती है। भारतीय उपमहाद्वीप के थोड़ा दक्षिण में यह दो भागों में बँट जाती है, जिसकी एक शाखा पूर्वी अफ्रीका की ओर चली जाती है और दूसरी मयनमार से होती हुई न्यू गिनी पर एक ऐसी ही रेखा से मिल जाती है। आप यह पाएँगे कि यह बिंदुरेखा मध्य-महासागरीय कटकों के समरूप है। भूकंपीय संकेन्द्रण का दूसरा क्षेत्र छायांकित मेखला (Shaded belt) के माध्यम से दिखाया गया है, जो अल्पाइन हिमालय (Alpine-Himalayan) श्रेणियों के और प्रशांत महासागरीय किनारों के समरूप है। सामान्यतः मध्य महासागरीय कटकों के क्षेत्र में भूकंप के उद्गम केंद्र कम गहराई पर हैं जबकि अल्पाइन-हिमालय पट्टी व प्रशांत महासागरीय किनारों पर ये केंद्र अधिक गहराई पर हैं। ज्वालामुखी मानचित्र भी इसी का अनुकरण करते हैं। प्रशांत महासागर के किनारों को सक्रिय ज्वालामुखी के क्षेत्र होने के कारण 'रिंग ऑफ फायर' (Ring of fire) भी कहा जाता है।

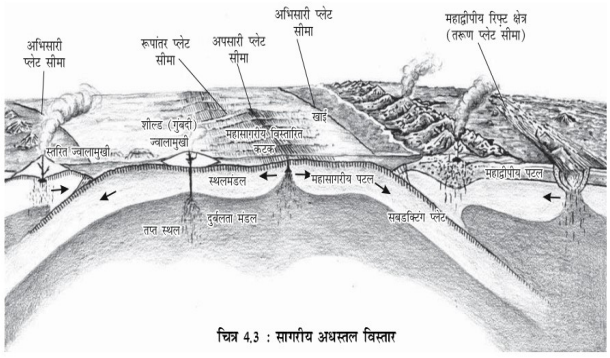
सागरीय अधस्तल का विस्तार

जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, प्रवाह उपरांत अध्ययनों ने महत्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत की, जो वेगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत के समय उपलब्ध नहीं थी। चट्टानों के पुरा चुंबकीय अध्ययन और महासागरीय तल के मानचित्रण ने विशेष रूप से निम्न तथ्यों को उजागर किया:

(i) यह देखा गया कि मध्य महासागरीय कटकों के साथ-साथ ज्वालामुखी उद्गार सामान्य क्रिया है और ये उद्गार इस क्षेत्र में बड़ी मात्रा में लावा बाहर निकालते हैं।

(ii) महासागरीय कटक के मध्य भाग के दोनों तरफ समान दूरी पर पाई जाने वाली चट्टानों के निर्माण का समय, संरचना, संघटन और चुंबकीय गुणों में समानता पाई जाती है। महासागरीय कटकों के समीप की चट्टानों में सामान्य चुंबकत्व ध्रुवण (Normal polarity) पाई जाती है तथा ये चट्टानें नवीनतम हैं। कटकों के शीर्ष से दूर चट्टानों की आयु भी अधिक है।

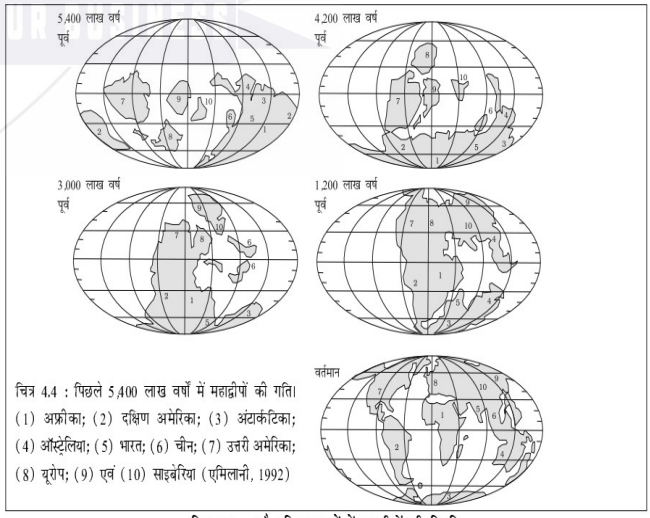
(iii) महासागरीय पर्पटी की चट्टानें महाद्वीपीय पर्पटी की चट्टानों की अपेक्षा अधिक नई हैं। महासागरीय पर्पटी की चट्टानें कहीं भी 20 करोड़ वर्ष से अधिक पुरानी नहीं हैं।



चित्र 4.3 : सागरीय अधस्तल विस्तार

(iv) गहरी खाइयों में भूकंप के उद्गम अधिक गहराई पर हैं। जबकि मध्य-महासागरीय कटकों के क्षेत्र में भूकंप उद्गम केंद्र (Foci) कम गहराई पर विद्यमान हैं।

इन तथ्यों और मध्य महासागरीय कटकों के दोनों तरफ की चट्टानों के चुंबकीय गुणों के विश्लेषण के आधार पर हेस (Hess) ने सन् 1961 में एक परिकल्पना प्रस्तुत की, जिसे 'सागरीय अधस्तल विस्तार' (Sea floor spreading) के नाम से जाना जाता है। हेस (Hess) के तर्कानुसार महासागरीय कटकों के शीर्ष पर लगातार ज्वालामुखी उद्भेदन से महासागरीय पर्पटी में विभेदन हुआ और नया लावा इस दरार को भरकर महासागरीय पर्पटी को दोनों तरफ धकेल रहा है। इस प्रकार महासागरीय अधस्तल का विस्तार हो रहा है। महासागरीय पर्पटी का अपेक्षाकृत नवीनतम होना और इसके साथ ही एक महासागर में विस्तार से दूसरे महासागर के न सिकुड़ने पर, हेस (Hess) ने महासागरीय पर्पटी के क्षेपण की बात कही। हेस के अनुसार, यदि ज्वालामुखी पर्पटी से नई पर्पटी का निर्माण होता है, तो दूसरी तरफ महासागरीय गर्तों में इसका विनाश भी होता है। चित्र 4.3 में सागरीय तल विस्तार की मूलभूत संकल्पना को दिखाया गया है।

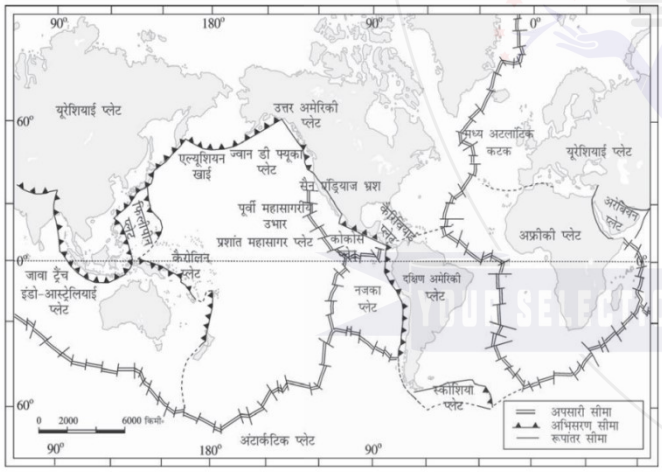


चित्र 4.4 : पिछले 5,400 लाख वर्षों में महाद्वीपों की गति। (1) अफ्रीका; (2) दक्षिण अमेरिका; (3) अंटार्कटिका; (4) ऑस्ट्रेलिया; (5) भारत; (6) चीन; (7) उत्तरी अमेरिका; (8) यूरोप; (9) एवं (10) साइबेरिया (एमिलानी, 1992)

चित्र 4.4 : भूवैज्ञानिक कालों में महाद्वीपों की स्थिति

प्लेट विवर्तनिकी (Plate tectonics)

सागरीय तल विस्तार अवधारणा के पश्चात् विद्वानों की महाद्वीपों व महासागरों के वितरण के अध्ययन में फिर से रुचि पैदा हुई। सन् 1967 में मैक्कैन्ज़ी (Mckenzie), पारकर (Parker) और मोरगन (Morgan) ने स्वतंत्र रूप से उपलब्ध विचारों को समन्वित कर अवधारणा प्रस्तुत की, जिसे 'प्लेट विवर्तनिकी' (Plate tectonics) कहा गया। एक विवर्तनिक प्लेट (जिसे लिथोस्फेरिक प्लेट भी कहा जाता है), ठोस चट्टान का विशाल व अनियमित आकार का खंड है, जो महाद्वीपीय व महासागरीय स्थलमंडलों से मिलकर बना है। ये प्लेटें दुर्बलतामंडल (Asthenosphere) पर एक दृढ़ इकाई के रूप में क्षैतिज अवस्था में चलायमान हैं। स्थलमंडल में पर्पटी एवं ऊपरी मैंटल को सम्मिलित किया जाता है, जिसकी मोटाई महासागरों में 5 से 100 कि0मी0 और महाद्वीपीय भागों में लगभग 200 कि0मी0 है। एक प्लेट को महाद्वीपीय या महासागरीय प्लेट भी कहा जा सकता है; जो इस बात पर निर्भर है कि उस प्लेट का अधिकतर भाग महासागर अथवा महाद्वीप से संबद्ध है। उदाहरणार्थ प्रशांत प्लेट मुख्यतः महासागरीय प्लेट है, जबकि यूरेशियन प्लेट को महाद्वीपीय प्लेट कहा जाता है। प्लेट विवर्तनिकी के सिद्धांत के अनुसार पृथ्वी का स्थलमंडल सात मुख्य प्लेटों व कुछ छोटी प्लेटों में विभक्त है। नवीन वलित पर्वत श्रेणियाँ, खाइयाँ और भ्रंश इन मुख्य प्लेटों को सीमांकित करते हैं। (चित्र 4.7)



चित्र 4.5 : संसार की प्रमुख बड़ी व छोटी प्लेट का वितरण

प्रमुख प्लेट इस प्रकार हैं :

(i) अंटार्कटिक प्लेट (जिसमें अंटार्कटिक से घिरा महासागर भी शामिल है)

(ii) उत्तर अमेरिकी प्लेट (जिसमें पश्चिमी अंधमहासागरीय तल सम्मिलित है तथा दक्षिणी अमेरिकन प्लेट व कैरेबियन द्वीप इसकी सीमा का निर्धारण करते हैं)

(iii) दक्षिण अमेरिकी प्लेट (पश्चिमी अटलांटिक तल समेत और उत्तरी अमेरिकी प्लेट व कैरेबियन द्वीप इसे पृथक करते हैं)

(iv) प्रशांत महासागरीय प्लेट।

(v) इंडो-आस्ट्रेलियन-न्यूजीलैंड प्लेट।

(vi) अफ्रीकी प्लेट (जिसमें पूर्वी अटलांटिक तल शामिल है) और

(vii) यूरेशियाई प्लेट (जिसमें पूर्वी अटलांटिक महासागरीय तल सम्मिलित है)

कुछ महत्वपूर्ण छोटी प्लेटें निम्नलिखित हैं :

(i) कोकोस (Cocoas) प्लेट यह प्लेट मध्यवर्ती अमेरिका और प्रशांत महासागरीय प्लेट के बीच स्थित है।

(ii) नज़का प्लेट (Nazca plate) यह दक्षिण अमेरिका व प्रशांत महासागरीय प्लेट के बीच स्थित है।

(iii) अरेबियन प्लेट (Arabian plate) - इसमें अधिकतर अरब प्रायद्वीप का भू-भाग सम्मिलित है।

(iv) फिलिपीन प्लेट (Phillippine plate) यह एशिया महाद्वीप और प्रशांत महासागरीय प्लेट के बीच स्थित है।

(v) कैरोलिन प्लेट (Caroline plate) -यह न्यू गिनी के उत्तर में फिलिपियन व इंडियन प्लेट के बीच स्थित है।

(vi) फ्यूजी प्लेट (Fuji plate) के उत्तर-पूर्व में स्थित है। यह आस्ट्रेलिया

ग्लोब पर ये प्लेटें पृथ्वी के पूरे इतिहास काल में लगातार विचरण कर रही हैं। वेगनर की संकल्पना कि केवल महाद्वीप गतिमान हैं, सही नहीं है। महाद्वीप एक प्लेट का हिस्सा है और प्लेट चलायमान हैं। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि भूवैज्ञानिक इतिहास में सभी प्लेट गतिमान रही हैं और भविष्य में भी गतिमान रहेंगी। चित्र 4.4 में विभिन्न कालों में महाद्वीपीय भागों की स्थिति को दर्शाया गया है। वेगनर के अनुसार आरंभ में, सभी महाद्वीपों से मिलकर बना एक सुपर महाद्वीप (Super continent) पैंजिया के रूप में विद्यमान था। यद्यपि बाद की खोजों ने यह स्पष्ट किया कि महाद्वीपीय पिंड, जो प्लेट के ऊपर स्थित हैं, भूवैज्ञानिक काल पर्यन्त चलायमान थे और पैंजिया अलग-अलग महाद्वीपीय खंडों के अभिसरण से बना था, जो कभी एक या किसी दूसरी प्लेट के हिस्से थे। पुराचुंबकीय (Palaeomagnetic) आँकड़ों के आधार पर वैज्ञानिकों ने विभिन्न भूकालों में प्रत्येक महाद्वीपीय खंड की अवस्थिति निर्धारित की है। भारतीय उपमहाद्वीप (अधिकांशतः प्रायद्वीपीय भारत) की अवस्थिति नागपुर क्षेत्र में पाई जाने वाली चट्टानों के विश्लेषण के आधार पर आँकी गई है।

प्लेट संचरण के फलस्वरूप तीन प्रकार की प्लेट सीमाएँ बनती हैं।

अपसारी सीमा (Divergent boundaries)

जब दो प्लेट एक दूसरे से विपरीत दिशा में अलग हटती हैं और नई पर्पटी का निर्माण होता है। उन्हें अपसारी प्लेट कहते हैं। वह स्थान जहाँ से प्लेट एक दूसरे से दूर हटती हैं, इन्हें प्रसारी स्थान (Spreading site) भी कहा जाता है। अपसारी सीमा का सबसे अच्छा उदाहरण मध्य-अटलांटिक कटक है। यहाँ से अमेरिकी प्लेटें (उत्तर अमेरिकी व दक्षिण अमेरिकी प्लेटें) तथा यूरेशियन व अफ्रीकी प्लेटें अलग हो रही हैं।

अभिसरण सीमा (Convergent boundaries)

जब एक प्लेट दूसरी प्लेट के नीचे धँसती है और जहाँ भूपर्पटी नष्ट होती है, वह अभिसरण सीमा है। वह स्थान जहाँ प्लेट धँसती हैं, इसे प्रविष्ठन क्षेत्र (Subduction zone) भी कहते हैं। अभिसरण तीन प्रकार से हो सकता है- (1) महासागरीय व महाद्वीपीय प्लेट के बीच (2) दो महासागरीय प्लेटों के बीच (3) दो महाद्वीपीय प्लेटों के बीच।

रूपांतर सीमा (Transform boundaries)

जहाँ न तो नई पर्पटी का निर्माण होता है और न ही पर्पटी का विनाश होता है, उन्हें रूपांतर सीमा कहते हैं। इसका कारण है कि इस सीमा पर प्लेटें एक दूसरे के साथ-साथ क्षैतिज दिशा में सरक जाती हैं। रूपांतर भ्रंश (Transform faults) दो प्लेट को अलग करने वाले तल हैं जो सामान्यतः मध्य-महासागरीय कटकों से लंबवत स्थिति में पाए जाते हैं। क्योंकि कटकों के शीर्ष पर एक ही समय में सभी स्थानों पर ज्वालामुखी उद्‌गार नहीं होता, ऐसे में पृथ्वी के अक्ष से दूर प्लेट के हिस्से भिन्न प्रकार से गति करते हैं। इसके अतिरिक्त पृथ्वी के घूर्णन का भी प्लेट के अलग खंडों पर भिन्न प्रभाव पड़ता है।

प्लेट प्रवाह की दर कैसे निर्धारित होती है?

प्लेट प्रवाह दरें (Rates of plate movement)

सामान्य व उत्क्रमण चुंबकीय क्षेत्र की पट्टियाँ जो मध्य-महासागरीय कटक के सामानांतर हैं, प्लेट प्रवाह की दर समझने में वैज्ञानिक के लिए सहायक सिद्ध हुई हैं। प्रवाह की ये दरें बहुत भिन्न हैं। आर्कटिक कटक की प्रवाह दर सबसे कम है (2.5 सेंटीमीटर प्रति वर्ष से भी कम)। ईस्टर द्वीप के निकट पूर्वी प्रशांत महासागरीय उभार, जो चिली से 3,400 कि0मी0 पश्चिम की ओर दक्षिण प्रशांत महासागर में है, इसकी प्रवाह दर सर्वाधिक है (जो 5 से०मी० प्रति वर्ष से भी अधिक है)।

प्लेट को संचलित करने वाले बल (Forces for the plate movement)

जिस समय वेगनर ने महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत प्रस्तुत किया था, उस समय अधिकतर वैज्ञानिकों का विश्वास था कि पृथ्वी एक ठोस, गति रहित पिंड है। यद्यपि सागरीय अधस्तल विस्तार और प्लेट विवर्तनिक-दोनों सिद्धांतों ने इस बात पर बल दिया कि पृथ्वी का धरातल व भूगर्भ दोनों ही स्थिर न होकर गतिमान हैं। प्लेट विचरण करती है-यह आज एक अकाट्य तथ्य है। ऐसा माना जाता है कि दृढ़ प्लेट के नीचे चलायमान चट्टानें वृत्ताकार रूप में चल रही हैं। उष्ण पदार्थ धरातल पर पहुँचता है, फैलता है और धीरे-धीरे ठंडा होता है; फिर गहराई में जाकर नष्ट हो जाता है। यही चक्र बारंबार दोहराया जाता है और वैज्ञानिक इसे संवहन प्रवाह (Convection flow) कहते हैं। पृथ्वी के भीतर ताप उत्पत्ति के दो माध्यम हैं-रेडियोधर्मी तत्वों का क्षय और अवशिष्ट ताप। आर्थर होम्स ने सन् 1930 में इस विचार को प्रतिपादित किया। जिसने बाद में हैरी हेस की सागरीय तल विस्तार अवधारणा को प्रभावित किया। दृढ़ प्लेटों के नीचे दुर्बल व उष्ण मैंटल है, जो प्लेट को प्रवाहित करता है।

भारतीय प्लेट का संचलन (Movement of the Indian Plate)

भारतीय प्लेट में प्रायद्वीप भारत और आस्ट्रेलिया महाद्वीपीय भाग सम्मिलित हैं। हिमालय पर्वत श्रेणियों के साथ-साथ पाया जाने वाला प्रविष्ठन क्षेत्र (Subduction zone), इसकी उत्तरी सीमा निर्धारित करता है जो महाद्वीपीय- महाद्वीपीय अभिसरण (Continent-continent convergence) के रूप में हैं। (अर्थात् दो महाद्वीप प्लेटों की सीमा है) यह पूर्व दिशा में म्यांमार के राकिन्योमा पर्वत से होते हुए एक चाप के रूप में जावा खाई तक फैला हुआ है। इसकी पूर्वी सीमा एक विस्तारित तल (Spreading site) है, जो आस्ट्रेलिया के पूर्व में दक्षिणी पश्चिमी प्रशांत महासागर में महासागरीय कटक के रूप में है। इसकी पश्चिमी सीमा पाकिस्तान की किरथर श्रेणियों का अनुसरण करती है। यह आगे मकरान तट के साथ-साथ होती हुई दक्षिण-पूर्वी चागोस द्वीप समूह (Chagos archipelago) के साथ-साथ लाल सागर द्रोणी (जो विस्तारण तल है) में जा मिलती है। भारतीय तथा आर्कटिक प्लेट की सीमा भी महासागरीय कटक से निर्धारित होती है (जो एक अपसारी सीमा (Divergent boundary) है।) और यह लगभग पूर्व-पश्चिम दिशा में होती हुई न्यूजीलैंड के दक्षिण में विस्तारित तल में मिल जाती है।

भारत एक वृहत् द्वीप था, जो आस्ट्रेलियाई तट से दूर एक विशाल महासागर में स्थित था। लगभग 22.5 करोड़ वर्ष पहले तक टेथीस सागर इसे एशिया महाद्वीप से अलग करता था। ऐसा माना जाता है कि लगभग 20 करोड़ वर्ष पहले, जब पैंजिया विभक्त हुआ तब भारत ने उत्तर दिशा की ओर खिसकना आरंभ किया। लगभग 4 से 5 करोड़ वर्ष पहले भारत एशिया से टकराया व परिणामस्वरूप हिमालय पर्वत का उत्थान हुआ। 7.1 करोड़ वर्ष पहले से आज तक की भारत की स्थिति मानचित्र 4.6 में दिखाई गई है। आरेख 4.6 भारतीय उपमहाद्वीप व यूरेशियन प्लेट की स्थिति भी दर्शाता है। आज से लगभग 14 करोड़ वर्ष पहले यह उपमहाद्वीप सुदूर दक्षिण में 50° दक्षिणी अक्षांश पर स्थित था। इन दो प्रमुख प्लेटों को टेथिस सागर अलग करता था और तिब्बतीय खंड, एशियाई स्थलखंड के करीब था। भारतीय प्लेट के एशियाई प्लेट की तरफ प्रवाह के दौरान एक प्रमुख घटना घटी-वह थी लावा प्रवाह से दक्कन ट्रेप का निर्माण होना। ऐसा लगभग 6 करोड़ वर्ष पहले आरंभहुआ और एक लंबे समय तक यह जारी रहा। याद रहे कि यह उपमहाद्वीप तब भी भूमध्यरेखा के निकट था। लगभग 4 करोड़ वर्ष पहले और इसके पश्चात् हिमालय की उत्पत्ति आरम्भ हुई। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह प्रक्रिया अभी भी जारी है और हिमालय की ऊँचाई अब भी बढ़ रही है।

खनिज एवं शैल

पृथ्वी विभिन्न तत्त्वों से बनी हुई है। इसकी बाहरी परत पर ये तत्त्व ठोस रूप में और आंतरिक परत में ये गर्म एवं पिघली हुई अवस्था में पाए जाते हैं।

पृथ्वी के संपूर्ण पर्पटी का लगभग 98 प्रतिशत भाग आठ तत्त्वों, जैसे ऑक्सीजन, सिलिकन, एलुमिनियम, लौहा, कैल्शियम, सोडियम, पोटैशियम तथा मैगनीशियम से बना है (सारणी 5.1) तथा शेष भाग टायटेनियम, हाइड्रोजन, फॉस्फोरस, मैंगनीज, सल्फर, कार्बन, निकिल एवं अन्य पदार्थों से बना है।

सारणी 5.1 : पृथ्वी के पर्पटी के प्रमुख तत्त्व

संख्या	*पदार्थ*	*वज़न के अनुसार (%)*
1.	ऑक्सीजन	46.60
2.	सिलिकन	27.72
3.	एलुमिनियम	8.13
4.	लौह	5.00
5.	कैलशियम	3.63
6.	सोडियम	2.83
7.	पोटैशियम	2.59
8.	मैगनेशियम	2.09
9.	अन्य	1.41

भूपर्पटी पर पाए जाने वाले तत्त्व प्रायः अलग-अलग नहीं मिलते, बल्कि सामान्यतः ये दूसरे तत्त्वों के साथ

इस प्रकार, खनिज एक ऐसा प्राकृतिक, कार्बनिक एवं अकार्बनिक तत्त्व है, जिसमें एक क्रमबद्ध परमाणविक संरचना. निश्चित रासायनिक संघटन तथा भौतिक गुणधर्म होते हैं। खनिज का निर्माण दो या दो से अधिक तत्त्वों से मिलकर होता है। लेकिन, कभी-कभी सल्फर, ताँबा, चाँदी. स्वर्ण, ग्रेफाइट जैसे एक तत्त्वीय खनिज भी पाए जाते हैं।

मिलकर विभिन्न पदार्थों का निर्माण करते हैं। इन पदार्थों को खनिजों का नाम दिया गया है।

यद्यपि स्थलमंडल का निर्माण करने वाले तत्त्वों की संख्या अत्यंत कम है. लेकिन आपस में उनका संयोजन विभिन्न तरीकों से होता है, जिससे खनिजों की अनेक किस्में बनती हैं। भूपर्पटी पर कम से कम 2000 प्रकार के खनिजों को पहचाना गया है, और उनको नाम दिया गया है। लेकिन इनमें से सामान्यतः उपलब्ध लगभग सभी पदार्थ, छह प्रमुख खनिज समूहों से संबंधित होते हैं. जिनको शैलों का निर्माण करने वाले प्रमुख खनिज माना गया है।

पृथ्वी के आंतरिक भाग में पाया जाने वाला मैग्मा ही सभी खनिजों का मूल स्रोत है। इस मैग्मा के ठंडे होने पर

भौतिक विशेषताओं और स्वभाव के आधार पर कुछ प्रमुख खनिजों की संक्षिप्त जानकारी यहाँ दी गई है।

भौतिक विशेषताएँ

(i) क्रिस्टल का बाहरी रूप अणुओं की आंतरिक व्यवस्था द्वारा तय होती है- घनाकार, अष्टभुजाकार, षट्भुजाकार प्रिज्म आदि।

(ii) विदलन सापेक्षिक रूप से समतल सतह बनाने के लिए निश्चित दिशा में टूटने की प्रवृत्ति; अणुओं की आंतरिक व्यवस्था का परिणाम; एक या कई दिशा में एक दूसरे से कोई भी कोण बनाकर टूट सकते हैं।

(iii) विभंजन अणुओं की आंतरिक व्यवस्था इतनी जटिल होती है कि अणुओं का कोई तल नहीं होता है; क्रिस्टल विदलन तल के अनुसार नहीं बल्कि अनियमित रूप से टूटता है।

COACH UP IAS
YOUR SATISFACTION IS OUR BUSINESS

भू-आकृतिक प्रक्रियाएँ

पृथ्वी की उत्पत्ति कैसे हुई? इसकी पर्पटी एवं अन्य आंतरिक संस्तरों का क्रम-विकास कैसे हुआ? भूपर्पटी प्लेट्स का संचलन किस प्रकार हुआ एवं कैसे हो रहा है? भूकंप, ज्वालामुखी के प्रकार एवं भू-पर्पटी को निर्मित करने वाले शैलों और खनिजों के विषय में सूचनाओं की जानकारी के पश्चात् अब हम जिस धरातल पर रहते हैं, उसके विषय में भी विस्तार से जानने का प्रयास करेंगे। हम इस प्रश्न के साथ प्रारंभ करते हैं:

धरातल असमतल क्यों है?

सर्वप्रथम भू-पर्पटी गत्यात्मक है। आप अच्छी तरह जानते हैं कि यह क्षैतिज तथा ऊर्ध्वाधर दिशाओं में संचलित होती रहती है। निश्चित तौर पर यह भूतकाल में वर्तमान गति की अपेक्षा थोड़ी तीव्रतर संचलित होती थी। भू-पर्पटी का निर्माण करने वाले पृथ्वी के भीतर सक्रिय आंतरिक बलों में पाया जाने वाला अंतर ही पृथ्वी के बाह्य सतह में अंतर के लिए उत्तरदायी है। मूलतः. धरातल सूर्य से प्राप्त ऊर्जा द्वारा प्रेरित बाह्य बलों से अनवरत प्रभावित होता रहता है। निश्चित रूप से आंतरिक बल अभी भी सक्रिय हैं, यद्यपि उनकी तीव्रता में अंतर है। इसका तात्पर्य है कि धरातल पृथ्वी मंडल के अंतर्गत उत्पन्न हुए बाह्य बलों एवं पृथ्वी के अंदर उद्भूत आंतरिक बलों से अनवरत प्रभावित होता है तथा यह सर्वदा परिवर्तनशील है। बाह्य बलों को बहिर्जनिक (Exogenic) तथा आंतरिक बलों को अंतर्जनित (Endogenic) बल कहते हैं। बहिर्जनिक बलों की क्रियाओं का परिणाम होता है- उभरी हुई भू-आकृतियों का विघर्षण (Wearing down) तथा बेसिन/निम्न क्षेत्रों गर्तों का भराव (अधिवृद्धि/तल्लोचन)। धरातल पर अपरदन के माध्यम से उच्चावच के मध्य अंतर के कम होने को तल संतुलन (Gradation) कहते हैं। अंतर्जनित शक्तियाँ निरंतर धरातल के भागों को ऊपर उठाती हैं या उनका निर्माण करती हैं तथा इस प्रकार बहिर्जनिक प्रक्रियाएँ उच्चावच में भिन्नता को सम (बराबर) करने में असफल रहती हैं। अतएव भिन्नता तब तक बनी रहती है जब तक बहिर्जनिक एवं अन्तर्जनित बलों के विरोधात्मक कार्य चलते रहते हैं। सामान्यतः अंतर्जनित बल मूल रूप से भू-आकृति निर्माण करने वाले बल हैं तथा बहिर्जनिक प्रक्रियाएँ मुख्य रूप से भूमि विघर्षण बल होती हैं।

भू-तल संवेदनशील है। मानव अपने निर्वाह के लिए इस पर निर्भर करता है तथा इसका व्यापक एवं सघन उपयोग करता है। लगभग सभी जीवों का धरातल के पर्यावरण के अनुवाह (Sustain) में योगदान होता है। मनुष्यों ने संसाधनों का अत्यधिक दोहन किया है। हमें इनका उपयोग करना चाहिए, किंतु भविष्य में जीवन निर्वाह के लिए इसकी पर्याप्त संभाव्यता को बचाये रखना चाहिए। धरातल के अधिकांश भाग को बहुत लंबी अवधि (सैकड़ों-हज़ारों वर्षों) में आकार प्राप्त हुआ है तथा मानव द्वारा इसके उपयोग, दुरुपयोग एवं कुप्रयोग के कारण इसकी संभाव्यता (विभव) में बहुत तीव्र गति से हास हो रहा है। यदि उन प्रक्रियाओं, जिन्होंने धरातल को विभिन्न आकार दिया और अभी दे रही हैं, तथा उन पदार्थों की प्रकृति जिनसे यह निर्मित है, को समझ लिया जाए तो निश्चित रूप से मानव उपयोग जनित हानिकारक प्रभाव को कम करने एवं भविष्य के लिए इसके संरक्षण हेतु आवश्यक उपाय किए जा सकते हैं।

भू-आकृतिक प्रक्रियाएँ (Geomorphic Processes)

आप भू-आकृतिक प्रक्रियाएँ के अर्थ को समझना चाहेंगे। धरातल के पदार्थों पर अंतर्जनित एवं बहिर्जनिक बलों द्वारा भौतिक दबाव तथा रासायनिक क्रियाओं के कारण भूतल के विन्यास में परिवर्तन को भू-आकृतिक प्रक्रियाएँ कहते हैं। पटल विरूपण (Diastrophism) एवं ज्वालामुखीयता (Volcanism) अंतर्जनित भू-आकृतिक प्रक्रियाएँ हैं, जो इससे पहले की इकाई में संक्षेप में विवेचित हैं। अपक्षय, वृहत क्षरण (Mass wasting), अपरदन एवं निक्षेपण (Deposition) बहिर्जनिक भू-आकृतिक प्रक्रियाएँ हैं। इनका इस अध्याय में विस्तार से विवेचन किया गया है।

प्रकृति के किसी भी बहिर्जनिक तत्त्व (जैसे- जल, हिम, वायु इत्यादि), जो धरातल के पदार्थों का अधिग्रहण (Acquire) तथा परिवहन करने में सक्षम है, को भू-आकृतिक कारक कहा जा सकता है। जब प्रकृति के ये तत्त्व ढाल प्रवणता के कारण गतिशील हो जाते हैं तो पदार्थों को हटाकर ढाल के सहारे ले जाते हैं और निचले भागों में निक्षेपित कर देते हैं। भू-आकृतिक प्रक्रियाएँ तथा भू-आकृतिक कारक विशेषकर बहिर्जनिक, को यदि स्पष्ट रूप से अलग-अलग न कहा जाए तो इन्हें एक ही समझना होगा क्योंकि ये दोनों एक ही होते हैं।

एक प्रक्रिया एक बल होता है जो धरातल के पदार्थों के साथ अनुप्रयुक्त होने पर प्रभावी हो जाता है। एक कारक (Agent) एक गतिशील माध्यम (जैसे- प्रवाहित जल, हिमानी, हवा, लहरें एवं धाराएँ इत्यादि) है जो धरातल के पदार्थों को हटाता, ले जाता तथा निक्षेपित करता है। इस प्रकार प्रवाहयुक्त जल, भूमिगत जल, हिमानी, हवा, लहरों, धाराओं इत्यादि को भू-आकृतिक कारक कहा जा सकता है।

गुरुत्वाकर्षण, ढाल के सहारे सभी गतिशील पदार्थों को सक्रिय बनाने वाली दिशात्मक (Directional) बल होने के साथ-साथ धरातल के पदार्थों पर दबाव (Stress) डालता है। अप्रत्यक्ष गुरुत्वाकर्षक प्रतिबल (Stress) लहरों एवं ज्वार-भाटा जनित धाराओं को क्रियाशील बनाता है। निःसंदेह गुरुत्वाकर्षण एवं ढाल प्रवणता के अभाव में गतिशीलता संभव नहीं हैं अतः अपरदन, परिवहन एवं निक्षेपण भी नहीं होगा। गुरुत्वाकर्षण एक ऐसा बल है जिसके माध्यम से हम धरातल से संपर्क में रहते हैं। यह वह बल है जो भूतल के सभी पदार्थों के संचलन को प्रारंभ करता है। सभी संचलन, चाहे वे पृथ्वी के अंदर हों या सतह पर, प्रवणता के कारण ही घटित होते हैं, जैसे ऊँचे स्तर से नीचे स्तर की ओर, तथा उच्च वायु दाब क्षेत्र से निम्न वायु दाब क्षेत्र की ओर।

अंतर्जनित प्रक्रियाएँ (Endogenic processes)

पृथ्वी के अंदर से निकलने वाली ऊर्जा भू-आकृतिक प्रक्रियाओं के लिए प्रमुख बल स्रोत होती है। पृथ्वी के अंदर की ऊर्जा अधिकांशतः रेडियोधर्मी क्रियाओं, घूर्णन (Rotational) एवं ज्वारीय घर्षण तथा पृथ्वी की उत्पत्ति से जुड़ी ऊष्मा द्वारा उत्पन्न होती है। भू-तापीय प्रवणता एवं अंदर से निकले ऊष्मा प्रवाह से प्राप्त ऊर्जा पटल विरूपण (Disastrophism) एवं ज्वालामुखीयता को प्रेरित करती है। भू-तापीय प्रवणता एवं अंदर के ऊष्मा प्रवाह, भू-पर्पटी की मोटाई एवं दृढ़ता में अंतर के कारण अंतर्जनित बलों के कार्य समान नहीं होते हैं। अतः विवर्तनिक द्वारा नियंत्रित मूल भू-पर्पटी की सतह असमतल होती है।

पटल विरूपण (Diastrophism)

सभी प्रक्रियाएँ जो भू-पर्पटी को संचलित, उत्थापित तथा निर्मित करती हैं, पटल विरूपण के अंतर्गत आती हैं। इनमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं (i) तीक्ष्ण वलयन के माध्यम से पर्वत निर्माण तथा भू-पर्पटी की लंबी एवं संकीर्ण पट्टियों को प्रभावित करने वाली पर्वतनी प्रक्रियाएँ (ii) धरातल के बड़े भाग के उत्थापन या विकृति में संलग्न महाद्वीप रचना संबंधी प्रक्रियाएँ, (iii) अपेक्षाकृत छोटे स्थानीय संचलन के कारण उत्पन्न भूकंप, (iv) पर्पटी प्लेट के क्षैतिज संचलन करने में प्लेट विवर्तनिकी की भूमिका। प्लेट विवर्तनिक/पर्वतनी की प्रक्रिया में भू-पर्पटी वलयन के रूप में तीक्ष्णता से विकृत हो जाती है। महाद्वीप रचना के कारण साधारण विकृति हो सकती है।

पर्वतनी पर्वत निर्माण प्रक्रिया है, जबकि महाद्वीप रचना महाद्वीप निर्माण-प्रक्रिया है। पर्वतनी, महाद्वीप रचना (Epeirogeny), भूकंप एवं प्लेट विवर्तनिक की प्रक्रियाओं से भू-पर्पटी में भ्रंश तथा विभंग हो सकता है। इन सभी प्रक्रियाओं के कारण दबाव, आयतन तथा तापक्रम में परिवर्तन होता है जिसके फलस्वरूप शैलों का कायांतरण प्रेरित होता है।

ज्वालामुखीयता (Volcanism)

ज्वालामुखीयता के अंतर्गत पिघली हुई शैलों या लावा (Magma) का भूतल की ओर संचलन एवं अनेक आंतरिक तथा बाह्य ज्वालामुखी स्वरूपों का निर्माण सम्मिलित होता है। इस पुस्तक की द्वितीय इकाई के ज्वालामुखी शीर्षक एवं पिछले अध्याय के आग्नेय शैलें शीर्षक के अंतर्गत ज्वालामुखीयता के बहुत से पक्षों का विस्तृत विवरण दिया जा चुका है।

बहिर्जनिक प्रक्रियाएँ (Exogenic processes)

बहिर्जनिक प्रक्रियाएँ अपनी ऊर्जा 'सूर्य द्वारा निर्धारित वायुमंडलीय ऊर्जा एवं अंतर्जनित शक्तियों से नियंत्रित विवर्तनिक (Tectonic) कारकों से उत्पन्न प्रवणता से प्राप्त करती हैं।

आप क्यों सोचते हैं कि ढाल या प्रवणता बहिर्जनिक बलों से नियंत्रित विवर्तनिक कारकों द्वारा निर्मित होते हैं?

गुरुत्वाकर्षण बल ढालयुक्त सतह वाले धरातल पर कार्यरत रहता है तथा ढाल की दिशा में पदार्थ को संचलित करता है। प्रति इकाई क्षेत्र पर अनुप्रयुक्त बल को प्रतिबल (Stress) कहते हैं। ठोस पदार्थ में प्रतिबल (Stress) धक्का एवं खिंचाव (Push and pull) से उत्पन्न होता है। इससे विकृति प्रेरित होती है। धरातल के पदार्थों के सहारे सक्रिय बल अपरूपण प्रतिबल (Shear stresses) (विलगकारी बल) होते हैं। यही प्रतिबल शैलों एवं धरातल के पदार्थों को तोड़ता है। अपरूपण प्रतिबल का परिणाम कोणीय विस्थापन (Angular displacement) या विसर्पण/फिसलन (Slippag) होता है। धरातल के पदार्थ गुरुत्वाकर्षण प्रतिबल के अतिरिक्त आण्विक प्रतिबलों से भी प्रभावित होते हैं, जो कई कारकों, जैसे तापमान में परिवर्तन, क्रिस्टलन (Crystalisation) एवं पिघलन द्वारा उत्पन्न होते हैं। रासायनिक प्रक्रियाएँ सामान्यतः कणों (Grains) के बीच के बंधन को ढीला करते हैं तथा विलेय पदार्थों को घुला देते हैं। इस प्रकार, धरातल के पदार्थों के पिंड (Body) में प्रतिबल का विकास अपक्षय, वृहत् क्षरण संचलन, अपरदन एवं निक्षेपण का मूल कारण है।

चूँकि, धरातल पर विभिन्न प्रकार के जलवायु प्रदेश मिलते हैं इसलिए बहिर्जनिक भू-आकृतिक प्रकियाएँ भी एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में भिन्न होती हैं। तापक्रम तथा वर्षण दो महत्त्वपूर्ण जलवायवीय तत्त्व है, जो विभिन्न प्रक्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।

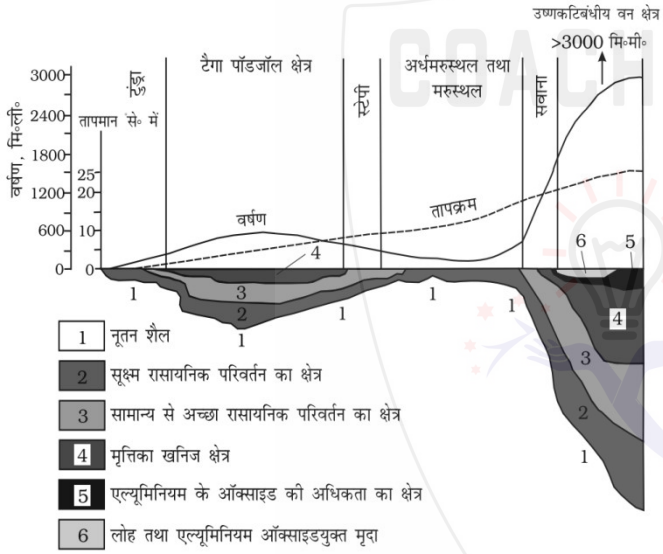
सभी बहिर्जनिक भू-आकृतिक प्रक्रियाओं को एक सामान्य शब्दावली अनाच्छादन (Denudation) के अंतर्गत रखा जा सकता है। अनाच्छादन शब्द का अर्थ है निरावृत्त (Strip off) करना या आवरण हटाना। अपक्षय, वृहत् क्षरण, संचलन, अपरदन, परिवहन आदि सभी इसमें सम्मिलित किये जाते हैं। प्रवाह चित्र (चित्र 6.1) अनाच्छादन प्रक्रियाओं तथा उनसे संबंधित प्रेरक बल को दर्शाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि प्रत्येक प्रक्रिया के लिए एक विशिष्ट प्रेरक बल या ऊर्जा होती है।

बहिर्जनिक भू-आकृतिक प्रक्रियाएँ एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न-भिन्न होती है। जैसा कि स्पष्ट है कि पृथ्वी के धरातल पर तापीय प्रवणता के कारण भिन्न-भिन्न जलवायु प्रदेश स्थित हैं जो कि अक्षांशीय, मौसमी एवं जल-थल विस्तार में भिन्नता के द्वारा उत्पन्न होते हैं। तापमान एवं वर्षण जलवायु के दो महत्त्वपूर्ण घटक है जो कि विभिन्न भू-आकृतिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करते हैं। वनस्पति का घनत्व, प्रकार एवं वितरण, जो प्रमुखतः वर्षा एवं तापक्रम पर निर्भर करते हैं, बहिर्जनिक भू-आकृतिक प्रक्रियाओं पर अप्रत्यक्ष प्रभाव डालते हैं। विभिन्न जलवायु-प्रदेशों में विभिन्न जलवायवी तत्त्वों जैसे- ऊँचाई में अंतर, दक्षिणमुखी ढालों पर पूर्व एवं पश्चिममुखी ढालों की अपेक्षा अधिक सूर्यातप प्राप्ति आदि के कारण स्थानीय भिन्नता पायी जाती है। पुनश्च वायु का वेग एवं

दिशा, वर्षण की मात्रा एवं प्रकार, इसकी गहनता. वर्षण एवं वाष्पीकरण में संबंध, तापक्रम की दैनिक श्रेणी, हिमकरण एवं पिघलन की आवृत्ति, तुषार (Frost) व्यापन की गहराई इत्यादि में अंतर के कारण किसी भी जलवायु प्रदेश के अंदर भू-आकृतिक प्रक्रियाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं।

सभी बहिर्जनिक प्रक्रियाओं के पीछे एकमात्र प्रेरक बल क्या होता है?

यदि जलवायवी कारक समान हों तो बहिर्जनिक भू-आकृतिक प्रक्रियाओं के कार्यों की गहनता शैलों के प्रकार एवं संरचना पर निर्भर करती है। संरचना में वलन, भ्रंश, संस्तर का पूर्वाभिमुखीकरण (Orientation), झुकाव, जोड़ों की उपस्थिति या अनुपस्थिति, संस्तरण तल, घटक खनिजों की कठोरता या कोमलता तथा उनकी रासायनिक संवेदनशीलता, पारगम्यता (Permeability) या अपारगम्यता इत्यादि सम्मिलित माने गये हैं।



विभिन्न प्रकार की शैलें अपनी संरचना में भिन्नता के कारण भू-आकृतिक प्रतिक्रियाओं के प्रति विभिन्न प्रतिरोध क्षमता प्रस्तुत करती हैं। एक विशेष शैल एक प्रक्रिया के प्रति प्रतिरोधपूर्ण तथा वही दूसरी प्रक्रिया के प्रति प्रतिरोध रहित हो सकती हैं विभिन्न जलवायवी दशाओं में एक विशेष प्रकार की शैलें भू-आकृतिक प्रतिक्रियाओं के प्रति भिन्न-भिन्न अंशों का प्रतिरोध प्रस्तुत कर सकती हैं अतएव वे भिन्न दरों पर कार्यरत रहती हैं तथा स्थलाकृति में भिन्नता का कारण बन जाती हैं। अधिकांश बहिर्जनिक भू-आकृतिक प्रतिक्रियाओं का प्रभाव थोड़ा एव मंद होता है तथा अल्पावधि में अनवगम्य (Imperceptible) हो सकता है। दीर्घावधि में यह सतत श्रांति (Fatigue) के कारण शैलों को तीव्र रूप से प्रभावित करता है।

अंततः यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि धरातल पर विभिन्नता यद्यपि मूल रूप से भू-पर्पटी के उद्भव से संबंधित है, तथापि धरातल के पदार्थों के प्रकार एवं संरचना में अंतर, भू-आकृतिक प्रक्रियाओं एवं उनके सक्रियता दर में अंतर आदि के कारण एक ना एक रूप में विद्यमान रहती है।

कुछ बहिर्जनिक भू-आकृतिक प्रक्रियाओं का यहाँ विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।

अपक्षय (Weathering)

अपक्षय के अंतर्गत वायुमंडलीय तत्त्वों की धरातल के पदार्थों पर की गई क्रिया सम्मिलित होती है। अपक्षय के अंदर ही अनेक प्रक्रियाएँ हैं जो पृथक या (प्रायः) सामूहिक रूप से धरातल के पदार्थों को प्रभावित करती हैं।

अपक्षय को मौसम एवं जलवायु के कार्यों के माध्यम से शैलों के यांत्रिक विखंडन (Mechanical) एवं रासायनिक वियोजन/अपघटन (Decomposition) के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

चूँकि, अपक्षय में पदार्थों का बहुत थोड़ा अथवा नगण्य संचलन होता है यह एक स्वस्थाने (In situ) या तदस्थन (On-site) प्रक्रिया है।

अपक्षय-प्रक्रियाएँ जटिल भौमिकी, जलवायवी, स्थलाकृतिक एवं वनस्पतिक कारकों द्वारा प्रानुकूलित (Conditioned) होती हैं। इन सबमें जलवायु का विशेष महत्त्व है। न केवल अपक्षय प्रक्रियाएँ अपितु अपक्षय मैंटल की गहराई भी एक जलवायु से दूसरे जलवायु में भिन्न-भिन्न होती है1

अपक्षय प्रक्रियाओं के तीन प्रमुख प्रकार हैं (1) रासायनिक (2) भौतिक या यांत्रिक एवं (3) जैविक। इनमें से कोई एक प्रक्रिया कतिपय ही अकेले काम करती है परंतु प्रायः किसी एक प्रक्रिया का अधिक महत्त्वपूर्ण योगदान देखा जा सकता है।

रासायनिक अपक्षय प्रक्रियाएँ (Chemical Weathering Processes)

अपक्षय प्रक्रियाओं का एक समूह जैसे कि विलयन, कार्बोनेटीकरण, जलयोजन, ऑक्सीकरण तथा न्यूनीकरण शैलों के अपघटन, विलयन अथवा न्यूनीकरण का कार्य करते हैं, जो कि रासायनिक क्रिया द्वारा सूक्ष्म (Clastic) अवस्था में परिवर्तित हो जाती हैं। ऑक्सीजन, धरातलीय जल, मृदा जल एवं अन्य अम्लों की प्रक्रिया द्वारा चट्टानों का न्यूनीकरण होता है। इसमें ऊष्मा के साथ जल एवं वायु (ऑक्सीजन तथा कार्बन डाईऑक्साइड) की विद्यमानता सभी रासायनिक प्रतिक्रियाओं को तीव्र गति देने के लिए आवश्यक है। वायु में विद्यमान कार्बन डाईऑक्साइड के अतिरिक्त पौधों एवं पशुओं का अपघटन भूमिगत कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा को बढ़ा देता है। विभिन्न खनिजों पर रासायनिक प्रतिक्रियाएँ किसी अनुसंधानशाला में प्रतिक्रियाओं के समान ही होती हैं।

घोल/विलयन (Solution)

जब कोई वस्तु, जल या अम्ल (Acid) में घुल जाती है तो घुलित तत्त्वों के जल या अम्ल को घोल कहते हैं। इस प्रक्रिया में ठोस पदार्थों का घोल में मिलना सम्मिलित होता है जो जल या कम अम्ल में खनिज की

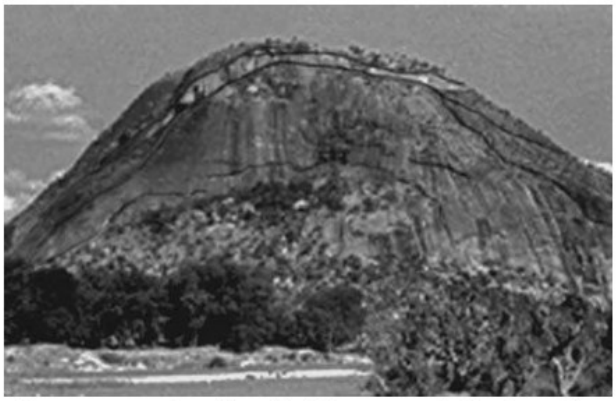
विलयता पर निर्भर करता है। जल से सम्पर्क में आने पर अनेक ठोस पदार्थ विघटित हो जाते हैं एवं जल में निलंबन (Suspension) के रूप में मिश्रित हो जाते हैं। घुलनशील शैल निर्माण करने वाले नाइट्रेट, सल्फेट एवं पोटेशियम जैसे खनिज इस प्रक्रिया से प्रभावित होते हैं। अतः यह खनिज अधिक वर्षा की जलवायु में बिना कोई अवशिष्ट छोड़े सुगमता से निक्षालित (Leached) हो जाते हैं और शुष्क प्रदेशों में वर्षा के कारण एकत्रित हो जाते हैं। चूना पत्थर में विद्यमान कैल्शियम कार्बोनेट, कैल्शियम मैग्नेशियम बाईकार्बोनेट जैसे खनिज, कार्बोनिक एसिड युक्त जल (जो जल में कार्बन डाईऑक्साइड मिलने से बनता है) में घुलनशील होते हैं तथा जल में एक घोल के रूप में प्रवाहित होते हैं। क्षयोन्मुख जैव पदार्थों द्वारा जनित कार्बन डाईऑक्साइड मृदा जल के साथ मिलकर इस प्रक्रिया में बहुत सहायक होता है। साधारण (Common) लवण-सोडियम क्लोराइड भी एक शैल निर्माण करने वाला खनिज है जो कि घुलनशील है।

कार्बोनेशन (Carbonation)

कार्बोनेट एवं बाई कार्बोनेट की खनिजों से प्रतिक्रिया का प्रतिफल कार्बोनेशन कहलाता है। यह फेल्सपार तथा कार्बोनेट खनिज को पृथक करने में एक आम सहायक प्रक्रिया है। जल द्वारा वायुमंडल एवं मृदावायु से कार्बन डाईऑक्साइड, अवशोषित की जाती है। इससे कार्बोनिक अम्ल का निर्माण होता है जो कि एक कम सक्रिय अम्ल के रूप में कार्य करता है। कैल्शियम कार्बोनेट एवं मैग्नीशियम कार्बोनेट, कार्बनिक एसिड में घुल जाते हैं तथा कोई अवशेष नहीं छोड़ते। इसके परिणामस्वरूप भूमिगत गुफाओं का निर्माण होता है।

जलयोजन (Hydration)

जलयोजन जल का रासायनिक योग है। खनिज स्वयं जल धारण करके विस्तारित (Expanded) हो जाते हैं एवं यह विस्तार पदार्थ के आयतन (Volume) अथवा शैल में वृद्धि का कारण बनते हैं। कैल्शियम सल्फेट जल मिलने के बाद जिप्सम में परिवर्तित हो जाता है जो कैल्शियम सल्फेट की अपेक्षा अधिक अस्थायी होता है।



चित्र 6.3 : आंध्र प्रदेश में भंगीर (भुवनागिरी) के समीप ग्रेनाइट शैल में वृहत् अपशल्कन गुम्बद

यह प्रतिक्रिया उत्क्रमणीय एवं लंबी होती है तथा इसके सतत् पुनरावृत्ति से शैलों में श्रांति हो जाती है जिसके फलस्वरूप उनमें विघटन हो सकता है। अनेक क्ले खनिज शुष्क एवं आर्द्र होने की प्रक्रिया में फूलते एवं संकुचित होते हैं तथा इस प्रक्रिया की पुनरावृत्ति उपरिशायी (Overlying) पदार्थों में दरार का कारण बनती है। रंध्र क्षेत्र में समाहित लवण तीव्र एवं बार-बार जलयोजन से प्रभावित होकर शैल विभंग (Fracture) में सहायक होता है। जलयोजन के कारण खनिजों के आयतन में परिवर्तन अपशल्कन (Exfoliation) एवं कणीय विघटन द्वारा भौतिक अपक्षय में भी सहायता प्रदान करता है।

ऑक्सीकरण एवं न्यूनीकरण (Oxidation and Reduction)

अपक्षय में ऑक्सीकरण का तात्पर्य होता है ऑक्साइड या हाइड्रोऑक्साइड के निर्माण हेतु खनिज एवं ऑक्सीजन का संयोग। ऑक्सीकरण वहीं होता है जहाँ वायुमंडल एवं ऑक्सीजन युक्त जल मिलते हैं। इस प्रक्रिया में लौह, मैगनीज, गंधक (Sulphur) इत्यादि सर्वाधिक शामिल होते हैं। ऑक्सीकरण की प्रक्रिया में ऑक्सीजन के योग के कारण पैदा हुए व्यवधान से शैलों का टूटना जारी रहता है। ऑक्सीकरण एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है जो लौह धारक बायोटाइट, ओलीवाइन, एवं पाइरोक्सीन जैसे खनिजों को प्रभावित करती है। ऑक्सीकरण होने पर लौह का लाल रंग, भूरे या पीले रंग में परिवर्तित हो जाता है। जब ऑक्सीकृत खनिज ऐसे वातावरण में रखे जाते हैं जहाँ ऑक्सीजन का अभाव है तो एक दूसरी रासायनिक अपक्षय प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है जिसे न्यूनीकरण क्रिया कहते हैं। ऐसी दशाएँ प्रायः भौम जलस्तर के नीचे, रूद्ध जल के क्षेत्र या जलप्लावित क्षेत्रों में पायी जाती हैं। न्यूनीकृत होने पर लौह का लाल रंग, हरे या आसमानी धूसर (Bluish grey) रंग में बदल जाता है।

अपक्षय की ये प्रक्रियाएँ अंतः संबंधित हैं। जलयोजन, कार्बोनेशन एवं ऑक्सीकरण साथ-साथ चलते रहते हैं एवं अपक्षय प्रक्रिया को त्वरित बना देते हैं।

क्या हम लौह में जंग लगने को ऑक्सीकरण का उदाहरण मान सकते हैं? रासायनिक अपक्षय प्रक्रियाओं में जल कितना आवश्यक है? क्या रासायनिक अपक्षय प्रक्रिया जलाभाव (Water scarce) वाले उष्ण मरुस्थलों में प्रभावकारी हो सकती है?

भौतिक अपक्षय प्रक्रियाएँ (Physical Weathering Processes)

भौतिक या यांत्रिक अपक्षय-प्रक्रियाएँ कुछ अनुप्रयुक्त बलों (Forces) पर निर्भर करती हैं। ये अनुप्रयुक्त बल निम्नलिखित हो सकते हैं: (i) गुरुत्वाकर्षक बल, जैसे अत्यधिक ऊपर भार दबाव, एवं अपरूपण प्रतिबल (Shear stress), (ii) तापक्रम में परिवर्तन, क्रिस्टल रवों में वृद्धि एवं पशुओं के क्रियाकलापों के कारण उत्पन्न विस्तारण (Expansion) बल, (iii) शुष्कन एवं आर्द्रन चक्रों से नियंत्रित जल का दबाव। इनमें से कई बल धरातल एवं विभिन्न धरातल पदार्थों के अंदर

अनुप्रयुक्त होती हैं जिसका परिणाम शैलों का विभंग (Fracture) होता है। भौतिक अपक्षय प्रक्रियाओं में अधिकांश तापीय विस्तारण एवं दबाव के निर्मुक्त होने (Release) के कारण होता है। ये प्रक्रियाएँ लघु एवं मंद होती हैं परंतु कई बार संकुचन एवं विस्तारण के कारण शैलों के सतत् श्रांति (Fatigue) के फलस्वरूप ये शैलों को बड़ी हानि पहुँचा सकती हैं।

भारविहीनीकरण एवं विस्तारण (Unloading and expansion)

अनवरत अपरदन के कारण उपरिशायी शैलों के भार का अपनयन ऊर्ध्वाधर दबाव (Vertical pressure) के निर्मुक्ति का कारक होता है जिससे शैलों के ऊपरी संस्तर विस्तारित हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप शैलों का पातन एवं तत्स्वरूप विघटन होता है। विभंग (Fracture) मोटे तौर पर भूतल की सतह के समानांतर विकसित होता है। भूमि के वक्र सतह वाले क्षेत्रों में चाप विभंग द्वारा शैलों की भारी चादरें या अपशल्कन पट्टियाँ निर्मित करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। भारविहीनीकरण (Unloading) एवं दबाव मुक्त होने के कारण विस्तारण से उत्पन्न अपशल्कन चादरों का क्षैतिज विस्तार सैकड़ों या यहाँ तक कि हजारों मीटर तक हो सकता है। बड़े, चिकने गोलाकार गुंबद को अपशल्कन गुंबद कहते हैं (चित्र 6.3) जो इस प्रक्रिया के द्वारा बनता है।

तापक्रम में परिवर्तन एवं विस्तारण (Temperature changes and expansion)

शैलों में विद्यमान विभिन्न प्रकार के खनिजों में स्वयं के विस्तारण एवं संकुचन की अपनी सीमाएँ होती हैं। तापक्रम बढ़ने के साथ प्रत्येक खनिज फैलता है एवं अपने निकटस्थ खनिज को दबाता है तथा तापक्रम गिरने के साथ उसमें तद्नुसार संकुचन होता है। तापक्रम में दैनिक परिवर्तन के कारण शैलों के छिछले संस्तरों के खनिज कणों में आंतरिक संचलन नियमित रूप से होता रहता है। यह प्रक्रिया शुष्क जलवायु एवं अधिक ऊँचे क्षेत्रों में, जहाँ दैनिक तापक्रमांतर बहुत अधिक होता है, सर्वाधिक प्रभावशाली होती है। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि ये संचलन बहुत लघु होते हैं परंतु अनवरत श्रांति (Fatigue) से शैलों को बहुत कमजोर बना देते हैं। शैलों के सतही संस्तरों में उनकी गहराई के संस्तरों की अपेक्षा विस्तारण की प्रवृत्ति अधिक होती है, जिसके कारण शैलों के अंदर प्रतिबल (Stress) उत्पन्न होता है, परिणामस्वरूप सतह के समानांतर अनुप्रस्थ विस्थापन एवं विभंग विकसित हो जाते हैं। गर्म तथा ठंडा होने में विभेद एवं भिन्नता होने के कारण सतह के संस्तर में होने वाले फैलाव तथा संकुचन और तत्पश्चात् धरातल से अपशल्कन के कारण शैलों में चिकनी, गोलाकार सतहों का निर्माण होता है। ग्रेनाइट शैलों में इस प्रक्रिया से चिकनी सतह के छोटे से लेकर बड़े गोलाश्मों का निर्माण होता है, जिसे टॉर कहते हैं।

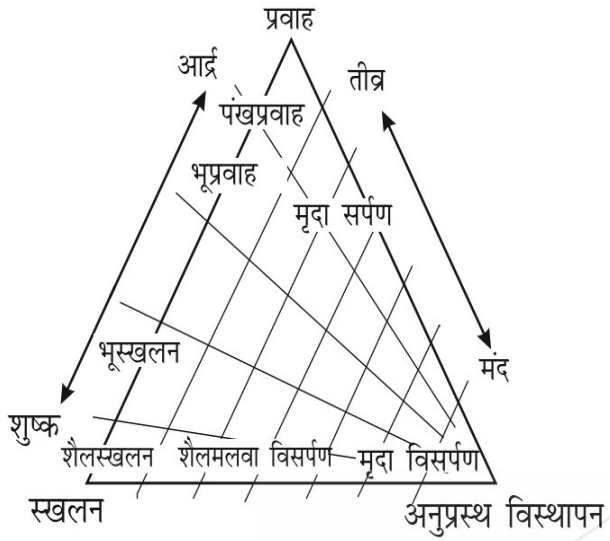
हिमकरण, पिघलन एवं तुषार वेजिंग (Freezing thawing and frost wedging)

शैलों के रंध्रों एवं दरारों में बार-बार हिमकरण एवं पिघलन के होने से हिम की वृद्धि के कारण तुषार अपक्षय घटित होता है। यह प्रक्रिया मध्य अक्षांशों में अधिक ऊँचाइयों, जहाँ हिमकरण एवं पिघलन की प्रायः पुनरावृत्ति होती है, में सर्वाधिक प्रभावशाली होती है। जल का तीव्रता से हिमकरण इसके अचानक फैलाव एवं उच्च दबाव का कारण बनता है। यह फैलाव संधियों (Joints) दरारों एवं छोटी-छोटी अंतर्कणीय (Intergranular) विभंगों को प्रभावित कर उन्हें तब तक चौड़ा करता जाता है जब तक शैलें टूटकर अलग नहीं हो जातीं।

लवण अपक्षय (Salt weathering)

शैलों में नमक तापीय क्रिया, जलयोजन एवं क्रिस्टलीकरण के कारण फैलता है। कैल्शियम, सोडियम, मैग्नेशियम, पोटैशियम एवं बोरियम जैसे कई लवणों में आयतनिक फैलाव की प्रवृत्ति होती है। इन लवणों का फैलाव उनके तापक्रम एवं तापीय विशेषताओं पर निर्भर करता है। रेगिस्तानों में 30° से० से 50° से० तक का सतह पर उच्च तापक्रम लवण विस्तारण में सहायक होता है। सतह के निकटस्थ रंध्रों में लवण के क्रिस्टल शैलों के पृथक कणों में विपाटन पैदा कर देते हैं जो अन्ततः गिर जाते हैं। पृथक कणों के गिरने की यह प्रक्रिया कणिक विघटन या कणिक शल्कन का कारण बन सकती है।

सभी लवण विघटन प्रक्रियाओं में लवण क्रिस्टलन सर्वाधिक प्रभावकारी है। आर्द्रता एवं शुष्कन के एकांतर वाले क्षेत्रों में लवण क्रिस्टल की वृद्धि के लिए उपयुक्त दशाएँ होती हैं। इसमें निकटस्थ कण अलग हो जाते हैं। मरुस्थली क्षेत्रों में सोडियम क्लोराइड एवं जिप्सम क्रिस्टल अनुप्रस्थ-विस्थापित (Heaved up) हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप पूरे अनुप्रस्थ विस्थापित सतह पर दरारें विकसित हो जाती हैं। लवण क्रिस्टल की वृद्धि के साथ खड़िया बड़ी सुगमता से टूट जाती है। इसके बाद चूना पत्थर, बालू पत्थर, शेल, नीस, ग्रेनाइट की भी यही स्थिति होती है।



चित्र 6.5 : वृहद् संचलन के विभिन्न रूपों का सह-संबंध, उनकी सापेक्षित गति की दर एवं आर्द्रता की सीमा (व्हाइटहेड, 2001)

जैविक कार्य एवं अपक्षय (Biological activity and weathering)

जैविक अपक्षय, जीवों की वृद्धि या संचलन से उत्पन्न अपक्षय-वातावरण एवं भौतिक परिवर्तन से खनिजों एवं आयन (Ions) के स्थानांतरण की दिशा में एक योगदान है। केंचुओं, दीमकों, चूहों, कृंतकों इत्यादि जैसे जीवों द्वारा बिल खोदने एवं वेजिंग (फान) के द्वारा नयी सतहों (Surfaces) का निर्माण होता है जिससे रासायनिक प्रक्रिया के लिए अनावृत्त (Expose) सतह में नमी एवं हवा के वेधन में सहायता मिलती है। मानव भी वनस्पतियों को अस्त-व्यस्त कर, खेत जोतकर एवं मिट्टी में कृषि करके धरातलीय पदार्थों में वायु, जल एवं खनिजों के मिश्रण तथा उनमें नये संपर्क स्थापित करने में सहायक होता है। सड़ने वाले पौधों एवं पशुओं के पदार्थ; ह्यूमिक, कार्बनिक एवं अन्य अम्ल जैसे तत्त्वों के उत्पादन में योगदान देते हैं जिससे कुछ तत्त्वों का सड़ना, क्षरण तथा घुलन बढ़ जाता है। पौधों की जड़ें धरातल के पदार्थों पर जबरदस्त दबाव डालती हैं तथा उन्हें यांत्रिक ढंग (Mechanically) से तोड़कर अलग-अलग कर देती हैं।

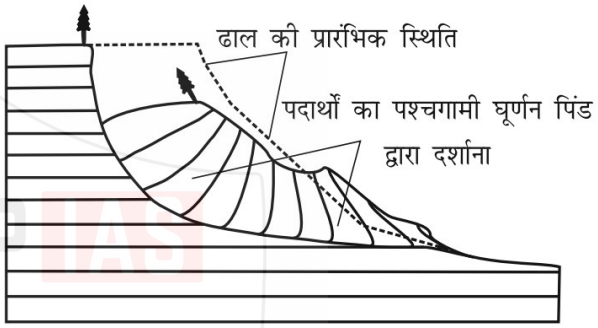
अपक्षय के विशेष प्रभाव (Special effects of weathering)

अपशल्कन

इसकी व्याख्या पहले ही भौतिक अपक्षय प्रक्रियाओं, तापीय संकुचन एवं फैलाव तथा लवण अपक्षय के अंतर्गत की जा चुकी है। अपशल्कन एक परिणाम है, प्रक्रिया नहीं। शैल या आधार शैल के ऊपर से मोटे तौर पर घुमावदार चादर के रूप में उत्खंडित या पत्रकन होता है जिसके परिणामस्वरूप चिकनी एवं गोल सतह का निर्माण होता है। अपशल्कन अभारितकरण (Unloading) एवं तापक्रम परिवर्तन द्वारा प्रेरित फैलाव एवं संकुचन के कारण भी होता है। अपशल्कित गुंबद एवं टार्स क्रमशः अभारितकरण एवं तापीय संकुचन से उत्पन्न होते हैं।

अपक्षय का महत्त्व (Significance of weathering)

अपक्षय प्रक्रियाएँ शैलों को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ने तथा न केवल आवरण प्रस्तर एवं मृदा निर्माण के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं अपितु अपरदन एवं वृहत संचलन (Mass movement) के लिए भी उत्तरदायी होते हैं। जैव मात्रा एवं जैव-विविधता प्रमुखतः वनों (वनस्पति) की देन है तथा वन, अपक्षयी प्रावार (Weathering



चित्र 6.6 : पश्चगामी घूर्णन के साथ मलबे का अवसर्पण

mantle) की गहराई पर निर्भर करता है। यदि शैलों का अपक्षय न हो तो अपरदन का कोई महत्त्व नहीं होता। इसका अर्थ है कि अपक्षय वृहत क्षरण, अपरदन, उच्चावच के लघुकरण में सहायक होता है एवं स्थलाकृतियाँ अपरदन का परिणाम हैं। शैलों का अपक्षय एवं निक्षेपण राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए अतिमहत्त्वपूर्ण है, क्योंकि मूल्यवान खनिजों जैसे लोहा, मैंगनीज, एल्यूमिनियम, ताँबा के अयस्कों के समृद्धीकरण (Enrichment) एवं संकेंद्रण (Concentration) में यह सहायक होता है। अपक्षय मृदा निर्माण की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है।

जब शैलों का अपक्षय होता है तो कुछ पदार्थ भूमिगत जल द्वारा रासायनिक तथा भौतिक निक्षालन के माध्यम से स्थानांतरित हो जाते हैं तथा शेष बहुमूल्य पदार्थों का संकेंद्रण हो जाता है। इस प्रकार के अपक्षय के हुए बिना बहुमूल्य पदार्थों का संकेंद्रण अपर्याप्त होगा तथा आर्थिक दृष्टि से उनका दोहन प्रक्रमण तथा शोधन के लिए व्यवहार्य नहीं होगा। इसीको समृद्धिकरण कहते हैं।

बृहत् संचलन (Mass movement)

बृहत् संचलन के अंतर्गत वे सभी संचलन आते हैं, जिनमें शैलों का बृहत् मलवा (Debris) गुरुत्वाकर्षण के सीधे प्रभाव के कारण ढाल के अनुरूप स्थानांतरित होता है। इसका तात्पर्य है कि वायु, जल, हिम ही अपने साथ एक स्थान से दूसरे स्थान तक मलवा नहीं ढोते, अपितु मलवा भी अपने साथ वायु, जल या हिम ले जाते हैं। बृहत् की संचलन गति मंद से तीव्र हो सकती है जिसके फलस्वरूप पदार्थों के छिछले से गहरे स्तंभ प्रभावित होते हैं जिनके अंतर्गत विसर्पण, बहाव, स्खलन एवं पतन (Fall)

सम्मिलित होते हैं। गुरुत्वाकर्षण बल आधार शैलों एवं अपक्षय से पैदा सभी पदार्थों पर अपना प्रभाव डालता है। यद्यपि बृहत् संचलन के लिए अपक्षय अनिवार्य नहीं है, परंतु यह इसे बढ़ावा देता है। बृहत् संचलन अपक्षयित ढालों पर अनपक्षयित पदार्थों की अपेक्षा बहुत अधिक सक्रिय रहता है।

बृहत् संचलन में गुरुत्वाकर्षण शक्ति सहायक होती है तथा कोई भी भू-आकृतिक कारक जैसे- प्रवाहित जल, हिमानी, वायु, लहरें एवं धाराएँ बृहत् संचलन की प्रक्रिया में सीधे रूप से सम्मिलित नहीं होते इसका अर्थ है कि बृहत् संचलन अपरदन के अंदर नहीं आता है यद्यपि पदार्थों का संचलन (गुरुत्वाकर्षण की सहायता से) एक स्थान से दूसरे स्थान को होता रहता है। ढाल पर पदार्थ बाधक बलों के प्रति अपना प्रतिरोध प्रस्तुत करते हैं एवं तभी असफल होते हैं जब बल पदार्थों के अपरूपण प्रतिरोध से महानतर होते हैं। असंबद्ध कमजोर पदार्थ, छिछले संस्तर वाली शैलें, भ्रंश, तीव्रता से झुके हुए संस्तर, खड़े भृगु या तीव्र ढाल, पर्याप्त वर्षा, मूसलाधार वर्षा तथा वनस्पति का अभाव बृहत् संचलन में सहायक होते हैं।

बृहत् संचलन की सक्रियता के कई कारक होते हैं। वे इस प्रकार हैं: (i) प्राकृतिक एवं कृत्रिम साधनों द्वारा ऊपर के पदार्थों के टिकने के आधार का हटाना। (ii) ढालों की प्रवणता एवं ऊँचाई में वृद्धि, (iii) पदार्थों के प्राकृतिक अथवा कृत्रिम भराव के कारण उत्पन्न अतिभार, (iv) अत्यधिक वर्षा, संतृप्ति एवं ढाल के पदार्थों के स्नेहन (Lubrication) द्वारा उत्पन्न अतिभार, (v) मूल ढाल की सतह पर से पदार्थ या भार का हटना, (vi) भूकंप आना, (vii) विस्फोट या मशीनों का कंपन (Vibration), (viii) अत्यधिक प्राकृतिक रिसाव, (ix) झीलों, जलाशयों एवं नदियों से भारी मात्रा में जल निष्कासन एवं परिणामस्वरूप ढालों एवं नदी तटों के नीचे से जल का मंद गति से बहना, (x) प्राकृतिक वनस्पति का अंधाधुंध विनाश। संचलन के निम्न तीन रूप होते हैं: (i) अनुप्रस्थ विस्थापन (तुषार वृद्धि या अन्य कारणों से मृदा का अनुप्रस्थ विस्थापन), (ii) प्रवाह एवं (iii) स्खलन । चित्र 6.5 बृहत् संचलन विभिन्न प्रकारों; संचलन की सापेक्ष गति/दर एवं आर्द्रता की सीमाओं के संबंधों को दर्शाता है।

बृहत् संचलन को दो प्रमुख प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

(i) मंद संचलन, (ii) तीव्र संचलन।

मंद संचलन (Slow movements)

मंद विरूपण (Creep)- इस वर्ग का एक प्रकार हैं जोकि मध्यम तीव्र (Moderately steep) एवं मृदा से आच्छादित ढाल पर घटित होता है। इसमें पदार्थों का संचलन इतना मंद होता है कि इसका आभास करना कठिन होता है और दीर्घ कालिक पर्यवेक्षण से ही इसका पता चलता है। इसमें सम्मिलित पदार्थ, मृदा एवं शैल का मलवा हो सकता है। क्या आपने कभी बाड़-स्तंभ, दूरभाष स्तंभ (Telephone pole) को अपनी लंबवत् (Alignment) में देखा है? यदि देखा है तो वह मंद (Vertical) स्थिति से झुके हुए तथा सरेखण विरूपण का प्रभाव है- इसमें सम्मिलित पदार्थों के आधार पर अनेक प्रकार के मंद विरूपण जैसे मिट्टी मंद विरूपण, टैलस मंद विरूपण, शैल हिमानी मंद विरूपण आदि की पहचान की जा सकती है। इस वर्ग में मृदा विरूपण भी सम्मिलित होता है जिसका संबंध ढाल के सहारे मंद गति से प्रवाहित मृदा के अंबार अथवा पानी से स्नेहित या संतृप्त सूक्ष्म कण वाले शैल मलवा से होता है। यह प्रक्रिया उन क्षेत्रों में आम होती है जहाँ परिहिमानीय एवं आर्द्र शीतोष्ण क्षेत्र होते हैं, जहाँ पर गहराई तक हिमकृत मैदान का सतही पिघलाव होता है तथा वहाँ लंबी लगातार वर्षा होती है। जब ऊपरी भाग संतृप्त (हो जाता है) एवं (जब) निम्न भाग जल के लिए अप्रवेश्य हो तो ऊपरी भागों में प्रवाह होता है।

तीव्र संचलन (Rapid movements)

ये संचलन आर्द्र जलवायु प्रदेशों में निम्न से लेकर तीव्र ढालों पर घटित होते हैं। संतृप्त चिकनी मिट्टी या गादी धरातल-पदार्थों का निम्न अंशों वाली वेदिकाओं या पहाड़ी ढालों (Sides) के सहारे निम्नान्मुख संचलन मृदा-प्रवाह (Earth flow) कहलाता है। प्रायः पदार्थ सीढ़ी के समान वेदिकाएँ बनाते हुए अवसर्प कर जाते हैं तथा अपने शीर्ष के पास चापाकार कगार तथा पदांगुलि के पास एकत्रित उभार छोड़ जाते हैं। जब ढाल तीव्रतर होते हैं तो आधार शैल, विशेषकर कोमल (Soft) परतदार शैल, जैसे शेल या गहराई से अपक्षयित आग्नेय शैल, भी ढाल के नीचे स्खलित हो जाती हैं।

इस वर्ग में दूसरा प्रकार है कीचड़ प्रवाह (Mud flow)। वनस्पति आवरण के अभाव एवं भारी वर्षा के कारण अपक्षयित पदार्थों के मोटे संस्तर जल से संतृप्त हो जाते हैं एवं धीरे-धीरे अथवा तीव्रता से निश्चित वाहिकाओं (Channel) के सहारे नीचे की ओर प्रवाहित होने लगते हैं। यह एक घाटी के अंदर कीचड़ की नदी-सी दिखाई पड़ती है। जब कीचड़ प्रवाह वाहिकाओं से बाहर निकल कर गिरिपद (पीडमांट) या मैदान में आते हैं तो वे सड़कों, पुलों एवं मकानों को चपेट में लेते हुए बहुत विध्वंसकारक सिद्ध होते हैं। ऐसे कीचड़ प्रवाह उद्गाररत या हाल में ही उद्गारित ज्वालामुखी के ढालों पर बहुधा पाये जाते हैं। ज्वालामुखीय राख, धूल एवं अन्य खंडित तत्त्व भारी वर्षा के कारण कीचड़ में परिवर्तित हो जाते हैं

एवं ढालों पर कीचड़ की नदी या जिह्वा (Tongue) के रूप में प्रवाहित होते हैं। इनसे मानव अधिवासों को बहुत बड़ी क्षति पहुँचती है।

इस प्रकार के संचलन में तीसरा प्रकार मलवा अवधाव (Avalanche), वनस्पति आवरणयुक्त या उससे वंचित आर्द्र प्रदेशों की विशेषता है। यह तीव्र ढालों पर संकीर्ण पथ के रूप में घटित होता है। मलवा अवधाव, कीचड़ प्रवाह से बहुत तीव्रतर होता है तथा हिम अवधाव के समान होता है।

दक्षिण अमेरिका के ऐंडीज पर्वतों एवं उत्तर अमेरिका के रॉकीज पर्वतों में कुछ ऐसे ज्वालामुखी हैं जिनमें पिछले दशक में उद्गार हुआ तथा उनके ढालों पर उद्गार की अवधि में तथा उद्गार के पश्चात् बहुत विनाशकारी कीचड़ प्रवाह हुआ।

भूस्खलन (Landslides)

भूस्खलन अपेक्षाकृत तीव्र एवं अवगम्य संचलन है। इसमें स्खलित होने वाले पदार्थ अपेक्षतया शुष्क होते हैं। असंलग्न वृहत का आकार एवं आकृति शैल में अनिरंतरता की प्रकृत्ति, क्षरण का अंश तथा ढाल की ज्यामिति पर निर्भर करते हैं। इस वर्ग में पदार्थों के संचलन के प्रकार के आधार पर वर्ग में कई प्रकार के स्खलन पहचाने जा सकते हैं (चित्र 6.6)।

ढाल, जिसपर संचलन होता है, के संदर्भ में पश्च-आवर्तन (Rotation) के साथ शैल-मलवा की एक या कई इकाइयों के फिसलन (Slipping) को अवसर्पण कहते हैं। पृथ्वी के पिंड के पश्च-आवर्तन के बिना मलवा का तीव्र लोटन (Rolling)



चित्र 6.7 : भारत-नेपाल सीमा, उत्तर प्रदेश में शारदा नदी के निकट शिवालिक हिमालय शृंखलाओं में भूस्खलन स्कार

या स्खलन मलवा स्खलन कहलाता है। मलवा स्खलन खड़े (Vertical) या प्रलंबी फलक (Face) से मिट्ट मलवा का प्रायः स्वतंत्र पतन होता है। संस्तर जोड़ या भ्रं के नीचे पृथक शैल बृहत् के स्खलन को शैल स्खल कहते हैं। तीव्र ढालों पर शैल स्खलन बहुत तीव्र ए विध्वंसक होता है। तीव्र नति संस्तरण तल जै अनिरंतरताओं के सहारे स्खलन एक समतलीय पात व रूप में घटित होता है। किसी तीव्र ढाल के सहारे शै खंडों का ढाल से दूरी रखते हुए स्वतंत्र रूप से गिरन शैल पतन (Fall) कहलाता है। शैल पतन शैलों व फलक के उथले संस्तर से होता है जो इसे शैल स्खल (जिसमें पदार्थ पर्याप्त गहराई तक प्रवाहित होते हैं) अलग करता है।

बृहत् क्षरण एवं बृहत् संचलन में से आपके अनुसार कौन सी शब्दावली अधिक उपयुक्त है? एवं क्यों? क्यों मृदा सर्पण को तीव्र प्रवाह संचलन (Rapid flow movement) के अंतर्गत सम्मिलित किया जा सकता है? ऐसा क्यों हो सकता है या क्यों नहीं?

हमारे देश में मलवा अवधाव एवं भूस्खलन हिमालय में प्रायः घटित होते हैं। इसके अनेक कारण हैं; पहला, हिमालय, विवर्तनिक दृष्टिकोण से सक्रिय है। यह अधिकांशतः परतदार शैलों एवं असंघटित एवं अर्ध-संघटित पदार्थों से बना हुआ है। इसकी ढाल मध्यम न होकर तीव्र है। हिमालय की तुलना में तमिलनाडु, कर्नाटक एवं केरल की सीमा बनाता हुआ नीलगिरि एवं पश्चिमी तट के किनारे पश्चिमी घाट अपेक्षाकृत विवर्तनिकी दृष्टि से अधिक स्थायी (Stable) है तथा बहुत कठोर शैलों से निर्मित है; परंतु अब भी इन पहाड़ियों में मलवा अवधाव एवं भूस्खलन होते रहते हैं, यद्यपि उनकी बारंबारता उतनी नहीं है जितनी हिमालय में। क्योंकि, पश्चिमी घाट एवं नीलगिरि में ढाल खड़े भृगु एवं कगार के साथ तीव्रतर हैं। तापक्रम में परिवर्तन एवं ताप परिसर (Ranges) के कारण यांत्रिक अपक्षय सुस्पष्ट होता है। वहाँ लघु अवधि में अधिक वर्षा होती है। अतः इन स्थानों में भूस्खलन एवं मलवा अवधाव के साथ प्रायः सीधे शैल पतन (Direct rock fall) होता है।

अपरदन एवं निक्षेपण (Erosion and Deposition)

अपरदन के अंतर्गत शैलों के मलवे की अवाप्ति (Acquistion) एवं उनके परिवहन को सम्मिलित किया जाता है। पिंडाकार शैलें जब अपक्षय एवं अन्य क्रियाओं के कारण छोटे-छोटे टुकड़ों (Fragments) में टूटती हैं तो अपरदन के भू-आकृतिक कारक जैसे कि प्रवाहित जल, भौमजल, हिमानी, वायु, लहरें एवं धाराएँ उनको एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थानों को ले जाते हैं जो कि इन कारकों के गत्यात्मक स्वरूप पर निर्भर करते हैं। भू-आकृतिक कारकों द्वारा परिवहन किया जाने वाले चट्टानी-मलबे द्वारा अपघर्षण भी अपरदन में पर्याप्त योगदान देता है। अपरदन द्वारा उच्चावचन का निम्नीकरण होता है, अर्थात् भूदृश्य विघर्षित होते हैं। इसका तात्पर्य है कि अपक्षय अपरदन में सहायक होता है, लेकिन अपक्षय अपरदन के लिए अनिवार्य दशा नहीं है। अपक्षय, बृहत् क्षरण एवं अपरदन निम्नीकरण की प्रक्रियाएँ हैं। बृहत् संचलन एवं अपरदन में अंतर है। बृहत् संचलन में शैल मलवा, चाहे वह शुष्क हो अथवा नम, गुरुत्वाकर्षण के कारण स्वयं आधारतल पर जाते हैं; परंतु प्रवाहशील जल, हिमानी, लहरें एवं धाराएँ तथा वायु निलंबित मलवे को नहीं ढोते हैं। वस्तुतः यह अपरदन ही है जो धरातल में होने वाले अनवरत परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है। अपरदन एवं परिवहन जैसी अनाच्छादन प्रक्रियाएँ गतिज ऊर्जा द्वारा नियंत्रित होती हैं। धरातल के पदार्थों का अपरदन एवं परिवहन वायु, प्रवाहशील जल, हिमानी, लहरों एवं धाराओं तथा भूमिगत जल द्वारा होता है। इनमें से प्रथम तीन कारक जलवायवी दशाओं द्वारा नियंत्रित होते हैं।

यह कारक पदार्थों की क्रमशः तीन अवस्थाओं-गैसीय (हवा), तरल (प्रवाहशील जल) एवं ठोस (हिमानी) का प्रतिनिधित्व करते हैं। अपरदन का अर्थ है "गतिज ऊर्जा का अनुप्रयोग जो भू-सतह के साथ संचलित कारकों से संबंधित होता है।" गतिज ऊर्जा निम्न प्रकार से ज्ञात की जा सकती है : KE (Kinetic Energy) = mv^2 जहाँ m = mass (बृहत्), v = velocity (वेग)

इस प्रकार के कार्य करने हेतु प्राप्त ऊर्जा पदार्थ के बृहत तथा उसकी संचलन वेग पर निर्भर करेगी। जैसे कि विशालकाय हिमानी बृहत् बहुत मंद गति से संचलित होते हैं परंतु अपरदन की दृष्टि से ये बहुत प्रभावकारी होते हैं। दूसरी ओर हवा, जो कि गैसीय रूप में होती है, कम प्रभावी होती है। अपरदन के दो अन्य कारकों-लहरों एवं धाराओं तथा भूमिगत जल का कार्य जलवायु द्वारा नियंत्रित नहीं होता। लहरें थल एवं जलमंडल के अंतरापृष्ठ-तटीय प्रदेश में कार्य करती है, जबकि भूमिगत जल का कार्य प्रमुखतः किसी क्षेत्र की आश्मिक (Lithological) विशेषताओं द्वारा निर्धारित होता है। यदि शैलें पारगम्य घुलनशील एवं जल प्राप्य हैं तो केवल कार्स्ट (चूनाकृत) आकृतियों का निर्माण होता है। अगले अध्याय में हम अपरदन के कारकों द्वारा निर्मित भूआकृतियों का विवरण प्रस्तुत करेंगे।

निक्षेपण अपरदन का परिणाम होता है। ढाल में कमी के कारण जब अपरदन के कारकों के वेग में कमी आ जाती तो परिणामतः अवसादों का निक्षेपण प्रारंभ हो जाता है। दूसरे शब्दों में, निक्षेपण वस्तुतः किसी कारक का कार्य नहीं होता। पहले स्थूल तथा बाद में सूक्ष्म पदार्थ निक्षेपित (Deposited) होते हैं। निक्षेपण से निम्न भूभाग (Depressions) भर जाते हैं। वहीं अपरदन के कारक, जैसे- प्रवाहयुक्त जल, हिमानी, वायु, लहरें, धाराएँ एवं भूमिगत जल इत्यादि तल्लोचन अथवा निक्षेपण के कारक के रूप में भी कार्य करने लग जाते हैं।

अपरदन एवं निक्षेपण के कारण धरातल पर क्या होता है? इसका विवेचन अगले अध्यायः 'भू-आकृतियाँ एवं उनका उद्भव (Evolution)' में विस्तृत रूप से किया गया है।

मृदा निर्माण (Soil formation)

मृदा एवं मृदा के तत्त्व (Soil and soil contents)

आप पौधों को मृदा में बढ़ते हुए देखते हैं। आप मैदान में खेलते हैं और मृदा के संपर्क में आते हैं। आप मृदा को छूते हैं, उसका अनुभव करते हैं और आपके कपड़ों पर भी मिट्टी लग जाती है। आपको कैसा अनुभव होता है? क्या आप बता सकते हैं?

मृदा वैज्ञानिकों के अनुसार मृदा धरातल पर प्राकृतिक तत्त्वों का समुच्चय है जिसमें जीवित पदार्थ तथा पौधों को पोषित करने की क्षमता होती है।

मृदा एक गत्यात्मक माध्यम है जिसमें बहुत सी रासायनिक, भौतिक एवं जैविक क्रियाएँ अनवरत चलती रहती हैं। मृदा अपक्षय अपकर्ष का परिणाम है, यह वृद्धि का माध्यम भी है। यह एक परिवर्तनशील एवं विकासोन्मुख तत्त्व है। इसकी बहुत सी विशेषताएँ मौसम के साथ बदलती रहती हैं। यह वैकल्पिक रूप से ठंडी और गर्म या शुष्क एवं आर्द्र हो सकती हैं। यदि मृदा बहुत अधिक ठंडी या बहुत अधिक शुष्क होती है तो जैविक क्रिया मंद या बंद हो जाती है। यदि इसमें पत्तियाँ गिरती हैं या घासें सूख जाती हैं तो जैव पदार्थ बढ़ जाते हैं। मृदा का रसायन, उसमें जैव पदार्थ की मात्रा, पेड़-पौधे और प्राणिजात, तापक्रम और नमी, सभी मौसम के साथ तथा विस्तारित (निर्माण की) कालावधि के साथ परिवर्तित हो जाते हैं। इसका तात्पर्य है कि मृदा जलवायु की दशाओं, भूआकृतियों एवं वनस्पतियों के साथ अनुकूलित होती रहती हैं और यदि उक्त नियंत्रक दशाओं में परिवर्तन हो जाए तो आंतरिक रूप से भी परिवर्तित हो सकती है।

मृदा निर्माण की प्रक्रियाएँ (Process of Soil formation)

मृदा निर्माण या मृदाजनन (Pedogenesis) सर्वप्रथम अपक्षय पर निर्भर करती है। यह अपक्षयी प्रावार ही मृदा निर्माण का मूल निवेश होता है। सर्वप्रथम अपक्षयित प्रावार या लाए गए पदार्थों के निक्षेप, बैक्टेरिया या अन्य निकृष्ट पौधे जैसे काई एवं लाइकेन द्वारा उपनिवेशित किए जाते हैं। प्रावार एवं निक्षेप के अंदर कई गौण जीव भी आश्रय प्राप्त कर लेते हैं। जीव एवं पौधों के मृत्त अवशेष ह्यूमस के एकत्रीकरण में सहायक होते हैं। प्रारंभमें गौण घास एवं फर्स की वृद्धि हो सकती है बाद में पक्षियों एवं वायु द्वारा लाए गए बीजों से वृक्ष एवं झाड़ियों में वृद्धि होने लगती है। पौधों की जड़ें नीचे तक घुस जाती हैं। बिल बनाने वाले, जानवर कणों (Particles) को ऊपर लाते हैं, जिससे पदार्थों का पुंज (अंबार) छिद्रमय एवं स्पंज की तरह हो जाता है। इस प्रकार जल-धारण करने की क्षमता, वायु के प्रवेश आदि के कारण अंततः परिपक्व, खनिज एवं जीव-उत्पाद युक्त मृदा का निर्माण होता है।

मृदा निर्माण के कारक (Soil forming factors)

मृदा निर्माण पाँच मूल कारकों द्वारा नियंत्रित होता है। ये कारक है: (i) मूल पदार्थ (शैलें) (ii) स्थलाकृति (iii) जलवायु (iv) जैविक क्रियाएँ एवं (v) समय। वस्तुतः मृदा निर्माण कारक संयुक्त रूप से कार्यरत रहते हैं एवं एक दूसरे के कार्य को प्रभावित करते हैं। इनका संक्षिप्त विवरण अधोलिखित है।

जलवायु (Climate)

जलवायु मृदा निर्माण में एक महत्त्वपूर्ण सक्रिय कारक है। मृदा के विकास में संलग्न जलवायवी तत्त्वों में प्रमुख हैं: (i) प्रवणता, वर्षा एवं वाष्पीकरण की बारंबारता व अवधि तथा आर्द्रता, (ii) तापक्रम में मौसमी एवं दैनिक भिन्नता।

मूल पदार्थ शैल (Parent material)

मृदा निर्माण में मूल शैल एक निष्क्रिय नियंत्रक कारक है। मूल शैल कोई भी तदस्थाने (In situ) या उसी स्थान पर अपक्षयित शैल मलवा (अवशिष्ट मृदा) या लाये गये निक्षेप (परिवहनकृत मृदा) हो सकती है। मृदा निर्माण गठन (मलवा के आकार) संरचना (एकल/पृथक कणों/मलवा के कणों का विन्यास) तथा शैल निक्षेप के खनिज एवं रासायनिक संयोजन पर निर्भर करता है।

मूल पदार्थ के अंतर्गत अपक्षय की प्रकृति एवं उसकी दर तथा आवरण की गहराई/मोटाई प्रमुख विचारणीय तत्त्व होते हैं। समान आधार शैल पर मृदाओं में अंतर हो सकता है तथा असमान आधार पर समान मृदाएँ मिल सकती हैं। परंतु जब मृदाएँ बहुत नूतन (Young) तथा पर्याप्त परिपक्व नहीं होती तो मृदाओं एवं मूल शैलों के प्रकार में घनिष्ट संबंध होता है। कुछ चूना क्षेत्रों (Lime stone areas) में भी, जहाँ अपक्षय प्रक्रियाएँ विशिष्ट एवं विचित्र (Peculiar) होती हैं, मिट्टियाँ मूल शैल से स्पष्ट संबंध दर्शाती हैं।

स्थलाकृति/उच्चावच (Topography)

मूल शैल की भाँति स्थलाकृति भी एक दूसरा निष्क्रिय नियंत्रक कारक है। स्थलाकृति मूल पदार्थ के आच्छादन अथवा अनावृत होने को सूर्य की किरणों के संबंध में प्रभावित करती हैं तथा स्थलाकृति धरातलीय एवं उप-सतही अप्रवाह की प्रक्रिया को मूल पदार्थ के संबंध में भी प्रभावित करती है। तीव्र ढालों पर मृदा छिछली (Thin) तथा सपाट उच्च क्षेत्रों में गहरी/मोटी (Thick) होती है। निम्न ढालों जहाँ अपरदन मंद तथा जल का परिश्रवण (Percolation) अच्छा रहता है मृदा निर्माण बहुत अनुकूल होता है। सपाट/समतल क्षेत्रों में चीका मिट्टी (Clay) के मोटे स्तर का विकास हो सकता है तथा जैव पदार्थ के अच्छे एकत्रीकरण के साथ मिट्टी/मृदा का रंग भी गहरा (काला) हो सकता है। मध्य अक्षांशों में दक्षिणोन्मुख सूर्य की किरणों से अनावृत ढालों की वनस्पति तथा मृदा की दशा भिन्न होती है एवं उत्तरोन्मुख ठंडे, नम दशाओं वाले ढालों पर अन्य प्रकार की मिट्टी एवं वनस्पति मिलती है।

जैविक क्रियाएँ (Biological activities)

वनस्पति आवरण एवं जीव जो मूल पदार्थों पर प्रारंभतथा बाद में भी विद्यमान रहते हैं मृदा में जैव पदार्थ, नमी धारण की क्षमता तथा नाइट्रोजन इत्यादि जोड़ने में सहायक होते हैं। मृत पौधे मृदा को सूक्ष्म विभाजित जैव पदार्थ-ह्यूमस प्रदान करते हैं। कुछ जैविक अम्ल जो ह्यूमस बनने की अवधि में निर्मित होते हैं मृदा के मूल पदार्थों के खनिजों के विनियोजन में सहायता करते हैं। बैक्टीरियल कार्य की गहनता ठंडी एवं गर्म जलवायु की मिट्टियों में अंतर को दर्शाती है। ठंडी जलवायु में ह्यूमस एकत्रित हो जाता है, क्योंकि यहाँ बैक्टीरियल वृद्धि धीमी होती है। उप-आर्कटिक एवं टुंड्रा जलवायु में निम्न बैक्टेरियल क्रियाओं के कारण अवियोजित जैविक पदार्थों के साथ पीट (Peat) के संस्तर विकसित हो जाते हैं। आर्द्र, उष्ण एवं भूमध्य रेखीय जलवायु में बैक्टेरियल वृद्धि एवं क्रियाएँ सघन होती हैं तथा मृत वनस्पति शीघ्रता से ऑक्सीकृत हो जाती है जिससे मृदा में ह्यूमस की मात्रा बहुत कम रह जाती है। बैक्टेरिया एवं मृदा के जीव हवा से गैसीय नाइट्रोजन प्राप्त कर उसे रासायनिक रूप में परिवर्तित कर देते हैं जिसका पौधों द्वारा उपयोग किया जा सकता है। इस प्रक्रिया को नाइट्रोजन निर्धारण (Nitrogen fixation) कहते हैं। राइजोबियम (Rhizobium), एक प्रकार का बैक्टेरिया जंतुवाले (Leguminous) पौधों के जड़ ग्रंथिका में रहता है तथा मेजबान (Host) पौधों के लिए लाभकारी नाइट्रोजन निर्धारित करता है। चींटी, दीमक, केंचुए, कृंतक (Rodents) इत्यादि कीटों का महत्त्व अभियांत्रिकी (Mechanical) सा होता है, परंतु मृदा निर्माण में ये महत्त्वपूर्ण होते हैं क्योंकि वे मृदा को बार-बार ऊपर नीचे करते रहते हैं। केंचुए मिट्टी खाते हैं, अतः उनके शरीर से निकलने वाली मिट्टी का गठन एवं रसायन परिवर्तित हो जाता है।

कालावधि (Time)

मृदा निर्माण में कालावधि तीसरा महत्त्वपूर्ण कारक है। मृदा निर्माण प्रक्रियाओं के प्रचलन में लगने वाले काल (समय) की अवधि मृदा की परिपक्वता एवं उसके पार्श्विका (Profile) का विकास निर्धारण करती है। एक मृदा तभी परिपक्व होती है जब मृदा निर्माण की सभी प्रक्रियाएँ लंबे काल तक पार्श्विका विकास करते हुए कार्यरत रहती हैं। थोड़े समय पहले (Recently) निक्षेपित जलोढ़ मिट्टी या हिमानी टिल से विकसित मृदाएँ तरुण/युवा (Young) मानी जाती हैं तथा उनमें संस्तर (Horizon) का अभाव होता है अथवा कम विकसित संस्तर मिलता है। संपूर्ण परिप्रेक्ष्य में मिट्टी के विकास या उसकी परिपक्वता के लिए कोई विशिष्ट (Specific) कालावधि नहीं है।

Class-12

1. विश्व जनसंख्या वितरण, घनत्व और वृद्धि
2. जनसंख्या संघटन
3. मानव विकास
4. प्राथमिक क्रियाएँ
5. द्वितीयक क्रियाएँ
6. तृतीयक और चतुर्थ क्रियाकलाप
7. परिवहन एवं संचार
8. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार
9. मानव बस्ती

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

विश्व जनसंख्या : वितरण, घनत्व और वृद्धि

किसी देश के निवासी ही उसके वास्तविक धन होते हैं। यही लोग देश के संसाधनों का उपयोग करते हैं और उसकी नीतियाँ निर्धारित करते हैं। अंततः एक देश की पहचान उसके लोगों से ही होती है।

यह जानना आवश्यक है कि किसी देश में कितनी स्त्रियाँ और पुरुष हैं, प्रतिवर्ष कितने बच्चे जन्म लेते हैं, कितने लोगों की मृत्यु होती है और कैसे? क्या वे नगरों में रहते हैं अथवा गाँवों में? क्या वे पढ़ और लिख सकते हैं तथा वे क्या काम करते हैं? यही वे तथ्य हैं जिनके बारे में हम इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

21वीं शताब्दी के प्रारंभ में विश्व की जनसंख्या 600 करोड़ से अधिक दर्ज की गई। यहाँ हम जनसंख्या के वितरण और घनत्व के प्रारूपों की विवेचना करेंगे।

विश्व की जनसंख्या असमान रूप से वितरित है। एशिया की जनसंख्या के संबंध में जॉर्ज बी. क्रेसी की टिप्पणी है कि "एशिया में बहुत अधिक स्थानों पर कम लोग और कम स्थानों पर बहुत अधिक लोग रहते हैं।" विश्व के जनसंख्या वितरण प्रारूप के संबंध में भी यह सत्य है।

विश्व में जनसंख्या वितरण के प्रारूप

जनसंख्या के वितरण और घनत्व के प्रारूप हमें किसी क्षेत्र की जनांकिकीय विशेषताओं को समझने में मदद करते हैं। 'जनसंख्या वितरण' शब्द का अर्थ भूपृष्ठ पर, लोग किस प्रकार वितरित हैं इस बात से लगाया जाता है। मोटे तौर पर विश्व की जनसंख्या का 90 प्रतिशत, इसके 10 प्रतिशत, स्थलभाग में निवास करता है।

विश्व के दस सर्वाधिक आबाद देशों में विश्व की लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है इन दस देशों में से छह एशिया में अवस्थित हैं। एशिया के इन छह देशों को पहचानिए।

जनसंख्या का घनत्व

भूमि की प्रत्येक इकाई में उस पर रह रहे लोगों के पोषण की सीमित क्षमता होती है। अतः लोगों की संख्या और भूमि के आकार के बीच अनुपात को समझना आवश्यक है। यही अनुपात जनसंख्या का घनत्व है। यह सामान्यतः प्रति वर्ग किलोमीटर रहने वाले व्यक्तियों के रूप में मापा जाता है।

$$\text{जनसंख्या का घनत्व} = \frac{\text{जनसंख्या}}{\text{क्षेत्रफल}}$$

उदाहरण के लिए 'क' प्रदेश का क्षेत्रफल 100 वर्ग कि.मी. है और जनसंख्या 1,50,000 है। जनसंख्या का घनत्व इस प्रकार निकाला जाएगा :

$$\text{घनत्व } @\frac{1,50,000}{100}$$

= 1,500 व्यक्ति/वर्ग कि.मी.

इससे 'क' प्रदेश के बारे में आपको क्या पता चलता है?

क्या आप अवलोकन कर रहे हैं कि कुछ क्षेत्र वास्तव में सघन बसे हैं। ये विश्व के सघन आबाद क्षेत्र हैं जिनमें प्रति वर्ग कि.मी. 200 से अधिक व्यक्ति निवास करते हैं। ये संयुक्त राज्य अमेरिका का उत्तर-पूर्वी भाग, यूरोप का उत्तर-पश्चिमी भाग तथा दक्षिणी, दक्षिणी-पूर्वी और पूर्वी एशिया के भाग हैं।

उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के निकट, ऊष्ण और शीत मरुस्थल और विषुवत रेखा के निकट उच्च वर्षा के अन्य क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व अत्यंत कम है। ये विश्व के विरल जनसंख्या वाले प्रदेश हैं जहाँ प्रति वर्ग कि.मी. एक व्यक्ति से भी कम लोग रहते हैं।

इन दो प्रकार के क्षेत्रों के बीच मध्यम घनत्व के क्षेत्र हैं। इनमें जनसंख्या घनत्व 11 से 50 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. पाए जाते हैं। एशिया में पश्चिमी चीन, दक्षिणी भारत तथा यूरोप में नार्वे और स्वीडन ऐसे क्षेत्रों के कुछ उदाहरण हैं। चित्र 2.2 को देखिए और कुछ ऐसे अन्य क्षेत्रों को पहचानिए।

जनसंख्या वितरण को प्रभावित करने वाले कारक

(I) भौगोलिक कारक

(i) जल की उपलब्धता जल जीवन का सर्वाधिक

महत्त्वपूर्ण कारक है। अतः लोग उन क्षेत्रों में बसने को प्राथमिकता देते हैं जहाँ जल आसानी से उपलब्ध होता है। जल का उपयोग पीने, नहाने और भोजन बनाने के साथ-साथ पशुओं, फसलों, उद्योगों तथा नौसंचालन में किया जाता है। यही कारण है कि नदी-घाटियाँ विश्व के सबसे सघन बसे हुए क्षेत्र हैं।

(ii) भू-आकृति: लोग समतल मैदानों और मंद ढालों पर

बसने को वरीयता देते हैं इसका कारण यह है कि ऐसे क्षेत्र फसलों के उत्पादन, सड़क निर्माण और उद्योगों के लिए अनुकूल होते हैं। पर्वतीय और पहाड़ी क्षेत्र परिवहन-तंत्र के विकास में अवरोधक हैं, इसलिए प्रारंभमें कृषिगत और औद्योगिक विकास के लिए अनुकूल नहीं होते। अतः इन क्षेत्रों में कम जनसंख्या पाई जाती है। गंगा का मैदान विश्व के सर्वाधिक सघन जनसंख्या वाले क्षेत्रों में से एक है जबकि हिमालय के पर्वतीय भाग विरल जनसंख्या वाले क्षेत्र हैं।

(iii) जलवायु : अति ऊष्ण अथवा ठंडे मरुस्थलों की विषम

जलवायु मानव बसाव के लिए असुविधाजनक होती है। सुविधाजनक जलवायु वाले क्षेत्र जिनमें अधिक मौसमी परिवर्तन नहीं होते, अधिक लोगों को आकृष्ट करते हैं। अधिक वर्षा अथवा विषम और रुक्ष जलवायु के क्षेत्रों में कम जनसंख्या पाई जाती है। भूमध्य सागरीय प्रदेश सुखद जलवायु के कारण इतिहास के आरंभिक कालों से बसे हुए हैं।

(iv) मृदाएँ : उपजाऊ मृदाएँ कृषि तथा इनसे संबंधित क्रियाओं के लिए महत्त्वपूर्ण हैं इसलिए उपजाऊ दोमट मिट्टी वाले प्रदेशों में अधिक लोग निवास करते हैं क्योंकि ये मृदाएँ गहन कृषि का आधार बन सकती हैं। क्या आप भारत में उन क्षेत्रों के नाम बता सकते हैं जहाँ कम उपजाऊ मृदा के कारण विरल जनसंख्या पाई जाती है?

(II) आर्थिक कारक

(i) खनिज : खनिज निक्षेपों से युक्त क्षेत्र उद्योगों को आकृष्ट करते हैं। खनन और औद्योगिक गतिविधियाँ रोज़गार उत्पन्न करते हैं। अतः कुशल एवं अर्ध-कुशल कर्मी इन क्षेत्रों में पहुँचते हैं और जनसंख्या को सघन बना देते हैं। अफ्रीका की कटंगा, जांबिया ताँबा पेटी इसका एक अच्छा उदाहरण है।

(ii) नगरीकरण: नगर रोजगार के बेहतर अवसर, शैक्षणिक व चिकित्सा संबंधी सुविधाएँ तथा परिवहन और संचार के बेहतर साधन प्रस्तुत करते हैं। अच्छी नागरिक सुविधाएँ तथा नगरीय जीवन के आकर्षण लोगों को नगरों की ओर खींचते हैं। इससे ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों में प्रवास होता है और नगर आकार में बढ़ जाते हैं। विश्व के विराट नगर प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में प्रवासियों को निरंतर आकर्षित करते हैं। फिर भी नगरीय जीवन अत्यंत कष्टदायक हो सकता है...

(iii) औद्योगीकरण : : औद्योगिक पेटियाँ रोजगार के अवसर उपलब्ध कराती है और बड़ी संख्या में लोगों को आकर्षित करती हैं। इनमें केवल कारखानों के श्रमिक ही नहीं होते बल्कि परिवहन परिचालक, दुकानदार, बैंककर्मी, डॉक्टर, अध्यापक तथा अन्य सेवाएँ उप उपलब्ध कराने वाले भी होते हैं। जापान का कोबे-ओसाका प्रदेश अनेक उद्योगों की उपस्थिति के कारण सघन बसा हुआ है।

III. सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक

कुछ स्थान धार्मिक अथवा सांस्कृतिक महत्त्व के कारण अधिक लोगों को आकर्षित करते हैं। ठीक इसी प्रकार लोग उन क्षेत्रों को छोड़ कर चले जाते हैं जहाँ सामाजिक और राजनीतिक अशांति होती है। कई बार सरकारें लोगों को विरल जनसंख्या वाले क्षेत्रों में बसने अथवा भीड़-भाड़ वाले स्थानों से चले जाने के लिए प्रोत्साहन देती हैं।

जनसंख्या वृद्धि

जनसंख्या वृद्धि अथवा जनसंख्या परिवर्तन का अभिप्राय किसी क्षेत्र में समय की किसी निश्चित अवधि के दौरान बसे हुए लोगों की संख्या में परिवर्तन से है। यह परिवर्तन धनात्मक भी हो सकता है और ऋणात्मक भी। इसे निरपेक्ष संख्या अथवा प्रतिशत के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है। जनसंख्या परिवर्तन किसी क्षेत्र की अर्थिक प्रगति, सामाजिक उत्थान, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का महत्त्वपूर्ण सूचक होता है।

जनसंख्या परिवर्तन के घटक

जनसंख्या परिवर्तन के तीन घटक हैं जन्म, मृत्यु और प्रवास।

अशोधित जन्म दर (CBR) को प्रति हज़ार स्त्रियों द्वारा जन्म दिए जीवित बच्चों के रूप में व्यक्त किया जाता है। इसकी गणना इस प्रकार की जाती है :

$$\text{अशोधित जन्म दर} = \frac{\text{किसी वर्ष विशेष में जीवित जन्म}}{\text{किसी क्षेत्र विशेष में वर्ष के मध्य जनसंख्या}} \times 1000$$

मृत्यु दर जनसंख्या परिवर्तन में सक्रिय भूमिका निभाती है। जनसंख्या वृद्धि केवल बढ़ती हुई जन्म दर से नहीं होती अपितु घटती हुई मृत्यु दर से भी होती है। अशोधित मृत्यु दर किसी क्षेत्र में मृत्यु दर को मापने की एक सरल विधि है। अशोधित मृत्यु दर को किसी क्षेत्र विशेष में किसी वर्ष के दौरान प्रति हज़ार जनसंख्या के पीछे मृतकों की संख्या के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है।

अशोधित मृत्यु दर की गणना इस प्रकार की जाती है :

$$\text{अशोधित मृत्यु दर} = \frac{\text{किसी वर्ष विशेष में मृतकों की संख्या}}{\text{उस वर्ष के मध्य में अनुमानित जनसंख्या}} \times 1000$$

मोटे तौर पर मृत्यु दर किसी क्षेत्र संरचना, सामाजिक उन्नति और आर्थिक विकास प्रभावित होती है।

प्रवास

जन्म और मृत्यु के अतिरिक्त जनसंख्या का आकार परिवर्तित होता है। और घटक है जिससे जनसंख्या का आकार परिवर्तित होता है।

जब लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं तो वह स्थान जहाँ से लोग गमन करते हैं उद्गम स्थान कहलाता है और जिस स्थान में आगमन करते हैं वह गंतव्य स्थान कहलाता है। उद्गम स्थान जनसंख्या में कमी को दर्शाता है जबकि गंतव्य स्थान पर जनसंख्या बढ़ जाती है। प्रवास को मनुष्य और संसाधन के बीच बेहतर संतुलन प्राप्त करने की दिशा में एक स्वतःस्फूर्त प्रयास के रूप में निरूपित किया जा सकता है।

प्रवास स्थायी, अस्थायी अथवा मौसमी हो सकता है। यह गाँव से गाँव, गाँव से नगर, नगर से नगर तथा नगर से गाँव की ओर हो सकता है।

आप्रवास- प्रवासी जो किसी नए स्थान पर जाते हैं, आप्रवासी कहलाते हैं।

उत्प्रवास- प्रवासी जो एक स्थान से बाहर चले जाते हैं, उत्प्रवासी कहलाते हैं।

लोग बेहतर आर्थिक और सामाजिक जीवन के लिए प्रवास करते हैं। प्रवास को प्रभावित करने वाले कारकों के दो समूह हैं।

प्रतिकर्ष कारक बेरोज़गारी, रहन-सहन की निम्न दशाएँ, राजनीतिक उपद्रव, प्रतिकूल जलवायु, प्राकृतिक विपदाएँ, महामारियाँ तथा सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन जैसे कारण उद्गम स्थान को कम आकर्षित बनाते हैं।

अपकर्ष कारक काम के बेहतर अवसर और रहन-सहन की अच्छी दशाएँ, शांति व स्थायित्व, जीवन व संपत्ति की सुरक्षा तथा अनुकूल जलवायु जैसे कारण गंतव्य स्थान को उद्गम स्थान की अपेक्षा अधिक आकर्षक बनाते हैं।

जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियाँ

पृथ्वी पर जनसंख्या 600 करोड़ से भी अधिक है। इस आकार तक पहुँचने में जनसंख्या को शताब्दियाँ लगी हैं। आरंभिक कालों में विश्व की जनसंख्या धीरे-धीरे बढ़ी। विगत कुछ सौ वर्षों के दौरान ही जनसंख्या आश्चर्यजनक दर से बढ़ी है।

विज्ञान व प्रौद्योगिकी ने किस प्रकार जनसंख्या वृद्धि में सहायता की?

मानवीय और प्राणी ऊर्जा के स्थान पर भाप इंजन प्रतिस्थापित हो गया जिसने पवन और जल के लिए यांत्रिक ऊर्जा उपलब्ध कराई इससे कृषिगत और औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि हुई।

महामारियों व अन्य संक्रामक रोगों के विरुद्ध टीकाकरण, चिकित्सा सुविधाओं में सुधार तथा स्वच्छता ने पूरे विश्व में मृत्यु दरों को तीव्रता से घटाने में योगदान दिया।

विश्व जनसंख्या के दो गुना होने की अवधि

मानव जनसंख्या को प्रारंभिक एक करोड़ होने में 10 लाख से भी अधिक वर्ष लग गए। किंतु इसे 5 अरब से 6 अरब होने में मात्र 12 वर्ष लगे। तालिका 2.1 को ध्यानपूर्वक देखें जो यह दर्शाती है कि विश्व जनसंख्या के दो गुना होने की अवधि तेजी से घट रही है।

विभिन्न प्रदेशों में उनकी जनसंख्या के दो गुना होने में अत्यधिक भिन्नताएँ पाई जाती हैं। तालिका 2.2 दर्शाती है कि विकसित देश विकासशील देशों की तुलना में अपनी जनसंख्या दो गुना करने में अधिक समय ले रहे हैं। जनसंख्या की अधिकतर वृद्धि विकासशील विश्व में हो रही है जहाँ जनसंख्या विस्फोट हो रहा है। ऐसा क्यों है?

तालिका 2.1 : विश्व जनसंख्या के दो गुना होने की अवधि

काल	*जनसंख्या*	*अवधि जिसमें जनसंख्या दो गुना हुई*
10,000 ई॰ पू॰	50 लाख	
1650 ई॰	50 करोड़	1500 वर्ष
1850 ई॰	100 करोड़	200 वर्ष
1930 ई॰	200 करोड़	80 वर्ष
1975 ई॰	400 करोड़	45 वर्ष
2012 ई॰	800 करोड़ प्रक्षेपित संख्या	37 वर्ष

तालिका 2.2 : जनसंख्या वृद्धि दर (%) 1995-2000

उच्च		निम्न	
लाइबेरिया	8.2	लैटविया	−1.5
सोमालिया	4.2	एस्टोनिया	−1.2
यमन	3.7	रूस, युक्रेन, अल्बानिया	−0.6
सऊदी अरब	3.4	बुल्गारिया, क्रोशिया,	
ओमान	3.3	स्लोवानिया, चेक गणराज्य,	
		जर्मनी, पुर्तगाल	−0.1
		स्पेन, इटली,	
		डेनमार्क	0

COACH UP IAS

जनसंख्या परिवर्तन के स्थानिक प्रारूप

विश्व के विभिन्न भागों में जनसंख्या वृद्धि की तुलना की जा सकती है। विकसित देशों में विकासशील देशों की तुलना में जनसंख्या वृद्धि कम है। जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास में ऋणात्मक सह-संबंध पाया जाता है।

यद्यपि जनसंख्या परिवर्तन की वार्षिक दर (1.4 प्रतिशत) निम्न प्रतीत होती है (तालिका 2.3), वास्तव में ऐसा नहीं है। इसका कारण है :

जब एक निम्न वार्षिक दर अत्यंत बड़ी जनसंख्या पर लागू होती है तो इससे जनसंख्या में विशाल परिवर्तन होगा।

यद्यपि वृद्धि दर निरंतर घटती रहे तो भी कुल जनसंख्या प्रतिवर्ष बढ़ती है। प्रसव के दौरान, मृत्यु दर की भाँति, शिशु मृत्यु दर में भी वृद्धि हुई हो सकती है।

तालिका 2.3 : जनसंख्या वृद्धि (1990-95 पर 2004-05 की)

प्रदेश	वृद्धि दर	
	1990-95	2004-05 (अनुमानित)
विश्व	1.6	1.4
अफ्रीका	2.4	2.6
यूरोप	0.2	0.0
उत्तर व मध्य अमेरिका	1.4	1.1
दक्षिण अमेरिका	1.7	1.4
एशिया	1.6	1.4
ओशनिया (आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड और फिजी)	1.5	1.3

जनसंख्या परिवर्तन का प्रभाव

एक विकासशील अर्थव्यवस्था में जनसंख्या की अल्प वृद्धि अपेक्षित है। फिर भी एक निश्चित स्तर के बाद जनसंख्या वृद्धि समस्याओं को उत्पन्न करती है। इनमें से संसाधनों का ह्रास सर्वाधिक गंभीर है। जनसंख्या का ह्रास भी चिंता का विषय है। यह इंगित करता है कि वे संसाधन जो पहले जनसंख्या का पोषण करते थे अब उस जनसंख्या के पोषण में सक्षम नहीं रहे।

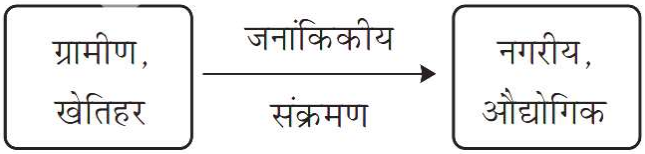
एड्स/एच.आई.वी. (एक्वायर्ड इम्यून डेफिसिएंसी सिंड्रोम) जैसी घातक महामारियों ने अफ्रीका, स्वतंत्र राष्ट्रों के राष्ट्रमंडल (सी.आई.एस.) के कुछ भागों और एशिया में मृत्यु दर बढ़ा दी है और औसत जीवन प्रत्याशा घटा दी है। इससे जनसंख्या वृद्धि धीमी हुई है।

भारत की वार्षिक जनसंख्या वृद्धि दर 1.9 प्रतिशत है। इस दर पर भारत की एक अरब जनसंख्या 36 वर्षों में दो गुनी हो जाएगी। कुछ विकसित राष्ट्रों को अपनी जनसंख्या दोगुनी करने में 318 वर्ष लगेंगे जबकि कुछ देशों में अभी भी दोगुनी होने के लक्षण दिखाई नहीं दे रहे।

जनांकिकीय संक्रमण

जनांकिकीय संक्रमण सिद्धांत का उपयोग किसी क्षेत्र की जनसंख्या के वर्णन तथा भविष्य की जनसंख्या के पूर्वानुमान के लिए किया जा सकता है। यह सिद्धांत हमें बताता है कि जैसे ही समाज ग्रामीण, खेतिहर और अशिक्षित अवस्था से उन्नति करके नगरीय औद्योगिक और साक्षर बनता है तो किसी प्रदेश की जनसंख्या उच्च जन्म और उच्च मृत्यु से निम्न जन्म

व निम्न मृत्यु में परिवर्तित होती है। ये परिवर्तन अवस्थाओं में होते हैं जिन्हें सामूहिक रूप से जनांकिकीय चक्र के रूप में जाना



प्रथम अवस्था में उच्च प्रजननशीलता व उच्च मर्त्यता होती है क्योंकि लोग महामारियों और भोजन की अनिश्चित आपूर्ति से होने वाली मृत्युओं की क्षतिपूर्ति अधिक पुनरुत्पादन से करते हैं। जनसंख्या वृद्धि धीमी होती है और अधिकांश लोग खेती में कार्यरत होते हैं। जहाँ बड़े परिवारों को परिसंपत्ति माना जाता है। जीवन-प्रत्याशा निम्न होती है, अधिकांश लोग अशिक्षित होते हैं और उनके प्रौद्योगिकी स्तर निम्न होते हैं। 200 वर्ष पूर्व विश्व के सभी देश इसी अवस्था में थे।

द्वितीय अवस्था के प्रारंभ में प्रजननशीलता उँची बनी रहती है किंतु यह समय के साथ घटती जाती है। यह अवस्था घटी हुई मृत्यु दर के साथ आती है। स्वास्थ्य संबंधी दशाओं व स्वच्छता में सुधार के साथ मर्त्यता में कमी आती है। इस अंतर के कारण, जनसंख्या में होने वाला शुद्ध योग उच्च होता है।

अंतिम अवस्था में प्रजननशीलता और मर्त्यता दोनों अधिक घट जाती है। जनसंख्या या तो स्थिर हो जाती है या मंद गति से बढ़ती है। जनसंख्या नगरीय और शिक्षित हो जाती है तथा उसके पास तकनीकी ज्ञान होता है। ऐसी जनसंख्या विचारपूर्वक परिवार के आकार को नियंत्रित करती है।

इससे प्रदर्शित होता है कि मनुष्य जाति अत्यधिक नम्य है और अपनी प्रजननशीलता को समायोजित करने की योग्यता रखती है।

वर्तमान में विभिन्न देश जनांकिकीय संक्रमण की विभिन्न अवस्थाओं में हैं।

जनसंख्या नियंत्रण के उपाय

परिवार नियोजन का काम बच्चों के जन्म को रोकना अथवा उसमें अंतराल रखना है। परिवार नियोजन सुविधाएँ जनसंख्या वृद्धि को सीमित करने और महिलाओं के स्वास्थ्य को बेहतर करने में मुख्य भूमिका निभाती है। प्रचार, गर्भ-निरोधक की सगम उपलब्धता बडे परिवारों के लिए कर-निरुत्साहक उपाय कुछ ऐसे प्रावधान हैं जो जनसंख्या नियंत्रण में सहायक हो सकते हैं।

थॉमस माल्थस ने अपने सिद्धांत (1993) में कहा था कि लोगों की संख्या खाद्य आपूर्ति की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ेगी। जनसंख्या में वृद्धि का परिणाम अकाल, बीमारी तथा युद्ध द्वारा इसमें अचानक गिरावट के रूप में सामने आएगा।

जनसंख्या संघटन

किसी भी देश में विविध प्रकार के लोग रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में अद्वितीय है। लोगों को आयु, लिंग तथा उनके निवास स्थान के आधार पर पृथक् किया जा सकता है। जनसंख्या को पृथक् करने वाली कुछ अन्य विशेषताएँ हैं-व्यवसाय, शिक्षा और जीवन-प्रत्याशा।

लिंग संघटन

स्त्रियों और पुरुषों की संख्या किसी देश की महत्त्वपूर्ण जनांकिकीय विशेषता होती है। जनसंख्या में स्त्रियों और पुरुषों की संख्या के बीच के अनुपात को लिंग अनुपात कहा जाता है। कुछ देशों में यह निम्न सूत्र द्वारा परिकलित किया जाता है।

$$\frac{\text{पुरुष जनसंख्या}}{\text{स्त्री जनसंख्या}} \times 1000$$

अथवा प्रति हज़ार स्त्रियों पर पुरुषों की संख्या।

भारत में इस सूत्र का प्रयोग कर लिंग अनुपात ज्ञात किया जाता है:

$$\frac{\text{स्त्रियों की जनसंख्या}}{\text{पुरुषों की जनसंख्या}} \times 1000$$

अथवा प्रति हज़ार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या।

लिंग अनुपात किस किसी देश में स्त्रियों की स्थिति के संबंध में महत्त्वपूर्ण सूचना होती है।

जिन प्रदेशों में लिंग भेदभाव अनियंत्रित होता है, वहाँ लिंग अनुपात निश्चित रूप से स्त्रियों के प्रतिकूल होता है। इन क्षेत्रों में स्त्री भ्रूण हत्या तथा स्त्री-शिशु हत्या और स्त्रियों के प्रति घरेलू हिंसा की प्रथा प्रचलित है। इसका एक कारण इन क्षेत्रों में स्त्रियों की सामाजिक-आर्थिक स्तर का निम्न होना हो सकता है।

आपको स्मरण होना चाहिए कि जनसंख्या में अधिक स्त्रियों के होने का अर्थ यह नहीं है कि उनका स्तर बेहतर है। यह भी हो सकता है कि पुरुष रोज़गार के लिए अन्य क्षेत्रों में प्रवास कर गए हों।

विश्व की जनसंख्या का औसत लिंग अनुपात, प्रति हज़ार पुरुषों पर 990 स्त्रियाँ हैं। विश्व में उच्चतम लिंग अनुपात लैटविया में दर्ज किया गया है जहाँ प्रति हज़ार पुरुषों की तुलना में 1187 स्त्रियाँ हैं। इसके विपरीत निम्नतम लिंग अनुपात संयुक्त अरब अमीरात में दर्ज किया गया है जहाँ प्रति हज़ार पुरुषों की तुलना में 468 स्त्रियाँ है।

लिंग अनुपात के विश्व प्रतिरूप से विश्व के विकसित प्रदेशों में कोई अलग अंतर नहीं दिखाई पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सूचीबद्ध 139 देशों में लिंग अनुपात स्त्रियों के लिए अनुकूल है, जबकि शेष 72 देशों में यह उनके लिए प्रतिकूल है।

सामान्यतः एशिया में लिंग अनुपात निम्न है। चीन, भारत, सऊदी अरब, पाकिस्तान व अफगानिस्तान जैसे देशों में लिंग अनुपात और भी निम्न है।

दूसरी ओर, रूस सहित यूरोप के एक बड़े भाग में पुरुष अल्प संख्या में हैं। यूरोप के अनेक देशों में पुरुषों की कमी, वहाँ स्त्रियों की बेहतर स्थिति तथा भूतकाल में विश्व के विभिन्न भागों में अत्यधिक पुरुष उत्प्रवास के कारण है।

आयु संरचना

आयु संरचना विभिन्न आयु वर्गों में लोगों की संख्या को प्रदर्शित करती है। जनसंख्या संघटन का यह एक महत्त्वपूर्ण सूचक है, क्योंकि 15 से 59 आयु वर्ग के बीच जनसंख्या का बड़ा आकार एक विशाल कार्यशील जनसंख्या को इंगित करता है। 60 वर्ष से अधिक आयु वाली जनसंख्या का एक बड़ा अनुपात उस वृद्ध जनसंख्या को प्रदर्शित करता है, जिसे स्वास्थ्य संबंधी सेवाओं के लिए अधिक खर्च की आवश्यकता है। इसी प्रकार युवा जनसंख्या के उच्च अनुपात का अर्थ अर्थ है है कि कि प्रदेश में जन्म दर ऊँची है व जनसंख्या युवा है।

आयु-लिंग पिरामिड रामिड

जनसंख्या की आयु-लिंग संरचना का अभिप्राय विभिन्न आयु वर्गों में स्त्रियों और पुरुषों की संख्या से है। जनसंख्या पिरामिड का प्रयोग जनसंख्या की आयु-लिंग संरचना को दर्शाने के लिए किया जाता है।

जनसंख्या पिरामिड की आकृति जनसंख्या की विशेषताओं को परिलक्षित करती है। प्रत्येक आयु वर्ग में बायाँ भाग पुरुषों का प्रतिशत तथा दायाँ भाग स्त्रियों का प्रतिशत दर्शाता है।

विस्तारित होती जनसंख्या

नाइजीरिया का आयु-लिंग पिरामिड, जैसा कि आप देख सकते हैं, विस्तृत आकार वाला त्रिभुजाकार पिरामिड है जो अल्प विकसित देशों का प्रतिरूपी है। इस पिरामिड में उच्च जन्म दर के कारण निम्न आयु वर्गों में विशाल जनसंख्या पाई जाती है। यदि आप बांग्लादेश और मैक्सिको के लिए पिरामिड की रचना करें तो वे भी ऐसे ही दिखाई देंगे।

स्थिर जनसंख्या

आस्ट्रेलिया का आयु-लिंग पिरामिड घंटी के आकार का है जो शीर्ष की ओर शुंडाकार होता जाता है। यह दर्शाता है कि जन्म दर और मृत्यु दर लगभग समान है जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या स्थिर हो जाती है।

ह्रासमान जनसंख्या

जापान के पिरामिड का संकीर्ण आधार और शुंडाकार शीर्ष निम्न जन्म और मृत्यु दरों को दर्शाता है। इन देशों में जनसंख्या वृद्धि शून्य अथवा ऋणात्मक होती है।

ग्रामीण - नगरीय संघटन

जनसंख्या का ग्रामीण और नगरीय में विभाजन निवास के आधार पर होता है। यह विभाजन आवश्यक है क्योंकि ग्रामीण और नगरीय जीवन आजीविका और सामाजिक दशाओं में एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में आयु-लिंग संघटन, व्यावसायिक संरचना, जनसंख्या का घनत्व तथा विकास के स्तर अलग-अलग होते हैं।

यद्यपि ग्रामीण और नगरीय जनसंख्या में अंतर करने के मापदंड एक देश से दूसरे देश में भिन्न होती है। सामान्य रूप से ग्रामीण क्षेत्र वे होते हैं, जिनमें लोग प्राथमिक क्रियाओं में संलग्न होते हैं और नगरीय क्षेत्र वे होते हैं जिनमें अधिकांश कार्यशील जनसंख्या गैर-प्राथमिक क्रियाओं में संलग्न होती है।

कनाडा और फिनलैंड जैसे पश्चिमी यूरोपीय देशों में ग्रामीण और नगरीय लिंग अनुपात में अंतर अफ्रीकी और एशियाई देशों क्रमशः जिंबाब्वे तथा नेपाल के ग्रामीण और नगरीय लिंग अनुपात के विपरीत हैं। पश्चिमी देशों में ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की संख्या अधिक है, जबकि नगरीय क्षेत्रों में स्त्रियों की संख्या पुरुषों की अपेक्षा अधिक है। नेपाल, पाकिस्तान और भारत जैसे देशों में स्थिति इससे विपरीत है। नगरीय क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों की अधिक संभावनाओं के कारण ग्रामीण क्षेत्रों से महिलाओं के आगमन के परिणामस्वरूप यूरोप, कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका के नगरीय क्षेत्रों में महिलाओं की अधिकता है। कृषि भी इन विकसित देशों में अत्यधिक मशीनीकृत है और यह लगभग पुरुष प्रधान व्यवसाय है। इसके विपरीत एशिया के नगरीय क्षेत्रों में पुरुष प्रधान प्रवास के कारण लिंग अनुपात भी पुरुषों के अनुकूल है। उल्लेखनीय है कि भारत जैसे देशों में ग्रामीण क्षेत्रों के कृषि कार्यों में महिलाओं की सहभागिता काफ़ी ऊँची है। नगरों में आवास की कमी, रहन-सहन की उच्च लागत, रोज़गार के अवसरों की कमी और सुरक्षा की कमी महिलाओं के गाँव से नगरीय क्षेत्रों में प्रवास को रोकते हैं।

साक्षरता

किसी देश में साक्षर जनसंख्या का अनुपात उसके सामाजिक-आर्थिक विकास का सूचक होता है, क्योंकि इससे रहन-सहन के स्तर, महिलाओं की सामाजिक स्थिति, शैक्षणिक सुविधाओं की उपलब्धता तथा सरकार की नीतियों का पता चलता है। आर्थिक विकास का स्तर साक्षरता का कारण एवं परिणाम दोनों ही है। भारत में साक्षरता दर 7 वर्ष से अधिक आयु वाले जनसंख्या के उस प्रतिशत को सूचित करता है, जो पढ़ लिख

सकता है और जिसमें समझ के साथ अंकगणितीय परिकलन करने की योग्यता है।

व्यावसायिक संरचना

कार्यशील जनसंख्या (अर्थात 15-59 आयु वर्ग में स्त्री और पुरुष) कृषि, वानिकी, मत्स्यन, विनिर्माण, निर्माण, व्यावसायिक परिवहन, सेवाओं, संचार तथा अन्य अवर्गीकृत सेवाओं जैसे व्यवसायों में भाग लेते हैं।

कृषि, वानिकी, मत्स्यन तथा खनन को प्राथमिक क्रियाओं, विनिर्माण को द्वितीयक क्रिया, परिवहन, संचार और अन्य सेवाओं को तृतीयक क्रियाओं तथा अनुसंधान और वैचारिक विकास से जुड़े कार्यों को चतुर्थक क्रियाओं के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। इन चार खंडों में कार्यशील जनसंख्या का अनुपात किसी राष्ट्र के आर्थिक विकास के स्तरों का एक अच्छा सूचक है। इसका कारण यह है कि केवल उद्योगों और अवसंरचना से युक्त एक विकसित अर्थव्यवस्था ही द्वितीयक, तृतीयक और चतुर्थक सैक्टरों में अधिक कर्मियों को समायोजित कर सकती है। यदि अर्थव्यवस्था अभी भी आदिम अवस्था में है, तब प्राथमिक क्रियाओं में संलग्न लोगों का अनुपात अधिक होगा क्योंकि इसमें मात्र प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन होता है।

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

मानव विकास

'वृद्धि' और 'विकास' शब्द आपके लिए नए नहीं हैं। अपने चारों ओर देखिए, लगभग प्रत्येक वस्तु जिसे आप देख सकते हैं (और बहुत सी जिन्हें आप नहीं देख सकते) बढ़ती और विकसित होती हैं।

वृद्धि और विकास

वृद्धि और विकास दोनों समय के संदर्भ में परिवर्तन को इंगित करते हैं। अंतर यह है कि वृद्धि मात्रात्मक और मूल्य निरपेक्ष है। इसका चिह्न धनात्मक अथवा ऋणात्मक हो सकता है। इसका अर्थ है कि परिवर्तन धनात्मक (वृद्धि दर्शाते हुए) अथवा ऋणात्मक (हास इंगित करते हुए) हो सकता है।

विकास का अर्थ गुणात्मक परिवर्तन है जो मूल्य सापेक्ष होता है। इसका अर्थ है- विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक वर्तमान दशाओं में वृद्धि न हो। विकास उस समय होता है जब सकारात्मक वृद्धि होती है। तथापि सकारात्मक वृद्धि से सदैव विकास नहीं होता। विकास उस समय होता है जब गुणवत्ता में सकारात्मक परिवर्तन होता है।

उदाहरणतः किसी निश्चित समयावधि में यदि किसी नगर की जनसंख्या एक लाख से दो लाख हो जाती है तो हम कहते हैं नगर की वृद्धि हुई। फिर भी यदि आवास जैसी सुविधाएँ, मूलभूत सेवाओं की व्यवस्था तथा अन्य विशेषताएँ पहले जैसी ही रहती हैं तब इस वृद्धि के साथ विकास नहीं जुड़ा हुआ है।

जिस देश की अर्थव्यवस्था जितनी ज्यादा बड़ी होती थी उसे उतना ही अधिक विकसित माना जाता था, लेकिन इस वृद्धि का अधिकांश लोगों के जीवन में परिवर्तन से कोई संबंध नहीं था।

किसी देश में लोग जीवन की गुणवत्ता का जो आनंद लेते हैं, उन्हें जो अवसर उपलब्ध हैं और जिन स्वतंत्रताओं का वे भोग करते हैं, विकास के महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं, यह विचार नया नहीं है।

पहली बार इन विचारों को 80 के दशक के अंत और 90 के दशक के आरंभ में स्पष्ट किया गया था। इस संबंध में दो दक्षिण एशियाई अर्थशास्त्रियों महबूब-उल-हक और अमर्त्य सेन का कार्य महत्त्वपूर्ण है।

मानव विकास की अवधारणा का प्रतिपादन डॉ. महबूब-उल-हक के द्वारा किया गया था। डॉ. हक ने मानव विकास का वर्णन एक ऐसे विकास के रूप में किया जो लोगों के विकल्पों में वृद्धि करता है और उनके जीवन में सुधार लाता - है। इस अवधारणा में सभी प्रकार के विकास का केंद्र बिंदु मनुष्य है। ये विकल्प स्थिर नहीं हैं बल्कि परिवर्तनशील हैं। विकास का मूल उद्देश्य ऐसी दशाओं को उत्पन्न करना है जिनमें लोग सार्थक जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

सार्थक जीवन केवल दीर्घ नहीं होता। जीवन का कोई उद्देश्य होना भी आवश्यक है। इसका अर्थ है कि लोग स्वस्थ - हों, अपने विवेक और बुद्धि का विकास कर सकते हों, वे समाज में प्रतिभागिता करें और अपने उद्देश्यों को पूरा करने में स्वतंत्र हों।

डॉ महबूब-उल-हक और प्रो. अमर्त्य सेन घनिष्ट मित्र थे और डॉ. हक के नेतृत्व में दोनों ने आरंभिक 'मानव विकास प्रतिवेदन' निकालने के लिए कार्य किया था। इन दोनों दक्षिण एशियाई अर्थशास्त्रियों ने विकास के वैकल्पिक विचार का प्रतिपादन किया।

अंतर्दृष्टि और करुणा से ओत-प्रोत पाकिस्तानी अर्थशास्त्री डॉ. महबूब-उल-हक ने 1990 ई. में मानव विकास सूचकांक निर्मित किया। उनके अनुसार विकास का संबंध लोगों के विकल्पों में बढ़ोतरी से है ताकि वे आत्मसम्मान के साथ दीर्घ और स्वस्थ जीवन जी सकें। 1990 ई. से संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ने वार्षिक मानव विकास प्रतिवेदन प्रकाशित करने के लिए जिनकी मानव विकास की संकल्पना का प्रयोग किया है।

डॉ. हक के मस्तिष्क की लोच और एक दायरे से बाहर सोचने की उनकी योग्यता उनके भाषणों में से एक भाषण से चित्रित की जा सकती है जिसमें शॉ का उद्धरण देते हुए उन्होनें कहा 'आज जो वस्तुएँ हैं उन्हें देखते हो और पूछते हो क्यों? मैं उन वस्तुओं का स्वप्न लेता हूँ जो कभी नहीं थी और पूछता हूँ ये क्यों नहीं हैं'?

नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन ने विकास का मुख्य ध्येय स्वतंत्रता में वृद्धि (अथवा परतंत्रता में कमीं) के रूप में देखा। रुचिकर बात यह है कि स्वतंत्रताओं में वृद्धि भी विकास लाने वाला सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम है। उनका कार्य स्वतंत्रता की वृद्धि में सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं तथा प्रक्रियाओं की भूमिका का अन्वेषण करता है।

इन अर्थशास्त्रियों का कार्य मील का पत्थर है जो लोगों को विकास पर होने वाली किसी भी चर्चा के केंद्र में लाने में सफल हुए हैं।

दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन जीना, ज्ञान प्राप्त कर पाना तथा एक शिष्ट जीवन जीने के पर्याप्त साधनों का होना मानव विकास के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं।

अतः संसाधनों तक पहुँच, स्वास्थ्य एवं शिक्षा मानव विकास के केंद्र बिंदु हैं। इन पक्षों में से प्रत्येक के मापन के लिए उपयुक्त सूचकों का विकास किया गया है। क्या आप ऐसे कुछ सूचकों के बारे में सोच सकते हैं?

प्रायः लोगों में अपने आधारभूत विकल्पों को तय करने की क्षमता और स्वतंत्रता नहीं होती। यह ज्ञान प्राप्त करने की अक्षमता उनकी भौतिक निर्धनता, सामाजिक भेदभाव, संस्थाओं की अक्षमता और अन्य कारणों

की वजह से हो सकता है। इससे दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन जीने, शिक्षा प्राप्ति के योग्य होने और एक शिष्ट जीवन जीने के साधनों को प्राप्त करने में बाधा आती है।

लोगों के विकल्पों में वृद्धि करने के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा और संसाधनों तक पहुँच में उनकी क्षमताओं का निर्माण करना महत्त्वपूर्ण है। यदि इन क्षेत्रों में लोगों की क्षमता नहीं है तो विकल्प भी सीमित हो जाते हैं।

उदाहरणतः एक अशिक्षित बच्चा डॉक्टर बनने का विकल्प नहीं चुन सकता क्योंकि उसका विकल्प शिक्षा के अभाव में सीमित हो गया है। इसी प्रकार प्रायः निर्धन लोग बीमारी के लिए चिकित्सा उपचार नहीं चुन सकते क्योंकि संसाधनों के अभाव में उनका विकल्प सीमित हो जाता है।

मानव विकास के चार स्तंभ

जिस प्रकार किसी इमारत को स्तंभों का सहारा होता है उसी प्रकार मानव विकास का विचार भी समता, सतत पोषणीयता, उत्पादकता और सशक्तीकरण की संकल्पनाओं पर आश्रित है। समता का आशय प्रत्येक व्यक्ति को उपलब्ध अवसरों के लिए समान पहुँच की व्यवस्था करना है। लोगों को उपलब्ध अवसर लिंग, प्रजाति, आय और भारत के संदर्भ में जाति के भेदभाव के विचार के बिना समान होने चाहिए। यद्यपि ऐसा ज़्यादातर तो नहीं होता फिर भी यह लगभग प्रत्येक समाज में घटित होता है।

उदाहरण के तौर पर, किसी भी देश में यह जानना रुचिकर होता है कि विद्यालय से विरत अधिकांश छात्र किस वर्ग से हैं। तब ऐसी घटनाओं के पीछे कारणों का पता लगना चाहिए। भारत में स्त्रियाँ और सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों के व्यक्ति बड़ी संख्या में विद्यालय से विरत होते हैं। इससे पता चलता है कि शिक्षा तक पहुँच न होना किस प्रकार इन वर्गों के विकल्पों को सीमित करता है।

निर्वहन का अर्थ है अवसरों की उपलब्धता में निरंतरता। सतत पोषणीय मानव विकास के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक पीढ़ी को समान अवसर मिले। समस्त पर्यावरणीय वित्तीय एवं मानव संसाधनों का उपयोग भविष्य को ध्यान में रख कर करना चाहिए। इन संसाधनों में से किसी भी एक का दुरुपयोग भावी पीढ़ियों के लिए अवसरों को कम करेगा।

बालिकाओं का विद्यालय भेजा जाना एक अच्छा उदाहरण है। यदि एक समुदाय अपनी बालिकाओं को विद्यालय में भेजने के महत्त्व पर जोर नहीं देता तो युवा होने पर इन स्त्रियों के लिए अनेक अवसर समाप्त हो जाएँगे। उनकी वृत्तिका के विकल्पों में तीव्रता से छंटनी हो जाएगी और यह उनके जीवन के अन्य पक्षों को भी प्रभावित करेगा। अतः प्रत्येक पीढ़ी को अपनी भावी पीढ़ियों के लिए अवसरों और विकल्पों की उपलब्धता को सुनिश्चित करना चाहिए।

यहाँ उत्पादकता का अर्थ मानव श्रम उत्पादकता अथवा मानव कार्य के संदर्भ में उत्पादकता है। लोगों में क्षमताओं का निर्माण करके ऐसी उत्पादकता में निरंतर वृद्धि की जानी चाहिए। अंततः जन-समुदाय ही राष्ट्रों के वास्तविक धन होते हैं। इस प्रकार उनके ज्ञान को बढ़ाने के प्रयास अथवा उन्हें बेहतर चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध कराने से उनकी कार्यक्षमता बेहतर होगी।

सशक्तीकरण का अर्थ है- अपने विकल्प चुनने के लिए शक्ति प्राप्त करना। ऐसी शक्ति बढ़ती हुई स्वतंत्रता और क्षमता से आती है। लोगों को सशक्त करने के लिए सुशासन एवं लोकोन्मुखी नीतियों की आवश्यकता होती है। सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए समूहों के सशक्तीकरण का विशेष महत्त्व है।

मानव विकास के उपागम

मानव विकास की समस्या को देखने के अनेक ढंग हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण उपागम हैं: (क) आय उपागम (ख) कल्याण उपागम (ग) न्यूनतम आवश्यकता उपागम (घ) क्षमता उपागम

मानव विकास का मापन

मानव विकास सूचकांक (HDI) स्वास्थ्य, शिक्षा और संसाधनों तक पहुँच जैसे प्रमुख क्षेत्रों में निष्पादन के आधार पर देशों का क्रम तैयार करता है। यह क्रम 0 से 1 के बीच के स्कोर पर आधारित होता है जो एक देश, मानव विकास के महत्त्वपूर्ण सूचकों में अपने रिकार्ड से प्राप्त करता है।

स्वास्थ्य का मूल्यांकन करने के लिए चुना गया सूचक जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा है। उच्चतर जीवन-प्रत्याशा का अर्थ है कि लोगों के पास अधिक दीर्घ और अधिक स्वस्थ जीवन जीने के ज्यादा अवसर हैं।

प्रौढ़ साक्षरता दर और सकल नामांकन अनुपात ज्ञान तक पहुँच को प्रदर्शित करते हैं। पढ़ और लिख सकने वाले वयस्कों की संख्या और विद्यालयों में नामांकित बच्चों की संख्या दर्शाती है कि किसी देश विशेष में ज्ञान तक पहुँच कितनी आसान अथवा कठिन है।

संसाधनों तक पहुँच को क्रय शक्ति (अमेरिकी डॉलरों में) के संदर्भ में मापा जाता है।

इनमें से प्रत्येक आयाम को 1/3 भारिता दी जाती है। मानव विकास सूचकांक इन सभी आयामों को दिए गए भारों का कुल योग होता है।

स्कोर, 1 के जितना निकट होता है मानव विकास का स्तर उतना ही अधिक होता है। इस प्रकार 0.983 का स्कोर अति उच्च स्तर का जबकि 0.268 मानव विकास का अत्यंत निम्न स्तर का माना जाएगा।

मानव विकास सूचकांक मानव विकास में प्राप्तियों का मापन करता है। यह प्रदर्शित करता है कि मानव विकास के प्रमुख क्षेत्रों मे क्या उपलब्धि हुई है। फिर भी यह सर्वाधिक विश्वसनीय माप नहीं है। इसका कारण है कि यह सूचकांक वितरण के संबंध में मौन है।

मानव गरीबी सूचकांक मानव विकास सूचकांक से संबंधित है यह सूचकांक मानव विकास में कमी मापता है। यह एक बिना आय वाला माप है। किसी प्रदेश के मानव विकास में कमी दर्शाने के लिए 40 वर्ष की आयु तक जीवित न रह पाने की संभाव्यता, प्रौढ़ निरक्षरता दर, स्वच्छ जल तक पहुँच न रखने वाले लोगों की संख्या और अल्पभार वाले छोटे बच्चों की संख्या, सभी इसमें गिने जाते हैं। प्रायः मानव गरीबी सूचकांक, मानव विकास सूचकांक की अपेक्षा अधिक कमी उद्घाटित करता है।

मानव विकास के इन दोनों मापों का संयुक्त अवलोकन किसी देश में मानव विकास की स्थिति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है।

मानव विकास को मापने की विधियाँ निरंतर परिष्कृत हो रही हैं और मानव विकास के विभिन्न तत्त्वों को ग्रहण करने की नूतन विधियों का अनुसंधान हो रहा है। शोधकर्ताओं ने किसी क्षेत्र विशेष में भ्रष्टाचार के स्तर और राजनीतिक स्वतंत्रता के बीच संबंध ज्ञात किए हैं। राजनीतिक स्वतंत्रता सूचकांक और सर्वाधिक भ्रष्ट देशों के सूचीकरण पर चर्चा हो रही है। क्या आप मानव विकास स्तर के अन्य संबंधों के बारे में सोच सकते हैं?

मानव विकास के उपागम	
आय उपागम	यह मानव विकास के सबसे पुराने उपागमों में से एक है। इसमें मानव विकास को आय के साथ जोड़ कर देखा जाता है। विचार यह है कि आय का स्तर किसी व्यक्ति द्वारा भोगी जा रही स्वतंत्रता के स्तर को परिलक्षित करता है। आय का स्तर ऊँचा होने पर, मानव विकास का स्तर भी ऊँचा होगा।
कल्याण उपागम	यह उपागम मानव को लाभार्थी अथवा सभी विकासात्मक गतिविधियों के लक्ष्य के रूप में देखता है। यह उपागम शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा और सुख-साधनों पर उच्चतर सरकारी व्यय का तर्क देता है। लोग विकास में प्रतिभागी नहीं हैं किंतु वे केवल निष्क्रिय प्राप्तकर्त्ता हैं। सरकार कल्याण पर अधिकतम व्यय करके मानव विकास के स्तरों में वृद्धि करने के लिए जिम्मेदार है।
आधारभूत आवश्यकता उपागम	इस उपागम को मूल रूप से अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) ने प्रस्तावित किया था। इसमें छः न्यूनतम आवश्यकताओं जैसे- स्वास्थ्य, शिक्षा, भोजन, जलापूर्ति, स्वच्छता और आवास की पहचान की गई थी। इसमें मानव विकल्पों के प्रश्न की उपेक्षा की गई है और पारिभाषित वर्गों की मूलभूत आवश्यकताओं की व्यवस्था पर जोर दिया गया है।
क्षमता उपागम	इस उपागम का संबंध प्रो. अमर्त्य सेन से है। संसाधनों तक पहुँच के क्षेत्रों में मानव क्षमताओं का निर्माण बढ़ते मानव विकास की कुंजी है।

अंतर्राष्ट्रीय तुलनाएँ

मानव विकास की अंतर्राष्ट्रीय तुलनाएँ रुचिकर हैं। प्रदेश के आकार और प्रति व्यक्ति आय का मानव विकास से प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। प्रायः मानव विकास में बड़े देशों की अपेक्षा छोटे देशों का कार्य बेहतर रहा है। इसी प्रकार मानव विकास में अपेक्षाकृत निर्धन राष्ट्रों का कोटि-क्रम धनी पड़ोसियों से ऊँचा रहा है।

उदाहरण के तौर पर अपेक्षाकृत छोटी अर्थव्यवस्थाएँ होते हुए भी श्रीलंका, ट्रिनिडाड और टोबैगो का मानव विकास सूचकांक भारत से ऊँचा है। इसी प्रकार कम प्रति व्यक्ति आय के बावजूद मानव विकास में केरल का प्रदर्शन पंजाब और गुजरात से कहीं बेहतर है।

उच्च मानव विकास समूह में 49 देश सम्मिलित हैं। आप पाएँगे कि शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं को उपलब्ध कराना सरकार की महत्त्वपूर्ण प्राथमिकता है। यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि उच्चतर मानव विकास वाले देश वे हैं जहाँ सामाजिक खंड में बहुत निवेश हुआ है। लोगों और सुशासन में उच्चतर निवेश ने इस वर्ग के देशों को अन्य देशों से सर्वथा अलग कर दिया है।

यह ज्ञात करने का प्रयत्न कीजिए कि देशों की आय का कितना प्रतिशत इन सेक्टरों पर खर्च हुआ है। क्या आप कुछ अन्य लक्षणों के बारे में सोच सकते हैं जो इन देशों में समान हों।

आप देखेंगे कि इनमें से अनेक देश पूर्व साम्राज्य शक्तियाँ रही हैं। इन देशों में सामाजिक विविधता की डिग्री उच्च नहीं है। उच्च मानव विकास स्कोर वाले देश यूरोप में अवस्थित हैं और वे औद्योगिकृत पश्चिमी विश्व का प्रतिनिधित्व करते हैं। फिर भी गैर-यूरोपीय देशों की संख्या आश्चर्यचकित करने वाली है, जिन्होंने इस सूची में अपना स्थान बनाया है।

मानव विकास के मध्यम स्तरों वाले देशों का वर्ग विशालतम है। मध्यम मानव विकास वर्ग में कुल 42 देश हैं। इनमें से अधि कांश देशों का विकास द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की अवधि में हुआ है। इस वर्ग के कुछ

देश पूर्वकालीन उपनिवेश थे जबकि अन्य अनेक देशों का विकास 1991 ई. में तत्कालीन सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् हुआ है। इनमें से अनेक देश अधि क लोकोन्मुखी नीतियों को अपनाकर तथा सामाजिक भेदभाव को दूर करके तेजी से अपने मानव विकास स्कोर में सुधार कर रहे हैं। इनमें से अधिकांश देशों में उच्चतर मानव विकास के स्कोर वाले देशों की तुलना में सामाजिक विविधता अधिक पाई जाती है। इस वर्ग के अनेक देशों ने अपने अभिनव इतिहास में राजनीतिक अस्थिरता और सामाजिक विद्रोह का सामना किया है।

मानव विकास के निम्न स्तरों वाले देशों की संख्या 33 है। इनमें से अधिकांश छोटे देश हैं, जो राजनीतिक उपद्रव, गृहयुद्ध के रूप में सामाजिक अस्थिरता, अकाल अथवा बीमारियों की अधिक घटनाओं के दौर से गुजर रहे हैं। सुविचारित नीतियों के माध्यम से इस वर्ग के देशों की मानव विकास की आवश्यकताओं के समाधान की तत्काल आवश्यकता है।

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

प्राथमिक क्रियाएँ

मानव के वो कार्यकलाप जिनसे आय प्राप्त होती है, आर्थिक क्रिया कहा जाता है। आर्थिक क्रियाओं को मुख्यतः चार वर्गों में विभाजित किया जाता है प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक एवं -चतुर्थ क्रियाएँ। प्राथमिक क्रियाएँ प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण पर निर्भर है, क्योंकि ये पृथ्वी के संसाधनों जैसे भूमि, जल, -वनस्पति, भवन निर्माण सामग्री एवं खनिजों के उपयोग के विषय में बतलाती हैं। इस प्रकार इसके अंतर्गत आखेट, भोजन संग्रह, पशुचारण, मछली पकड़ना, वनों से लकड़ी काटना, कृषि एवं खनन कार्य सम्मिलित किए जाते हैं।

मछली पकड़ने एवं कृषि करने का कार्य क्रमशः तटीय एवं मैदानी भागों के निवासी ही क्यों करते हैं? वे कौन से भौतिक एवं सामाजिक कारक हैं, जो विभिन्न प्रदेशों में प्राथमिक क्रियाओं के प्रकार को निर्धारित करते हैं?

आखेट एवं भोजन संग्रह

मानव सभ्यता के आरंभिक युग में आदिमकालीन मानव अपने जीवन निर्वाह के लिए अपने समीप के वातावरण पर निर्भर रहता था। उसका जीवन-निर्वाह दो कार्यों द्वारा होता था (क) पशुओं का आखेट कर, और (ख) अपने समीप के जंगलों से खाने योग्य जंगली पौधे एवं कंद-मूल आदि को एकत्रित कर।

आदिमकालीन समाज जंगली पशुओं पर निर्भर था। अतिशीत एवं अत्यधिक गर्म प्रदेशों के रहने वाले लोग आखेट द्वारा जीवन-यापन करते थे। तकनीकी विकास के कारण यद्यपि मत्स्य-ग्रहण आधुनिकीकरण से युक्त हो गया है, तथापि तटवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले लोग अब भी मछली पकड़ने का कार्य करते हैं। अवैध शिकार के कारण जीवों की कई जातियाँ या तो लुप्त हो गई हैं या संकटापन्न है। प्राचीन काल के आखेटक पत्थर या लकड़ी के बने औजार एवं तीर इत्यादि का प्रयोग करते थे, जिससे मारे जाने वाले पशुओं की संख्या सीमित रहती थी। भारत में शिकार पर क्यों प्रतिबंध लगाया गया है?

भोजन संग्रह एवं आखेट प्राचीनतम ज्ञात अर्थिक क्रियाएँ हैं। विश्व के विभिन्न भागों में यह कार्य विभिन्न स्तरों पर विभिन्न रूपों में किया जाता है। यह कार्य कठोर जलवायुविक दशाओं में किया जाता है। इसे अधिकतर आदिमकालीन समाज के लोग करते हैं। ये लोग अपने भोजन, वस्त्र एवं शरण की आवश्यकता की पूर्ति हेतु पशुओं एवं वनस्पति का संग्रह करते हैं। इस कार्य के लिए बहुत कम पूँजी एवं निम्न स्तरीय तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसमें भोजन अधिशेष भी नहीं रहता है एवं प्रति व्यक्ति उत्पादकता भी कम होती है।

भोजन संग्रह विश्व के दो भागों में किया जाता है (i) उच्च अक्षांश के क्षेत्र जिसमें उत्तरी कनाडा, उत्तरी यूरेशिया एवं दक्षिणी चिली आते हैं (ii) निम्न अक्षांश के क्षेत्र जिसमें अमेजन बेसिन, उष्णकटिबंधीय अफ्रीका, आस्ट्रेलिया एवं दक्षिणी पूर्वी एशिया का आंतरिक प्रदेश आता है।

आधुनिक समय में भोजन संग्रह के कार्य का कुछ भागों में व्यापारीकरण भी हो गया है। ये लोग कीमती पौधों की पत्तियाँ, छाल एवं औषधीय पौधों को सामान्य रूप से संशोधित कर बाजार में बेचने का कार्य भी करते हैं। पौधे के विभिन्न भागों का ये उपयोग करते हैं। उदाहरण के तौर पर छाल का उपयोग कुनैन, चमड़ा तैयार करना एवं कार्क के लिए; पत्तियों का उपयोग, पेय पदार्थ, दवाइयाँ एवं कातिवर्द्धक वस्तुएँ बनाने के लिए; रेशे को कपड़ा बनाने : दृढ़फल को भोजन एवं तेल के लिए एवं पेड़ के तने का उपयोग रबड़, बलाटा, गोंद व राल बनाने के लिए करते हैं।

विश्व स्तर पर भोजन संग्रहण का अधिक महत्त्व नहीं है। इन क्रियाओं के द्वारा प्राप्त उत्पाद विश्व बाजार में प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकते। कई प्रकार की अच्छी किस्म एवं कम दाम वाली कृत्रिम उत्पादों ने उष्ण कटिबंधीय वन के भोजन संग्रह करने वाले समूहों के उत्पादों का स्थान ले लिया है।

पशुचारण

आखेट पर निर्भर रहने वाले समूह ने जब ये महसूस किया कि केवल आखेट से जीवन का भरण-पोषण नहीं किया जा सकता है, तब मानव ने पशुपालन व्यवसाय के विषय में सोचा। विभिन्न जलवायुविक दशाओं में रहने वाले लोगों ने उन क्षेत्रों में पाए जाने वाले पशुओं का चयन करके पालतू बनाया। भौगोलिक कारकों एवं तकनीकी विकास के आधार पर वर्तमान समय में पशुपालन व्यवसाय निर्वहन अथवा व्यापारिक स्तर पर किया जाता है।

चलवासी पशुचारण

चलवासी पशुचारण एक प्राचीन जीवन-निर्वाह व्यवसाय रहा है जिसमें पशुचारक अपने भोजन, वस्त्र, शरण, औजार एवं यातायात के लिए पशुओं पर ही निर्भर रहता था। वे अपने पालतू पशुओं के साथ पानी एवं चरागाह की उपलब्धता एवं गुणवत्ता के अनुसार एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित होते रहते थे। इन पशुचारक वर्गों के अपने-अपने निश्चित चरागाह क्षेत्र होते थे।

भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कई प्रकार के पशु पाले जाते हैं। उष्णकटिबंधीय अफ्रीका में गाय-बैल प्रमुख पशु हैं, जबकि सहारा एवं एशिया के मरुस्थलों में भेड़, बकरी एवं ऊँट पाला जाता है। तिब्बत एवं एंडीज के पर्वतीय भागों में यॉक व लामा एवं आर्कटिक और उप उत्तरी ध्रुवीय क्षेत्रों में रेडियर पाला जाता है

चलवासी पशुचारण के तीन प्रमुख क्षेत्र हैं। इसका प्रमुख क्षेत्र उत्तरी अफ्रीका के एटलांटिक तट से अरब प्रायद्वीप होता हुआ मंगोलिया एवं

मध्य चीन तक फैला है। दूसरा क्षेत्र यूरोप तथा एशिया के टुंड्रा प्रदेश में है जबकि तीसरा क्षेत्र दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका एवं मेडागास्कर द्वीप पर है।

नए चरागाहों की खोज में ये पशुचारक समतल भागों एवं पवर्तीय क्षेत्रों में लंबी दूरियाँ तय करते है। गर्मियों में मैदानी भाग से पर्वतीय चरागाह की ओर एवं शीत में पर्वतीय भाग से मैदानी चरागाहों की ओर प्रवास करते हैं। इनकी इस गतिविधि को ऋतुप्रवास कहा जाता है। भारत में हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों में गुज्जर, बकरवाल, गद्दी एवं भूटिया लोगों के समूह ग्रीष्मकाल में मैदानी क्षेत्रों से पर्वतीय क्षेत्रों में चले जाते हैं एवं शीतकाल में पर्वतीय क्षेत्रों से मैदानी क्षेत्र में आ जाते हैं। इसी प्रकार टुंड्रा प्रदेश में ग्रीष्म काल में दक्षिण से उत्तर की ओर एवं शीत में उत्तर से दक्षिण की ओर चलवासी पशुचारकों का पशुओं के साथ प्रवास होता है।

चलवासी पशुचारकों की संख्या अब घट रही है एवं इनके द्वारा उपयोग में लाए गए क्षेत्र में भी कमी हो रही है। इसके दो कारण हैं (क) राजनीतिक सीमाओं का अधिरोपण (ख) कई देशों द्वारा नई बस्तियों की योजना बनाना।

वाणिज्य पशुधन पालन

चलवासी पशुचारण की अपेक्षा वाणिज्य पशुधन पालन अधिक व्यवस्थित एवं पूँजी प्रधान है। वाणिज्य पशुधन पालन पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित है एवं फार्म भी स्थायी होते है। यह फार्म विशाल क्षेत्र पर फैले होते हैं एवं संपूर्ण क्षेत्र को छोटी-छोटी इकाइयों में विभाजित कर दिया जाता है। चराई को नियंत्रित करने के लिए इन्हें बाड़ लगाकर एक दूसरे से अलग कर दिया जाता है। जब चराई के कारण एक छोटे क्षेत्र की घास समाप्त हो जाती है तब पशुओं को दूसरे छोटे क्षेत्र में ले जाया जाता है। वाणिज्य पशुधन पालन में पशुओं की संख्या भी चरागाह की वहन क्षमता के अनुसार रखी जाती है

यह एक विशिष्ट गतिविधि है, जिसमें केवल एक ही प्रकार के पशु पाले जाते हैं। प्रमुख पशुओं में भेड़, बकरी, गाय-बैल एवं घोड़े हैं। इनसे प्राप्त मांस, खालें एवं ऊन को वैज्ञानिक ढंग से संसाधित एवं डिब्बा बंद कर विश्व के बाजारों में निर्यात कर दिया जाता है। पशुफार्म में पशुधन पालन वैज्ञानिक आधार पर व्यवस्थित किया जाता है। इसमें मुख्य ध्यान पशुओं के प्रजनन, जननिक सुधार बीमारियों पर नियंत्रण एवं उनके स्वास्थ्य पर दिया जाता है।

विश्व में न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, अर्जेंटाइना, युरूग्वे एवं संयुक्त राज्य अमेरिका में वाणिज्य पशुधन पालन किया जाता है।

कृषि

विश्व में पाई जाने वाली विभिन्न भौतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दशाएँ कृषि कार्य को प्रभावित करती हैं एवं इसी प्रभाव के कारण विभिन्न कृषि प्रणालियाँ देखी जाती हैं। कृषि विभिन्न प्रकार के फसलों का बोया जाना तथा पशुपालन विभिन्न कृषि विधियों पर आधारित होता है। मुख्य प्रणालियाँ निम्नलिखित हैं।

निर्वाह कृषि

इस प्रकार की कृषि में कृषि क्षेत्र में रहने वाले स्थानीय उत्पादों का संपूर्ण अथवा लगभग का उपयोग करते हैं। इसको दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

आदिकालीन निर्वाह कृषि

आदिकालीन निर्वाह कृषि अथवा स्थानांतरणशील कृषि कार्य उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में किया जाता है जहाँ आदिम जाति के लोग यह कृषि करते हैं। इसका क्षेत्र अफ्रीका, दक्षिणी एवं मध्य अमेरिका का उष्णकटिबंधीय भाग एवं दक्षिणी पूर्वी एशिया है।

इन क्षेत्रों की वनस्पति को जला दिया जाता है एवं जली हुई राख की परत उर्वरक का कार्य करती है। इस प्रकार स्थानांतरणशील कृषि कर्तन एवं दहन कृषि भी कहलाती है। इसमें बोए गए खेत बहुत छोटे-छोटे होते हैं एवं खेती भी पुराने औजार जैसे लकड़ी, कुदाली एवं फावड़े द्वारा की जाती है। कुछ समय पश्चात् (3 से 5 वर्ष) जब मिट्टी का उपजाऊपन समाप्त हो जाता है, तब कृषक नए क्षेत्र में वन जलाकर कृषि के लिए भूमि तैयार करता है। कुछ समय पश्चात् कृषक वापस पहले वाले कृषि क्षेत्र पर कृषि कार्य करने आ जाता है। इस कृषि कार्य में सबसे बड़ी समस्या यह है कि इस क्षेत्र में भूमि की उर्वरता कम होती जाती है जिससे झूम का चक्र (आग लगाकर कृषि क्षेत्र तैयार करना) छोटा होता जाता है। उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में इसे अलग-अलग नामों से जाना जाता है भारत के उत्तरी पूर्वी राज्यों में इसे झूमिंग, मध्य अमेरिका एवं मैक्सिको में मिल्पा एवं मलेशिया व इंडोनेशिया में लादांग कहा जाता है। आप ऐसे अन्य क्षेत्रों का पता लगाइए जहाँ इस प्रकार की कृषि की जाती है एवं वहाँ इसे किस नाम से पुकारते हैं।

गहन निर्वाह कृषि

इस प्रकार की कृषि मानसून एशिया के घने बसे देशों में की जाती है।

गहन निर्वाह कृषि के दो प्रकार हैं।

(i) चावल प्रधान गहन निर्वाह कृषिः इसमें चावल प्रमुख फसल होती है। अधिक जनसंख्या घनत्व के कारण खेतों का आकार छोटा होता है एवं कृषि कार्य में कृषक का संपूर्ण परिवार लगा रहता है। भूमि का गहन उपयोग होता है एवं यंत्रों की अपेक्षा मानव श्रम का अधिक महत्त्व है। उर्वरता बनाए रखने के लिए पशुओं के गोबर की खाद एवं हरी खाद का उपयोग किया जाता है। इस कृषि में प्रति इकाई उत्पादन अधिक होता है, परंतु प्रति कृषक उत्पादन कम है।

(ii) चावल रहित गहन निर्वाह कृषिः मानसून एशिया के अनेक भागों में उच्चावच, जलवायु, मृदा तथा अन्य भौगोलिक कारकों की भिन्नता के

कारण धान की फसल उगाना प्रायः संभव नहीं है। उत्तरी चीन, मंचूरिया, उत्तरी कोरिया एवं उत्तरी जापान में गेहूँ, सोयाबीन, जौ एवं सोरपम बोया जाता है। भारत में सिंध-गंगा के मैदान के पश्चिमी भाग में गेहूँ एवं दक्षिणी व पश्चिमी शुष्क प्रदेश में ज्वार-बाजरा प्रमुखत रूप से उगाया जाता है।

इस कृषि की अधिकतर विशेषताएँ वो ही है जो चावल प्रधान कृषि की हैं। केवल अंतर यह है कि इसमें सिंचाई की जाती है।

रोपण कृषि

यूरोपीय लोगों ने विश्व के अनेक भागों का औपनिवेशीकरण किया तथा कृषि के कुछ अन्य रूपों की शुरुआत की जैसे रोपण कृषि, जो वृहद् स्तरीय लाभोन्मुख उत्पादन प्रणाली है। यूरोपीय उपनिवेशों ने अपने अधीन उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में चाय, कॉफी, कोको, रबड़, कपास, गन्ना, केले एवं अनन्नास की पौध लगाई।

इस कृषि की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें कृषि क्षेत्र का आकार बहुत विस्तृत होता है। इसमें अधिक पूँजी निवेश, उच्च प्रबंध एवं तकनीकी आधार एवं वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है। यह एक फसली कृषि है जिसमें किसी एक फसल के उत्पादन पर ही सकेंद्रण किया जाता है। श्रमिक सस्ते मिल जाते हैं एवं यातायात विकसित होता है जिसके द्वारा बागान एवं बाज़ार सुचारु रूप से जुड़े रहते हैं।

फ्रांसवासियों ने पश्चिमी अफ्रीका में कॉफी एवं कोकोआ की पौध लगाई थी। ब्रिटेनवासियों ने भारत एवं लंका में चाय के बाग, मलयेशिया में रबड़ के बाग एवं पश्चिमी द्वीप समूह में गन्ना एवं केले के बाग विकसित किए। स्पेन एवं अमेरिकावासियों ने फिलीपाइंस में नारियल व गन्ने के बागान लगाए। इंडोनेशिया में एक समय गन्ने की कृषि में हॉलैंडवासियों (डचों) का एकाधिकार था। ब्राजील में अभी भी कुछ कॉफी के बागान जिन्हें फेजेंडा कहा जाता है यूरोपवासियों के नियंत्रण में है।

वर्तमान में अधिकतर बागानों का स्वामित्व देशों की सरकार अथवा नागरिकों के नियंत्रण में है।

विस्तृत वाणिज्य अनाज कृषि

मध्य अक्षांशों के आंतरिक अर्ध शुष्क प्रदेशों में इस प्रकार की कृषि की जाती है। इसकी मुख्य फसल गेहूँ है। यद्यपि अन्य फसलें जैसे मक्का, जौ, राई एवं जई भी बोई जाती है। इस कृषि में खेतों का आकार बहुत बड़ा होता है एवं खेत जोतने से फसल काटने तक सभी कार्य यंत्रों द्वारा संपन्न किए जाते हैं। इसमें प्रति एकड़ उत्पादन कम होता है परंतु प्रति व्यक्ति उत्पादन अधिक होता है। ऐसा क्यों होता है?

मशीनीकृत अनाज कृषि

कंबाईन क्रू एक दिन में कई हेक्टेयर भूमि से अनाज काटने में सक्षम है।

इस प्रकार की कृषि का क्षेत्र यूरेशिया के स्टेपीज, उत्तरी अमेरिका के प्रेयरीज, अर्जेंटाइना के पंपाज, दक्षिणी अफ्रीका के वेल्डस, आस्ट्रेलिया के डाउंस एवं न्यूजीलैंड के केंटरबरी के मैदान में है (विश्व मानचित्र पर इन क्षेत्रों का निर्धारण कीजिए)।

मिश्रित कृषि

इस प्रकार की कृषि विश्व के अत्यधिक विकसित भागों में की जाती है, उदाहरणस्वरूप उत्तरी पश्चिमी यूरोप, उत्तरी अमेरिका का पूर्वी भाग, यूरेशिया के कुछ भाग एवं दक्षिणी महाद्वीपों के समशीतोष्ण अक्षांश वाले भागों में इसका विस्तार है 1

इस कृषि में खेतों का आकार मध्यम होता है। इसमें बोई जाने वाली फसलें गेहूँ, जौ, राई, जई, मक्का, चारे की फसल एवं कंद-मूल प्रमुख हैं। चारे की फसलें मिश्रित कृषि के मुख्य घटक हैं। फसल उत्पादन एवं पशुपालन दोनों को इसमें समान महत्त्व दिया जाता है। फसलों के साथ पशुओं जैसे- मवेशी, भेड़, सुअर एवं कुक्कुर आय के मुख्य स्रोत हैं। शस्यावर्तन एवं अंतः फसली कृषि मृदा की उर्वरता को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

विकसित कृषि यंत्र, इमारतों, रासायनिक एवं वनस्पति खाद (हरी खाद) के गहन उपयोग आदि पर अधिक पूँजी व्यय के साथ ही कृषकों की कुशलता और योग्यता मिश्रित कृषि की मुख्य विशेषताएँ हैं।

डेरी कृषि

डेरी व्यवसाय दुधारु पशुओं के पालन-पोषण का सर्वाधिक उन्नत एवं दक्ष प्रकार है। इसमें पूँजी की भी अधिक आवश्यकता होती है। पशुओं के लिए छप्पर, घास संचित करने के भंडार एवं दुग्ध उत्पादन में अधिक यंत्रों के प्रयोग के लिए पूँजी भी अधिक चाहिए। पशुओं के स्वास्थ्य, प्रजनन एवं पशु चिकित्सा पर भी अधिक ध्यान दिया जाता है। इसमें गहन श्रम की आवश्यकता होती है। पशुओं को चराने, दूध निकालने आदि कार्यों के लिए वर्ष भर श्रम की आवश्यकता रहती है। क्योंकि फसलों की तरह इनमें कोई अंतराल नहीं होता जिसमें श्रम की आवश्यकता न हो।

डेरी कृषि का कार्य नगरीय एवं औद्योगिक केंद्रों के समीप किया जाता है, क्योंकि ये क्षेत्र ताजा दूध एवं अन्य डेरी उत्पाद के अच्छे बाजार होते हैं वर्तमान समय में विकसित यातायात के साधन, प्रशीतकों का उपयोग, पास्तेरीकरण की सुविधा के कारण विभिन्न डेरी उत्पादों को अधिक समय तक रखा जा सकता है।

वाणिज्य डेरी कृषि तीन प्रमुख क्षेत्र हैं, सबसे बड़ा प्रदेश उत्तरी पश्चिमी यूरोप का क्षेत्र है। दूसरा कनाडा एवं तीसरा क्षेत्र न्यूजीलैंड, दक्षिणी पूर्वी आस्ट्रेलिया एवं तस्मानिया है।

भूमध्यसागरीय कृषि

भूमध्यसागरीय कृषि अति विशिष्ट प्रकार की कृषि है। इसका विस्तार भूमध्यसागर के समीपवर्ती क्षेत्र जो दक्षिणी यूरोप से उत्तरी अफ्रीका में ट्यूनीशिया से एटलांटिक तट तक फैला है दक्षिणी कैलीफोर्निया, मध्यवर्ती चिली, दक्षिणी अफ्रीका का दक्षिणी पश्चिमी भाग एवं आस्ट्रेलिया के दक्षिण व दक्षिण पश्चिम भाग में है। खट्टे फलों की आपूर्ति करने में यह क्षेत्र महत्त्वपूर्ण है।

अंगूर की कृषि भूमध्यसागरीय क्षेत्र की विशेषता है। इस क्षेत्र के कई देशों में अच्छे किस्म के अंगूरों से उच्च गुणवत्ता वाली मदिरा का उत्पादन किया जाता है। निम्न श्रेणी के अंगूरों को सुखाकर मुनक्का एवं किशमिश बनाई जाती है। अंजीर एवं जैतून भी यहाँ उत्पन्न होता है। शीत ऋतु में जब यूरोप एवं संयुक्त राज्य अमेरिका में फलों एवं सब्जियों की माँग होती है तब इसी क्षेत्र से पूर्ति की जाती है।

बाज़ार के लिए सब्जी खेती एवं उद्यान कृषि

इस प्रकार की कृषि में अधिक मुद्रा मिलने वाली फसलें जैसे सब्जियाँ, फल एवं पुष्प लगाए जाते हैं जिनकी माँग नगरीय क्षेत्रों में होती है। इस कृषि में खेतों का आकार छोटा होता है एवं खेत अच्छे यातायात साधनों के द्वारा नगरीय केंद्रों जहाँ ऊँची आय वाले उपभोक्ता रहते हैं। इसमें गहन श्रम एवं अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त सिंचाई, उर्वरक, अच्छी किस्म के बीज, कीटनाशी, हरित गृह एवं शीत क्षेत्रों में कृत्रिम ताप का भी इस कृषि में उपयोग होता है।

इस प्रकार की कृषि उत्तरी पश्चिमी यूरोप, संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तरी पूर्वी भाग एवं भूमध्यसागरीय प्रदेश में अधिक विकसित है, जहाँ औद्योगिक क्षेत्रों में जनसंख्या घनत्व अधिक है। नीदरलैंड पुष्प उत्पादन में विशिष्टीकरण रखता है। यहाँ से बागबानी फसल विशेषतः ट्यूलिप (एक प्रकार का फूल) पूरे यूरोप के प्रमुख शहरों में भेजा जाता है। जिन प्रदेशों में कृषक केवल सब्जियाँ पैदा करता है वहाँ इसको 'ट्रक कृषि' का नाम दिया जाता है। ट्रक फार्म एवं बाज़ार के मध्य की दूरी, जो एक ट्रक रात भर में तय करता है, उसी आधार पर इसका नाम ट्रक कृषि रखा गया है।

पश्चिमी यूरोप एवं उत्तरी अमेरिका के औद्योगिक क्षेत्रों में उद्यान कृषि के अलावा कारखाना कृषि भी की जाती है। इसमें पशुधन पाला जाता है जिनमें विशेषतः गाय-बैल एवं कुक्कुर होते हैं। इन्हें बाड़े पर कारखानों में तैयार बने बनाए भोजन पर रखा जाता है, एवं उनकी बीमारियों का भी ध्यान रखा जाता है। इसमें भवन निर्माण, यंत्र खरीदने, प्रकाश एवं ताप की व्यवस्था करने एवं पशु चिकित्सा के लिए बहुत अधिक धन की आवश्यकता होती है। अच्छी नस्ल का चुनाव और प्रजनन की वैज्ञानिक विधियों कुक्कुर एवं पशुपालन के महत्त्वपूर्ण लक्षण हैं।

कृषि करने वाले संगठन के आधार पर भी कृषि के प्रकारों का वर्गीकरण किया जा सकता है। कृषि संगठन, कृषक का खेतों पर अपना अधिकार एवं उस पर सरकारी नीतियाँ जो कृषि में सहायक होती हैं, से प्रभावित होता है।

सहकारी कृषि

जब कृषकों का एक समूह अपनी कृषि से अधिक लाभ कमाने के लिए स्वेच्छा से एक सहकारी संस्था बनाकर कृषि कार्य संपन्न करे उसे सहकारी कृषि कहते हैं। इसमें व्यक्तिगत फार्म अक्षुण्ण रहते हुए सहकारी रूप में कृषि की जाती है।

सहकारी संस्था कृषकों को सभी रूप में सहायता करती है। यह सहायता कृषि कार्य में आने वाली सभी चीजों की खरीद करने, कृषि उत्पाद को उचित मूल्य पर बेचने एवं सस्ती दरों पर प्रसंस्कृत साधनों को जुटाने के लिए होती है।

सहकारी आंदोलन एक शताब्दी पूर्व प्रारंभ हुआ था एवं पश्चिमी यूरोप के डेनमार्क, नीदरलैंड, बेल्जियम, स्वीडन एवं इटली में यह सफलतापूर्वक चला। सबसे अधिक सफलता इसे डेनमार्क में मिली जहाँ प्रत्येक कृषक इसका सदस्य है। डेनमार्क में यह आंदोलन सर्वाधिक सफल रहा, जहाँ व्यावहारिक रूप से प्रत्येक कृषक इस आंदोलन का सदस्य है।

सामूहिक कृषि

इस प्रकार की कृषि का आधारभूत सिद्धांत यह होता है कि इसमें उत्पादन के साधनों का स्वामित्व संपूर्ण समाज एवं सामूहिक श्रम पर आधारित होता है। कृषि का यह प्रकार पूर्व सोवियत संघ में प्रारंभ हुआ था जहाँ कृषि की दशा सुधारने एवं उत्पादन में वृद्धि व आत्मनिर्भरता प्राप्ति के लिए सामूहिक कृषि प्रारंभ की गई। इस प्रकार की सामूहिक कृषि को सोवियत संघ में कोलखहोज़ का नाम दिया गया।

सभी कृषक अपने संसाधन जैसे भूमि, पशुधन एवं श्रम को मिलाकर कृषि कार्य करते थे। ये अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भूमि का छोटा-सा भाग अपने अधिकार में भी रखते थे। सरकार उत्पादन का वार्षिक लक्ष्य निर्धारित करती थी एवं उत्पादन को सरकार ही निर्धारित मूल्य पर खरीदती थी। लक्ष्य से अधिक उत्पन्न होने वाला भाग सभी सदस्यों को वितरित कर दिया जाता था या बाज़ार में बेच दिया जाता था। उत्पादन एवं भाड़े पर ली गई मशीनों पर कृषकों को कर चुकाना पड़ता था। सभी सदस्यों को उनके द्वारा किए गए कार्य की प्रकृति के आधार पर भुगतान किया जाता था। असाधारण कार्य करने वाले सदस्य को नकद या माल के रूप में पुरस्कृत किया जाता था। पूर्व सोवियत संघ की समाजवादी सरकार ने इसे प्रारंभ किया जिसे अन्य समाजवादी देशों ने भी अपनाया। सोवियत संघ के विघटन के बाद इस प्रकार की कृषि में भी संशोधन किया गया है।

खनन

मानव विकास के इतिहास में खनिजों की खोज की कई अवस्थाएँ देखी जा सकती हैं जैसे ताम्र युग, कांस्य युग एवं लौह युग। प्राचीन काल में खनिजों का उपयोग औजार बनाने, बर्तन बनाने एवं हथियार बनाने तक

ही सीमित था। इसका वास्तविक विकास औद्योगिक क्रांति के पश्चात् ही संभव हुआ एवं निरंतर इसका महत्त्व बढ़ता रहा है।

खनन कार्य को प्रभावित करने वाले कारक

खनन कार्य की लाभप्रदता दो बातों पर निर्भर करती है।

(i) भौतिक कारक जिनमें खनिज निक्षेपों के आकार, श्रेणी एवं उपस्थिति की अवस्था को सम्मिलित करते है।

(ii) आर्थिक कारक जिनमें खनिज की माँग, विद्यमान तकनीकी ज्ञान एवं उसका उपयोग, अवसंरचना के विकास के लिए उपलब्ध पूँजी एवं यातायात व श्रम पर होने वाला व्यय आता है।

खनन की विधियाँ

उपस्थिति की अवस्था एवं अयस्क की प्रकृति के आधार पर खनन के दो प्रकार हैं: धरातलीय एवं भूमिगत खनन। धरातलीय खनन को विवृत खनन भी कहा जाता है। यह खनिजों के खनन - का सबसे सस्ता तरीका है, क्योंकि इस विधि में सुरक्षात्मक - पूर्वोपायों एवं उपकरणों पर अतिरिक्त खर्च अपेक्षाकृत निम्न कम होता है एवं उत्पादन शीघ्र व अधिक होता है।

जब अयस्क धरातल के नीचे गहराई में होता है तब भूमिगत अथवा कूपकी खनन विधि का प्रयोग किया जाता है। इस विधि में लंबवत् कूपक गहराई तक स्थित हैं, जहाँ से भूमिगत गैलरियाँ खनिजों तक पहुँचने के लिए फैली हैं। इन मार्गों से होकर खनिजों का निष्कर्षण एवं परिवहन धरातल तक किया जाता है। खदान में कार्य करने वाले श्रमिकों तथा निकाले जाने वाले खनिजों के सुरक्षित और प्रभावी आवागमन हेतु इसमें विशेष प्रकार की लिफ्ट बेधक (बरमा), माल ढोने की गाड़ियाँ तथा वायु संचार प्रणाली की आवश्यकता होती है। खनन का यह तरीका जोखिम भरा है क्योंकि जहरीली गैसें, आग एवं बाढ़ के कारण कई बार दुर्घटनाएँ होने का भय रहता है।

विकसित अर्थव्यवस्था वाले देश उत्पादन की खनन, प्रसंस्करण एवं शोधन कार्य से पीछे हट रहे हैं क्योंकि इसमें श्रमिक लागत अधिक आने लगी है। जबकि विकासशील देश अपने विशाल श्रमिक शक्ति के बल पर अपने देशवासियों के ऊँचे रहन-सहन को बनाए रखने के लिए खनन कार्य को महत्त्व दे रहे हैं। अफ्रीका के कई देश, दक्षिण अमेरिका के कुछ देश एवं एशिया में आय के साधनों का पचास प्रतिशत तक खनन कार्य से प्राप्त होता है।

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

द्वितीयक क्रियाएँ

संपूर्ण आर्थिक क्रियाएँ चाहे वो प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक एवं चतुर्थक हों सभी का कार्य क्षेत्र संसाधनों की प्राप्ति एवं उनके उपयोग का अध्ययन करना है। ये संसाधन मनुष्य के जीवित रहने के लिए आवश्यक हैं।

द्वितीयक गतिविधियों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का मूल्य बढ़ जाता है। प्रकृति में पाए जाने वाले कच्चे माल का रूप बदलकर यह उसे मूल्यवान बना देती है। कपास का सीमित उपयोग है परंतु तंतु में परिवर्तित होने के बाद यह और अधिक मूल्यवान हो जाता है और इसका उपयोग वस्त्र बनाने में किया जा सकता है। खदानों से प्राप्त लौह अयस्क का हम प्रत्यक्ष उपयोग नहीं कर सकते, परंतु अयस्क से इस्पात बनाने के बाद यह मूल्यवान हो जाता है, और इसका उपयोग कई प्रकार की मशीनें एवं औज़ार बनाने में होता है। खेतों, वनों, खदानों एवं समुद्रों से प्राप्त पदार्थों के विषय में भी यही बात सत्य है। इस प्रकार द्वितीयक क्रियाएँ विनिर्माण, प्रसंस्करण और निर्माण (अवसंरचना) उद्योग से संबंधित हैं।

विनिर्माण

विनिर्माण से आशय किसी भी वस्तु का उत्पादन है। हस्तशिल्प कार्य से लेकर लोहे व इस्पात को गढ़ना, प्लास्टिक के खिलौने बनाना, कंप्यूटर के अति सूक्ष्म घटकों को जोड़ना एवं अंतरिक्ष यान निर्माण इत्यादि सभी प्रकार के उत्पादन को निर्माण के अंतर्गत ही माना जाता है। विनिर्माण की सभी प्रक्रियाओं में कुछ सामान्य विशेषताएँ होती हैं, जैसे शक्ति का उपयोग, एक ही प्रकार की वस्तुओं का विशाल उत्पादन एवं कारखानों में विशिष्ट श्रमिक जो मानक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। विनिर्माण आधुनिक शक्ति के साधन एवं मशीनरी के द्वारा या पुराने साधनों द्वारा किया जाता है। तृतीय विश्व के अधिकांश देशों में विनिर्माण को अब भी शाब्दिक अर्थों में प्रयोग किया जाता है। इन देशों में सभी विनिर्माताओं का संपूर्ण रूप से चित्रण करना कठिन है। इनमें औद्योगिक क्रियाओं के उन प्रकारों पर अधिक बल दिया जाता है जिसमें उत्पादन के कम जटिल तंत्र को लिया जाता है।

आधुनिक बड़े पैमाने पर होने वाले विनिर्माण की विशेषताएँ

वर्तमान समय में बड़े पैमाने पर होने वाले विनिर्माण की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं:

कौशल का विशिष्टीकरण/उत्पादन की विधियाँ

शिल्प तरीके से कारखाने में थोड़ा ही सामान उत्पादित किया जाता है। जो कि आदेशानुसार बनाया जाता है, अतः इसकी लागत अधिक आती है। जबकि अधिक उत्पादन का संबंध बड़े पैमाने पर बनाए जाने वाले सामान से है जिसमें प्रत्येक कारीगर निरंतर एक ही प्रकार का कार्य करता है।

'उद्योगों का निर्माण' एवं 'विनिर्माण उद्योग'

विनिर्माण का शाब्दिक अर्थ है 'हाथ से बनाना' फिर भी इसमें यंत्रों द्वारा बनाया गया सामान भी सम्मिलित किया जाता है। यह एक परमावश्यक प्रक्रिया है। जिसमें कच्चे माल को स्थानीय या दूरस्थ बाज़ार में बेचने के लिए ऊँचे मूल्य के तैयार माल में परिवर्तित कर दिया जाता है। वैचारिक दृष्टिकोण से उद्योग एक निर्माण इकाई होती है जिसकी भौगोलिक स्थिति अलग होती है एवं प्रबंध तंत्र के अंतर्गत लेखा-बही एवं रिकार्ड का रखरखाव रखा जाता है। उद्योग एक व्यापक नाम है और इसे विनिर्माण के पर्यायवाची के रूप में भी देखा जाता है। जब कोई इस्पात उद्योग और रसायन उद्योग शब्दावली का प्रयोग करता है तब उसके मस्तिष्क में कारखाने एवं कारखानों में होने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं का विचार उत्पन्न होता है। लेकिन कई गौण क्रियाएँ हैं जो कारखानों में संपन्न नहीं होती जैसे कि पर्यटन उद्योग या मनोरंजन उद्योग इत्यादि। अतः स्पष्टता के लिए 'विनिर्माण उद्योग' शब्दावली का प्रयोग किया जाता है।

यंत्रीकरण

यंत्रीकरण से तात्पर्य है किसी कार्य को पूर्ण करने के लिए मशीनों का प्रयोग करना। स्वचालित (निर्माण प्रक्रिया के दौरान मानव की सोच को सम्मिलित किए बिना कार्य) यंत्रीकरण की विकसित अवस्था है। पुनर्निवेशन एवं संवृत्त-पाश कंप्यूटर नियंत्रण प्रणाली से युक्त स्वचालित कारखाने जिनमें, मशीनों को 'सोचने' के लिए विकसित किया गया है, पूरे विश्व में नज़र आने लगी है।

प्रौद्योगिकीय नवाचार

प्रौद्योगिक नवाचार, शोध एवं विकासमान युक्तियों के द्वारा विनिर्माण की गुणवत्ता को नियंत्रित करने, अपशिष्टों के निस्तारण एवं अदक्षता को समाप्त करने तथा प्रदूषण के विरुद्ध संघर्ष करने का महत्त्वपूर्ण पहलू है।

संगठनात्मक ढाँचा एवं स्तरीकरण आधुनिक निर्माण की विशेषताएँ हैं :

(i) एक जटिल प्रोद्यौगिकी यंत्र

(ii) अत्यधिक विशिष्टीकरण एवं श्रम विभाजन के द्वारा कम प्रयास एवं अल्प लागत से अधिक माल का उत्पादन करना

(iii) अधिक पूँजी

(iv) बड़े संगठन एवं

(v) प्रशासकीय अधिकारी-वर्ग

अनियमित भौगोलिक वितरण

आधुनिक निर्माण के मुख्य संकेंद्रण कुछ ही स्थानों में सीमित हैं। विश्व के कुल स्थलीय भाग के 10 प्रतिशत से कम भू-भाग पर इनका विस्तार है।

यह देश आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति के केंद्र बन गए हैं। कुल क्षेत्र को आच्छादित करने की दृष्टि से विनिर्माण स्थल, प्रक्रियाओं की अत्यधिक गहनता के कारण बहुत कम स्पष्ट हैं तथा कृषि की अपेक्षा बहुत छोटे क्षेत्रों में संकेंद्रित हैं। उदाहरण के तौर पर अमेरिका के मक्का की पेटी के 2.5 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में साधारणतया चार बड़े फार्म होते हैं जिनमें, 10-20 श्रमिक कार्य करते हैं जिनसे 50-100 मनुष्यों का भरण-पोषण होता है। परंतु इतने ही क्षेत्र में अनेकों वृहद् समाकलित कारखानों को समाविष्ट किया जा सकता है और हज़ारों श्रमिकों को रोज़गार दिया जा सकता है।

उद्योग अपनी लागत घटाकर लाभ को बढ़ाते हैं इसलिए उद्योगों की स्थापना उस स्थान पर की जानी चाहिए जहाँ पर उत्पादन लागत कम आए। उद्योगों की स्थिति को प्रभावित करने वाले कुछ कारक निम्न हैं।

बाज़ार तक अभिगम्यता

उद्योगों की स्थापना में सबसे प्रमुख कारक उसके द्वारा उत्पादित माल के लिए उपलब्ध बाज़ार का होना है। बाज़ार से तात्पर्य उस क्षेत्र में तैयार वस्तुओं की माँग एवं वहाँ के निवासियों में खरीदने की क्षमता (क्रय शक्ति) है। दूरस्थ क्षेत्र जहाँ कम जनसंख्या निवास करती है छोटे बाज़ारों से युक्त होते हैं। यूरोप, उत्तरी अमेरिका, जापान एवं आस्ट्रेलिया के क्षेत्र वृहद् वैश्विक बाज़ार हैं, क्योंकि इन प्रदेशों के लोगों की क्रय क्षमता अधिक है। दक्षिणी एवं दक्षिणी पूर्वी एशिया के घने बसे प्रदेश भी वृहद् बाज़ार उपलब्ध कराते हैं। कुछ उद्योगों का व्यापक बाज़ार होता है, जैसेः वायुयान निर्माण एवं शस्त्र निर्माण उद्योग।

कच्चे माल की प्राप्ति तक अभिगम्यता

उद्योग के लिए कच्चा माल अपेक्षाकृत सस्ता एवं सरलता से परिवहन योग्य होना चाहिए। भारी वजन, सस्ते मूल्य एवं वजन घटने वाले पदार्थों (अयस्क) पर आधारित उद्योग कच्चे माल के स्रोत स्थल के समीप ही स्थित हैं, जैसे इस्पात, चीनी एवं सीमेंट उद्योग। कच्चे माल के स्रोतों के समीप स्थापित उद्योगों के लिए पदार्थ की शीघ्र नष्टशीलता एक अनिवार्य कारक है। कृषि प्रसंस्करण एवं डेरी उत्पाद क्रमशः कृषि उत्पादन क्षेत्रों अथवा दुग्ध आपूर्ति स्रोतों के समीप ही संसाधित किए जाते हैं।

श्रम आपूर्ति तक अभिगम्यता

उद्योगों की अवस्थिति में श्रम एक प्रमुख कारक है। बढ़ते हुए यंत्रीकरण, स्वचलन एवं औद्योगिक प्रक्रिया के लचीलेपन ने उद्योगों में श्रमिकों पर निर्भरता को कम किया है, फिर भी कुछ प्रकार के उद्योगों में अब भी कुशल श्रमिकों की आवश्यकता होती है।

शक्ति के साधनों तक अभिगम्यता

वे उद्योग जिनमें अधिक शक्ति की आवश्कता होती है वे ऊर्जा उद्योगा के स्रोतों के समीप लगाए जाते हैं, जैसे एल्यूमिनियम उद्योग। प्राचीन समय में कोयला प्रमुख शक्ति का साधन था पर आजकल जल विद्युत एवं खनिज तेल भी कई उद्योगों के लिए शक्ति का महत्त्वपूर्ण साधन है।

परिवहन एवं संचार की सुविधाओं तक अभिगम्यता

कच्चे माल को कारखाने तक लाने के लिए और परिष्कृत सामग्री को बाज़ार तक पहुँचने के लिए तीव्र और सक्षम परिवहन सुविधाएँ औद्योगिक विकास के लिए अत्यावश्यक हैं। परिवहन लागत किसी औद्योगिक इकाई की अवस्थिति को निश्चित करने में महत्त्वपूर्ण कारक हैं। पश्चिमी यूरोप एवं उत्तरी अमेरिका के पूर्वी भागों में अत्यधिक परिवहन तंत्र विकसित होने के कारण सदैव इन क्षेत्रों में उद्योगों का संकेंद्रण हुआ है। आधुनिक उद्योग अपृथक्करणीय ढंग से परिवहन तंत्र से जुड़े हैं। परिवहनीयता में सुधार समाकलित आर्थिक विकास और विनिर्माण की प्रादेशिक विशिष्टता को बढ़ाता है। उद्योगों हेतु सूचनाओं के आदान-प्रदान एवं प्रबंधन के लिए संचार की भी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता होती है।

सरकारी नीति

संतुलित आर्थिक विकास हेतु सरकार प्रादेशिक नीति अपनाती है जिसके अंतर्गत विशिष्ट क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना की जाती है।

समूहन अर्थव्यवस्था तक अभिगम्यता/उद्योगों के मध्य संबंध

प्रधान उद्योग की समीपता से अन्य अनेक उद्योग लाभान्वित होते हैं। ये लाभ समूहन अर्थव्यवस्था के रूप में परिणत हो जाते हैं। विभिन्न उद्योगों के मध्य पाई जाने वाली श्रृंखला से बचत की प्राप्ति होती है।

उपरोक्त सभी कारण सम्मिलित रूप से अवस्थिति का निर्धारण करते हैं। से किसी उद्योग की

स्वच्छंद स्वच्छंद उद्योग

स्वच्छंद उद्योग व्यापक विविधता वाले स्थानों में स्थित होते हैं। यह किसी विशिष्ट कच्चे माल जिनके भार में कमी हो रही है अथवा नहीं, पर निर्भर नहीं रहते हैं। यह उद्योग संघटक पुरजों पर निर्भर रहते हैं जो कहीं से भी प्राप्त किए जा सकते हैं। इसमें उत्पादन कम मात्रा में होता है, एवं श्रमिकों की भी कम आवश्यकता होती है। सामान्यतः ये उद्योग प्रदूषण नहीं फैलाते। इनकी स्थापना में महत्त्वपूर्ण कारक सड़कों के जाल द्वारा अभिगम्यता होती है।

विनिर्माण उद्योगों का वर्गीकरण

विनिर्माण उद्योगों का वर्गीकरण उनके आकार, कच्चा माल, उत्पाद एवं स्वामित्व के आधार पर किया जाता है।

आकार पर आधारित उद्योग

किसी उद्योग का आकार उसमें निवेशित पूँजी, कार्यरत श्रमिकों की संख्या एवं उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करता है। इसके अनुसार उद्योगों को घरेलू

अथवा कुटीर, छोटे व बड़े पैमाने के उद्योगों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

कुटीर उद्योग

यह निर्माण की सबसे छोटी इकाई है। इसमें शिल्पकार स्थानीय कच्चे माल का उपयोग करते हैं एवं साधारण औज़ारों द्वारा परिवार के सभी सदस्य मिलकर अपने दैनिक जीवन के उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। तैयार माल का या तो वे स्वयं उपभोग करते है या इसे स्थानीय गाँव के बाज़ार में विक्रय कर देते हैं। कभी ये अपने उत्पादों की अदला-बदली भी करते हैं। पूँजी एवं परिवहन इन उद्योगों को अधिक प्रभावित नहीं करते हैं क्योंकि इनके द्वारा निर्मित वस्तुओं का व्यापारिक महत्त्व कम होता है एवं अधिकतर उपकरण स्थानीय लोगों द्वारा निर्मित होते हैं।

इस उद्योग में दैनिक जीवन के उपयोग में आने वाली वस्तुओं जैसे खाद्य पदार्थ, कपड़ा, चटाइयाँ, बर्तन, औज़ार, फर्नीचर, जूते एवं लघु मूर्तियाँ उत्पादित की जाती हैं। इसके अतिरिक्त पत्थर एवं मिट्टी के बर्तन एवं ईंट, चमड़े से कई प्रकार का सामान बनाया जाता है। सुनार सोना, चाँदी एवं ताँबे से आभूषण बनाता है। कुछ शिल्प की वस्तुएँ बाँस एवं स्थानीय वन से प्राप्त लकड़ी से बनाई जाती है।

छोटे पैमाने के उद्योग

यह कुटीर उद्योग से भिन्न है। इसके उत्पादन की तकनीक एवं निर्माण स्थल (घर से बाहर कारखाना) दोनों कुटीर उद्योग से भिन्न होते हैं। इसमें स्थानीय कच्चे माल का उपयोग होता है एवं अर्द्धकुशल श्रमिक व शक्ति के साधनों से चलने वाले यंत्रों का प्रयोग किया जाता है। रोज़गार के अवसर इस उद्योग में अधिक होते हैं जिससे स्थानीय निवासियों की क्रय शक्ति बढ़ती है। भारत, चीन, इंडोनेशिया एवं ब्राजील जैसे देशों ने अपनी जनसंख्या को रोज़गार उपलब्ध करवाने के लिए इस प्रकार के श्रम-सघन छोटे पैमाने के उद्योग प्रारंभ किए हैं।

बड़े पैमाने के उद्योग

बड़े पैमाने के उद्योग के लिए विशाल बाज़ार, विभिन्न प्रकार का कच्चा माल, शक्ति के साधन, कुशल श्रमिक, विकसित प्रौद्योगिकी, अधिक उत्पादन एवं अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। पिछले 200 वर्षों में इसका विकास हुआ है। पहले यह उद्योग ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी भाग एवं यूरोप में लगाए गए थे परंतु वर्तमान में इसका विस्तार विश्व के सभी भागों में हो गया है।

विश्व के प्रमुख औद्योगिक प्रदेशों को उनके वृहत् पैमाने पर किए गए निर्माण के आधार पर दो बड़े समूहों में बाँटा जा सकता है :

(i) परंपरागत वृहत औद्योगिक प्रदेश जिनके समूह कुछ अधिक विकसित देशों में है।

(ii) उच्च प्रौद्योगिकी वाले वृहत औद्योगिक प्रदेश जिनका विस्तार कम विकसित देशों में हुआ है।

कच्चे माल पर आधारित उद्योग

कच्चे माल पर आधारित उद्योगों का वर्गीकरण पाँच शीर्षकों के अंतर्गत किया जाता है।

(क) कृषि आधारित

(ख) खनिज आधारित

(ग) रसायन आधारित

(घ) वन आधारित

(ङ) पशु आधारित

(क) कृषि आधारित

खेतों से प्राप्त कच्चे माल माल को विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा तैयार माल में बदलकर विक्रय हेतु ग्रामीण एवं नगरीय बाजारों में भेजा जाता है। प्रमुख कृषि आधारित उद्योग में भोजन तैयार करने वाले उद्योग, शक्कर, अचार, फलों के रस, पेय पदार्थ (चाय कॉफी, कोकोआ), मसाले, तेल एवं वस्त्र (सूती, रेशमी, जूट) तथा रबड़ उद्योग आते हैं।

भोजन प्रसंस्करण

कृषि से तैयार खाद्य में मलाई (क्रीम) का उत्पादन, डिब्बा खाद्य, फलों से खाद्य तैयार करना एवं मिठाइयाँ सम्मिलित की जाती हैं। खाद्य को सुरक्षित रखने की कई विधियाँ प्राचीन काल से चली आ रही है। जैसे उनको सुखाकर, संधान कर या अचार के रूप में तेल या सिरका आदि डालकर। पर इन विधियों का औद्योगिक क्रांति के पूर्व सीमित उपयोग ही होता था।

(क) **कृषि आधारित उद्योग**

कृषि व्यापार एक प्रकार की व्यापारिक कृषि है जो औद्योगिक पैमाने पर की जाती है इसका वित्त-पोषण प्रायः वह व्यापार करता है जिसकी मुख्य रुचि कृषि के बाहर हो। कृषि व्यापार फार्म से आकार में बड़े, यंत्रीकृत, रसायानों पर निर्भर एवं अच्छी संरचना वाले होते हैं। इनको 'कृषि कारखाने' भी कहा जाता है।

(ख) **खनिज आधारित उद्योग**

इन उद्योगों में खनिजों को कच्चे माल के रूप में उपयोग किया जाता है। कुछ उद्योग लौह अंश वाले धात्विक खनिजों का उपयोग करते हैं जैसे कि लौह इस्पात उद्योग जबकि कुछ उद्योग अलौह धात्विक खनिजों का

उपयोग करते हैं जैसे एल्युमिनियम, ताँबा एवं जवाहरात उद्योग। सीमेंट, मिट्टी के बर्तन आदि उद्योगों में अधात्विक खनिजों का प्रयोग होता है।

(ग) रसायन आधारित उद्योग

इस प्रकार के उद्योगों में प्राकृतिक रूप में पाए जाने वाले रासायनिक खनिजों का उपयोग होता है जैसे पेट्रो रसायन उद्योग में खनिज तेल (पैट्रोलियम) का उपयोग होता है। नमक, गंधक एवं पोटाश उद्योगों में भी प्राकृतिक खनिजों को काम में लेते हैं। कुछ रसायनिक उद्योग लकड़ी एवं कोयले से प्राप्त कच्चे माल पर भी निर्भर हैं। रसायन उद्योग के अन्य उदाहरण कृत्रिम रेशे बनाना, प्लास्टिक निर्माण इत्यादि है।

(घ) वनों पर आधारित उद्योग

वनों से प्राप्त कई मुख्य एवं गौण उपज कच्चे माल के रूप में उद्योगों में प्रयुक्त होती है। फर्नीचर उद्योग के लिए इमारती लकड़ी, कागज उद्योग के लिए लकड़ी, बाँस एवं घास तथा लाख उद्योग के लिए लाख वनों से ही प्राप्त होती है।

(ङ) पशु आधारित उद्योग

चमड़ा- चमड़ा एवं ऊन पशुओं से प्राप्त प्रमुख कच्चा माल है। चमड़ा उद्योग के लिए चमड़ा एवं ऊनी वस्त्र उद्योग के लिए ऊन पशुओं से ही प्राप्त की जाती है। हाथीदाँत उद्योग के लिए दाँत भी हाथी से मिलता है।

उत्पादन/उत्पाद आधारित उद्योग

आपने कुछ मशीनें एवं औजार देखे होंगे जिनके निर्माण में लौह-इस्पात का प्रयोग कच्चे माल के रूप में किया जाता है। लौह-इस्पात स्वयं में एक उद्योग है। वे उद्योग जिनके उत्पाद को अन्य वस्तुएँ बनाने के लिए कच्चे माल के रूप में प्रयोग में लाया जाता है उन्हें आधारभूत उद्योग कहते हैं।

स्वामित्व के आधार पर उद्योग

(क) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग सरकार के अधीन होते हैं। भारत में बहुत से उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र के अधीन है। समाजवादी देशों में भी अनेक उद्योग सरकारी स्वामित्व वाले होते हैं। मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी एवं सार्वजनिक दोनों प्रकार के उद्यम पाए जाते हैं।
(ख) निजी क्षेत्र के उद्योगों का स्वामित्व व्यक्तिगत निवेशकों के पास होता है। ये निजी संगठनों द्वारा संचालित होते हैं। पूँजीवादी देशों में अधिकतर उद्योग निजी क्षेत्र में है।

(ग) संयुक्त क्षेत्र के उद्योग का संचालन संयुक्त कंपनी के द्वारा या किसी निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी के संयुक्त प्रयासों द्वारा किया जाता है।

परंपरागत बड़े पैमाने वाले औद्योगिक प्रदेश

यह भारी उद्योग के क्षेत्र होते हैं जिसमें कोयला खदानों के समीप स्थित धातु पिघलाने वाले उद्योग, भारी इंजीनियरिंग, रसायन निर्माण, वस्त्र उत्पादन इत्यादि का कार्य किया जाता है। इन्हें धुएँ की चिमनी वाला उद्योग भी कहते हैं। परंपरागत औद्योगिक प्रदेशों के निम्न पहचान बिंदु हैं।

निर्माण उद्योगों में रोज़गार का अनुपात ऊँचा होता है। उच्च गृह घनत्व जिसमें घर घटिया प्रकार के होते हैं एवं सेवाएँ अपर्याप्त होती है।

वातावरण अनाकर्षक होता है जिसमें गंदगी के ढेर व प्रदूषण होता है।

बेरोज़गारी की समस्या, उत्प्रवास, विश्वव्यापी माँग कम होने से कारखाने बंद होने के कारण परित्यक्त भूमि का क्षेत्र।

जर्मनी का रूहर कोयला क्षेत्र

यह लंबे समय से यूरोप का प्रमुख औद्योगिक प्रदेश रहा है।

कोयला, लोहा एवं इस्पात यहाँ अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार रहा है पर कोयले की माँग में कमी आने के कारण उद्योग संकुचित होने लगा। यहाँ लौह अयस्क समाप्त होने पर भी जलमार्ग से आयातित अयस्क का प्रयोग करके उद्योग कार्यशील रहा है।

जर्मनी के इस्पात उत्पादन का 80 प्रतिशत रूहर से प्राप्त होता है। औद्योगिक ढाँचे में परिवर्तन के कारण कुछ क्षेत्रों के उत्पादन में गिरावट आई है एवं प्रदूषण व औद्योगिक अपशिष्ट की समस्या भी होने लगी है। अब रूहर के भविष्य की संपन्नता कोयले व इस्पात के बजाय नए उद्योग जैसे ओपेल कार बनाने का विशाल कारखाना, नए रासायनिक संयंत्र, विश्वविद्यालय इत्यादि पर आधारित है। यहाँ खरीदारी के बड़े-बड़े बाज़ार बन गए हैं जिससे एक 'नया रूहर' भू-दृश्य विकसित हो रहा है।

उच्च प्रौद्योगिकी उद्योग की संकल्पना

निर्माण क्रियाओं में उच्च प्रौद्योगिकी नवीनतम पीढ़ी है। इसमें उन्नत वैज्ञानिक एवं इंजीनियरिंग उत्पादकों का निर्माण गहन शोध एवं विकास के प्रयोग द्वारा किया जाता है। संपूर्ण श्रमिक शक्ति का अधिकतर भाग व्यावसायिक (सफ़ेद कॉलर) श्रमिकों का होता है। ये उच्च, दक्ष एवं विशिष्ट व्यावसायिक श्रमिक वास्तविक उत्पादन (नीला कॉलर) श्रमिकों से संख्या में अधिक होते हैं। उच्च प्रौद्योगिकी उद्योग में यंत्रमानव, कंप्यूटर आधारित डिज़ाइन (कैड) तथा निर्माण, धातु पिघलाने एवं शोधन के इलेक्ट्रोनिक नियंत्रण एवं नए रासायनिक व औषधीय उत्पाद प्रमुख स्थान रखते हैं।

इस भूदृश्य में विशाल भवनों, कारखानों एवं भंडार क्षेत्रों के स्थान पर आधुनिक, नीचे साफ़-सुथरे, बिखरे कार्यालय एवं प्रयोगशालाएँ देखने को मिलती हैं। इस समय जो भी प्रादेशिक व स्थानीय विकास की योजनाएँ बन रही हैं उनमें नियोजित व्यवसाय पार्क का निर्माण किया जा रहा है। वे उच्च प्रौद्योगिकी उद्योग जो प्रादेशिक संकेंद्रित हैं, आत्मनिर्भर एवं उच्च विशिष्टता लिए होते हैं उन्हें प्रौद्योगिक ध्रुव कहा जाता है। सेन फ्रांसिस्को

के समीप सिलीकन घाटी एवं सियटल के समीप सिलीकन वन प्रौद्योगिक ध्रुव के अच्छे उदाहरण हैं। क्या भारत में कुछ प्रौद्योगिकी ध्रुव विकसित हो रहे हैं?

विश्व अर्थव्यवस्था में निर्माण उद्योग का बड़ा योगदान है। लौह-इस्पात, वस्त्र, मोटर गाड़ी निर्माण, पेट्रो रसायन एवं इलेक्ट्रोनिक्स विश्व के प्रमुख निर्माण उद्योग हैं।

लौह इस्पात उद्योग

लौह-इस्पात उद्योग सभी उद्योगों का आधार है इसलिए इसे आधारभूत उद्योग भी कहा जाता है। यह आधारभूत इसलिए है क्योंकि यह अन्य उद्योगों जैसे कि मशीन और औज़ार जो आगे उत्पादों के लिए प्रयोग किए जाते हैं को कच्चा माल प्रदान करता है। इसे भारी उद्योग भी कहते हैं क्योंकि इसमें बड़ी मात्रा में भारी-भरकम कच्चा माल उपयोग में लाया जाता है एवं इसके उत्पाद भी भारी होते हैं।

लोहा निकालने के लिए लौह अयस्क को झोंका भट्टियों में कार्बन (कोक) एवं चूना पत्थर के साथ प्रगलन किया जाता है। पिघला हुआ लौह बाहर निकलकर जब ठंडा हो जाता है तो उसे कच्चा लोहा कहते हैं। इसी कच्चे लोहे में मैंगनीज मिलाकर इस्पात बनाया जाता है।

परंपरागत रूप से बड़े इस्पात उद्योग की स्थिति कच्चे माल के स्त्रोत के समीप ही रही है जहाँ लौह अयस्क, कोयला, मैंगनीज एवं चुना-पत्थर आसानी से उपलब्ध हो जाता हो या यह ऐसे स्थान पर भी अवस्थित हो सकता है जहाँ कच्चा माल आसानी से पहुँचाया जा सके जैसे पत्तन के समीप। परंतु छोटे इस्पात कारखाने जिनका निर्माण और प्रचालन कम महँगा है की अवस्थिति के लिए कच्चेमाल की अपेक्षा बाज़ार का समीप होना अधिक महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि कच्चे माल के रूप में रद्दी धातू बाज़ार से उपलब्ध हो जाती है। परंपरागत रूप से अधिकतर इस्पात का उत्पादन विशाल संघटित संयंत्रों द्वारा ही किया जाता था पर अब छोटे इस्पात संयंत्र जिनमें केवल एक प्रक्रिया इस्पात निर्माण होता है, अधिक लगने लगे हैं।

वितरणः यह एक जटिल उद्योग है जिसमें अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। तथा उत्तरी अमेरिका, यूरोप एवं एशिया के विकसित देशों में इसका केंद्रीकरण है। संयुक्त राज्य अमेरिका में लौह-इस्पात का उत्पादन करने वाले प्रमुख क्षेत्र, उत्तर अप्लेशियन प्रदेश (पिट्सबर्ग) महान झील क्षेत्र (शिकागो-गैरी, इरी, क्लीवलैंड, लोरेन, बफैलो एवं ड्युलुथ) तथा एटलांटिक तट (स्पैरोज पोइंट एवं मोरिसविले) हैं। इनके अतिरिक्त इस उद्योग का विस्तार दक्षिणी राज्य अलाबामा में भी हुआ है। पीट्सबर्ग क्षेत्र का महत्त्व अब घट रहा है एवं इस क्षेत्र को 'जंग का कटोरा' के नाम से पुकारा जाता है। यूरोप में ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, बेल्जियम, लक्ज़मबर्ग, नीदरलैंड एवं सोवियत रूस इसके मुख्य उत्पादक हैं। ग्रेट ब्रिटेन में बरमिंघम एवं शैफील्ड, जर्मनी में, डूइसबर्ग, डोरटमुंड, डूसूलडोरफ एवं ऐसेन, फ्रांस में ली क्रीयुसोट एवं सेंट इटीनी, सोवियत रूस में मास्को, सेंट पीट्सबर्ग, लीपेटस्क एवं तुला, युक्रेन में क्रिबोइ, रॉग एवं दोनेत्सक प्रमुख इस्पात केंद्र हैं। एशिया महाद्वीप में जापान में नागासाकी एवं टोक्यो, योकोहामा, चीन में शंघाई, तियनस्तिन एवं वूहान एवं भारत में जमशेदपुर, कुल्टी-बुरहानपुर, दुर्गापुर, राउरकेला, भिलाई, बोकारो, सलेम, विशाखापटनम एवं भद्रावती प्रमुख केंद्र हैं। उपर्युक्त सभी केंद्रों को अपने एटलस में देखिए।

सूती कपड़ा उद्योग

इस उद्योग में सूती कपड़े का निर्माण हथकरघा, बिजली करघा एवं कारखानों में किया जाता है। हथकरघा क्षेत्र में अधिक श्रमिकों की आवश्यकता होती है एवं यह अर्द्धकुशल श्रमिकों को रोज़गार प्रदान करता है। पूँजी की आवश्यकता भी इसमें कम होती है। स्वतंत्रता के आंदोलन में महात्मा गांधी ने खादी के उपयोग पर क्यों बल दिया था? इसके अंतर्गत सूत की कताई, बुनाई आदि का कार्य किया जाता है। बिजली करघों से कपड़ा बनाने में यंत्रों का प्रयोग किया जाता है अतः इसमें श्रमिकों की कम आवश्कता पड़ती है एवं उत्पादन भी अधिक होता है। कारखानों में कपड़ा बनाने के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है परंतु इसमें अच्छे प्रकार के कपड़े का बहुत अधिक मात्रा में उत्पादन किया जाता है।

सूती वस्त्र निर्माण के लिए कच्चे माल के रूप में अच्छी किस्म की कपास चाहिए। विश्व के 50 प्रतिशत से अधिक कपास का उत्पादन भारत, चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका, पाकिस्तान, उज्बेकिस्तान एवं मिस्त्र में किया जाता है। ग्रेट ब्रिटेन, उत्तरी पश्चिमी यूरोप के देश एवं जापान भी आयातित धागे से सूती कपड़े का उत्पादन करते हैं। अकेला यूरोप विश्व का लगभग आधा कपास आयात करता है। वर्तमान में इस उद्योग को कृत्रिम रेशे से प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ रही है। जिसके कारण अनेक देशों में इसमें नकारात्मक प्रवृति देखी जा रही है। वैज्ञानिक प्रगति एवं तकनीकी सुधारों से उद्योगों की संरचना में परिवर्तन होता है। उदाहरण के तौर पर द्वितीय विश्व युद्ध से लेकर सत्तर के दशक तक जर्मनी ने इस उद्योग में काफ़ी प्रगति की पर अब इसके उत्पादन में कमी आ रही है। यह उद्योग उन कम विकसित देशों में स्थानांतरित हो गया है जहाँ श्रम लागत कम है।

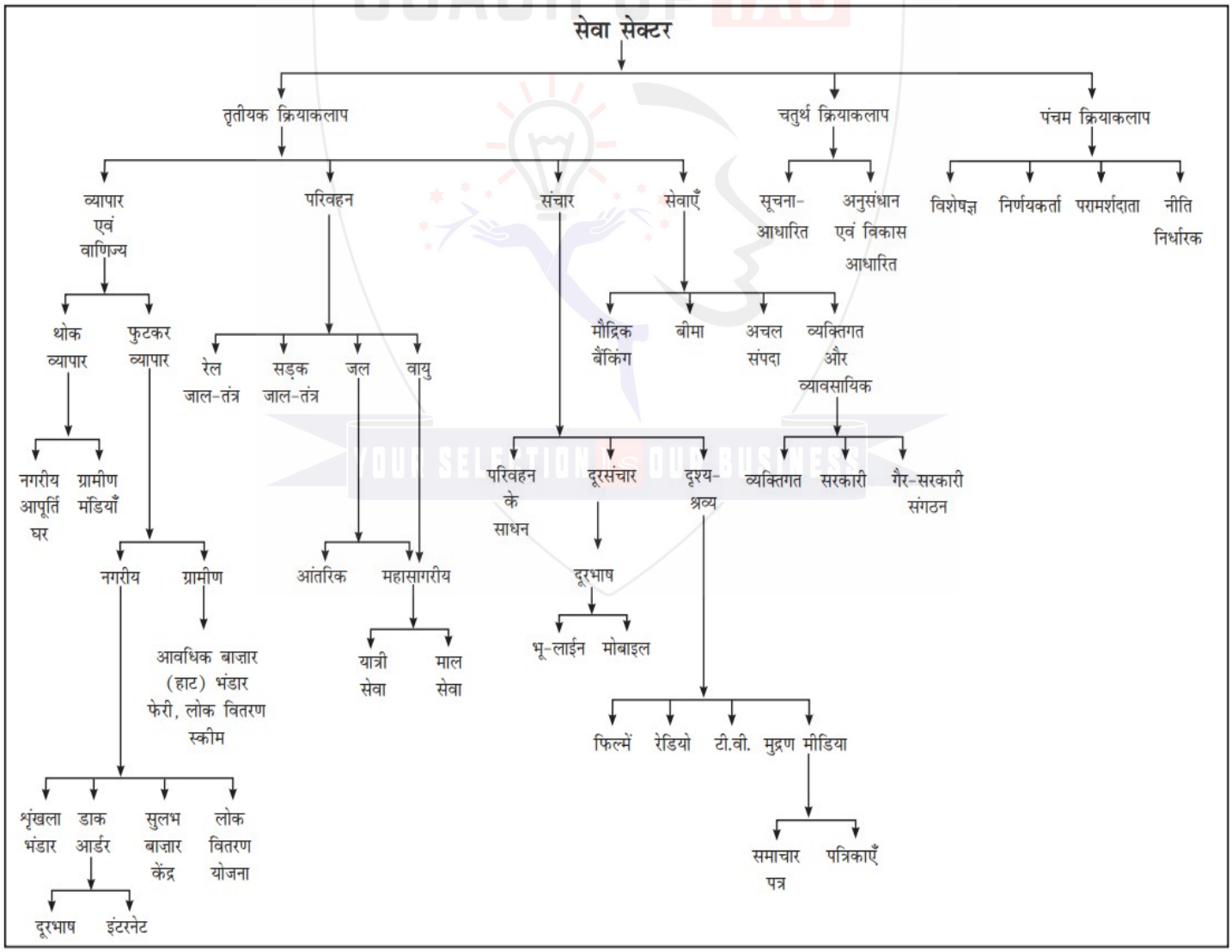
तृतीयक और चतुर्थ क्रियाकलाप

तृतीयक क्रियाकलाप सेवा सेक्टर से संबंधित हैं। जनशक्ति सेवा सेक्टर का एक महत्त्वपूर्ण कारक है क्योंकि अधिकांश तृतीयक क्रियाकलापों का निष्पादन कुशल श्रमिक व्यावसायिक दृष्टि से प्रशिक्षित विशेषज्ञ और परामर्शदाताओं द्वारा होता है।

आर्थिक विकास की आरंभिक अवस्थाओं में लोगों का एक बड़ा अनुपात प्राथमिक सेक्टर में कार्य करता था। एक विकसित अर्थव्यवस्था में बहुसंख्यक श्रमिक तृतीयक क्रियाकलापों में रोज़गार पाते हैं और अपेक्षाकृत कम संख्या में द्वितीयक सेक्टर में कार्यरत होते हैं।

तृतीयक क्रियाकलापों में उत्पादन और विनिमय दोनों सम्मिलित होते हैं। उत्पादन में सेवाओं की उपलब्धता शामिल होती है जिनका उपभोग किया जाता है। उत्पादन को परोक्ष रूप से पारिश्रमिक और वेतन के रूप में मापा जाता है। विनिमय के अंतर्गत व्यापार, परिवहन और संचार सुविधाएँ सम्मिलित होती हैं जिनका उपयोग दूरी को निष्प्रभाव करने के लिए किया जाता है। इसलिए तृतीयक क्रियाकलापों में मूर्त वस्तुओं के उत्पादन के बजाय सेवाओं का व्यावसायिक उत्पादन सम्मिलित होता है। वे भौतिक कच्चे माल के प्रक्रमण में प्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित नहीं होती। एक नलसाज, बिजली मिस्त्री, तकनीशियन, धोबी, नाई, दुकानदार, चालक, कोषपाल, अध्यापक, डॉक्टर, वकील और प्रकाशक इत्यादि का काम इनका सामान्य उदाहरण हैं। द्वितीयक और तृतीयक क्रियाकलापों में मुख्य अंतर यह है कि सेवाओं द्वारा उपलब्ध विशेषज्ञता उत्पादन तकनीकों, मशीनरी और फैक्ट्री प्रक्रियाओं की अपेक्षा कर्मियों की विशिष्टीकृत कुशलताओं, अनुभव और ज्ञान पर अत्यधिक निर्भर करती है।

तृतीयक क्रियाकलापों के प्रकार



चार्ट 7.1 : सेवा सेक्टर

अब तक आप जान गए हैं कि आप व्यापारी की दुकान से पुस्तकें और स्टेशनरी खरीदते हैं, बस अथवा रेल द्वारा यात्रा करते हैं, पत्र भेजते हैं, दूरभाष पर बातें करते हैं व अध्ययन के लिए अध्यापकों की व रुग्ण होने पर डॉक्टर की सेवाएँ प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार व्यापार, परिवहन, संचार और सेवाएँ कुछ तृतीयक क्रियाकलाप हैं जिनकी इस सेक्टर में चर्चा की गई है। चार्ट 7.1 तृतीयक क्रियाकलापों के वर्गीकरण का आधार प्रस्तुत करता है।

व्यापार और वाणिज्य

व्यापार वस्तुतः अन्यत्र उत्पादित मदों का क्रय और विक्रय है। फुटकर और थोक व्यापार अथवा वाणिज्य की सभी सेवाओं का विशिष्ट उद्देश्य लाभ कमाना है। यह सारा काम कस्बों और नगरों में होता है जिन्हें व्यापारिक केंद्र कहा जाता है।

स्थानीय स्तर पर वस्तु विनिमय से लेकर अंतर्राष्ट्रीय सोपान पर मुद्रा विनिमय तक व्यापार के उत्थान ने अनेक केंद्रों और संस्थाओं को जन्म दिया है जैसे कि व्यापारिक केंद्र अथवा संग्रहण और वितरण बिंदु।

व्यापारिक केंद्रों को ग्रामीण और नगरीय विपणन केंद्रों में विभक्त किया जा सकता है।

ग्रामीण विपणन केंद्र निकटवर्ती बस्तियों का पोषण करते हैं। ये अर्ध-नगरीय केंद्र होते हैं। ये अत्यंत अल्पवर्धित प्रकार के व्यापारिक केंद्रों के रूप में सेवा करते हैं। यहाँ व्यक्तिगत और व्यावसायिक सेवाएँ सुविकसित नहीं होतीं। ये स्थानीय संग्रहण और वितरण केंद्र होते हैं। इनमें से अधिकांश केंद्रों में मंडियाँ (थोक बाज़ार) और फुटकर व्यापार क्षेत्र भी होते हैं। ये स्वयं में नगरीय केंद्र नहीं हैं किंतु ग्रामीण लोगों की अधिक माँग वाली वस्तुओं और सेवाओं को उपलब्ध कराने वाले महत्त्वपूर्ण केंद्र हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में आवधिक बाज़ार ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ नियमित बाज़ार नहीं होते विभिन्न कालिक अंतरालों पर स्थानीय आवधिक बाज़ार लगाए जाते हैं। ये साप्ताहिक, पाक्षिक बाज़ार होते हैं जहाँ परिग्रामी क्षेत्रों से लोग आकर समय-समय पर अपनी आवश्यक ज़रूरतों को पूरा करते हैं। ये बाज़ार निश्चित तिथि दिन पर लगते हैं और एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगते रहते हैं। दुकानदार इस प्रकार सभी दिन व्यस्त रहते हैं और एक विस्तृत क्षेत्र को सेवा प्रदान करते हैं।

नगरीय बाज़ार केंद्रों में और अधिक विशिष्टीकृत

नगरीय सेवाएँ मिलती हैं। इनमें न केवल साधारण वस्तुएँ और सेवाएँ बल्कि लोगों द्वारा वांछित अनेक विशिष्ट वस्तुएँ व सेवाएँ भी उपलब्ध होती हैं। नगरीय केंद्र, इसलिए विनिर्मित पदार्थों के साथ-साथ विशिष्टीकृत बाज़ार भी प्रस्तुत करते हैं जैसे श्रम बाज़ार, आवासन, अर्ध-निर्मित एवं निर्मित उत्पादों का बाज़ार। इनमें शैक्षिक संस्थाओं और व्यावसायिकों की सेवाएँ जैसे- अध्यापक, वकील, परामर्शदाता, चिकित्सक, दाँतों का डॉक्टर और पशु चिकित्सक आदि उपलब्ध होते हैं।

फुटकर व्यापार

ये वह व्यापारिक क्रियाकलाप हैं जो उपभोक्ताओं को वस्तुओं के प्रत्यक्ष विक्रय से संबंधित हैं। अधिकांश फुटकर व्यापार केवल विक्रय से नियत प्रतिष्ठानों और भंडारों में संपन्न होता है। फेरी, रेहड़ी, ट्रक, द्वार से द्वार, डाक आदेश, दूरभाष, स्वचालित बिक्री मशीनें तथा इंटरनेट फुटकर बिक्री के भंडार रहित उदाहरण हैं।

भंडारों पर और सामग्री

फुटकर व्यापार में वृहत स्तर पर सबसे पहले नवाचार लाने वाले उपभोक्ता सहकारी समुदाय थे।

विभागीय भंडार वस्तुओं की खरीद और भंडारों के विभिन्न अनुभागों में बिक्री के सर्वेक्षण के लिए विभागीय प्रमुखों को उत्तरदायित्व और प्राधिकार सौंप देते हैं।

श्रृंखला भंडार अत्यधिक मितव्ययता से व्यापारिक माल खरीद पाते हैं, यहाँ तक कि अपने विनिर्देश पर सीधे वस्तुओं का विनिर्माण करा लेते हैं। वे अनेक कार्यकारी कार्यों में अत्यधिक कुशल विशेषज्ञ नियुक्त कर लेते हैं। उनके पास एक भंडार के अनुभव के परिणामों को अनेक भंडारों में लागू करने की योग्यता होती है।

थोक व्यापार

थोक व्यापार का गठन अनेक बिचौलिए सौदागरों और पूर्तिघरों द्वारा होता है न कि फुटकर भंडारों द्वारा। श्रृंखला भंडारों सहित कुछ बड़े भंडार विनिर्माताओं से सीधी खरीद करते हैं। फिर भी बहुसंख्यक फुटकर भंडार बिचौलिए स्त्रोत से पूर्ति लेते हैं। थोक विक्रेता प्रायः फुटकर भंडारों को उधार देते हैं, यहाँ तक कि फुटकर विक्रेता अधिकतर थोक विक्रेता की पूँजी पर ही अपने कार्य का संचालन करते हैं।

परिवहन

परिवहन एक ऐसी सेवा अथवा सुविधा है जिससे व्यक्तियों, विनिर्मित माल तथा संपत्ति को भौतिक रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है। यह मनुष्य की गतिशीलता की मूलभूत आवश्यकता को पूरा करने हेतु निर्मित एक संगठित उद्योग है। आधुनिक समाज वस्तुओं के उत्पादन, वितरण और उपभोग में सहायता देने के लिए तीव्र और सक्षम परिवहन व्यवस्था चाहते हैं। इस जटिल व्यवस्था की प्रत्येक अवस्था में परिवहन द्वारा पदार्थ का मूल्य अत्यधिक बढ़ जाता है।

परिवहन दूरी को किलोमीटर दूरी अथवा मार्ग लंबाई की वास्तविक दूरी, समय दूरी अथवा एक मार्ग पर यात्रा करने में लगने वाले समय, और लागत दूरी अथवा मार्ग पर यात्रा के खर्च के रूप में मापा जा सकता है।

परिवहन के साधन के चयन में समय अथवा लागत के संदर्भ में एक निर्णायक कारक है। मानचित्र पर समान समय में पहुँचने वाले स्थानों को मिलाने वाली समकाल रेखाएँ खींची जाती हैं।

जाल-तंत्र और पहुँच

जैसे ही परिवहन व्यवस्थाएँ विकसित होती हैं विभिन्न स्थान आपस में जुड़कर जाल-तंत्र की रचना करते हैं। जाल-तंत्र तथा योजक से मिलकर बनते हैं। दो अथवा अधिक मार्गों का संधि-स्थल, एक उद्गम बिंदु, एक गंतव्य बिंदु अथवा मार्ग के सहारे कोई बड़ा कस्बा नोड होता है। प्रत्येक सड़क जो दो नोडों को जोड़ती है योजक कहलाती है। एक विकसित जाल-तंत्र में अनेक योजक होते हैं, जिसका अर्थ है कि स्थान सुसंबद्ध है।

परिवहन को प्रभावित करने वाले कारक

परिवहन की माँग जनसंख्या के आकार से प्रभावित होती है। जनसंख्या का आकार जितना बड़ा होगा परिवहन की माँग उतनी ही अधिक होगी।

नगरों, कस्बों, गाँवों, औद्योगिक केंद्रों और कच्चे माल, उनके मध्य व्यापार के प्रारूप, उनके मध्य भू-दृश्य की प्रकृति, जलवायु के प्रकार और मार्ग की लंबाई पर आने वाले व्यवधानों को दूर करने के लिए उपलब्ध निधियों (मुद्रा) पर मार्ग निर्भर करते हैं।

संचार

संचार सेवाओं में शब्दों और संदेशों, तथ्यों और विचारों का प्रेषण सम्मिलित है। लेखन के आविष्कार ने संदेशों को संरक्षित किया और संचार को परिवहन के साधनों पर निर्भर करने में सहायता की। ये वास्तव में हाथ, पशुओं, नाव, सड़क, रेल तथा वायु द्वारा परिवहित होते थे। यही कारण है कि परिवहन के सभी रूपों को संचार पथ कहा जाता है। जहाँ परिवहन जाल-तंत्र सक्षम होता है वहाँ संचार का फैलाव सरल होता है। मोबाइल दूरभाष और उपग्रहों जैसे कुछ विकासों ने संचार को परिवहन से मुक्त कर दिया है। पुराने तंत्रों के सस्ता होने के कारण संचार के सभी रूपों का साहचर्य पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हुआ है। अतः पूरे विश्व में अभी भी विशाल मात्रा में डाक का निपटारन डाकघरों द्वारा हो रहा है। कुछ संचार सेवाओं की चर्चा नीचे की गई है :

दूरसंचार

दूरसंचार का प्रयोग विद्युतीय प्रौद्योगिकी के विकास से जुड़ा है। संदेशों के भेजे जाने की गति के कारण इसने संचार में क्रांति ला दी है। समय सप्ताहों से मिनटों में घट गया है और मोबाइल दूरभाष जैसी नूतन उन्नति ने किसी भी समय कहीं से भी संचार को प्रत्यक्ष और तत्काल बना दिया है। तार प्रेषण, मोर्स कूट और टैलेक्स अब लगभग भूतकाल की वस्तुएँ बन गई हैं।

रेडियो और दूरदर्शन भी समाचारों, चित्रों व दूरभाष

कालों का पूरे विश्व में विस्तृत श्रोताओं को प्रसारण करते हैं और इसलिए इन्हें जनसंचार माध्यम कहा जाता है। वे विज्ञापन एवं मनोरंजन के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। समाचार पत्र विश्व के सभी कोनों से घटनाओं का प्रसारण करने में सक्षम होते हैं। उपग्रह संचार पृथ्वी और अंतरिक्ष से सूचना का प्रसारण करता है। इंटरनेट ने वैश्विक संचार तंत्र में वास्तव में क्रांति ला दी है।

सेवाएँ

सेवाएँ विभिन्न स्तरों पर पाई जाती हैं। कुछ सेवाएँ उद्योगों को चलाती हैं, कुछ लोगों को और कुछ उद्योगों और लोगों दोनों को, उदाहरणतः परिवहन तंत्र। निम्नस्तरीय सेवाएँ जैस -पंसारी की दुकानें, धोबीघाट; उच्चस्तरीय सेवाओं अथवा लेखाकार, परामर्शदाता और काय चिकित्सक जैसी अधिक विशिष्टीकृत सेवाओं की अपेक्षा अधिक सामान्य और विस्तृत हैं। सेवाएँ भुगतान कर सकने वाले व्यक्तिगत उपभोक्ताओं को उपलब्ध होती हैं। माली, धोबी और नाई मुख्य रूप से शारीरिक श्रम करते हैं। अध्यापक, वकील, चिकित्सक, संगीतकार और अन्य मानसिक श्रम करते हैं।

अनेक सेवाएँ अब नियमित हो गई हैं। महामार्गों एवं सेतुओं का निर्माण और अनुरक्षण, अग्निशमन विभागों का अनुरक्षण और शिक्षा की पूर्ति अथवा पर्यवेक्षण और ग्राहक सेवा महत्त्वपूर्ण सेवाओं में से हैं, जिनका पर्यवेक्षण अथवा निष्पादन प्रायः सरकारों अथवा कंपनियों द्वारा किया जाता है। राज्य और संघ विधान ने परिवहन, दूरसंचार, ऊर्जा और जलापूर्ति जैसी सेवाओं के विपणन के पर्यवेक्षण और नियंत्रण के लिए निगमों की स्थापना की है। स्वास्थ्य की देखभाल, अभियांत्रिकी, विधि और प्रबंधन व्यावसायिक सेवाएँ हैं। मनोरंजनात्मक और प्रमोद सेवाओं की स्थिति बाज़ार पर निर्भर करती है। मल्टीप्लेक्स और रेस्तराओं की स्थिति केंद्रीय व्यापार क्षेत्र (सी.बी.डी.) के अंदर अथवा निकट हो सकती है जबकि गोल्फ कोर्स ऐसे स्थान पर बनाया जाएगा जहाँ भूमि की लागत सी.बी.डी. की अपेक्षा कम होगी।

दैनिक जीवन में काम को सुविधाजनक बनाने के लिए लोगों को व्यक्तिगत सेवाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं। कामगार रोज़गार की तलाश में ग्रामीण क्षेत्रों से प्रवास करते हैं और अकुशल होते हैं। वे मोची, गृहपाल, खानसामा और माली जैसी घरेलू सेवाओं के लिए नियुक्त किए जाते हैं और इन्हें कम भुगतान किया जाता है। कर्मियों का यह वर्ग असंगठित है। ऐसा एक उदाहरण मुंबई की डब्बावाला सेवा है जो पूरे नगर में लगभग 1,75,000 उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराई जाती है।

तृतीयक क्रियाकलापों में संलग्न लोग

आज अधिकांश लोग सेवाकर्मी हैं। सेवाएँ सभी समाजों में उपलब्ध होती हैं। अधिक विकसित देशों में कर्मियों का अधिकतर प्रतिशत इन सेवाओं में लगा है, जबकि अल्पविकसित देशों में 10 प्रतिशत से भी कम लोग इस सेवा क्षेत्र में लगे हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में 75 प्रतिशत से अधिक

कर्मी सेवाओं में संलग्न हैं। इस सेक्टर में रोज़गार की प्रवृत्ति बढ़ रही है, जबकि प्राथमिक और द्वितीयक क्रियाकलापों में यह अपरिवर्तित है अथवा घट रही है।

कुछ चयनित उदाहरण

पर्यटन

पर्यटन एक यात्रा है जो व्यापार की बजाय प्रमोद के उद्देश्यों के लिए की जाती है। कुल पंजीकृत रोज़गारों तथा कुल राजस्व (सकल घरेलू उत्पाद का 40 प्रतिशत) की दृष्टि से यह विश्व का अकेला सबसे बड़ा (25 करोड़) तृतीयक क्रियाकलाप बन गया है। इनके अतिरिक्त पर्यटकों के आवास, भोजन, परिवहन, मनोरंजन तथा विशेष दुकानों जैसी सेवा उपलब्ध कराने के लिए अनेक स्थानीय व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता है। पर्यटन अवसंरचना उद्योगों, फुटकर व्यापार तथा शिल्प उद्योगों (स्मारिका) को पोषित करता है। कुछ प्रदेशों में पर्यटन ऋतुनिष्ठ होता है क्योंकि अवकाश की अवधि अनुकूल मौसमी दशाओं पर निर्भर करती है, किंतु कई प्रदेश वर्षपर्यंत पर्यटकों को आकर्षित करते हैं।

पर्यटक प्रदेश

भूमध्यसागरीय तट के चारों ओर कोष्ण स्थान तथा भारत का पश्चिमी तट विश्व के लोकप्रिय पर्यटक गंतव्य स्थानों में से हैं। अन्य में शीतकालीन खेल प्रदेश, जो मुख्यतः पर्वतीय क्षेत्रों में पाए जाते हैं, मनोहारी दृश्यभूमियाँ तथा यत्र-तत्र फैले राष्ट्रीय उद्यान सम्मिलित हैं। स्मारकों, विरासत स्थलों और सांस्कृतिक गतिविधियों के कारण ऐतिहासिक नगर भी पर्यटकों को आकर्षित करते हैं।

पर्यटन को प्रभावित करने वाले कारक

माँग : विगत शताब्दी से अवकाश के लिए माँग तीव्रता से बढ़ी है। जीवन स्तर में सुधार तथा बढ़े हुए फुरसत के समय के कारण अधिक लोग विश्राम के लिए अवकाश पर जाते हैं।

परिवहन : परिवहन सुविधाओं में सुधार के साथ पर्यटन

क्षेत्रों का आरंभ हुआ है। बेहतर सड़क प्रणालियों में कार द्वारा यात्रा सुगम होती है। हाल के वर्षों में वायु परिवहन का विस्तार अधिक महत्त्वपूर्ण रहा। उदाहरणतः वायु-यात्रा द्वारा कुछ ही घंटों में अपने घरों से विश्व में कहीं भी जाया जा सकता है। पैकेज अवकाश के प्रारंभ ने लागत घटा दी है।

पर्यटन आकर्षण

जलवायु : ठंडे प्रदेशों के अधिकांश लोग पुलिन विश्राम के लिए ऊष्ण व धूपदार मौसम की अपेक्षा करते हैं। दक्षिणी यूरोप और भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में पर्यटन के महत्त्व का यह एक मुख्य कारण है। अवकाश के शीर्ष मौसम में यूरोप के अन्य भागों की अपेक्षा भूमध्यसागरीय जलवायु में लगभग सतत ऊँचा तापमान, धूप की लंबी अवधि और निम्न वर्षा की दशाएँ होती हैं। शीतकालीन अवकाश का आनंद लेने वाले लोगों की विशिष्ट जलवायवी ज़रूरतें होती हैं, जैसे या तो अपनी गृह-क्षेत्रों की तुलना में ऊँचे तापमान अथवा स्कींग के लिए अनुकूल हिमावरण।

भू-दृश्य : कई लोग आकर्षित करने वाले पर्यावरण में अवकाश बिताना पसंद करते हैं, जिसका प्रायः अर्थ होता है पर्वत, झीलें, दर्शनीय समुद्री तट और मनुष्य द्वारा पूर्ण रूप से अपरिवर्तित भू-दृश्य।

इतिहास एवं कला : किसी क्षेत्र के इतिहास और कला में संभावित आकर्षण होता है। लोग प्राचीन और सुंदर नगरों, पुरातत्व के स्थानों पर जाते हैं और किलों, महलों और गिरिजाघरों को देखकर आनंद उठाते हैं।

संस्कृति और अर्थव्यवस्था मानवजातीय और स्थानीय

रीतियों को पसंद करने वालों को पर्यटन लुभाता है। यदि कोई प्रदेश पर्यटकों की ज़रूरतों को सस्ते दाम में पूरा करता है तो वह अत्यंत लोकप्रिय हो जाता है। 'घरों में रुकना' एक लाभदायक व्यापार बन कर उभरा है जैसे कि गोवा में हेरीटेज़ होम्स तथा कर्नाटक में मैडीकेरे और कूर्ग।

भारत में समुद्रपार रोगियों के लिए स्वास्थ्य सेवाएँ

2005 ई. में संयुक्त राज्य अमेरिका से उपचार के लिए 55,000 रोगी भारत आए। संयुक्त राज्य स्वास्थ्य सेवा तंत्र के अंतर्गत प्रतिवर्ष होने वाले लाखों शल्यकर्मों की तुलना में यह संख्या बहुत कम है। भारत विश्व में चिकित्सा पर्यटन में अग्रणी देश बन कर उभरा है। महानगरों में अवस्थित विश्वस्तरीय अस्पताल संपूर्ण विश्व के रोगियों का उपचार करते हैं। भारत, थाईलैंड, सिंगापुर और मलेशिया जैसे विकासशील देशों को चिकित्सा पर्यटन से अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। चिकित्सा पर्यटन के अतिरिक्त चिकित्सा परीक्षणों और आँकड़े के निर्वचन के बाह्यस्रोतन के प्रति भी झुकाव पाया जाता है। भारत, स्विटज़रलैंड और आस्ट्रेलिया के अस्पताल विकिरण बिंबों के अध्ययन से लेकर चुंबकीय अनुनाद बिंबों के निर्वचन और पराश्राव्य परीक्षणों तक की विशिष्ट चिकित्सा सुविधाओं को उपलब्ध करा रहे हैं। बाह्यस्रोतन में, यदि यह गुणवत्ता में सुधार करने अथवा विशिष्ट सेवाएँ उपलब्ध कराने पर केंद्रित है, तो बाह्यस्रोतन रोगियों के लिए अत्यधिक लाभ होता है।

चिकित्सा पर्यटन

जब चिकित्सा उपचार को अंतर्राष्ट्रीय पर्यटन गतिविधि से संबद्ध कर दिया जाता है तो इसे सामान्यतः चिकित्सा पर्यटन कहा जाता है।

चतुर्थ क्रियाकलाप

कोपनहैगन और न्यूयार्क में एक बहुराष्ट्रीय कंपनी के मुख्य कार्यकारी अधिकारी तथा चिकित्सकीय प्रतिलेखक (मेडिकल ट्रांसक्रिप्शनिस्ट) के बीच क्या समानता है? ये सभी लोग सेवा सेक्टर के उस प्रभाग में कार्य

करते हैं जो ज्ञानोन्मुखी है। इस सेक्टर को चतुर्थ और पंचम क्रियाकलापों में विभक्त किया जा सकता है।

चतुर्थ क्रियाकलापों में से कुछ निम्नलिखित हैं सूचना का संग्रहण, उत्पादन और प्रकीर्णन अथवा सूचना का उत्पादन भी। चतुर्थ क्रियाकलाप अनुसंधान और विकास पर केंद्रित होते हैं और विशिष्टीकृत ज्ञान प्रौद्योगिक कुशलता और प्रशासकीय सामर्थ्य से संबद्ध सेवाओं के उन्नत नमूने के रूप में देखे जाते हैं।

चतुर्थ सेक्टर

आर्थिक वृद्धि के आधार के रूप में तृतीयक सेक्टर के साथ चतुर्थ सेक्टर ने सभी प्राथमिक व द्वितीयक से रोज़गारों को प्रतिस्थापित कर दिया है। विकसित अर्थव्यवस्थाओं में आधे से अधिक कर्मी ज्ञान के इस क्षेत्र में कार्यरत हैं तथा पारस्परिक कोष (म्यूचुअल फंड) प्रबंधकों से लेकर कर परामर्शदाताओं, सॉफ्टवेयर सेवाओं की माँग में अति उच्च वृद्धि हुई है। कार्यालय भवनों, प्रारंभिक विद्यालयों, विश्वविद्यालयी कक्षाओं, अस्पतालों व डॉक्टरों के कार्यालयों, रंगमचों, लेखाकार्य और दलाली की फर्मों में काम करने वाले कर्मचारी इस वर्ग की सेवाओं से संबंध रखते हैं।

पंचम क्रियाकलाप

उच्चतम स्तर के निर्णय लेने तथा नीतियों का निर्माण करने वाले पंचम क्रियाकलापों को निभाते हैं। इनमें और ज्ञान आधारित उद्योगों, जो सामान्यतः चतुर्थ सेक्टर से जुड़ी होती हैं, में सूक्ष्म अंतर होता है।

पंचम क्रियाकलाप वे सेवाएँ हैं जो नवीन एवं वर्तमान विचारों की रचना, उनके पुनर्गठन और व्याख्या; आँकड़ों की व्याख्या और प्रयोग तथा नई प्रौद्योगिकी के मूल्यांकन पर केंद्रित होती हैं। प्रायः 'स्वर्ण कॉलर' कहे जाने वाले ये व्यवसाय तृतीयक सेक्टर का एक और उप-विभाग हैं जो वरिष्ठ व्यावसायिक कार्यकारियों, सरकारी अधिकारियों, अनुसंधान वैज्ञानिकों, वित्त एवं विधि परामर्शदाताओं इत्यादि की विशेष और उच्च वेतन वाली कुशलताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की संरचना में उनका महत्त्व उनकी संख्या से कहीं अधिक होता है।

बाह्यस्रोतन के परिणामस्वरूप भारत चीन, पूर्वी यूरोप, इस्त्रायल, फिलीपींस और कोस्टारिका में बड़ी संख्या में काल सेंटर खुले हैं। इससे इन देशों में नए काम उत्पन्न हुए हैं। बाह्यस्रोतन उन देशों में आ रहा है जहाँ सस्ता और कुशल श्रम उपलब्ध है। ये उत्प्रवास वाले देश भी हैं। बाह्यस्रोतन के द्वारा काम उपलब्ध होने पर इन देशों से प्रवास कम हो सकता है। बाह्यस्त्रोतन वाले देश अपने यहाँ काम तलाश कर रहे युवकों का प्रतिरोध झेल रहे हैं। बाह्यस्त्रोतन के बने रहने का मुख्य कारण तुलनात्मक लाभ है। पंचक सेवाओं की नवीन प्रवृत्तियों में ज्ञान प्रक्रमण बाह्यस्रोतन (के. पी.ओ.) और 'होम शोरिंग' है, जो बाह्यस्त्रोतन का विकल्प है। ज्ञान प्रकरण बाह्यस्त्रोतन उद्योग व्यवसाय प्रक्रमण बाह्यस्रोतन (बी.पी. ओ.) से भिन्न है क्योंकि इसमें उच्च कुशलकर्मी सम्मिलित होते हैं। यह सूचना प्रेरित ज्ञान की बाह्यस्त्रोतन है। ज्ञान प्रकरण बाह्यस्त्रोतन कंपनियों को अतिरिक्त व्यावसायिक अवसरों को उत्पन्न करने में सक्षम बनाता है। ज्ञान प्रकरण बाह्यस्त्रोतन के उदाहरणों में अनुसंधान और विकास क्रियाएँ, ई. लर्निंग, व्यवसाय अनुसंधान, बौद्धिक संपदा, अनुसंधान, कानूनी व्यवसाय और बैंकिंग सेक्टर आते हैं।

बाह्यस्त्रोतन

बाह्यस्त्रोतन अथवा ठेका देना दक्षता को सुधारने और लागतों को घटाने के लिए किसी बाहरी अभिकरण को काम सौंपना है। जब बाह्यस्त्रोतन में कार्य समुद्रपार के स्थानों पर स्थानांतरित कर दिया जाता है तो इसको अपतरन (आफशोरिंग) कहा जाता है, यद्यपि दोनों अपतरन और बाह्यस्त्रोतन का प्रयोग इकट्ठा किया जाता है। जिन व्यापारिक क्रियाकलापों को बाह्यस्त्रोतन किया जाता है उनमें सूचना प्रौद्योगिकी, मानव संसाधन, ग्राहक सहायता और काल सेंटर सेवाएँ और कई बार विनिर्माण तथा अभियांत्रिकी भी सम्मिलित की जाती हैं।

आँकड़ा प्रक्रमण सूचना प्रौद्योगिकी से संबंधित एक सेवा है जिसे आसानी से एशियाई, पूर्वी यूरोपीय और अफ्रीकी देशों में क्रियान्वित किया जा सकता है। इन देशों में विकसित देशों की अपेक्षा कम पारिश्रमिक पर अंग्रेज़ी भाषा में अच्छी निपुणता वाले सूचना प्रौद्योगिकी में कुशल कर्मचारी उपलब्ध हो जाता है। अतः हैदराबाद अथवा मनीला में स्थापित एक कंपनी भौगोलिक सूचना तंत्र की तकनीक पर आधारित परियोजना पर संयुक्त राज्य अमेरिका अथवा जापान जैसे देशों के लिए काम करती है। श्रम संबंधी कार्यों को समुद्रपार क्रियान्वित करने से, चाहे वह भारत, चीन और यहाँ तक कि अफ्रीका का कम सघन जनसंख्या वाला देश बोत्सवाना हो, ऊपरी लागत बहुत कम होती है, जिससे यह सेवा लाभदायक हो जाती है।

अंकीय विभाजक

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी पर आधारित विकास से मिलने वाले अवसरों का वितरण पूरे ग्लोब पर असमान रूप से वितरित है। देशों में विस्तृत आर्थिक राजनीतिक और सामाजिक भिन्नताएँ पाई जाती हैं। निर्णायक कारक यह है कि कोई देश कितनी शीघ्रता से अपने नागरिकों को सूचना और संचार प्रौद्योगिकी तक पहुँच और उसके लाभ उपलब्ध करा सकता है। विकसित देश, सामान्य रूप से, इस दिशा में आगे बढ़ गए हैं जबकि विकासशील देश पिछड़ गए हैं और इसी को अंकीय विभाजक कहा जाता है। इसी प्रकार देशों के भीतर अंकीय विभाजक विद्यमान है। उदाहरणतः भारत अथवा रूस जैसे विशाल देश में यह अवश्यंभावी है कि महानगरीय केंद्रों जैसे निश्चित क्षेत्रों में परिधिस्थ ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में अंकीय विश्व के साथ बेहतर संबंध तथा पहुँच पाई जाती है।

परिवहन एवं संचार

प्राकृतिक संसाधनों, आर्थिक क्रियाकलापों और बाज़ार का किसी एक ही स्थान पर पाया जाना दुर्लभ होता है। परिवहन, संचार एवं व्यापार, उत्पादन केंद्रों और उपभोग केंद्रों को जोड़ते हैं। विशाल उत्पादन और विनिमय की प्रणाली अत्यंत जटिल होती है। प्रत्येक प्रदेश उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करता है, जिसके लिए वहाँ आदर्श दशाएँ उपलब्ध होती हैं। ऐसी वस्तुओं का व्यापार एवं विनिमय परिवहन और संचार पर निर्भर करता है। इसी प्रकार जीवन का स्तर व जीवन की गुणवत्ता भी दक्ष परिवहन, संचार एवं व्यापार पर निर्भर करते हैं। प्रारंभिक अवस्था में परिवहन और संचार के साधन एक ही थे। परंतु आज दोनों ने सुस्पष्ट और विशेषीकृत स्वरूप प्राप्त कर लिया है। परिवहन योजक और वाहक उपलब्ध कराता है जिनके माध्यम से व्यापार संभव होता है।

परिवहन

परिवहन व्यक्तियों और वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक वहन करने की सेवा या सुविधा को कहते हैं जिसमें मनुष्यों, पशुओं तथा विभिन्न प्रकार की गाड़ियों का प्रयोग किया जाता है। ऐसा गमनागमन स्थल, जल एवं वायु में होता है। सड़कें और रेलमार्ग स्थलीय परिवहन का भाग हैं, जबकि नौपरिवहन तथा जलमार्ग एवं वायुमार्ग परिवहन के अन्य दो प्रकार हैं। पाइपलाइनें पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस और तरल अवस्था में अयस्कों जैसे पदार्थों का परिवहन करती हैं।

इसके अतिरिक्त परिवहन समाज की आधारभूत आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए रचा गया एक संगठित सेवा उद्योग है। इसके अंतर्गत परिवहन मार्गों, लोगों और वस्तुओं के वहन हेतु गाड़ियों, मार्गों के रख-रखाव और लदान, उतराव तथा वितरण का निपटान करने के लिए संस्थाओं का समावेश किया जाता है। प्रत्येक देश ने प्रतिरक्षा उद्देश्यों के लिए विभिन्न प्रकार से परिवहन का विकास किया है। दक्ष संचार व्यवस्था से युक्त आश्वासित एवं तीव्रगामी परिवहन प्रकीर्ण लोगों के बीच सहयोग एवं एकता को प्रोन्नत करता है।

परिवहन जाल क्या होता है?

अनेक स्थान जिन्हें परस्पर मार्गों की श्रेणियों द्वारा जोड़ दिए जाने पर जिस प्रारूप का निर्माण होता है उसे परिवहन जाल कहते हैं।

परिवहन की विधाएँ

विश्व परिवहन की प्रमुख विधाएँ, जैसा कि पहले बताया जा चुका है- स्थल, जल, वायु और पाइपलाइन हैं। इनका प्रयोग अंतर्प्रादेशिक तथा अंतरा प्रादेशिक परिवहन के लिए किया जाता है और पाइपलाइन को छोड़कर प्रत्येक यात्रियों और माल दोनों का वहन करता है।

किसी विधा की सार्थकता परिवहित की जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं के प्रकार, परिवहन की लागतों और उपलब्ध विधा पर निर्भर करती है। वस्तुओं के अंतर्राष्ट्रीय संचलन का निपटान भारवाही जलयानों द्वारा किया जाता है। कम दूरी एवं एक घर से दूसरे घर की सेवाएँ प्रदान करने में सड़क परिवहन सस्ता एवं तीव्रगामी है। किसी देश के भीतर स्थूल पदार्थों के विशाल परिमाण को लंबी दूरियों तक परिवहन करने के लिए रेल सर्वाधिक अनुकूल साधन है। उच्च मूल्य वाली, हल्की तथा नाशवान वस्तुओं का वायुमार्गों द्वारा परिवहन सर्वश्रेष्ठ होता है। परिवहन हेतु वायु यातायात अच्छी विधि है। एक सुप्रबंधित परिवहन तंत्र में ये विभिन्न विधाएँ एक दूसरे की पूरक होती हैं।

सड़क परिवहन

अधिकांश वस्तुओं एवं सेवाओं का अधिकांश संचलन स्थल पर होता है। आरंभिक दिनों में मानव स्वयं वाहक थे। क्या आपने कभी किसी दुल्हन को डोली/पालकी से चार व्यक्तियों (उत्तरी भारत में कहार) द्वारा ले जाते हुए देखा है? बाद के वर्षों में पशुओं का उपयोग बोझा ढोने के लिए किया जाने लगा। क्या आपने कभी खच्चरों, घोड़ों और ऊँटों को ग्रामीण क्षेत्रों में सामान ढोते हुए देखा है? पहिए के आविष्कार के साथ गाड़ियों और माल डिब्बों का प्रयोग महत्त्वपूर्ण हो गया। परिवहन में क्राति अठारहवीं शताब्दी में भाप के इंजन के आविष्कार के बाद आई। संभवतः प्रथम सार्वजनिक रेलमार्ग 1825 में उत्तरी इंग्लैंड के स्टॉकटन और डर्लिंग्टन स्थानों के मध्य प्रारंभ हुआ और उसके बाद से ही रेलमार्ग 19वीं शताब्दी में परिवहन के सर्वाधिक लोकप्रिय और तीव्रतम प्रकार बन गए। रेलमार्गों ने संयुक्त राज्य अमेरिका के आंतरिक महाद्वीपीय क्षेत्रों को वाणिज्यिक अन्न कृषि, खनन और विनिर्माण के लिए खोल दिया। अंतर्दहन इंजन के आविष्कार ने सड़कों की गुणवत्ता और उन पर चलने वाले वाहनों (कार, ट्रक इत्यादि) के संदर्भ में सड़क परिवहन में क्रांति ला दी। स्थल परिवहन के अंतर्गत नवीनतम विकास के रूप में पाइपलाइनों, राजमार्गों एवं तारमार्गों को रखा जाता है। तरल पदार्थ जैसे - खनिज तेल, जल, अवमल और नाली मल का परिवहन पाइपलाइनों द्वारा किया जाता है। रेलमार्ग, समुद्री पोत, बजरे, नौकाएँ, मोटर ट्रक और पाइपलाइनें बड़े मालवाहक हैं।

सामान्यतः मानव कुली, बोझा ढोने वाले पशु, गाड़ियाँ अथवा माल डिब्बे जैसे पुराने और प्रारंभिक रूप परिवहन के सर्वाधिक खर्चीले साधन हैं, जबकि बड़े मालवाही सस्ते पड़ते हैं। विशाल देशों के आंतरिक भागों में पाए जाने वाले आधुनिक जलमार्गों और वाहकों को संपूरकता प्रदान करने में इनका बहुत महत्त्व है। भारत और चीन के सघन बसे जिलों में आज भी मानव कुलियों और मनुष्य द्वारा खींची जाने वाली गाड़ियों से होने वाले स्थल परिवहन का प्रचलन है।

बोझा ढोने वाले पशु

घोड़ों का प्रयोग पश्चिमी देशों में भी भारवाही पशुओं के रूप में किया जाता है। कुत्तों एवं रेडियरों का प्रयोग उत्तरी अमेरिका, उत्तरी यूरोप और साइबेरिया के हिमाच्छादित मैदानों में स्लेज को खींचने के लिए किया जाता है। पर्वतीय प्रदेशों में खच्चरों को वरीयता दी जाती है जबकि ऊँटों

का प्रयोग मरुस्थलीय क्षेत्रों में कारवाओं के संचालन में किया जाता है। भारत में बैलों का प्रयोग छकड़ों को खींचने में किया जाता है।

सड़कें

छोटी दूरियों के लिए सड़क परिवहन रेल परिवहन की अपेक्षा आर्थिक दृष्टि से लाभदायक होता है। सड़कों द्वारा माल का परिवहन महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है क्योंकि इसके द्वारा घर-घर तक वस्तुओं को पहुँचाया जा सकता है। कच्ची सड़कें, यद्यपि निर्माण की दृष्टि से सरल होती हैं, सभी ऋतुओं में प्रभावी व प्रयोग योग्य नहीं होती हैं। वर्षा ऋतु में इन पर मोटर वाहन नहीं चलाए जा सकते और यहाँ तक कि पक्की सड़कें भी अत्यधिक भारी वर्षा एवं बाढ़ के समय गंभीर रूप से प्रभावित हो जाती हैं। ऐसी परिस्थितियों में रेल मार्गों के साथ ऊँचा भराव और रेल परिवहन सेवाओं का रख-रखाव एक प्रभावी समाधान है। किंतु रेलमार्ग छोटे होने के कारण विशाल और विकासशील देशों की आवश्यकताओं को कम लागत पर पूरा नहीं कर पाते। इस प्रकार सड़कें किसी भी देश के व्यापार और वाणिज्य को विकसित करने एवं पर्यटन को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

विकसित एवं विकासशील देशों में सड़कों की गुणवत्ता में पर्याप्त अंतर पाया जाता है क्योंकि सड़कों के निर्माण व उनके रख-रखाव पर भारी खर्च आता है। विकसित देशों में अच्छी गुणवत्ता वाली सड़कें सर्वत्र पायी जाती हैं और तीव्रगामी संचलन के लिए मोटर मार्गों, आटोवाहन (जर्मनी) और अंतर-राज्यीय राजमार्गों के द्वारा लंबी दूरियों को जोड़ती है। भारी बोझ को ढोने वाली बड़े आकार और शक्ति वाली लारियाँ एक सामान्य बात है। परंतु दुर्भाग्य से विश्व का सड़क तंत्र भली प्रकार विकसित नहीं हो पाया।

विश्व की कुल मोटर वाहन चलाने योग्य सड़कों की लंबाई मात्र 150 लाख किलोमीटर है, जिसका 33 प्रतिशत भाग उत्तरी अमेरिका में पाया जाता है। सर्वाधिक सड़क घनत्व और सबसे अधिक वाहनों की संख्या पश्चिमी यूरोप की तुलना में इस महाद्वीप में पाए जाते हैं। यह तथ्य इस बात की ओर संकेत करते हैं कि विश्व में सड़कों के विकास में प्रादेशिक, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय एवं महाद्वीपीय स्तर पर समानता के स्थान पर असमान वितरण पाया जाता है।

यातायात प्रवाहः पिछले कुछ वर्षों में सड़कों पर यातायात में नाटकीय वृद्धि हुई है। जब सड़क तंत्र यातायात की ज़रूरतों के अनुरूप विकसित न हो पाए तो सड़कों पर संकुलन बढ़ जाता है। नगरों की सड़कों पर दीर्घकालीन संकुलता पाई जाती है। यातायात के शीर्ष (उच्चबिंदु) और गर्त (निम्नबिंदु) सड़कों पर दिन के विशेष समय पर देखे जा सकते हैं, उदाहरण : काम के समय से पहले और बाद में। विश्व के अधिकांश नगर सड़कों पर पाई जाने वाली यातायात संकुलता की समस्या का सामना कर रहे हैं।

महामार्ग

महामार्ग दूरस्थ स्थानों को जोड़ने वाली पक्की सड़कें होती हैं इनका निर्माण इस प्रकार से किया जाता है कि अबाधित रूप से यातायात का आवागमन हो सके। यातायात के अबाधित प्रवाह की सुविधा के लिए अलग-अलग यातायात लेन, पुलों, फ्लाईओवरों और दोहरे वाहन मार्गों से युक्त ये 80 मीटर चौड़ी सड़कें होती हैं। विकसित देशों में प्रत्येक नगर और पत्तन नगर महामार्गों द्वारा जुड़े हुए हैं।

अमेरिका में महामार्गों का घनत्व उच्च है जो लगभग 0.65 कि.मी. प्रतिवर्ग कि.मी. है। प्रत्येक स्थान महामार्ग से 20 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। पश्चिमी प्रशांत महासागरीय तट पर स्थित नगर पूर्व में अटलांटिक महासागरीय तट पर स्थित नगरों से भली भाँति जुड़े हुए हैं। इसी प्रकार उत्तर में कनाडा के नगर दक्षिण में मैक्सिको के नगरों से जुड़े हैं। ट्रांस-कनाडियन महामार्ग पश्चिमी तट पर स्थित ब्रिटिश कोलंबिया प्रांत के वैंकूवर स्थान को पूर्वी तट पर स्थित न्यूफाउंडलैंड प्रांत के सेंटजॉन नगर से जोड़ता है तथा अलास्का राजमार्ग कनाडा के एडमंटन को अलास्का के एंकॉरेज से जोड़ता है।

निर्माणाधीन पान-अमेरिकन महामार्ग जिसके अधिकांश भाग का निर्माण किया जा चुका है, के द्वारा दक्षिणी अमेरिका मध्य अमेरिका के देश और संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा भी आपस में जुड़ जाएँगे।

यूरोप में वाहनों की बहुत विशाल संख्या तथा महामार्गों का सुविकसित जाल पाया जाता है। परंतु महामार्गों को रेलमार्गों एवं जलमार्गों के साथ कड़ी प्रतिद्वंद्विता का सामना करना पड़ता है।

रूस में यूराल के पश्चिम में स्थित औद्योगिक प्रदेश में महामार्गों के अत्यधिक सघन जाल का विकास हुआ है, जिसकी धुरी मास्को है। महत्त्वपूर्ण मास्को-ब्लाडीवोस्टक महामार्ग पूर्व में स्थित प्रदेश की सेवा करता है। अत्यधिक विस्तृत भौगोलिक क्षेत्रफल के कारण रूस में महामार्ग इतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जितने रेलमार्ग।

चीन में महामार्ग प्रमुख नगरों को जोड़ते हुए देश में क्रिस-क्रॉस करते हैं। उदाहरणः ये शांसो (वियतनाम सीमा के समीप) शंघाई (मध्य चीन) ग्वांगजाओं (दक्षिण) एवं बीजिंग उत्तर को परस्पर जोड़ते हैं। एक नवीन महामार्ग तिब्बती क्षेत्र में चेगडू को ल्हासा से जोड़ता है।

भारत में अनेक महामार्ग पाए जाते हैं जो प्रमुख शहरों और नगरों को जोड़ते हैं। उदाहरणस्वरूप राष्ट्रीय महामार्ग संख्या 7 जो वाराणसी को कन्याकुमारी से जोड़ता है, देश का सबसे लंबा राष्ट्रीय महामार्ग है। निर्माणाधीन स्वर्णिम चतुर्भुज अथवा द्रुतमार्गों के द्वारा प्रमुख महानगरों नयी दिल्ली, मुंबई, बैंगलोर, चेन्नई, कोलकाता तथा हैदराबाद को जोड़ने की योजना है।

अफ्रीका में एक महामार्ग उत्तर में स्थित अल्जियर्स को गुयाना के कोनाक्री से जोड़ता है। इसी प्रकार कैरो केपटाउन से जुड़ा हुआ है।

सीमावर्ती सड़कें

अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं के सहारे बनाई गई सड़कों को सीमावर्ती - सड़कें कहा जाता है। ये सड़कें सुदूर क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को प्रमुख नगरों से जोड़ने और प्रतिरक्षा प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण - भूमिका निभाती हैं। प्रायः सभी देशों में गाँवों एवं सैन्य शिविरों - तक वस्तुओं को पहुँचाने के लिए ऐसी सड़कें पाई जाती हैं।

रेलमार्ग

रेलमार्ग लंबी दूरी तक स्थूल वस्तुओं और यात्रियों के स्थल - परिवहन की विद्या है। रेल लाइनों की चौड़ाई (गेज) प्रत्येक देश में अलग-अलग पाई जाती है जिन्हें सामान्यतया बड़ी (1. 5 मीटर से अधिक), मानक (1.44 मीटर), मीटर लाइन (1 मीटर) और छोटी लाइन में वर्गीकृत किया जाता है। मानक लाइन का उपयोग ब्रिटेन में किया जाता है।

दैनिक आवागमन की रेलें, ब्रिटेन, सं. रा. अमेरिका, जापान और भारत में अत्यधिक लोकप्रिय हैं। ये दैनिक गाड़ियाँ नगरों में प्रतिदिन लाखों यात्रियों को ले जाती और ले आती हैं। विश्व में लगभग 13 लाख कि.मी. लंबे रेल यातायात मार्ग हैं।

यूरोप में विश्व का सघनतम रेल तंत्र पाया जाता है। यहाँ रेलमार्ग लगभग 4 लाख 40 हज़ार कि.मी. लंबे हैं जिनमें से अधिकांश दोहरे अथवा बहुमार्गी हैं बेल्जियम में रेल घनत्व सर्वाधिक अर्थात् प्रति 6.5 वर्ग कि.मी. क्षेत्र पर लगभग 1 किलोमीटर पाया जाता है। औद्योगिक प्रदेश विश्व के कुछ सर्वाधिक घनत्वों का प्रदर्शन करते हैं। लंदन, पेरिस, ब्रुसेल्स, मिलान, बर्लिन और वारसा महत्त्वपूर्ण रेल केंद्र हैं। इंग्लैंड में स्थित यूरो टनल ग्रुप द्वारा प्रचालित सुरंग मार्ग लंदन को पेरिस से जोड़ता है। महाद्वीप पारीय रेलमार्ग, वायुमार्गों और सड़क मार्गों के अपेक्षाकृत लोचदार तंत्रों की तुलना में अपना महत्त्व खोते जा रहे हैं।

यूरोप के पश्चिम में अत्यंत सघन जाल से युक्त रूस में रेलमार्गों के द्वारा देश के कुल परिवहन का लगभग 90 प्रतिशत भाग प्रबंधित होता है। मास्को रेलवे का महत्त्वपूर्ण मुख्यालय है जहाँ देश के विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र के विभिन्न भागों में प्रमुख लाइनें विकिरित होती हैं। मास्को में भूमिगत रेलमार्ग और दैनिक आवागमन की गाड़ियाँ भी महत्त्वपूर्ण हैं।

उत्तरी अमेरिका में सर्वाधिक विस्तृत रेलमार्ग तंत्र हैं, जो विश्व के कुल रेलमार्गों का लगभग 40 प्रतिशत हैं। इसके विपरीत यूरोप के अनेक देशों में रेलमार्गों का प्रयोग यात्री परिवहन की अपेक्षा अधिकतर लंबी दूरी के स्थूल पदार्थों जैसे- अयस्क, अनाज, इमारती लकड़ी तथा मशीनरी आदि के परिवहन हेतु अधिक होता है। सर्वाधिक सघन रेलतंत्र पूर्वी मध्य सं. रा. अमेरिका तथा उससे संलग्न कनाडा के उच्च औद्योगिक एवं नगरीय प्रदेश में पाया जाता है।

कनाडा में रेलमार्ग सार्वजनिक सेक्टर में हैं, और पूरे विरल जनसंख्या वाले क्षेत्रों में वितरित हैं। महाद्वीप पारीय रेलमार्गों के द्वारा गेहूँ एवं कोयले के भार के अधिकांश भाग का परिवहन किया जाता है।

आस्ट्रेलिया में लगभग 40,000 कि.मी. लंबे रेलमार्ग हैं, जिसका 25 प्रतिशत अकेले न्यू साउथ वेल्स में पाया जाता है। पश्चिमी-पूर्वी आस्ट्रेलिया राष्ट्रीय रेलमार्ग पर्थ से सिडनी तक एक छोर से दूसरे छोर तक जाती है। न्यूजीलैंड में रेलमार्ग मुख्यतः उत्तरी द्वीप में पाए जाते हैं। जो कृषि क्षेत्रों को अपनी सेवाएँ प्रदान करते हैं।

दक्षिणी अमेरिका में रेलमार्ग दो प्रदेशों में सघन हैं, जिसके नाम हैं अर्जेंटाइना के पंपास तथा ब्राजील के कॉफी उत्पादक प्रदेश। ये दोनों प्रदेशों में दक्षिणी अमेरिका के कुल रेलमार्गों का 40 प्रतिशत भाग पाया जाता है।

दक्षिणी अमेरिका के शेष देशों में केवल चिली एक मात्र ऐसा देश है जहाँ महत्त्वपूर्ण लंबाई के रेलमार्ग हैं जो तटीय केंद्रों को आंतरिक क्षेत्रों में स्थित खनन स्थलों से जोड़ते हैं। पेरू, बोलीविया, इक्वाडोर, कोलंबिया और वेनेजुएला में छोटे एकल मार्ग वाली रेल लाइनें पाई जाती हैं जो पत्तनों को आंतरिक क्षेत्रों के साथ अंतर जोड़क योजकों के बिना जोड़ते है।

यहाँ केवल एक महाद्वीप पारीय रेलमार्ग है जो एंडीज़ पर्वतों के पार 3900 मीटर की ऊँचाई पर अवस्थित उसप्लाटा दर्रे से गुज़रता हुआ ब्यूनसआयर्स (अर्जेंटीना) को वालपैराइज़ो से मिलाता है।

एशिया में जापान, चीन और भारत के सघन बसे हुए क्षेत्रों में रेलमार्गों का सघनतम घनत्व पाया जाता है। अन्य देशों में अपेक्षाकृत कम रेलमार्ग बने हैं। विस्तृत मरुस्थलों और विरल जनसंख्या के प्रदेशों के कारण रेल सुविधाओं का न्यूनतम विकास हुआ है।

दूसरा विशालतम महाद्वीप होने के बावजूद अफ्रीका में केवल 40,000 कि.मी. लंबे रेलमार्ग हैं जिनमें से सोने, हीरे के सांद्रण और ताँबा खनन क्रियाकलापों के कारण अकेले दक्षिण अफ्रीका में 18,000 कि.मी. लंबे रेलमार्ग हैं।

महाद्वीप के प्रमुख रेलमार्ग हैं: (1) बेंगुएला रेलमार्ग जो अंगोला से कटंगा-जांबिया ताँबे की पेटी से होकर जाता है; (ii) तंजानिया रेलमार्ग जांबिया ताम्र पेटी से तट पर स्थित दार-ए-सलाम तक; (iii) बोसवाना और जिंबाब्वे से होते हुए रेलमार्ग जो स्थलरुद्ध राज्यों को दक्षिण अफ्रीकी रेलतंत्र से जोड़ता है; और (iv) दक्षिण अफ्रीका गणतंत्र में केपटाउन से प्रेटोरिया तक ब्लू ट्रेन।

अन्य स्थनों पर, जैस अल्जीरिया, सेनेगल, नाइजीरिया, केन्या और इथोपिया में रेलमार्ग पत्तन नगरों को आंतरिक केंद्रों से जोड़ते हैं परंतु अन्य देशों के साथ अच्छे रेलतंत्र की रचना नहीं करते।

पारमहाद्वीपीय रेलमार्ग

पारमहाद्वीपीय रेलमार्ग पूरे महाद्वीप से गुज़रते हुए इसके दोनों छोरों को जोड़ते हैं। इनका निर्माण आर्थिक और राजनीतिक कारणों से विभिन्न दिशाओं में लंबी यात्राओं की सुविधा प्रदान करने के लिए किया गया था।

पार-साइबेरियन रेलमार्ग

रूस का यह प्रमुख रेलमार्ग पश्चिम में सेंट पीटर्सबर्ग से पूर्व में प्रशांत महासागर तट पर स्थित व्लाडिवोस्टक तक मास्को, कज़ान, ट्यूमिन, नोवोसिबिस्क, चिता और खबरोवस्क से होता हुआ जाता है (चित्र 8.5)। यह एशिया का सबसे महत्त्वपूर्ण और विश्व का सर्वाधिक लम्बा (9,322 कि.मी.) दोहरे पथ से युक्त विद्युतीकृत पारमहाद्वीपीय रेलमार्ग है। इसने अपने एशियाई प्रदेश को पश्चिमी यूरोपीय बाजारों से जोड़ा है। यह रेलमार्ग यूराल पर्वतों, ओब और येनीसी नदियों से गुज़रता है। चीता एक महत्त्वपूर्ण कृषि केंद्र और इरकुस्टस्क एक फर केंद्र है। इस रेलमार्ग को दक्षिण से जोड़ने वाले योजक मार्ग भी हैं, जैसे ओडेसा (यूक्रेन), कैस्पियन तट पर बालू, ताशकंद (उज्बेकिस्तान), उलन बटोर (मंगोलिया) और रोनयांग (मक्देन) चीन में बीजिंग की ओर।

पार-कैनेडियन रेलमार्ग

कनाडा की यह 7,050 कि.मी. लंबी रेल लाइन पूर्व में हैलिफैक्स से आरंभ होकर मॉंट्रियल, ओटावा, विनिपेग और कलगैरी से होती हुई पश्चिम में प्रशांत तट पर स्थित वैंकूवर तक जाती है (चित्र 8.6)। इसका निर्माण 1886 में मूलरूप से एक संधि के अंतर्गत पश्चिमी तट पर स्थित ब्रिटिश कोलंबिया को राज्यों के संघ में सम्मिलित करने के उद्देश्य से किया गया था। बाद के वर्षों में क्यूबेक मॉंट्रियाल औद्योगिक प्रदेश को प्रेयरी प्रदेश की गेहूँ मेखला और उत्तर में शंकुधारी वन प्रदेश से जोड़ने के कारण इस रेलमार्ग का महत्त्व बढ़ गया। इस प्रकार इन प्रदेशों में से प्रत्येक दूसरे का संपूरक बन गया। विनिपेग से थंडरखाड़ी (सुपीरियर झील) तक एक संवृत मार्ग इस रेल लाइन को विश्व के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण जलमार्गों में से एक से गेहूँ और मांस इस मार्ग द्वारा किए जाने वाले महत्त्वपूर्ण निर्यात हैं। यह लाइन कनाडा की आर्थिक धमनी है।

संघ और प्रशांत रेलमार्ग

यह रेललाइन अटलांटिक तट पर स्थित न्यूयार्क को क्लीवलैंड, शिकागो, ओमाहा, इवांस, ऑग्डन और सैक्रामेंटो से होती हुई प्रशांत तट पर स्थित सान फ्रांसिस्को से मिलाती है। इस मार्ग द्वारा किए जाने वाले सर्वाधिक मूल्यवान निर्यात अयस्क, अनाज, कागज, रसायन और मशीनरी हैं।

आस्ट्रेलियाई पारमहाद्वीपीय रेलमार्ग

यह रेल लाइन पश्चिमी तट पर पर्थ से आरंभ होकर कलगुर्ली, ब्रोकन हिल और पोर्ट ऑगस्ता से होकर पूर्वी तट पर स्थित सिडनी को मिलाते हुए महाद्वीप के दक्षिणी भाग के आर-पार पश्चिम से पूर्व को जाती है।

एक अन्य उत्तर-दक्षिण लाइन एडीलेड और एलिस स्प्रिंग को जोड़ती है और आगे इसे डार्विन-बिरदुम लाइन से जोड़ा जाता है।

ओरिएंट एक्सप्रेस

यह लाइन पेरिस से स्ट्रैस्बर्ग, म्युनिख, विएना, बुडापेस्ट और बेलग्रेड होती हुई इस्तांबूल तक जाती है। इस एक्सप्रेस लाइन द्वारा लंदन से इस्तांबूल तक लगने वाला यात्रा का समय समुद्री मार्ग से लगने वाले 10 दिनों की तुलना में मात्र 96 घंटे रह गया है। इस रेलमार्ग द्वारा होने वाले प्रमुख निर्यात पनीर, सुअर का मांस, जई, शराब, फल और मशीनरी हैं।

इस्तांबूल को बैंकाक, वाया ईरान, पाकिस्तान, भारत, बांग्लादेश और म्यांमार से जोड़ने वाली एशियाई रेलवे के भी निर्माण का प्रस्ताव है।

जल परिवहन

जल परिवहन के महत्त्वपूर्ण लाभों में से एक यह है कि इसमें मार्गों का निर्माण नहीं करना पड़ता। महासागर एक दूसरे से जुड़े हुए होते हैं। इनमें विभिन्न आकार के जहाज चल सकते हैं। आवश्यकता केवल दोनों छोरों पर पत्तन सुविधाएँ प्रदान करने की है। यह परिवहन बहुत सस्ता पड़ता है क्योंकि जल का घर्षण स्थल की अपेक्षा बहुत कम होता है। जल परिवहन की ऊर्जा लागत की अपेक्षाकृत कम होती है। जल परिवहन को समुद्री मार्गों और आंतरिक जल मार्गों में विभक्त किया जाता है।

समुद्री मार्ग

महासागर सभी दिशाओं में मुड़ सकने वाले ऐसे महामार्ग प्रस्तुत करते हैं जिनकी कोई रख-रखाव की लागत नहीं होती। समुद्री जहाज़ों द्वारा महासागरों का मार्गों में रूपांतरण मनुष्य की पर्यावरण के साथ अनुकूलन की महत्त्वपूर्ण घटना है। एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप तक स्थूल पदार्थों का लंबी दूरियों तक समुद्री परिवहन स्थल और वायु परिवहन की अपेक्षा सस्ता पड़ता है। आधुनिक यात्री जहाज़ और मालवाहक पोत राडार, बेतार के तार व अन्य नौपरिवहन संबंधी सुविधाओं से लैस होते हैं। शीघ्र नाशवान वस्तुओं के लिए प्रशीतन कोष्ठक, टैंकरों और विशेषीकृत जहाज़ों ने नौभार के परिवहन को उन्नत बना दिया है। कंटेनरों के प्रयोग ने विश्व की प्रमुख पत्तनों पर नौभार के निपटान को सरल बना दिया है।

महत्त्वपूर्ण समुद्री मार्ग

प्रमुख समुद्री मार्गों को चित्र 8.9 में दर्शाया गया है। निम्नलिखित पृष्ठों में कुछ महत्त्वपूर्ण मार्गों की विवेचना की गई है।

उत्तरी अटलांटिक समुद्री मार्ग

यह मार्ग औद्योगिक दृष्टि से विकसित विश्व के दो प्रदेशों उत्तर-पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका और पश्चिमी यूरोप को मिलाता है। विश्व का एक चौथाई विदेशी व्यापार इस मार्ग द्वारा परिवहित होता है। इसलिए यह विश्व का व्यस्ततम व्यापारिक जलमार्ग है; दूसरे अर्थों में इसे 'वृहद् ट्रंक मार्ग' कहा जाता है। दोनों तटों पर पत्तन और पोताश्रय की उन्नत सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

भूमध्यसागर-हिंदमहासागरीय समुद्री मार्ग

यह समुद्री मार्ग प्राचीन विश्व के हृदय स्थल कहे जाने वाले क्षेत्रों से गुज़रता है और किसी भी अन्य मार्ग की अपेक्षा अधि क देशों और लोगों को सेवाएँ प्रदान करता है। पोर्ट सईद, अदन, मुंबई, कोलंबो और सिंगापुर इस मार्ग की महत्त्वपूर्ण पत्तनों में से कुछ हैं। उत्तमाश अंतरीप से होकर जाने वाले आरंभिक मार्ग की तुलना में स्वेज नहर के निर्माण से दूरी और समय में अत्यधिक कमी हो गई है।

यह व्यापारिक मार्ग अत्यधिक औद्योगिक पश्चिम यूरोपीय प्रदेश को पश्चिमी अफ्रीका, दक्षिण अफ्रीका, दक्षिण-पूर्वी एशिया और आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड की वाणिज्यिक कृषि तथा पशुपालन आधारित अर्थव्यवस्थाओं से जोड़ता है। स्वेज नहर के निर्माण से पहले यह मार्ग लिवरपुल और कोलंबो को जोड़ता था जो स्वेज नहर मार्ग से 6,400 कि.मी. लंबा था। सोना, हीरे, ताँबा, टिन, मूँगफली, गिरी का तेल, कहवा और फलों जैसे समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों के कारण दोनों पूर्वी और पश्चिमी अफ्रीका के बीच व्यापार की मात्रा और यातायात में वृद्धि हो रही है।

उत्तमाशा अंतरीप समुद्री मार्ग

अटलांटिक महासागर के पार यह एक अन्य महत्त्वपूर्ण समुद्री मार्ग है जो पश्चिमी यूरोपीय और पश्चिमी अफ्रीकी देशों को दक्षिण अमेरिका में ब्राजील, अर्जेंटीना और उरुग्वे से मिलाता है। इस मार्ग पर यातायात उत्तरी अटलांटिक मार्ग की तुलना में दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका के सीमित विकास और कम जनसंख्या के कारण बहुत कम है। केवल दक्षिण-पूर्वी ब्राज़ील, प्लाटा ज्वारनदमुख और दक्षिण अफ्रीका के कुछ भागों में बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण हुआ है। रायो-डि-जैनिरो और केपटाउन के बीच मार्ग पर भी यातायात बहुत कम है क्योंकि दोनों दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका में एक जैसे उत्पाद और संसाधन हैं।

विस्तृत उत्तरी प्रशांत महासागर के आर-पार व्यापार अनेक मार्गों द्वारा संचालित होता है जो होनोलूलू में मिलते हैं। वृहत् वृत पर स्थित सीधा मार्ग वैंकूवर और याकोहामा को जोड़ता है और यात्रा की दूरी को कम करके (2,480 कि.मी.) आधा कर देता है।

उत्तरी प्रशांत समुद्री मार्ग

यह समुद्री मार्ग उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट पर स्थित पत्तनों को एशिया के पत्तनों से जोड़ता है, ये हैं वैंकूवर, सीएटल, पोर्टलैंड, सान फ्रांसिस्को (अमेरिका की ओर) और याकोहामा, कोबे, शंघाई, हांग कांग, मनीला और सिंगापुर (एशिया की ओर)।

दक्षिणी प्रशांत समुद्री मार्ग

यह समुद्री मार्ग पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका को आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और पनामा नहर से होते हुए प्रशांत महासागर में प्रकीर्णित द्वीपों से मिलता है। इस मार्ग का प्रयोग हांगकांग, फ़िलीपींस और इंडोनेशिया पहुँचने के लिए किया जाता है। पनामा और सिडनी के बीच तय की गई दूरी 12,000 कि.मी. है। होनोलूलू इस मार्ग पर महत्त्वपूर्ण पत्तन है।

तटीय नौ परिवहन

यह स्पष्ट है कि जल परिवहन एक सस्ता साधन है। जबकि सामुद्रिक मार्ग विभिन्न देशों को जोड़ने का कार्य करते हैं, तटवर्ती नौ परिवहन लंबी तटरेखा वाले देशों के लिए एक सुगम विधि है उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन और भारत। यूरोप में शेनगेन देशों की स्थिति तटीय नौ परिवहन की दृष्टि से उपयुक्त है, जो एक सदस्य देश के तट को दूसरे सदस्य देश के तट से जोड़ता है। यदि तटवर्ती नौ परिवहन का भली प्रकार से विकास किया जाए तो इसके द्वारा स्थलमार्गों पर होने वाली यातायात भीड़ को कम किया जा सकता है।

नौ परिवहन नहरें

स्वेज और पनामा दो ऐसी महत्त्वपूर्ण मनुष्य निर्मित नौ वाहन नहरें अथवा जलमार्ग हैं, जो पूर्वी एवं पश्चिमी विश्व, दोनों के लिए ही प्रवेश द्वारों का काम करती हैं।

स्वेज नहर

इस नहर का निर्माण 1869 में मिस्र में उत्तर में पोर्टसईद एवं दक्षिण में स्थित पोर्ट स्वेज (स्वेज पत्तन) के मध्य भूमध्य सागर एवं लाल सागर को जोड़ने हेतु किया गया। यह यूरोप को हिंद महासागर में एक नवीन प्रवेश मार्ग प्रदान करता है तथा लिवरपूल एवं कोलंबो के बीच प्रत्यक्ष समुद्री मार्ग की दूरी को उत्तमाशा अंतरीप मार्ग की तुलना में घटाता है। यह जलबंधकों से रहित समुद्र सतह के बराबर नहर है, जो यह लगभग 160 कि.मी. लंबी तथा 11 से 15 मीटर गहरी है। इस नहर में प्रतिदिन लगभग 100 जलयान आवागमन करते हैं तथा उन्हें इस नहर को पार करने में 10-12 घंटे का समय लगता है। अत्यधिक यात्री एवं माल कर होने के कारण कुछ जलयान जिनके लिए समय की देरी महत्त्वपूर्ण नहीं है अपेक्षाकृत लंबे परंतु सस्ते उत्तमाशा अंतरीप मार्ग के द्वारा भी आवागमन किया जाता है, एक रेलमार्ग इस नहर के सहारे स्वेज तक जाता है और फिर इस्माइलिया से एक शाखा कैरो को जाती है। नील नदी से एक नौगम्य ताज़ा पानी की नहर भी स्वेज नहर से इस्माइलिया में मिलती है जिससे पोटसईद और स्वेज नगरों को ताजे पानी की आपूर्ति की जाती है।

पनामा नहर

यह नहर पूर्व में अटलांटिक महासागर को पश्चिम में प्रशांत महासागर से जोड़ती है। इसका निर्माण पनामा जलडमरूमध्य के आर-पार पनामा नगर एवं कोलोन के बीच संयुक्त राज्य अमेरिका के द्वारा किया गया, जिसने दोनों ही ओर के 8 कि.मी. क्षेत्र को खरीद कर इसे नहर मंडल का नाम दिया है। नहर लगभग 72 कि.मी. लंबी है जो लगभग 12 कि.मी. लंबी अत्यधिक गहरी कटान से युक्त है। इस नहर में कुल छः जलबंधक तंत्र हैं तथा जलयान पनामा की खाड़ी में प्रवेश करने से पहले इन जलबंधकों से

होकर विभिन्न ऊँचाई की समुद्री सतह (26 मीटर ऊपर एवं नीचे) को पार करते हैं।

इस नहर के द्वारा समुद्री मार्ग से न्यूयार्क एवं सैनफ्रांसिस्को के मध्य लगभग 13,000 कि.मी. की दूरी कम हो गई है। इसी प्रकार पश्चिमी यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका के पश्चिमी तट; उत्तर-पूर्वी और मध्य संयुक्त राज्य अमेरिका और पूर्वी तथा दक्षिणी-पूर्वी एशिया के मध्य की दूरी भी कम हो गई है। इस नहर का आर्थिक महत्त्व स्वेज नहर की अपेक्षा कम है। फिर भी दक्षिणी अमेरिका की अर्थव्यवस्था में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

आंतरिक जलमार्ग

नदियाँ, नहरें, झीलें तथा तटीय क्षेत्र प्राचीन समय से ही महत्त्वपूर्ण जलमार्ग रहे हैं। नावें तथा स्टीमर यात्रियों तथा माल वाहन हेतु परिवहन के साधन के रूप में उपयोग किए जाते हैं आंतरिक जल मार्गों का विकास नहरों की नौगम्यता, चौड़ाई और गहराई, जल प्रवाह की निरंतरता तथा उपयोग में लाई जाने वाली परिवहन प्रौद्योगिकी पर निर्भर करता है। सघन वनों से युक्त क्षेत्रों में मात्र नदियाँ ही परिवहन की साधन होती हैं। अत्यधिक भारी वस्तुएँ, जैसे कोयला, सीमेंट, इमारती लकड़ी तथा धात्विक अयस्क इत्यादि का आंतरिक जल मार्गों द्वारा यातायात किया जा सकता है।

प्राचीन काल में परिवहन के मुख्य राजमार्ग के रूप में नदी मार्ग ही प्रयुक्त हुआ करते थे। जैसे कि भारत के संदर्भमें, परंतु वर्तमान समय में रेलमार्गों के साथ प्रतिद्वंदिता के कारण तथा सिंचाई इत्यादि कार्यों में जल के उपयोग से जल की पर्याप्त मात्रा के सुलभ न हो पाने एवं अत्यंत खराब रख-रखाव के कारण नदी मार्ग से होने वाला जल परिवहन अपनी महत्ता खो चुका है।

आंतरिक जलमार्गों के रूप में नदियों की सार्थकता घरेलू एवं अंतर्राष्ट्रीय परिवहन तथा व्यापार के क्षेत्र में सभी विकसित देशों में मान्यता प्राप्त कर चुकी है। स्वाभाविक बाध्यता के होते हुए भी अधिकांश नदियों में नदी तल को गहरा करने, नदी तल को स्थिर करने तथा बाँध बनाकर जल प्रवाह को नियंत्रित कर नदियों की नौगम्यता को बढ़ाया गया है। निम्नलिखित नदी जलमार्ग विश्व के महत्त्वपूर्ण वाणिज्यिक मार्ग हैं।

राइन जलमार्ग

राइन नदी जर्मनी और नीदरलैंड से होकर प्रवाहित होती है।

नीदरलैंड में रोटरर्डम में अपने मुहाने से लेकर स्विटजरलैंड में - बेसल तक यह 700 कि.मी. लंबाई में नौकायन योग्य हैं। सामुद्रिक पोत कोलोन तक पहुँच सकते हैं। रूर नदी पूर्व से आकर राइन नदी में मिलती है। यह नदी एक संपन्न कोयला क्षेत्र से होकर प्रवाहित होती है तथा संपूर्ण नदी बेसिन विनिर्माण क्षेत्र की दृष्टि से अत्यधिक संपन्न है। इस प्रदेश में डसलडोर्फ राइन नदी पर स्थित पत्तन है। रूर के दक्षिण में फैली पट्टी से होकर भारी वस्तुओं का आवागमन होता है। यह जलमार्ग विश्व का अत्यधिक प्रयोग में लाया जाने वाला जलमार्ग है। प्रतिवर्ष 20,000 से अधिक समुद्री जलयान तथा लगभग 2 लाख आंतरिक मालवाहक पोत वस्तुओं एवं सामग्रियों का आदान-प्रदान करते हैं। यह जलमार्ग स्विटजरलैंड, जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम तथा नीदरलैंड के औद्योगिक क्षेत्रों को उत्तरी अटलांटिक समुद्री मार्ग से जोड़ता है।

डेन्यूब जलमार्ग

यह महत्त्वपूर्ण आंतरिक जलमार्ग पूर्वी यूरोपीय भाग को अपनी सेवाएँ प्रदान करता है। डेन्यूब नदी ब्लैक फॉरेस्ट से निकलकर अनेक देशों से होती हुई पूर्व की ओर बहती है। यह टारना सेविरिन तक नौकायन योग्य है। मुख्य निर्यात किये जाने वाले पदार्थ गेहूँ, मक्का, इमारती लकड़ी तथा मशीनरी हैं।

वोल्गा जलमार्ग

रूस में अत्यधिक संख्या में विकसित जलमार्ग पाए जाते हैं। जिनमें से वोल्गा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यह 11,200 कि.मी. तक नौकायान की सुविधा प्रदान करती है तथा कैस्पियन सागर में मिल जाती है। वोल्गा मास्को नहर इसको मास्को प्रदेश से तथा वोल्गा-डोन नहर काला सागर से जोड़ती है।

वृहद झीलें सेंट लारेंस समुद्रीमार्ग

उत्तरी अमेरिका की वृहद् झीलें सुपीरियर, हयूरन, इरी तथा ओंटारियो, सू नहर तथा वलैंड नहर के द्वारा जुड़े हुए हैं, तथा आंतरिक जलमार्ग की सुविधा प्रदान करते हैं। सेंट लॉरेंस नदी की एश्चुअरी वृहद् झीलों के साथ उत्तरी अमेरिका के उत्तरी भाग में विशिष्ट वाणिज्यिक जलमार्ग का निर्माण करती है। इस मार्ग पर स्थित मुख्य पत्तन डुलुथ और बुफालो सभी आधुनिक समुद्री पत्तन की सुविधाओं से युक्त है। इस प्रकार विशाल सामुद्रिक जलयान महाद्वीप के आंतरिक भाग में मॉण्ट्रियल तक नौकायन करते हैं। परंतु इन नदियों पर पाए जाने वाले छोटे-छोटे प्रपातों के कारण सामानों को छोटे मालवाहक पोतों पर लादना पड़ता है। इससे बचने के लिए नहरों को 3.5 मीटर तक गहरा बनाया गया है।

मिसीसिपी जलमार्ग

मिसीसिपी-उनोहियो जलमार्ग संयुक्त राज्य अमेरिका के आंतरिक भागों को दक्षिण में मैक्सिको की खाड़ी के साथ जोड़ता है। लंबे स्टीमर इस मार्ग के द्वारा मिनियापोलिस तक जा सकते हैं।

वायु परिवहन

वायु परिवहन, परिवहन का तीव्रतम साधन है, परंतु यह अत्यंत महँगा भी है। तीव्रगामी होने के कारण लंबी दूरी की यात्रा के लिए यात्री इसे वरीयता देते हैं। इसके द्वारा मूल्यवान जहाज़ी भार को तेज़ी के साथ पूरे विश्व में भेजा जा सकता है। कई बार अगम्य क्षेत्रों तक पहुँचने का यही एक साधन

होता है। वायु परिवहन ने संपर्क क्रांति ला दी है। पर्वतों, हिमक्षेत्रों अथवा विषम मरुस्थलीय भूभागों पर विजय प्राप्त कर ली गई है। गम्यता में वृद्धि हुई है। वायुयान जमी हुई भूमि के अवरोध से प्रभावित हुए बिना उत्तरी कनाडा के एस्किमो के लिए अनेक प्रकार की वस्तुएँ लाते हैं। हिमालयी प्रदेश में भू-स्खलन, ऐवेलांश अथवा भारी हिमपात के कारण प्रायः मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में किसी स्थान पर पहुँचने के लिए वायु यात्रा ही एक मात्र विकल्प है। वायुमार्गों का अत्यधिक सामरिक महत्त्व भी होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका एवं ब्रिटिश सेवाओं द्वारा ईरान में किए गए हवाई हमले इस तथ्य के साक्षी हैं। वायुमार्गों का तंत्र तेजी से फैल रहा है।

वायुयानों के निर्माण तथा उनकी कार्य प्रणाली के लिए अत्यंत विकसित अवस्थापनात्मक सुविधाओं, जैसे- विमानशाला, भूमि पर उतारने, ईंधन तथा रख-रखाव की सुविधाओं की आवश्यकता होती है। हवाई पत्तनों का निर्माण भी अत्यधिक खर्चीला है और उन्हीं देशों में जहाँ अत्यधिक औद्योगीकरण एवं अधिक संख्या में यातयात उपलब्ध हैं, विकसित हुआ है।

वर्तमान समय में विश्व में कोई भी स्थान 35 घंटे से अधिक की दूरी पर नहीं है। यह चौंकाने वाला तथ्य उन लोगों के कारण संभव हुआ जो वायुयान बनाते और उड़ाते हैं। वर्षों और महीनों के स्थान पर वायु मार्ग द्वारा की गई यात्रा को अब घंटों और मिनटों में मापा जा सकता है। विश्व के अनेक भागों में नित्य वायु सेवाएँ उपलब्ध हैं। यद्यपि ब्रिटेन का वाणिज्यिक वायु परिवहन का प्रयोग अनुकरणीय है, संयुक्त राज्य अमेरिका ने मुख्य रूप से युद्धोत्तर अंतर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन का विकास किया है। आज 250 से अधिक वाणिज्यिक एयरलाइनें विश्व के विभिन्न भागों में नियमित सेवाएँ प्रदान करती हैं। हाल ही में हुए विकास वायु परिवहन के भविष्य के मार्ग को बदल सकते हैं सुपरसोनिक वायुयान लंदन और न्यूयॉर्क के बीच की दूरी का साढ़े तीन घंटों में तय कर लेता है।

अंतर-महाद्वीपीय वायुमार्ग

उत्तरी गोलार्द्ध में अंतर-महाद्वीपीय वायुमार्गों की एक सुस्पष्ट पूर्व-पश्चिम पट्टी है। पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका, पश्चिमी यूरोप और दक्षिण-पूर्वी एशिया में वायुमार्गों का सघन जाल पाया जाता है। विश्व के कुल वायुमार्गों के 60 प्रतिशत भाग का प्रयोग अकेला संयुक्त राज्य अमेरिका करता है। न्यूयार्क, लंदन, पेरिस, एमस्टर्डम और शिकागो नोडीय बिंदु हैं। जहाँ अभिसरित होते हैं अथवा सभी महाद्वीपों की ओर विकिरित होते हैं।

अफ्रीका, रूस के एशियाई भाग और दक्षिण अमेरिका में वायु सेवाओं का अभाव है। दक्षिणी गोलार्द्ध में 10-35 अक्षांशों के मध्य अपेक्षाकृत विरल जनसंख्या, सीमित स्थलखंड और आर्थिक विकास के कारण सीमित वायुसेवाएँ उपलब्ध हैं।

पाइपलाइन

जल, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस जैसे तरल एवं गैसीय पदार्थों के अबाधित प्रवाह और परिवहन के लिए पाइपलाइनों का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। पाइपलाइनों द्वारा जल की आपूर्ति से सभी परिचित हैं। विश्व के अनेक भागों में रसोई गैस अथवा एल.पी.जी. की आपूर्ति पाइपलाइनों द्वारा की जाती है। पाइपलाइनों का प्रयोग तरलीकृत कोयले के परिवहन के लिए भी किया जाता है। न्यूज़ीलैंड से फार्मों से फैक्ट्रियों तक दूध को पाइपलाइनों द्वारा भेजा जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में उत्पादक क्षेत्रों और उपभोग क्षेत्रों के बीच तेल पाइपलाईनों का सघन जाल पाया जाता है। 'बिग इंच' ऐसी ही एक प्रसिद्ध पाइपलाईन है जो मैक्सिको की खाड़ी में स्थित तेल के कुओं से उत्तर-पूर्वी राज्यों में तेल ले जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रति टन- कि.मी. कुल भार का 17 प्रतिशत भाग पाइपलाइनों द्वारा ले जाया जाता है। तरल पदार्थों तथा गैसों, जैसे- जल, खनिज तेल तथा प्राकृतिक गैस के अबाधित रूप से प्रवाह के लिए पाइपलाइनों का मुख्य रूप से उपयोग किया जाता है।

यूरोप, रूस, पश्चिम एशिया और भारत में पाइपलाइनों का प्रयोग तेल के कुओं को तेल परिष्करणशालाओं और पत्तनों अथवा घरेलू बाज़ारों से जोड़ने के लिए किया जाता है। मध्य एशिया में स्थित तुर्कमेनिस्तान से पाइपलाईन को ईरान और चीन के कुछ भागों तक बढ़ा दिया गया है।

प्रस्तावित ईरान-भारत वाया पाकिस्तान अंतर्राष्ट्रीय तेल और प्राकृतिक गैस पाइपलाईन विश्व में सर्वाधिक लंबी होगी।

संचार

लंबी दूरियों के संचार हेतु मनुष्य ने अनेक विधियों का प्रयोग किया जिनमें से टेलीग्राफ और टेलीफोन महत्त्वपूर्ण थे। टेलीग्राफ पश्चिम में अमेरिका के उपनिवेशवाद का साधन बना। आरंभिक और मध्य बीसवीं शताब्दी के दौरान अमेरिकी टेलीग्राफ और टेलीफ़ोन कंपनी का संयुक्त राज्य अमेरिका के टेलीफ़ोन उद्योग पर एकाधिकार था। वास्तव में टेलीफ़ोन अमेरिका के नगरीकरण का एक क्रांतिक कारक बना। फर्मों ने अपने कार्यों को नगर स्थित मुख्यालयों पर केंद्रित कर दिया और अपने शाखा कार्यालय छोटे नगरों में खोल दिए। आज भी टेलीफोन सर्वाधिक प्रयोग की जाने वाली विधा है। विकासशील देशों में उपग्रहों द्वारा संभव बनाया गया सेलफ़ोन का प्रयोग ग्रामीण संपर्क के लिए महत्त्वपूर्ण है।

आज विकास अद्भुत गति से हो रहा है। पहला प्रमुख पारवेधन ऑप्टिक फाइबर तारों का प्रयोग है। बढ़ती प्रतिस्पर्धा का सामना करती कंपनियों ने पूरे विश्व में आप्टिक तारों को समाविष्ट करने के लिए अपनी ताँबे की तारों वाली प्रणालियों को उन्नत किया। इनसे आँकड़ों की विशाल मात्राओं का तीव्रता से, सुरक्षापूर्वक और लगभग त्रुटिहीन संप्रेषण संभव होता है। 1990 के दशक में सूचनाओं के अंकीकरण के साथ दूरसंचार का धीरे-धीरे कंप्यूटर के साथ विलय हो गया। परिणामस्वरूप एक समन्वित नेटवर्क बना जिसे इंटरनेट के नाम से जाना जाता है।

उपग्रह संचार

आज इंटरनेट पृथ्वी पर सबसे बड़े विद्युतीय जाल के रूप में 100 से अधिक देशों के लगभग 1000 करोड़ लोगों को जोड़ता है।

उपग्रहों ने मानव जीवन को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है। आप हर समय मित्रों को फ़ोन करने के लिए एवं छोटे संदेश प्रेषित करने हेतु सेल फ़ोन का प्रयोग करते हैं। अथवा केबिल दूरदर्शन (टेलीविजन) पर लोकप्रिय कार्यक्रमों को देखने के लिए आप उपग्रह संचार सेवा का उपयोग करते हैं।

1970 से जब से संयुक्त राज्य अमेरिका एवं पूर्व सोवियत संघ के द्वारा अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी शोध किया गया है, तब से उपग्रह के माध्यम से होने वाले संचार ने, संचार तकनीकी के क्षेत्र में, एक नवीन युग का आरंभ किया है। पृथ्वी की कक्षा में कृत्रिम उपग्रहों के सफलतापूर्वक प्रेक्षण के कारण अब ग्लोब के उन दूरस्थ भागों को जोड़ा गया है, जिनका यथास्थान सत्यापन सीमित था। इस तकनीक के प्रयोग द्वारा दूरी के संदर्भ में संचार में लगने वाले इकाई मूल्य एवं समय में होने वाली वृद्धि को नियंत्रित कर लिया गया है। जिसका तात्पर्य यह है कि 500 कि.मी. की दूरी तक होने वाले संचार में लगने वाली लागत, उपग्रह के द्वारा 5000 कि.मी. की दूरी तक होने वाली संचार लागत के बराबर है।

उपग्रह विकास के क्षेत्र में भारत ने भी बड़े कदम उठाए हैं। आर्यभट्ट का 19 अप्रैल 1979 को, भास्कर-1 का 1979 में तथा रोहिणी का प्रक्षेपण 1980 में हुआ। 18 जून 1981 को एप्पल (एरियन पैसेंजर पे लोड एक्सपेरीमेंट) का प्रक्षेपण एरियन रॉकेट के द्वारा हुआ। भास्कर, चैलेंजर तथा इंसेट 1-बी ने, लंबी दूरी के संचार दूरदर्शन तथा रेडियो को अत्यधिक प्रभावी बना दिया है। आज दूरदर्शन के माध्यम से मौसम की भविष्यवाणी एक वरदान बन गई है।

साइबर स्पेस-इंटरनेट

साइबर स्पेस विद्युत द्वारा कंप्यूटरीकृत स्पेस का संसार है। यह वर्ल्ड वाइड वेबसाइट जैसे इंटरनेट द्वारा आवृत हैं। सरल शब्दों में यह भेजने वाले और प्राप्त करने वाले के शारीरिक संचलन के बिना कंप्यूटर पर सूचनाओं के प्रेषण और प्राप्ति की विद्युतीय अंकीय दुनिया है। इसे इंटरनेट के नाम से भी जाना जाता है। साइबर स्पेस हर जगह विद्यमान है। यह किसी कार्यालय में जल में चलती नौका में, उड़ते जहाज़ों में और वास्तव में कहीं भी हो सकता है।

जिस गति से इलैक्ट्रानिक नेटवर्क का विस्तार हुआ है वह मानव इतिहास में अभूतपूर्व है। इंटरनेट प्रयोक्ता 1995 में 5 करोड़, 2000 में 40 करोड़ और 2005 में 100 करोड़ हैं। अगले 100 करोड़ प्रयोक्ता 2010 तक जुड़ जाएँगे। विगत 5 वर्षों में वैश्विक प्रयोक्ताओं का संयुक्त राज्य अमेरिका से विकासशील देशों में स्थानांतरण हुआ है। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रयोक्ताओं का प्रतिशत अंश 1995 में 66 प्रतिशत रह गया। अब विश्व के अधिकांश प्रयोक्ता संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, जापान, चीन और भारत में हैं।

जैसे कि करोड़ों लोग प्रतिवर्ष इंटरनेट का प्रयोग करते हैं। साइबर स्पेस लोगों के समकालीन आर्थिक और सामाजिक स्पेस को ई. मेल, ई. वाणिज्य, ई. शिक्षा और ई. प्रशासन के माध्यम से विस्तृत करेगा। फैक्स, टेलीविजन और रेडियो के साथ इंटरनेट समय और स्थान की सीमाओं को लाँघते हुए अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचेगा। ये आधुनिक संचार प्रणालियाँ हैं जिन्होंने परिवहन से कहीं ज़्यादा वैश्विक ग्राम की संकल्पना को साकार किया है।

जैसे-जैसे तकनीकी का विकास हो रहा है तथा सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से इस पर लगाए गए प्रतिबंध समाप्त हो रहे हैं, निजी व्यावसायिक कंपनियाँ, शैक्षणिक संस्थान तथा संस्कार द्वारा इन सूचनाओं तथा उपग्रह चित्रों का उपयोग असैनिक क्षेत्रों जैसे नगरीय नियोजन, प्रदूषण नियंत्रण, वन विनाश (वनोन्मूलन) से प्रभावित क्षेत्रों को ढूँढ़ना तथा सैंकड़ों भौतिक प्रतिरूपों एवं प्रक्रमों को पहचानने हेतु किया जाएगा।

YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

व्यापार करने के लिए दो पक्षों का होना आवश्यक है। एक व्यक्ति/पक्ष बेचता है और दूसरा खरीदता है। कुछ स्थानों पर लोग वस्तुओं का विनिमय करते हैं। व्यापार दोनों ही पक्षों के लिए समान रूप से लाभदायक होता है।

व्यापार दो स्तरों पर किया जा सकता है- अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार विभिन्न राष्ट्रों के बीच राष्ट्रीय सीमाओं के आर-पार वस्तुओं और सेवाओं के आदान-प्रदान को कहते हैं। राष्ट्रों को व्यापार करने की आवश्यकता उन वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए होती है, जिन्हें या तो वे (देश) स्वयं उत्पादित नहीं कर सकते या जिन्हें वे अन्य स्थान से कम दामों में खरीद सकते हैं।

आदिम समाज में व्यापार का आरंभिक स्वरूप 'विनिमय व्यवस्था' था, जिसमें वस्तुओं का प्रत्यक्ष आदान-प्रदान होता था अर्थात् वस्तु के बदले में रुपये के स्थान पर वस्तु दी जाती थी। इस व्यवस्था में यदि आप एक कुम्हार होते और आपको एक नलसाज़ की आवश्यकता होती, तो आपको एक ऐसा नलसाज ढूँढ़ना पड़ता, जिसे आप द्वारा बनाए हुए बर्तनों की आवश्यकता होती और आप उसकी नलसाज़ की सेवाओं के बदले अपने बर्तन देकर आदान-प्रदान कर सकते थे।

रुपये अथवा मुद्रा के आगमन के साथ ही विनिमय व्यवस्था की कठिनाइयों को दूर कर लिया गया। पुराने समय में कागज़ी व धात्विक मुद्रा के आगमन से पहले उच्च नैजमान मूल्य वाली दुर्लभ वस्तुओं को मुद्रा के रूप में प्रयुक्त किया जाता था जैसे- चकमक पत्थर, आब्सीडियन, (आग्नेय काँच), काउरी शेल, चीते के पंजे, वेल के दाँत, कुत्ते के दाँत, खालें, बाल (फर), मवेशी, चावल, पैपरकार्न, नमक, छोटे यंत्र, ताँबा, चाँदी और स्वर्ण।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का इतिहास

प्राचीन समय में, लंबी दूरियों तक वस्तुओं का परिवहन जोखिमपूर्ण होता था, इसलिए व्यापार स्थानीय बाज़ारों तक ही सीमित था। लोग तब अपने संसाधनों का अधिकांश भाग मूलभूत आवश्यकताओं- भोजन और वस्त्र पर खर्च करते थे। केवल धनी लोग ही आभूषण व महँगे परिधान खरीदते थे, और परिणामस्वरूप विलास की वस्तुओं का व्यापार आरंभ हुआ।

रेशम मार्ग लंबी दूरी के व्यापार का एक आरंभिक उदाहरण है, जो 6000 कि.मी. लंबे मार्ग के सहारे रोम को चीन से जोड़ता था। व्यापारी भारत, पर्शिया (ईरान) और मध्य एशिया के मध्यवर्ती स्थानों से चीन में बने रेशम, रोम की ऊन व बहुमूल्य धातुओं तथा अन्य अनेक महँगी वस्तुओं का परिवहन करते थे।

रोमन साम्राज्य के विखंडन के पश्चात् 12वीं और 13वीं शताब्दी के दौरान यूरोपीय वाणिज्य में वृद्धि हुई। समुद्रगामी युद्धपोतों के विकास के साथ ही यूरोप तथा एशिया के बीच व्यापार बढ़ा तथा अमेरिका की खोज हुई।

15वीं शताब्दी से ही यूरोपीय उपनिवेशवाद शुरू हुआ और विदेशी वस्तुओं के साथ व्यापार के साथ ही व्यापार के एक नए स्वरूप का उदय हुआ, जिसे 'दास व्यापार' कहा गया।

पुर्तगालियों, डचों, स्पेनिश लोगों व अंग्रेज़ों ने अफ्रीकी मूल निवासियों को पकड़ा और उन्हें बलपूर्वक, बागानों में श्रम हेतु नए खोजे गए अमेरीका में परिवहित किया। दास व्यापार दो सौ वर्षों से भी अधिक समय तक एक लाभदायक व्यापार रहा जब तक कि यह 1792 में डेनमार्क में, 1807 में ग्रेट ब्रिटेन में और 1808 में संयुक्त राज्य में पूर्णरूपेण समाप्त नहीं कर दिया गया।

औद्योगिक क्रांति के पश्चात्, कच्चे माल जैसे- अनाज, मांस, ऊन की माँग भी बढ़ी, लेकिन विनिर्माण की वस्तुओं की तुलना में उनका मौद्रिक मूल्य घट गया।

औद्योगीकृत राष्ट्रों ने कच्चे माल के रूप में प्राथमिक उत्पादों का आयात किया और मूल्यपरक तैयार माल को वापस अनौद्योगीकृत राष्ट्रों को निर्यात कर दिया।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन करने वाले प्रदेश अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं रहे और औद्योगिक राष्ट्र एक दूसरे के मुख्य ग्राहक बन गए।

प्रथम व द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान पहली बार राष्ट्रों ने व्यापार कर और संख्यात्मक प्रतिबंध लगाए। विश्व युद्ध के बाद के समय के दौरान 'व्यापार व शुल्क हेतु सामान्य समझौता' (GATT) जैसे संस्थाओं ने (जो कि बाद में विश्व व्यापार संगठन WTO बना) शुल्क को घटाने में सहायता की।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार अस्तित्व में क्यों है?

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार उत्पादन में विशिष्टीकरण का परिणाम है। यह विश्व की अर्थव्यवस्था को लाभान्वित करता है, यदि विभिन्न राष्ट्र वस्तुओं के उत्पादन या सेवाओं की उपलब्धता में श्रम विभाजन तथा विशेषीकरण को प्रयोग में लाएँ। हर प्रकार का विशिष्टीकरण व्यापार को जन्म दे सकता है। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार वस्तुओं और सेवाओं के तुलनात्मक लाभ, परिपूरकता व हस्तांतरणीयता के सिद्धांतों पर आधारित होता है और सिद्धांततः यह व्यापारिक भागीदारों को समान रूप से लाभदायक होना चाहिए।

आधुनिक समय में व्यापार, विश्व के आर्थिक संगठन का आधार है और यह राष्ट्रों की विदेश नीति से संबंधित है। सुविकसित परिवहन तथा संचार

प्रणाली से युक्त कोई भी देश अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भागीदारी से मिलने वाले लाभों को छोड़ने का इच्छुक नहीं है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के आधार

(i) राष्ट्रीय संसाधनों में भिन्नता भौतिक संरचना जैसे कि भूविज्ञान, उच्चावच, मृदा व जलवायु में भिन्नता के कारण विश्व के राष्ट्रीय संसाधन असमान रूप से विपरीत हैं।

(क) भौगोलिक संरचना खनिज संसाधन आधार को निर्धारित करती है और धरातलीय विभिन्नताएँ फसलों व पशुओं की विविधता सुनिश्चित करती हैं। निम्न भूमियों में कृषि-संभाव्यता अधिक होती है। पर्वत पर्यटकों को आकर्षित करते हैं और पर्यटन को बढ़ावा देते हैं।

(ख) खनिज संसाधन संपूर्ण विश्व में असमान रूप से वितरित हैं। खनिज संसाधनों की उपलब्धता औद्योगिक विकास का आधार प्रदान करती है।

(ग) जलवायु किसी दिए हुए क्षेत्र में जीवित रह जाने वाले पादप व वन्य जात के प्रकार को प्रभावित करती है। यह विभिन्न उत्पादों की विविधता को भी सुनिश्चित करती है, उदाहरणतः ऊन-उत्पादन ठंडे क्षेत्रों में ही हो सकता है; केला, रबड़ तथा कहवा उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में ही उग सकते हैं।

(ii) जनसंख्या कारक विभिन्न देशों में जनसंख्या के

आकार, वितरण तथा उसकी विविधता व्यापार की गई वस्तुओं के प्रकार और मात्रा को प्रभावित करते हैं।

(क) सांस्कृतिक कारक विशिष्ट संस्कृतियों में कला तथा हस्तशिल्प के विभिन्न रूप विकसित हुए हैं जिन्हें विश्व-भर में सराहा जाता है। उदाहरणस्वरूप चीन द्वारा उत्पादित उत्तम कोटि का पॉर्सलिन (चीनी मिट्टी का बर्तन) तथा ब्रोकेड (किमखाब-जरीदार या बूटेदार कपड़ा)। ईरान के कालीन प्रसिद्ध हैं, जबकि उत्तरी अफ्रीका का चमड़े का काम और इंडोनेशियाई बटिक (छींट वाला) वस्त्र बहुमूल्य हस्तशिल्प हैं।

(ख) जनसंख्या का आकार सघन बसाव वाले देशों में आंतरिक व्यापार अधिक है जबकि बाहूय व्यापार कम परिमाण वाला होता है, क्योंकि कृषीय और औद्योगिक उत्पादों का अधिकांश भाग स्थानीय बाज़ारों में ही खप जाता है। जनसंख्या का जीवन स्तर बेहतर गुणवत्ता वाले आयातित उत्पादों की माँग को निर्धारित करता है क्योंकि निम्न जीवन स्तर के साथ केवल कुछ लोग ही महँगी आयातित वस्तुएँ खरीद पाने में समर्थ होते हैं।

(iii) आर्थिक विकास की प्रावस्था देशों के आर्थिक

विकास की विभिन्न अवस्थाओं में व्यापार की गई वस्तुओं का स्वभाव (प्रकार) परिवर्तित हो जाता है। कृषि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण देशों में, विनिर्माण की वस्तुओं के लिए कृषि उत्पादों का विनिमय किया जाता है, जबकि औद्योगिक राष्ट्र मशीनरी और निर्मित उत्पादों का निर्यात करते हैं तथा खाद्यान्न तथा अन्य कच्चे पदार्थों का आयात करते हैं।

(iv) विदेशी निवेश की सीमा विदेशी निवेश विकासशील

देशों में व्यापार को बढ़ावा दे सकता है जिनके पास खनन, प्रवेधन द्वारा तेल-खनन, भारी अभियांत्रिकी, काठ कबाड़ तथा बागवानी कृषि के विकास के लिए आवश्यक पूँजी का अभाव है। विकासशील देशों में ऐसे पूँजी प्रधान उद्योगों के विकास द्वारा औद्योगिक राष्ट्र खाद्य पदार्थों, खनिजों का आयात सुनिश्चित करते हैं तथा अपने निर्मित उत्पादों के लिए बाज़ार निर्मित करते हैं। यह संपूर्ण चक्र देशों के बीच में व्यापार के परिमाण को आगे बढ़ाता है।

(v) परिवहन : पुराने समय में परिवहन के पर्याप्त और

समुचित साधनों का अभाव स्थानीय क्षेत्रों में व्यापार को प्रतिबंधित करता था। केवल उच्च मूल्य वाली वस्तुओं, जैसे- रत्न, रेशम तथा मसाले का लंबी दूरियों तक व्यापार किया जाता था। रेल, समुद्री तथा वायु परिवहन के विस्तार और प्रशीतन तथा परिरक्षण के बेहतर साध नों के साथ, व्यापार ने स्थानिक विस्तार का अनुभव किया है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्त्वपूर्ण पक्ष

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के तीन बहुत महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं। ये हैं परिमाण, प्रखंडीय संयोजन और व्यापार की दिशा।

व्यापार का परिमाण

व्यापार की गई वस्तुओं का वास्तविक तौल परिमाण कहलाता है। हालाँकि व्यापारिक सेवाओं को तौल में नहीं मापा जा सकता। इसलिए व्यापार की गई वस्तुओं तथा सेवाओं के कुल मूल्य को व्यापार के परिमाण के रूप में जाना जाता है।

व्यापार संयोजन

पिछली शताब्दी में, देशों द्वारा आयातित तथा निर्यातित वस्तुओं और सेवाओं के प्रकार में परिवर्तन हुए हैं। पिछली शताब्दी के आरंभ में, प्राथमिक उत्पादों का व्यापार प्रधान था। बाद में, विनिर्मित वस्तुओं ने प्रमुखता प्राप्त कर ली और वर्तमान समय में यद्यपि विश्व व्यापार का अधिकांश विनिर्माण क्षेत्र के आधिपत्य में है, सेवा क्षेत्र जिसमें यात्रा, परिवहन तथा अन्य व्यावसायिक सेवाएँ सम्मिलित हैं, उपरिगामी प्रवृत्ति दर्शा रहा है।

व्यापार की दिशा

ऐतिहासिक रूप से, वर्तमान कालिक विकासशील देश मूल्यपरक वस्तुओं तथा शिल्प आदि का निर्यात किया करते थे जो यूरोपीय देशों को निर्यात की जाती थी। 19वीं शताब्दी के दौरान व्यापार की दिशा में

प्रत्यावर्तन हुआ। यूरोपीय देशों ने विनिर्माण वस्तुओं को अपने उपनिवेशों से खाद्य पदार्थ तथा कच्चे माल के बदले, निर्यात करना शुरू कर दिया। यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व में बड़े व्यापारिक साझेदार के रूप में उभरे और विनिर्माण वस्तुओं के व्यापार में अग्रणी बने। उस समय जापान भी तीसरा महत्त्वपूर्ण व्यापारिक देश था। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विश्व व्यापार की पद्धति में तीव्र परिवर्तन हुए। यूरोप के उपनिवेश समाप्त हो गए जबकि भारत, चीन और अन्य विकाशील देशों ने विकसित देशों के साथ प्रतिस्पर्धा शुरू कर दी। व्यापारित वस्तुओं की प्रकृति भी बदल गई।

व्यापार संतुलन

व्यापार संतुलन, एक देश के द्वारा अन्य देशों को आयात एवं इसी प्रकार निर्यात की गई वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्रा (परिमाण) का प्रलेखन करता है। यदि आयात का मूल्य, देश के निर्यात मूल्य की अपेक्षा अधिक है तो देश का व्यापार संतुलन ऋणात्मक अथवा प्रतिकूल है। यदि निर्यात का मूल्य, आयात के मूल्य की तुलना में अधिक है तो देश का व्यापार संतुलन धनात्मक अथवा अनुकूल है।

एक देश की आर्थिकी के लिए व्यापार संतुलन एवं भुगतान संतुलन के गंभीर निहितार्थ होते हैं। एक ऋणात्मक संतुलन का अर्थ होगा कि देश वस्तुओं के क्रय पर उससे अधिक व्यय करता है जितना कि अपने सामानों के विक्रय से अर्जित करता है। यह अंतिम रूप में वित्तीय संचय की समाप्ति को अभिप्रेरित करता है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रकार

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को दो प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

(क) द्विपाश्विक व्यापार द्विपाश्विक व्यापार दो देशों के द्वारा एक दूसरे के साथ किया जाता है। आपस में निर्दिष्ट वस्तुओं का व्यापार करने के लिए वे सहमति करते हैं। उदाहरणार्थ देश 'क' कुछ कच्चे पदार्थ के व्यापार के लिए इस समझौते के साथ सहमत हो सकता है कि देश 'ख' कुछ अन्य निर्दिष्ट सामग्री खरीदेगा अथवा स्थिति इसके विपरीत भी हो सकती है।

(ख) बहु पाश्विक व्यापार जैसा कि शब्द से स्पष्ट होता है कि बहु पाश्विक व्यापार बहुत से व्यापारिक देशों के साथ किया जाता है। वही देश अन्य अनेक देशों के साथ व्यापार कर सकता है। देश कुछ व्यापारिक साझेदारों को 'सर्वाधिक अनुकूल राष्ट्र' (MFN) की स्थिति प्रदान कर सकता है।

मुक्त व्यापार की स्थिति

व्यापार हेतु अर्थव्यवस्थाओं को खोलने का कार्य मुक्त व्यापार अथवा व्यापार उदारीकरण के रूप में जाना जाता है। यह कार्य व्यापारिक अवरोधों जैसे सीमा शुल्क को घटाकर किया जाता है। घरेलू उत्पादों एवं सेवाओं से प्रतिस्पर्धा करने के लिए व्यापार उदारीकरण सभी स्थानों से वस्तुओं और सेवाओं के लिए अनुमति प्रदान करता है।

भूमंडलीकरण और मुक्त व्यापार विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं को उन पर प्रतिकूल थोपते हुए तथा उन्हें विकास के समान अवसर न देकर बुरी तरह से प्रभावित कर सकते हैं। परिवहन एवं संचार तंत्र के विकास के साथ ही वस्तुएँ एवं सेवाएँ पहले की अपेक्षा तीव्रगति से एवं दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुँच सकती है। किंतु व्यापार मुक्त व्यापार को केवल संपन्न देशों के द्वारा ही बाज़ारों की ओर नहीं ले जाना चाहिए, बल्कि विकसित देशों को चाहिए कि वे अपने स्वयं के बाज़ारों को विदेशी उत्पादों से संरक्षित रखें।

देशों को भी डंप की गई वस्तुओं से सतर्क रहने की आवश्यकता है, क्योंकि मुक्त व्यापार के साथ इस प्रकार की सस्ते मूल्य की डंप की गई वस्तुएँ घरेलू उत्पादकों को नुकसान पहुँचा सकती है।

डंप करना

लागत की दृष्टि से नहीं वरन् भिन्न-भिन्न कारणों से अलग-अलग कीमत की किसी वस्तु को दो देशों में विक्रय करने की प्रथा डंप करना कहलाती है।

विश्व व्यापार संगठन

1948 में विश्व को उच्च सीमा शुल्क और विभिन्न प्रकार की अन्य बाधाओं से मुक्त कराने हेतु कुछ देशों के द्वारा जनरल एग्रीमेंट ऑन ट्रेड एंड टैरिफ (GATT) का गठन किया गया। 1994 में सदस्य देशों के द्वारा राष्ट्रों के बीच मुक्त एवं निष्पक्ष व्यापार को बढ़ा प्रोन्नत करने के लिए एक स्थायी संस्था के निर्माण का निश्चय किया गया था तथा जनवरी 1995 से (GATT) को विश्व व्यापार संगठन (WTO) में रूपांतरित कर दिया गया।

विश्व व्यापार संगठन एकमात्र ऐसा अंतर्राष्ट्रीय संगठन है जो राष्ट्रों के मध्य वैश्विक नियमों का व्यवहार करता है। यह विश्वव्यापी व्यापार तंत्र के लिए नियमों को नियत करता है और इसके सदस्य देशों के मध्य विवादों का निपटारा करता है। विश्व व्यापार संगठन दूरसंचार और बैंकिंग जैसी सेवाओं तथा अन्य विषयों जैसे बौद्धिक संपदा अधिकार के व्यापार को भी अपने कार्यों में सम्मिलित करता है। उन लोगों के द्वारा विश्व व्यापार संगठन की आलोचना एवं विरोध किया गया है जो मुक्त व्यापार और अर्थव्यवस्था के भूमंडलीकरण के प्रभावों से परेशान हैं। इस पर तर्क किया गया है कि मुक्त व्यापार आम लोगों के जीवन को अधिक संपन्न नहीं बनाता। धनी देशों को और अधिक धनी बनाकर यह वास्तव में गरीब और अमीर के बीच की खाई को बढ़ा रहा है। ऐसा इसलिए है क्योंकि विश्व व्यापार संगठन में प्रभावशाली राष्ट्र केवल अपने वाणिज्यिक हितों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक विकसित देशों ने अपने बाज़ारों को विकसित देशों के उत्पादों के लिए पूरी तरह से नहीं खोला है। यह भी तर्क दिया जाता है कि स्वास्थ्य, श्रमिकों के अधिकार, बाल श्रम और पर्यावरण जैसे मुद्दों की उपेक्षा की गई है।

प्रादेशिक व्यापार समूह

प्रादेशिक व्यापार समूह व्यापार की मदों में भौगोलिक सामीप्य, समरूपता और पूरकता के साथ देशों के मध्य व्यापार को बढ़ाने एवं विकासशील देशों के व्यापार पर लगे प्रतिबंध को हटाने के उद्देश्य से अस्तित्व में आए हैं। आज 120 प्रादेशिक व्यापार समूह विश्व के 52 प्रतिशत व्यापार का जनन करते हैं। इन व्यापार समूहों का विकास अंततः प्रादेशिक व्यापार को गति देने में वैश्विक संगठनों के असफल होने के प्रत्युत्तर में हुआ है।

यद्यपि, ये प्रादेशिक समूह सदस्य राष्ट्रों में व्यापार शुल्क को हटा देते हैं तथा मुक्त व्यापार को बढ़ावा देते हैं लेकिन भविष्य में विभिन्न व्यापारिक समूहों के बीच मुक्त व्यापार का बने रहना कठिन होता जा रहा है। कुछ प्रमुख प्रादेशिक व्यापार समूह तालिका 9.3 में सूचीबद्ध किए गए हैं :

विश्व के प्रादेशिक व्यापार समूहों में से निम्नलिखित सात प्रादेशिक व्यापार समूह सर्वप्रमुख हैं –

1. आसियान (Association of South-East Asian Nations-ASEAN): अगस्त 1967 में अस्तित्व में आये आसियान व्यापार समूह में सात दक्षिणी-पूर्वी एशियाई देश-ब्रुनई, इंडोनेशिया, मलेशिया, सिंगापुर, थाईलैण्ड, वियतनाम तथा म्यांमार सम्मिलित हैं। इसका मुख्यालय इण्डोनेशिया के जकार्ता नगर में है। परस्पर व्यापार के अलावा आर्थिक वृद्धि को त्वरित करना, सांस्कृतिक विकास, शान्ति तथा प्रादेशिक स्थायित्व इस समूह के प्रमुख उद्देश्य हैं। व्यापार की वस्तुएँ-कृषि उत्पाद, रबड़, पाम ऑयल, चावल, नारियल, कॉफी तथा सॉफ्टवेयर उत्पाद। खनिज: ताँबा, निकिल तथा टंगस्टन। ऊर्जा संसाधन: कोयला, पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस।

2. सी.आई.एस, (Commonwealth of Independent States-C.I.S.): इस व्यापारिक समूह में पूर्व सोवियत संघ के विघटित 12 राष्ट्रों-आरमीनिया, अजरबैजान, बेलारूस, जॉर्जिया, कजाखस्तान, खिरगिस्तान, मॉल्डोवा, रूस, ताजिकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, यूक्रेन तथा उज्बेकिस्तान को सम्मिलित किया गया है। इस व्यापारिक समूह का मुख्यालय बेलारूस देश के मिन्स्क नगर में है। परस्पर व्यापार के अलावा अर्थव्यवस्था, प्रतिरक्षा तथा विदेश नीति के मामलों में समन्वय तथा सहयोग इस व्यापारिक समूह का प्रमुख उद्देश्य है। अशोधित तेल, प्राकृतिक गैस, सोना, कपास, रेशे तथा एल्यूमिनियम इस व्यापारिक समूह की प्रमुख व्यापारिक वस्तुएँ हैं।

3. यूरोपीय संघ (European Union–E.U.): यूरोपियन संघ का गठन मूल रूप से मार्च 1957 में यूरोप में छह देशों- इटली, फ्रांस, जर्मनी, बेल्जियम, होलैण्ड तथा लक्जेमबर्ग द्वारा किया गया। बाद में इस व्यापारिक समूह में ऑस्ट्रिया, डेनमार्क, फिनलैण्ड, आयरलैण्ड, पुर्तगाल, स्पेन, स्वीडन तथा ब्रिटेन नामक यूरोपियन राष्ट्र भी सम्मिलित हो गये। इस व्यापारिक समूह का मुख्यालय बेल्जियम के ब्रुसेल्स नगर में है। कृषि उत्पाद, खनिज, रसायन, लकड़ी, कागज, परिवहन की गाड़ियाँ, आप्टिकल उपकरण, घड़ियाँ, कलाकृतियाँ तथा पुरावस्तु इस व्यापारिक समूह की प्रमुख व्यापारिक वस्तुयें हैं। इसके अलावा यूरोपीय संघ के देशों में एकल मुद्रा के साथ एकल बाजार भी मिलता है।

4. लेटिन अमेरिकन इंटीग्रेशन एसोसियेशन (Latin American Integration Association-LAIA): सन् 1960 में स्थापित इस व्यापारिक समूह में 10 लेटिन अमेरिकी राष्ट्रों — अर्जेन्टाइना, बोलीविया, ब्राजील, कोलंबिया, इक्वाडोर, मैक्सिको, पराग्वे, पेरू, उरूग्वे तथा वेनेजुएला को शामिल किया जाता है। इस व्यापारिक समूह का मुख्यालय उरूग्वे देश के मॉण्टेविडियो नगर में है। इस प्रादेशिक व्यापारिक समूह का मुख्य उद्देश्य दक्षिण अमेरिकी देशों के मध्य परस्पर व्यापार को बढ़ावा देना है।

5. नाफ्टा या नॉर्थ अमेरिकन फ्री ट्रेड एसोसियेशन (North American Free Trade Association-NAFTA): इस व्यापारिक संघ का गठन सन् 1988 में विश्व के दो बड़े व्यापारिक सहयोगियों संयुक्त राज्य अमेरिका एवं कनाडा के मध्य व्यापारिक प्रतिबंधों को समाप्त करने के लिए किया गया। सन् 1994 में इस व्यापार समूह का विस्तार किया गया तथा मैक्सिको को भी इसका सदस्य बनाया गया। अब इस संघ में लैटिन अमेरिकी देशों को भी सम्मिलित कर लिया गया है। कृषि उत्पाद, मोटर गाड़ियाँ, स्वचालित पुर्जे, कम्प्यूटर तथा वस्त्र इस व्यापारिक संघ की महत्त्वपूर्ण व्यापारिक वस्तुएँ हैं।

6. ओपेक या तेल निर्यातक राष्ट्रों का संगठन (Organisation of Petroleum Exporting Countries-OPEC): सन् 1949 में स्थापित तेल निर्यातक राष्ट्रों के संगठन में सदस्य देश – अल्जीरिया, इंडोनेशिया, इरान, ईराक, कुवैत, लीबिया, नाइजीरिया, कतर, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात तथा वेनेजुएला हैं। यह संगठन खनिज तेल की नीतियों के समन्वय तथा एकीकरण के उद्देश्य से निर्मित किया गया था। अशोधित खनिज तेल इस संगठन का एकमात्र निर्यात किए जाने वाला उत्पाद है।

7. साफ्टा या साउथ एशियन फ्री ट्रेड एग्रीमेंट (South Asian Free Trade Agreement-SAFTA): दक्षिणी एशिया के बांग्लादेश, मालदीव, भूटान, नेपाल, भारत, पाकिस्तान तथा श्रीलंका नामक देशों के इस व्यापारिक संगठन की स्थापना, जनवरी 2006 में की गयी थी। इस संगठन का प्रमुख उद्देश्य अंतर-प्रादेशिक व्यापार के करों को कम करना है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से संबंधित मामले

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का होना राष्ट्रों के लिए पारस्परिक लाभदायक होता है, यदि यह प्रादेशिक विशिष्टीकरण, उत्पादन के उच्च स्तर, उच्च रहन-सहन के स्तर, वस्तुओं एवं सेवाओं की विश्वव्यापी उपलब्धता, कीमतों और वेतन का समानीकरण, ज्ञान एवं संस्कृति के प्रस्फुरण को प्रेरित करता है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार देशों के लिए हानिकारक हो सकता है यदि यह अन्य देशों पर निर्भरता, विकास के असमान स्तर, शोषण और युद्ध का कारण बनने वाली प्रतिद्वंद्विता की ओर उन्मुख है। विश्वव्यापी व्यापार जीवन के अनेक पक्षों को प्रभावित करते हैं। यह सारे विश्व में पर्यावरण से लेकर लोगों के स्वास्थ्य एवं कल्याण इत्यादि सभी को प्रभावित कर सकता है। जैसे-जैसे देश अधिक व्यापार के लिए प्रतिस्पर्धी बनते जा रहे हैं, उत्पादन और प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग बढ़ता जा रहा है, और संसाधनों के नष्ट होने की दर उनके पुनर्भरण की दर से तीव्र होती है। परिणामस्वरूप समुद्री जीवन भी तीव्रता से नष्ट हो रहा है, वन काटे जा रहे हैं और नदी बेसिन निजी पेय जल कंपनियों को बेचे जा रहे हैं। तेल गैस खनन, औषधि विज्ञान और कृषि व्यवसाय में संलग्न बहुराष्ट्रीय निगम और अधिक प्रदूषण उत्पन्न करते हुए हर कीमत पर अपने कार्यों को बढ़ाए रखती है- उनके कार्य करने की पद्धति सतत पोषणीय विकास के मानकों का अनुसरण नहीं करती। यदि संगठन केवल लाभ बनाने की ओर उन्मुख रहते हैं और पर्यावरणीय तथा स्वास्थ्य संबंधी विषयों पर ध्यान नहीं देते तो यह भविष्य के लिए इसके गहरे निहितार्थ हो सकते हैं।

पत्तन अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रवेश द्वार

पत्तन

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की दुनिया के मुख्य प्रवेश द्वार पोताश्रय तथा पत्तन होते हैं। इन्हीं पत्तनों के द्वारा जहाज़ी माल तथा यात्री विश्व के एक भाग से दूसरे भाग को जाते हैं।

पत्तन जहाज़ के लिए गोदी, लादने, उतारने तथा भंडारण हेतु सुविधाएँ प्रदान करते हैं। इन सुविधाओं को प्रदान करने के उद्देश्य से पत्तन के प्राधिकारी नौगम्य द्वारों का रख-रखाव, रस्सों व बजरों (छोटी अतिरिक्त नौकाएँ) की व्यवस्था करने और श्रम एवं प्रबंधकीय सेवाओं को उपलब्ध कराने की व्यवस्था करते हैं। एक पत्तन के महत्त्व को नौभार के आकार और निपटान किए गए जहाजों की संख्या द्वारा निश्चित किया जाता है। एक पत्तन द्वारा निपटाया नौभार, उसके पृष्ठ प्रदेश के विकास के स्तर का सूचक है।

पत्तन के प्रकार

सामान्यत: पत्तनों का वर्गीकरण उनके द्वारा सँभाले गए यातायात के प्रकार के अनुसार किया जाता है।

निपटाए गये नौभार के अनुसार पत्तनों के प्रकार :

(i) औद्योगिक पत्तन : ये पत्तन थोक नौभार के लिए विशेषीकृत होते हैं जैसे अनाज, चीनी, अयस्क, तेल, रसायन और इसी प्रकार के पदार्थ।

(ii) वाणिज्यिक पत्तन ये पत्तन सामान्य नौभार संवेष्टित उत्पादों तथा विनिर्मित वस्तुओं का निपटान करते हैं। ये पत्तन यात्री-यातायात का भी प्रबंध करते हैं।

(iii) विस्तृत पत्तन : ये पत्तन बड़े परिमाण में सामान्य नौभार का थोक में प्रबंध करते हैं। संसार के अधिकांश महान पत्तन विस्तृत पत्तनों के रूप में वर्गीकृत किए गए हैं।

अवस्थिति के आधार पर पत्तनों के प्रकार

(i) अंतर्देशीय पत्तन ये पत्तन समुद्री तट से दूर अवस्थित होते हैं। ये समुद्र से एक नदी अथवा नहर द्वारा जुड़े होते हैं। ऐसे पत्तन चौरस तल वाले जहाज़ या बजरे द्वारा ही गम्य होते हैं। उदाहरणस्वरूप - मानचेस्टर एक नहर से जुड़ा है; मेंफिस मिसीसिपी नदी पर अब स्थित है; राइन के अनेक पत्तन हैं जैसे- मैनहीम तथा ड्यूसबर्ग; और कोलकाता हुगली नदी, जो गंगा नदी की एक शाखा है, पर स्थित है।

(ii) बाह्य पत्तन: ये गहरे जल के पत्तन हैं जो वास्तविक

पत्तन से दूर बने होते हैं। ये उन जहाज़ों, जो अपने बड़े आकार के कारण उन तक पहुँचने में अक्षम हैं, को ग्रहण करके पैतृक पत्तनों को सेवाएँ प्रदान करते हैं। उदाहरणस्वरूप एथेंस तथा यूनान में इसके बाह्य पत्तन पिरेइअस एक उच्चकोटि का संयोजन है।

विशिष्टीकृत कार्यकलापों के आधार पर पत्तनों के प्रकार

(i) तैल पत्तन: ये पत्तन तेल के प्रक्रमण और नौ-परिवहन का कार्य करते हैं। इनमें से कुछ टैंकर पत्तन हैं तथा कुछ तेल शोधन पत्तन हैं। वेनेजुएला में माराकाइबो, ट्यूनिशिया में एस्सखीरा, लेबनान में त्रिपोली टैंकर पत्तन हैं। पर्शिया की खाड़ी पर अबादान एक तेलशोधन पत्तन है।

(ii) मार्ग पत्तन (विश्राम पत्तन) ये ऐसे पत्तन हैं, जो मूल रूप से मुख्य समुद्री मार्गों पर विश्राम केंद्र के रूप में विकसित हुए, जहाँ पर जहाज पुन ईंधन भरने, जल भरने तथा खाद्य सामग्री लेने के लिए लंगर डाला करते थे। बाद में, वे वाणिज्यिक पत्तनों में विकसित हो गए। अदन, होनोलूलू तथा सिंगापुर इसके अच्छे उदाहरण हैं।

(iii) पैकेट स्टेशन: इन्हें फेरी पत्तन के नाम से भी जाना जाता है। ये पैकेट स्टेशन विशेष रूप से छोटी दूरियों को तय करते हुए जलीय क्षेत्रों के आर-पार डाक तथा यात्रियों के परिवहन (आवागमन) से जुड़े होते हैं। ये स्टेशन जोड़ों में इस प्रकार अवस्थित होते हैं कि वे जलीय क्षेत्र के आरपार एक दूसरे के सामने होते हैं। उदाहरणस्वरूप - इंग्लिश चैनल के आरपार इंग्लैंड में डोवर तथा फ्रांस में कैलाइस।

(iv) आंत्रपो पत्तन : ये वे एकत्रण केंद्र हैं, जहाँ विभिन्न देशों से निर्यात हेतु वस्तुएँ लाई जाती हैं। सिंगापुर एशिया के लिए एक आंत्रपो पत्तन है, रोटरडम यूरोप के लिए और कोपेनहेगेन बाल्टिक क्षेत्र के लिए आंत्रपो पत्तन हैं।

(v) नौ सेना पत्तन : ये केवल सामाजिक महत्त्व के पत्तन हैं। ये पत्तन युद्धक जहाज़ों को सेवाएँ देते हैं तथा उनके लिए मरम्मत कार्यशालाएँ चलाते हैं। कोच्चि तथा कारवाड़ भारत में ऐसे पत्तनों के उदाहरण हैं।

मानव बस्ती

मानव बस्ती का अध्ययन मानव भूगोल का मूल है क्योंकि किसी भी क्षेत्र में बस्तियों का रूप उस क्षेत्र के वातावरण से मानव का संबंध दर्शाता है। एक स्थान जो साधारणतया स्थायी रूप से बसा हुआ हो उसे मानव बस्ती कहते हैं। मकानों का स्वरूप बदला जा सकता है, उनके कार्य बदल सकते हैं परंतु बस्तियाँ समय एवं स्थान के साथ निरंतर बसती रहेंगी। कुछ बस्तियाँ अस्थायी हो सकती हैं जिसमें निवास कुछ ही समय जैसे कि एक ऋतु के लिए होता है।

बस्तियों का वर्गीकरण- ग्रामीण नगरीय द्विभाजन

यह सभी स्वीकार करते हैं कि बस्तियों में भेद नगरीय व ग्रामीण आधार पर होता है, परंतु हम किस को ग्राम कहें एवं किसको नगर इस पर कोई मतैक्य नहीं है। यद्यपि जनसंख्या इसका एक मापदंड हो सकती है पर यह सर्वव्यापी मापदंड नहीं हो सकता क्योंकि भारत एवं चीन में जो घने बसे देश हैं उनमें कई ऐसे ग्राम हैं जिनकी जनसंख्या पश्चिमी यूरोप एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के नगरों से अधिक है।

एक समय था जब ग्राम के निवासियों का मुख्य उद्यम कृषि करना या प्राथमिक गतिविधियों में लगे रहना था। परंतु वर्तमान समय में विश्व के विकसित देशों की नगरीय जनसंख्या यद्यपि शहरों में कार्य करती हैं तथापि वे गाँवों में रहना पसंद करते हैं। अतः ग्रामों एवं शहरों में आधारभूत अंतर यह होता है कि नगरों या शहरों के निवासियों का मुख्य व्यवसाय द्वितीयक एवं तृतीयक गतिविधियों से संबंधित है। इसके विपरीत ग्रामों में रहने वाले निवासियों का मुख्य व्यवसाय प्राथमिक गतिविधियाँ जैसे कृषि, मछली पकड़ना, लकड़ी काटना, खनन कार्य, पशुपालन इत्यादि से संबंधित होता है।

उप नगरीकरण

यह एक नवीन प्रवृत्ति है जिसमें मनुष्य शहर के घने बसे क्षेत्रों से हटकर रहन-सहन की अच्छी गुणवत्ता की खोज में शहर के बाहर स्वच्छ एवं खुले क्षेत्रों में जा रहे हैं। बड़े शहरों के समीप ऐसे महत्त्वपूर्ण उपनगर विकसित हो जाते हैं, जहाँ से प्रतिदिन हज़ारों व्यक्ति अपने घरों से कार्यस्थलों पर आते-जाते हैं।

ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या में उनके द्वारा संपन्न कार्यों के आधार पर विभेदीकरण अधिक अर्थपूर्ण है क्योंकि ग्रामीण एवं नगरीय बस्तियों द्वारा किए गए कार्यों के पदानुक्रम में समरूपता नहीं है। संयुक्त राज्य अमेरिका में पैट्रोल पंप को पदानुक्रम में निम्न श्रेणी का कार्य समझा जाता है, जबकि भारत में यह नगरीय कार्य के अंतर्गत आता है। यहाँ तक कि एक देश के अंदर ही कार्यों का स्तर प्रादेशिक अर्थव्यवस्था के अनुसार अलग-अलग हो सकता है, जो सुविधाएँ विकसित देशों के ग्रामों में पाई जाती हैं, वैसी सुविधाएँ विकासशील एवं अल्प विकसित देशों के गाँवों में दुर्लभ होती हैं।

1991 की भारतीय जनगणना में नगरीय बस्ती को इस प्रकार परिभाषित किया है। 'सभी स्थान जहाँ नगरपालिका, निगम, छावनी बोर्ड (कैंटोनमेंट बोर्ड) या अधिसूचित नगरीय क्षेत्र समिति (नोटीफाइड टाउन एरिया कमेटी) हो एवं कम से कम 5000 व्यक्ति वहाँ निवास करते हों, 75 प्रतिशत पुरुष श्रमिक गैर कृषि कार्यों में संलग्न हों व जनसंख्या का घनत्व 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो, ऐसे स्थान या क्षेत्र को नगरीय बस्ती कहेंगे'।

बस्तियों के प्रकार एवं प्रतिरूप

बस्तियों का वर्गीकरण उनकी आकृति एवं प्रतिरूपों के आधार पर किया जाता है। आकृति के आधार पर बस्तियों को मुख्यतया निम्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

(i) संहत बस्ती: इस प्रकार की बस्तियाँ वे होती हैं जिनमें मकान एक दूसरे के समीप बनाए जाते हैं।

इस तरह की बस्तयों का विकास नदी घाटियों के सहारे या उपजाऊ मैदानों में होता है। यहाँ रहने वाला समुदाय मिलकर रहता है एवं उनके व्यवसाय भी समान होते हैं।

(ii) प्रकीर्ण बस्ती : इन बस्तियों में मकान दूर-दूर होते हैं, तथा प्रायः खेतों के द्वारा एक दूसरे से अलग होते हैं। एक सांस्कृतिक आकृति जैसे पूजा-स्थल अथवा बाज़ार, बस्तियों को एक साथ बाँधता है।

ग्रामीण बस्ती

ग्रामीण बस्ती अधिक निकटता से तथा प्रत्यक्ष रूप से भूमि से नज़दीकी संबंध रखती हैं। यहाँ के निवासी अधिकतर प्राथमिक गतिविधियों में लगे होते हैं। जैसे-कृषि, पशुपालन एवं मछली पकड़ना आदि इनके प्रमुख व्यवसाय होते हैं। बस्तियों का आकार अपेक्षाकृत छोटा होता है। ग्रामीण बस्तियों को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं –

जल आपूर्ति

साधारणतया ग्रामीण बस्तियाँ जल स्त्रोतों या जलराशियों जैसे नदियाँ, झीलें एवं झरनों इत्यादि के समीप स्थित होती हैं, जहाँ जल आसानी से उपलब्ध हो जाता है। कभी-कभी पानी की आवश्यकता लोगों को अन्यथा असुविधाजनक स्थानों जैसे दलदल से घिरे द्वीपों अथवा नदी किनारों के निचले क्षेत्रों में बसने के लिए प्रेरित करते हैं। अधिकांश जल आधारित 'नम बिंदु' बस्तियों में पीने, खाना बनाने, वस्त्र धोने आदि के लिए जल की उपलब्धि जैसे अनेक लाभ उपलब्ध होते हैं। फार्म भूमि की सिंचाई के लिए नदियों और झीलों का उपयोग किया जा सकता है। इन्हीं जल स्त्रोतों से वहाँ के निवासी भोजन हेतु मछली पकड़ते हैं तथा नाव

चलाने योग्य नदियाँ एवं झीलें जल यातायात के लिए भी प्रयोग की जा सकती हैं।

भूमि

मनुष्य बसने के लिए उस जगह का चुनाव करता है जहाँ की भूमि कृषि कार्य के लिए उपयुक्त व उपजाऊ हो। यूरोप में दलदली क्षेत्र एवं निचले क्षेत्र में बस्तियाँ नहीं बसाई जाती हैं जबकि दक्षिणी पूर्वी एशिया में रहने वाले लोग नदी घाटियों के निम्न भाग एवं तटवर्ती मैदानों के निकट बस्तियाँ बसाते हैं जो कि उन्हें नम चावल की कृषि के लिए सहायक होते हैं। किसी भी क्षेत्र में प्रारंभिक अधिवासी उपजाऊ एवं समतल क्षेत्रों में ही बसते थे।

उच्च भूमि के क्षेत्र

मानव ने अपने अधिवास हेतु ऊँचे क्षेत्रों को इसलिए चुना कि वहाँ पर बाढ़ के समय होने वाली क्षति से बचा जा सके एवं मकान व जीवन सुरक्षित रह सके। नदी बेसिन के निम्न भाग में बस्तियाँ नदी वेदिकाओं एवं तटबंधों पर बसाई जाती हैं

क्योंकि ये भाग 'शुष्क बिंदु' होते हैं। उष्ण कटिबंधीय देशों के दलदली क्षेत्रों के निकट लोग अपने मकान स्तंभों पर बनाते हैं जिससे कि बाढ़ एवं कीड़े-मकोड़ों से बचा जा सके।

गृह निर्माण सामग्री

मानव बस्तियों के विकसित होने में गृहनिर्माण सामग्री की उपलब्धता भी एक बड़ा कारक होती है। जहाँ आसानी से लकड़ी, पत्थर आदि प्राप्त हो जाते हैं मनुष्य वहीं अपनी बस्तियाँ बसाता है। वनों को काट कर प्राचीन गाँवों को बनाया गया था जहाँ लकड़ी बहुतायत में थी।

चीन के लोयस क्षेत्र में वहाँ के निवासी कंदराओं में मकान बनाते थे एवं अफ्रीका के सवाना प्रदेश में कच्ची ईंटों के मकान बनते थे जबकि ध्रुवीय क्षेत्र में एस्किमो हिम खंडों से अपने इग्लू का निर्माण करते हैं।

सुरक्षा

राजनीतिक अस्थिरता, युद्ध या पड़ोसी समूहों के उपद्रवी होने की स्थिति में गाँवों को सुरक्षात्मक पहाड़ियों एवं द्वीपों पर बसाया जाता था। नाइजीरिया में खड़े इंसेलबर्ग अच्छी सुरक्षित स्थिति प्रदान करते हैं। भारत में अधिकतर दुर्ग ऊँचे स्थानों अथवा पहाड़ियों पर स्थित हैं।

नियोजित बस्तियाँ

इस तरह की बस्तियाँ सरकार द्वारा बसाई जाती हैं। ग्रामवासियों द्वारा स्वतः जिन बस्तियों की स्थिति का चयन नहीं किया जाता, सरकार द्वारा अधिगृहित की गई ऐसी भूमि पर निवासियों को सभी प्रकार की सुविधाएँ जैसे आवास, पानी तथा अन्य अवसंरचना आदि उपलब्ध कराकर बस्तियों को विकसित करती हैं। इथोपिया में सरकार द्वारा ग्रामीणीकरण योजना एवं भारत में इंदिरा गांधी नहर के क्षेत्र में नहरी बस्तियों का विकास इसके अच्छे उदाइराण हैं।

ग्रामीण बस्तियों के प्रतिरूप

ग्रामीण बस्तियों का प्रतिरूप यह दर्शाता है कि मकानों की स्थिति किस प्रकार एक दूसरे से संबंधित है। गाँव की आकृति एवं प्रसार को प्रभावित करने वाले कारकों में गाँव की स्थिति, समीपवर्ती स्थलाकृति एवं क्षेत्र का भूभाग प्रमुख स्थान रखते हैं। ग्रामीण बस्तियों का वर्गीकरण कई मापदंडों के आधार पर किया जा सकता है :

(i) विन्यास के आधार पर इनके मुख्य प्रकार हैं-मैदानी ग्राम, पठारी ग्राम, तटीय ग्राम, वन ग्राम एवं मरुस्थलीय ग्राम।

(ii) कार्य के आधार पर इसमें कृषि ग्राम, मछुवारों के ग्राम, लकड़हारों के ग्राम, पशुपालक ग्राम आदि आते हैं।

(iii) बस्तियों की आकृति के आधार पर इसमें कई प्रकार की ज्यामितिक आकृतियाँ हो सकती हैं जैसे कि रेखीय, आयताकार, वृत्ताकार, तारे के आकार की, 'टी' के आकार की, चौक पट्टी, दोहरे ग्राम इत्यादि।

(क) रैखिक प्रतिरूप उस प्रकार की बस्तियों में मकान सड़कों, रेल लाइनों, नदियों, नहरों, घाटी के किनारे अथवा तटबंधों पर स्थित होते हैं।

(ख) आयताकार प्रतिरूप ग्रामीण बस्तियों का यह प्रतिरूप समतल क्षेत्रों अथवा चौड़ी अंतरा पर्वतीय घाटियों में पाया जाता है। इसमें सड़कें आयताकार होती हैं जो एक दूसरे को समकोण पर काटती हैं।

(ग) वृत्ताकार प्रतिरूप इस प्रकार के गाँव झीलों व तालाबों आदि क्षेत्रों के चारों ओर बस्ती बस जाने से विकसित होते हैं। कभी-कभी ग्राम को इस योजना से बसाया जाता है कि उसका मध्य भाग खुला रहे जिसमें पशुओं को रखा जाए ताकि वे जंगली जानवरों से सुरक्षित रहें।

(घ) तारे के आकार का प्रतिरूप जहाँ कई मार्ग आकर एक स्थान पर मिलते हैं और उन मार्गों के सहारे मकान बन जाते हैं। वहाँ तारे के आकार की बस्तियाँ विकसित होती हैं।

(ड) 'टी' आकार, 'वाई' आकार, क्रॉस आकार : टी के आकार की बस्तियाँ सड़क के तिराहे पर विकसित होती हैं। जबकि वाई आकार की बस्तियाँ उन क्षेत्रों में पाई जाती हैं जहाँ पर दो मार्ग आकर तीसरे मार्ग से मिलते हैं। क्रॉस आकार की बस्तियाँ चौराहों पर प्रारंभ होती हैं जहाँ चौराहे से चारों दिशा में बसाव आरंभ हो जाता है।

(च) दोहरे ग्राम: नदी पर पुल या फेरी के दोनों ओर इन बस्तियों का विस्तार होता है।

ग्रामीण बस्तियों की समस्याएँ

विकासशील देशों में ग्रामीण बस्तियों की संख्या अधिक है एवं इनका आधारभूत ढाँचा भी अविकसित है। ये नियोजकों के सम्मुख बड़ी चुनौती और सुअवसर प्रस्तुत करते हैं।

विकासशील देशों में ग्रामीण बस्तियों में जल की आपूर्ति भी पर्याप्त नहीं है। पर्वतीय एवं शुष्क क्षेत्रों में निवासियों को पेय जल हेतु लंबी दूरियाँ तय करनी पड़ती हैं। जल जनित बीमारियाँ जैसे हैजा, पीलिया आदि सामान्य समस्या है। दक्षिणी एशिया के देश प्रायः बाढ़ एवं सूखे से ग्रस्त रहते हैं। सिंचाई सुविधाएँ कम होने से कृषि कार्य पर भी प्रभाव पड़ता है।

शौचघर एवं कूड़ा-कचरा निस्तारण की सुविधाएँ नगण्य हैं। जिससे इन क्षेत्रों में स्वास्थ्य से संबंधित समस्याएँ रहती हैं।

मकानों की रूपरेखा एवं उनके लिए प्रयुक्त होने वाली गृह निर्माण सामग्री हर पारिस्थितिक प्रदेश में भिन्न होती है। जो मकान मिट्टी, लकड़ी एवं छप्पर के बनाए जाते हैं उन्हें भारी वर्षा एवं बाढ़ के समय काफ़ी नुकसान पहुँचता है एवं हर वर्ष उनके उचित रख-रखाव की आवश्यकता पड़ती है। अधिकतर मकानों की रूपरेखा भी ऐसी होती है जिसमें उपयुक्त संवातन नहीं होता है। एक ही मकान में मनुष्यों के साथ पशु भी रहते हैं। इसी मकान में पशु शेड और उनके चारा रखने की जगह भी होती है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि जंगली जानवरों से पालतू पशुओं और उनके चारे की रक्षा उचित ढंग से हो सके।

कच्ची सड़क एवं आधुनिक संचार के साधनों की कमी भी यहाँ की प्रमुख समस्या है। वर्षा ऋतु में इन क्षेत्रों का संपर्क आसपास के क्षेत्र से कट जाता है जिससे आपतकालीन सेवाएँ प्रदान करने में भी गंभीर कठिनाइयाँ उपलब्ध हो जाती है। विशाल ग्रामीण जनसंख्या के लिए स्वास्थ्य एवं शिक्षा संबंधी पर्याप्त सुविधाएँ प्रदान करना भी कठिन हो जाता है। यह समस्या उस समय और विकट हो जाती है जब ग्रामीणीकरण उचित प्रकार से नहीं हुआ है और विशाल क्षेत्र में मकान दूर तक विकसित होते हैं।

नगरीय बस्तियाँ

तीव्र नगरीय विकास एक नूतन परिघटना है। कुछ समय पूर्व तक बहुत ही कम बस्तियाँ कुछ हज़ार से अधिक निवासियों वाली थी। प्रथम नगरीय बस्ती लंदन नगर की जनसंख्या लगभग 1810 ई. तक 10 लाख हो गई थी। 1982 में विश्व में करीब 175 नगर 10 लाख से अधिक जनसंख्या वाले थे। 1800 में विश्व की केवल 3 प्रतिशत जनसंख्या नगरीय बस्तियों में निवास करती थी जबकि वर्तमान समय में 48 प्रतिशत जनसंख्या नगरों में निवास करती है (तालिका 10.1)।

नगरीय बस्तियों का वर्गीकरण

नगरीय क्षेत्रों की परिभाषा एक देश से दूसरे देश में भिन्न है।

वर्गीकरण के कुछ सामान्य आधार जनसंख्या का आकार, मनुष्यों द्वारा किए जाने वाले व्यवसाय एवं प्रशासकीय ढाँचा है।

जनसंख्या का आकार

नगरीय क्षेत्रों को परिभाषित करने के लिए अधिकतर देशों ने इसी मापदंड को अपनाया है। नगरीय क्षेत्र की श्रेणी में आने के लिए जनसंख्या के आकार की निचली सीमा कोलंबिया में 1500, अर्जेंटाइना एवं पुर्तगाल में 2000, संयुक्त राज्य अमेरिका एवं थाईलैंड में 2500, भारत में 5000 एवं जापान में 30,000 व्यक्ति हैं। भारत में जनसंख्या के अतिरिक्त जनसंख्या घनत्व भी 400 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर होना चाहिए एवं साथ ही साथ गैर कृषि कार्य में लगी जनसंख्या को भी ध्यान में रखा जाता है। विभिन्न देशों में जनसंख्या घनत्व अधिक या कम होने की स्थिति में घनत्व वाला मापदंड उसी के अनुरूप बढ़ा या घटा दिया जाता है। डेनमार्क, स्वीडन एवं फिनलैंड में 250 व्यक्तियों की जनसंख्या वाले सभी क्षेत्र नगरीय क्षेत्र कहलाते हैं। आइसलैंड में नगर होने के लिए न्यूनतम जनसंख्या 300 मनुष्य होनी चाहिए जब कि कनाडा एवं वेनेजुएला में यह संख्या 1000 व्यक्ति है।

व्यावसायिक संरचना

जनसंख्या के आकार के अतिरिक्त कुछ देशों में जैसे भारत में प्रमुख आर्थिक गतिविधियों को भी नगरीय बस्तियाँ निर्दिष्ट करने के लिए मापदंड माना जाता है। इसी प्रकार इटली में उस बस्ती को नगरीय कहा जाता है जिसकी आर्थिक रूप से उत्पादक जनसंख्या का 50 प्रतिशत गैर कृषि कार्यों में संलग्न हो। भारत में यह मापदंड 75 प्रतिशत का रखा गया है।

प्रशासन

कुछ देशों में किसी बस्ती को नगरीय बस्ती में वर्गीकृत करने हेतु प्रशासनिक ढाँचे को मापदंड माना जाता है। उदाहरण के लिए भारत में किसी भी आकार की बस्तियों को नगर के रूप में वर्गीकृत किया जाता है यदि वहाँ नगरपालिका, छावनी बोर्ड या अधिसूचित नगरीय क्षेत्र समिति है। इसी प्रकार लैटिन अमेरिका के देश ब्राजील एवं बोलीविया में जनसंख्या आकार का ध्यान नहीं रखते हुए किसी भी प्रशासकीय केंद्र को नगरीय केंद्र माना जाता है।

स्थिति

नगरीय केंद्रों की स्थिति उनके द्वारा संपन्न कार्यों के आधार पर देखी जाती है। उदाहरण के तौर पर किसी अवकाश सैरगाह की स्थिति के लिए जो आवश्यक बातें होनी चाहिए वो औद्योगिक नगर, सेना नगर या एक समुद्री पत्तन नगर के लिए आवश्यक स्थितियों से भिन्न होती हैं। सामरिक नगरों की स्थिति ऐसी जगह हो जहाँ इसे प्राकृतिक सुरक्षा मिले; खनिज नगरों के लिए क्षेत्र में आर्थिक दृष्टिकोण से उपयोगी खनिजों का पाया जाना आवश्यक है; औद्योगिक नगरों के लिए स्थानीय शक्ति के साधन एवं कच्चा माल; पर्यटन केंद्र के लिए आकर्षक दृश्य या सामुद्रिक तट,

औषधीय जल वाला झरना या कोई ऐतिहासिक अवशेष; पत्तन के लिए पोताश्रय का होना।

प्राचीन नगरीय बस्तियों की स्थिति, जल, गृह निर्माण सामग्री एवं उपजाऊ भूमि उपलब्धता पर निर्भर रहती थी। यद्यपि वर्तमान में भी उपरोक्त कारकों का महत्त्व कम नहीं हुआ है फिर भी आधुनिक प्रौद्योगिकी के कारण ऐसे क्षेत्रों में भी नगरीय बस्तियाँ विकसित हो रही हैं जहाँ उपरोक्त सुविधाएँ न हों। पाइपलाइन के द्वारा जल दूर-दूर तक पहुँचाया जा सकता है एवं यातायात के साधनों के माध्यम से गृह निर्माण सामग्री भी दूरस्थ क्षेत्रों से प्राप्त की जा सकती है।

नगरों के विस्तार में स्थान के अलावा उनकी स्थिति भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जो नगर महत्त्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग के निकट स्थित हैं उनका विकास तेज़ी से हुआ है।

नगरीय क्षेत्रों के कार्य

प्राचीन नगर, प्रशासन, व्यापार, उद्योग, सुरक्षा एवं धार्मिक महत्त्व के केंद्र हुआ करते थे। वर्तमान समय में सुरक्षा तथा धर्म का कार्यात्मक विभेदीकरण के रूप में महत्त्व घटा है, परंतु कई अन्य कार्य इस सूची में जुड़ गए हैं। आजकल कई नए कार्य जैसे मनोरंजनात्मक, यातायात, खनन, निर्माण, आवासीय तथा सबसे नवीन सूचना प्रौद्योगिकी आदि कुछ विशिष्ट नगरों में संपन्न होते हैं। इनमें से कुछ कार्यों के लिए नगरीय केंद्रों को समीप के ग्रामीण क्षेत्रों से किसी भी प्रकार के आधारभूत संबंधों की आवश्यकता नहीं होती है।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का एक कार्य के रूप में वर्तमान एवं नवीन बस्तियों के विकास पर क्या प्रभाव होगा।

यद्यपि नगर बहुत से कार्य करते हैं पर हम केवल उनके द्वारा किए गए प्रमुख कार्यों का ही उल्लेख करते हैं। उदाहरण के तौर पर हम शैफील्ड को औद्योगिक नगर, लंदन को पत्तन नगर, चंडीगढ़ को प्रशासकीय नगर सोचते हैं। बड़े नगरों में विभिन्न प्रकार के कार्य किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त समय के अनुसार नए-नए कार्य विकसित होते रहते हैं। इंग्लैंड के 19वीं शताब्दी के मछली पकड़ने वाले पत्तनों ने अब पर्यटन को विकसित कर लिया है। कई प्राचीन बाज़ार नगर अब विनिर्माण कार्यों के लिए जाने जाते हैं। नगरों एवं शहरों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

प्रशासनिक नगर

राष्ट्र की राजधानियाँ जहाँ पर केंद्रीय सरकार के प्रशासनिक कार्यालय होते हैं उन्हें प्रशासनिक नगर कहा जाता है। जैसे नयी दिल्ली, केनबेरा, बीजिंग, अदीस अबाबा, वाशिंगटन डी.सी. एवं लंदन इत्यादि प्रशासनिक नगर हैं। राज्यों में भी ऐसे नगर हो सकते हैं जिनका कार्य प्रशासनिक हो, उदाहरण के लिए विक्टोरिया (ब्रिटिश कोलंबिया), अलबैनी (न्यूयार्क), चेन्नई (तमिलनाडु) इत्यादि।

व्यापारिक एवं व्यावसायिक नगर

कृषि बाज़ार कस्बे जैसे विनिपेग एवं कंसास नगर, बैंकिंग एवं वित्तीय कार्य करने वाले नगर, जैसे फ्रैंकफर्ट एवं एमसटर्डम, विशाल अंतर्देशीय केंद्र जैसे मैनचेस्टर एवं सेंट लूइस एवं परिवहन के केंद्र जैसे लाहौर, बगदाद एवं आगरा प्रमुख व्यापारिक केंद्र रहे हैं।

सांस्कृतिक नगर

तीर्थस्थान जैसे जैरूसलम, मक्का, जगन्नाथ पुरी एवं बनारस आदि सांस्कृतिक नगर हैं। धार्मिक दृष्टिकोण से इनका बहुत महत्त्व है।

इनके अतिरिक्त जो कार्य नगर करते हैं उनमें स्वास्थ्य एवं मनोरंजन (मियामी एवं पणजी), औद्योगिक (पिट्सबर्ग एवं जमशेदपुर), खनन (ब्रोकन हिल एवं धनबाद) एवं परिवहन (सिंगापुर एवं मुगलसराय) आदि सम्मिलित किए जाते हैं।

आकृति के आधार पर नगरों का वर्गीकरण

एक नगरीय बस्ती रेखीय, वर्गाकार, तारा के आकार या अर्ध चंद्राकार (चापाकार) हो सकती है। वास्तव में किसी भी नगर की आकृति, वास्तुकला एवं भवनों की शैली वहाँ के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं की देन होती है।

विकसित एवं विकासशील देशों के कस्बे एवं नगर उनके विकास एवं नगर नियोजन में कई तरह की विभिन्नताएँ रखते हैं। विकसित देशों में अधिकतर नगर योजनाबद्ध तरीके से बसाये गए हैं जबकि विकासशील देशों में अधिकतर नगरों की उत्पत्ति ऐतिहासिक है तथा उनकी आकृति अनियमित है। उदाहरण के तौर पर चंडीगढ़ एवं केनबरा नियोजित नगर हैं, जबकि भारत में छोटे कस्बे ऐतिहासिक रूप से परकोटे से बाहर की ओर बड़े नगरीय फैलाव में गैर योजनाबद्ध तरीके से विकसित हुए हैं।

अदीस अबाबा (नवीन पुष्प)

इथोपिया का राजधानी नगर अदीस अबाबा जैसा कि इसके नाम से विदित होता है (अदीस-नया, अबाबा-पुष्प) एक नया नगर है जिसकी स्थापना 1878 में हुई थी।

संपूर्ण नगर पर्वतीय घाटी स्थलाकृति पर स्थित है सड़कों का प्रारूप स्थानीय धरातल से प्रभावित है। राजकीय मुख्यालय प्याज्जा, अरात एवं आमिस्ट किलो से चारों ओर सड़कें जाती हैं। मरकाटो में एक बहुत विकसित बाज़ार है, जिसके विषय में मान्यता है कि उत्तर में काहिरा एवं दक्षिण में जोहंसबर्ग के बीच ये सबसे बड़ा बाज़ार है। अदीस अबाबा जहाँ एक बहु संकाय विश्वविद्यालय, चिकित्सा महाविद्यालय एवं कई अच्छे स्कूल होने की वजह से शिक्षा का भी एक महत्त्वपूर्ण केंद्र है। जिबूती-अदीस अबाबा रेलमार्ग का अंतिम स्टेशन है। बोले हवाई अड्डा सापेक्षतः एक नया हवाई अड्डा है। इस नगर का तेज़ी से विकास हुआ है,

क्योंकि यह इथोपिया के मध्य में स्थित है एवं कई प्रकार के कार्य यहाँ संपन्न किए जाते हैं।

केनबेरा

अमेरिकन वास्तुविद वाल्टर बरली ग्रिफिन ने 1912 में आस्ट्रेलिया की राजधानी के लिए इस नगर की योजना बनाई। भू-दृश्य की प्राकृतिक आकृतियों को ध्यान में रखते हुए लगभग 25,000 निवासियों के रहने के लिए इस उद्यान नगर की कल्पना की थी। इसमें पाँच मुख्य केंद्र थे, प्रत्येक के अलग-अलग कार्य थे। पिछले कुछ दशकों में कई उपनगर इसके समीप बन गए हैं जिनके अपने केंद्र हैं। नगर में बहुत खुले क्षेत्र हैं एवं कई उद्यान तथा पार्क हैं।

नगरीय बस्तियों के प्रकार

नगरीय बस्ती अपने आकार, उपलब्ध सुविधाओं एवं उनके द्वारा संपन्न किए जाने वाले कार्यों के आधार पर कई नामों से पुकारी जाती हैं जैसे नगर, शहर, मिलियन सिटी, सन्नगर, विश्वनगरी।

नगर

नगर की संकल्पना को ग्राम के संदर्भ में आसानी से समझा जा सकता है। केवल जनसंख्या का आकार ही मापदंड नहीं होता है। नगरों एवं ग्रामों में कार्यों की विषमता सदैव स्पष्ट नहीं होती है परंतु कुछ विशेष कार्य जैसे निर्माण, खुदरा एवं थोक व्यापार एवं व्यावसायिक सेवाएँ नगरों में ही विद्यमान होती हैं।

शहर

यह अग्रणी नगर होता है। जो अपने स्थानीय व क्षेत्रीय प्रतिस्पर्धियों को पीछे छोड़ देता है। लेविस ममफोर्ड के शब्दों में, 'वास्तव में शहर उच्च एवं अधिक जटिल प्रकार के सहचारी जीवन का भौतिक रूप हैं।' शहर नगरों से बड़े होते हैं एवं इनके आर्थिक कार्य भी अधिक होते हैं। यहाँ पर प्रमुख वित्तीय संस्थान, प्रादेशिक प्रशासकीय कार्यालय एवं यातायात के केंद्र होते हैं। जब इनकी जनसंख्या 10 लाख से अधिक हो जाती है तब इन्हें मिलियन सिटी कहा जाता है।

सन्नगर

इस शब्दावली का प्रयोग 1915 में पैट्रिक गिडिज ने किया था। यह विशाल विकसित नगरीय क्षेत्र होते हैं जो कि मूलतः अलग-अलग नगरों या शहरों के आपस में मिल जाने से एक विशाल नगरीय विकास क्षेत्र में परिवर्तित हो जाता है। ग्रेटर लंदन, मानचेस्टर, शिकागो एवं टोक्यो इसके उदाहरण हैं। क्या आप भारत से ऐसा उदाहरण दे सकते हैं?

विश्वनगरी

यह यूनानी शब्द 'मेगालोपोलिस' से बना है जिसका अर्थ होता है 'विशाल नगर'। इसका प्रयोग 1957 में जीन गोटमेन ने किया। यह बड़ा महानगर प्रदेश होता है जिसमें सन्नगरों का समूह होता है। विश्वनगरी का सबसे अच्छा उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका में है जहाँ उत्तर में बोस्टन से दक्षिण में वाशिंगटन तक नगरीय भूदृश्य के रूप में दिखाई देता है।

मिलियन सिटी

विश्व में मिलियन सिटी की संख्या पहले की अपेक्षा निरंतर बढ़ रही है। 1800 में लंदन इस श्रेणी में आया, 1850 में पेरिस, 1860 में न्यूयार्क तथा 1950 तक विश्व में 80 शहर मिलियन सिटी थे। मिलियन सिटी की वृद्धि प्रत्येक तीसरे दशक में तीन गुनी हुई है। 1975 में इनकी संख्या 160 थी जो बढ़कर 2005 में 438 हो गई।

मेगासिटी का वितरण

एक मेगासिटी शब्दावली उन नगरों के लिए प्रयुक्त की जाती है जिनकी जनसंख्या मुख्य नगर व उपनगरों को मिलाकर एक करोड़ से अधिक हो। सबसे पहले 1950 में न्यूयार्क ने यह श्रेय प्राप्त किया था जब उसकी जनसंख्या 1 करोड़ 25 लाख हो गई। वर्तमान में 25 मेगासिटी हैं। पिछले 50 वर्षों में विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों में इनकी संख्या बढ़ी है।

विकासशील देशों में मानव बस्तियों की समस्याएँ

विकासशील देशों में बस्तियों से संबंधित कई प्रकार की समस्याएँ हैं जैसे अवहनीय जनसंख्या का केंद्रीकरण, छोटे व तंग आवास एवं गलियाँ, पीने योग्य जल जैसी सुविधाओं की कमी। इसके अतिरिक्त इनमें आधारभूत ढाँचा जैसे बिजली, गंदे पानी की निकासी, स्वास्थ्य एवं शिक्षा आदि सुविधाओं की भी कमी होती है।

नगरीय बस्तियों की समस्याएँ

रोज़गार के अवसर एवं नागरिक सुविधाओं के लिए मानव शहरों की ओर आता है। परंतु विकासशील देशों में अधिकतर शहर अनियोजित हैं अतः आने वाले व्यक्ति अत्यंत भीड़ की स्थिति पैदा कर देते हैं। विकासशील देशों के आधुनिक शहरों में आवासों की कमी लंबवत विस्तार (बहुमंजिला मकान) तथा गंदी बस्तियों की वृद्धि प्रमुख विशेषताएँ हैं। अनेक शहरों में जनसंख्या का बढ़ता भाग निम्न स्तरीय आवासों जैसे गंदी बस्तियों, अनधिकृत बस्तियों में रहते हैं। भारत के अधिकांश मिलीयन सिटी 25 प्रतिशत निवासी अवैध बस्तियों में रहते हैं और ऐसे नगर अन्य नगरों की अपेक्षा दोगुनी तेज़ी से बढ़ रहे हैं। एशिया पेसिफिक देशों में नगरीय जनसंख्या का 60 प्रतिशत भाग अनधिकृत बस्तियों में रहता है।

एक स्वस्थ शहर क्या है?

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने बतलाया कि एक स्वस्थ शहर में निम्न सुविधाएँ अवश्य होनी चाहिए :

'स्वच्छ' एवं 'सुरक्षित' वातावरण

सभी निवासियों की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति

स्थानीय सरकार में समुदाय की भागीदारी

सभी के लिए आसानी से उपलब्ध स्वास्थ्य सुविधाएँ

आर्थिक समस्याएँ

विश्व के विकासशील देशों के ग्रामीण व छोटे नगरीय क्षेत्रों में रोज़गार के घटते अवसरों के कारण जनसंख्या का शहरों की ओर पलायन हो रहा है। यह विशाल प्रवासी जनसंख्या नगरीय क्षेत्रों, अकुशल एवं अर्धकुशल श्रमिकों, की संख्या में अत्यधिक वृद्धि कर देती है, जबकि इन क्षेत्रों में जनसंख्या पहले से ही चरम पर होती है।

सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याएँ

विकासशील देशों के शहर विभिन्न प्रकार की सामाजिक बुराइयों से ग्रस्त हैं। अपर्याप्त वित्तीय संसाधनों के कारण बहुसंख्यक निवासियों की आधारभूत सामाजिक ढाँचागत आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो पाती हैं। उपलब्ध स्वास्थ्य एवं शिक्षा संबंधी सुविधाएँ गरीब नगरवासियों की पहुँच से बाहर रहती हैं। विकासशील देशों में स्वस्थ सूचक भी एक निराशाजनक चित्र प्रस्तुत करते हैं। बेरोज़गारी एवं शिक्षा की कमी के कारण अपराध अधिक होते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों से स्थानांतरित जनसंख्या में पुरुषों की अधिकता के कारण इन नगरों में जनसंख्या का लिंग अनुपात असंतुलित हो जाता है।

पर्यावरण संबंधी समस्याएँ

विकासशील देशों में रहने वाली विशाल नगरीय जनसंख्या जल का केवल उपयोग ही नहीं करती वरन् जल एवं सभी प्रकार के व्यर्थ पदार्थों का निस्तारण भी करती है। विकासशील देशों के अनेक नगरों में पीने योग्य पानी की न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति तथा घरेलू और औद्योगिक उपयोग के लिए जल की उपलब्धता सुनिश्चित करना अत्यधिक कठिन है। घरेलू एवं औद्योगिक कार्यों के लिए परंपरागत ईंधन के व्यापक उपयोग के कारण वायु प्रदूषित हो जाती है। एक अनुपयुक्त मल निस्तारण व्यवस्था अस्वास्थ्यकर दशाएँ पैदा करती हैं। घरेलू एवं औद्योगिक अपशिष्ट को सामान्य मल-व्यवस्था में डाल दिया जाता है या बिना किसी शोधन के अनिश्चित स्थानों में डाल दिया जाता है। जनसंख्या को आवास प्रदान करने के लिए विशाल कंकरीट ढाँचे बनाए जाते हैं जो नगरों में 'उष्म द्वीप' बनाने में सहायक भूमिका निभाते हैं।

समान, संसाधन एवं मनुष्यों के संचलन के द्वारा शहर, नगर एवं ग्रामीण बस्ती आपस में एक दूसरे के संपर्क में रहते हैं। मानव बस्तियों को बनाए रखने के लिए नगरीय ग्रामीण संपर्क अत्यंत आवश्यक है। विशेष रूप से विकासशील देशों में ग्रामीण जनसंख्या की वृद्धि ने रोज़गार सृजन एवं आर्थिक अवसरों को पीछे धकेल दिया है जिसके कारण ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की ओर प्रवास क्रमशः बढ़ा है। जिसने नगरीय क्षेत्रों में पहले से ही समस्याग्रस्त ढाँचागत सुविधाओं और सेवाओं पर बहुत अधिक दबाव बढ़ा दिया है। ग्रामीण निर्धनता को दूर करना शीघ्र आवश्यक है। ग्रामीण बस्तियों में रहन-सहन के स्तर को सुधारना एवं वहाँ रोज़गार व शिक्षा के अवसरों का सृजन करना भी आवश्यक है। ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में विभिन्न आर्थिक सामाजिक एवं पर्यावरणीय आवश्यकताओं को संतुलित करके उनके अनुपूरक योगदान तथा संपर्कों का पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए।

नगरीय रणनीति की योजना

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ने 'नगर रणनीति' में निम्न प्राथमिकताएँ बताई हैं:

नगरीय निर्धनों के लिए 'आश्रयस्थल' में वृद्धि

आधारभूत नगरीय सुविधाओं जैसे शिक्षा, प्राथमिक स्वास्थ्य, स्वच्छ जल और सफाई का प्रबंध आदि को उपलब्ध करवाना।

महिलाओं की 'मूलभूत सेवाओं' तथा राजकीय सुविधाओं तक पहुँच में सुधार

उर्जा उपयोग तथा वैकल्पिक परिवहन तंत्र को उन्नत बनाना।

वायु प्रदूषण को कम करना।

Class-12-B

1. जनसंख्या : वितरण, घनत्व, वृद्धि और संघटन
2. प्रवास: प्रकार, कारण और परिणाम
3. मानव विकास
4. भूससाधन तथा कृषि
5. जल संसाधन
6. खनिज तथा ऊर्जा संसाधन
7. निर्माण उद्योग
8. भारत के संदर्भ में नियोजन और सतत पोषणीय विकास
9. परिवहन तथा संचार
10. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार
11. भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में चयनित कुछ मुद्दे एवं समस्याएँ

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

जनसंख्या वितरण, घनत्व, वृद्धि और संघटन

लोग किसी देश के अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटक होते हैं। भारत अपनी 102.8 करोड़ (2001) जनसंख्या के साथ चीन के बाद विश्व में दूसरा सघनतम बसा हुआ देश है। भारत की जनसंख्या उत्तर अमेरिका, दक्षिण अमेरिका और आस्ट्रेलिया की मिलाकर कुल जनसंख्या से भी अधिक है। प्रायः यह तर्क दिया जाता है कि इतनी बड़ी जनसंख्या निश्चित तौर पर इसके सीमित संसाधनों पर दबाव डालती है और देश में अनेक सामाजिक, आर्थिक समस्याओं के लिए उत्तरदायी हैं।

इस अध्याय में हम भारत की जनसंख्या के वितरण प्रतिरूप, घनत्व, वृद्धि और संघटन के बारे में विवेचना करेंगे।

जनसंख्या आँकड़ों के स्रोत

हमारे देश में जनसंख्या के आँकड़ों को प्रति दस वर्ष बाद होने वाली जनगणना द्वारा एकत्रित किया जाता है। भारत की पहली जनगणना 1872 ई. में हुई थी किंतु पहली संपूर्ण जनगणना 1881 ई. में संपन्न हुई थी।

जनसंख्या का वितरण

भारत में जनसंख्या के वितरण का प्रतिरूप अत्यधिक असम है। देश में राज्यों और केंद्र-शासित प्रदेशों का जनसंख्या में प्रतिशत अंश (परिशिष्ट 1 क) दर्शाता है कि उत्तर प्रदेश की जनसंख्या सर्वाधिक है, इसके पश्चात महाराष्ट्र, बिहार, पश्चिम बंगाल और आंध्र प्रदेश का स्थान है।

तालिका परिशिष्ट क से जाँच कीजिए कि तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, राजस्थान, कर्नाटक और गुजरात के साथ उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, पश्चिम बंगाल और आंध्र प्रदेश की जनसंख्या मिलकर देश की कुल जनसंख्या का 76 प्रतिशत भाग है। दूसरी ओर जम्मू और कश्मीर (0.98%), अरुणाचल प्रदेश (0.11%) और उत्तराखण्ड (0.83%) जैसे राज्यों की जनसंख्या का आकार इनके विशाल भौगोलिक क्षेत्र के बावजूद अत्यंत छोटा है।

भारत में जनसंख्या का ऐसा असम स्थानिक वितरण देश की जनसंख्या और भौतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा ऐतिहासिक कारकों के बीच घनिष्ठ संबंध प्रकट करता है। जहाँ तक भौतिक कारकों का संबंध है, यह स्पष्ट है कि भू-विन्यास और जल की उपलब्धता के साथ जलवायु प्रमुख रूप से वितरण के प्रतिरूपों का निर्धारण करती हैं। परिणामस्वरूप हम देखते हैं कि उत्तर भारत के मैदानों, डेल्टाओं और तटीय मैदानों में जनसंख्या का अनुपात दक्षिणी और मध्य भारत के राज्यों के आंतरिक जिलों, हिमालय, उत्तर-पूर्वी और पश्चिमी कुछ राज्यों की अपेक्षा उच्चतर है। फिर भी, सिंचाई के विकास (राजस्थान), खनिज एवं ऊर्जा संसाधनों की उपलब्धता (झारखंड) और परिवहन जाल के विकास (प्रायद्वीपीय राज्यों) के परिणामस्वरूप उन क्षेत्रों में जो पहले विरल जनसंख्या क्षेत्र थे वे अब जनसंख्या के मध्यम् से उच्च संकेन्द्रण के क्षेत्र हो गए हैं।

जनसंख्या वितरण के सामाजिक, आर्थिक और ऐतिहासिक कारकों में से महत्त्वपूर्ण कारक स्थायी कृषि का उद्भव और कृषि विकास, मानव बस्ती के प्रतिरूप, परिवहन जाल-तंत्र का विकास, औद्योगीकरण और नगरीकरण हैं। ऐसा देखा गया है कि भारत के नदीय मैदानों और तटीय क्षेत्रों में स्थित प्रदेश सदैव ही विशाल जनसंख्या सांद्रण वाले प्रदेश रहे हैं। यद्यपि इन प्रदेशों में जमीन और जल जैसे प्राकृतिक संसाधनों में, उपयोग के कारण निम्नीकरण हुआ है, फिर भी मानव बस्ती के आरंभिक इतिहास और परिवहन जाल-तंत्र के विकास के कारण जनसंख्या का सांद्रण उच्च बना हुआ है। दूसरी ओर दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, बंगलौर, पुणे, अहमदाबाद, चेन्नई और जयपुर के नगरीय क्षेत्र औद्योगिक विकास और नगरीकरण के कारण बड़ी संख्या में ग्रामीण नगरीय प्रवासियों को आकर्षित कर रहे हैं। इसलिए इन क्षेत्रों में जनसंख्या का उच्च सांद्रण पाया जाता है।

जनसंख्या का घनत्व

जनसंख्या के घनत्व को प्रति इकाई क्षेत्र में व्यक्तियों की संख्या द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। इससे भूमि के संदर्भ में जनसंख्या के स्थानिक वितरण को बेहतर ढंग से समझने में सहायता मिलती है। भारत का जनसंख्या घनत्व 324 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. (2001) है जो एशिया के सघनतम बसे देशों बांग्लादेश (849 व्यक्ति) और जापान (334 व्यक्ति) के बाद तृतीय स्थान पर है। 1951 ई. में जनसंख्या का घनत्व 117 व्यक्ति/वर्ग कि.मी. से बढ़कर 2001 में 324 व्यक्ति/प्रतिवर्ग कि.मी. होने से विगत 50 वर्षों में 200 व्यक्ति प्रति वर्ग कि. मी. की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है।

परिशिष्ट 1 (क) में दर्शाए गए आँकड़े देश में जनसंख्या घनत्वों की स्थानिक भिन्नता का आभास कराते हैं जो अरुणाचल प्रदेश में कम से कम 13 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. से लेकर दिल्ली के राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में 9,294 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. तक है। उत्तरी भारत के राज्यों पश्चिम बंगाल (904), बिहार (880) और उत्तर प्रदेश (689) में जनसंख्या घनत्व उच्चतर है जबकि प्रायद्वीपीय भारत के राज्यों में केरल (819) और तमिलनाडु (478) में उच्चतर घनत्व पाया जाता है। असम, गुजरात, आंध्र प्रदेश, हरियाणा, झारखंड, उड़ीसा में - मध्यम घनत्व पाया जाता है। हिमालय प्रदेश के पर्वतीय राज्यों और असम को छोड़कर भारत के उत्तर-पूर्वी राज्यों में अपेक्षाकृत - निम्न घनत्व हैं जबकि अंडमान और निकोबार द्वीपों को छोड़कर - केंद्र शासित प्रदेशों में जनसंख्या के उच्च घनत्व पाए जाते हैं।

जनसंख्या का घनत्व, जैसा कि पहले के अनुच्छेदों में - चर्चा की जा चुकी है. एक अशोधित माप है। कुल कृषित भूमि पर जनसंख्या के दबाव के संदर्भ में मानव भूमि अनुपात - के बेहतर परिज्ञान के लिए कायिक और

कृषीय घनत्वों को ज्ञात करना चाहिए जो भारत जैसे विशाल कृषि जनसंख्या वाले देश के लिए सार्थक हैं।

कायिक घनत्व = कुल जनसंख्या / निवल कृषित क्षेत्र।

कृषीय घनत्व - कुल कृषि जनसंख्या / निवल कृषित क्षेत्र।

कृषि जनसंख्या में कृषक, कृषि मजदूर और उनके परिवार के सदस्य सम्मिलित होते हैं।

जनसंख्या की वृद्धि

जनसंख्या वृद्धि दो समय बिंदुओं के बीच किसी क्षेत्र विशेष में रहने वाले लोगों की संख्या में परिवर्तन को कहते हैं। इसकी दर को प्रतिशत में अभिव्यक्त किया जाता है। जनसंख्या वृद्धि के दो घटक होते हैं, जिनके नाम हैं- प्राकृतिक (Natural) और अभिप्रेरित (Induced) । जबकि प्राकृतिक वृद्धि का विश्लेषण अशोधित जन्म और मृत्यु दरों से निर्धारित किया जाता है, अभिप्रेरित घटकों को किसी दिए गए क्षेत्र में लोगों के अंतर्वर्ती और बहिर्वर्ती संचलन की प्रबलता द्वारा स्पष्ट किया जाता है। फिर भी, इस अध्याय में हम भारत की जनसंख्या की केवल प्राकृतिक वृद्धि की विवेचना करेंगे।

भारत की जनसंख्या के दोनों दशकीय और वार्षिक वृद्धि दर बहुत ऊँचे हैं और समय के साथ नित्य बढ़ रहे हैं। भारत की जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर 2.4 प्रतिशत है। वृद्धि की इस वर्तमान दर से अनुमान लगाया गया है कि अगले 36 वर्षों में देश की जनसंख्या दुगुनी हो जाएगी और यहाँ तक कि चीन की जनसंख्या को थी पार कर जाएगी।

जनसंख्या के दुगुना होने का समय जनसंख्या के दुगुना होने का समय वर्तमान वार्षिक वृद्धि दर पर किसी भी जनसंख्या के दुगुना होने में लगने वाला वार्षिक जन्म दर और मृत्यु दर तथा प्रवास की दर के कारण हुई है और इसलिए यह वृद्धि विभिन्न प्रवृत्तियों को दर्शाती है। इस अवधि में वृद्धि की चार सुस्पष्ट प्रावस्थाओं को पहचाना गया है :

प्रावस्था क: 1901 से 1921 की अवधि को भारत की जनसंख्या की वृद्धि की रूद्ध अथवा स्थिर प्रावस्था कहा जाता है क्योंकि इस अवधि में वृद्धि दर अत्यंत निम्न थी, यहाँ तक कि 1911-1921 के दौरान ऋणात्मक वृद्धि दर दर्ज की गई। जन्म दर और मृत्यु दर दोनों ऊँचे थे जिससे वृद्धि दर निम्न बनी रही (परिशिष्ट । ग)। निम्न स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सेवाएँ, अधिकतर लोगों की निरक्षरता, भोजन और अन्य आधारभूत आवश्यकताओं का अपर्याप्त वितरण इस अवधि में मोटे तौर पर उच्च जन्म और मृत्यु दरों के लिए उत्तरदायी थे।

प्रावस्था ख: 1921-1951 के दशकों को जनसंख्या की स्थिर वृद्धि की अवधि के रूप में जाना जाता है। देश भर में स्वास्थ्य और स्वच्छता में व्यापक सुधारों ने मृत्यु दर को नीचे ला दिया। साथ ही साथ बेहतर परिवहन और संचार तंत्र से वितरण प्रणाली में सुधार हुआ। फलस्वरूप अशोधित जन्म दर ऊँची बनी रही जिससे पिछली प्रावस्था की तुलना में वृद्धि दर उच्चतर हुई। 1920 के दशक की महान आर्थिक मंदी और द्वितीय विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि में यह वृद्धि दर प्रभावशाली थी।

प्रावस्था ग: 1951-81 के दशकों को भारत में जनसंख्या विस्फोट की अवधि के रूप में जाना जाता है। यह देश में मृत्यु दर में तीव्र ह्रास और जनसंख्या की उच्च प्रजनन दर के कारण हुआ। औसत वार्षिक वृद्धि दर 2.2 प्रतिशत तक ऊँची रही। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यही वह अवधि थी

जिसमें एक केंद्रीकृत नियोजन प्रक्रिया के माध्यम से विकासात्मक कार्यों को आरंभ किया गया। अर्थव्यवस्था सुधरने लगी जिससे अधिकांश लोगों के जीवन की दशाओं में सुधार सुनिश्चित हुआ। परिणामस्वरूप जनसंख्या की प्राकृतिक वृद्धि उच्च और वृद्धि दर उच्चतर हुई। इन सबके अतिरिक्त तिब्बतियों, बांग्लादेशियों, नेपालियों को देश में लाने वाले बढ़ते अंतर्राष्ट्रीय प्रवास और यहाँ तक कि पाकिस्तान से आने वाले लोगों ने भी उच्च वृद्धि दर में योगदान दिया।

प्रावस्था घ: 1981 के पश्चात् वर्तमान तक देश की जनसंख्या की वृद्धि दर, यद्यपि ऊँची बनी रही, परंतु धीरे-धीरे मंद गति से घटने लगी (तालिका 1.1) ऐसी जनसंख्या वृद्धि के लिए अशोधित जन्म दर की अधोमुखी प्रवृत्ति को उत्तरदायी माना जाता है। बदले में यह देश में विवाह के समय औसत आयु में वृद्धि जीवन की गुणवत्ता विशेष रूप से स्त्री शिक्षा में सुधार से प्रभावित हुई।

देश में जनसंख्या की वृद्धि दर अभी भी ऊँची है और विश्व विकास रिपोर्ट द्वारा यह प्रक्षेपित किया गया है कि 2025 ई. तक भारत की जनसंख्या 135 करोड़ को स्पर्श करेगी।

अब तक किया गया विश्लेषण औसत वृद्धि दर को दर्शाता है, किंतु देश में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में वृद्धि दर में विस्तृत भिन्नताएँ पाई जाती हैं (परिशिष्ट । घ), जिसकी विवेचना नीचे की गई है।

जनसंख्या वृद्धि में क्षेत्रीय भिन्नताएँ

1991-2001 के दौरान भारत के राज्यों और केंद्र-शासित प्रदेशों में जनसंख्या की वृद्धि दर सुस्पष्ट प्रतिरूप दर्शाती है।

केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, पुडुच्चेरी और गोआ जैसे राज्यों में निम्न वृद्धि दर पाई जाती है जो दशक में 20 प्रतिशत से अधिक नहीं हुई। केरल (9.4) में न केवल इस वर्ग के राज्यों में बल्कि पूरे देश में भी निम्नतम वृद्धि दर दर्ज की गई है।

देश के उत्तर-पश्चिमी, उत्तरी और उत्तर-मध्य भागों में पश्चिम से पूर्व स्थित राज्यों की एक सतत पेटी में दक्षिणी राज्यों की अपेक्षा उच्च वृद्धि दर पाई जाती है। इस पेटी के राज्यों जैसे गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, मध्य प्रदेश, सिक्किम, असम, पश्चिम बंगाल, बिहार, छत्तीसगढ़ और झारखंड में औसत वृद्धि दर 20-25 प्रतिशत रही।

भारत में जनसंख्या वृद्धि का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष इसके किशोरों की वृद्धि है। वर्तमान में किशोरों अर्थात् 10-19 वर्ष का आयु वर्ग का अंश 22

प्रतिशत है (2001), जिसमें 53 प्रतिशत किशोर और 47 प्रतिशत किशोरियाँ सम्मिलित हैं। किशोर जनसंख्या, यद्यपि उच्च संभावनाओं से युक्त युवा जनसंख्या समझी जाती है, यदि उन्हें समुचित ढंग से मार्गदर्शित और दिशा निर्देशित न किया जाए तो वे काफ़ी सुभेद्य (Vulnerable) भी होते हैं। जहाँ तक इन किशोरों का संबंध है समाज के समक्ष अनेक चुनौतियाँ हैं जिनमें से कुछ विवाह की निम्न आयु, निरक्षरता, विशेषतः स्त्री निरक्षरता, विद्यालय विरतछात्र (school dropout), पोषकों की निम्न ग्राह्यता, किशोरी माताओं में उच्च मातृ मृत्यु दर, एच.आई.वी./एड्स के संक्रमण की उच्च दरें, शारीरिक और मानसिक अपंगता अथवा मंदता, औषध दुरुपयोग और मदिरा सेवन किशोर अपचार और अपराध करना इत्यादि हैं।

इन तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए भारत सरकार ने किशोर वर्गों को उपयुक्त शिक्षा प्रदान करने के लिए कुछ निश्चित नीतियाँ बनाई हैं ताकि उनके गुणों का बेहतर मार्गदर्शन और उपयुक्त उपयोग किया जा सके। राष्ट्रीय युवा नीति एक ऐसा उदाहरण है जिसे हमारी विशाल, युवा और किशोर जनसंख्या के समग्र विकास की देखरेख हेतु अभिकल्पित किया गया है।

2003 ई. में प्रायोजित की गई भारत सरकार की युवा नीति, युवाओं और किशोरों के चौमुखी विकास पर बल देती है ताकि देश के रचनात्मक विकास में वे अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने में सक्षम हो सकें। इसका ध्येय देशभक्ति और उत्तरदायी नागरिकता के गुणों का प्रबलन भी है।

इस नीति का मुख्य ध्येय, निर्णय लेने में युवाओं की प्रभावी सहभागिता और एक सुयोग्य नेतृत्व के उत्तरदायित्वों के निर्वहन के संदर्भ में उनको सशक्त करना है। महिलाओं और लड़कियों के सशक्तिकरण पर विशेष बल दिया गया ताकि पुरुषों और महिलाओं की स्थिति में समता लाई जा सके। इनके अतिरिक्त युवाओं के स्वास्थ्य, क्रीड़ा और प्रमोद, रचनात्मकता और विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में नए परिवर्तनों के बारे में जागरूकता की देखरेख हेतु सोचे-समझे प्रयत्न किए गए।

ऊपर की गई विवेचना से ऐसा प्रतीत होता है कि देश में दिक् और काल के संदर्भ में जनसंख्या की वृद्धि दर में व्यापक भिन्नता पाई जाती है जो जनसंख्या की वृद्धि से संबंधित अनेक सामाजिक समस्याओं को उजागर करती है। फिर भी जनसंख्या के वृद्धि प्रतिरूपों की बेहतर अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि जनसंख्या के सामाजिक संघटन की पड़ताल की जाए।

जनसंख्या संघटन

जनसंख्या संघटन, जनसंख्या भूगोल के अंतर्गत अध्ययन का एक सुस्पष्ट क्षेत्र है जिसमें आयु व लिंग का विश्लेषण, निवास का स्थान, मानवजातीय लक्षण, जनजातियाँ, भाषा, धर्म, वैवाहिक स्थिति, साक्षरता और शिक्षा, व्यावसायिक विशेषताएँ आदि का अध्ययन किया जाता है। इस खंड में ग्रामीण नगरीय विशेषताओं, - भाषा, धर्म और व्यवसाय के प्रतिरूपों के संदर्भ में भारत की जनसंख्या के संघटन की विवेचना की जाएगी।

ग्रामीण-नगरीय संघटन

अपने-अपने निवास के स्थानों के अनुसार जनसंख्या का संघटन सामाजिक और आर्थिक विशेषताओं का एक महत्त्वपूर्ण सूचक है। जब देश की कुल जनसंख्या का 72 प्रतिशत भाग गाँवों में रहता हो तब यह और भी सार्थक हो जाता है। दूसरी ओर दादरा और नगर हवेली (77.1 प्रतिशत) को छोड़कर केंद्र-शासित प्रदेशों का लघु अनुपात ही ग्रामीण जनसंख्या का है। गाँवों का आकार भी काफ़ी हद तक भिन्न है। उत्तर-पूर्वी भारत के पहाड़ी राज्यों, पश्चिमी राजस्थान और कच्छ के रन में यह 200 व्यक्तियों से कम और केरल व महाराष्ट्र के कुछ भागों में यह 17,000 व्यक्ति तक पाया जाता है। भारत की ग्रामीण जनसंख्या के वितरण के प्रतिरूप का संपूर्ण परीक्षण उजागर करता है कि अंतर-राज्य और अंतः राज्य दोनों स्तरों पर नगरीकरण का सापेक्षिक परिमाण और ग्रामीण-नगरीय प्रवास का विस्तार ग्रामीण जनसंख्या के सांद्रण को नियंत्रित करते हैं।

आपने देखा होगा कि ग्रामीण जनसंख्या के विपरीत भारत में नगरीय जनसंख्या का अनुपात (27.8 प्रतिशत) काफ़ी निम्न है किंतु पिछले दशकों में यह वृद्धि की बहुत तीव्र दर को दर्शा रहा है। वास्तव में 1931 ई. से नगरीय जनसंख्या की वृद्धि दर संवृद्ध आर्थिक विकास, स्वास्थ्य और स्वास्थ्य संबंधी दशाओं में सुधार के कारण तेजी से बढ़ी है।

कुल जनसंख्या की भाँति नगरीय जनसंख्या के वितरण में भी देश भर में भिन्नताएँ पाई जाती हैं (परिशिष्ट 1 घ)।

फिर भी ऐसा देखा गया है कि लगभग सभी राज्यों और केंद्र-शासित प्रदेशों में नगरीय जनसंख्या काफ़ी बढ़ी है। यह सामाजिक, आर्थिक दशाओं के संदर्भ में नगरीय क्षेत्रों के विकास और ग्रामीण नगरीय प्रवास की बढ़ी हुई दर दोनों को इंगित करता है। उत्तरी भारत के मैदानों में मुख्य सड़कों के मिलन बिंदुओं और रेलमार्गों से सटे हुए नगरीय क्षेत्रों, कोलकाता, मुंबई, बंगलौर-मैसूर, मदुरै-कोयम्बटूर, अहमदाबाद-सूरत, दिल्ली, कानपुर और लुधियाना-जालंधर में ग्रामीण-नगरीय प्रवास सुस्पष्ट है। कृषि की दृष्टि से प्रगतिरुद्ध मध्य और निम्न गंगा के मैदानों, तेलंगाना, असिंचित पश्चिमी राजस्थान, उत्तर-पूर्व के दूर-दराज के पहाड़ी और जनजातीय क्षेत्रों, प्रायद्वीपीय भारत के बाढ़ संभावित क्षेत्रों और मध्य प्रदेश के पूर्वी भाग में नगरी करण का स्तर निम्न रहा है।

भाषाई संघटन

भारत एक भाषाई विविधता की भूमि है। ग्रियर्सन के अनुसार (भारत का भाषाई सर्वेक्षण, 1903-1928) देश में 179 भाषाएँ और 544 के लगभग बोलियाँ थीं। आधुनिक भारत के संदर्भमें 18 भाषाएँ अनुसूचित हैं (1991 जनगणना) और अनेक भाषाएँ गैर-अनुसूचित हैं। देखिए ! दस रुपये के

नोट पर कितनी भाषाएँ छपी हुई हैं? अनुसूचित भाषाओं में हिंदी बोलने वालों का प्रतिशत (40.42) सर्वाधिक है। लघुतम भाषा वर्ग कश्मीरी और संस्कृत बोलने वालों के हैं (प्रत्येक 0.01 प्रतिशत)। यह देखा गया है कि देश में भाषाई प्रदेशों की सीमाएँ सुनिश्चित और स्पष्ट नहीं हैं बल्कि उनका अपने-अपने सीमांत प्रदेशों में क्रमिक विलय और अध्यारोपण (over lap) हो जाता है।

भाषाई वर्गीकरण

प्रमुख भारतीय भाषाओं के बोलने वाले चार भाषा परिवारों से जुड़े हुए हैं जिनके उप-परिवार, शाखाएँ अथवा वर्ग हैं, इसे तालिका 1.2 से बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।

धार्मिक संघटन

धर्म सर्वाधिक भारतीयों के सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन को प्रभावित करने वाले प्रमुख बलों में से एक है। क्योंकि धर्म लोगों के परिवार और सामुदायिक जीवन के लगभग सभी पक्षों में आभासी रूप से व्याप्त होता है, यह महत्त्वपूर्ण है कि धार्मिक संघटन का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाए।

देश में धार्मिक समुदायों का स्थानिक वितरण (परिशिष्ट 1 ङ) दर्शाता है कि कुछ निश्चित राज्यों और जिलों में एक धर्म की संख्यात्मक प्रबलता विशाल है, जबकि उसी का दूसरे राज्यों में प्रतिनिधित्व नगण्य है।

भारत-बांग्लादेश सीमा व भारत-पाक सीमा से संलग्न ज़िलों, जम्मू और कश्मीर, उत्तर-पूर्व के पर्वतीय राज्यों और दक्कन पठार व गंगा के मैदान के प्रकीर्ण क्षेत्रों को छोड़कर हिंदू अनेक राज्यों में एक प्रमुख समूह के रूप में वितरित हैं (70 से 90 प्रतिशत तक और उससे अधिक)।

तालिका 1.2 : आधुनिक भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण

परिवार	उप-परिवार	शाखा/वर्ग	वाक् क्षेत्र
आस्ट्रिक (निषाद) 1.38%	आस्ट्रो-एशियाई	मॉन ख्मेर	मेघालय, निकोबार द्वीप समूह
		मुंडा	पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा, असम, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र
	आस्ट्रो-नेसियन		भारत के बाहर
द्रविड़ 20%		दक्षिण द्रविड़	तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल
		मध्य द्रविड़	आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र
		उत्तर द्रविड़	बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश
चीनी-तिब्बती (किरात) 0.85%	तिब्बती-म्यांमारी	तिब्बती हिमालयी	जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम
		उत्तरी असम	अरुणाचल प्रदेश
	सियामी-चीनी	असम-म्यांमारी	असम, नागालैण्ड, मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा, मेघालय
भारतीय-यूरोपीय (आर्य) 73%	इंडो-आर्य	इरानी (फारसी)	भारत से बाहर
		दरदी	जम्मू और कश्मीर
		भारतीय आर्य	जम्मू और कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, असम, गुजरात, महाराष्ट्र, गोआ।

स्रोत : ऐजाजुद्दीन अहमद (1999), सामाजिक भूगोल, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली

देश के विभिन्न भाषाई वर्गों के वितरण को दर्शाने वाला भारत का एक गुणात्मक प्रतीक मानचित्र बनाइए।

विशालतम धार्मिक अल्पसंख्यक मुस्लिम जम्मू और कश्मीर, पश्चिम बंगाल और केरल के कुछ जिलों, उत्तर प्रदेश के अनेक जिलों, दिल्ली में व उसके आस पास और लक्षद्वीप में सांद्रित हैं।

ईसाई जनसंख्या अधिकांशतः देश के ग्रामीण क्षेत्रों में वितरित हैं। मुख्य सांद्रण पश्चिमी तट के साथ गोआ एवं केरल और मेघालय, मिजोरम और नागालैंड के पहाड़ी राज्यों, छोटानागपुर क्षेत्र और मणिपुर की पहाड़ियों में भी देखा जाता है।

अधिकांश सिक्ख देश के अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्र विशेष रूप से पंजाब, हरियाणा और दिल्ली में संकेंद्रित हैं।

तालिका 1.3 : भारत के धार्मिक समुदाय, 2001

धार्मिक समूह	2001	
	जनसंख्या (दस लाख में)	कुल का प्रतिशत
हिंदू	827.6	80.5
मुस्लिम	138.2	13.5
ईसाई	24.1	2.3
सिक्ख	19.2	1.9
बौद्ध	8.0	0.9
जैन	4.2	0.4
अन्य	6.6	0.6

भारत के सबसे छोटे धार्मिक समूह जैन और बौद्ध देश के गिने-चुने क्षेत्रों में संकेंद्रित हैं। जैनियों का प्रमुख संकेंद्रण राजस्थान के नगरीय क्षेत्रों, गुजरात और महाराष्ट्र में है जबकि बौद्ध अधिकांशतः महाराष्ट्र में संकेंद्रित हैं। बौद्ध बाहुल्य अन्य क्षेत्र सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर में लद्दाख, त्रिपुरा और हिमाचल प्रदेश में लाहुल और स्पिति हैं।

भारत के अन्य धर्मों में जरतुश्त, जनजातीय एवं अन्य देशज निष्ठाएँ और विश्वास सम्मिलित हैं। ये समूह छोटे समूहों में संकेंद्रित हैं और देश-भर में बिखरे हुए हैं।

धर्म और भू-दृश्य

भू-दृश्य पर धर्मों की औपचारिक अभिव्यक्ति पवित्र संरचनाओं, कब्रिस्तान के उपयोग और पौधों और प्राणियों के समुच्चय, धार्मिक उद्देश्यों के लिए वृक्षों के निकुंजों के माध्यम से प्रकट होती है। पवित्र संरचनाएँ पूरे देश में व्यापक रूप में वितरित हैं। ये अस्पष्ट ग्रामीण समाधियों से लेकर विशाल हिंदू मंदिरों, स्मरणार्थ मस्जिदों अथवा महानगरों में शोभायमान ढंग से अभिकल्पित बड़े गिरिजाघरों तक हो सकती हैं। क्षेत्र के संपूर्ण भू-दृश्य को एक विशेष आयाम प्रदान करते हुए इन मंदिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों, मठों और गिरिजाघरों के आकार-प्रकार, स्थान-प्रयोग और संख्या में भिन्नता पाई जाती है।

श्रमजीवी जनसंख्या का संघटन

आर्थिक स्तर की दृष्टि से भारत की जनसंख्या को तीन वर्गों में बाँटा जाता है, जिनके नाम हैं-मुख्य श्रमिक, सीमांत श्रमिक और अश्रमिक (देखिए बॉक्स)।

मानक जनगणना परिभाषा

मुख्य श्रमिक वह व्यक्ति है जो एक वर्ष में कम से कम 183 दिन काम करता है।

सीमांत श्रमिक वह व्यक्ति है जो एक वर्ष में 183 दिनों से कम दिन काम करता है।

ऐसा देखा गया है कि भारत में श्रमिकों (दोनों मुख्य और सीमांत) का अनुपात (2001) 39 प्रतिशत है जबकि 61 प्रतिशत की विशाल संख्या अश्रमिकों की है। यह एक आर्थिक स्तर को इंगित करता है जिसमें एक बड़ा अनुपात आश्रित जनसंख्या का है, जो आगे, बेरोज़गार और अल्प रोज़गार प्राप्त लोगों की बड़ी संख्या के होने की संभावना की ओर इशारा करता है।

श्रम की प्रतिभागिता दर क्या होती है?

राज्यों और केंद्र-शासित प्रदेशों श्रमजीवी जनसंख्या का अनुपात गोआ में लगभग 25 प्रतिशत, मिजोरम में लगभग 53 प्रतिशत सामान्य भिन्नता दर्शाता है। श्रमिकों के अपेक्षाकृत अधिक प्रतिशत वाले राज्य हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, छत्तीसगढ़, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मणिपुर और मेघालय हैं। केंद्र शासित प्रदेशों में दादरा और नगर हवेली तथा दमन और दीव की प्रतिभागिता दर ऊँची है। भारत जैसे देश के संदर्भ में ऐसा समझा जाता है कि आर्थिक विकास के निम्न स्तरों वाले क्षेत्रों में श्रम की सहभागिता दर ऊँची है क्योंकि निर्वाह अथवा लगभग निर्वाह की आर्थिक क्रियाओं के निष्पादन के लिए अनेक कामगारों की जरूरत पड़ती है।

भारत की जनसंख्या का व्यावसायिक संघटन (देखें बॉक्स) (जिसका वास्तव में अर्थ किसी व्यक्ति के खेती, विनिर्माण व्यापार, सेवाओं अथवा किसी भी प्रकार की व्यावसायिक क्रियाओं में लगे होने से है) द्वितीयक और तृतीयक सेक्टरों की तुलना में प्राथमिक सेक्टर के श्रमिकों के एक बड़े अनुपात को दर्शाता है। कुल श्रमजीवी जनसंख्या का लगभग 58.2 प्रतिशत कृषक और कृषि मजदूर हैं जबकि केवल 4.2 प्रतिशत श्रमिक घरेलू उद्योगों में लगे हैं और 37.6 प्रतिशत अन्य श्रमिक हैं जो गैर-घरेलू उद्योगों, व्यापार, वाणिज्य, विनिर्माण और मरम्मत तथा अन्य सेवाओं में कार्यरत हैं। जहाँ तक देश की पुरुष और स्त्री जनसंख्या के व्यवसाय का प्रश्न है पुरुष श्रमिकों की संख्या स्त्री श्रमिकों की संख्या से तीनों सेक्टरों में अधिक है।

व्यावसायिक संवर्ग

सन् 2001 की जनगणना ने भारत की श्रमजीवी जनसंख्या को चार प्रमुख संवर्गों में बाँटा है :

1. कृषक
2. कृषि मजदूर
3. घरेलू औद्योगिक श्रमिक
4. अन्य श्रमिक

महिला श्रमिकों की संख्या प्राथमिक सेक्टर में अपेक्षाकृत अधिक है यद्यपि विगत कुछ वर्षों में महिलाओं की द्वितीयक और तृतीयक सेक्टरों की सहभागिता में सुधार हुआ है।

COACH UP IAS
EDUCATION IS OUR BUSINESS

प्रवास प्रकार, कारण और परिणाम

लोग एक गाँव से दूसरे गाँव, गाँवों से शहरों, छोटे शहरों से बड़े शहरों और एक देश से दूसरे देश में जा रहे हैं।

प्रवास दिक् और काल के संदर्भ में जनसंख्या के पुनर्वितरण का अभिन्न अंग और एक महत्त्वपूर्ण कारक हैं। भारत देश में मध्य और पश्चिमी एशिया तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया से आने वाले प्रवासियों की तरंगों का साक्षी रहा है। वास्तव में भारत का इतिहास देश के विभिन्न भागों में प्रवासियों की तरंगों के एक के बाद एक आ-आकर बसने का इतिहास है। एक नामी कवि फ़िराक गोरखपुरी के शब्दों में :

"सर ज़मीन-ए-हिन्द पर अक्वाम-ए-आलम के फ़िराक कारवाँ बसते गए, हिन्दोस्तान बनता गया" (विश्व के सभी भागों से लोगों के कारवाँ भारत में आते रहे और बसते रहे और इसी से भारत की विरचना हुई।)

इसी प्रकार, भारत से भी बहुत बड़ी संख्या में लोग बेहतर अवसरों की तलाश में विभिन्न स्थानों विशेष रूप से मध्य पूर्व और पश्चिमी यूरोप के देशों अमेरिका, आस्ट्रेलिया और पूर्व और दक्षिण-पूर्वी एशिया में प्रवास करते रहे।

भारतीय प्रसार (Indian Diaspora)

उपनिवेश काल (ब्रिटिश काल) के दौरान अंग्रेज़ों द्वारा उत्तर प्रदेश और बिहार से मॉरीशस, कैरेबियन द्वीपों (ट्रिनीडाड, टोबैगो और गुयाना) फिजी और दक्षिण अफ्रीका; फ्रांसीसियों और जर्मनों द्वारा रियूनियन द्वीप, गुआडेलोप, मार्टीनीक और सूरीनाम में, फ्रांसीसी तथा डच लोगों और पुर्तगालियों द्वारा गोवा, दमन और दीव से, अंगोला, मोजांबिक व अन्य देशों में करारबद्ध लाखों श्रमिकों को रोपण कृषि में काम करने के लिए भेजा था। ऐसे सभी प्रवास (भारतीय उत्प्रवास अधिनियम) गिरमिट एक्ट नामक समयबद्ध अनुबंध के तहत आते थे। फिर भी, इन करारबद्ध मज़दूरों के जीवन की दशाएँ दासों से बेहतर नहीं थीं।

प्रवासियों की दूसरी तरंग ने नूतन समय में व्यवसायियों, शिल्पियों, व्यापारियों और फैक्टरी मज़दूरों के रूप में आर्थिक अवसरों की तलाश में निकटवर्ती देशों थाइलैंड, मलेशिया, सिंगापुर, इंडोनेशिया, ब्रूनई, इत्यादि देशों में व्यवसाय के लिए गए और यह प्रवृत्ति अब भी जारी है। 1970 के दशक में पश्चिम एशिया में हुई सहसा तेल वृद्धि द्वारा जनित श्रमिकों की माँग के कारण भारत से अर्ध-कुशल और कुशल श्रमिकों का नियमित बाह्य प्रवास हुआ। कुछ बाह्य प्रवास उद्यमियों, भंडार मालिकों, व्यवसायियों का भी पश्चिमी देशों में प्रवास हुआ।

प्रवासियों की तीसरी तरंग में डॉक्टरों, अभियंताओं (1960 के बाद) सॉफ्टवेयर अभियंताओं, प्रबंधन परामर्शदाताओं, वित्तीय विशेषज्ञों, संचार माध्यम से जुड़े व्यक्तियों और (1980 के बाद) अन्य समाविष्ट थे, जिन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, यूनाइटेड किंगडम, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड और जर्मनी इत्यादि में प्रवास किया। इन व्यवसायियों ने सर्वाधिक शिक्षित, उच्चतम अर्जन करने वाले और सफलतम समूहों में से एक होने की विशिष्टता का आनंद लिया। उदारीकरण के पश्चात 90 के दशक में शिक्षा और ज्ञान आधारित भारतीय उत्प्रवासियों ने भारतीय प्रसार को विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली प्रसार में से एक बना दिया।

इन सभी देशों में भारतीय प्रसार अपने-अपने देशों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

प्रवास

आप भारत में जनगणना से पहले ही परिचित हैं। इसमें देश में प्रवास के संबंध में सूचना होती है। वास्तव में प्रवास को 1881 ई. में भारत की प्रथम संचालित जनगणना से ही दर्ज करना आरंभ कर दिया गया था। इन आँकड़ों को जन्म के स्थान के आधार पर दर्ज किया गया था। परंतु 1961 की जनगणना में पहला मुख्य संशोधन किया गया था और उसमें दो घटक अर्थात् जन्म स्थान अर्थात् गाँव या नगर और (यदि अन्यत्र जन्मा है) तो निवास की अवधि सम्मिलित किए गए। इसके बाद 1971 में पिछले निवास के स्थान और गणना के स्थान पर रुकने की अवधि की अतिरिक्त सूचना को समाविष्ट किया गया। प्रवास के कारणों पर सूचना का समावेश 1981 की जनगणना में किया गया जिसका क्रमिक जनगणनाओं में संशोधन किया गया।

भारत की जनगणना में प्रवास की गणना दो आधारों पर की जाती है : (i) जन्म का स्थान, यदि जन्म का स्थान गणना के स्थान से भिन्न है (इसे जीवनपर्यंत प्रवासी के नाम से जाना जाता है); (ii) निवास का स्थान, यदि निवास का पिछला स्थान गणना के स्थान से भिन्न है (इसे निवास के पिछले स्थान से प्रवासी के रूप में जाना जाता है)। क्या आप भारत की जनगणना में प्रवासियों के अनुपात की कल्पना कर सकते हैं? 2001 की जनगणना के अनुसार देश के 102.9 करोड़ लोगों में से 30.7 करोड़ (30 प्रतिशत) की रिपोर्ट प्रवासियों के रूप में की गई थी जो अपने जन्म के स्थान से अलग रह रहे थे। यद्यपि निवास के (पिछले स्थान के संदर्भ में यह संख्या 31. 5 करोड़ (31 प्रतिशत) थी।

प्रवास के कारण

लोग सामान्य रूप से अपने जन्म स्थान से भावनात्मक रूप से जुड़े होते हैं। किंतु लाखों लोग अपने जन्म के स्थान और निवास को छोड़ देते हैं। इसके विविध कारण हो सकते हैं, जिन्हें बृहत् रूप से दो संवर्गों में रखा जा सकता है :

(i) प्रतिकर्ष कारक (Push factor) जो लोगों को निवास स्थान अथवा उद्गम को छुड़वाने का कारण बनते हैं और (ii) अपकर्ष कारक (Pull factor) जो विभिन्न स्थानों से लोगों को आकर्षित करते हैं।

भारत में लोग ग्रामीण से नगरीय क्षेत्रों में मुख्यतः गरीबी, कृषि भूमि पर जनसंख्या के अधिक दबाव, स्वास्थ्य सेवाओं, शिक्षा जैसी आधारभूत अवसंरचनात्मक सुविधाओं के अभाव इत्यादि के कारण प्रवास करते हैं। इन कारकों के अतिरिक्त बाढ़, सूखा, चक्रवातीय तूफान, भूकम्प, सुनामी जैसी प्राकृतिक आपदाएँ, युद्ध, स्थानीय संघर्ष भी प्रवास के लिए अतिरिक्त प्रतिकर्ष पैदा करते हैं। दूसरी ओर अपकर्ष कारक हैं, जो लोगों को ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर आकर्षित करते हैं। नगरीय क्षेत्रों की

ओर अधिकांश ग्रामीण प्रवासियों के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अपकर्ष कारक बेहतर अवसर, नियमित काम का मिलना और अपेक्षाकृत ऊँचा वेतन है। शिक्षा के लिए बेहतर अवसर, बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ और मनोरंजन के स्रोत इत्यादि भी काफ़ी महत्त्वपूर्ण अपकर्ष कारक हैं।

पुरुषों और स्त्रियों के लिए प्रवास के कारण भिन्न हैं। उदाहरण के तौर पर काम और रोज़गार पुरुष प्रवास के मुख्य कारण (38 प्रतिशत) रहे हैं जबकि यही कारण केवल 3 प्रतिशत स्त्रियों के लिए हैं। इसके विपरीत 65 प्रतिशत स्त्रियाँ विवाह के उपरांत अपने मायके से बाहर जाती हैं। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण हैं, मेघालय इसका अपवाद है जहाँ स्थिति उलट है।

इन विवाहों की तुलना में देश में पुरुष प्रवास केवल 2 प्रतिशत है।

प्रवास के परिणाम

प्रवास, क्षेत्र पर अवसरों के असमान वितरण के कारण होता है। लोगों में कम अवसरों और कम सुरक्षा वाले स्थान से अधिक अवसरों और बेहतर सुरक्षा वाले स्थान की ओर जाने की प्रवृत्ति होती है। बदले में यह प्रवास के उद्गम और गंतव्य क्षेत्रों के लिए लाभ और हानि दोनों उत्पन्न करता है। परिणामों को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और जनांकिकीय संदर्भों में देखा जा सकता है।

आर्थिक परिणाम

उद्गम प्रदेश के लिए मुख्य लाभ प्रवासियों द्वारा भेजी गई हुंडी हैं। अंतर्राष्ट्रीय प्रवासियों द्वारा भेजी गई हुंडियाँ विदेशी विनिमय के प्रमुख स्रोत में से एक हैं। सन् 2002 में भारत ने अंतर्राष्ट्रीय प्रवासियों से हुंडियों के रूप में 110 खरब अमेरिकी डॉलर प्राप्त किए। पंजाब, केरल और तमिलनाडु अपने अंतर्राष्ट्रीय प्रवासियों से महत्त्वपूर्ण राशि प्राप्त करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय प्रवासियों की तुलना में आंतरिक प्रवासियों द्वारा भेजी गई हुंडियों की राशि बहुत थोड़ी है, किंतु यह उद्गम क्षेत्र की आर्थिक वृद्धि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हुंडियों का प्रयोग मुख्यतः भोजन, ऋणों की अदायगी, उपचार, विवाहों, बच्चों की शिक्षा, कृषीय निवेश, गृह-निर्माण इत्यादि के लिए किया जाता है। बिहार, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, इत्यादि के हज़ारों निर्धन गाँवों की अर्थव्यवस्था के लिए ये हुंडियाँ जीवनदायक रक्त का काम करती हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और उड़ीसा के ग्रामीण क्षेत्रों से पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रवास कृषि विकास के लिए उनकी हरित क्रांति कार्ययोजना की सफलता के लिए उत्तरदायी हैं। इसके अतिरिक्त अनियंत्रित प्रवास ने भारत के महानगरों को अति संकुलित कर दिया है। महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, तमिलनाडु और दिल्ली जैसे औद्योगिक दृष्टि से विकसित राज्यों में गंदी बस्तियों (स्लम) का विकास देश में अनियंत्रित प्रवास का नकारात्मक परिणाम है।

जनांकिकीय परिणाम

प्रवास से देश के अंदर जनसंख्या का पुनर्वितरण होता है। ग्रामीण नगरीय प्रवास नगरों में जनसंख्या की वृद्धि में योगदान देने वाले महत्त्वपूर्ण कारकों में से एक हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाले युवा आयु, कुशल एवं दक्ष लोगों का बाह्य प्रवास ग्रामीण जनांकिकीय संघटन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। यद्यपि उत्तरांचल, राजस्थान, मध्य प्रदेश और पूर्वी महाराष्ट्र से होने वाले बाह्य प्रवास ने इन राज्यों की आयु एवं लिंग संरचना में गंभीर असंतुलन पैदा कर दिया है। ऐसे ही असंतुलन उन राज्यों में भी उत्पन्न हो गए हैं जिनमें ये प्रवासी जाते हैं। प्रवासियों के उद्गम और गंतव्य स्थानों में लिंग अनुपात असंतुलित होने का क्या कारण है?

सामाजिक परिणाम

प्रवासी सामाजिक परिवर्तन के अभिकर्ताओं के रूप में कार्य करते हैं। नवीन प्रौद्योगिकियों, परिवार नियोजन, बालिका शिक्षा इत्यादि से संबंधित नए विचारों का नगरीय क्षेत्रों से ग्रामीण क्षेत्रों की ओर विसरण इन्हीं के माध्यम से होता है।

प्रवास से विविध संस्कृतियों के लोगों का अंतर्मिश्रण होता है। इसका संकीर्ण विचारों को भेदते तथा मिस्र संस्कृति के उद्विकास में सकारात्मक योगदान होता है और यह अधिकतर लोगों के मानसिक क्षितिज को विस्तृत करता है। किंतु इसके गुमनामी जैसे गंभीर नकारात्मक परिणाम भी होते हैं जो व्यक्तियों में सामाजिक निर्वात और खिन्नता की भावना भर देते हैं। खिन्नता की सतत भावना लोगों को अपराध और औषध दुरुपयोग (drug abuse) जैसी असामाजिक क्रियाओं के पाश में फँसने के लिए अभिप्रेरित कर सकती है।

पर्यावरणीय परिणाम

ग्रामीण से नगरीय प्रवास के कारण लोगों का अति संकुलन नगरीय क्षेत्रों में वर्तमान सामाजिक और भौतिक अवसंरचना पर दबाव डालता है। अंततः इससे नगरीय बस्तियों की अनियोजित वृद्धि होती है और गंदी बस्तियों और क्षुद्र कॉलोनियों का निर्माण होता है।

इसके अतिरिक्त प्राकृतिक संसाधनों के अति दोहन के कारण नगर भौमजल स्तर के अवक्षय, वायु प्रदूषण, वाहित मल के निपटान और ठोस कचरे के प्रबंधन जैसी गंभीर समस्याओं का सामना कर रहे हैं।

अन्य

प्रवास (विवाहजन्य प्रवास को छोड़कर भी) स्त्रियों के जीवन स्तर को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभावित करता है। ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुष वरणात्मक बाह्य प्रवास के कारण पत्नियाँ पीछे छूट जाती हैं जिससे उन पर अतिरिक्त शारीरिक और मानसिक दबाव पड़ता है। शिक्षा अथवा रोजगार के लिए 'स्त्रियों' का प्रवास उनकी स्वायत्तता और अर्थव्यवस्था में उनकी भूमिका को बढ़ा देता है किंतु उनकी सुभेद्यता (vulnerability) भी बढ़ती है।

स्रोत प्रदेश के दृष्टिकोण से यदि हुंडियाँ (remittances) प्रवास के प्रमुख लाभ हैं तो मानव संसाधन, विशेष रूप से कुशल लोगों का हास उसकी गंभीर लागत है। उन्नत कुशलता का बाज़ार सही मायने में वैश्विक बाज़ार बन गया है और सर्वाधिक गत्यात्मक औद्योगिक अर्थव्यवस्थाएँ गरीब प्रदेशों से उच्च प्रशिक्षित व्यावसायिकों को सार्थक अनुपातों में प्रवेश दे रही है और भर्ती कर रही हैं। परिणामस्वरूप स्रोत प्रदेश के वर्तमान अल्पविकास को बल मिलता है।

मानव विकास

प्रत्यक्ष रूप से ऐसा माना जाता है कि 'विकास स्वतंत्रता है', जिसका संबंध प्रायः आधुनिकीकरण, अवकाश, सुविधा और समृद्धि से जुड़ा हुआ है। वर्तमान संदर्भ में कंप्यूटरीकरण, औद्योगीकरण, सक्षम परिवहन और संचार जाल बृहत् शिक्षा प्रणाली, उन्नत और आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं, वैयक्तिक सुरक्षा इत्यादि को विकास का प्रतीक समझा जाता है। प्रत्येक व्यक्ति, समुदाय एवं सरकार अपने निष्पादन तथा विकास स्तर को इन वस्तुओं की उपलब्धता तथा गम्यता के संदर्भ में मापते हैं। किंतु यह विकास का आंशिक और एकतरफ़ा दृश्य हो सकता है। इसे प्रायः विकास का पश्चिम अथवा यूरोप-केंद्रित विचार कहा जाता है। भारत जैसे उत्तर उपनिवेशी देश के लिए उपनिवेशवाद, सीमांतीकरण सामाजिक भेदभाव और प्रादेशिक असमता इत्यादि विकास का दूसरा चेहरा दर्शाते हैं।

इस प्रकार, भारत के लिए विकास अवसरों के साथ-साथ उपेक्षाओं एवं वंचनाओं का मिला-जुला थैला है। यहाँ महानगरीय केंद्रों और अन्य विकसित अंतर्वेशों (इनक्लेव) जैसे कुछ क्षेत्र हैं जहाँ इनकी जनसंख्या के एक छोटे से खंड को आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। दूसरे छोर पर विशाल ग्रामीण क्षेत्र और नगरीय क्षेत्रों की गंदी बस्तियाँ हैं जिनमें पेयजल, शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसी आधारभूत सुविधाएँ और अवसंरचना इनकी अधिकांश जनसंख्या के लिए उपलब्ध नहीं है। यदि हमारे समाज के विभिन्न वर्गों के बीच विकास के अवसरों का वितरण देखा जाए तो स्थिति और अधिक चिंताजनक प्रतीत होती है। यह एक सुस्थापित तथ्य है कि अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, भूमिहीन कृषि मजदूरों, गरीब किसानों और गंदी बस्तियों में बड़ी संख्या में रहने वाले लोगों इत्यादि का बड़ा समूह सर्वाधिक हाशिए पर है। स्त्री जनसंख्या का बड़ा खंड इन सबमें से सबसे ज्यादा कष्टभोगी है। यह भी समान रूप से सत्य है कि वर्षों से हो रहे विकास के बाद भी सीमांत वर्गों में से अधिकांश की सापेक्षिक के साथ-साथ निरपेक्ष दशाएँ भी बदतर हुई हैं। परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में लोग पतित निर्धनता पूर्ण और अवमानवीय दशाओं में जीने को विवश हैं।

विकास का एक अन्य अंतर संबंधित पक्ष भी है जिसका निम्नतर मानवीय दशाओं से सीधा संबंध है। इसका संबंध पर्यावरणीय प्रदूषण से है जो पारिस्थितिक संकट का कारक है। वायु, मृदा, जल और ध्वनि प्रदूषण न केवल 'हमारे साझा संसाधनों की त्रासदी' का कारण बने हैं अपितु हमारे समाज के अस्तित्व के लिए भी खतरा बन गए हैं। परिणामस्वरूप, निर्धनों में सामर्थ्य के गिरावट के लिए तीन अंतर्संबंधित प्रक्रियाएँ कार्यरत हैं- (क) सामाजिक सामर्थ्य में कमी विस्थापन और दुर्बल होते सामाजिक बंधनों के कारण (ख) पर्यावरणीय सामर्थ्य में कभी प्रदूषण के कारण, और (ग) व्यक्तिगत सामर्थ्य में कभी बढ़ती बीमारियों और दुर्घटनाओं के कारण। अंततः उनके जीवन की गुणवत्ता और मानव विकास पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

मानव विकास क्या है?

"मानव विकास, स्वस्थ्य भौतिक पर्यावरण से लेकर आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्वतंत्रता तक सभी प्रकार के मानव विकल्पों को सम्मिलित करते हुए लोगों के विकल्पों में विस्तार और उनके शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं तथा सशक्तीकरण के अवसरों में वृद्धि की प्रक्रिया है।"

इस प्रकार लोगों के विभिन्न प्रकार के विकल्पों की श्रेणी में विस्तार मानव विकास का सर्वाधिक सार्थक पक्ष है। लोगों के विकल्पों में अनेक प्रकार के अन्य मुद्दे हो सकते हैं, किंतु दीर्घ और स्वस्थ जीवन जीना, शिक्षित होना और राजनीतिक स्वतंत्रता, गारंटीकृत मानवाधिकारों और व्यक्तिगत आत्मसम्मान से युक्त शिष्ट जीवन स्तर के लिए आवश्यक संसाधनों तक पहुँच जैसे मानव विकास के कुछ मुद्दों के साथ समझौता नहीं किया जा सकता।

पहले भी अनेक बार विकास को विवेचनात्मक ढंग से देखने के लिए सम्मिलित प्रयास किए गए। किंतु इस दिशा में सर्वाधिक व्यवस्थित प्रयास 1990 ई. में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) द्वारा प्रथम मानव विकास रिपोर्ट का प्रकाशन है। तब से यह संस्था प्रतिवर्ष विश्व मानव विकास रिपोर्ट को प्रकाशित करती आ रही है। यह रिपोर्ट न केवल मानव विकास को परिभाषित करती है व इसके सूचकों में संशोधन और परिवर्तन लाती है अपितु परिकलित स्कोरों के आधार पर विश्व के देशों का कोटि-क्रम भी बनाती है। 1993 ई. की मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार, "प्रगामी लोकतंत्रीकरण और बढ़ता लोक सशक्तीकरण मानव विकास की न्यूनतम दशाएँ हैं।" इसके अतिरिक्त यह, यह भी उल्लेख करता है कि "विकास लोगों को केंद्र में रखकर बुना जाना चाहिए न कि विकास को लोगों के बीच रखकर" जैसा कि पहले होता था।

भारत में मानव विकास

109 करोड़ से अधिक जनसंख्या के साथ भारत मानव विकास सूचकांक के संदर्भ में विश्व के 172 देशों में 127 के कोटि क्रम पर है। HDI के संयुक्त मूल्य 0.602 के साथ भारत मध्यम मानव विकास दर्शाने वाले (UNDP 2005) देशों की श्रेणी में आता है।

मानव विकास सूचकांक में निम्न स्कोर का होना गंभीर चिंता का विषय है, किंतु उपागम और राज्यों देशों के सूचकांक मूल्यों के परिकलन के लिए चुने गए सूचकों और उनके कोटि क्रम निर्धारण पर कुछ आपत्तियाँ उठाई गई हैं। उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और नव-साम्राज्यवाद जैसे ऐतिहासिक कारकों; मानवाधिकार उल्लंघन, प्रजाति, धर्म, लिंग और जाति के आधार पर सामाजिक भेदभाव जैसे सामाजिक-सांस्कृतिक कारक; अपराध, आतंकवाद और युद्ध जैसी सामाजिक समस्याएँ और राज्य की प्रकृति, सरकार का स्वरूप (लोकतंत्र अथवा तानाशाही), सशक्तिकरण का स्तर जैसे राजनीतिक कारकों के प्रति संवेदनशीलता का अभाव जैसे कुछ कारक हैं जो मानव विकास की प्रकृति के निर्धारण में निर्णायक भूमिका निभाते हैं। भारत तथा अन्य अनेक विकासशील देशों के संबंध में इन पक्षों का विशेष महत्त्व है।

यू.एन.डी.पी. द्वारा चुने गए सूचकों का प्रयोग करते हुए भारत के योजना आयोग ने भी भारत के लिए मानव विकास रिपोर्ट तैयार की है। इसमें राज्यों और केंद्र-शासित प्रदेशों को विश्लेषण की इकाई के रूप में प्रयोग किया गया है। तदनंतर, - जिलों को विश्लेषण की इकाई मानते हुए प्रत्येक राज्य सरकार ने भी मानव विकास रिपोर्ट तैयार करना आरंभ कर दिया। यद्यपि भारत के योजना आयोग ने अंतिम मानव विकास सूचकांक का परिकलन जिनके बारे में आप पहले ही अपनी पुस्तक मानव भूगोल के मूल सिद्धांत में पढ़ चुके हैं। उन तीन सूचकों के आधार पर किया है, तथापि इस रिपोर्ट में आर्थिक उपलब्धि, सामाजिक सशक्तिकरण, सामाजिक वितरण न्याय, अभिगम्यता, स्वास्थ्य और राज्य द्वारा चलाए जा रहे विभिन्न कल्याणकारी उपायों जैसे सूचकों की भी चर्चा की गई है। कुछ महत्त्वपूर्ण सूचकों की निम्नलिखित पृष्ठों में विवेचना की गई है।

आर्थिक उपलब्धियों के सूचक

समृद्ध संसाधन आधार और इन संसाधनों तक सभी, विशेष रूप से निर्धन, पद-दलित और हाशिए पर छोड़ दिए गए लोगों की पहुँच, उत्पादकता, कल्याण और मानव विकास की कुंजी है। सकल घरेलू उत्पादन और इसकी प्रति व्यक्ति उपलब्धता को किसी देश के संसाधन आधार/अक्षयनिधि का माप माना जाता है। भारत के लिए ऐसा आकलन किया गया है कि इसका सकल घरेलू उत्पाद (प्रचलित कीमतों पर) 3200 करोड़ रु. था और इस प्रकार प्रचलित कीमतों पर प्रति व्यक्ति आय 20,813 रु. थी। प्रत्यक्ष रूप से आँकड़े एक प्रभावशाली निष्पादन का संकेत देते हैं किंतु गरीबी, अवसर विहीनता, कुपोषण, निरक्षरता, अनेक प्रकार के पूर्वाग्रह और इन सबसे बढ़कर सामाजिक वितरण, अन्याय और बड़े पैमाने की प्रादेशिक विषमताएँ इन सभी तथाकथित आर्थिक उपलब्धियों को झूठा साबित करती हैं।

महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाणा, गुजरात और दिल्ली जैसे कुछ विकसित राज्य हैं जिनकी प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष आय 4,000 रु. (1980-81 की कीमतों पर आधारित आँकड़े) है लेकिन उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, असम, जम्मू और कश्मीर इत्यादि जैसे बड़ी संख्या में गरीब राज्य भी हैं जिनकी प्रति व्यक्ति आय 2,000 रु. प्रतिवर्ष से कम है। इन असमताओं के अनुरूप विकसित राज्यों का गरीब राज्यों की अपेक्षा उपभोग पर खर्च भी अधिक है। पंजाब, हरियाणा, केरल, महाराष्ट्र और गुजरात जैसे राज्यों में इसका आकलन 690 रु. प्रति व्यक्ति प्रति माह से अधिक और उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रदेश इत्यादि में 520 रु. प्रति व्यक्ति प्रति माह से कम किया गया था। ये भिन्नताएँ गरीबी, बेरोज़गारी और अपूर्ण रोज़गारी जैसी गहरी पैठ वाली आर्थिक समस्याओं की ओर संकेत करती है।

राज्यों की गरीबी के निपुंजिल (disaggregated) आँकड़े दर्शाते हैं कि उड़ीसा और बिहार जैसे राज्यों में उनकी 40 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे जी रही है। मध्य प्रदेश, सिक्किम, असम, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, नागालैंड राज्यों की 30 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे है। "गरीबी वंचित रहने की अवस्था है। निरपेक्ष रूप से यह व्यक्ति की सतत, स्वस्थ और यथोचित उत्पादक जीवन जीने के लिए आवश्यक ज़रूरतों को संतुष्ट न कर पाने की असमर्थता को प्रतिबिंबित करती है।" शिक्षित युवाओं के रोज़गार की दर 25 प्रतिशत है। बिना रोज़गार की आर्थिक वृद्धि और अनियंत्रित बेरोज़गारी भारत में गरीबी के अधिक होने के महत्त्वपूर्ण कारणों में से हैं।

स्वस्थ जीवन के सूचक

रोग और पीड़ा से मुक्त जीवन और यथोचित दीर्घायु एक स्वस्थ जीवन के सूचक हैं। शिशु मर्त्यता और माताओं में प्रजननोत्तर मृत्यु दर को घटाने के उद्देश्य से पूर्व और प्रसवोत्तर स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता, वृद्धों के लिए स्वास्थ्य सेवाएँ, पर्याप्त पोषण और व्यक्तियों की सुरक्षा एक स्वस्थ और लंबे जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण माप हैं। कुछ स्वास्थ्य सूचकों के क्षेत्र में भारत में सराहनीय कार्य हुए हैं, जैसे मृत्यु दर का 1951 में 25.1 प्रतिशत से घटकर 1999 में 8.1 प्रति हज़ार होना और इसी अवधि में शिशु मर्त्यता का 148 प्रति हजार से 70 प्रति हजार होना। इसी प्रकार 1951 से 1999 की अवधि में जन्म के समय जीवन प्रत्याशा में पुरुषों के लिए 37.1 वर्ष से 62.3 वर्ष तथा स्त्रियों के लिए 36.2 वर्ष से 65.3 वर्ष की वृद्धि करने में भी सफलता मिली। यद्यपि ये महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं, फिर भी बहुत कुछ करना बाकी है। इसी प्रकार, इसी अवधि के दौरान भारत ने जन्म दर को 40.8 से 26.1 तक नीचे लाकर अच्छा कार्य किया

है. किंतु यह जन्म दर अभी भी अनेक विकसित देशों की तुलना में काफ़ी ऊँची है।

लिंग विशिष्ट और ग्रामीण व नगरीय स्वास्थ्य सूचकों के संदर्भ में देखने पर स्थिति और चिंताजनक प्रतीत होती है। भारत में स्त्री लिंगानुपात घट रहा है। भारत की जनगणना (2001) के निष्कर्ष, विशेष रूप से 0-6 आयु वर्ग के बच्चों के लिंग अनुपात के संबंध में, बहुत ही अवांछनीय हैं। रिपोर्ट के अन्य महत्त्वपूर्ण लक्षण ये हैं कि यदि केरल को अपवाद मान लिया जाए तो सभी राज्यों में बच्चों का लिंग अनुपात घटा है और पंजाब और हरियाणा जैसे विकसित राज्यों में यह सबसे अधिक चिंताजनक है जहाँ यह लिंगानुपात प्रति हज़ार बालकों की तुलना में 800 बालिकाओं से भी नीचे है।

सामाजिक सशक्तिकरण के सूचक

'विकास मुक्ति है।' भूख, गरीबी, दासता, बँधुआकरण, अज्ञानता, निरक्षरता और किसी की अन्य प्रकार की प्रबलता से मुक्ति मानव विकास की कुंजी है। वास्तविक अर्थों में मुक्ति तभी संभव है जब लोग समाज में अपने सामर्थ्यों और विकल्पों के प्रयोग के लिए सशक्त हों और प्रतिभागिता करें। समाज और पर्यावरण के बारे में ज्ञान तक पहुँच ही मुक्ति का मूलाधार है। ज्ञान और मुक्ति का रास्ता साक्षरता से होकर जाता है।

भारत में मानव विकास सूचकांक

उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण सूचकों की पृष्ठभूमि में योजना आयोग ने राज्यों और केंद्र-शासित प्रदेशों को विश्लेषण की इकाई मानते हुए मानव विकास सूचकांक का परिकलन किया है।

भारत को मध्यम मानव विकास दर्शाने वाले देशों में रखा गया है। विश्व के 172 देशों में इसका 127वाँ स्थान है। भारत के विभिन्न राज्यों में (तालिका 3.4), 0.638 संयुक्त सूचकांक मूल्य के साथ केरल कोटिक्रम में सर्वोच्च है। इसके बाद पंजाब (0.537), तमिलनाडु (0.531), महाराष्ट्र (0.523) और हरियाणा (0.509) आते हैं। अपेक्षा के अनुरूप बिहार (0.367), असम (0.386), उत्तर प्रदेश (0.388), मध्य प्रदेश (0.394) और उड़ीसा (0.404) जैसे राज्य देश के 15 प्रमुख राज्यों में सबसे नीचे हैं।

ऐसी हालातों के लिए अनेक सामाजिक-राजनीतिक, आर्थिक और ऐतिहासिक कारण उत्तरदायी हैं। केरल के मानव विकास सूचकांक का उच्चतम मूल्य इसके द्वारा 2001 में शत-प्रतिशत के आसपास (90.92 प्रतिशत) साक्षरता दर को प्राप्त करने के लिए किए गए प्रभावी कार्यशीलता के कारण है। एक अलग दृश्य में बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, असम और उत्तर प्रदेश जैसे निम्न साक्षरता वाले राज्य हैं। उदाहरणतः बिहार में इसी वर्ष (2001) में कुल साक्षरता दर बहुत निम्न (60.32 प्रतिशत) थी। उच्चतर कुल साक्षरता दर्शाने वाले राज्यों में पुरुष और स्त्री साक्षरता के बीच कम अंतर पाया गया है। केरल में यह अंतर 6.34 प्रतिशत है जबकि बिहार में यह 26.75 प्रतिशत और मध्य प्रदेश में 25.95 प्रतिशत है।

शैक्षिक उपलब्धियों के अतिरिक्त आर्थिक विकास भी मानव विकास सूचकांक पर सार्थक प्रभाव डालता है। आर्थिक दृष्टि से विकसित महाराष्ट्र, तमिलनाडु और पंजाब एवं हरियाणा जैसे राज्यों के मानव विकास सूचकांक का मूल्य असम, बिहार, मध्य प्रदेश इत्यादि राज्यों की तुलना में ऊँचा है।

उपनिवेश काल में विकसित प्रादेशिक विकृतियाँ और सामाजिक विषमताएँ अब भी भारत की अर्थव्यवस्था, राजतंत्र और समाज में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। सामाजिक वितरण न्याय के अपने मुख्य ध्येय के साथ भारत सरकार ने नियोजित विकास के माध्यम से संतुलित विकास के सांस्थितिकरण के लिए सम्मिलित प्रयास किए हैं। इसने अधिकांश क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं किंतु ये वांछित स्तर से अभी भी बहुत नीचे हैं।

जनसंख्या, पर्यावरण और विकास

विकास सामान्य रूप से और मानव विकास विशेष रूप से सामाजिक विज्ञानों में प्रयुक्त होने वाली एक जटिल संकल्पना है। यह जटिल है क्योंकि युगों से यही सोचा जा रहा है कि विकास एक मूलभूत संकल्पना है और यदि एक बार इसे प्राप्त कर लिया गया तो यह समाज की सभी सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय समस्याओं का निदान हो जाएगा। यद्यपि विकास ने मानव जीवन की गुणवत्ता में अनेक प्रकार से महत्त्वपूर्ण सुधार किया है किंतु प्रादेशिक विषमताएँ, सामाजिक असमानताएँ, भेदभाव, वंचना, लोगों का विस्थापन, मानवाधिकारों पर आघात और मानवीय मूल्यों का विनाश तथा पर्यावरणीय निम्नीकरण भी बढ़ा है।

संबद्ध मुद्दों की गंभीरता और संवेदनशीलता को भाँपते हुए संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ने अपनी 1993 की मानव विकास रिपोर्ट में विकास की अवधारणा में अभिभूत कुछ स्पष्ट पक्षपातों और पूर्वाग्रहों को संशोधित करने का प्रयत्न किया है। लोगों की प्रतिभागिता और उनकी सुरक्षा 1993 की मानव विकास रिपोर्ट के प्रमुख मुद्दे थे। इसमें मानव विकास की न्यूनतम दशाओं के रूप में उत्तरोत्तर लोकतंत्रीकरण और लोगों के बढ़ते सशक्तीकरण पर बल दिया गया था। रिपोर्ट ने शांति और मानव विकास

लाने में नागरिक समाजों की बहुत बड़ी सकारात्मक भूमिका को भी स्वीकार किया। नागरिक समाजों को विकसित देशों द्वारा प्रतिरक्षा खर्चों में कटौती, सशस्त्र बलों के अपरियोजन, प्रतिरक्षा से आधारभूत वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन की ओर संक्रमण और विशेष रूप से निशस्त्रीकरण तथा नाभिकीय युद्धास्त्रों की संख्या घटाने के लिए जनमत तैयार करने की दिशा में कार्य करना चाहिए। एक नाभिकीय-कृत विश्व में शांति और कल्याण दो प्रमुख वैश्विक चिंताएँ हैं।

इस उपागम के दूसरे छोर पर नव-माल्थस वादियों, पर्यावरणविदों और आमूलवादी पारिस्थितिकविदों द्वारा व्यक्त विचार हैं। उनका विश्वास है कि एक प्रसन्नचित्त एवं शांत सामाजिक जीवन के लिए जनसंख्या और संसाधनों के बीच उचित संतुलन एक आवश्यक दशा है। इन विचारकों के अनुसार जनसंख्या और संसाधनों के बीच का अंतर 18वीं शताब्दी के बाद बढ़ा है। विगत 300 वर्षों में विश्व के संसाधनों में बहुत थोड़ी वृद्धि हुई है जबकि मानव जनसंख्या में विपुल वृद्धि हुई है। विकास ने केवल विश्व के सीमित संसाधनों के बहुविध प्रयोगों को बढ़ाने में योगदान दिया है जबकि इन संसाधनों की माँग में अतिशय वृद्धि हुई है। इस प्रकार विकास के किसी भी क्रियाकलाप के समक्ष परम कार्य जनसंख्या और संसाधनों के बीच समता बनाए रखना है। सर राबर्ट माल्थस मानव जनसंख्या की तुलना में संसाधनों के अभाव के विषय में चिंता व्यक्त करने वाले पहले विद्वान थे। प्रत्यक्ष रूप से यह विचार तर्कसंगत और विश्वासप्रद लगता है परंतु यदि विवेचनात्मक ढंग से देखा जाए तो इसमें कुछ अंतर्निहित दोष हैं जैसे कि संसाधन एक तटस्थ वर्ग (Cateogry) नहीं है। संसाधनों की उपलब्धता का होना इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि उनका सामाजिक वितरण। संसाधन हर जगह असमान रूप से वितरित हैं। समृद्ध देशों और लोगों की संसाधनों के विशाल भंडारों तक 'पहुँच' है जबकि निर्धनों के संसाधन सिकुड़ते जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त शक्तिशाली लोगों द्वारा अधिक से अधिक संसाधनों पर नियंत्रण करने के लिए किए गए अनंत प्रयत्नों और उनका अपनी असाधारण विशेषता को प्रदर्शित करने के लिए प्रयोग करना ही जनसंख्या संसाधनों और विकास के बीच संघर्ष और अंतर्विरोधों का प्रमुख कारण हैं।

भारतीय संस्कृति और सभ्यता लंबे समय से ही जनसंख्या, संसाधनों और विकास के प्रति संवेदनशील रही हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि प्राचीन ग्रंथ मूलतः प्रकृति के तत्त्वों के बीच संतुलन और समरसता के प्रतिचिंतित थे। महात्मा गांधी ने अभिनव समय में ही दोनों के बीच संतुलन और समरसता के प्रबलन को प्रेषित किया है। गांधी जी हो रहे विकास, विशेष रूप से इसमें जिस प्रकार औद्योगीकरण द्वारा नैतिकता, आध्यात्मिकता, स्वावलंबन, अहिंसा और पारस्परिक सहयोग और पर्यावरण के ह्रास का सांस्थितीकरण (institutionalised) किया गया है, के प्रति आशंकित थे। उनके विचार में व्यक्तिगत मितव्ययता, सामाजिक धन की न्यासधारिता और अहिंसा एक व्यक्ति और एक राष्ट्र के जीवन में उच्चतर लक्ष्य प्राप्त करने की कुंजी है। उनके विचार क्लब ऑफ़ रोम की रिपोर्ट 'लिमिट्स टू ग्रोथ' (1972), शूमाकर की पुस्तक 'स्माल इज़ ब्यूटीफुल' (1974) बुंडलैंड कमीशन की रिपोर्ट 'ऑवर कामन फ्यूचर' (1987) और अंत में 'एजेंडा-21 रिपोर्ट ऑफ़ द रियो कान्फेरेंस' (1993) में भी प्रतिध्वनित हुए हैं।

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

भूसंसाधन तथा कृषि

आपने अपने चारों ओर भूमि के कई उपयोग देखे होंगे। पृथ्वी के कुछ भाग पर नदियाँ हैं, कुछ पर वृक्ष हैं तथा कुछ पर सड़कें व इमारतें निर्मित हैं। विभिन्न प्रकार की भूमि विभिन्न कार्यों हेतु उपयोगी हैं। इस प्रकार मनुष्य भूमि को उत्पादन, रहने तथा नाना प्रकार के मनोरंजक कार्यों हेतु संसाधन के रूप में प्रयोग करता है। आपके स्कूल की इमारत, सड़कें जिन पर आप यात्रा करते हैं, क्रीड़ा उद्यान जहाँ आप खेलते हैं, खेत जिन पर फ़सलें उगाई जाती हैं एवं चरागाह जहाँ पशु चरते हैं आदि भूमि के विभिन्न उपयोगों को प्रदर्शित करते हैं।

भू-उपयोग वर्गीकरण

भूराजस्व विभाग भू-उपयोग संबंधी अभिलेख रखता है। भू-उपयोग संवर्गों का योग कुल प्रतिवेदन (रिपोर्टिंग) क्षेत्र के बराबर होता है जो कि भौगोलिक क्षेत्र से भिन्न है। भारत की प्रशासकीय इकाइयों के भौगोलिक क्षेत्र की सही जानकारी देने का दायित्व भारतीय सर्वेक्षण विभाग पर है। क्या आपने कभी भारतीय सर्वेक्षण विभाग द्वारा तैयार किए गए मानचित्रों का प्रयोग किया है? भूराजस्व तथा सर्वेक्षण विभाग दोनों में मूलभूत अंतर यह है कि भूराजस्व द्वारा प्रस्तुत क्षेत्रफल पत्रों के अनुसार रिपोर्टिंग क्षेत्र पर आधारित है जो कि कम या अधिक हो सकता है। कुल भौगोलिक क्षेत्र भारतीय सर्वेक्षण विभाग के सर्वेक्षण पर आधारित है तथा यह स्थायी है। आप भू-उपयोग वर्गीकरण के विषय में सामाजिक विज्ञान की पुस्तक कक्षा दस में पढ़ चुके हैं।

भूराजस्व अभिलेख द्वारा अपनाया गया भू-उपयोग वर्गीकरण निम्न प्रकार है-

(i) वनों के अधीन क्षेत्र (Forest): यह जानना आवश्यक है कि वर्गीकृत वन क्षेत्र तथा वनों के अंतर्गत वास्तविक क्षेत्र दोनों पृथक हैं। सरकार द्वारा वर्गीकृत वन क्षेत्र का सीमांकन इस प्रकार किया जहाँ वन विकसित हो सकते हैं। भूराजस्व अभिलेखों में इसी परिभाषा को सतत अपनाया गया है। इस प्रकार इस संवर्ग के क्षेत्रफल में वृद्धि दर्ज हो सकती है परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि वहाँ वास्तविक रूप से वन पाए जाएँगे।

(ii) गैर कृषि-कार्यों में प्रयुक्त भूमि (Land put to Non-agricultural uses): इस संवर्ग में बस्तियाँ (ग्रामीण व शहरी) अवसंरचना (सड़कें, नहरें आदि) उद्योगों, दुकानों आदि हेतु भू-उपयोग सम्मिलित हैं। द्वितीयक व तृतीयक कार्यकलापों में वृद्धि से इस संवर्ग के भू-उपयोग में वृद्धि होती है।

(iii) बंजर व व्यर्थ-भूमि (Barren and wastelands) : वह भूमि जो प्रचलित प्रौद्योगिकी की मदद से कृषि योग्य नहीं बनाई जा सकती, जैसे- बंजर पहाड़ी भूभाग, मरुस्थल, खड्डआदि को कृषि अयोग्य व्यर्थ-भूमि में वगीकृत किया गया है।

(iv) स्थायी चरागाह क्षेत्र (Permanent pastures): इस प्रकार की अधिकतर भूमि पर ग्राम पंचायत या सरकार का स्वामित्व होता है। इस भूमि का केवल एक छोटा भाग निजी स्वामित्व में होता है। ग्राम पंचायत के स्वामित्व वाली भूमि को 'साझा संपत्ति संसाधन' कहा जाता है।

(v) विविध तरु-फ़सलों व उपवनों के अंतर्गत क्षेत्र (Area under miscellaneous tree crops and groves): (जो बोए गए निवल क्षेत्र में सम्मिलित नहीं है) इस संवर्ग में वह भूमि सम्मिलित है जिस पर उद्यान व फलदार वृक्ष हैं। इस प्रकार की अधिकतर भूमि व्यक्तियों के निजी स्वामित्व में है।

(vi) कृषि योग्य व्यर्थ भूमि (Culturable waste land): वह भूमि जो पिछले पाँच वर्षों तक या अधिक समय तक परती या कृषिरहित है, इस संवर्ग में सम्मिलित की जाती है। भूमि उद्धार तकनीक द्वारा इसे सुधार कर कृषि योग्य बनाया जा सकता है।

(vii) वर्तमान परती भूमि (Current fallow): वह भूमि जो एक कृषि वर्ष या उससे कम समय तक कृषिरहित रहती है, वर्तमान परती भूमि कहलाती है। भूमि की गुणवत्ता बनाए रखने हेतु भूमि का परती रखना एक सांस्कृतिक चलन है। इस विधि से भूमि की क्षीण उर्वरकता या पौष्टिकता प्राकृतिक रूप से वापस आ जाती है।

(viii) पुरातन परती भूमि (Fallow other than current fallow) यह भी कृषि योग्य भूमि है जो एक वर्ष से अधिक लेकिन पाँच वर्षों से कम समय तक कृषिरहित रहती है। अगर कोई भूभाग पाँच वर्ष से अधिक समय तक कृषि रहित रहता है तो इसे कृषि योग्य व्यर्थ भूमि संवर्ग में सम्मिलित कर दिया जाता है।

(ix) निवल बोया क्षेत्र (Net area sown) : वह भूमि जिस पर फ़सलें उगाई व काटी जाती हैं, वह निवल बोया गया क्षेत्र कहलाता है।

भारत में भू-उपयोग परिवर्तन

किसी क्षेत्र में भू-उपयोग, अधिकतर वहाँ की आर्थिक क्रियाओं की प्रवृत्ति पर निर्भर है। यद्यपि समय के साथ आर्थिक क्रियाओं में बदलाव आता रहता है लेकिन भूमि अन्य बहुत से संसाधनों की भाँति, क्षेत्रफल की दृष्टि से स्थायी है। हमें भू-उपयोग को प्रभावित करने वाले अर्थव्यवस्था के तीन परिवर्तनों को समझना चाहिए जो निम्न प्रकार से हैं-

(i) अर्थव्यवस्था का आकार (जिसे उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं के मूल्य के संदर्भ में समझा जाता है), समय के साथ बढ़ता है; जो बढ़ती जनसंख्या, बदलते आय-स्तर, उपलब्ध प्रौद्योगिकी व इसी से मिलते-जुलते कारकों पर निर्भर है। परिणामस्वरूप समय के साथ भूमि पर दबाव बढ़ता है तथा सीमांत भूमि को भी प्रयोग में लाया जाता है।

(ii) दूसरा, समय के साथ अर्थव्यवस्था की संरचना में भी बदलाव होता है। दूसरे शब्दों में, द्वितीयक व तृतीयक सेक्टरों में, प्राथमिक सेक्टर की अपेक्षा अधिक तीव्रता से वृद्धि होती है। इस प्रकार के परिवर्तन भारत जैसे विकासशील देश में एक सामान्य बात है। इस प्रकिया में धीरे-धीरे कृषि भूमि गैर-कृषि संबंधित कार्यों में प्रयुक्त होती है। आप पाएँगे कि इस प्रकार के परिवर्तन शहरों के चारों तरफ़ अधिक तीव्र हैं जहाँ कृषि भूमि को इमारतों के लिए उपयोग किया जा रहा है।

(iii) तीसरा, यद्यपि समय के साथ, कृषि क्रियाकलापों का अर्थव्यवस्था में योगदान कम होता जाता है, भूमि पर कृषि क्रियाकलापों का दबाव कम नहीं होता। कृषि-भूमि पर बढ़ते दबाव के कारण हैं-

(अ) प्रायः विकासशील देशों में कृषि पर निर्भर व्यक्तियों का अनुपात अपेक्षाकृत धीरे-धीरे घटता है जबकि कृषि का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान तीव्रता से कम होता है।

(ब) वह जनसंख्या जो कृषि सेक्टर पर निर्भर होती है। प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है।

<u>वृद्धि के निम्न कारण हो सकते हैं :</u>

(i) गैर-कृषि कार्यों में प्रयुक्त क्षेत्र में वृद्धि दर अधिकतम है। इसका कारण भारतीय अर्थव्यवस्था की बदलती संरचना है, जिसकी निर्भरता औद्योगिक व सेवा सेक्टरों तथा अवसंरचना संबंधी विस्तार पर उत्तरोत्तर बढ़ रही है। इसके अतिरिक्त, गाँवों व शहरों में, बस्तियों के अंतर्गत क्षेत्रफल में विस्तार से भी इसमें वृद्धि हुई हैं। अतः गैर कृषि कार्यों में प्रयुक्त भूमि का प्रसार कृषि योग्य परंतु व्यर्थ भूमि तथा कृषि भूमि की हानि पर हुआ है।

(ii) जैसा कि पहले वर्णन किया गया है कि देश में वन क्षेत्र में वृद्धि सीमांकन के कारण हुई न कि देश में वास्तविक वन आच्छादित क्षेत्र के कारण।

(iii) वर्तमान परती भूमि में वृद्धि को दो कारणों से समझा जा सकता है- वर्तमान परती क्षेत्र में समयानुसार काफ़ी उतार-चढ़ाव की प्रवृत्ति रही है, जो वर्षा की अनियमितता तथा फ़सल चक्र पर निर्भर है।

वे चार भू-उपयोग संवर्ग, जिनमें क्षेत्रीय अनुपात में गिरावट आई है- बंजर, व्यर्थ भूमि व कृषि योग्य व्यर्थ भूमि, चरागाहों तथा तरु फ़सलों के अंतर्गत क्षेत्र तथा निवल बोया गया क्षेत्र।

<u>इनके घटते क्रम की व्याख्या निम्न कारणों द्वारा की जा सकती है :</u>

(i) समय के साथ जैसे-जैसे कृषि तथा गैर कृषि कार्यों हेतु भूमि पर दबाव बढ़ा, वैसे-वैसे व्यर्थ एवं कृषि योग्य व्यर्थ भूमि में समयानुसार कमी इसकी साक्षी है।

(ii) निवल बोए गए क्षेत्र में न्यूनता एक वर्तमान घटना है, जो 1990 के दशक से आरंभ हुई। इससे पहले निवल बोए गए क्षेत्र में धीमी वृद्धि दर्ज की जाती रही है। निवल बोए गए क्षेत्र में न्यूनता का कारण गैर कृषि कार्यों में प्रयुक्त भूमि के अनुपात का बढ़ना हो सकता है। (अपने गाँव तथा शहर में कृषि योग्य भूमि पर बढ़ते भवन निर्माण कार्यों के विषय में लिखें।)

(iii) चरागाह भूमि में कमी का कारण कृषि भूमि पर बढ़ता दबाव है। साझी चरागाहों पर गैर-कानूनी तरीकों से कृषि विस्तार ही इसकी न्यूनता का मुख्य कारण है।

<u>साझा संपत्ति संसाधन (Common Property Resources)</u>

भूमि के स्वामित्व के आधार पर इसे मोटे तौर पर दो वर्गों में बाँटा जाता है- निजी भूसंपत्ति तथा साझा संपत्ति संसाधन (CPRs)। पहले वर्ग की भूमि पर व्यक्तियों का निजी स्वामित्व अथवा कुछ व्यक्तियों का सम्मिलित निजी स्वामित्व होता है। दूसरे वर्ग की भूमियाँ सामुदायिक उपयोग हेतु राज्यों के स्वामित्व में होती हैं। साझा संपत्ति संसाधन पशुओं के लिए चारा, घरेलू उपयोग हेतु ईंधन, लकड़ी तथा साथ ही अन्य वन उत्पाद जैसे- फल, रेशे, गिरी, औषधीय पौधे आदि उपलब्ध कराती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन छोटे कृषकों तथा अन्य आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग के व्यक्तियों के जीवन-यापन में इन भूमियों का विशेष महत्व है; क्योंकि इनमें से अधिकतर भूमिहीन होने के कारण पशुपालन से प्राप्त आजीविका पर निर्भर हैं। महिलाओं के लिए भी इन भूमियों का विशेष महत्व है क्योंकि ग्रामीण इलाकों में चारा व ईंधन लकड़ी के एकत्रीकरण की ज़िम्मेदारी उन्हीं की होती है। इन भूमियों में कमी से उन्हें चारे तथा ईंधन की तलाश में दूर तक भटकना पड़ता है।

साझा संपत्ति संसाधनों को सामुदायिक प्राकृतिक संसाधन भी कहा जा सकता है, जहाँ सभी सदस्यों को इसके उपयोग का अधिकार होता है तथा किसी विशेष के संपत्ति अधिकार न होकर सभी सदस्यों के कुछ विशेष कर्तव्य भी हैं। सामुदायिक वन, चरागाहों, ग्रामीण जलीय क्षेत्र तथा अन्य सार्वजनिक स्थान साझा संपत्ति संसाधन के ऐसे उदाहरण हैं जिसका उपयोग एक परिवार से बड़ी इकाई करती है तथा यही उसके प्रबंधन के दायित्वों का निर्वहन करती हैं।

<u>भारत में कृषि भू-उपयोग</u>

भू-संसाधनों का महत्व उन लोगों के लिए अधिक है जिनकी आजीविका कृषि पर निर्भर हैं :

(i) द्वितीयक व तृतीयक आर्थिक क्रियाओं की अपेक्षा कृषि पूर्णतया भूमि पर आधारित है। अन्य शब्दों में, कृषि उत्पादन में भूमि का योगदान अन्य सेक्टरों में इसके योगदान से अधिक है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीनता प्रत्यक्ष रूप से वहाँ की गरीबी से संबंधित है।

(ii) भूमि की गुणवत्ता कृषि उत्पादकता को प्रभावित करती है जो अन्य कार्यों में नहीं है।

(iii) ग्रामीण क्षेत्रों में भू-स्वामित्व का आर्थिक मूल्य के अतिरिक्त सामाजिक मूल्य भी हैं तथा प्राकृतिक आपदाओं या निजी विपत्ति में एक सुरक्षा की भाँति है एवं समाज में प्रतिष्ठा बढाता है।

समस्त कृषि भूमि संसाधनों का अनुमान-निवल बोया गया क्षेत्र तथा सभी प्रकार की परती भूमि और कृषि योग्य व्यर्थ भूमियों के योग से लगाया जा सकता है। पिछले वर्षों में समस्त रिपोर्टिंग क्षेत्र से कृषि भूमि का प्रतिशत कम हुआ है। कृषि योग्य व्यर्थ भूमि संवर्ग में कमी के बावजूद कृषि योग्य भूमि में कमी आई है।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि भारत में निवल बोए गए क्षेत्र में बढ़ोतरी की संभावनाएँ सीमित हैं। अतः भूमि बचत प्रौद्योगिकी विकसित करना आज अत्यंत आवश्यक है। यह प्रौद्योगिकी दो भागों में बाँटी जा सकती हैं- पहली, वह जो प्रति इकाई भूमि में फ़सल विशेष की उत्पादकता बढ़ाएँ तथा दूसरी, वह प्रौद्योगिकी जो एक कृषि वर्ष में गहन भू-उपयोग से सभी फ़सलों का उत्पादन बढ़ाएँ। दूसरी प्रौद्योगिकी का लाभयह है कि इसमें सीमित भूमि से भी कुल उत्पादन बढ़ने के साथ श्रमिकों की माँग भी पर्याप्त रूप से बढ़ती है। भारत जैसे देश में भूमि की कमी तथा श्रम की अधिकता है, ऐसी स्थिति में फ़सल सघनता की आवश्यकता केवल भू-उपयोग हेतु वांछित हैं; अपितु ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोज़गारी जैसी आर्थिक समस्या को भी कम करने के लिए आवश्यक है।

फ़सल गहनता की गणना निम्न प्रकार से की जाती है :

$$\text{कृषि गहनता : अर्थात्} \frac{\text{सकल बोया गया क्षेत्र}}{\text{निवल बोया गया क्षेत्र}} \times 100$$

भारत में फ़सल ऋतुएँ

हमारे देश के उत्तरी व आंतरिक भागों में तीन प्रमुख फ़सल ऋतुएँ - खरीफ, रबी व जायद के नाम से जानी जाती है। खरीफ की फ़सलें अधिकतर दक्षिण-पश्चिमी मानसून के साथ बोई जाती हैं जिसमें उष्ण कटिबंधीय फ़सलें सम्मिलित हैं, जैसे- चावल, कपास, जूट, ज्वार, बाजरा व अरहर आदि। रबी की ऋतु अक्टूबर-नवंबर में शरद ऋतु से प्रारंभ होकर मार्च-अप्रैल में समाप्त होती है। इस समय कम तापमान शीतोष्ण तथा उपोष्ण कटिबंधीय फ़सलों जैसे-गेहूँ, चना, तथा सरसों आदि फ़सलों की बुवाई में सहायक है। जायद एक अल्पकालिक ग्रीष्मकालीन फ़सल ऋतु है, जो रबी की कटाई के बाद प्रारंभ होता है। इस ऋतु में तरबूज, खीरा, ककड़ी, सब्ज़ियाँ व चारे की फ़सलों की कृषि सिंचित भूमि पर की जाती है यद्यपि इस प्रकार की पृथक फ़सल ऋतुएँ देश के दक्षिण भागों में नहीं पाई जातीं। यहाँ का अधिकतम तापमान वर्षभर किसी भी उष्ण कटिबंधीय फ़सल की बुवाई में सहायक है, इसके लिए पर्याप्त आर्द्रता उपलब्ध होनी चाहिए। इसलिए देश के इस भाग में, जहाँ भी पर्याप्त मात्रा में सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध हैं, एक कृषि वर्ष में एक ही फ़सल तीन बार उगाई जा सकती है।

कृषि के प्रकार

आर्द्रता के प्रमुख उपलब्ध स्रोत के आधार पर कृषि को सिंचित कृषि तथा वर्षा निर्भर (बारानी) कृषि में वर्गीकृत किया जाता है। सिंचित कृषि में भी सिंचाई के उदेश्य के आधार पर अंतर पाया जाता है, जैसे- रक्षित सिंचाई कृषि तथा उत्पादक सिंचाई कृषि। रक्षित सिंचाई का मुख्य उदेश्य आर्द्रता की कमी के कारण फ़सलों को नष्ट होने से बचाना है जिसका अभिप्राय यह है कि वर्षा के अतिरिक्त जल की कमी को सिंचाई द्वारा पूरा किया जाता है। इस प्रकार की सिंचाई का उद्देश्य अधिकतम क्षेत्र को पर्याप्त आर्द्रता उपलब्ध कराना है। उत्पादक सिंचाई का उद्देश्य फ़सलों को पर्याप्त मात्रा में पानी उपलब्ध कराकर अधिकतम उत्पादकता प्राप्त करना है। उत्पादक सिंचाई में जल निवेश की मात्रा रक्षित सिंचाई की अपेक्षा अधिक होती है। वर्षानिर्भर कृषि भी कृषि ऋतु में उपलब्ध आर्द्रता मात्रा के आधार पर दो वर्गों; शुष्क भूमि कृषि तथा आर्द्र भूमि कृषि में बाँटी जाती है। भारत में शुष्क भूमि खेती मुख्यतः उन प्रदेशों तक सीमित है जहाँ वार्षिक वर्षा 75 सेंटीमीटर से कम है। इन क्षेत्रों में शुष्कता को सहने में सक्षम फ़सलें जैसे-रागी, बाजरा, मूँग, चना तथा ग्वार (चारा फ़सलें) आदि उगाई जाती हैं तथा इन क्षेत्रों में आर्द्रता संरक्षण तथा वर्षा जल के प्रयोग के अनेक विधियाँ अपनाई जाती हैं। आर्द्र कृषि क्षेत्रों में वर्षा ऋतु के अंतर्गत वर्षा जल पौधों की ज़रुरत से अधिक होता है। ये प्रदेश बाढ़ तथा मृदा अपरदन का सामना करते हैं। इन क्षेत्रों में वे फ़सलें उगाई जाती हैं जिन्हें पानी की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है, जैसे- चावल, जूट, गन्ना आदि तथा ताजे पानी की जलकृषि भी की जाती है।

खाद्यान्न फ़सल

भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में खाद्यान्नों की महत्ता को इस तथ्य से मापा जा सकता है कि देश के समस्त बोये क्षेत्र के दो-तिहाई भाग पर खाद्यान्न फ़सलें उगाई जाती हैं। देश के सभी भागों में खाद्यान्न फ़सलें प्रमुख हैं, भले ही वहाँ जीविका-निर्वाह अर्थव्यवस्था या व्यापारिक कृषि अर्थव्यवस्था हो। अनाज की संरचना के आधार पर खाद्यान्नों को अनाज तथा दालों में वर्गीकृत किया जाता है।

अनाज

भारत में कुल बोये क्षेत्र के लगभग 54 प्रतिशत भाग पर अनाज बोये जाते हैं। भारत विश्व का लगभग 11 प्रतिशत अनाज उत्पन्न करके अमेरिका व चीन के बाद तीसरे स्थान पर है। भारत विविध प्रकार के अनाजों का उत्पादन करता है जिन्हें उत्तम अनाजों (चावल, गेहूँ) तथा मोटे अनाजों (ज्वार, बाजरा, मक्का, रागी) आदि में वर्गीकृत किया जाता है। मुख्य अनाजों का विवरण निम्न प्रकार है :

चावल

भारत की अधिकतर जनसंख्या का प्रमुख भोजन चावल है। यद्यपि यह एक उष्ण आर्द्र कटिबंधीय फ़सल है, इसकी 3000 से भी अधिक किस्में

हैं जो विभिन्न कृषि जलवायु प्रदेशों में उगाई जाती है। इसकी कृषि समुद्रतल से 2000 मीटर तक की ऊँचाई तक एवं पूर्वी भारत के आर्द्र भागों से लेकर उत्तर-पश्चिमी भारत के शुष्क परंतु सिंचित क्षेत्र पंजाब, हरियाणा, पश्चिम उत्तर प्रदेश व उत्तरी राजस्थान में, सफलतापूर्वक की जाती है। दक्षिणी राज्यों तथा पश्चिम बंगाल में जलवायु अनुकूलता के कारण एक कृषि वर्ष में चावल की दो या तीन फ़सलें बोई जाती हैं। पश्चिम बंगाल के किसान चावल की तीन फ़सलें लेते हैं जिन्हें- औस, अमन तथा बोरो कहा जाता है। परंतु हिमालय तथा देश के उत्तर-पश्चिम भागों में यह दक्षिण-पश्चिम मानसून ऋतु में खरीफ़ फ़सल के रूप में उगाई जाती है।

भारत विश्व का 22 प्रतिशत चावल उत्पादन करता है तथा चीन के बाद भारत का विश्व में दूसरा स्थान है। देश के कुल बोए क्षेत्र के एक-चौथाई भाग पर चावल बोया जाता है। वर्ष 2002-03 में देश के प्रमुख पाँच चावल उत्पादक राज्य पश्चिम बंगाल, पंजाब, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु थे। चावल की प्रति हेक्टेयर पैदावार पंजाब, तमिलनाडु, हरियाणा, आंध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा केरल राज्यों में अधिक है। इसमें से पहले चार राज्यों में लगभग संपूर्ण चावल क्षेत्र सिंचित है। पंजाब व हरियाणा पारंपरिक रूप से चावल उत्पादक राज्य नहीं है। हरित क्रांति के अंतर्गत हरियाणा, पंजाब के सिंचित क्षेत्रों में चावल की कृषि 1970 से प्रारंभ की गई। उत्तम किस्म के बीजों, अपेक्षाकृत अधिक खाद तथा कीटनाशकों का प्रयोग एवं शुष्क जलवायु के कारण फ़सलों में रोग प्रतिरोधता आदि कारक इस प्रदेश में चावल की अधिक पैदावार के उत्तरदायी हैं। इसकी प्रति हेक्टेयर पैदावार मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ व उड़ीसा के वर्षा पर निर्भर क्षेत्रों में बहुत कम है।

गेहूँ

भारत में चावल के पश्चात् गेहूँ दूसरा प्रमुख अनाज है। भारत विश्व का 12 प्रतिशत गेहूँ उत्पादन करता है। यह मुख्यतः शीतोष्ण कटिबंधीय फ़सल है। अतः इसे शरद् अर्थात् रबी ऋतु में बोया जाता है। इस फ़सल का 85 प्रतिशत क्षेत्र भारत के उत्तरी मध्य भाग तक केंद्रित है अर्थात् उत्तर गंगा का मैदान, मालवा पठार तथा हिमालय पर्वतीय श्रेणी में 2700 मीटर ऊँचाई तक का क्षेत्र है। रबी फ़सल होने के कारण यह सिंचाई की सुविधा वाले क्षेत्रों में ही उगाया जाता है। लेकिन हिमालय के उच्च भागों में तथा मध्य प्रदेश के मालवा के पठारी क्षेत्र में यह वर्षा पर निर्भर फ़सल है।

देश के कुल बोये क्षेत्र के लगभग 14 प्रतिशत भाग पर गेहूँ की कृषि की जाती है। गेहूँ के पाँच प्रमुख उत्पादक राज्य उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान तथा मध्यप्रदेश हैं। पंजाब व हरियाणा में गेहूँ की उत्पादकता (4000 किलोग्राम/प्रति हेक्टेयर) अधिक है। जबकि उत्तर प्रदेश, राजस्थान व बिहार में प्रति हेक्टेयर पैदावार मध्यम स्तर की है। मध्य प्रदेश हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू-कश्मीर में गेहूँ की कृषि वर्षा आधारित है तथा उत्पादकता कम है।

ज्वार

देश के कुल बोये क्षेत्र के 16.5 प्रतिशत भाग पर मोटे अनाज बोये जाते हैं। इनमें ज्वार प्रमुख है जो कुल बोए क्षेत्र के 5.3 प्रतिशत भाग पर बोया जाता है। यह दक्षिण व मध्य भारत के अर्ध-शुष्क क्षेत्रों की प्रमुख खाद्य फ़सल है। महाराष्ट्र राज्य अकेला, देश की आधे से अधिक ज्वार उत्पादन करता है। अन्य प्रमुख ज्वार उत्पादक राज्यों में कर्नाटक, मध्य प्रदेश तथा आंध्र प्रदेश हैं। दक्षिण राज्यों में यह खरीफ़ तथा रबी दोनों ऋतुओं में बोया जाता है। परंतु उत्तर भारत में यह खरीफ़ की फ़सल है तथा मुख्यतः चारा फ़सल के रूप में उगायी जाती है। विंध्याचल के दक्षिण में यह वर्षा आधारित फ़सल है तथा यहाँ इसकी उत्पादकता कम है।

बाजरा

भारत के पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम भागों में गर्म तथा शुष्क जलवायु में बाजरा बोया जाता है। यह फ़सल इस क्षेत्र के शुष्क दौर तथा सूखा सहन करने में समर्थ है। यह एकल तथा मिश्रित फ़सल के रूप में बोया जाता है। यह फ़सल देश के कुल बोये क्षेत्र के लगभग 5.2 प्रतिशत भाग पर बोई जाती है। बाजरा उत्पादक प्रमुख राज्य - महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश, राजस्थान व हरियाणा है। वर्षानिर्भर फ़सल होने के कारण राजस्थान में इसकी उत्पादकता कम हैं तथा इसमें अत्यधिक उतार-चढ़ाव है। कुछ वर्षों से सूखा प्रतिरोधक किस्मों के आगमन से तथा गुजरात व हरियाणा में सिंचाई सुविधाओं के विस्तार से इस फ़सल की पैदावार में वृद्धि हुई है।

मक्का

मक्का एक खाद्य तथा चारा फ़सल है जो निम्न कोटि मिट्टी व अर्धशुष्क जलवायवी परिस्थितियों में उगाई जाती है। यह फ़सल कुल बोये क्षेत्र के केवल 3.6 प्रतिशत भाग में बोई जाती है। मक्का की कृषि किसी विशेष क्षेत्र में केंद्रित नहीं हैं। यह पूर्वी तथा उत्तर पूर्वी भारत को छोड़कर देश के लगभग सभी हिस्सों में बोई जाती है। मक्का के प्रमुख उत्पादक राज्य मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, राजस्थान व उत्तर प्रदेश हैं। अन्य मोटे अनाजों की अपेक्षा इसकी पैदावार अधिक है। इसकी पैदावार दक्षिण राज्यों में अधिक है जो मध्य भागों की ओर कम होती जाती है।

दालें

प्रचुर मात्रा में प्रोटीन के स्रोत होने के कारण दालें शाकाहारी भोजन के प्रमुख संघटक है। ये फलीदार फ़सलें है जो नाइट्रोजन योगीकरण के द्वारा मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरकता बढ़ाती है। भारत दालों का प्रमुख उत्पादक देश है तथा विश्व की लगभग 20 प्रतिशत दालें उत्पन्न करता है। देश में दालों की खेती अधिकतर दक्कन पठार, मध्य पठारी भागों तथा उत्तर-पश्चिम के शुष्क भागों में की जाती है। देश के कुल बोये क्षेत्र का लगभग 11 प्रतिशत भाग दालों के अधीन है। शुष्क क्षेत्रों में वर्षा आधारित फ़सल होने के कारण दालों की उत्पादकता कम है तथा इसमें वार्षिक उतार-चढ़ाव पाया जाता है। चना तथा अरहर भारत की प्रमुख दालें हैं।

चना

चना उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों की फ़सल है। यह मुख्यतः वर्षा आधारित फ़सल है जो देश के मध्य, पश्चिमी तथा उत्तर-पश्चिमी भागों में रबी की ऋतु में बोई जाती है। इस फ़सल को सफलतापूर्वक उगाने के लिए वर्षा की केवल एक या दो हल्की बौछारों या एक या दो बार सिंचाई की आवश्यकता होती है। हरियाणा, पंजाब तथा उत्तरी राजस्थान में हरित क्रांति की शुरुआत से चने के फ़सल क्षेत्रों में कमी आई है तथा इसके स्थान पर गेहूँ की फ़सल बोई जाती है। अब देश के कुल बोये क्षेत्र के केवल 2.8 प्रतिशत भाग पर ही चने की खेती की जाती है। इस फ़सल के प्रमुख उत्पादक राज्य मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश तथा राजस्थान है। इसकी उत्पादकता कम है तथा सिंचित क्षेत्रों में भी इसकी उत्पादकता में एक वर्ष से दूसरे वर्ष के बीच उतार-चढ़ाव पाया जाता है।

अरहर (तुर)

यह देश की दूसरी प्रमुख दाल फ़सल है। इसे लाल चना तथा पिजन पी. के नाम से भी जाना जाता है। यह देश के मध्य तथा दक्षिणी राज्यों के शुष्क भागों में वर्षा-आधारित परिस्थितियों तथा सीमांत भूक्षेत्रों पर बोई जाती है। भारत के कुल बोए गए क्षेत्र के लगभग 2 प्रतिशत भाग पर इसकी खेती की जाती है। देश के अरहर के कुल उत्पादन का लगभग एक तिहाई भाग अकेले महाराष्ट्र से आता है। अन्य प्रमुख उत्पादक राज्य उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात तथा मध्य प्रदेश हैं। इस फ़सल की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता कम तथा अनियमित है।

तिलहन

खाद्य तेल निकालने के लिए तिलहन की खेती की जाती है। मालवा पठार, मराठवाड़ा, गुजरात, राजस्थान के शुष्क भागों तथा आंध्र प्रदेश के तेलंगाना व रायलसीमा प्रदेश, भारत के प्रमुख तिलहन उत्पादक क्षेत्र हैं। देश के कुल शस्य क्षेत्र के लगभग 14 प्रतिशत भाग पर तिलहन फ़सलें बोई जाती है। भारत की प्रमुख तिलहन फ़सलों में मूंगफली, तोरिया, सरसों, सोयाबीन तथा सूरजमुखी सम्मिलित है।

मूँगफली

भारत विश्व में 17 प्रतिशत मूँगफली का उत्पादन करता है। यह मुख्यतः शुष्क प्रदेशों की वर्षा आधारित खरीफ फ़सल है। परंतु दक्षिण भारत में यह रबी ऋतु में बोई जाती है। यह देश के कुल शस्य क्षेत्र के 3.6 प्रतिशत क्षेत्र पर फैली है। गुजरात, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक तथा महाराष्ट्र इसके अग्रणी उत्पादक राज्य हैं। तमिलनाडु में जहाँ भी यह फ़सल आंशिक रूप से सिंचित है, वहां इसकी पैदावार अपेक्षाकृत अधिक है। परंतु आंध्र प्रदेश तथा कर्नाटक में इसकी पैदावार कम है।

तोरिया व सरसों

तोरिया व सरसों में बहुत से तिलहन सम्मिलित हैं, जैसे- राई, सरसों, तोरिया व तारामीरा आदि। ये उपोष्णकटिबंधीय फ़सलें हैं तथा भारत के मध्य व उत्तर-पश्चिमी भाग में रबी में बोई जाती है। ये फ़सलें पाला सहन नहीं कर सकतीं तथा इनके उत्पादन में वार्षिक उतार-चढ़ाव है। परंतु सिंचाई के प्रसार बीज सुधार तथा प्रौद्योगिकी के साथ इनके उत्पादन में वृद्धि हुई है। इन फ़सलों के अंतर्गत क्षेत्र का लगभग दो-तिहाई भाग सिंचित है। तिलहन, देश के कुल शस्य क्षेत्र के केवल 2.5 प्रतिशत भाग पर ही बोये जाते हैं। इनके उत्पादन का एक-तिहाई भाग राजस्थान से आता है तथा अन्य प्रमुख उत्पादक राज्य उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पश्चिम बंगाल तथा मध्य प्रदेश हैं। इन फ़सलों की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता हरियाणा तथा पंजाब में अपेक्षाकृत अधिक है।

अन्य तिलहन

सोयाबीन तथा सूरजमुखी भारत के अन्य महत्वपूर्ण तिलहन हैं। सोयाबीन अधिकतर मध्य प्रदेश व महाराष्ट्र में बोया जाता है। दोनों राज्य मिलकर देश का लगभग 90 प्रतिशत सोयाबीन पैदा करते हैं। सूरजमुखी की फ़सल का सांद्रण कर्नाटक, आंध्र प्रदेश तथा इससे जुड़े हुए महाराष्ट्र के भागों में है देश के उतरी भागों में यह एक गौण फ़सल है लेकिन सिंचित क्षेत्रों में इनका उत्पादन अधिक है।

रेशेदार फसलें

ये फ़सलें हमें कपड़ा, थैला, बोरा व अन्य कई प्रकार का सामान बनाने के लिए रेशा प्रदान करते हैं। कपास तथा जूट भारत की दो प्रमुख रेशेदार फ़सलें हैं।

कपास

कपास एक उष्ण कटिबंधीय फ़सल है जो देश के अर्ध-शुष्क भागों में खरीफ़ ऋतु में बोई जाती है। देश विभाजन के समय भारत का बहुत बड़ा कपास उत्पादन क्षेत्र पाकिस्तान में चला गया। यद्यपि पिछले 50 वर्षों में भारत में इसके क्षेत्रफल में लगातार वृद्धि हुई है। भारत, छोटे रेशे वाली (भारतीय) व लंबे रेशे वाली (अमेरिकन) दोनों प्रकार की कपास का उत्पादन करता है। अमेरिकन कपास को देश के उत्तर-पश्चिमी भाग में 'नरमा' कहा जाता है। कपास पर फूल आने के समय आकाश बादलरहित होना चाहिए।

भारत का कपास के उत्पादन में विश्व में चीन, अमेरिका तथा पाकिस्तान के पश्चात चौथा स्थान है। यह विश्व के समस्त कपास उत्पादन के 8.3 प्रतिशत भाग का उत्पादन करता है। देश के समस्त बोए क्षेत्र के लगभग 4.7 प्रतिशत क्षेत्र पर कपास बोया जाता है। कपास के तीन मुख्य उत्पादक क्षेत्र हैं। इसमें उत्तर-पश्चिम भारत में पंजाब, हरियाणा तथा उत्तरी राजस्थान; पश्चिम में गुजरात तथा महाराष्ट्र; तथा दक्षिण में आंध्र प्रदेश, कर्नाटक व तमिलनाडु के पठारी भाग सम्मिलित हैं। कपास के अग्रणी उत्पादक राज्य - महाराष्ट्र, गुजरात, आंध्र प्रदेश, पंजाब तथा हरियाणा जूट

जूट का प्रयोग मोटे वस्त्र, थैला, बोरे व अन्य सजावटी सामान बनाने में किया जाता है। यह पश्चिम बंगाल तथा इससे संस्पर्शी पूर्वी भागों की एक व्यापारिक फ़सल है। विभाजन के दौरान देश का विशाल जूट उत्पादक

क्षेत्र पूर्वी पाकिस्तान (बांग्ला देश) में चला गया। आज भारत विश्व का लगभग 60 प्रतिशत जूट उत्पादन करता है। पश्चिम बंगाल देश के इस उत्पादन का तीन-चौथाई भाग पैदा करता है। बिहार व आसाम अन्य जूट उत्पादक क्षेत्र हैं। यह देश के कुल शस्य क्षेत्र के 0.5 प्रतिशत भाग पर ही बोया जाता है।

अन्य फ़सलें

गन्ना, चाय तथा कॉफ़ी भारत की अन्य महत्वपूर्ण फ़सलें हैं।

गन्ना

गन्ना एक उष्ण कटिबंधीय फ़सल है। वर्षा पर निर्भर परिस्थितियों में यह केवल आर्द्र व उपार्द्र जलवायु वाले क्षेत्रों में बोई जा सकती है। परंतु भारत में इसकी खेती अधिकतर सिंचित क्षेत्रों में की जा सकती है। गंगा-सिंधु के मैदानी भाग में इसकी अधिकतर बुवाई उत्तर-प्रदेश तक सीमित है। पश्चिम भारत में गन्ना उत्पादक प्रदेश महाराष्ट्र व गुजरात तक विस्तृत है। दक्षिण भारत में इसकी कृषि कर्नाटक, तमिलनाडु व आंध्र प्रदेश के सिंचाई वाले भागों में की जाती है।

ब्राजील के बाद भारत दूसरा बड़ा गन्ना उत्पादक देश है। यहाँ विश्व के 23 प्रतिशत गन्ने का उत्पादन होता है। देश के कुल शस्य क्षेत्र के 2.4 प्रतिशत भाग पर ही इसकी कृषि की जाती है। उत्तर प्रदेश देश का 40 प्रतिशत गन्ना उत्पादन करता है। इसके अन्य प्रमुख उत्पादक राज्य महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा तमिलनाडु आंध्र प्रदेश हैं, जहाँ इसका उत्पादन स्तर अधिक है। उत्तरी भारत में इसका उत्पादन कम है।

चाय

चाय एक रोपण कृषि है जो पेय पदार्थ के रूप में प्रयोग की जाती है। काली चाय की पत्तियाँ किण्वित होती हैं जबकि चाय की हरी पत्तियाँ अकिण्वित होती हैं। चाय की पत्तियों में कैफ़िन तथा टैनिन की प्रचुरता पाई जाती है। यह उत्तरी चीन के पहाड़ी क्षेत्रों की देशज फ़सल है। यह उष्ण आर्द्र तथा उपोष्ण आर्द्र कटिबंधीय जलवायु वाले तरंगित भागों पर अच्छे अपवाह वाली मिट्टी में बोई जाती है। भारत में चाय की खेती 1840 में असम की ब्रह्मपुत्र घाटी में प्रारंभ हुई जो आज भी देश का प्रमुख चाय उत्पादन क्षेत्र है। बाद में इसकी कृषि पश्चिमी बंगाल के उपहिमालयी भागों (दार्जिलिंग, जलपाईगुड़ी तथा कूचबिहार जिलों) में प्रारंभ की गई। दक्षिण में चाय की खेती पश्चिमी घाट की नीलगिरी तथा इलायची की पहाड़ियों के निचले ढालों पर की जाती है। भारत चाय का अग्रणी उत्पादक देश है तथा विश्व का लगभग 28 प्रतिशत चाय का उत्पादन करता है। अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में भारतीय चाय का भाग घटा है। चाय-निर्यातक देशों में भारत का श्रीलंका व चीन के पश्चात् विश्व में तीसरा स्थान है। असम के कुल शस्य क्षेत्र के 53.2 प्रतिशत भाग पर चाय की कृषि की जाती है तथा देश के कुल उत्पादन में आधे से अधिक भाग असम में पैदा होता है। चाय के अन्य महत्त्वपूर्ण उत्पादक राज्य - पश्चिम बंगाल व तमिलनाडु हैं।

कॉफ़ी

कॉफ़ी एक उष्ण कटिबंधीय रोपण कृषि है। इसके बीजों को भूनकर पीसा जाता है तथा एक पेय के रूप में प्रयोग किया जाता है। कॉफ़ी की तीन किस्में हैं; अरेबिका, रोबस्ता व लिबेरिका हैं। भारत अधिकतर उत्तम किस्म की 'अरेबिका' कॉफ़ी का उत्पादन करता है, जिसकी अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में बहुत माँग हैं। परंतु भारत में विश्व का केवल 4.3 प्रतिशत कॉफ़ी का उत्पादन होता है। ब्राजील, वियतनाम, कोलंबिया, इंडोनेशिया तथा मैक्सिको के बाद भारत का विश्व में छठा स्थान है। कर्नाटक, केरल व तमिलनाडु में पश्चिम घाट की उच्च भूमि पर इसकी कृषि की जाती है। देश के समस्त कॉफ़ी उत्पादन का दो-तिहाई से अधिक भाग अकेले कर्नाटक राज्य से आता है।

भारत में कृषि विकास

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग है। वर्ष 2001 में देश की लगभग 53 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर थी। भारत में कृषि की महत्ता इस तथ्य से आँकी जा सकती है कि देश के 57 प्रतिशत भू-भाग पर कृषि की जाती है; जबकि विश्व में कुल भूमि पर केवल 12 प्रतिशत भू-भाग पर कृषि की जाती है। भारत का एक बड़ा भू-भाग कृषि के अंतर्गत होने के बावजूद यहाँ भूमि पर दबाव अधिक है। यहाँ प्रति व्यक्ति कृषि भूमि का अनुपात केवल 0.31 हेक्टेयर है जो विश्व औसत (0.59 हेक्टेयर प्रति व्यक्ति) से लगभग आधा है। भारत ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्, अनेक कठिनाइयों के बावजूद कृषि में आशातीत प्रगति की है।

विकास की रणनीति

स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले भारतीय कृषि एक जीविकोपार्जी अर्थव्यवस्था जैसी थी। बीसवीं शताब्दी के मध्य तक इसका प्रदर्शन बड़ा दयनीय था। यह समय भयंकर अकाल व सूखे का साक्षी है। देश-विभाजन के दौरान लगभग एक-तिहाई सिंचित भूमि पाकिस्तान में चली गई। परिणामस्वरूप स्वतंत्र भारत में सिंचित क्षेत्र का अनुपात कम रह गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार का तात्कालिक उद्देश्य खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाना था, जिसमें निम्न उपाय अपनाए गए - (i) व्यापारिक फ़सलों की जगह खाद्यान्नों का उगाया जाना। (ii) कृषि गहनता को बढ़ाना, तथा (iii) कृषि योग्य बंजर तथा परती भूमि को कृषि भूमि में परिवर्तित करना। प्रारंभ में इस नीति से खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ा, लेकिन 1950 के दशक के अंत तक कृषि उत्पादन स्थिर हो गया। इस समस्या से उभरने के लिए गहन कृषि जिला कार्यक्रम (IADP) तथा गहन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम (IAAP) प्रारंभ किए गए। परंतु 1960 के दशक के मध्य में लगातार दो अकालों से देश में अन्न संकट उत्पन्न हो गया। परिणामस्वरूप दूसरे देशों से खाद्यान्नों का आयात करना पड़ा।

1960 के दशक के मध्य में गेहूँ (मैक्सिको) तथा चावल (फिलिपींस) की किस्में जो अधिक उत्पादन देने वाली नई -किस्में थीं, कृषि के लिए उपलब्ध हुई। भारत ने इसका लाभउठाया तथा पैकेज प्रौद्योगिकी के रूप

में पंजाब, हरियाणा, पश्चिम उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश तथा गुजरात के सिंचाई सुविधा वाले क्षेत्रों में, रासायनिक खाद के साथ इन उच्च उत्पादकता की किस्मों (HYV) को अपनाया। नई कृषि प्रौद्योगिकी की सफलता हेतु सिंचाई से निश्चित जल आपूर्ति पूर्व आपेक्षित थी। कृषि विकास की इस नीति से खाद्यान्नों के उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि 'हरित क्रांति' के नाम से जानी जाती है। हरित क्रांति ने कृषि में प्रयुक्त कृषि निवेश, जैसे- उर्वरक, कीटनाशक, कृषि यंत्र आदि, कृषि आधारित उद्योगों तथा छोटे पैमाने के उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन दिया। कृषि विकास की इस नीति से देश खाद्यान्नों के उत्पादन में आत्म निर्भर हुआ। लेकिन प्रारंभ में 'हरित क्रांति' देश के सिंचित भागों तक ही सीमित थी; फलस्वरूप कृषि विकास में प्रादेशिक असमानता बढ़ी। ऐसा 1970 के दशक के अंत तक रहा तथा 1980 के आरंभ इसके पश्चात् यह प्रौद्योगिकी मध्य भारत तथा पूर्वी भारत के भागों में फैली।

1980 के दशक में भारतीय योजना आयोग ने वर्षा आधारित क्षेत्रों की कृषि समस्याओं पर ध्यान दिया। योजना आयोग ने 1988 में कृषि विकास में प्रादेशिक संतुलन को प्रोत्साहित करने हेतु कृषि जलवायु नियोजन प्रारंभ किया। इसने कृषि, पशुपालन तथा जलकृषि को विकास हेतु संसाधनों के विकास पर भी बल दिया।

1990 के दशक की उदारीकरण नीति तथा उन्मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था ने भारतीय कृषि विकास को भी प्रभावित किया है। ग्रामीण अवसंरचना विकास में कमी फ़सलों के समर्थन मूल्य तथा बीजों, कीटनाशकों पर छूट में कटौती तथा ग्रामीण ऋण उपलब्धता में रुकावटें अंतर-प्रादेशिक तथा अंतर्वैयक्तिक विषमता पैदा कर सकते हैं।

कृषि उत्पादन में वृद्धि तथा प्रौद्योगिकी का विकास

पिछले पचास वर्षों में कृषि उत्पादन तथा प्रौद्योगिकी में उल्लेखनीय बढ़ोतरी हुई है।

बहुत-सी फ़सलों जैसे- चावल तथा गेहूँ के उत्पादन तथा पैदावार में प्रभावशाली वृद्धि हुई है अन्य फ़सलों मुख्यतः गन्ना, तिलहन तथा कपास के उत्पादन में प्रशंसनीय वृद्धि हुई है। भारत को दालों, चाय, जूट तथा पशुधन, दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान प्राप्त है। यह चावल, गेहूँ, मूँगफली, गन्ना तथा सब्ज़ियों का दूसरा बड़ा उत्पादक देश है।

सिंचाई के प्रसार ने देश में कृषि उत्पादन बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसने आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकी जैसे बीजों की उत्तम किस्में, रासायनिक खादों, कीटनाशकों तथा मशीनरी के प्रयोग के लिए आधार प्रदान किया है। 1950-51 से वर्ष 2000-01 तक, कुल सिंचित क्षेत्र 208.5 लाख से बढ़कर 546.6 लाख हेक्टेयर हो गया। इन 50 वर्षों में एक कृषि वर्ष में एक से अधिक बार सिंचित क्षेत्र 17.1 लाख हेक्टेयर से बढ़कर 204.6 लाख हेक्टेयर हो गया है।

देश के विभिन्न क्षेत्रों में आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकी का प्रसार तीव्रता से हुआ है। पिछले 40 वर्षों में रासायनिक उर्वरकों की खपत में भी 15 गुना वृद्धि हुई है। भारत में वर्ष 2001-02 में रासायनिक उर्वरकों की प्रति हेक्टेयर खपत 91 किलोग्राम थी, जो विश्व की औसत खपत (90 किलोग्राम) के समान थी। परंतु पंजाब तथा हरियाणा के सिंचित भागों में यह देश की औसत खपत से चार गुना अधिक है। चूँकि उत्तम बीज के किस्मों में कीट प्रतिरोधकता कम है, अत: देश में 1960 के दशक से कीटनाशकों की खपत में भी महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है।

भारतीय कृषि की समस्याएँ

कृषि पारिस्थितिकी तथा विभिन्न प्रदेशों के ऐतिहासिक अनुभवों के अनुसार भारतीय कृषि की समस्याएँ भी विभिन्न प्रकार की हैं। अतः देश की अधिकतर कृषि समस्याएँ प्रादेशिक हैं। तथापि कुछ समस्याएँ सर्वव्यापी हैं जिसमें भौतिक बाधाओं से लेकर संस्थागत अवरोध शामिल हैं। इन समस्याओं का विवरण निम्न प्रकार है :

अनियमित मानसून पर निर्भरता

भारत में कृषि क्षेत्र का केवल एक-तिहाई भाग ही सिंचित है। शेष कृषि क्षेत्र में फ़सलों का उत्पादन प्रत्यक्ष रूप से वर्षा पर निर्भर है। दक्षिण-पश्चिम मानसून की अनिश्चितता व अनियमितता से सिंचाई हेतु नहरी जल आपूर्ति प्रभावित होती है। दूसरी तरफ़ राजस्थान तथा अन्य क्षेत्रों में वर्षा बहुत कम तथा अत्यधिक अविश्वसनीय है। अधिक वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में भी काफी उतार-चढ़ाव पाया जाता है। फलस्वरूप यह क्षेत्र सूखा व बाढ़ दोनों सुभेद्य हैं। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सूखा एक सामान्य परिघटना है लेकिन यहाँ यदा-कदा बाढ़ भी आ जाती है। वर्ष 2006 में महाराष्ट्र, गुजरात तथा राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में आई आकस्मिक बाढ़ इस परिघटना का उदाहरण है। सूखा तथा बाढ़ भारतीय कृषि के जुड़वाँ संकट बने हुए हैं।

निम्न उत्पादकता

अंतर्राष्ट्रीय स्तर की अपेक्षा भारत में फ़सलों की उत्पादकता कम है। भारत में अधिकतर फ़सलों जैसे- चावल, गेहूँ, कपास व तिलहन की प्रति हेक्टेयर पैदावार अमेरिका, रूस तथा जापान से कम है। भूसंसाधनों पर अधिक दबाव के कारण अंतर्राष्ट्रीय स्तर की तुलना में भारत में श्रम उत्पादकता भी बहुत कम है। देश के विस्तृत वर्षा निर्भर विशेषकर शुष्क क्षेत्रों में अधिकतर मोटे अनाज, दालें तथा तिलहन की खेती की जाती है तथा यहाँ इनकी उत्पादकता बहुत कम है।

वित्तीय संसाधनों की बाध्यताएँ तथा ऋणग्रस्तता

आधुनिक कृषि में लागत बहुत आती है। सीमांत और छोटे किसानों की कृषि बचत बहुत कम या न के बराबर है। अतः वे सघन संसाधन दृष्टिकोण से की जाने वाली कृषि में निवेश करने में असमर्थ हैं। इन समस्याओं से उबरने के लिए, बहुत से किसान विविध संस्थाओं तथा महाजनों से ऋण

लेते हैं। कृषि से कम होती आय तथा फ़सलों के खराब होने से वे कर्ज के जाल में फँसते जा रहे हैं।

भूमि सुधारों की कमी

भूमि के असमान वितरण के कारण भारतीय किसान लंबे समय से शोषित हैं। अंग्रेजी शासन के दौरान, तीन भूराजस्व प्रणालियों-महालवाड़ी, रैयतवाड़ी तथा जमींदारी में से जमींदारी प्रथा किसानों के लिए सबसे अधिक शोषणकारी रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्, भूमि सुधारों को प्राथमिकता दी गई, लेकिन ये सुधार कमज़ोर राजनीतिक इच्छाशक्ति के कारण पूर्णतः फलीभूत नहीं हुए। अधिकतर राज्य सरकारों ने राजनीतिक रूप से शक्तिशाली ज़मींदारों के खिलाफ़ कठोर राजनीतिक निर्णय लेने में टालमटोल किया। भूमि सुधारों के लागू न होने के परिणामस्वरूप कृषि योग्य भूमि का असमान वितरण जारी रहा जिससे कृषि विकास में बाधा रही है।

छोटे खेत तथा विखंडित जोत

भारत में सीमांत तथा छोटे किसानों की संख्या अधिक है। 60 प्रतिशत से अधिक किसानों के पास एक हेक्टेयर से छोटे भूजोत हैं और लगभग 40 प्रतिशत किसानों की जोतों का आकार तो 0.5 हेक्टेयर से भी कम है। बढ़ती जनसंख्या के कारण इन जोतों का औसत आकार और भी सिकुड़ रहा है। इसके अतिरिक्त भारत में अधिकतर भूजोत बिखरे हुए हैं। कुछ राज्यों में तो एक बार भी चकबंदी नहीं हुई है। वे राज्य जहाँ एक बार चकबंदी हो चुकी है, वहाँ पुनःचकबंदी की आवश्यकता है क्योंकि अगली पीढ़ी में भूमि बँटवारे की प्रक्रिया से भूजोतों का दोबारा विखंडन हो गया है। विखंडित व छोटे भूजोत आर्थिक दृष्टि से अलाभकारी हैं।

वाणिज्यीकरण का अभाव

अधिकतर किसान अपनी ज़रूरत या स्वयं उपभोग हेतु फ़सलें उगाते हैं। इन किसानों के पास अपनी ज़रूरत से अधिक उत्पादन के लिए पर्याप्त भू-संसाधन नहीं हैं। अधिकतर उपांत तथा छोटे किसान खाद्यान्नों की कृषि करते हैं, जो उनकी पारिवारिक ज़रूरतों को पूरा करती है। यद्यपि सिंचित क्षेत्रों में कृषि का आधुनिकीकरण तथा वाणिज्यीकरण हो रहा है।

व्यापक अल्प रोज़गारी

भारतीय कृषि में विशेषकर असिंचित क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर अल्प रोज़गारी पाई जाती है। इन क्षेत्रों में ऋत्विक बेरोज़गारी है

जो 4 से 8 महीने तक रहती है। फ़सल ऋतु में भी वर्ष-भर रोज़गार उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि कृषि कार्य लगातार गहन श्रम वाले नहीं है। अतः कृषि में कार्यरत लोगों को वर्ष-भर कार्य करने के अवसर प्राप्त नहीं होते।

कृषि योग्य भूमि का निम्नीकरण

भूमि संसाधनों का निम्नीकरण सिंचाई और कृषि विकास की दोषपूर्ण नीतियों से उत्पन्न हुई समस्याओं में से एक गंभीर समस्या है। यह गंभीर समस्या इसलिए है क्योंकि इससे मृदा उर्वरता क्षीण हो सकती है। यह समस्या विशेषकर सिंचित क्षेत्रों में भयावह है। कृषि भूमि का एक बड़ा भाग जलाक्रांतता, लवणता तथा मृदा क्षारता के कारण बंजर हो चुका है। अभी तक लवणता व क्षारता से लगभग 80 लाख हेक्टेयर भूमि कुप्रभावित हो चुकी है। देश की अन्य 70 लाख हेक्टेयर भूमि जलाक्रांतता के कारण अपनी उर्वरकता खो चुकी है। कीटनाशक रसायनों के अत्यधिक प्रयोग से मृदा परिच्छेदिका में जहरीले तत्वों का सांद्रण हो गया है। सिंचित क्षेत्रों के फ़सल प्रतिरूप के दलहन (लेग्यूम) विस्थापित हो गई तथा बहु-फ़सलीकरण में बढ़ोतरी से परती भूमि में काफ़ी मात्रा में कमी आई है। इससे भूमि में पुनः उरर्वकता पाने की प्राकृतिक प्रक्रिया अवरुद्ध हुई है जैसे नाइट्रोजन योगीकरण। उष्ण कटिबंधीय आर्द्र व अर्ध शुष्क क्षेत्र भी कई प्रकार के भूमि निम्नीकरण से प्रभावित हुए हैं, जैसे जल द्वारा मृदा अपरदन तथा वायु अपरदन जो प्रायः मानवकृत हैं।

जल-संसाधन

समाज जनांकिकीय परिवर्तन, जनसंख्या का भौगोलिक स्थानांतरण, प्रौद्योगिक उन्नति, पर्यावरणीय निम्नीकरण, और जल अभाव का साक्षी होगा। जल अभाव संभवतः इसकी बढ़ती हुई माँग, अति उपयोग तथा प्रदूषण के कारण घटती आपूर्ति के आधार पर सबसे बड़ी चुनौती है। जल एक चक्रीय संसाधन है जो पृथ्वी पर प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। पृथ्वी का लगभग 71 प्रतिशत धरातल पानी से आच्छादित है परंतु अलवणीय जल कुल जल का केवल लगभग 3 प्रतिशत ही है। वास्तव में अलवणीय जल का एक बहुत छोटा भाग ही मानव उपयोग के लिए उपलब्ध है। अलवणीय जल की उपलब्धता स्थान और समय के अनुसार भिन्न-भिन्न है। इस दुर्लभ संसाधन के आवंटन और नियंत्रण पर तनाव और लड़ाई झगड़े, संप्रदायों, प्रदेशों और राज्यों के बीच विवाद का विषय बन गए हैं। विकास को सुनिश्चित करने के लिए जल का मूल्यांकन, कार्यक्षम उपयोग और संरक्षण आवश्यक हो गए हैं। इस अध्याय में हम भारत में जल संसाधनों, इसके भौगोलिक वितरण, क्षेत्रीय उपयोग और इसके संरक्षण और प्रबंधन की विधियों पर चर्चा करेंगे।

भारत के जल संसाधन

भारत में विश्व के धरातलीय क्षेत्र का लगभग 2.45 प्रतिशत, जल संसाधनों का 4 प्रतिशत, जनसंख्या का लगभग 16 प्रतिशत भाग पाया जाता है। देश में एक वर्ष में वर्षण से प्राप्त कुल जल की मात्रा लगभग 4,000 घन कि.मी. है। धरातलीय जल और पुनः पूर्तियोग भौम जल से 1,869 घन कि.मी. जल उपलब्ध है। इसमें से केवल 60 प्रतिशत जल का लाभदायक उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार देश में कुल उपयोगी जल संसाधन 1,122 घन कि.मी. है।

धरातलीय जल संसाधन

धरातलीय जल के चार मुख्य स्रोत हैं- नदियाँ, झीलें, तलैया और तालाब। देश में कुल नदियों तथा उन सहायक नदियों, जिनकी लंबाई 1.6 कि.मी. से अधिक है, को मिलाकर 10,360 नदियाँ हैं। भारत में सभी नदी बेसिनों में औसत वार्षिक प्रवाह 1,869 घन कि.मी. होने का अनुमान किया गया है। फिर भी स्थलाकृतिक, जलीय और अन्य दबावों के कारण प्राप्त धरातलीय जल का केवल लगभग 690 घन कि. मी. (32%) जल का ही उपयोग किया जा सकता है। नदी में जल प्रवाह इसके जल ग्रहण क्षेत्र के आकार अथवा नदी बेसिन और इस जल ग्रहण क्षेत्र में हुई वर्षा पर निर्भर करता है। आप कक्षा 11 की पुस्तक 'भारत भौतिक पर्यावरण' में पढ़ चुके हैं कि भारत में वर्षा में अत्यधिक स्थानिक विभिन्नता पाई जाती है और वर्षा मुख्य रूप से मानसूनी मौसम संकेद्रित है। आप पुस्तक में पढ़ चुके हैं कि भारत में कुछ नदियाँ, जैसे- गंगा, ब्रह्मपुत्र और सिंधु के जल ग्रहण क्षेत्र बहुत बड़े हैं। गंगा, ब्रह्मपुत्र और बराक नदियों के जलग्रहण क्षेत्र में वर्षा अपेक्षाकृत अधिक होती है। ये नदियाँ यद्यपि देश के कुल क्षेत्र के लगभग एक-तिहाई भाग पर पाई जाती हैं जिनमें कुल धरातलीय जल संसाधनों का 60 प्रतिशत जल पाया जाता है। दक्षिणी भारतीय नदियों, जैसे- गोदावरी, कृष्णा और कावेरी में वार्षिक जल प्रवाह का अधिकतर भाग काम में लाया जाता है लेकिन ऐसा ब्रह्मपुत्र और गंगा बेसिनों में अभी भी संभव नहीं हो सका है।

भौम जल संसाधन

देश में, कुल पुनः पूर्तियोग्य भौम जल संसाधन लगभग 432 घन कि.मी. है। तालिका 6.1 दर्शाती है कि कुल पुनः पूर्तियोग्य भौम जल संसाधन का लगभग 46 प्रतिशत गंगा और ब्रह्मपुत्र बेसिनों में पाया जाता है। उत्तर-पश्चिमी प्रदेश और दक्षिणी भारत के कुछ भागों के नदी बेसिनों में भौम जल उपयोग अपेक्षाकृत अधिक है।

देश में राज्यवार संभावित भौम जल के उपयोग को चित्र 6.3 में दर्शाया गया है। पंजाब, हरियाणा, राजस्थान और तमिलनाडु राज्यों में भौम जल का उपयोग बहुत अधिक है। परंतु कुछ राज्य जैसे छत्तीसगढ़, उड़ीसा, केरल आदि अपने भौम जल क्षमता का बहुत कम उपयोग करते हैं। गुजरात, उत्तर प्रदेश, बिहार, त्रिपुरा और महाराष्ट्र अपने भौम जल संसाधनों का मध्यम दर से उपयोग कर रहे हैं। यदि वर्तमान प्रवृत्ति जारी रहती है तो जल के माँग की आपूर्ति करने की आवश्यकता होगी। ऐसी स्थिति विकास के लिए हानिकारक होगी और सामाजिक उथल-पुथल और विघटन का कारण हो सकती है।

लैगून और पश्च जल

भारत की समुद्र तट रेखा विशाल है और कुछ राज्यों में समुद्र तट बहुत दंतुरित (indented) है। इसी कारण बहुत-सी लैगून और झीलें बन गई हैं। केरल, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में इन लैगूनों और झीलों में बड़े धरातलीय जल संसाधन हैं। यद्यपि, सामान्यतः इन जलाशयों में खारा जल है, इसका उपयोग मछली पालन और चावल की कुछ निश्चित किस्मों, नारियल आदि की सिंचाई में किया जाता है।

जल की माँग और उपयोग

पारंपरिक रूप से भारत एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है और इसकी जनसंख्या का लगभग दो-तिहाई भाग कृषि पर निर्भर है। इसीलिए, पंचवर्षीय योजनाओं में, कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए सिंचाई के विकास को एक अति उच्च प्राथमिकता प्रदान की गई है और बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाएँ जैसे- भाखड़ा नांगल, हीराकुड, दामोदर घाटी, नागार्जुन सागर, इंदिरा गांधी नहर परियोजना आदि शुरू की गई हैं। वास्तव में, भारत की वर्तमान में जल की माँग, सिंचाई की आवश्यकताओं के लिए अधिक है। धरातलीय और भौम जल का सबसे अधिक उपयोग कृषि में होता है।

इसमें धरातलीय जल का 89 प्रतिशत और भौम जल का 92 प्रतिशत जल उपयोग किया जाता है। जबकि औद्योगिक सेक्टर में, सतह जल का केवल 2 प्रतिशत और भौम जल का 5 प्रतिशत भाग ही उपयोग में लाया जाता है। घरेलू सेक्टर में धरातलीय जल का उपयोग भौम जल की तुलना में अधिक (9%) है। कुल जल उपयोग में कृषि सेक्टर का भाग दूसरे सेक्टरों से अधिक है। फिर भी, भविष्य में विकास के साथ-साथ देश में औद्योगिक और घरेलू सेक्टरों में जल का उपयोग बढ़ने की संभावना है।

सिंचाई के लिए जल की माँग

कृषि में, जल का उपयोग मुख्य रूप से सिंचाई के लिए होता है। देश में वर्षा के स्थानिक-सामयिक परिवर्तिता के कारण सिंचाई की आवश्यकता होती है। देश के अधिकांश भाग वर्षाविहीन और सूखाग्रस्त हैं। उत्तर-पश्चिमी भारत और दक्कन का पठार इसके अंतर्गत आते हैं। देश के अधिकांश भागों में शीत और ग्रीष्म ऋतुओं में न्यूनाधिक शुष्कता पाई जाती है इसलिए शुष्क ऋतुओं में बिना सिंचाई के खेती करना कठिन होता है। पर्याप्त मात्रा में वर्षा वाले क्षेत्र जैसे पश्चिम बंगाल और बिहार में भी मानसून के मौसम में अवर्षा अथवा इसकी असफलता सूखा जैसी स्थिति उत्पन्न कर देती है जो कृषि के लिए हानिकारक होती है। कुछ फ़सलों के लिए जल की कमी सिंचाई को आवश्यक बनाती है। उदाहरण के लिए चावल, गन्ना, जूट आदि के लिए अत्यधिक जल की आवश्यकता होती है जो केवल सिंचाई द्वारा संभव है।

सिंचाई की व्यवस्था बहुफ़सलीकरण को संभव बनाती है। ऐसा पाया गया है कि सिंचित भूमि की कृषि उत्पादकता असिंचित भूमि की अपेक्षा ज़्यादा होती है। दूसरे, फ़सलों की अधिक उपज देने वाली किस्मों के लिए आर्द्रता आपूर्ति नियमित रूप से आवश्यक है जो केवल विकसित सिंचाई तंत्र से ही संभव होती है। वास्तव में ऐसा इसलिए है कि देश में कृषि विकास की हरित क्रांति की रणनीति पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अधिक सफल हुई है।

पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में निवल बोए गए क्षेत्र का 85 प्रतिशत भाग सिंचाई के अंतर्गत है। इन राज्यों में गेहूँ और चावल मुख्य रूप से सिंचाई की सहायता से पैदा किए जाते हैं। निवल सिंचित क्षेत्र का 76.1 प्रतिशत पंजाब में और 51.3 प्रतिशत हरियाणा में, कुओं और नलकूपों द्वारा सिंचित है। इससे यह ज्ञात होता है कि ये राज्य अपने संभावित भौम जल के एक बड़े भाग का उपयोग करते हैं जिससे कि इन राज्यों में भौम जल में कमी आ जाती है।

इन राज्यों में भौम जल संसाधन के अत्यधिक उपयोग से भौम जल स्तर नीचा हो गया है। वास्तव में, कुछ राज्यों, जैसे-राजस्थान और महाराष्ट्र में अधिक जल निकालने के कारण भूमिगत जल में फ्लुओराइड का संकेंद्रण बढ़ गया है और इस वजह से पश्चिम बंगाल और बिहार के कुछ भागों में संखिया (arsenic) के संकेंद्रण की वृद्धि हो गई है।

संभावित जल समस्या

जल की प्रति व्यक्ति उपलब्धता, जनसंख्या बढ़ने से दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है। उपलब्ध जल संसाधन औद्योगिक, कृषि और घरेलू निस्सरणों से प्रदूषित होता जा रहा है और इस कारण उपयोगी जल संसाधनों की उपलब्धता और सीमित होती जा रही है।

जल के गुणों का ह्रास

जल गुणवत्ता से तात्पर्य जल की शुद्धता अथवा अनावश्यक बाहरी पदार्थों से रहित जल से है। जल बाह्य पदार्थों, जैसे-सूक्ष्म जीवों, रासायनिक पदार्थों, औद्योगिक और अन्य अपशिष्ट पदार्थों से प्रदूषित होता है। इस प्रकार के पदार्थ जल के गुणों में कमी लाते हैं और इसे मानव उपयोग के योग्य नहीं रहने देते हैं। जब विषैले पदार्थ झीलों, सरिताओं, नदियों, समुद्रों और अन्य जलाशयों में प्रवेश करते हैं, वे जल में घुल जाते हैं अथवा जल में निलंबित हो जाते हैं। इससे जल प्रदूषण बढ़ता है और जल के गुणों में कमी आने से जलीय तंत्र (aquatic system) प्रभावित होते हैं। कभी-कभी प्रदूषक नीचे तक पहुँच जाते हैं और भौम जल को प्रदूषित करते हैं। देश में गंगा और यमुना, दो अत्यधिक प्रदूषित नदियाँ हैं।

जल संरक्षण और प्रबंधन

अलवणीय जल की घटती हुई उपलब्धता और बढ़ती माँग से, सतत पोषणीय विकास के लिए इस महत्वपूर्ण जीवनदायी संसाधन के संरक्षण और प्रबंधन की आवश्यकता बढ़ गई है। विलवणीकरण द्वारा सागर/महासागर से प्राप्त जल उपलब्धता, उसकी अधिक लागत के कारण, नगण्य हो गई है। भारत को जल-संरक्षण के लिए तुरंत कदम उठाने हैं और प्रभावशाली नीतियाँ और कानून बनाने हैं, और जल संरक्षण हेतु प्रभावशाली उपाय अपनाने हैं। जल बचत तकनीकी और विधियों के विकास के अतिरिक्त, प्रदूषण से बचाव के प्रयास भी करने चाहिए। जल-संभर विकास, वर्षा जल संग्रहण, जल के पुनः चक्रण और पुनः उपयोग और लंबे समय तक जल की आपूर्ति के लिए जल के संयुक्त उपयोग को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

जल प्रदूषण का निवारण

उपलब्ध जल संसाधनों का तेज़ी से निम्नीकरण हो रहा है। देश की मुख्य नदियों के प्रायः पहाड़ी क्षेत्रों के ऊपरी भागों तथा कम बसे क्षेत्रों में अच्छी जल गुणवत्ता पाई जाती है। मैदानों में, नदी जल का उपयोग गहन रूप से कृषि, पीने, घरेलू और औद्योगिक उद्देश्यों के लिए किया जाता है। अपवाहिकाओं के साथ कृषिगत (उर्वरक और कीटनाशक), घरेलू (ठोस और अपशिष्ट पदार्थ) और औद्योगिक बहिः स्राव नदी में मिल जाते हैं। नदियों में प्रदूषकों का संकेंद्रण गर्मी के मौसम में बहुत अधिक होता है क्योंकि उस समय जल का प्रवाह कम होता है।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सी.पी.सी.बी.), राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (एस.पी.सी.) के साथ मिलकर 507 स्टेशनों की राष्ट्रीय जल संसाधन की गुणवत्ता का मानीटरन किया जा रहा है। इन स्टेशनों से प्राप्त किया गया

आँकड़ा दर्शाता है कि जैव और जीवाणविक संदूषण नदियों में प्रदूषण का मुख्य स्रोत है। दिल्ली और इटावा के बीच यमुना नदी देश में सबसे अधिक प्रदूषित नदी है। दूसरी प्रदूषित नदियाँ अहमदाबाद में साबरमती, लखनऊ में गोमती, मदुरई में काली, अडयार, कूअम (संपूर्ण विस्तार), वैगई, हैदराबाद में मूसी तथा कानपुर और वाराणसी में गंगा है। भौम जल प्रदूषण देश के विभिन्न भागों में भारी/विषैली धातुओं, फ्लुओराइड और नाइट्रेट्स के संकेंद्रण के कारण होता है।

वैधानिक व्यवस्थाएँ, जैसे- जल अधिनियम 1974 (प्रदूषण का निवारण और नियंत्रण) और पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम 1986, प्रभावपूर्ण ढंग से कार्यान्वित नहीं हुए हैं। परिणाम यह है कि 1997 में प्रदूषण फैलाने वाले 251 उद्योग, नदियों और झीलों के किनारे स्थापित किए गए थे। जल उपकर अधिनियम 1977, जिसका उद्देश्य प्रदूषण कम करना है, उसके भी सीमित प्रभाव हुए। जल के महत्व और जल प्रदूषण के अधिप्रभावों के बारे में जागरूकता का प्रसार करने की आवश्यकता है। जन जागरूकता और उनकी भागीदारी से, कृषिगत कार्यों तथा घरेलू और औद्योगिक विसर्जन से प्राप्त प्रदूषकों में बहुत प्रभावशाली ढंग से कमी लाई जा सकती है।

जल का पुनः चक्र और पुनः उपयोग

पुनः चक्र और पुनः उपयोग, दूसरे रास्ते हैं जिनके द्वारा अलवणीय जल की उपलब्धता को सुधारा जा सकता है। कम गुणवत्ता के जल का उपयोग, जैसे शोधित अपशिष्ट जल, उद्योगों के लिए एक आकर्षक विकल्प हैं और जिसका उपयोग शीतलन एवं अग्निशमन के लिए करके वे जल पर होने वाली लागत को कम कर सकते हैं। इसी तरह नगरीय क्षेत्रों में स्नान और बर्तन धोने में प्रयुक्त जल को बागवानी के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। वाहनों को धोने के लिए प्रयुक्त जल का उपयोग भी बागवानी में किया जा सकता है। इससे अच्छी गुणवत्ता वाले जल का पीने के उद्देश्य के लिए संरक्षण होगा। वर्तमान में, पानी का पुनः चक्रण एक सीमित माप में किया गया है। फिर भी, पुनः चक्रण द्वारा पुनः पूर्तियोग्य जल की उपादेयता व्यापक है।

जल संभर प्रबंधन

जल संभर प्रबंधन से तात्पर्य, मुख्य रूप से, धरातलीय और भौम जल संसाधनों के दक्ष प्रबंधन से है। इसके अंतर्गत बहते जल को रोकना और विभिन्न विधियों, जैसे- अंतः स्रवण तालाब, पुनर्भरण, कुओं आदि के द्वारा भौम जल का संचयन और पुनर्भरण शामिल हैं। तथापि, विस्तृत अर्थ में जल संभर प्रबंधन के अंतर्गत सभी संसाधनों प्राकृतिक (जैसे- भूमि, जल, पौधे और प्राणियों) और जल संभर सहित मानवीय संसाधनों के संरक्षण, पुनरुत्पादन और विवेकपूर्ण उपयोग को सम्मिलित किया जाता है। जल संभर प्रबंधन का उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों और समाज के बीच संतुलन लाना है। जल-संभर व्यवस्था की सफलता मुख्य रूप से संप्रदाय के सहयोग पर निर्भर करती है।

केंद्रीय और राज्य सरकारों ने देश में बहुत से जल- संभर विकास और प्रबंधन कार्यक्रम चलाए हैं। इनमें से कुछ गैर सरकारी संगठनों द्वारा भी चलाए जा रहे हैं। 'हरियाली' केंद्र सरकार द्वारा प्रवर्तित जल-संभर विकास परियोजना है जिसका उद्देश्य ग्रामीण जनसंख्या को पीने, सिंचाई, मत्स्य पालन और वन रोपण के लिए जल संरक्षण के लिए योग्य बनाना है। परियोजना लोगों के सहयोग से ग्राम पंचायतों द्वारा निष्पादित की जा रही है।

नीरू-मीरू (जल और आप) कार्यक्रम (आंध्र प्रदेश में) और अरवारी पानी संसद (अलवर राजस्थान में) के अंतर्गत लोगों के सहयोग से विभिन्न जल संग्रहण संरचनाएँ जैसे- अंतः स्रवण तालाब ताल (जोहड़) की खुदाई की गई है और रोक बाँध बनाए गए हैं। तमिलनाडु में घरों में जल संग्रहण संरचना को बनाना आवश्यक कर दिया गया है। किसी भी इमारत का निर्माण बिना जल संग्रहण संरचना बनाए नहीं किया जा सकता है।

कुछ क्षेत्रों में जल-संभर विकास परियोजनाएँ पर्यावरण और अर्थव्यवस्था का कायाकल्प करने में सफल हुई हैं। फिर भी सफलता कुछ की ही कहानियाँ हैं। अधिकांश घटनाओं में, कार्यक्रम अपनी उदीयमान अवस्था पर ही हैं। देश में लोगों के बीच जल संभर विकास और प्रबंधन के लाभों को बताकर जागरूकता उत्पन्न करने की आवश्यकता है और इस एकीकृत जल संसाधन प्रबंधन उपागम द्वारा जल उपलब्धता सतत पोषणीय आधार पर निश्चित रूप से की जा सकती है।

वर्षा जल संग्रहण

वर्षा जल संग्रहण विभिन्न उपयोगों के लिए वर्षा के जल को रोकने और एकत्र करने की विधि है। इसका उपयोग भूमिगत जलभृतों के पुनर्भरण के लिए भी किया जाता है। यह एक कम मूल्य और पारिस्थितिकी अनुकूल विधि है जिसके द्वारा पानी की प्रत्येक बूँद संरक्षित करने के लिए वर्षा जल को नलकूपों, गड्ढों और कुओं में एकत्र किया जाता है। वर्षा

रालेगॅन सिद्धि, अहमदनगर, महाराष्ट्र में जल-संभर विकास एक वस्तुस्थिति अध्ययन

महाराष्ट्र में, अहमदनगर जिले में रालेगॅन सिद्धि एक छोटा-सा गाँव है। यह पूरे देश में जल-संभर विकास का एक उदाहरण है। 1975 में, यह गाँव गरीबी और शराब के गैर कानूनी व्यापार जाल में जकड़ा हुआ था। उस समय गाँव में परिवर्तन आया जब सेना का एक सेवानिवृत्त कर्मचारी उस गाँव में बस गया और जल-संभर विकास का कार्य आरंभ किया। उसने गाँव वालों को परिवार नियोजन और ऐच्छिक श्रम, खुली चराई, वृक्षों की कटाई रोकने और मद्य निषेध के लिए तैयार किया।

ऐच्छिक श्रम आर्थिक सहायता के लिए सरकार पर कम से कम निर्भर रहने के लिए आवश्यक था। उस स्वयंसेवी के कथनानुसार, "इसने परियोजनाओं की लागत का समाजीकरण कर दिया।" जो व्यक्ति गाँव के

बाहर काम कर रहे थे, उन्होंने भी प्रति वर्ष एक महीने का वेतन देकर विकास में सहयोग दिया।

गाँव में अंतः स्रावी तालाब के निर्माण के साथ कार्य शुरू हुआ। 1975 में तालाब में पानी नहीं रुक सका। तटबंध की दीवारें रिस रही थीं। तटबंध को स्वैच्छिक रूप से मरम्मत करने के लिए लोगों को एकत्र किया गया। लोगों की याद में पहली बार गर्मी में इसके नीचे सात कुओं में जल भर गया। लोगों ने अपने नेता और उसके विचारों में अपना विश्वास दिखाया।

नौजवानों का एक समूह बनाया गया जिसे 'तरुण मंडल' कहा गया। समूह ने दहेज प्रथा, जातिवाद और छुआछूत पर प्रतिबंध लगाने का काम किया। शराब आसवन इकाई खत्म कर दी गई और मद्य निषेध लागू कर दिया गया।

थान पर चारा देने पर जोर देकर खुली चराई पर पूरी तरह प्रतिबंध लगा दिया गया। गहन जल फ़सल, जैसे गन्ने की खेती पर प्रतिबंध लगा दिया गया। कम पानी की आवश्यकता वाली फ़सलों, जैसे दालें, तिलहन और कुछ नगदी फ़सलों को प्रोत्साहित किया गया।

स्थानिक संस्थाओं के सारे चुनाव सर्वसम्मति के आधार पर शुरू कर दिए गए। "इसने संप्रदाय के नेताओं को लोगों का पूर्ण प्रतिनिधि बना दिया।" न्याय पंचायत प्रणाली स्थापित की गई। तब से कोई भी मुकदमा पुलिस को नहीं दिया जाता।

22 लाख रुपए की लागत से एक विद्यालय की इमारत का निर्माण केवल गाँव के संसाधनों के उपयोग से किया गया। उसके लिए कोई भी दान नहीं लिया गया। आवश्यकता पड़ने पर धन को कर्ज लेकर बाद में वापस कर दिया गया। गाँव वालों को इस आत्मनिर्भरता से गर्व महसूस हुआ। गर्व की अनुप्रेरणा और ऐच्छिक भावना की इस अनुप्रेरणा से श्रम की हिस्सेदारी की एक नई प्रणाली का विकास हुआ। लोग कृषि कार्य में स्वेच्छा से एक-दूसरे की मदद करने लगे। भूमिहीन श्रमिकों को रोजगार मिल गया। आजकल ग्राम अपने समीपवर्ती ग्रामों में उनके लिए भूमि खरीदने की योजना बनाते हैं। वर्तमान में जल पर्याप्त मात्रा में है, खेती फल-फूल रही है, यद्यपि उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग अत्यधिक हो रहा है। नेता के बाद कार्य जारी रखने के लिए वर्तमान पीढ़ी की समृद्धि को बनाए रखने की योग्यता के संबंध में प्रश्न उठता है। उनके शब्दों में इसका उत्तर मिलता है, "रालेगॅन के विकास की प्रक्रिया एक आदर्श गाँव बनने तक नहीं रुकेगी।" बदलते समय के साथ लोग विकास के नए रास्तों की ओर अग्रसर हैं। भविष्य में, रालेगॅन देश का एक अलग मॉडल प्रस्तुत कर सकता है।"

जल संग्रहण पानी की उपलब्धता को बढ़ाता है, भूमिगत जल स्तर को नीचा होने से रोकता है, फ्लुओराइड और नाइट्रेट्स जैसे संदूषकों को कम करके अवमिश्रण भूमिगत जल की गुणवत्ता बढ़ाता है, मृदा अपरदन और बाढ़ को रोकता है और यदि इसे जलभृतों के पुनर्भरण के लिए उपयोग किया जाता है तो तटीय क्षेत्रों में लवणीय जल के प्रवेश को रोकता है।

भारतीय राष्ट्रीय जल नीति, 2002 की मुख्य विशेषताएँ

राष्ट्रीय जल नीति 2002 जल आवंटन प्राथमिकताएँ विस्तृत रूप में निम्नलिखित क्रम में निर्दिष्ट की गई हैं पेयजल, सिंचाई, जलशक्ति, नौकायान, औद्योगिक और अन्य उपयोग। इस नीति में जल व्यवस्था के लिए प्रगतिशील नए दृष्टिकोण निर्धारित किए गए हैं। इसके मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं-

सिंचाई और बहुउद्देशीय परियोजनाओं में पीने का जल घटक में सम्मिलित करना चाहिए जहाँ पेय जल के स्रोत का कोई भी विकल्प नहीं है।

पेय जल सभी मानवजाति और प्राणियों को उपलब्ध कराना पहली प्राथमिकता होनी चाहिए।

भौम जल के शोषण को सीमित और नियमित करने के लिए उपाय करने चाहिए।

सतह और भौम जल दोनों की गुणवत्ता के लिए नियमित जाँच होनी चाहिए। जल की गुणवत्ता सुधारने के लिए एक चरणबद्ध कार्यक्रम शुरू किया जाना चाहिए।

जल के सभी विविध प्रयोगों में कार्यक्षमता सुधारनी चाहिए।

दुर्लभ संसाधन के रूप में, जल के लिए जागरूकता विकसित करनी चाहिए।

शिक्षा विनिमय, उपक्रमणों, प्रेरकों और अनुक्रमणों द्वारा संरक्षण चेतना बढ़ानी चाहिए।

देश में विभिन्न समुदाय लंबे समय से अनेक विधियों से वर्षाजल संग्रहण करते आ रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में परंपरागत वर्षा जल संग्रहण सतह संचयन जलाशयों, जैसे-झीलों, तालाबों, सिंचाई तालाबों आदि में किया जाता है। राजस्थान में वर्षा जल संग्रहण ढाँचे जिन्हें कुंड अथवा टाँका (एक ढका हुआ भूमिगत टंकी) के नाम से जानी जाती है जिनका निर्माण घर अथवा गाँव के पास या घर में संग्रहित वर्षा जल को एकत्र करने के लिए किया जाता है।

बहुमूल्य जल संसाधन के संरक्षण के लिए वर्षा जल संग्रहण प्रविधि का उपयोग करने का क्षेत्र व्यापक है। इसे घर की छतों और खुले स्थानों में वर्षा जल द्वारा संग्रहण किया जा सकता है। वर्षा जल संग्रहण घरेलू उपयोग के लिए, भूमिगत जल पर समुदाय की निर्भरता कम करता है। इसके अतिरिक्त माँग-आपूर्ति अंतर के लिए सेतु बंधन के कार्य के अतिरिक्त इससे भौम जल निकालने में ऊर्जा की बचत होती है क्योंकि पुनर्भरण से भौम जल स्तर में वृद्धि हो जाती है। आजकल वर्षा जल संग्रहण विधि का देश के बहुत से राज्यों में बड़े पैमाने पर उपयोग किया जा रहा है। वर्षा जल संग्रहण से मुख्य रूप से नगरीय क्षेत्रों को लाभमिल सकता है क्योंकि जल की माँग, अधिकांश नगरों और शहरों में पहले ही आपूर्ति से आगे बढ़ चुकी हैं।

उपर्युक्त कारकों के अतिरिक्त विशेषकर तटीय क्षेत्रों में पानी के विलवणीकरण और शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में खारे पानी की समस्या, नदियों को जोड़कर अधिक जल के क्षेत्रों से कम जल के क्षेत्रों में जल स्थानांतरित करके भारत में जल समस्या को सुलझाने का महत्वपूर्ण उपाय हैं। फिर भी, वैयक्तिक उपभोक्ता, घरेलू और समुदायों के दृष्टिकोण से, सबसे बड़ी समस्या जल का मूल्य है।

खनिज तथा ऊर्जा संसाधन

भारत, अपनी विविधतापूर्ण भूगर्भिक संरचना के कारण विविध प्रकार के खनिज संसाधनों से संपन्न है। भारी मात्रा में बहुमूल्य खनिज पूर्व-पुराजीवी काल या प्रीपैलाइजोइक ऐज में उद्भीत हैं। और मुख्यतः प्रायद्वीपीय भारत की आग्नेय तथा कायांतरित चट्टानों से संबद्ध हैं। उत्तर भारत के विशाल जलोढ़ मैदानी भूभाग आर्थिक उपयोग के खनिजों से विहीन हैं। किसी भी देश के खनिज संसाधन औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक आधार प्रदान करते हैं।

एक खनिज निश्चित रासायनिक एवं भौतिक गुणधर्मों (विशिष्टताओं) के साथ कार्बनिक या अकार्बनिक उत्पत्ति का एक प्राकृतिक पदार्थ है।

खनिज संसाधनों के प्रकार

रासायनिक एवं भौतिक गुणधर्मो के आधार पर खनिजों को दो प्रमुख श्रेणियों - धात्विक (धातु) और अधात्विक (अधातु) में समूहित किया जा सकता है; जोकि निम्न प्रकार से भी वर्गीकृत किए जा सकते हैं- जैसा कि उपर्युक्त आरेख से स्पष्ट है, धातु के स्रोत धात्विक खनिज हैं। लौह अयस्क, ताँबा एवं सोना (स्वर्ण) आदि से धातु उपलब्ध होते है और इन्हें धात्विक खनिज श्रेणी में रखा गया है। धात्विक खनिजों को लौह एवं अलौह धात्विक श्रेणी में भी बाँटा गया है। लौह, जैसा कि आप जानते हैं, लोहा है। वे सभी प्रकार के खनिज, जिनमें लौह अंश समाहित होता है जैसे कि लौह अयस्क वे लौह धात्विक होते हैं और जिन्हें लौह अंश नहीं होता है, वे अलौह धात्विक खनिज में आते हैं जैसे कि ताँबा, बॉक्साइट आदि।

अधात्विक खनिज या तो कार्बनिक उत्पत्ति के होते हैं जैसे कि जीवाश्म ईंधन, जिन्हें खनिज ईंधन के नाम से जानते हैं या वे पृथ्वी में दबे प्राणी एवं पादप जीवों से प्राप्त होते हैं जैसे कि कोयला और पेट्रोलियम आदि। अन्य प्रकार के अधात्विक खनिज अकार्बनिक उत्पत्ति के होते हैं जैसे अभ्रक, चूना-पत्थर तथा ग्रेफाइट आदि।

खनिजों की कुछ निश्चित विशेषताएँ होती हैं। यह क्षेत्र में असमान रूप से वितरित होते हैं। खनिजों की गुणवत्ता और मात्रा के बीच प्रतिलोमी संबंध पाया जाता है अर्थात् अधिक गुणवत्ता वाले खनिज, कम गुणवत्ता वाले खनिजों की तुलना में कम मात्रा में पाए जाते हैं। तीसरी प्रमुख विशेषता यह है कि ये सभी खनिज समय के साथ समाप्त हो जाते हैं। भूगर्भिक दृष्टि से इन्हें बनने में लंबा समय लगता है और आवश्यकता के समय इनका तुरंत पुनर्भरण नहीं किया जा सकता। अतः इन्हें संरक्षित किया जाना चाहिए और इनका दुरुपयोग नहीं होना चाहिए क्योंकि इन्हें दुबारा उत्पन्न नहीं किया जा सकता।

खनिज के अन्वेषण में संलग्न अधिकरण

भारत में, खनिजों का व्यवस्थित सर्वेक्षण, पूर्वेक्षण (Prospecting) तथा अन्वेषण के कार्य भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (GSI), तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग (ONGC), खनिज अन्वेषण निगम लि. (MECL), राष्ट्रीय खनिज विकास निगम (NMDC). इंडियन ब्यूरो ऑफ माइंस (IBM), भारत गोल्डमाइंस लि. (BGML). राष्ट्रीय एल्यूमिनियम कं. लि. (NALCO) और विभिन्न राज्यों के खदान एवं भूविज्ञान विभाग करते हैं।

भारत में खनिजों का विरतण

भारत में अधिकांश धात्विक खनिज प्रायद्वीपीय पठारी क्षेत्र की प्राचीन क्रिस्टलीय शैलों में पाए जाते हैं। कोयले का लगभग 97 प्रतिशत भाग दामोदर, सोन, महानदी और गोदावरी नदियों की घाटियों में पाया जाता है। पेट्रोलियम के आरक्षित भंडार असम, गुजरात तथा मुंबई हाई अर्थात् अरब सागर के अपतटीय क्षेत्र में पाए जाते हैं। नए आरक्षित क्षेत्र कृष्णा-गोदावरी तथा कावेरी बेसिनों में पाए गए हैं। अधिकांश प्रमुख खनिज मंगलोर से कानपुर को जोड़ने वाली (कल्पित) रेखा के पूर्व में पाए जाते हैं। भारत की प्रमुख खनिज पट्टियाँ हैं-

भारत में खनिज मुख्यतः तीन विस्तृत पट्टियों में सांद्रित हैं। कुछ कदाचनिक भंडार यत्र-तत्र एकाकी खंडों में भी पाए जाते हैं। ये पट्टियाँ हैं :

उत्तर-पूर्वी पठारी प्रदेश

इस पट्टी के अंतर्गत छोटानागपुर (झारखंड), उड़ीसा पठार, पं. बंगाल तथा छत्तीसगढ़ के कुछ भाग आते हैं। क्या आपने कभी सोचा है कि प्रमुख लौह एवं इस्पात उद्योग इस क्षेत्र में क्यों अवस्थित हैं? यहाँ पर विभिन्न प्रकार के खनिज उपलब्ध हैं जैसे कि लौह अयस्क, कोयला, मैंगनीज, बॉक्साइट व अभ्रक आदि।

दक्षिण-पश्चिमी पठार प्रदेश

यह पी कर्नाटक, गोआ तथा संस्पर्शी तमिलनाडु उच्च भूमि और केरल पर विस्तृत है। यह पट्टी लौह धातुओं तथा बॉक्साइट में समृद्ध है। इसमें उच्च कोटि का लौह अयस्क, मैंगनीज तथा चूना-पत्थर भी पाया जाता है। निवेली लिगनाइट को छोड़कर इस क्षेत्र में कोयला निक्षेपों का अभाव है।

इस पट्टी के खनिज निक्षेप उत्तर-पूर्वी पट्टी की भाँति विविधता पूर्ण नहीं है। केरल में मोनाजाइट तथा थोरियम, और बॉक्साइट क्ले के निक्षेप हैं। गोआ में लौह अयस्क निक्षेप पाए जाते हैं।

उत्तर-पश्चिमी प्रदेश

यह पट्टी राजस्थान में अरावली और गुजरात के कुछ भाग पर विस्तृत है और यहाँ के खनिज धारवाड़ क्रम की शैलों से संबद्ध हैं। ताँबा, जिंक

आदि प्रमुख खनिज है। राजस्थान बलुआ पत्थर, ग्रेनाइट, संगमरमर, जिप्सम जैसे भवन निर्माण के पत्थरों में समृद्ध हैं और यहाँ मुल्तानी मिट्टी के भी विस्तृत निक्षेप पाए जाते हैं। डोलोमाइट तथा चूना पत्थर सीमेंट उद्योग के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराते हैं। गुजरात अपने पेट्रोलियम निक्षेपों के लिए जाना जाता है। आप जानते होंगे कि गुजरात व राजस्थान दोनों में नमक के समृद्ध स्रोत हैं।

हिमालयी पट्टी एक अन्य खनिज पट्टी है जहाँ ताँबा, सीसा, जस्ता, कोबाल्ट तथा रंगरत्न पाया जाता है। ये पूर्वी और पश्चिमी दोनों भागों में पाए जाते हैं। असम घाटी में खनिज तेलों के निक्षेप हैं। इनके अतिरिक्त खनिज तेल संसाधन मुंबई के निकट अपतटीय क्षेत्र (मुंबई हाई) में भी पाए जाते है। आगे के पृष्ठों में, आप कुछ महत्वपूर्ण खनिजों के स्थानिक प्रारूपों के बारे में जानेंगे।

लौह खनिज

लौह अयस्क, मैंगनीज़ तथा क्रोमाइट आदि जैसे लौह खनिज धातु आधारित उद्योगों के विकास के लिए एक सुदृढ़ आधार प्रदान करते हैं। लौह खनिजों के संचय एवं उत्पादन दोनों में ही हमारे देश की स्थिति अच्छी है।

लौह अयस्क

भारत में लौह अयस्क के प्रचुर संसाधन हैं। यहाँ एशिया के विशालतम लौह अयस्क आरक्षित हैं। हमारे देश में इस अयस्क के दो प्रमुख प्रकार हेमेटाइट तथा मैग्नेटाइट पाए जाते हैं।

इसकी सर्वोत्तम गुणवत्ता के कारण इसकी विश्व-भर में भारी माँग है। लौह अयस्क की खदानें देश के उत्तर-पूर्वी पठार प्रदेश में कोयला क्षेत्रों के निकट स्थित हैं जो इसके लिए लाभप्रद है।

हमारे देश में 2004-05 में लौह अयस्क के आरक्षित भंडार लगभग 200 करोड़ टन थे। लौह अयस्क के कुल आरक्षित भंडारों का लगभग 95 प्रतिशत भाग उड़ीसा, झारखंड, छत्तीसगढ़, कर्नाटक, गोआ, आंध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु राज्यों में स्थित हैं। उड़ीसा में लौह अयस्क सुंदरगढ़, मयूरभंज, झार स्थित पहाड़ी श्रृंखलाओं में पाया जाता है। यहाँ की महत्वपूर्ण खदानें- गुरुमहिसानी, सुलाएपत, बादामपहाड़ (मयूरभंज) किरुबुरू (केंदूझार) तथा बोनाई (सुंदरगढ़) हैं। झारखंड की ऐसी ही पहाड़ी श्रृंखलाओं में कुछ सबसे पुरानी लौह अयस्क की खदानें हैं तथा अधिकतर लौह एवं इस्पात संयंत्र इनके आसपास ही स्थित हैं। नोआमंडी और गुआ जैसी अधिकतर महत्वपूर्ण खदानें पूर्वी और पश्चिमी सिंहभूम जिलों में स्थित हैं। यह पट्टी और आगे दुर्ग, दांतेवाड़ा और बैलाडीला तक विस्तृत हैं। डल्ली तथा दुर्ग में राजहरा की खदानें देश की लौह अयस्क की महत्वपूर्ण खदानें हैं। कर्नाटक में, लौह अयस्क के निक्षेप बेलारी जिले के संदूर-होस्पेट क्षेत्र में तथा चिकमगलूर जिले की बाबा बूदन पहाड़ियों और कुद्रेमुख तथा शिमोगा, चित्रदुर्ग और तुमकुर जिलों के कुछ हिस्सों में पाए जाते हैं। महाराष्ट्र के चंद्रपुर भंडारा और रत्नागिरि जिले, आंध्र प्रदेश के करीम नगर, वारांगल, कुरूनूल, कडप्पा तथा अनंतपुर जिले और तमिलनाडु राज्य के सेलम तथा नीलगिरी जिले लौह अयस्क खनन के अन्य प्रदेश हैं। गोआ भी लौह अयस्क के महत्वपूर्ण उत्पादक के रूप में उभरा है।

मैंगनीज़

लौह अयस्क के प्रगलन के लिए मैंगनीज़ एक महत्वपूर्ण कच्चा माल है और इसका उपयोग लौह-मिश्रातु, विनिर्माण में भी किया जाता है। मैंगनीज़ निक्षेप लगभग सभी भूगर्भिक संरचनाओं में पाया जाता है हालाँकि; मुख्य रूप से यह धारवाड़ क्रम से संबद्ध है।

उड़ीसा मैंगनीज का अग्रणी उत्पादक है। उड़ीसा की मुख्य खदानें भारत की लौह अयस्क पट्टी के मध्य भाग में विशेष रूप से बोनाई, केन्दुझर, सुंदरगढ़, गंगपुर, कोरापुट, कालाहांडी तथा बोलनगीर स्थित हैं। कर्नाटक एक अन्य प्रमुख उत्पादक है तथा यहाँ की खदानें धारवाड़, बेल्लारी, बेलगाम, उत्तरी कनारा, चिकमगलूर, शिमोगा, चित्रदुर्ग तथा तुमकुर में स्थित हैं। महाराष्ट्र भी मैंगनीज का एक महत्वपूर्ण उत्पादक हैं। यहाँ मैंगनीज़ का खनन नागपुर, भंडारा तथा रत्नागिरी जिलों में होता है। इन खदानों के अलाभ ये हैं कि ये इस्पात संयंत्रों से दूर स्थित हैं। मध्य प्रदेश में मैंगनीज़ की पट्टी बालाघाट, छिंदवाड़ा, निमाड़, मांडला और झाबुआ जिलों तक विस्तृत है।

आंध्र प्रदेश, गोआ तथा झारखंड मैंगनीज़ के अन्य गौण उत्पादक हैं।

अलौह-खनिज

बॉक्साइट को छोड़कर अन्य सभी अलौह-खनिजों के संबंध में भारत एक स्थिति निम्न है।

बॉक्साइट

बॉक्साइट एक अयस्क है जिसका प्रयोग एल्यूमिनियम के विनिर्माण में किया जाता है। बॉक्साइट मुख्यतः टरश्यरी निक्षेपों में पाया जाता है और लैटराइट चट्टानों से संबद्ध है। यह विस्तृत रूप से प्रायद्वीपीय भारत के पठारी क्षेत्रों अथवा पर्वत श्रेणियों के साथ-साथ देश के तटीय भागों में भी पाया जाता है।

उड़ीसा बॉक्साइट का सबसे बड़ा उत्पादक है। कालाहांडी तथा संभलपुर अग्रणी उत्पादक हैं। दो अन्य क्षेत्र जो अपने उत्पादन को बढ़ा रहे हैं वे बोलनगीर तथा कोरापुट हैं। झारखंड में लोहारडागा जिले की पैटलैंडस में इसके समृद्ध निक्षेप हैं। गुजरात, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र अन्य प्रमुख उत्पादक राज्य हैं। गुजरात के भावनगर और जामनगर में इसके प्रमुख निक्षेप हैं। छत्तीसगढ़ में बॉक्साइट निक्षेप अमरकंटक के पठार में पाए जाते हैं जबकि मध्य प्रदेश में कटनी, जबलपुर तथा बालाघाट में बॉक्साइट के महत्वपूर्ण निक्षेप हैं। महाराष्ट्र में कोलाबा, थाणे, रत्नागिरी,

सतारा, पुणे तथा कोल्हापुर महत्वपूर्ण उत्पादक हैं। कर्नाटक, तमिलनाडु, तथा गोआ बॉक्साइट के गौण उत्पादक हैं।

ताँबा

बिजली की मोटरें, ट्रांसफार्मर तथा जेनेरेटर्स आदि बनाने तथा विद्युत उद्योग के लिए ताँबा एक अपरिहार्य धातु है। यह एक मिश्रातु योग्य, आघातवर्ध्य तथा तन्य धातु हैं। आभूषणों को सुदृढ़ता प्रदान करने के इसे स्वर्ण के साथ भी मिलाया जाता है।

ताँबा निक्षेप मुख्यतः झारखंड के सिंहभूमि जिले में, मध्य प्रदेश के बालाघाट तथा राजस्थान के झुंझुनु एवं अलवर जिलों में पाए जाते हैं।

ताँबा के गौण उत्पादक आंध्र प्रदेश गुंटूर जिले का अग्निगुंडाला, कर्नाटक के चित्रदुर्ग तथा हासन जिले और तमिलनाडु का दक्षिण आरकाट ज़िला हैं।

अधात्विक खनिज

भारत में उत्पादित अधात्विक खनिजों में अभ्रक महत्वपूर्ण है। स्थानीय खपत के लिए उत्पन्न किए जा रहे अन्य खनिज चूनापत्थर, डोलोमाइट तथा फोस्फेट हैं।

अभ्रक

अभ्रक का उपयोग मुख्यतः विद्युत एवं इलेक्ट्रोनिक्स उद्योगों में किया जाता है। इसे पतली चादरों में विघटित किया जा सकता है जो काफ़ी सख्त और सुनम्य होती है। भारत में अभ्रक मुख्यतः झारखंड, आंध्र प्रदेश व राजस्थान में पाया जाता है। इसके पश्चात् तमिलनाडु, पं. बंगाल और मध्य प्रदेश आते हैं। झारखंड में उच्च गुणवत्ता वाला अभ्रक निचले हजारीबाग पठार की 150 कि.मी. लंबी व 22 कि.मी. चौड़ी पट्टी में पाया जाता है। आंध्र प्रदेश में, नेल्लोर जिले में सर्वोत्तम प्रकार के अभ्रक का उत्पादन किया जाता है। राजस्थान में अभ्रक की पट्टी लगभग 320 कि.मी. लंबाई में जयपुर से भीलवाड़ा और उदयपुर के आसपास विस्तृत है। कर्नाटक के मैसूर व हासन जिले, तमिलनाडु के कोयम्बटूर, तिरुचिरापल्ली, मदुरई तथा कन्याकुमारी जिले; महाराष्ट्र के रत्नागिरी तथा पश्चिम बंगाल के पुरुलिया एवं बाँकुरा जिलों भी अभ्रक के निक्षेप पाए जाते हैं।

ऊर्जा संसाधन

ऊर्जा उत्पादन के लिए खनिज ईंधन अनिवार्य हैं। ऊर्जा की आवश्यकता कृषि, उद्योग, परिवहन तथा अर्थव्यवस्था के अन्य खंडों में होती है। कोयला. पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस जैसे खनिज ईंधन (जो जीवाश्म ईंधन के रूप में जाने जाते हैं), परमाणु ऊर्जा, ऊर्जा के परंपरागत स्रोत हैं। ये परंपरागत स्रोत समाप्य संसाधन हैं।

कोयला

कोयला महत्वपूर्ण खनिजों में से एक है जिसका मुख्य प्रयोग ताप विद्युत उत्पादन तथा लौह अयस्क के प्रगलन के लिए किया जाता है। कोयला मुख्य रूप से दो भूगर्भिक कालों की शैल क्रमों में पाया जाता है जिनके नाम हैं गोंडवाना और टर्शियरी निक्षेप।

भारत में कोयला निक्षेपों का लगभग 80 प्रतिशत भाग बिटुमिनियस प्रकार का तथा गैर कोककारी श्रेणी का है। गोंडवाना कोयले के प्रमुख संसाधन पं. बंगाल, झारखंड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश में अवस्थित कोयला क्षेत्रों में है।

सिंगरेनी में खननकर्मियों के बचाव हेतु चिड़िया

सिंगरेनी कोलेरीज देश की अग्रणी कोयला उत्पादक कंपनी है जो अभी भी भूमिगत केनरी कोयला खदानों में जानलेवा कार्बनमोनो-आक्साड गैसों की उपस्थिति का पता लगाने हेतु चिड़िया का उपयोग करते हैं। यदि कोयला खदान के अंदर वायु में अत्यधिक विषाक्त कार्बन डाईऑक्साइड गैस की थोड़ी मात्रा भी उपलब्ध होती है तो खननकर्मी बेहोश हो जाते हैं और मर भी जाते हैं। यद्यपि खननकर्मी के बारे में मीठी-मीठी बातें करते हैं; तथापि उस नन्ही चिड़िया के लिए भूमि के नीचे का अनुभव बिल्कुल सुखद नहीं होता। जब इस पक्षी को कार्बन डाईऑक्साइड से युक्त खदानों में उतारा जाता है तो वह संकट के लक्षण प्रदर्शित करती है जैसे कि पंखों को फड़फड़ाना, जोर से चहचहाना और जीवन का अंत। यह प्रतिक्रिया तब भी होती है जब हवा में कार्बन डाईऑक्साइड की उपस्थिति 15 प्रतिशत होती है। यदि हवा में यह मात्रा 0.3 प्रतिशत की हो जाती है तो चिड़िया तुरंत ही संकट को प्रदर्शित करती है और दो या तीन मिनट में ही वह अपने टिकान से गिर पड़ती है। एक कोयला खनक के अनुसार इन पक्षियों का एक पिंजरा कार्बन डाईआक्साइड 0.15 प्रतिशत से अधिक मात्रा के लिए अच्छा संकेतक होता है।

एक कंपनी द्वारा आरंभ किया गया दस्तेवाला कार्बन डाई आक्साइड की हवा में न्यूनतम 10 पी.पी.एम. मात्रा से उच्चतम 1000 पी.पी.एम. तक की संसूचना दे सकता है। लेकिन इस सबके बावजूद, खननकर्मी पक्षियों पर, जिन्होंने अपने सैकड़ों अग्रज खननकर्मियों की जानें बचाई अधिक विश्वास करते हैं।

भारत में सर्वाधिक महत्वपूर्ण गोंडवाना कोयला क्षेत्र दामोदर घाटी में स्थित है। ये झारखंड-बंगाल कोयला पट्टी में स्थित हैं और इस प्रदेश के महत्वपूर्ण कोयला क्षेत्र रानीगंज, झरिया, बोकारो गिरीडीह तथा करनपुरा (झारखंड) हैं। झरिया सबसे बड़ा कोयला क्षेत्र है जिसके बाद रानीगंज आता है। कोयले से संबद्ध अन्य नदी घाटियाँ गोदावरी, महानदी तथा सोन हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण कोयला खनन केंद्र मध्य प्रदेश में सिंगरौली (सिंगरौली कोयला क्षेत्र का कुछ भाग उत्तर प्रदेश में भी आता है) छत्तीसगढ़ में कोरबा, उड़ीसा में तलचर तथा रामपुर; महाराष्ट्र में चाँदा-वर्धा, काम्पटी और बांदेर तथा आंध्र प्रदेश में सिंगरेनी व पांडुर हैं।

टशियरी कोयला असम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय तथा नागालैंड में पाया जाता है। यह दरानगिरी, चेरापूँजी, मेवलांग तथा लैंग्रिन (मेघालय); माकुम, जयपुर तथा ऊपरी असम में नज़ीरा नामचिक-नाम्फुक (अरुणाचल प्रदेश) तथा कालाकोट (जम्मू-कश्मीर) में निष्कर्षित किया जाता है।

इसके अतिरिक्त भूरा कोयला या लिगनाइट तमिलनाडु के तटीय भागों पांडिचेरी, गुजरात और जम्मू एवं कश्मीर में भी पाया जाता है।

पेट्रोलियम

कच्चा पेट्रोलियम द्रव और गैसीय अवस्था के हाइड्रोकार्बन से युक्त होता है तथा इसकी रासायनिक संरचना, रंगों और विशिष्ट घनत्व में भिन्नता पाई जाती है। यह मोटर-वाहनों, रेलवे तथा वायुयानों के अंतर-दहन ईंधन के लिए ऊर्जा का एक अनिवार्य स्रोत है। इसके अनेक सह-उत्पाद पेट्रो-रसायन उद्योगों, जैसे कि उर्वरक, कृत्रिम रबर, कृत्रिम रेशे, दवाइयाँ, वैसलीन, स्नेहकों, मोम, साबुन तथा अन्य सौंदर्य सामग्री में प्रक्रमित किए जाते हैं।

अपरिष्कृत पेट्रोलियम टरश्यरी युग की अवसादी शैलों में पाया जाता है। व्यवस्थित ढंग से तेल अन्वेषण और उत्पादन 1956 में तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग की स्थापना के बाद प्रारंभ हुआ। तब तक असम में डिगबोई एकमात्र तेल उत्पादक क्षेत्र था, लेकिन 1956 के बाद परिदृश्य बदल गया। हाल ही के वर्षों में देश के दूरतम पश्चिमी एवं पूर्वी तटों पर नए तेल निक्षेप पाए गए हैं। असम में डिगबोई, नहारकटिया तथा मोरान महत्वपूर्ण तेल उत्पादक क्षेत्र हैं। गुजरात में प्रमुख तेल क्षेत्र अंकलेश्वर, कालोल, मेहसाणा, नवागाम, कोसांबा तथा लुनेज हैं। मुंबई हाई, जो मुंबई नगर से 160 कि.मी. दूर अपतटीय क्षेत्र में पड़ता है, को 1973 में खोजा गया था और वहाँ 1976 में उत्पादन प्रारंभ हो गया। तेल एवं प्राकृतिक गैस को पूर्वी तट पर कृष्णा-गोदावरी तथा कावेरी के बेसिनों में अन्वेषणात्मक कूपों में पाया गया है।

कूपों से निकाला गया तेल अपरिष्कृत तथा अनेक अशुद्धियों से परिपूर्ण होता है। इसे सीधे प्रयोग में नहीं लाया जा सकता। इसे शोधित किए जाने की आवश्यकता होती है। भारत में दो प्रकार के तेल शोधन कारखाने हैं : (क) क्षेत्र आधारित (ख) बाज़ार आधारित। डिगबोई तेल शोधन कारखाना क्षेत्र आधारित तथा बरौनी बाज़ार आधारित तेल शोधन कारखाने के उदाहरण हैं।

भारत में 18 तेल शोधन कारखाने हैं । उन राज्यों की पहचान करें जहाँ वे अवस्थित हैं।

रामानाथपुरम (तमिलनाडु) में विशाल गैस भंडारों के संकेत

समाचार पत्र 'द हिंदू', 05-09-06' की रिपोर्ट के अनुसार रामानाथपुरम ज़िले में तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग ने प्राकृतिक गैस भंडारों के संभावित क्षेत्र पाए हैं। यह सर्वेक्षण अभी प्रारंभिक अवस्था में हैं। गैस की सही मात्रा का पता सर्वेक्षण पूरा होने के बाद ही चल पाएगा। लेकिन अभी तक के परिणाम उत्साहवर्धक हैं।

प्राकृतिक गैस

गैस अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (GAIL) की स्थापना 1984 में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम के रूप में प्राकृतिक गैस के परिवहन एवं विपणन के लिए की गई थी। गैस को सभी तेल क्षेत्रों में तेल के साथ प्राप्त किया जाता है। किंतु इसके प्रकनिष्ठ भंडार (Exclusive reserve) साथ तमिलनाडु के पूर्वी तट, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, त्रिपुरा, राजस्थान तथा गुजरात एवं महाराष्ट्र के अपतटीय कुओं में पाए गए हैं।

अपरंपरागत ऊर्जा स्रोत

कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस तथा नाभिकीय ऊर्जा जैसे जीवाश्म ईंधन के स्रोत समाप्य कच्चे माल का प्रयोग करते हैं। सतत पोषणीय ऊर्जा के स्रोत के ही नवीकरण योग्य स्रोत हैं जैसे- सौर, पवन, जल, भूतापीय ऊर्जा तथा जैवभार (बायोमास)। यह ऊर्जा स्रोत अधिक समान रूप से वितरित तथा पर्यावरण-अनुकूल हैं। अपरंपरागत स्रोत अधिक आरंभिक लागत के बावजूद अधिक टिकाऊ, पारिस्थितिक-अनुकूल तथा सस्ती ऊर्जा उपलब्ध कराते हैं।

नाभिकीय ऊर्जा

हाल के वर्षों में नाभिकीय ऊर्जा एक व्यवहार्य स्रोत के रूप में उभरा है। नाभिकीय ऊर्जा के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले महत्वपूर्ण खनिज यूरेनियम और थोरियम हैं। यूरेनियम निक्षेप धारवाड़ शैलों में पाए जाते हैं। भौगोलिक रूप से यूरेनियम अयस्क सिंहभूम ताँबा पट्टी के साथ अनेक स्थानों पर मिलते हैं। यह राजस्थान के उदयपुर, अलवर, झुंझुनू जिलों, मध्य प्रदेश के दुर्ग जिले, महाराष्ट्र के भंडारा जिले तथा हिमाचल प्रदेश के कुल्लू जिले में भी पाया जाता है। थोरियम मुख्यतः केरल के तटीय क्षेत्र की पुलिन बीच (beach) की बालू में मोनाजाइट एवं इल्मेनाइट से प्राप्त किया जाता है। विश्व के सबसे समृद्ध मोनाजाइट निक्षेप केरल के पालाक्काड तथा कोलाम जिलों, आंध्र प्रदेश के विशाखापट्नम तथा उड़ीसा में महानदी के नदी डेल्टा में पाए जाते हैं।

परमाणु ऊर्जा आयोग की स्थापना 1948 में की गई थी और इस दिशा में प्रगति 1954 में ट्रांबे परमाणु ऊर्जा संस्थान की स्थापना के बाद हुई जिसे बाद में, 1967 में, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के रूप में पुनः नामित किया गया। महत्वपूर्ण नाभिकीय ऊर्जा परियोजनाएँ- तारापुर (महाराष्ट्र), कोटा के पास रावतभाटा (राजस्थान), कलपक्कम (तमिलनाडु), नरोरा (उत्तर प्रदेश), कैगा (कर्नाटक) तथा काकरापाड़ा (गुजरात) हैं।

सौर ऊर्जा

फोटोवोल्टाइक सेलों में विपाशित सूर्य की किरणों को ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है जिसे सौर ऊर्जा के नाम से जाना जाता है। सौर ऊर्जा

को काम में लाने के लिए जिन दो प्रक्रमों को बहुत ही प्रभावी माना जाता है वे हैं फोटोवोल्टाइक और सौर-तापीय प्रौद्योगिकी। अन्य सभी अनवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों की अपेक्षा सौर-तापीय प्रौद्योगिकी अधिक लाभप्रद है। यह लागत प्रतिस्पर्धी, पर्यावरण अनुकूल तथा निर्माण में आसान है। सौर ऊर्जा कोयला अथवा तेल आधारित संयंत्रों की अपेक्षा 7 प्रतिशत अधिक और नाभिकीय ऊर्जा से 10 प्रतिशत अधिक प्रभावी है। यह सामान्यतः हीटरों, फ़सल शुष्ककों (Crop dryer), कुकर्स (Cookers) आदि जैसे उपकरणों में अधिक प्रयोग की जाती है। भारत के पश्चिमी भागों गुजरात व राजस्थान में सौर ऊर्जा के विकास की अधिक संभावनाएँ हैं।

पवन ऊर्जा

पवन ऊर्जा पूर्णरूपेण प्रदूषण मुक्त और ऊर्जा का असमाप्य स्रोत है। प्रवाहित पवन से ऊर्जा को परिवर्तित करने की अभियांत्रिकी बिल्कुल सरल है। पवन की गतिज ऊर्जा को टरबाइन के माध्यम से विद्युत ऊर्जा में बदला जाता है। सम्मार्गी पवनों व पछुवा पवनों जैसी स्थायी पवन प्रणालियाँ और मानसून पवनों को ऊर्जा के स्रोत के रूप में प्रयोग किया गया है। इनके अलावा स्थानीय हवाओं, स्थलीय और जलीय पवनों को भी विद्युत पैदा करने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

भारत ने पहले से ही पवन ऊर्जा का उत्पादन आरंभ कर दिया है। इसके पास एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम है जिसमें 45 मेगावाट की कुल क्षमता के लिए 250 वायुचालित टरबाइनें स्थापित की जानी हैं जो 12 अनुकूल स्थानों, विशेष रूप से सागरतटीय क्षेत्रों में लगाई जाएंगी। ऊर्जा मंत्रालय के एक अनुमान के अनुसार भारत ऊर्जा के इस स्रोत से 3,000 मेगावाट विद्युत का उत्पादन कर पाएगा। गैर परंपरा ऊर्जा स्रोत मंत्रालय, भारत के तेल के आयात बिल के भार को कम करने के लिए, पवन ऊर्जा को विकसित कर रहा है। हमारे देश में पवन ऊर्जा उत्पादन की संभावित क्षमता 50,000 मेगावाट की है जिसमें से एक-चौथाई ऊर्जा को आसानी से काम में लाया जा सकता है। पवन ऊर्जा के लिए राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक में अनुकूल परिस्थितियाँ विद्यमान हैं। गुजरात के कच्छ में लाम्बा का पवन ऊर्जा संयंत्र एशिया का सबसे बड़ा संयंत्र है। पवन ऊर्जा का एक अन्य संयंत्र तमिलनाडु के तूतीकोरन में स्थित है।

ज्वारीय तथा तरंग ऊर्जा

महासागरीय धाराएँ ऊर्जा का अपरिमित भंडार-गृह है। सत्रहवीं एवं अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही अविरल ज्वारीय तरंगों और महासागरीय धाराओं से अधिक ऊर्जा तंत्र बनाने के निरंतर प्रयास जारी हैं। भारत के पश्चिमी तट पर वृहत ज्वारीय तरंगें उत्पन्न होती हैं। यद्यपि भारत के पास तटों के साथ ज्वारीय ऊर्जा विकसित करने की व्यापक संभावनाएँ हैं, परंतु अभी तक इनका उपयोग नहीं किया गया है।

भूतापीय ऊर्जा

जब पृथ्वी के गर्भ से मैग्मा निकलता है तो अत्यधिक ऊष्मा निर्मुक्त होती है। इस ताप ऊर्जा को सफलतापूर्वक काम में लाया जा सकता है और इसे विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है। इसके अलावा, गीजर कूपों से निकलते गर्म पानी से ताप ऊर्जा पैदा की जा सकती है। इसे लोकप्रिय रूप में भूतापी ऊर्जा के नाम से जानते हैं। इस ऊर्जा को अब एक प्रमुख ऊर्जा स्रोत के रूप में माना जा रहा है जिसे एक वैकल्पिक स्रोत के रूप में विकसित किया जा सकता है। मध्यकाल से ही गर्म स्त्रोतों (झरनों) एवं गीजरों का उपयोग होता आ रहा है। भारत में, भूतापीय ऊर्जा संयंत्र हिमाचल प्रदेश के मनीकरण में अधिकृत किया जा चुका है।

भूमिगत ताप के उपयोग का पहला सफल प्रयास (1890 में) बोयजे शहर, इडाहो (यू.एस.ए.) में हुआ था जहाँ आसपास के भवनों को ताप देने के लिए गरम जल के पाइपों का जाल तंत्र (नेटवर्क) बनाया गया था। यह संयंत्र अभी भी काम कर रहा है।

जैव-ऊर्जा

जैव-ऊर्जा उस ऊर्जा को कहा जाता है जिसे जैविक उत्पादों से प्राप्त किया जाता है जिसमें कृषि अवशेष, नगरपालिका औद्योगिक तथा अन्य अपशिष्ट शामिल होते हैं। जैव-ऊर्जा, ऊर्जा परिवर्तन का एक संभावित स्रोत है। इसे विद्युत ऊर्जा, ताप-ऊर्जा अथवा खाना पकाने के लिए गैस में परिवर्तित किया जा सकता है। यह अपशिष्ट एवं कूड़ा-कचरा प्रक्रमित करेगा एवं ऊर्जा भी पैदा करेगा। यह विकासशील देशों के ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक जीवन को भी बेहतर बनाएगा तथा पर्यावरण प्रदूषण घटाएगा, उनकी आत्मनिर्भरता बढ़ाएगा तथा जलाऊ लकड़ी पर दबाव कम करेगा। नगरपालिका कचरे को ऊर्जा में बदलने वाली ऐसी ही एक परियोजना नई दिल्ली के ओखला में स्थित है।

खनिज संसाधनों का संरक्षण

सतत पोषणीय विकास की चुनौती के लिए आर्थिक विकास की चाह का पर्यावरणीय मुद्दों से समन्वय आवश्यक है। संसाधन उपयोग के परंपरागत तरीकों के परिणामस्वरूप बड़ी मात्रा में अपशिष्ट के साथ-साथ अन्य पर्यावरणीय समस्याएँ भी पैदा होती हैं। अतएव, सतत पोषणीय विकास भावी पीढ़ियों के लिए संसाधनों के संरक्षण का आह्वान करता है। संसाधनों का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों, जैसे- सौर ऊर्जा, पवन, तरंग, भूतापीय आदि ऊर्जा के असमाप्य स्रोत हैं। धात्विक खनिजों के मामले में, छाजन धातुओं का उपयोग, धातुओं का पुनर्चक्रण संभव करेगा।

ताँबा, सीसा और जस्ते जैसी धातुओं में जिनमें भारत के भंडार - अपर्याप्त हैं, छाजन (स्क्रैप) का प्रयोग विशेष रूप से सार्थक - है। अत्यल्प धातुओं के लिए प्रतिस्थापनों का उपयोग भी उनकी खपत को घटा सकता है। सामरिक और अत्यल्प खनिजों - के निर्यात को भी घटाना चाहिए ताकि वर्तमान आरक्षित भंडारों का लंबे समय तक प्रयोग किया जा सके।

निर्माण उद्योग

हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विविध प्रकार की वस्तुओं का उपयोग करते हैं। कृषि उत्पादकों, जैसे- गेहूँ, धान आदि को हमारे उपयोग करने से पहले आटा और चावल के रूप में तैयार किया जाता है। लेकिन रोटी और चावल के अतिरिक्त हमें कपड़ों, पुस्तकों, पंखों, कारों और दवाइयों आदि की भी आवश्यकता होती है जिनका निर्माण विभिन्न प्रकार के उद्योगों में होता है। आधुनिक समय में जो अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुके हैं। ये उद्योग-धंधे एक बड़ी संख्या में श्रमिकों को रोज़गार प्रदान करते हैं और कुल राष्ट्रीय संपत्ति/आय में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं।

उद्योगों के प्रकार

उद्योगों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया गया है। आकार, पूँजी निवेश और श्रमशक्ति के आधार पर उद्योगों को बृहत्, मध्यम, लघु और कुटीर उद्योग में वर्गीकृत किया गया है। स्वामित्व के आधार पर उद्योगों को (i) सार्वजनिक सेक्टर (ii) व्यक्तिगत सेक्टर (iii) मिश्रित और सहकारी सेक्टर में विभक्त किया गया है। सार्वजनिक सेक्टर उद्योग सरकार द्वारा नियंत्रित कंपनियाँ या निगम हैं जो सरकार द्वारा निधि प्रदत्त होते हैं। सार्वजनिक सेक्टर में सामान्यतः सामरिक और राष्ट्रीय महत्व के उद्योग-धंधे आते हैं। उद्योगों का वर्गीकरण उनके उत्पादों के उपयोग के आधार पर भी किया गया है, जैसे-(i) मूल पदार्थ उद्योग (ii) पूँजीगत पदार्थ उद्योग (iii) मध्यवर्ती पदार्थ उद्योग (iv) उपभोक्ता पदार्थ उद्योग।

उद्योगों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले कच्चे माल के आधार पर भी उनका वर्गीकरण किया गया है। इसके अनुसार यह वर्गीकरण इस प्रकार है- (i) कृषि-आधारित उद्योग (ii) वन-आधारित उद्योग (iii) खनिज-आधारित उद्योग (iv) उद्योगों द्वारा निर्मित कच्चे माल पर आधारित उद्योग।

उद्योगों का दूसरा प्रचलित वर्गीकरण, निर्मित उत्पादकों की प्रकृति पर आधारित है। इस प्रकार 8 प्रकार के उद्योग हैं-(1) धातुकर्म उद्योग (2) यांत्रिक इंजीनियरी उद्योग (3) रासायनिक और संबद्ध उद्योग (4) वस्त्र उद्योग (5) खाद्य संसाधन उद्योग (6) विद्युत उत्पादन उद्योग (7) इलेक्ट्रॉनिक और (8) संचार उद्योग। आप कभी-कभी स्वतंत्र उद्योग के बारे में पढ़ते हैं।

उद्योगों की स्थिति

क्या आप पूर्वी और दक्षिणी भारत में लोहा-इस्पात उद्योग की स्थिति के कारणों का अनुमान लगा सकते हैं? उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान और गुजरात में कोई भी लोहा-इस्पात उद्योग क्यों नहीं है?

उद्योगों की स्थिति कई कारकों, जैसे कच्चा माल की उपलब्धता शक्ति, बाजार, पूँजी, यातायात और श्रम इत्यादि द्वारा प्रभावित होती है। इन कारकों का सापेक्षिक महत्व समय और स्थान के साथ बदल जाता है। कच्चे माल और उद्योग के प्रकार में घनिष्ठ संबंध होता है। आर्थिक दृष्टि से, निर्माण उद्योग को उस स्थान पर स्थापित करना चाहिए जहाँ उत्पादन मूल्य और निर्मित वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक वितरण करने का मूल्य न्यूनतम हो। परिवहन मूल्य एक बड़ी सीमा तक कच्चे माल और निर्मित उत्पादों की प्रकृति पर निर्भर करता है। उद्योगों की स्थिति को प्रभावित करने वाले कारकों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है।

कच्चा माल

भार-ह्रास वाले कच्चे माल का उपयोग करने वाले उद्योग उन प्रदेशों में स्थापित किए जाते हैं जहाँ ये उपलब्ध होते हैं। भारत में चीनी मिलें गन्ना उत्पादक क्षेत्रों में क्यों स्थापित हैं? इसी तरह, लुगदी उद्योग, ताँबा प्रगलन और पिग आयरन उद्योग अपने कच्चे माल प्राप्ति के स्थानों के निकट ही स्थापित किए जाते हैं। लोहा-इस्पात उद्योग में लोहा और कोयला दोनों ही भार ह्रास वाले कच्चे माल हैं। इसीलिए लोहा-इस्पात उद्योग की स्थिति के लिए अनुकूलतम स्थान कच्चा माल स्रोतों के निकट स्थित हैं अथवा लौह अयस्क के स्रोतों (भद्रावती, भिलाई और राउरकेला) के निकट स्थित हैं।

शक्ति

शक्ति मशीनों के लिए गतिदायी बल प्रदान करती है और इसीलिए किसी भी उद्योग की स्थापना से पहले इसकी आपूर्ति सुनिश्चित कर ली जाती है। फिर भी कुछ उद्योगों जैसे-एल्युमिनियम और कृत्रिम नाइट्रोजन निर्माण उद्योग की स्थापना शक्ति स्रोत के निकट की जाती है क्योंकि ये अधिक शक्ति उपयोग करने वाले उद्योग हैं, जिन्हें विद्युत की बड़ी मात्रा की आवश्यकता होती है।

बाज़ार

बाज़ार, निर्मित उत्पादों के लिए निर्गम उपलब्ध कराती हैं। भारी मशीन, मशीन के औज़ार, भारी रसायनों की स्थापना उच्च माँग वाले क्षेत्रों के निकट की जाती है क्योंकि ये बाज़ार-अभिमुख होते हैं। सूती वस्त्र उद्योग में शुद्ध (जिसमें भार-ह्रास नहीं होता) कच्चे माल का उपयोग होता है और ये प्रायः बड़े नगरीय केंद्रों में स्थापित किए जाते हैं, उदाहरणार्थ- मुंबई, अहमदाबाद, सूरत आदि। पेट्रोलियम परिशोधनशालाओं की स्थापना भी बाज़ारों के निकट की जाती है क्योंकि अपरिष्कृत तेल का परिवहन आसान होता है और उनसे प्राप्त कई उत्पादों का उपयोग दूसरे उद्योगों में कच्चे माल के रूप में किया जाता है। कोयली, मथुरा और बरौनी इसके विशिष्ट उदाहरण हैं। परिशोधनशालाओं की स्थापना में पत्तन भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

परिवहन

क्या आपने कभी मुंबई, चेन्नई, दिल्ली और कोलकाता के अंदर और उनके चारों ओर उद्योगों के केंद्रीकरण के कारणों को जानने का प्रयास किया है? ऐसा इसलिए हुआ कि ये प्रारंभ में ही परिवहन मार्गों को जोड़ने वाले केंद्र बिंदु (Node) बन गए। रेलवे लाइन बिछने के बाद ही उद्योगों को आंतरिक भागों में स्थानांतरित किया गया। सभी मुख्य उद्योग मुख्य रेल मार्गों पर स्थित हैं।

श्रम

क्या हम श्रम के बिना उद्योग के बारे में सोच सकते है? उद्योगों को कुशल श्रमिकों की आवश्यकता होती है। भारत में श्रम बहुत गतिशील है तथा जनसंख्या अधिक होने के कारण बड़ी संख्या में उपलब्ध है।

ऐतिहासिक कारक

क्या आपने कभी मुंबई, कोलकाता और चेन्नई के औद्योगिक केंद्र के रूप में उभरने के कारणों के विषय में सोचा है? ये स्थान हमारे औपनिवेशिक अतीत द्वारा अत्यधिक प्रभावित थे। उपनिवेशीकरण के प्रारंभिक चरणों में निर्माण क्रियाओं को यूरोप के व्यापारियों द्वारा नव प्रोत्साहन दिया गया। मुर्शिदाबाद, ढाका, भदोई, सूरत, वडोदरा, कोझीकोड, कोयम्बटूर, मैसूर आदि स्थान महत्वपूर्ण निर्माण केंद्रों के रूप में उभरे। उपनिवेशवाद के उत्तरकालीन औद्योगिक चरण में, ब्रिटेन में निर्मित वस्तुओं से होड़ और उपनिवेशिक शक्ति की भेदमूलक नीति के कारण, इन निर्माण केंद्रों का तेज़ी से विकास हुआ।

उपनिवेशवाद के अंतिम चरणों में अंग्रजों ने चुने हुए क्षेत्रों में कुछ उद्योगों को प्रोन्नत किया। इससे, देश में विभिन्न प्रकार के उद्योगों का बड़े पैमाने पर स्थानिक विस्तार हुआ।

औद्योगिक नीति

एक प्रजातांत्रिक देश होने के कारण भारत का उद्देश्य संतुलित प्रादेशिक विकास के साथ आर्थिक संवृद्धि लाना है।

भिलाई और राउरकेला में लौह-स्पात उद्योग की स्थापना देश के पिछड़े जनजातीय क्षेत्रों के विकास के निर्णय पर आधारित थी। वर्तमान समय में भारत सरकार पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित उद्योग-धंधों को अनेक प्रकार के प्रोत्साहन देती है।

मुख्य उद्योग

किसी भी देश के औद्योगिक विकास के लिए लौह-इस्पात उद्योग एक मूल आधार होता है। सूती वस्त्र उद्योग हमारे परंपरागत उद्योगों में से एक है। चीनी उद्योग स्थानिक कच्चे माल पर आधारित है जो कि अंग्रेज़ों के समय में भी फला फूला।

इनके अतिरिक्त इस अध्याय में वर्तमान में और भी आधुनिक उद्योग जैसे पेट्रोलियम रासायनिक उद्योग (Petrochemical Industry) और अवगम प्रौद्योगिकी उद्योग (IT Industry) की भी विवेचना की जाएगी।

लौह-इस्पात उद्योग

लौह-इस्पात उद्योग के विकास ने भारत में तीव्र औद्योगिक विकास के दरवाजे खोल दिए। भारतीय उद्योग के लगभग सभी सेक्टर अपनी मूल आधारिक अवसंरचना के लिए मुख्य रूप से लोहा इस्पात उद्योग पर निर्भर करते हैं। क्या हम लोहे के उपयोग के बिना कृषि में होने वाले औजार बना सकते हैं?

लौह इस्पात उद्योग के लिए लौह अयस्क और कोककारी कोयला के अतिरिक्त चूनापत्थर, डोलोमाइट, मैंगनीज और अग्निसहमृत्तिका आदि कच्चे माल की भी आवश्यकता होती है।

ये सभी कच्चे माल स्थूल (भार ह्रास वाले) होते हैं। इसलिए लोहा-इस्पात उद्योग की सबसे अच्छी स्थिति कच्चे माल स्रोतों के निकट होती है। भारत में छत्तीसगढ़, उत्तरी उड़ीसा, झारखंड और पश्चिमी पश्चिम बंगाल के भागों को समाविष्ट करते हुए एक अर्धचंद्राकार प्रदेश है जो कि उच्च कोटि के लौह अयस्क, अच्छे गुणवत्ता वाले कोककारी कोयला और अन्य संपूरकों से समृद्ध है। जिसके परिणामस्वरूप इस प्रदेश में लौह-इस्पात उद्योग प्रारंभ में ही स्थापित कर दिया गया था।

भारतीय लौह-इस्पात उद्योग के अंतर्गत बड़े एकीकृत इस्पात कारखानों और छोटी इस्पात मिलें भी सम्मिलित हैं। इसके अंतर्गत द्वितीयक उत्पादक, ढलाई मिलें और आनुषंगिक उद्योग भी आते हैं।

एकीकृत इस्पात कारखाने

टाटा लौह-इस्पात कंपनी (TISCO)

टाटा लौह-इस्पात मुंबई-कोलकाता रेलवे मार्ग के बहुत निकट स्थित है। यहाँ के इस्पात के निर्यात के लिए सबसे नजदीक (लगभग 240 किलोमीटर दूर) पत्तन कोलकाता है।

संयंत्र को पानी सुवर्ण रेखा एवं खारकोई नदियों से, लोहा नोआमंडी और बादाम पहाड़ से, और कोयला जोड़ा खानों (उड़ीसा) से और कोककारी कोयला झरिया और पश्चिमी बोकारो कोयला क्षेत्रों से प्राप्त होता है।

भारतीय लोहा और इस्पात कंपनी (IISCO)

भारतीय लोहा और इस्पात कंपनी ने अपना पहला कारखाना हीरापुर में और दूसरा कुल्टी में स्थापित किया। 1937 में भारतीय लोहा और इस्पात कंपनी (IISCO) के साहचर्य से बंगाल स्टील कार्पोरेशन की स्थापना की गई, बर्नपुर (पश्चिम बंगाल) में लोहा और इस्पात के उत्पादन की दूसरी इकाई की स्थापना की गई। 'इंडियन आयरन स्टील कंपनी' के अधिकार क्षेत्र में आने वाले तीनों संयंत्र दामोदर घाटी कोयला क्षेत्रों (रानीगंज,

झरिया और रामगढ़) के निकट कोलकाता-आसनसोल रेल मार्ग पर स्थित हैं। लौह अयस्क सिंहभूमि (झारखंड) से आता है। जल दामोदर नदी की सहायक नदी बराकार से प्राप्त किया जाता है। दुर्भाग्य से, 1972-73 में भारतीय लोहा और इस्पात कारखानें से इस्पात उत्पादन बहुत कम हो गया और संयंत्र सरकार द्वारा अधिग्रहित कर लिया गया।

विश्वेश्वरैया आयरन एंड स्टील वर्क्स (VISW)

तीसरा एकीकृत इस्पात संयंत्र विश्वेश्वरैया आयरन एंड स्टील वर्क्स-जो प्रारंभ में मैसूर लोहा और इस्पात वर्क्स के नाम से जाना जाता था, बाबाबूदन की पहाड़ियों के केमान गुंडी के लौह अयस्क क्षेत्रों के निकट स्थित है। चूना पत्थर और मैंगनीज भी आसपास के क्षेत्रों में उपलब्ध है। लेकिन इस प्रदेश में कोयला नहीं मिलता। प्रारंभ में पास के जंगलों से प्राप्त लकड़ी को जलाकर बनाए गए चारकोल को 1951 तक ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता था। बाद में विद्युत भट्टियाँ लगाई गई जिनमें जोग प्रपात जल विद्युत परियोजना से प्राप्त जल विद्युत का उपयोग होता था। संयंत्र को जल भद्रावती नदी से प्राप्त होता है। यह संयंत्र विशिष्ट इस्पात एवं एलॉए का उत्पादन करता है।

स्वतंत्रता के बाद, द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-57) में विदेशी सहयोग से तीन नए एकीकृत इस्पात संयंत्रों की स्थापना की गई। ये संयंत्र हैं- राउरकेला (उड़ीसा), भिलाई (छत्तीसगढ़) और दुर्गापुर (पश्चिम बंगाल)। ये सभी सार्वजनिक सेक्टर संयंत्र हिंदुस्तान स्टील लिमिटेड (HSL) के अधिकार में थे। 1973 में, इन संयंत्रों के प्रबंधन के लिए स्टील अथॉरिटी आफ इंडिया (SAIL) की स्थापना की गई।

राउरकेला इस्पात संयंत्र

राउरकेला इस्पात संयंत्र जर्मनी के सहयोग से 1959 में उड़ीसा के सुंदरगढ़ जिले में स्थापित किया गया था। संयंत्र को कच्चे माल की निकटता के आधार पर स्थापित किया गया था, इस प्रकार भार-हास वाले कच्चे माल का परिवहन मूल्य कम हो जाता है। इस संयंत्र को विशिष्ट अवस्थितिक लाभ प्राप्त हैं क्योंकि इसे निकटस्थ झरिया (झारखंड) से कोयला और सुंदरगढ़ और केंदुझर से लौह अयस्क प्राप्त हो जाता है। विद्युत भट्टियों के लिए विद्युत शक्ति हीराकुड परियोजना से तथा जल कोइल और शंख नदियों से प्राप्त होता है।

भिलाई इस्पात संयंत्र

भिलाई इस्पात संयंत्र की स्थापना रूस के सहयोग से छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले में की गई एवं 1959 में इसमें उत्पादन प्रारंभ हो गया। यहाँ लौह अयस्क डल्ली राजहरा खानों से तथा कोयला कोरबा और करगाली कोयला खानों से प्राप्त होता है। जल तंदुला बाँध से और विद्युतशक्ति कोरबा ताप शक्तिगृह से प्राप्त होती है। यह संयंत्र कोलकाता-मुंबई रेलमार्ग पर स्थित है। उत्पादित इस्पात का अधिकांश भाग विशाखापट्नम स्थित हिंदुस्तान शिपयार्ड में चला जाता है।

दुर्गापुर इस्पात संयंत्र

दुर्गापुर इस्पात संयंत्र यूनाइटेड किंगडम की सरकार के सहयोग से पश्चिम बंगाल में स्थापित किया गया था और 1962 में उसमें उत्पादन प्रारंभ हो गया। यह संयंत्र रानीगंज और झरिया कोयला पेटी में स्थित है और लौह अयस्क नोआमंडी (मानचित्र) से प्राप्त होता है। दुर्गापुर कोलकाता-दिल्ली रेलवे मार्ग पर स्थित है। इसे जल विद्युत शक्ति और जल दामोदर घाटी कारपोरेशन (डी वी सी) से प्राप्त होते हैं।

बोकारो इस्पात संयंत्र

यह इस्पात संयंत्र रूस के सहयोग से 1964 में बोकारो में स्थापित किया गया था। इस संयंत्र की स्थापना परिवहन लागत न्यूनीकरण सिद्धांत के आधार पर की गई थी जिसके अनुसार बोकारो और राउरकेला संयुक्त रूप से राउरकेला प्रदेश से लौह अयस्क प्राप्त करते हैं और वापसी में मालगाड़ी के डिब्बे राउरकेला के लिए कोयला ले जाते हैं। अन्य कच्चे माल बोकारो को लगभग 350 किलोमीटर की परिधि के अंदर प्राप्त हो जाते हैं। जल और जलविद्युत शक्ति की आपूर्ति दामोदर घाटी कार्पोरेशन द्वारा की जाती है।

अन्य इस्पात संयंत्र

चतुर्थ योजना के समय में स्थापित तीन नए इस्पात संयंत्र कच्चे माल स्त्रोतों से दूर हैं। तीनों संयंत्र दक्षिणी भारत में स्थापित है। विशाखापट्नम (आंध्र प्रदेश) स्थित विजाग इस्पात संयंत्र पहला पत्तन आधारित संयंत्र है। इसकी शुरुआत 1992 में हुई थी। इसकी पत्तन स्थिति लाभप्रद है।

विजयनगर इस्पात संयंत्र हॉस्पेट (कर्नाटक) में विकसित किया गया। इसमें स्वदेशी तकनीकी का उपयोग किया जा रहा है। यह संयंत्र आसपास के क्षेत्रों से प्राप्त लौह अयस्क और चूना पत्थर का उपयोग करता है। सेलम (तमिलनाडु) इस्पात संयंत्र 1982 में चालू किया गया।

इन मुख्य इस्पात संयंत्रों के अतिरिक्त देश के विभिन्न भागों में 206 से अधिक इकाइयाँ स्थापित की गई। इनमें से अधिकांश इकाइयाँ अपने मुख्य कच्चे माल के रूप में रद्दी लोहे का उपयोग करती हैं और उसे विद्युत भट्टियों में प्रक्रमित करती हैं।

सूती वस्त्र उद्योग

सूती वस्त्र उद्योग भारत के परंपरागत उद्योगों में से एक है। प्राचीन और मध्यकाल में, ये केवल एक कुटीर उद्योग के रूप में थे। भारत संसार में उत्कृष्ट कोटि का मलमल, कैलिको, छींट और अन्य प्रकार के अच्छी गुणवत्ता वाले सूती कपड़ों के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध था। भारत में इस उद्योग का विकास कई कारणों से हुआ। पहला, भारत एक उष्णकटिबंधीय देश है एवं सूती कपड़ा गर्म और आर्द्र जलवायु के लिए एक आरामदायक वस्त्र है। दूसरा, भारत में कपास का बड़ी मात्रा में उत्पादन होता था। देश में इस उद्योग के लिए आवश्यक कुशल श्रमिक

प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे। वस्तुतः कुछ क्षेत्रों में लोग सूती वस्त्रों का उत्पादन पीढ़ियों से कर रहे थे और अपनी कुशलता को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानांतरित करते रहे और इस प्रक्रिया में उनकी कुशलताएँ पक्की हो गई।

प्रारंभ में, अंग्रेज़ों ने स्वदेशी सूती वस्त्र उद्योग के विकास को प्रोत्साहित नहीं किया। वे कच्चे कपास को मानचेस्टर और लिवरपूल स्थित अपनी मिलों के लिए निर्यात कर देते थे और वहाँ तैयार माल को बेचने के लिए भारत ले आते थे। यह कपड़ा सस्ता होता था क्योंकि भारत के कुटीर उद्योगों की तुलना में यूनाइटेड किंगडम की मिलों में बड़े पैमाने पर उत्पादन होता था।

1854 में, पहली आधुनिक सूती मिल की स्थापना मुंबई में की गई। इस शहर को सूती वस्त्र निर्माण केंद्र के रूप में कई लाभ थे। यह गुजरात और महाराष्ट्र के कपास उत्पादक क्षेत्रों के बहुत निकट था। कच्ची कपास इंग्लैंड को निर्यात करने के लिए मुंबई पत्तन तक लाई जाती थी। इसलिए कपास स्वयं मुंबई नगर में उपलब्ध थी। इसके अतिरिक्त मुंबई उस समय भी वित्तीय केंद्र था एवं उद्योग प्रारंभ करने के लिए आवश्यक पूँजी भी उपलब्ध थी। रोज़गार अवसर प्रदान करने वाला बड़ा नगर होने के कारण यह श्रमिकों के लिए एक आकर्षक केंद्र था। इसलिए, सस्ते और प्रचुर मात्रा में श्रमिक भी आसपास ही मिल जाते थे। सूती वस्त्र मिलों के लिए आवश्यक मशीनों का आयात इंग्लैंड से किया जा सकता था। बाद में दो और मिलें- शाहपुर मिल और कैलिको मिल- अहमदाबाद में स्थापित की गई। 1947 तक भारत में मिलों की संख्या 423 तक पहुँच गई लेकिन देश विभाजन के बाद दृश्य बदल गया और इस उद्योग को एक बड़ा प्रतिसरण झेलना पड़ा। इसका कारण यह था कि अच्छी गुणवत्ता वाले कपास उत्पादक क्षेत्रों में से अधिकांश पश्चिमी पाकिस्तान में चले गए और भारत में 409 मिलें और केवल 29 प्रतिशत कपास उत्पादक क्षेत्र रह गए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस उद्योग में धीरे-धीरे पुनर्लाभकी स्थिति आई और अंततः यह उद्योग फिर से विकसित हो गया। 1998 में भारत में 1782 मिलें थीं जिनमें से 192 सार्वजनिक सेक्टर और 151 सहकारी सेक्टर में थी। सबसे अधिक संख्या (1439) मिलें निजी सेक्टर में रहीं।

भारत में सूती वस्त्र उद्योग को दो सेक्टर्स में बाँटा जा सकता है : संगठित सेक्टर और असंगठित सेक्टर। विकेंद्रित सेक्टर के अंतर्गत हथकरघों (खादी सहित) और विद्युतकरघों में उत्पादित कपड़ा आता है। संगठित सेक्टर के उत्पादनों में तेज़ी से कमी आई है। यह 20 शताब्दी के मध्य में 81 प्रतिशत से घटकर 2000 में केवल लगभग 6 प्रतिशत रह गया है। वर्तमान में, देश में उत्पादित सूती वस्त्र का 59 प्रतिशत से अधिक विकेंद्रित सेक्टर में विद्युत करघों द्वारा और लगभग 19 प्रतिशत हथकरघा सेक्टर द्वारा उत्पादित किया जाता है।

कपास एक शुद्ध कच्चा माल है जिसका वजन निर्माण प्रक्रिया में नहीं घटता है। अतः अन्य दूसरे कारक, जैसे करघों को चलाने के लिए शक्ति, श्रमिक, पूँजी अथवा बाजार आदि उद्योग की स्थिति को निर्धारित करते हैं। वर्तमान में उद्योग को बाज़ार में या बाज़ार के निकट स्थापित करने की प्रवृत्ति पाई जाती है और बाज़ार ही यह निश्चित करता है कि किस प्रकार के कपड़े का उत्पादन होना चाहिए। तैयार माल के बाज़ार में अत्यधिक भिन्नता मिलती है। अतएव तैयार माल को बेचने के दृष्टिकोण से मिलों को बाज़ार के निकट स्थापित करना महत्वपूर्ण है।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुंबई और अहमदाबाद में पहली मिल की स्थापना के पश्चात् सूती वस्त्र उद्योग का तेज़ी से विस्तार हुआ। मिलों की संख्या आकस्मिक रूप से बढ़ गई। स्वदेशी आंदोलन ने उद्योग को प्रमुख रूप से प्रोत्साहित किया क्योंकि ब्रिटेन के बने सामानों का बहिष्कार कर बदले में भारतीय सामानों को उपयोग में लाने का आह्वान किया गया। 1921 के बाद रेलमार्गों के विकास के साथ ही दूसरे सूती वस्त्र केंद्रों का तेजी से विस्तार हुआ। दक्षिणी भारत में, कोयंबटूर, मदुरई और बंगलौर में मिलों की स्थापना की गई। मध्य भारत में नागपुर, इंदौर के अतिरिक्त शोलापुर और वडोदरा सूती वस्त्र केंद्र बन गए। कानपुर में स्थानिक निवेश के आधार पर सूती वस्त्र मिलों की स्थापना की गई। पत्तन की सुविधा के कारण कोलकाता में भी मिलें स्थापित की गईं। जलविद्युत शक्ति के विकास से कपास उत्पादक क्षेत्रों से दूर सूती वस्त्र मिलों की अवस्थिति में भी सहयोग मिला। तमिलनाडु में इस उद्योग के तेजी से विकास का कारण मिलों के लिए प्रचुर मात्रा में जल-विद्युत शक्ति की उपलब्धता है। उज्जैन, भरूच, आगरा, हाथरस, कोयंबटूर और तिरुनेलवेली आदि केंद्रों में, कम श्रम लागत के कारण कपास उत्पादक क्षेत्रों से उनके दूर होते हुए भी उद्योगों की स्थापना की गई।

इस प्रकार, भारत के लगभग प्रत्येक राज्य में जहाँ एक या एक से अधिक अनुकूल अवस्थितिक कारक विद्यमान थे, सूत्री वस्त्र उद्योग स्थापित किए गए। इस प्रकार कच्चे माल के स्थान पर बाज़ार अथवा सस्ते स्थानिक श्रमिक या विद्युत शक्ति की उपलब्धता अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई।

वर्तमान में अहमदाबाद, भिवांडी, शोलापुर, कोल्हापुर, नागपुर, इंदौर और उज्जैन सूती वस्त्र उद्योग के मुख्य केंद्र हैं। ये सभी केंद्र परंपरागत केंद्र हैं और कपास उत्पादक क्षेत्रों के निकट स्थित हैं। महाराष्ट्र, गुजरात और तमिलनाडु अग्रणी कपास उत्पादक राज्य हैं। पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक और पंजाब दूसरे महत्वपूर्ण सूती वस्त्र उत्पादक हैं।

तमिलनाडु राज्य में सबसे अधिक मिलें हैं और उनमें से अधिकांश कपड़ा न बनाकर सूत का उत्पादन करती हैं। कोयंबटूर, जहाँ तमिलनाडु की लगभग आधे से अधिक मिलों के अवस्थित होने के कारण सबसे महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में उभरा है। चेन्नई, मदुरई, तिरुनेलवैली, तूतीकोरिन, थंजावूर, रामनाथपुरम और सेलम दूसरे महत्वपूर्ण केंद्र हैं। कर्नाटक में सूती वस्त्र उद्योग का विकास राज्य के उत्तरी पूर्वी भागों के कपास उत्पादक क्षेत्रों में हुआ है, जहाँ देवनगरी, हुबली, बेलारी, मैसूर और बंगलौर महत्वपूर्ण केंद्र हैं। आंध्र प्रदेश में, सूती वस्त्र उद्योग कपास उत्पादक तेलंगाना प्रदेश में स्थित है। वहाँ अधिकांश कताई मिलें हैं जो

सूत का उत्पादन करती हैं। हैदराबाद, सिकंदराबाद, वारंगल और गुंटूर महत्वपूर्ण केंद्र हैं।

उत्तर प्रदेश में कानपुर सबसे बड़ा केंद्र है। मोदीनगर, हाथरस, सहारनपुर, आगरा और लखनऊ कुछ अन्य महत्वपूर्ण केंद्र हैं। पश्चिम बंगाल में, सूती मिलें' हुगली प्रदेश में स्थित हैं। हावड़ा, सीरामपुर, कोलकाता और श्यामनगर महत्वपूर्ण केंद्र हैं।

1950-51 से 1999-2000 के मध्य सूती कपड़े के उत्पादन में लगभग 5 गुनी वृद्धि हुई है। सूती कपड़े को सिंथेटिक कपड़ों से प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है। भारत में सूती वस्त्र उद्योग की और कौन-सी अन्य समस्याएँ हैं?

चीनी उद्योग

चीनी उद्योग देश का दूसरा सबसे अधिक महत्वपूर्ण कृषि-आधारित उद्योग है। भारत विश्व में गन्ना और चीनी दोनों का सबसे बड़ा उत्पादक देश है और यह विश्व के कुल चीनी उत्पादन का लगभग 8 प्रतिशत उत्पादन करता है। इसके अतिरिक्त गन्ने से खांडसारी और गुड़ भी तैयार किए जाते हैं। यह उद्योग 4 लाख से अधिक लोगों को प्रत्यक्ष रूप से और एक बड़ी संख्या में किसानों को अप्रत्यक्ष रूप से रोज़गार प्रदान करता है। कच्चे माल के मौसमी होने के कारण, चीनी उद्योग एक मौसमी उद्योग है।

आधुनिक आधार पर उद्योग का विकास 1903 में प्रारंभहुआ जब बिहार में एक चीनी मिल की स्थापना की गई। इसके बाद, बिहार और उत्तर प्रदेश के दूसरे भागों में चीनी मिलें खोली गई। 1950-51 में 139 कारखानें प्रचालन में थे जिनमें 11.34 लाख टन चीनी का उत्पादन हो रहा था। 2000-01 में चीनी मिलों की संख्या बढ़कर 506 और उत्पादन 17,699 लाख टन हो गया।

उद्योग की अवस्थिति

गन्ना एक भार-हास वाली फ़सल है। चीनी और गन्ने का अनुपात 9 प्रतिशत से 12 प्रतिशत के बीच होता है जो इसकी गुणवत्ता पर निर्भर करता है। खेतों में काटकर एकत्रित करने से लेकर ढुलाई की अवधि तक इसमें सुक्रोज की मात्रा सूखती रहती है। गन्ने को खेत से काटने के 24 घंटे के अंदर ही पेरा जाय तो अधिक चीनी की मात्रा प्राप्त होती है। अतः इस प्रदेश के अधिकांश कारखाने गन्ना उत्पादक क्षेत्रों के निकट ही स्थित हैं।

महाराष्ट्र देश में अग्रणी चीनी उत्पादक राज्य के रूप में विकसित हुआ और देश में कुल चीनी उत्पादन के एक-तिहाई से अधिक भाग का उत्पादन करता है। राज्य में 119 चीनी मिलें हैं जो एक सँकरी पट्टी के रूप में उत्तर में मनमाड से लेकर दक्षिण में कोल्हापुर तक विस्तृत हैं। इनमें से 87 मिलें सहकारी सेक्टर में हैं।

चीनी उत्पादन में उत्तर प्रदेश का द्वितीय स्थान है। चीनी उद्योग दो पेटियों- गंगा-यमुना दोआब और तराई प्रदेश में केंद्रित है। गंगा-यमुना दोआब में सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, गाज़ियाबाद, बागपत और बुलंदशहर मुख्य चीनी उत्पादक जिले हैं, जबकि तराई प्रदेश के मुख्य चीनी उत्पादक ज़िले लखीमपुर खीरी, बस्ती, गोंडा, गोरखपुर, बहराइच हैं।

तमिलनाडु में, चीनी मिलें कोयंबटूर, वेलौर, तिरुवनमलाई, विल्लुपुरम और तिरुचिरापल्ली जिलों में स्थित हैं। कर्नाटक में बेलगाम, बेलारी, माण्डया, शिमोगा, बीजापुर और चित्रदुर्ग मुख्य चीनी उत्पादक ज़िले हैं। यहाँ चीनी उद्योग तटीय प्रदेशों में पूर्वी गोदावरी, पश्चिमी गोदावरी, विशाखापट्नम और निजामाबाद ज़िले, तेलंगाना में मेडक ज़िले और रायलसीमा के चित्तौड़ जिले में वितरित है।

बिहार, पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश और गुजरात अन्य चीनी उत्पादक राज्य हैं। बिहार में सारन, चंपारन, मुजफ्फरपुर, सीवान, दरभंगा और गया (मानचित्र) मुख्य गन्ना उत्पादक ज़िले हैं। पंजाब का सापेक्षिक महत्व कम हो गया है, यद्यपि गुरदासपुर, जलंधर, संगरूर, पटियाला एवं अमृतसर अब भी प्रमुख चीनी उत्पादक हैं। हरियाणा में चीनी मिलें यमुनानगर, रोहतक, हिसार और फरीदाबाद जिलों में स्थित हैं। गुजरात में चीनी उद्योग तुलनात्मक रूप से नया है। यहाँ, चीनी मिलें सूरत, जूनागढ़, राजकोट, अमरेली, वालसद और भावनगर ज़िलों के गन्ना उत्पादक क्षेत्रों में स्थित हैं।

पेट्रो-रसायन उद्योग

उद्योगों का यह वर्ग भारत में तेज़ी से विकसित हो रहा है। उद्योगों की इस श्रेणी के अंतर्गत कई प्रकार के उत्पाद आते हैं। 1960 में जैव रसायनों की माँग इतनी तेज़ी से बढ़ी कि इसको पूरा करना कठिन हो गया। उस समय पेट्रोल परिशोधन उद्योग का तेज़ी से विस्तार हुआ। अपरिष्कृत पेट्रोल से कई प्रकार की वस्तुएँ तैयार की जाती हैं जो अनेक नए उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराती हैं, इन्हें सामूहिक रूप से पेट्रो-रसायन उद्योग के नाम से जाना जाता है। उद्योगों के इस वर्ग को चार उपवर्गों में विभाजित किया गया है- (1) पॉलीमर (Polymers), (2) कृत्रिम रेशे, (3) इलैस्टोमर्स, (4) पृष्ठ संक्रियक (Surfacant Intermediate)। मुंबई शैल-रसायन उद्योगों का केंद्र है। पटाखों के उद्योग औरैया (उत्तर प्रदेश), जामनगर, गांधीनगर और हजीरा (गुजरात), नागोथाने, रत्नागिरि महाराष्ट्र, हल्दिया (पश्चिम बंगाल) और विशाखापट्नम (आंध्र प्रदेश) में भी स्थित हैं। रासायनिक और पेट्रो-रासायनिक विभाग के प्रशासनिक नियंत्रण में पेट्रो-रसायन सेक्टर के अंतर्गत तीन संस्थाएँ कार्य कर रही हैं। पहली, भारतीय पेट्रो-रासायनिक कार्पोरेशन लिमिटेड (IPCL) सार्वजनिक सेक्टर में आती है। यह विभिन्न प्रकार के पेट्रो-रसायनों, जैसे पॉलीमर, रेशों और रेशों से बने संक्रियक (Intermediate) का निर्माण और वितरण करता है। दूसरा पेट्रोफिल्स कोऑपरेटिव लिमिटेड है जो भारत सरकार एवं बुनकरों की सहकारी संस्थाओं का संयुक्त प्रयास है। यह पॉलिस्टर तंतु सूत और नाइलोन चिप्स का उत्पादन गुजरात स्थित वडोदरा एवं नलधारी संयंत्रों में करता है। तीसरा, सेंट्रल इंस्टिट्यूट ऑफ प्लास्टिक इंजीनियरिंग

एंड टेक्नोलॉजी (CIPET) है जो पेट्रोकेमिकल उद्योग में प्रशिक्षण प्रदान करता है।

सार्वजनिक सेक्टर में 1961 में स्थापित द नेशनल आर्गेनिक केमिकल्स इंडस्ट्रीज लिमिटेड (NOCIL) नेफथा पर आधारित मुंबई का पहला रासायनिक उद्योग था। इसके बाद अन्य कई कंपनियां बन गई। मुंबई, बरौनी, मेटूर पिम्परी और रिशरा में स्थित संयंत्र प्लास्टिक की वस्तुओं के मुख्य उत्पादक हैं। लगभग 75 प्रतिशत इकाइयाँ लघु पैमाने के सेक्टर में हैं। यह उद्योग पुनः चक्रित (recycled) प्लास्टिक का भी प्रयोग करता है जो पूरे उत्पादन का लगभग 30 प्रतिशत है।

संश्लिष्ट तंतु (synthetic fibre) का अपने मजबूती, टिकाऊपन, प्रक्षालनता, धोने पर न सिकुड़ने के गुणों के कारण इसका व्यापक रूप से प्रयोग कपड़ा बनाने के लिए किया जाता है। नायलान तथा पॉलिस्टर धागा बनाने के संयंत्र कोटा, पिंपरी, मुंबई, मोदी नगर, पुणे, उज्जैन, नागपुर एवं उधना में लगाये गए हैं। कोटा और वडोदरा में ऐक्रिलिक कपड़े बनाए जाते हैं।

यद्यपि प्लास्टिक हमारे दैनिक जीवन के उपयोग के लिए एक अपृथक्करणीय वस्तु बन चुकी है और हमारे रहन-सहन की पद्धति को प्रभावित करती हैं परंतु जैव-निम्नीकरण का गुण न होने के कारण यह हमारे पर्यावरण के लिए सबसे बड़ा खतरा बन गया है। इसीलिए भारत के विभिन्न राज्यों में प्लास्टिक के उपयोग को हतोत्साहित किया जा रहा है।

ज्ञान-आधारित उद्योग

अवगम प्रौद्योगिक उन्नति ने देश की अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव डाला है। सूचना औद्योगिकी क्रांति ने आर्थिक और सामाजिक रूपांतरण के लिए नई संभावनाएँ उत्पन्न कर दी हैं। भारतीय सॉफ्टवेयर उद्योग यहाँ की अर्थव्यवस्था में सबसे तेज़ी से विकसित हुए सेक्टरों में से एक है। भारतीय सॉफ्टवेयर और सेवा सेक्टर द्वारा 2004-05 में 78,230 करोड़ रुपये मूल्य के बराबर का निर्यात किया गया था जो पिछले वर्ष से 30 से 32 प्रतिशत की वृद्धि थी। सॉफ्टवेयर उद्योग इलेक्ट्रॉनिक हार्डवेयर उत्पादन से आगे बढ़ गया। भारत सरकार ने देश में अनेक सॉफ्टवेयर पार्क्स बनाए हैं।

आई टी सॉफ्टवेयर और सेवा उद्योग भारत के सकल घरेलू उत्पाद के लगभग 2 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी है। भारत के सॉफ्टवेयर उद्योग को उत्तम उत्पाद उपलब्ध कराने में असाधारण प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी है। बड़ी संख्या में भारतीय सॉफ्टवेयर कंपनियों ने अंतर्राष्ट्रीय गुणवत्ता प्रमाणन प्राप्त कर लिया है। अवगम प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कार्यरत अधिकांश बहुराष्ट्रीय कंपनियों के या तो सॉफ्टवेयर विकास केंद्र अथवा अनुसंधान विकास केंद्र भारत में हैं। फिर भी हार्डवेयर विकास सेक्टर में भारत को अभी विशिष्ट उपलब्धि प्राप्त करनी है।

इस विकास का मुख्य प्रभाव रोजगार अवसर के सृजन पर पड़ा है जो प्रतिवर्ष लगभग दुगुना हो रहा है।

भारत में उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण एवं औद्योगिक विकास

नई औद्योगिक नीति की घोषणा 1991 में की गई। इस नीति के मुख्य उद्देश्य थे- अब तक प्राप्त किए गए लाभ को बढ़ाना, इसमें विकृति अथवा कमियों को दूर करना, उत्पादकता और लाभकारी रोजगार में स्वपोषित वृद्धि को बनाए रखना और अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता प्राप्त करना।

इस नीति के अंतर्गत किए गए उपाय हैं: (1) औद्योगिक लाइसेंस व्यवस्था का समापन (2) विदेशी तकनीकी का निःशुल्क प्रवेश, (3) विदेशी निवेश नीति (4) पूँजी बाज़ार में अभिगम्यता, (5) खुला व्यापार, (6) प्रावस्थबद्ध निर्माण कार्यक्रम का उन्मूलन, (7) औद्योगिक अवस्थिति कार्यक्रम का उदारीकरण। नीति के तीन मुख्य लक्ष्य हैं- उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण।

औद्योगिक लाइसेंस व्यवस्था वस्तुतः सुरक्षा, सामरिक अथवा पर्यावरणीय सरोकार से संबंधित केवल छः उद्योगों को छोड़कर शेष सभी उद्योगों के लिए समाप्त कर दी गई। साथ ही, 1956 से सार्वजनिक सेक्टर के लिए सुरक्षित उद्योगों की संख्या 17 से घटकर 4 रह गई। परमाणु शक्ति से संबंधित उद्योग, परमाणु शक्ति विभाग की सूची में विनिर्दिष्ट पदार्थ तथा रेलवे सार्वजनिक सेक्टर के अंतर्गत बने रहे। सरकार ने सार्वजनिक उद्यमों के शेयरों में कुछ भाग वित्तीय संस्थाओं, सामान्य जनता और कामगारों को देने का निश्चय किया।

संपत्ति देहली (threshold) की सीमा समाप्त कर दी गई और बिना लाइसेंस सेक्टर में पूँजी लगाने के लिए किसी भी उद्योग को पूर्व सहमति लेने की आवश्यकता नहीं रह गई। उन्हें केवल निर्धारित आरूप में दिए गए विवरण पत्र जमा करने की आवश्यकता होती है।

नई औद्योगिक नीति में, आर्थिक विकास का ऊँचा स्तर प्राप्त करने के लिए सीधा विदेशी सीधा निवेश (Foreign Direct Investiment-FDI) घरेलू निवेश के पूरक के रूप में देखा गया है। FDI घरेलू निवेश तथा उपभोक्ताओं को जिस तकनीकी उन्नयन, वैश्विक प्रबंध कुशलता और व्यावहारिकता का अभिगमन प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग आदि के प्रावधान द्वारा लाभ प्रदान करता है। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए विदेशी निवेश का उदारीकरण हुआ तथा सरकार ने विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के लिए स्वचालित मार्ग तक पहुँच की सहमति दे दी है।

सरकार ने औद्योगिक स्थिति संबंधी नीतियों में भी परिवर्तन की घोषणा की है पर्यावरणीय कारणों से बड़े शहरों में या उनके निकट उद्योगों की स्थिति को हतोत्साहित किया गया।

औद्योगिक नीति में उदारता, घरेलू और बहुराष्ट्रीय दोनों व्यक्तिगत पूँजी निवेशकों को आकर्षित करने के लिए, दिखाई गई। नए सेक्टर जैसे खनन, दूर संचार राजमार्ग निर्माण और व्यवस्था को व्यक्तिगत कंपनियों के लिए पूरा खोल दिया गया। इन सभी छूटों के बाद भी विदेशी प्रत्यक्ष निवेश

(Foreign Direct Investment) आशाओं के अनुकूल नहीं था। स्वीकृत और वास्तविक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) में बहुत अंतर था यद्यपि विदेशी सहयोग की संख्या बढ़ रही है। इस निवेश का बड़ा भाग घरेलू उपकरणों, वित्त, सेवा, इलेक्ट्रॉनिक और विद्युत उपकरण और खाद्य व दुग्ध उत्पादकों में लगाया जा चुका है।

वैश्वीकरण का अर्थ देश की अर्थव्यवस्था को संसार की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करना है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत सामान और पूँजी सहित सेवाएँ, श्रम और संसाधन एक देश से दूसरे देश को स्वतंत्रतापूर्वक पहुँचाए जा सकते हैं। घरेलू और बाह्य प्रतिस्पर्धा के लिए बाजार प्रक्रिया के व्यापक उपयोग और विदेशी निवेशकों और तकनीकी पूर्तिकारों के साथ प्रभावी संबंध को सुसाध्य बनाकर वैश्वीकरण को आगे बढ़ाना है। भारतीय संदर्भ में इसका अर्थ है- (1) भारत में आर्थिक क्रियाओं के विभिन्न क्षेत्रों में, विदेशी कंपनियों को पूँजी निवेश की सुविधा उपलब्ध कराकर, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के लिए अर्थव्यवस्था को खोलना (2) भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश पर लगे प्रतिबंधों और बाधाओं को ख़त्म करना (3) भारतीय कंपनियों को देश में विदेशी कंपनियों के सहयोग से उद्योग खोलने की अनुमति प्रदान करना और उनके सहयोग से विदेशों में साझा उद्योग स्थापित करने के लिए भी प्रोत्साहित करना (4) पहले शुल्क दर के मात्रात्मक प्रतिबंधों में कमी लाकर बड़ी मात्रा में आयात उदारता कार्यक्रम को कार्यान्वित करना और तब आयात करों के स्तर को ध्यान में रखते हुए उसे नीचे लाना (5) निर्यात प्रोत्साहन के एक वर्ग के बजाय निर्यात को बढ़ाने के लिए विनिमय दर व्यवस्था को चुनना।

औद्योगिक प्रदेश और ज़िले

मुख्य औद्योगिक प्रदेश-8

(1) मुंबई-पुणे प्रदेश, (2) हुगली प्रदेश, (3) बंगलौर तमिलनाडु प्रदेश, (4) गुजरात प्रदेश, (5) छोटानागपुर प्रदेश, (6) विशाखापट्नम गुंटूर प्रदेश, (7) गुड़गाँव-दिल्ली-मेरठ, (8) कोलम थिरुवनंथपुरम प्रदेश।

लघु औद्योगिक प्रदेश (13)

(1) अंबाला-अमृतसर (2) सहारनपुर मुजफ्फरनगर-बिजनौर (3) इंदौर-देवास-उज्जैन (4) जयपुर-अजमेर (5) कोल्हापुर-दक्षिणी कन्नड़ (6) उत्तरी मालाबार (7) मध्य मालाबार (8) अदीलाबाद-निजामाबाद (9) इलाहाबाद-वाराणसी-मिर्जापुर (10) भोजपुर-मुंगेर (11) दुर्ग-रायपुर (12) बिलासपुर कोरबा (13) ब्रह्मपुत्र घाटी।

औद्योगिक ज़िले (15)

(1) कानपुर (2) हैदराबाद (3) आगरा (4) नागपुर (5) ग्वालियर (6) भोपाल (7) लखनऊ (8) जलपाई गुड़ी (9) कटक (10) गोरखपुर (11) अलीगढ़ (12) कोटा (13) पूर्णिया (14) जबलपुर (15) बरेली।

विदेशी सहयोग स्वीकृति के समाप्त हो जाने से यह प्रकट होता है कि एक बड़ा हिस्सा मूल भाग, प्राथमिकता सेक्टर में चला गया जबकि आधारिक अवसंरचनात्मक सेक्टर इससे अछूता ही रह गया। इसके अतिरिक्त विकसित और विकासशील राज्यों के बीच अंतर बहुत बढ़ गया है। घरेलू निवेश और विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, दोनों का बड़ा भाग पहले ही विकसित राज्यों में जा चुका है। उदाहरण के लिए 1991-2000 में औद्योगिक निवेशकों द्वारा कुल प्रस्तावित निवेश में से एक-चौथाई (23%) भाग औद्योगिक रूप से विकसित महाराष्ट्र के लिए, 17 प्रतिशत गुजरात के लिए, 7 प्रतिशत आंध्र प्रदेश के लिए और लगभग 6 प्रतिशत तमिलनाडु के लिए था जबकि सबसे अधिक जनसंख्या वाले राज्य उत्तर प्रदेश के लिए केवल 8 प्रतिशत था। कई छूटों के बाद भी सात उत्तरी पूर्वी राज्यों को प्रस्तावित निवेश का 1 प्रतिशत से भी कम भाग प्राप्त हो सका। वास्तव में आर्थिक रूप से कमज़ोर राज्य खुले बाजार में औद्योगिक निवेश प्रस्तावों को आकर्षित करने में विकसित राज्यों से आगे नहीं निकल सकते और इसलिए उन्हें इन प्रक्रियाओं में हानि उठानी पड़ती है।

भारत के औद्योगिक प्रदेश

देश में उद्योगों का वितरण समरूप नहीं है। उद्योग कुछ अनुकूल अवस्थितिक कारकों से कुछ निश्चित स्थानों पर केंद्रित हो जाते हैं।

उद्योगों के समूहन को पहचानने के लिए कई सूचकांकों का उपयोग किया जाता है, जिनमें प्रमुख हैं: (1) औद्योगिक इकाइयों की संख्या (2) औद्योगिक कर्मियों की संख्या (3) औद्योगिक उद्देश्यों के लिए उपयोग की जाने वाली प्रयुक्त शक्ति की मात्रा (4) कुल औद्योगिक निर्गत (output) (5) उत्पादन प्रक्रिया जन्य मूल्य आदि।

मुंबई-पुणे औद्योगिक प्रदेश

यह मुंबई-थाने से पुणे तथा नासिक और शोलापुर जिलों के संस्पर्शी क्षेत्रों तक विस्तृत है। इसके अतिरिक्त रायगढ़, अहमदनगर, सतारा, सांगली और जलगाँव जिलों में औद्योगिक विकास तेजी से हुआ है। इस प्रदेश का विकास मुंबई में सूती वस्त्र उद्योग की स्थापना के साथ प्रारंभ हुआ। मुंबई में कपास के पृष्ठ प्रदेश में स्थिति होने और नम जलवायु के कारण मुंबई में सूती वस्त्र उद्योग का विकास हुआ। 1869 में स्वेज नहर के खुलने के कारण मुंबई पत्तन के विकास को प्रोत्साहन मिला। इस पत्तन के द्वारा मशीनों का आयात किया जाता था। इस उद्योग की आवश्यकता पूर्ति के लिए पश्चिमी घाट प्रदेश में जलविद्युत शक्ति का विकास किया गया।

सूती वस्त्र उद्योग के विकास के साथ रासायनिक उद्योग भी विकसित हुए। मुंबई हाई पेट्रोलियम क्षेत्र और नाभिकीय ऊर्जा संयंत्र की स्थापना ने इस प्रदेश को अतिरिक्त बल प्रदान किया।

इसके अतिरिक्त, अभियांत्रिकी वस्तुएँ, पेट्रोलियम परिशोधन, पेट्रो-रासायनिक, चमड़ा, संलिष्ट और प्लास्टिक वस्तुएँ, दवाएँ, उर्वरक, विद्युत वस्तुएँ, जलयान निर्माण, इलेक्ट्रॉनिक्स, सॉफ्टवेयर, परिवहन उपकरण

और खाद्य उद्योगों का भी विकास हुआ। मुंबई, कोलाबा, कल्याण, थाणे, ट्राम्बे, पुणे, पिंपरी, नासिक, मनमाड, शोलापुर, कोल्हापुर, अहमदनगर, सतारा और सांगली महत्वपूर्ण औद्योगिक केंद्र हैं।

हुगली औद्योगिक प्रदेश

हुगली नदी के किनारे बसा हुआ, यह प्रदेश उत्तर में बाँसबेरिया से दक्षिण में बिडलानगर तक लगभग 100 किलोमीटर में फैला है। उद्योगों का विकास पश्चिम में मेदनीपुर में भी हुआ है। कोलकाता-हावड़ा इस औद्योगिक प्रदेश के केंद्र हैं। इसके विकास में ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक और राजनीतिक कारकों ने अत्यधिक योगदान दिया है। इसका विकास हुगली नदी पर पत्तन के बनने के बाद प्रारंभ से हुआ। देश में कोलकाता एक प्रमुख केंद्र के रूप में उभरा। इसके बाद, कोलकाता भीतरी भागों से रेलमार्गों और सड़क मार्गों द्वारा जोड़ दिया गया। असम और पश्चिम बंगाल की उत्तरी पहाड़ियों में चाय बगानों के विकास उससे पहले नील का परिष्करण और बाद में जूट संसाधनों ने दामोदर घाटी के कोयला क्षेत्रों और छोटानागपुर पठार के लौह अयस्क के निक्षेपों के साथ मिलकर इस प्रदेश के औद्योगिक विकास में सहयोग प्रदान किया। बिहार के घने बसे भागों, पूर्वी उत्तर प्रदेश और उड़ीसा से उपलब्ध सस्ते श्रम ने भी इस प्रदेश के विकास में योगदान दिया। कोलकाता ने अंग्रेजी ब्रिटिश भारत की राजधानी (1773-1911) होने के कारण ब्रिटिश पूँजी को भी आकर्षित किया। 1855 में रिशरा में पहली जूट मिल की स्थापना ने इस प्रदेश के आधुनिक औद्योगिक समूहन के युग का प्रारंभ किया।

जूट उद्योग का मुख्य केंद्रीकरण हावड़ा और भटपारा में है। 1947 में देश के विभाजन ने इस औद्योगिक प्रदेश को बुरी तरह प्रभावित किया। जूट उद्योग के साथ ही सूती वस्त्र उद्योग भी पनपा। कागज, इंजीनियरिंग, टेक्सटाइल मशीनों, विद्युत, रासायनिक, औषधीय, उर्वरक और पेट्रो-रासायनिक उद्योगों का भी विस्तार हुआ। कोननगर में हिंदुस्तान मोटर्स लिमिटेड का कारखाना और चितरंजन में डीज़ल इंजन का कारखाना इस प्रदेश के औद्योगिक स्तंभ हैं। इस प्रदेश के महत्वपूर्ण औद्योगिक केंद्र कोलकाता, हावड़ा, हल्दिया, सीरमपुर, रिशरा, शिबपुर, नैहाटी गुरियह, काकीनारा, श्यामनगर, टीटागढ़, सौदेपुर, बजबज, बिडलानगर, बाँसबेरिया, बेलगुरियह, त्रिवेणी, हुगली, बेलूर आदि हैं। फिर भी इस प्रदेश के औद्योगिक विकास में दूसरे प्रदेशों की तुलना में कमी आई है। जूट उद्योग की अवनति इसका एक कारण है।

बंगलौर-चेन्नई औद्योगिक प्रदेश

यह प्रदेश स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अत्यधिक तीव्रता से औद्योगिक विकास का साक्षी है। 1960 तक उद्योग केवल बंगलौर, सेलम और मदुरई जिलों तक सीमित थे लेकिन अब वे तमिलनाडु के विल्लूपुरम को छोड़कर लगभग सभी जिलों में फैल चुके हैं। कोयला क्षेत्रों से दूर होने के कारण इस प्रदेश का विकास पायकारा जलविद्युत संयंत्र पर निर्भर करता है जो 1932 में बनाया गया था। कपास उत्पादक क्षेत्र होने के कारण सूती वस्त्र उद्योगा ने सबसे पहले पैर जमाए थे। सूती मिलों के साथ ही करघा उद्योग का भी तेजी से विकास हुआ। अनेक भारी अभियांत्रिकी उद्योग बंगलौर में एकत्रित हो गए। वायुयान (एच.ए.एल.), मशीन उपकरण, टेलीफ़ोन और भारत इलेक्ट्रानिक्स इस प्रदेश के औद्योगिक स्तंभ हैं। टेक्सटाइल, रेल के डिब्बे, डीजल इंजन, रेडियो, हल्की अभियांत्रिकी वस्तुएँ, रबर का सामान, दवाएँ, एल्युमीनियम, शक्कर, सीमेंट, ग्लास, कागज, रसायन, फ़िल्म, सिगरेट, माचिस, चमड़े का सामान आदि महत्वपूर्ण उद्योग हैं। चेन्नई में पेट्रोलियम परिशोधनशाला, सेलम में लोहा-इस्पात संयंत्र और उर्वरक संयंत्र अभिनव विकास हैं।

गुजरात औद्योगिक प्रदेश

इस प्रदेश का केंद्र अहमदाबाद और वडोदरा के बीच है लेकिन यह प्रदेश दक्षिण में वलसाद और सूरत तक और पश्चिम में जामनगर तक फैला है। इस प्रदेश का विकास 1860 में सूती वस्त्र उद्योग की स्थापना से भी संबंधित है। यह प्रदेश एक महत्वपूर्ण सूती वस्त्र उद्योग क्षेत्र बन गया। कपास उत्पादक क्षेत्र में स्थित होने के कारण इस प्रदेश को कच्चे माल और बाज़ार दोनों का ही लाभ मिला। तेल क्षेत्रों की खोज से पेट्रो-रासायनिक उद्योगों की स्थापना अंकलेश्वर, वडोदरा और जामनगर के चारों ओर हुई। कांडला पत्तन ने इस प्रदेश के तीव्र विकास में सहयोग दिया। कोयली में पेट्रोलियम परिशोधनशाला ने अनेक पेट्रो-रासायनिक उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराया। औद्योगिक संरचना में अब विविधता आ चुकी है। कपड़ा (सूती, सिल्क और कृत्रिम कपड़े) और पेट्रो-रासायनिक उद्योगों के अतिरिक्त अन्य उद्योग भारी और आधार रासायनिक, मोटर, ट्रैक्टर, डीज़ल इंजन, टेक्सटाइल मशीनें, इंजीनियरिंग, औषधि, रंग रोगन, कीटनाशक, चीनी, दुग्ध उत्पाद और खाद्य प्रक्रमण हैं। अभी हाल ही में सबसे बड़ी पेट्रोलियम परिशोधनशाला जामनगर में स्थापित की गई है। इस प्रदेश के महत्वपूर्ण औद्योगिक केंद्र अहमदाबाद, वडोदरा, भरूच, कोयली, आनंद, खेरा, सुरेंद्रनगर, राजकोट, सूरत, वलसाद और जामनगर हैं।

छोटानागपुर प्रदेश

यह प्रदेश झारखंड, उत्तरी उड़ीसा और पश्चिमी पश्चिम बंगाल में फैला है और भारी धातु उद्योगों के लिए जाना जाता है। यह प्रदेश अपने विकास के लिए दामोदर घाटी में कोयला और झारखंड तथा उत्तरी उड़ीसा में धात्विक और अधात्विक खनिजों की खोज का ऋणी है। कोयला, लौह अयस्क और दूसरे खनिजों की निकटता इस प्रदेश में भारी उद्योगों की स्थापना को सुसाध्य बनाती है। इस प्रदेश में छः बड़े एकीकृत लौह-इस्पात संयंत्र जमशेदपुर, बर्नपुर, कुल्टी, दुर्गापुर, बोकारो और राउरकेला में स्थापित है। ऊर्जा की आवश्यकता को पूरा करने के लिए ऊष्मीय और जलविद्युतशक्ति संयंत्रों का निर्माण दामोदर घाटी में किया गया है। प्रदेश के चारों ओर घने बसे प्रदेशों से सस्ता श्रम प्राप्त होता है और हुगली प्रदेश अपने उद्योगों के लिए बड़ा बाजार उपलब्ध कराता है। भारी इंजीनियरिंग, मशीन-औज़ार, उर्वरक, सीमेंट, कागज़, रेल इंजन और भारी विद्युत उद्योग इस प्रदेश के कुछ महत्वपूर्ण उद्योग हैं। राँची, धनबाद, चैबासा, सिंदरी,

हजारीबाग, जमशेदपुर, बोकारो, राउरकेला, दुर्गापुर आसनसोल और डालमियानगर महत्वपूर्ण केंद्र हैं।

विशाखापट्नम-गुंटूर प्रदेश

यह औद्योगिक प्रदेश विशाखापत्तनम् जिले से लेकर दक्षिण में कुरूनूल और प्रकासम जिलों तक फैला है। इस प्रदेश का औद्योगिक विकास विशाखापट्नम और मछलीपटनम पत्तनों, इसके भीतरी भागों में विकसित कृषि तथा खनिजों के बड़े संचित भंडार पर निर्भर है। गोदावरी बेसिन के कोयला क्षेत्र इसे ऊर्जा प्रदान करते हैं। जलयान निर्माण उद्योग का प्रारंभ 1941 में विशाखापट्नम में हुआ था। आयातित पेट्रोल पर आधारित पेट्रोलियम परिशोधनशाला ने कई पेट्रो-रासायनिक उद्योगों की वृद्धि को सुगम बनाया है। शक्कर, वस्त्र, जूट, कागज़, उर्वरक, सीमेंट, एल्युमीनियम और हल्की इंजीनियरिंग इस प्रदेश के मुख्य उद्योग हैं। गुंटूर जिले में एक शीशा जिंक प्रगालक कार्य कर रहा है। विशाखापट्नम में लोहा और इस्पात संयंत्र बेलाडिला लौह अयस्क का प्रयोग करता है। विशाखापट्नम, विजयवाड़ा, विजयनगर, राजमुंदरी, गुंटूर, एलूरू और कुरनूल महत्वपूर्ण औद्योगिक केंद्र हैं।

गुड़गाँव-दिल्ली-मेरठ प्रदेश

इस प्रदेश में स्थित उद्योगों में पिछले कुछ समय से बड़ा तीव्र विकास दिखाई देता है। खनिजों और विद्युतशक्ति संसाधनों से बहुत दूर स्थित होने के कारण यहाँ उद्योग छोटे और बाजार अभिमुखी हैं। इलेक्ट्रॉनिक, हल्के इंजीनियरिंग और विद्युत उपकरण इस प्रदेश के प्रमुख उद्योग हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ सूती, ऊनी और कृत्रिम रेशा वस्त्र, होजरी, शक्कर, सीमेंट, मशीन उपकरण, ट्रैक्टर, साईकिल, कृषि उपकरण, रासायनिक पदार्थ और वनस्पति घी उद्योग हैं जो कि बड़े स्तर पर विकसित हैं। सॉफ्टवेयर उद्योग एक नई वृद्धि है। दक्षिण में आगरा-मथुरा उद्योग क्षेत्र है जहाँ मुख्य रूप से शीशे और चमड़े का सामान बनता है। मथुरा तेल परिशोधन कारखाना पेट्रो-रासायनिक पदार्थों का संकुल है। प्रमुख औद्योगिक केंद्रों में गुडगाँव, दिल्ली, शाहदरा, मेरठ, मोदीनगर, गाज़ियाबाद, अंबाला, आगरा और मथुरा का नाम लिया जा सकता है।

कोलम-तिरुवनंतपुरम प्रदेश

यह औद्योगिक प्रदेश तिरुवनंतपुरम, कोलम, अलवाय, अरनाकुलम् और अल्लापुझा जिलों में फैला हुआ है। बागान कृषि और जलविद्युत इस प्रदेश को औद्योगिक आधार प्रदान करते हैं। देश की खनिज पेटी से बहुत दूर स्थित होने के कारण, कृषि उत्पाद प्रक्रमण और बाज़ार अभिविन्यस्त हल्के उद्योगों की इस प्रदेश पर से अधिकता है। उनमें से सूती वस्त्र उद्योग, चीनी, रबड़, माचिस, शीशा, रासायनिक उर्वरक और मछली आधारित उद्योग महत्वपूर्ण हैं। खाद्य प्रक्रमण, कागज, नारियल रेशा उत्पादक, एल्यूमीनियम और सीमेंट उद्योग भी महत्वपूर्ण हैं। कोची में पेट्रोलियम परिशोधनशाला की स्थापना ने इस प्रदेश के उद्योगों को एक नया विस्तार प्रदान किया है। कोलम, थिरुवनंथपुरम्, अलुवा, कोच्चि, अलापुझा और पुनालूर महत्वपूर्ण औद्योगिक केंद्र हैं।

COACH UPSC
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

भारत के संदर्भ में नियोजन और सततपोषणीय विकास

'नियोजन' शब्द आपके लिए नया नहीं है क्योंकि यह हम दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाले शब्दों का एक अंग है। आप इस शब्द का प्रयोग अपनी परीक्षा अथवा किसी पर्वतीय स्थ पर जाने के लिए की गई तैयारी के संदर्भ में किया होगा। इस सोच-विचार की प्रक्रिया, कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करना त उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु गतिविधियों का क्रियान्वयन सम्मिलि है।

भारत में नियोजन परिप्रेक्ष्य का अवलोकन

भारत में केंद्रीकृत नियोजन है और नियोजन का कार्य भारत में 'योजना आयोग' को सौंपा गया है। यह एक वैधानिक संस्था है जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री हैं तथा इसके एक उपसभापति तथा सदस्य हैं। देश में नियोजन मुख्य रूप से पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से किया जाता है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951 में आरंभ हुई तथा यह 1951-52 से 1955-56 तक चली। द्वितीय तथा तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं की समय अवधि क्रमशः 1956-57 से 1960-61 और 1961-62 से 1965-66 तक रही। 1960 के दशक के मध्य में लगातार दो सूखों (1965-66 और 1966-67) और 1965 में पाकिस्तान के साथ युद्ध के कारण 1966-67 और 1968-69 में 'योजना अवकाश' लेना पड़ा। इस अवधि में वार्षिक योजनाएँ लागू रहीं जिन्हें 'रोलिंग प्लान' भी कहा गया है। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना 1969-70 में आरंभ हुई और 1973-74 तक चली। इसके बाद पाँचवीं पंचवर्षीय योजना आरंभ 1974-75 में आरंभ हुई परंतु तत्कालीन सरकार ने इसे एक वर्ष पहले अर्थात 1977-78 में ही समाप्त कर दिया। छठी पंचवर्षीय योजना 1980 में लागू हुई। सातवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि 1985 से 1990 के बीच रही। एक बार फिर राजनीतिक अस्थिरता और उदारीकरण की नीति की शुरुआत के कारण आठवीं पंचवर्षीय योजना देरी से आरंभ हुई। इस योजना ने 1992 से 1997 के बीच की अवधि तय की। नौवीं पंचवर्षीय योजना 1997 से 2002 तक लागू रही। दसवीं पंचवर्षीय योजना 2002 में प्रारंभ हुई और अभी चल रही है। यह 31.3.2007 को समाप्त होगी। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना का उपागम प्रपत्र 'तीव्रता के साथ और अधिक सम्मिलित वृद्धि की ओर' पर पहले से ही परिचर्चा चल रही है।

पुनर्निर्माण का कार्य किया जाता था। सामान्यतः नियोजन के दो उपगमन होते हैं: खंडीय (Sectoral) नियोजन और प्रादेशिक नियोजन। खंडीय नियोजन का अर्थ है- अर्थव्यवस्था के विभिन्न सेक्टरों, जैसे कृषि, सिंचाई, विनिर्माण, ऊर्जा, निर्माण, परिवहन, संचार, सामाजिक अवसंरचना और सेवाओं के विकास के लिए कार्यक्रम बनाना तथा उनको लागू करना।

किसी भी देश में सभी क्षेत्रों में एक समान आर्थिक विकास नहीं हुआ है। कुछ क्षेत्र बहुत अधिक विकसित हैं तो कुछ पिछड़े हुए हैं। विकास का यह असमान प्रतिरूप (Pattern) सुनिश्चित करता है कि नियोजक एक स्थानिक परिप्रेक्ष्य अपनाएँ तथा विकास में प्रादेशिक असंतुलन कम करने के लिए योजना बनाएँ। इस प्रकार के नियोजन को प्रादेशिक नियोजन कहा जाता है।

लक्ष्य क्षेत्र नियोजन

जो क्षेत्र आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं उन क्षेत्रों में नियोजन प्रक्रम को विशेष ध्यान देना चाहिए। जैसा कि आप जानते हैं कि एक क्षेत्र का आर्थिक विकास उसके संसाधनों पर आधारित होता है। लेकिन कभी-कभी संसाधनों से भरपूर क्षेत्र भी पिछड़े रह जाते हैं। आर्थिक विकास के लिए संसाधनों के साथ-साथ तकनीक और निवेश की आवश्यकता होती है। लगभग डेढ़ दशक के नियोजन अनुभवों से, यह महसूस किया गया है कि आर्थिक विकास में क्षेत्रीय असंतुलन प्रबलित हो रहा था। क्षेत्रीय एवं सामाजिक विषमताओं की प्रबलता को काबू में रखने के क्रम में योजना आयोग ने 'लक्ष्य क्षेत्र' तथा 'लक्ष्य-समूह' योजना उपागमों को प्रस्तुत किया है। लक्ष्य क्षेत्रों की ओर इंगित कार्यक्रमों के कुछ उदाहरणों में कमान नियंत्रित क्षेत्र विकास कार्यक्रम, सूखाग्रस्त क्षेत्र विकास कार्यक्रम पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम हैं। इसके साथ ही लघु कृषक विकास संस्था (SFDA), सीमांत किसान विकास संस्था (MFDA) आदि, कुछ लक्ष्य समूह कार्यक्रम के उदाहरण हैं।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में पर्वतीय क्षेत्रों तथा उत्तर-पूर्वी राज्यों, जनजातीय एवं पिछड़े क्षेत्रों में अवसंरचना को विकसित करने के लिए विशिष्ट क्षेत्र योजना को तैयार किया गया।

पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम

पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रमों को पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में प्रारंभ किया गया। और इसके अंतर्गत उत्तर प्रदेश के सारे पर्वतीय जिले (वर्तमान उत्तराखण्ड), मिकिर पहाड़ी और असम की उत्तरी कछार की पहाड़ियाँ, पश्चिम बंगाल का दार्जिलिंग जिला और तमिलनाडु के नीलगिरी आदि को मिलाकर कुल 15 जिले शामिल हैं। 1981 में 'पिछड़े क्षेत्रों पर राष्ट्रीय समिति ने उन सभी पर्वतीय क्षेत्रों को पिछड़े पर्वतीय क्षेत्रों में शामिल करने की सिफ़ारिश की जिनकी ऊँचाई 600 मीटर से अधिक है और जिनमें जनजातीय उप-योजना लागू नहीं है।

पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए बनी राष्ट्रीय समिति ने निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखकर पहाड़ी क्षेत्रों में विकास के लिए सुझाव दिए: (1) सभी लोग लाभान्वित हों, केवल प्रभावशाली व्यक्ति ही नहीं; (2) स्थानीय संसाधनों और प्रतिभाओं का विकास; (3) जीविका निर्वाह अर्थव्यवस्था को निवेश-उन्मुखी बनाना; (4) अंतः प्रादेशिक व्यापार में पिछड़े क्षेत्रों का शोषण न हो; (5) पिछड़े क्षेत्रों की बाज़ार व्यवस्था में सुधार करके श्रमिकों को लाभ पहुँचाना; (6) पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखना।

पहाड़ी क्षेत्र के विकास की विस्तृत योजनाएँ इनके स्थलाकृतिक, पारिस्थिकीय, सामाजिक तथा आर्थिक दशाओं को ध्यान में रखकर बनाई गई। ये कार्यक्रम पहाड़ी क्षेत्रों में बागवानी का विकास, रोपण कृषि, पशुपालन, मुर्गी पालन, वानिकी, लघु तथा ग्रामीण उद्योगों का विकास करने के लिए स्थानीय संसाधनों को उपयोग में लाने के उद्देश्य से बनाए गए।

सूखा संभावी क्षेत्र विकास कार्यक्रम

इस कार्यक्रम की शुरुआत चौथी पंचवर्षीय योजना में हुई। इसका उद्देश्य सूखा संभावी क्षेत्रों में लोगों को रोजगार उपलब्ध करवाना और सूखे के प्रभाव को कम करने के लिए उत्पादन के साधनों को विकसित करना था। पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में इसके कार्यक्षेत्र को और विस्तृत किया गया। प्रारंभ में इस कार्यक्रम के अंतर्गत ऐसे सिविल निर्माण कार्यों पर बल दिया गया जिनमें अधिक श्रमिकों की आवश्यकता होती है। परंतु बाद में इसमें सिंचाई परियोजनाओं, भूमि विकास कार्यक्रमों, वनीकरण, चरागाह विकास और आधारभूत ग्रामीण अवसंरचना जैसे विद्युत, सड़कों,, बाजार, ऋण सुविधाओं और सेवाओं पर जोर दिया।

पिछड़े क्षेत्रों के विकास की राष्ट्रीय समिति ने इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन की समीक्षा की जिसमें यह पाया गया कि यह कार्यक्रम मुख्यतः कृषि तथा इससे संबद्ध सेक्टरों के विकास तक ही सीमित है और पर्यावरणीय संतुलन पुनःस्थापन पर इसमें विशेष बल दिया गया। जनसंख्या वृद्धि के कारण लोग कृषि के लिए सीमांत भूमि का उपयोग करने के लिए बाध्य हैं जिससे पारिस्थितिकीय निम्नीकरण हो रहा है। अतः सूखा संभावी क्षेत्रों में वैकल्पिक रोज़गार अवसर पैदा करने की आवश्यकता है। इन क्षेत्रों का विकास करने की अन्य रणनीतियों में सूक्ष्म-स्तर पर समन्वित जल-संभर विकास कार्यक्रम अपनाना शामिल है। सूखा संभावी क्षेत्रों के विकास की रणनीति में जल, मिट्टी, पौधों, मानव तथा पशु जनसंख्या के बीच पारिस्थितिकीय संतुलन, पुनःस्थापन पर मुख्य रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए।

1967 में योजना आयोग ने देश में 67 जिलों (पूर्ण या आंशिक) की पहचान सूखा संभावी जिलों के रूप में की। 1972 में सिंचाई आयोग ने 30 प्रतिशत सिंचित क्षेत्र का मापदंड लेकर सूखा संभावी क्षेत्रों का परिसीमन किया। भारत में सूखा संभावी क्षेत्र मुख्यतः राजस्थान, गुजरात, पश्चिमी मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र के मराठवाड़ा क्षेत्र, आंध्र प्रदेश के रायलसीमा और तेलंगाना पठार, कर्नाटक पठार और तमिलनाडु की उच्च भूमि तथा आंतरिक भाग के शुष्क और अर्ध-शुष्क भागों में फैले हुए हैं। पंजाब, हरियाणा और उत्तरी राजस्थान के सूखा प्रभावित क्षेत्र सिंचाई के प्रसार के कारण सूखे से बच जाते हैं।

केस अध्ययन - भरमौर क्षेत्र में समन्वित जनजातीय

विकास कार्यक्रम

भरमौर जनजातीय क्षेत्र में हिमाचल प्रदेश के चंबा जिले की दो तहसीलें, भरमौर और होली शामिल हैं। यह 21 नवंबर, 1975 से अधिसूचित जनजातीय क्षेत्र है। इस क्षेत्र में 'गद्दी' जनजातीय समुदाय का आवास है। इस समुदाय की हिमालय क्षेत्र में अपनी एक अलग पहचान है क्योंकि गद्दी लोग ऋतु-प्रवास करते हैं तथा गद्दीयाली भाषा में बात करते हैं।

यह क्षेत्र 32°11' उत्तर से 32°41' उत्तर अक्षांशों तथा 76° 22' पूर्व से 76° 53' पूर्व देशांतरों के बीच स्थित है। यह प्रदेश लगभग 1,818 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है और इसका अधिकतर भाग समुद्र तल से 1500 मीटर से 3700 मीटर की औसत ऊँचाई के बीच स्थित है। गद्दियों की आवास भूमि कहलाया जाने वाला यह क्षेत्र चारों दिशाओं में ऊँचे पर्वतों से घिरा हुआ है। इसके उत्तर में पीर पंजाल तथा दक्षिण में धौलाधार पर्वत श्रेणियाँ हैं। पूर्व में धौलाधार श्रेणी का फैलाव रोहतांग दर्रे के पास पीर पंजाल श्रेणी से मिलता है। इस क्षेत्र में रावी और इसकी सहायक नदियाँ बुढ़ील और टुंडेन बहती हैं और गहरे महाखों का निर्माण करती हैं। ये नदियाँ इस पहाड़ी प्रदेश को चार भूखंडों, होली, खणी, कुगती और दुण्डाह, में विभाजित करती हैं। शरद् ऋतु में भरमौर में जमा देने वाली कड़ाके की सर्दी और बर्फ पड़ती है तथा जनवरी में यहाँ औसत मासिक तापमान 4° सेल्सियस और जुलाई में 26° सेल्सियस रहता है।

भरमौर जनजातीय क्षेत्र में जलवायु कठोर है, आधारभूत संसाधन कम हैं और पर्यावरण भंगुर (fragile) है। इन कारकों ने इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था और समाज को प्रभावित किया है।

2001 की जनगणना के अनुसार, भरमौर उपमंडल की जनसंख्या 32,246 थी अर्थात् 20 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर। यह हिमाचल प्रदेश के आर्थिक और सामाजिक रूप से सबसे पिछड़े इलाकों में से एक है। ऐतिहासिक तौर पर, गद्दी जनजाति ने भौगोलिक और आर्थिक अलगाव का अनुभव किया है और सामाजिक-आर्थिक विकास से वंचित रही है। इनका आर्थिक आधार मुख्य रूप से कृषि और इससे संबद्ध क्रियाएँ जैसे भेड़ और बकरी पालन हैं।

भरमौर जनजातीय क्षेत्र में विकास की प्रक्रिया 1970 के दशक में शुरू हुई जब गद्दी लोगों को अनुसूचित जनजातियों में शामिल किया गया। 1974 में पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत जनजातीय उप-योजना प्रारंभ हुई और भरमौर को हिमाचल प्रदेश में पाँच में से एक समन्वित जनजातीय विकास परियोजना (आई.टी.डी.पी.) का दर्जा मिला। इस क्षेत्र विकास योजना का उद्देश्य गद्दियों के जीवन स्तर में सुधार करना और भरमौर तथा हिमाचल प्रदेश के अन्य भागों के बीच में विकास के स्तर में अंतर को कम करना है। इस योजना के अंतर्गत परिवहन तथा संचार, कृषि और इससे संबंधित क्रियाओं तथा सामाजिक व सामुदायिक सेवाओं के विकास को सर्वाधिक प्राथमिकता दी गई।

इस क्षेत्र में जनजातीय समन्वित विकास उपयोजना का सबसे महत्वपूर्ण योगदान विद्यालयों, जन स्वास्थ्य सुविधाओं, पेयजल, सड़कों, संचार और विद्युत के रूप में अवसंरचना विकास है। परंतु होली और खणी क्षेत्रों

में रावी नदी के साथ बसे गाँव अवसंरचना विकास से सबसे अधिक लाभान्वित हुए हैं। तुंदाह और कुगती क्षेत्रों के दूरदराज के गाँव अभी भी इस विकास की परिधि से बाहर हैं।

जनजातीय समन्वित विकास उपयोजना लागू होने से हुए सामाजिक लाभों में साक्षरता दर में तेजी से वृद्धि, लिंग अनुपात में सुधार और बाल-विवाह में कमी शामिल हैं। इस क्षेत्र में स्त्री साक्षरता दर 1971 में 1.88 प्रतिशत से बढ़कर 2001 में 42.83 प्रतिशत हो गई। स्त्री और पुरुष साक्षरता दर में अंतर अर्थात् साक्षरता में लिंग असमानता भी कम हुई है। गद्दियों की परंपरागत अर्थव्यवस्था जीवन निर्वाह कृषि व पशुचारण पर आधारित थी जिसमें खाद्यान्नों और पशुओं के उत्पादन पर बल दिया जाता था। परंतु 20 वीं शताब्दी के अंतिम तीन दशकों के दौरान, भरमौर क्षेत्र में दालों और अन्य नकदी फसलों की खेती में बढ़ोतरी हुई है। परंतु यहाँ खेती अभी भी परंपरागत तकनीकों से की जाती है। इस क्षेत्र को अर्थव्यवस्था में पशुचारण के घटते महत्व को इस बात से आँका जा सकता है कि आज कुल पारिवारिक इकाइयों का दसवाँ भाग ही ऋतु प्रवास करता है। परंतु गद्दी जनजाति आज भी बहुत गतिशील है क्योंकि इनकी एक बड़ी संख्या शरद् ऋतु में कृषि और मजदूरी करके आजीविका कमाने के लिए कांगड़ा और आसपास के क्षेत्रों में प्रवास करती है।

सतत पोषणीय विकास

साधारणतया 'विकास' शब्द से अभिप्राय समाज विशेष की स्थिति और उसके द्वारा अनुभव किए गए परिवर्तन की प्रक्रिया से होता है। मानव इतिहास के लंबे अंतराल में समाज और उसके जैव-भौतिक पर्यावरण की निरंतर अंतः क्रियाएँ समाज की स्थिति का निर्धारण करती हैं। मानव और पर्यावरण अंतःक्रिया की प्रक्रियाएँ इस बात पर निर्भर करती हैं कि समाज में किस प्रकार की प्रौद्योगिकी विकसित की है और किस प्रकार की संस्थाओं का पोषण किया है। प्रौद्योगिकी और संस्थाओं ने मानव-पर्यावरण अंतः क्रिया को गति प्रदान की है तो इससे पैदा हुए संवेग ने प्रौद्योगिकी का स्तर उँचा उठाया है और अनेक संस्थाओं का निर्माण और रूपांतरण किया है। अतः विकास एक बहु-आयामी संकल्पना है और अर्थव्यवस्था, समाज तथा पर्यावरण में सकारात्मक व अनुत्क्रमीय परिवर्तन का द्योतक है।

विकास की संकल्पना गतिक है और इस संकल्पना का प्रादुर्भाव 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ है। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरांत विकास की संकल्पना आर्थिक वृद्धि की पर्याय थी जिसे सकल राष्ट्रीय उत्पाद, प्रति व्यक्ति आय और प्रति व्यक्ति उपभोग में समय के साथ बढ़ोतरी के रूप में मापा जाता है। परंतु अधिक आर्थिक वृद्धि वाले देशों में भी असमान वितरण के कारण गरीबी का स्तर बहुत तेजी से बढ़ा। अतः 1970 के दशक में 'पुनर्वितरण के साथ वृद्धि' तथा 'वृद्धि और समानता' जैसे वाक्यांश विकास की परिभाषा में शामिल किए गए। पुनर्वितरण और समानता के प्रश्नों से निपटते हुए यह अनुभव हुआ कि विकास की संकल्पना को मात्र आर्थिक प्रक्षेत्र तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता। इसमें लोगों के कल्याण और रहने के स्तर, जन स्वास्थ्य, शिक्षा, समान अवसर और राजनीतिक तथा नागरिक अधिकारों से संबंधित मुद्दे भी सम्मिलित हैं। 1980 के दशक तक विकास एक बहु-आयामी संकल्पना के रूप में उभरा जिसमें समाज के सभी लोगों के लिए वृहद् स्तर पर सामाजिक एवं भौतिक कल्याण का समावेश है।

1960 के दशक के अंत में पश्चिमी दुनिया में पर्यावरण संबंधी मुद्दों पर बढ़ती जागरूकता की सामान्य वृद्धि के कारण सतत पोषणीय धारणा का विकास हुआ। इससे पर्यावरण पर औद्योगिक विकास के अनापेक्षित प्रभावों के विषय में लोगों की चिंता प्रकट होती थी। 1968 में प्रकाशित एहरलिच की पुस्तक 'द पापुलेशन बम' और 1972 में मीडोस और अन्य द्वारा लिखी गई पुस्तक 'द लिमिट टू ग्रोथ' के प्रकाशन ने इस विषय पर लोगों और विशेषकर पर्यावरणविदों की चिंता और भी गहरी कर दी। इस घटनाक्रम के परिपेक्ष्य में विकास के एक नए माडल जिसे 'सतत पोषणीय विकास' कहा जाता है, की शुरुआत हुई।

पर्यावरणीय मुद्दों पर विश्व समुदाय की बढ़ती चिंता को ध्यान में रखकर संयुक्त राष्ट्र संघ ने 'विश्व पर्यावरण और विकास आयोग' (WECD) की स्थापना की जिसके प्रमुख नार्वे की प्रधान मंत्री गये हरलेम ब्रंटलैंड थीं। इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट 'अवर कॉमन फ्यूचर' (जिसे ब्रंटलैंड रिपोर्ट भी कहते हैं) 1987 में प्रस्तुत की। WECD ने सतत पोषणीय विकास की सीधी-सरल और वृहद् स्तर पर प्रयुक्त परिभाषा प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट के अनुसार सतत पोषणीय विकास का अर्थ है- 'एक ऐसा विकास जिसमें भविष्य में आने वाली पीढ़ियों की आवश्यकता पूर्ति को प्रभावित किए बिना वर्तमान पीढ़ी द्वारा अपनी आवश्यकता की पूर्ति करना।'

केस अध्ययन

इंदिरा गांधी नहर कमान क्षेत्र

इंदिरा गांधी नहर, जिसे पहले राजस्थान नहर के नाम से जाना जाता था, भारत में सबसे बड़े नहर तंत्रों में से एक है। 1948 में कँवर सेन द्वारा संकल्पित यह नहर परियोजना 31 मार्च, 1958 को प्रारंभ हुई। यह नहर पंजाब में हरिके बाँध से निकलती है और राजस्थान के थार मरुस्थल (मरुस्थली) पाकिस्तान सीमा के समानांतर 40 कि.मी. की औसत दूरी पर बहती है। इस नहर तंत्र की कुल नियोजित लंबाई 9060 कि. मी. है और यह 19.63 लाख हेक्टेयर कृषि योग्य कमान क्षेत्र में सिंचाई की सुविधा प्रदान करेगी। कुल कमान क्षेत्र में से 70 प्रतिशत क्षेत्र प्रवाह नहर तंत्रों और शेष क्षेत्र लिफ्ट तंत्र द्वारा किया जाएगा। नहर का निर्माण कार्य दो चरणों में पूरा किया गया है। चरण-I का कमान क्षेत्र गंगानगर, हनुमानगढ़ और बीकानेर जिले के उत्तरी भाग में पड़ता है। इस चरण के कमान क्षेत्र का भूतल थोड़ा ऊबड़-खाबड़ है और इसका कृषि योग्य कमान क्षेत्र 5.53 लाख हेक्टेयर है। चरण-II का कमान क्षेत्र बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर, नागौर और चुरू जिलों में 14.10 लाख हेक्टेयर कृषियोग्य भूमि पर फैला हुआ है। इसमें स्थानांतरित बालू टिब्बों वाला मरुस्थल भी सम्मिलित है; जहाँ स्थानांतरी बालू टिब्बे पाए जाते हैं और ग्रीष्म ऋतु में

तापमान 50° सेल्सियस तक पहुँच जाता है। लिफ्ट नहर में ढाल के विपरीत प्रवाह के लिए जल को बार-बार मशीनों से ऊपर उठाया जाता है। इंदिरा गांधी नहर तंत्र में सभी लिफ्ट नहरें मुख्य नहर के बाएँ किनारे से निकलती हैं जबकि मुख्य नहर के दाएँ किनारे पर सभी नहरें प्रवाह प्रणाल हैं।

चरण-I के कमान क्षेत्र में सिंचाई की शुरुआत 1960 के दशक के आरंभ में हुई जबकि चरण-II कमान क्षेत्र में 1980 के दशक के मध्य में सिंचाई आरंभ हुई। नहर सिंचाई के प्रसार ने इस शुष्क क्षेत्र की पारिस्थितिकी, अर्थव्यवस्था और समाज को रूपांततरित कर दिया है। इससे इस क्षेत्र को पर्यावरणीय परिस्थितियों पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव पड़े हैं। लंबी अवधि तक मृदा नमी उपलब्ध होने और कमान क्षेत्र विकास के तहत शुरू किए गए वनीकरण और चरागाह विकास कार्यक्रमों से यहाँ भूमि हरी-भरी हो गई है। इससे वायु अपरदन और नहरी तंत्र में बालू निक्षेप की प्रक्रियाएँ भी धीमी पड़ गई हैं। परंतु सघन सिंचाई और जल के अत्यधिक प्रयोग से जल भराव और मृदा लवणता की दोहरी पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो गईं।

नहरी सिंचाई के प्रसार से इस प्रदेश की कृषि अर्थव्यवस्था प्रत्यक्ष रूप में रूपांतरित हो गई है। इस क्षेत्र में सफलतापूर्वक फ़सलें उगाने के लिए मृदा नमी सबसे महत्वपूर्ण सीमाकारी कारक रहा है। परंतु नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्र के विस्तार से बोये गये क्षेत्र में विस्तार हुआ है और फ़सलों की सघनता में वृद्धि हुई है। यहाँ की पारंपरिक फ़सलों, चना, बाजरा और ग्वार का स्थान गेहूँ, कपास, मूँगफली और चावल ने ले लिया है। यह सघन सिंचाई का परिणाम है। निःसंदेह, सघन सिंचाई से आरंभमें कृषि और पशुधन उत्पादकता में अत्यधिक वृद्धि हुई। जल भराव और मृदा लवणता की समस्याएँ उत्पन्न हुईं और इस प्रकार लंबी अवधि के दौरान कृषि की सतत पोषणता पर ही प्रश्न उठ गए हैं।

सतत पोषणीय विकास को बढ़ावा देने वाले उपाय

बहुत से विद्वानों ने इंदिरा गांधी नहर परियोजना की पारिस्थितिकीय पोषणता पर प्रश्न उठाए हैं। पिछले चार दशक में, जिस तरह से इस क्षेत्र में विकास हुआ है और इससे जिस तरह भौतिक पर्यावरण का निम्नीकरण हुआ है, ने विद्वानों के इस दृष्टिकोण को काफ़ी हद तक सही ठहराया भी। यह एक मान्य तथ्य है कि इस कमान क्षेत्र में सतत पोषणीय विकास का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए मुख्य रूप से पारिस्थितिकीय सतत पोषणता पर बल देना होगा। इसलिए, इस कमान क्षेत्र में सतत पोषणीय विकास को बढ़ावा देने वाले प्रस्तावित सात उपायों में से पाँच उपाय पारिस्थितिकीय संतुलन पुनःस्थापित करने पर बल देते हैं।

(i) पहली और सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है जल प्रबंधन नीति का कठोरता से कार्यान्वयन करना। इस नहर परियोजना के चरण 1 में कमान क्षेत्र में फ़सल रक्षण सिंचाई और चरण-2 में फ़सल उगाने और चरागाह विकास के लिए विस्तारित सिंचाई का प्रावधान है।

(ii) इस क्षेत्र के शस्य प्रतिरूप में सामान्यतः जल सघन फ़सलों को नहीं बोया जाना चाहिए। इसका पालन करते हुए किसानों का बागाती कृषि के अंतर्गत खट्टे फलों की खेती करनी चाहिए।

(iii) कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम जैसे नालों को पक्का करना, भूमि विकास तथा समतलन और वारबंदी (ओसरा) पद्धति (निकास के कमान क्षेत्र में नहर के जल का समान वितरण) प्रभावी रूप से कार्यान्वित की जाए ताकि बहते जल की क्षति मार्ग में कम हो सके।

(iv) इस प्रकार जलाक्रांत एवं लवण से प्रभावित भूमि का पुनरूद्धार किया जाएगा।

(v) वनीकरण, वृक्षों का रक्षण मेखला (shelterbelt) का निर्माण और चरागाह विकास। इस क्षेत्र, विशेषकर चरण-2 के भंगुर पर्यावरण, में पारितंत्र विकास (eco-development) के लिए अति आवश्यक है।

(vi) इस प्रदेश में सामाजिक सतत पोषणता का लक्ष्य तभी हासिल किया जा सकता है यदि निर्धन आर्थिक स्थिति वाले भूआवंटियों को कृषि के लिए पर्याप्त मात्रा में वित्तीय और संस्थागत सहायता उपलब्ध करवाई जाए।

(vii) मात्र कृषि और पशुपालन के विकास से इस क्षेत्रों में आर्थिक सतत पोषणीय विकास की अवधारणा को साकार नहीं किया जा सकता। कृषि और इससे संबंधित क्रियाकलापों को अर्थव्यवस्था के अन्य सेक्टरों के साथ विकसित करना पड़ेगा। इनसे इस क्षेत्र में आर्थिक विविधीकरण होगा तथा मूल आबादी गाँवों, कृषि-सेवा केंद्रों (सुविधा गाँवों) और विपणन केंद्रों (मंडी कस्बों)के बीच प्रकार्यात्मक संबंध स्थापित होगा।

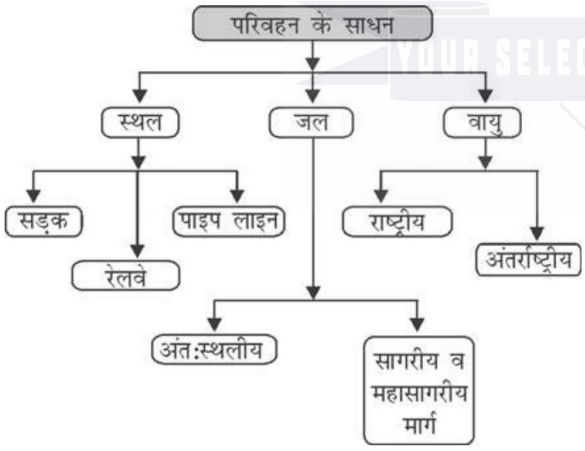
परिवहन तथा संचार

हम अपने दैनिक जीवन में अनेक वस्तुओं का उपयोग करते हैं। दंतमंजन या टूथपेस्ट से लेकर सुबह की चाय, दूध, कपड़े, साबुन तथा खाद्य पदार्थ आदि की हमें प्रतिदिन आवश्यकता पड़ती है। इन सभी को बाज़ार से खरीदा जा सकता है। क्या आपने कभी सोचा है कि इन वस्तुओं को अपने उत्पादन-स्थल से किस प्रकार लाया जाता है? सभी उत्पादन निश्चय ही खपत के लिए होते हैं। खेतों एवं कारखानों से तैयार सभी उत्पादों को उन स्थानों पर लाया जाता है, जहाँ से उपभोक्ता उन्हें खरीद सके। यह परिवहन ही है जो इन वस्तुओं को उत्पादन स्थलों से बाज़ार तक पहुँचाता है जहाँ ये उपभोक्ताओं के लिए उपलब्ध होते हैं।

हम अपने दैनिक जीवन में फल, शाक-सब्ज़ियों, किताबें एवं कपड़ा आदि जैसी भौतिक वस्तुएँ ही नहीं उपयोग में लाते हैं; बल्कि विचारों, दर्शन तथा संदेशों का भी उपयोग करते हैं। क्या आप जानते हैं कि विभिन्न साधनों के माध्यम से संचार करते समय हम अपने विचारों, दर्शन और संदेशों का विनिमय एक स्थान से दूसरे स्थान तक, अथवा एक व्यक्ति से दूसरे तक करते हैं।

परिवहन तथा संचार का उपयोग एक वस्तु की उपलब्धता वाले स्थान से उसके उपयोग वाले स्थान पर लाने-ले जाने की हमारी आवश्यकता पर निर्भर करता है। मानव विभिन्न वस्तुओं, पदार्थों और विचारों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिए भिन्न विधियों का प्रयोग करता है।

निम्नलिखित आरेख परिवहन के प्रमुख साधनों को दर्शाता है-



स्थल परिवहन

भारत में मार्गों एवं कच्ची सड़कों का उपयोग परिवहन के लिए प्राचीन काल से किया जाता रहा है। आर्थिक तथा प्रौद्योगिक विकास के साथ भारी मात्रा में सामानों तथा लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए पक्की सड़कों तथा रेलमार्गों का विकास किया गया है। रज्जुमार्गों, केबिल मार्गों तथा पाइप लाइनों जैसे साधनों का विकास विशिष्ट सामग्रियों को विशिष्ट परिस्थितियों में परिवहन की माँग को पूरा करने के लिए किया गया।

सड़क परिवहन

भारत का सड़क जाल विश्व के विशालतम सड़क-जालों में से एक है। इसकी कुल लंबाई 33.1 लाख कि.मी. (2005 में) है।

यहाँ प्रतिवर्ष सड़कों द्वारा लगभग 85 प्रतिशत यात्री तथा 70 प्रतिशत भार यातायात का परिवहन किया जाता है। छोटी दूरियों की यात्रा के लिए सड़क परिवहन अपेक्षाकृत अनुकूल होता है।

भारत में, द्वितीय विश्व युद्ध से पहले तक आधुनिक प्रकार का सड़क परिवहन अत्यंत सीमित था। पहला गंभीर प्रयास 1943 में 'नागपुर योजना' बनाकर किया गया। रजवाड़ों और ब्रिटिश भारत के बीच समन्वय के अभाव के कारण यह योजना क्रियान्वित नहीं हो पाई। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में सड़कों की दशा सुधारने के लिए एक बीस वर्षीय सड़क योजना (1961) आरंभ की गई। हालाँकि, सड़कों का संकेंद्रण नगरों एवं उनके आसपास के क्षेत्रों में ही रहा। ग्रामीण एवं सुदूर क्षेत्रों से सड़कों द्वारा संपर्क लगभग नहीं के बराबर था।

निर्माण एवं रख-रखाव के उद्देश्य से सड़कों को राष्ट्रीय

महामार्गों (NH), राज्य महामार्गों (SH), प्रमुख ज़िला सड़कों तथा ग्रामीण सड़कों के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

राष्ट्रीय महामार्ग

वे प्रमुख सड़कें, जिन्हें केंद्र सरकार द्वारा निर्मित एवं अनुरक्षित किया जाता है, राष्ट्रीय महामार्ग के नाम से जानी जाती है। इन सड़कों का उपयोग अंतर्राज्यीय परिवहन तथा सामरिक क्षेत्रों तक रक्षा सामग्री एवं सेना के आवागमन के लिए होता है। ये महामार्ग राज्यों की राजधानियों, प्रमुख नगरों, महत्वपूर्ण पत्तनों तथा रेलवे जंक्शनों को भी जोड़ते हैं। राष्ट्रीय महामार्गों की लंबाई 1951 में 19,700 कि.मी. से बढ़कर, 2005 में 65,769 कि.मी. हो गई है। राष्ट्रीय महामार्गों की लंबाई पूरे देश की कुल सड़कों की लंबाई की मात्र 2 प्रतिशत है; किंतु ये सड़क यातायात के 40 प्रतिशत भाग का वहन करते हैं (तालिका 10.1)|

भारतीय राष्ट्रीय महामार्ग प्राधिकरण (एन.एच.ए.आई.) का प्रचालन 1995 में हुआ था। यह भूतल परिवहन मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्तशासी निकाय है। इसे राष्ट्रीय महामार्गों के विकास, रख-रखाव तथा प्रचालन की ज़िम्मेदारी सौंपी गई है। इसके साथ ही यह राष्ट्रीय महामार्गों के रूप में निर्दिष्ट सड़कों की गुणवत्ता सुधार के लिए एक शीर्ष संस्था है।

राष्ट्रीय महामार्ग विकास परियोजनाएँ

भारतीय राष्ट्रीय महामार्ग प्राधिकरण (एन एच ए आई) ने देश-भर में विभिन्न चरणों में कई प्रमुख परियोजनाओं की जिम्मेदारी ले रखी है।

स्वर्णिम चतुर्भुज (Golden Quadrilateral)

परियोजना : इसके अंतर्गत 5846 कि.मी. लंबी 4/6 लेन वाले उच्च सघनता के यातायात गलियारे शामिल हैं जो देश के चार विशाल महानगरों- दिल्ली-मुंबई-चेन्नई-कोलकाता को जोड़ते हैं। स्वर्णिम चतुर्भुज के निर्माण के साथ भारत के इन महानगरों के बीच समय-दूरी तथा यातायात की लागत महत्वपूर्ण रूप से कम होगी।

उत्तर-दक्षिण तथा पूर्व-पश्चिम गलियारा (North-South Corridor) उत्तर-दक्षिण गलियारे का उद्देश्य जम्मू व कश्मीर के श्रीनगर से तमिलनाडु के कन्याकुमारी (कोच्चि सेलम पर्वत स्कंध सहित) को 4,016 कि.मी. लंबे मार्ग द्वारा जोड़ना है। पूर्व एवं पश्चिम गलियारे का उद्देश्य असम में सिलचर से गुजरात में पोरबंदर को 3,640 कि.मी. लंबे मार्ग द्वारा जोड़ना है।

राज्य महामार्ग

इन मार्गों का निर्माण एवं अनुरक्षण राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है। ये राज्य की राजधानी से जिला मुख्यालयों तथा अन्य महत्वपूर्ण शहरों को जोड़ते हैं। ये मार्ग राष्ट्रीय महामार्गों से जुड़े होते हैं। इनके अंतर्गत देश की कुल सड़कों की लंबाई का 4 प्रतिशत भाग आता है।

ज़िला सड़कें

ये सड़कें ज़िला मुख्यालयों तथा ज़िले के अन्य महत्वपूर्ण स्थलों के बीच संपर्क मार्ग का कार्य करती हैं। इनके अंतर्गत देश-भर की कुल सड़कों की लंबाई का 14 प्रतिशत भाग आता है।

ग्रामीण सड़कें

ये सड़कें ग्रामीण क्षेत्रों को आपस में जोड़ने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं। भारत की कुल सड़कों की लंबाई का लगभग 80 प्रतिशत हिस्सा ग्रामीण सड़कों के रूप में वर्गीकृत किया गया है। ग्रामीण सड़कों के घनत्व में प्रादेशिक विषमता पाई जाती है क्योंकि ये भूभाग (terrain) की प्रकृति से प्रभावित होती हैं।

अन्य सड़कें

अन्य सड़कों के अंतर्गत सीमांत सड़कें एवं अंतर्राष्ट्रीय महामार्ग आते हैं। मई 1960 में सीमा सड़क संगठन (बी.आर.ओ.) को देश की उत्तरी एवं उत्तर-पूर्वी सीमा से सटी सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सड़कों के तीव्र और समन्वित सुधार के माध्यम से आर्थिक विकास को गति देने एवं रक्षा तैयारियों को मजबूती प्रदान करने के उद्देश्य से स्थापित किया गया था। यह एक अग्रणी बहुमुखी निर्माण अभिकरण है। इसने अति ऊँचाई वाले पर्वतीय क्षेत्रों में चंडीगढ़ को मनाली (हिमाचल प्रदेश) तथा लेह (लद्दाख) से जोड़ने वाली सड़क बनाई है। यह सड़क समुद्र तल से औसतन 4,270 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है (चित्र 10.3)।

यह संगठन मार्च 2005 तक 40,450 कि.मी. से अधिक लंबाई की सड़कें तैयार कर चुका है। सामरिक दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्रों में सड़कें बनाने व अनुरक्षण करने के साथ-साथ बी.आर.ओ. अति ऊँचाइयों वाले क्षेत्रों में बर्फ हटाने की जिम्मेदारी भी सँभालता है। अंतर्राष्ट्रीय महामार्गों का उद्देश्य पड़ोसी देशों के बीच भारत के साथ प्रभावी संपर्कों को उपलब्ध कराते हुए सद्भावपूर्ण संबंधों को बढ़ावा देना है (चित्र 10.4 व 10.5)।

हमारे देश में सड़कों का वितरण समरूप नहीं है। सड़कों का घनत्व (प्रति 100 वर्ग कि.मी.) 75.42 कि.मी. राष्ट्रीय औसत के साथ जम्मू और कश्मीर में मात्र 10.48 कि.मी. से लेकर केरल में 387.24 कि.मी. तक मिलता है। अधिकतर उत्तरी राज्यों तथा प्रमुख दक्षिण भारतीय राज्यों में सड़कों का घनत्व ऊँचा है। यह हिमालयी पर्वतीय क्षेत्रों, उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान में निम्न है। यह भिन्नता क्यों है? भूभाग की प्रकृति तथा आर्थिक विकास का स्तर सड़कों के घनत्व के प्रमुख निर्धारक हैं। मैदानी क्षेत्रों में सड़कों का निर्माण आसान एवं सस्ता होता है; जबकि पहाड़ी एवं पठारी क्षेत्रों में कठिन एवं महँगा होता है। इसलिए, मैदानी क्षेत्रों की सड़कें न केवल घनत्व बल्कि सड़कों की गुणवत्ता की दृष्टि से अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों, बरसाती तथा वनीय क्षेत्रों की तुलना में अपेक्षाकृत बढ़िया होती हैं।

रेल परिवहन

भारतीय रेल जाल विश्व के सर्वाधिक लंबे रेल जालों में से एक है। यह माल एवं यात्री परिवहन को सुगम बनाने के साथ-साथ आर्थिक वृद्धि में भी योगदान देता है। महात्मा गांधी ने कहा था- "भारतीय रेलवे ने विविध संस्कृति के लोगों को एक साथ लाकर भारत के स्वतंत्रता संग्राम में योगदान दिया है।"

भारतीय रेल की स्थापना 1853 में हुई तथा मुंबई (बंबई) से थाणे के बीच 34 कि.मी. लंबी रेल लाइन निर्मित की गई।

देश में भारतीय रेल सरकार का विशालतम उद्यम है। भारतीय रेल जाल की कुल लंबाई 63,221 कि.मी. है। इसका अति विशाल आकार केंद्रीकृत रेल प्रबंधन तंत्र पर अत्यधिक दबाव डालता है। अतएव भारतीय रेल को 16 मंडलों में विभाजित किया गया है। तालिका 10.3 मंडलानुसार भारतीय रेल के कार्यक्षमता को दर्शाती है।

भारतीय रेल ने मीटर तथा नैरो गेज रेलमार्गों को ब्रॉड गेज में बदलने के लिए व्यापक कार्यक्रम शुरू किया है। इसके अतिरिक्त वाष्पचालित इंजनों के स्थान पर डीज़ल और विद्युत इंजनों को लाया गया है। इस कदम से रेलों की गति बढ़ने के साथ-साथ उनकी ढुलाई क्षमता भी बढ़ गई है।

कोयले द्वारा चालित वाष्प इंजनों के प्रतिस्थापन से रेलवे स्टेशनों के पर्यावरण में भी सुधार हुआ है।

मेट्रो रेल ने कोलकाता और दिल्ली में नगरीय परिवहन व्यवस्था में क्रांति ला दी है। डीज़ल चालित बसों की जगह सी.एन.जी. चालित वाहनों के साथ-साथ मेट्रो रेल का प्रचालन नगरीय केंद्रों के वायु प्रदूषण को नियंत्रण करने की दिशा में उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम है।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद के दौरान से ही शहरी क्षेत्र, कच्चा माल/सामग्री उत्पादन क्षेत्र, बागान तथा अन्य व्यावसायिक फ़सल क्षेत्र, पहाड़ी स्थल तथा छावनी क्षेत्र रेलमार्गों से अच्छी तरह जुड़े हुए थे। ये मुख्य रूप से संसाधनों के शोषण हेतु विकसित किए गए थे। देश की स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद इन रेलमार्गों का विस्तार अन्य क्षेत्रों में भी किया गया। इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण कोंकण रेलवे का विकास है जो भारत के पश्चिमी समुद्री तट के साथ मुंबई और मैंगलोर के बीच सीधा संपर्क उपलब्ध कराता है।

जल परिवहन

भारत में जलमार्ग यात्री तथा माल वहन, दोनों के लिए परिवहन की एक महत्वपूर्ण विधा है। यह परिवहन का सबसे सस्ता साधन है तथा भारी एवं स्थूल सामग्री के परिवहन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। यह ईंधन दक्ष तथा पारिस्थितिकी अनुकूल परिवहन प्रणाली है। जल परिवहन दो प्रकार का होता है-(क) अन्तः स्थलीय जलमार्ग और (ख) महासागरीय जलमार्ग।

अंत: स्थलीय जलमार्ग

रेलमार्गों के आगमन से पहले यह परिवहन की प्रमुख विधा थी। हालाँकि, इसे रेल व सड़क परिवहन के साथ कठिन प्रतियोगिता का सामना करना पड़ा। इसके अतिरिक्त, नदियों के जल को सिंचाई हेतु बाँट देने के कारण इनके मार्गों के अधिकांश भाग नौसंचालन के योग्य नहीं रहे हैं। इस समय भारत में 14,500 कि.मी. लंबा जलमार्ग नौकायन हेतु उपलब्ध है जो देश के परिवहन में लगभग 1% का योगदान देता है। इसके अंतर्गत नदियाँ, नहरें, पश्च जल तथा सँकरी खाड़ियाँ आदि आती हैं। वर्तमान में 3,700 कि.मी. प्रमुख नदी जलमार्ग चपटे तल वाले व्यापारिक जलपोतों द्वारा नौकायन योग्य है जिसमें से मात्र 2,000 कि.मी. का ही वास्तविक उपयोग होता है। उसी प्रकार 4,300 कि.मी. नौकायन योग्य नहरों में से मात्र 900 कि.मी. जलमार्ग यंत्रीकृत जलयानों द्वारा नौकायन योग्य है।

देश में राष्ट्रीय जलमार्गों के विकास, अनुरक्षण तथा नियमन हेतु 1986 में अंतः स्थलीय जलमार्ग प्राधिकरण स्थापित किया गया था। इस प्राधिकरण ने तीन अंतः स्थलीय जलमार्गों को राष्ट्रीय जलमार्ग घोषित किया, जैसा कि तालिका 10.4 में दिया गया है। अंतः स्थलीय जलमार्ग प्राधिकरण ने 10 अन्य जलमार्गों की भी पहचान की है जिनका कोटि उन्नयन किया जा सकेगा। केरल के पश्च जल (कडल) का अंतः स्थलीय जलमार्गों में अपना एक विशिष्ट महत्व है। ये परिवहन का सस्ता साधन उपलब्ध कराने के साथ-साथ केरल में भारी संख्या में पर्यटकों को भी आकर्षित करते हैं। यहाँ की प्रसिद्ध नेहरू ट्रॉफी नौकादौड़ (वल्लामकाली) भी इसी पश्च जल में आयोजित की जाती है।

भारत में परिचालन राष्ट्रीय जलमार्ग

क्रम सं.	उत्तर पश्चिमी संख्या	नदी प्रणाली	मार्ग	लंबाई (किमी में)	स्थानों	स्थापित
1	उत्तरपश्चिम – 1	गंगा-भागीरथी-हुगली	प्रयागराज – हल्दिया	1620	उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल	1986
2	उत्तरपश्चिम – 2	ब्रह्मपुत्र	सादिया-धुबरी	891	असम	1988
3	उत्तरपश्चिम – 3	पश्चिमी तट नहर, चंपकारा नहर, और उद्योगमंडल नहर	कोट्टापुरम – कोल्लम	205	केरल	1993
4	उत्तरपश्चिम – 4	कृष्णा और गोदावरी	काकीनाडा-पुडुचेरी नहरों का विस्तार, कालुवेल्ली टैंक, भद्राचलम-राजमुंदरी, वजीराबा-विजयवाड़ा	1095	आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और पुडुचेरी	2008
5	उत्तरपश्चिम – 10	अम्बा नदी		45	महाराष्ट्र	
6	उत्तरपश्चिम – 83	राजपुरी क्रीक		31	महाराष्ट्र	
7	उत्तरपश्चिम – 85	रेवदंडा क्रीक – कुंडलिका नदी प्रणाली		31	महाराष्ट्र	
8	उत्तरपश्चिम – 91	शास्त्री नदी-जयगढ़ खाड़ी प्रणाली		52	महाराष्ट्र	

9	उत्तरपश्चिम – 68	मंडोवी-उसगांव पुल से अरब सागर तक		41	गोवा	
10	उत्तरपश्चिम – 111	ज़ुआरी- संवोर्डेम ब्रिज से मार्मुगाओ बंदरगाह तक		50	गोवा	
11	उत्तरपश्चिम – 73	नर्मदा नदी		226	गुजरात और महाराष्ट्र	
12	उत्तरपश्चिम – 100	तापी नदी		436	गुजरात और महाराष्ट्र	
13	एनडब्ल्यू – 97 (सुंदरबन जलमार्ग)	नामखाना से अथाराबांकीखाल	भारत-बांग्लादेश प्रोटोकॉल मार्ग	172	पश्चिम बंगाल	

भारत में नए जलमार्गों की सूची

भारत में नदियों, नहरों, बैकवाटर और खाड़ियों के रूप में अंतर्देशीय जलमार्गों का एक व्यापक नेटवर्क है। नए राष्ट्रीय जलमार्गों की राज्यवार सूची इस प्रकार है:-

राज्य	नदियों/नहर की संख्या	नदी/नहर का नाम
आंध्र प्रदेश	2	पेन्नार और तुंगभद्रा
अरुणाचल प्रदेश	1	लोहित
असम	14	आई, बराक, बेकी, धनसिरी / चाथे, देहिंग, दिखू, डोयंस, गंगाधर, जिंजीराम, कोपिली, लोहित, पुथिमारी, सुबनसिरी और तल्वांग (धलेश्वरी)
बिहार	6	गंडक, घाघरा, करमनासा, कोसी, पुनपुन और सोन
दिल्ली	1	यमुना
गोवा	6	चपोरा, कंबरजुआ, मांडोवी, मापुसा, साल और जुआरी
गुजरात	5	जवाई-लूनी - कच्छ का रण, माही, नर्मदा, साबरमती और तापी
हरयाणा	2	इंदिरा गांधी नहर और यमुना
हिमाचल प्रदेश	3	ब्यास, रावी और सतलुज
जम्मू और कश्मीर	4	चिनाब, सिंधु, झेलम और रावी

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

झारखंड	2	खेरकई और सुवर्णरेखा
कर्नाटक	11	भीम, घटप्रभा, गुरुपुर, काबिनी, काली, मालाप्रभा, नेत्रवती, पंचगंगावली (पंचगंगोली), शरावती, तुंगभद्रा और उदयवारा
केरल	4	एवीएम नहर, अलाप्पुझा-चंगनास्सेरी नहर, अलाप्पुझा-कोट्टायम-अथिरामपुझा नहर और कोट्टायम-वाइकोम नहर
महाराष्ट्र	14	अंबा, अरुणावती - अरन, दाभोल क्रीक - वशिष्ठी नदी, कल्याण-ठाणे-मुंबई जलमार्ग - वसई क्रीक - उल्हास नदी, मंजारा, नाग, नर्मदा, पेंगंगा - वर्धा, राजपुरी क्रीक, रेवदंडा क्रीक - कुंडलिका नदी, सावित्री (बैंकोट क्रीक), शास्त्री नदी - जयगढ़ क्रीक, तापी और वैनगंगा - प्राणहिता
मेघालय	5	गनोल, जिंजीराम, किंशी, सिमसांग और उमंगोट (डॉकी)
मिजोरम	1	त्ल्वांग (धालेश्वरी)
नगालैंड	1	तिजु – जुंगकी
ओडिशा	5	बैतरनी, बिरूपा - बड़ी गेंगुटी - ब्राह्मणी, बूढ़ा बलंगा, महानदी और सुवर्णरेखा
पंजाब	3	ब्यास, इंदिरा गांधी नहर और सतलुज
राजस्थान	3	इंदिरा गांधी नहर, जवाई-लूनी - कच्छ का रण और लूनी
तमिलनाडु	9	एवीएम नहर, भवानी, कावेरी - कोल्लिडम, मणिमुथारू, पलार, पझियार, पोन्नियार, तमारापारानी और वैगई
तेलंगाना	5	भीमा, मंजरा, पेनगंगा - वर्धा, तुंगभद्रा और वैनगंगा - प्राणहिता
उतार प्रदेश।	10	असि, बेतवा, चंबल, गंडक, घाघरा, गोमती, कर्मनासा, टोंस, वरुणा और यमुना

COACH UP IAS
YOUR SELECTION IS OUR BUSINESS

महासागरीय मार्ग

भारत के पास द्वीपों सहित लगभग 7,517 कि.मी. लंबा व्यापक समुद्री तट है। 12 प्रमुख तथा 185 गौण पत्तन इन मार्गों को संरचनात्मक आधार प्रदान करते हैं। भारत की अर्थव्यवस्था के परिवहन सेक्टर में महासागरीय मार्गों की महत्वपूर्ण भूमिका है। भारत में भार के अनुसार लगभग 95% तथा मूल्य के अनुसार 70% विदेशी व्यापार महासागरीय मार्गों द्वारा होता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के साथ-साथ इन मार्गों का उपयोग देश की मुख्य भूमि तथा द्वीपों के बीच परिवहन के लिए भी होता है।

वायु परिवहन

वायु परिवहन एक स्थान से दूसरे स्थान तक गमनागमन का तीव्रतम साधन है। इसने यात्रा समय को घटाकर दूरियों को कम कर दिया है। यह भारत जैसे विस्तृत देश के लिए बहुत ही आवश्यक है क्योंकि यहाँ दूरियाँ बहुत लंबी हैं तथा भूभाग एवं जलवायवी दशाएँ अत्यंत विविधतापूर्ण हैं।

भारत में वायु परिवहन की शुरुआत 1911 में हुई, जब इलाहाबाद से नैनी तक की 10 कि.मी. की दूरी हेतु वायु डाक प्रचालन संपन्न किया गया था। लेकिन इसका वास्तविक विकास देश की स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् हुआ। भारतीय वायु प्राधिकरण (एयर अथॉरिटी ऑफ इंडिया) भारतीय वायुक्षेत्र में सुरक्षित, सक्षम वायु यातायात एवं वैमानिकी संचार सेवाएँ प्रदान करने के लिए उत्तरदायी है। यह प्राधिकरण 126 विमान पत्तनों का प्रबंधन करता है जिसके अंतर्गत 11 अंतर्राष्ट्रीय, 86 घरेलू तथा रक्षा वायु क्षेत्रों पर स्थित 29 नागरिक अंतः क्षेत्र (इंक्लेव) शामिल हैं।

राष्ट्रीयकरण के बाद भारत में वायु परिवहन का प्रबंधन दो निगमों - एयर इंडिया और इंडियन एयरलाइन द्वारा किया जाता है। अब अनेक निजी कंपनियों ने भी यात्री सेवाएँ देनी प्रारंभ कर दी हैं।

एयर इंडिया

एयर इंडिया यात्रियों तथा नौभार यातायात, दोनों के लिए, अंतर्राष्ट्रीय वायु सेवाएँ उपलब्ध कराता है। यह अपनी सेवाओं द्वारा विश्व के सभी महाद्वीपों को जोड़ता है। वर्ष 2005 में इसने 1.22 करोड़ यात्रियों तथा 4.8 लाख टन नौभार का वहन किया।

कुल वायु यातायात का लगभग 52% भाग केवल मुंबई एवं दिल्ली विमानपत्तनों द्वारा निपटाया गया था।

इंडियन एयरलाइंस का इतिहास

1911 भारत में वायु परिवहन सेवा की शुरुआत इलाहाबाद से नैनी के बीच की गई थी।

1947 - वायु परिवहन मुख्यतः 4 प्रमुखा कंपनियों-इंडियन नेशनल एयरवेज, टाटा संस लिमिटेड, एयर सर्विसेज ऑफ इंडिया तथा डकन एयरवेज द्वारा उपलब्ध कराई जाती थी।

1951 चार और कंपनियाँ भारत एयरवेज, हिमालयन एवीएशन लि., एयरवेज इंडिया तथा कलिंगा एयरलाइंस इस सेवा में शामिल हुई।

1953 वायु परिवहन का राष्ट्रीयकरण करके दो निगम एयर इंडिया लिमिटेड तथा इंडियन एयरलाइंस का गठन किया गया। अब इंडियन एयरलाइंस को 'इंडियन' के नाम से जाना जाता है।

देश की विशालतम राजकीय स्वामित्व वाले घरेलू वाहक इंडियन एयरलाइंस ने अपने नाम के साथ से 'एयरलाइंस' शब्द को विगलित कर दिया और इसे 8 दिसंबर 2005 से केवल 'इंडियन' नाम से जाना जाता है। यह नया ब्रांड नाम वायुयान के धड़ के दोनों तरफ़ दर्शित है। नारंगी रंग की पूँछ पर चित्रित लोगो आई ए (IA) को भी बदल दिया गया है। इसे नए लोगो द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है, जो अंशतः नीले चक्र की भाँति दिखता है और (उड़ीसा के) कोणार्क सूर्य मंदिर के अनुप्रेरित है तथा निरंतर गति अभिसरण एवं अपसरिता को दर्शाता है। यह सुदृढ़ता के साथ-साथ समय पर खरे उतरते विश्वास को भी मूर्तरूप देता है।

वर्ष 2005 में घरेलू प्रचालन के अंतर्गत 24.3 मिलियन यात्री तथा 20 लाख टन नौभार शामिल था।

पवन हंस एक हेलीकॉप्टर सेवा है जो पर्वतीय क्षेत्रों में सेवारत है और उत्तर-पूर्व सेक्टर में व्यापक रूप से पर्यटकों द्वारा उपयोग में लाया जाता है।

इसके अतिरिक्त पवन हंस लिमिटेड मुख्यतः पेट्रोलियम सेक्टर के लिए हेलीकॉप्टर सेवाएँ उपलब्ध कराता है।

मुक्त आकाश नीति

भारतीय निर्यातकों को मदद देने तथा उनके निर्यात को प्रतियोगितापूर्ण बनाने के लिए सरकार ने अप्रैल 1992 में नौभार के लिए एक मुक्त आकाश नीति आरंभ की। इस नीति के अंतर्गत विदेशी एयरलाइंस या निर्यातकों का संगठन कोई भी मालवाहक वायुयान देश में ला सकता है।

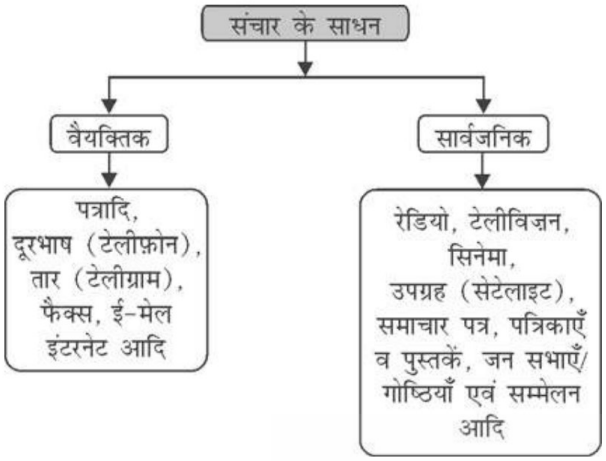
तेल एवं गैस पाइप लाइन

पाइप लाइनें गैसों एवं तरल पदार्थों के लंबी दूरी तक परिवहन हेतु अत्यधिक सुविधाजनक एवं सक्षम परिवहन प्रणाली है। यहाँ तक की इनके द्वारा ठोस पदार्थों को भी घोल या गारा में बदलकर परिवहित किया जा सकता है। पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय के प्रशासन के अधीन स्थापित आयल इंडिया लिमिटेड (ओ.आई.एल.) कच्चे तेल एवं प्राकृतिक गैस के अन्वेषण, उत्पादन और परिवहन में संलग्न है। इसे 1959 में एक कंपनी के रूप में निगमित किया गया था। एशिया की पहली 1157 कि.मी. लंबी देशपारीय पाइपलाइन (असम के नहरकरिटया तेल क्षेत्र से बरौनी के तेल शोधन कारखाने तक) का निर्माण आई.ओ.एल. ने किया था। इसे 1966 में और आगे कानपुर तक विस्तारित किया गया। पश्चिम भारत में एक दूसरे विस्तीर्ण पाइप लाइन का महत्वपूर्ण नेटवर्क - अंकलेश्वर-कोयली, मुंबई-हाई-कोयली तथा हजीरा-विजयपुर-जगदीशपुर (HVJ) का निर्माण किया गया। हाल ही में, 1256 कि.मी. लंबी एक पाइप लाइन सलाया (गुजरात) से मथुरा (उ.प्र.) तक बनाई गई है। गुजरात से पंजाब वाया मथुरा कच्चे तेल की आपूर्ति की जाती है। इसके साथ ओ.आई.एल. द्वारा नुमालीगढ़ से सिलीगुड़ी तक 660 कि.मी. लंबी पाइप लाइन बनाने की प्रक्रिया चल रही है।

संचार जाल

मानव ने कालांतर में संचार के विभिन्न माध्यम विकसित किए हैं। आरंभिक समय में ढोल या पेड़ के खोखले तने को बजाकर, आग या धुएँ के संकेतों द्वारा अथवा तीव्र धावकों की सहायता से संदेश पहुँचाए जाते थे। उस समय घोड़े, ऊँट, कुत्ते, पक्षी तथा अन्य पशुओं को भी संदेश पहुँचाने के लिए प्रयोग किया जाता था। आरंभ में संचार के साधन ही परिवहन के साधन होते थे। डाकघर, तार, प्रिंटिंग प्रेस, दूरभाष तथा उपग्रहों की खोज ने संचार को बहुत त्वरित एवं आसान बना दिया। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास ने संचार के क्षेत्र में क्रांति लाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

संदेश पहुँचाने के लिए लोग संचार की विभिन्न विधाओं का उपयोग करते हैं। मापदंड एवं गुणवत्ता के आधार पर संचार साधनों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है-



वैयक्तिक संचार तंत्र

उपर्युक्त सभी वैयक्तिक संचार तंत्रों में इंटरनेट सर्वाधिक प्रभावी एवं अधुनातन है। नगरीय क्षेत्रों में व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जाता है। यह उपयोगकर्ता को ई-मेल के माध्यम से ज्ञान एवं सूचना की दुनिया में सीधे पहुँच बनाने में सहायक होता है। यह ई-कॉमर्स तथा मौद्रिक लेन-देन के लिए अधिकाधिक प्रयोग में लाया जा रहा है। इंटरनेट विभिन्न मदों पर विस्तृत जानकारी सहित आँकड़ों का विशाल केंद्रीय भंडारागार जैसा होता है। इंटरनेट तथा ई-मेल के माध्यम से यह नेटवर्क अपेक्षाकृत कम लागत में सूचनाओं को अभिगम्यता प्रदान करता है। आपने नगरीय क्षेत्रों में साइबर कैफ़ों का बढ़ता चलन देखा होगा।

जनसंचार तंत्र

रेडियो

भारत में रेडियो का प्रसारण सन् 1923 में रेडियोक्लब ऑफबाम्बे द्वारा प्रारंभ किया गया था। तब से इसने असीमित लोकप्रियता पाई है और लोगों के सामाजिक-संस्कृतिक जीवन में परिवर्तन ला दिया है। अल्पकाल में ही इसने देश भर में प्रत्येक घर में जगह बना ली है। सरकार ने इस सुअवसर का लाभ उठाया और 1930 में इंडियन ब्रॉडकास्टिंग सिस्टम के अंतर्गत इस लोकप्रिय संचार माध्यम को अपने नियंत्रण में ले लिया। 1936 में इसे ऑल इंडिया रेडियो और 1957 में आकाशवाणी में बदला दिया गया। ऑल इंडिया रेडियो सूचना, शिक्षा एवं मनोरंजन से जुड़े विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों को प्रसारित करता है। विशिष्ट अवसरों जैसे संसद तथा राज्य विधानसभाओं के सत्रों के दौरान विशेष समाचार बुलेटिनों को भी प्रसारित किया जाता है।

टेलीविज़न (टी.वी.)

सूचना के प्रसार और आम लोगों को शिक्षित करने में टेलीविजन प्रसारण एक अत्यधिक प्रभावी दृश्य-श्रव्य माध्यम के रूप में उभरा है। प्रारंभिक दौर में टी.वी. सेवाएँ केवल राष्ट्रीय राजधानी तक सीमित थीं, जहाँ इसे 1959 में प्रारंभ किया गया था। 1972 के बाद कई अन्य केंद्र चालू हुए। सन् 1976 में टी.वी. को ऑल इंडिया रेडियो (ए.आई.आर.) से विगलित कर दिया गया और इसे दूरदर्शन (डी.डी.) के रूप में एक अलग पहचान दी गई। इनसैट (INSAT) 1ए (राष्ट्रीय टेलीविजन डीडी-1) के चालू होने के बाद समूचे नेटवर्क के लिए साझा राष्ट्रीय कार्यक्रमों (सीएनपी) की शुरुआत की गई और इन्हें देश-भर के पिछड़े और सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों तक विस्तारित किया गया।

उपग्रह संचार

उपग्रह, संचार की स्वयं में एक विधा हैं और ये संचार के अन्य साधनों का भी नियमन करते हैं। हालाँकि, उपग्रह के उपयोग से एक विस्तृत क्षेत्र का सतत एवं सारिक दृश्य प्राप्त होने के कारण, उपग्रह संचार आर्थिक एवं सामरिक कारणों से महत्त्वपूर्ण हो गया है। उपग्रह से प्राप्त चित्रों का मौसम के पूर्वानुमान, प्राकृतिक आपदाओं की निगरानी, सीमा क्षेत्रों की चौकसी आदि के लिए उपयोग किया जा सकता है।

भारत की उपग्रह प्रणाली को समाकृति तथा उद्देश्यों के आधार पर दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है- इंडियन नेशनल सेटेलाइट सिस्टम (INSAT) तथा इंडियन रिमोट सेंसिंग सेटेलाइट सिस्टम (IRS)। इनसैट (INSAT), जिसकी स्थापना 1983 में हुई थी, एक बहुउद्देश्यीय उपग्रह प्रणाली है जो दूरसंचार, मौसम विज्ञान संबंधी अवलोकनों तथा विभिन्न अन्य आँकड़ों एवं कार्यक्रमों के लिए उपयोगी है।

आई आर एस उपग्रह प्रणाली मार्च 1988 में रूस के वैकानूर से आई आर एस-वन ए (IRS-IA) के प्रक्षेपण के साथ आरंभ हो गई थी। भारत ने भी अपना स्वयं का प्रक्षेपण वाहन पी एस एल वी (पोलर सेटेलाइट लाँच वेहकिल विकसित किया। ये उपग्रह अनेक वर्णक्रमीय (स्पेक्ट्रल) बैंड (समूह) को एकत्रित करते हैं तथा विविध उपयोगों हेतु भू-स्टेशनों पर संप्रेषित करते हैं। हैदराबाद स्थित नेशनल रिमोट सेंसिंग एजेंसी (NRSA) आँकड़ों के अधिग्रहण एवं प्रक्रमण की सुविधा उपलब्ध कराती है। प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन के लिए ये बहुत ही उपयोगी होते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सभी देशों के लिए परस्पर लाभदायक हैं, चूँकि कोई भी देश आत्मनिर्भर नहीं है। हाल ही के वर्षों में भारत के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ने मात्रा, संघटन के साथ-साथ व्यापार की दिशा के संबंध में आमूल परिवर्तनों का अनुभव किया है। यद्यपि, विश्व व्यापार में भारत की भागीदारी कुल मात्रा का केवल एक प्रतिशत है तथापि, विश्व की अर्थव्यवस्था में इसकी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

आइए, भारत के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के बदलते प्रारूप (Pattern) की पड़ताल करें। वर्ष 1950-51 में, भारत का वैदेशिक व्यापार का मूल्य 1,214 करोड़ रुपए था, जो कि वर्ष 2004-05 में बढ़कर 8,37,133 करोड़ रुपए हो गया। क्या आप 1950-51 के मुकाबले 2004-05 की प्रतिशत वृद्धि का परिकलन कर सकते हैं? विदेशी व्यापार में इस तीव्र वृद्धि के अनेक कारण हैं जैसे कि विनिर्माण के क्षेत्र में संवेगी (गतिशील) उठान, सरकार की उदार नीतियाँ तथा बाज़ारों की विविधरूपता आदि।

समय के साथ भारत के विदेशी व्यापार की प्रकृति में बदलाव आया है । यद्यपि, यहाँ पर आयात एवं निर्यात दोनों की ही मात्रा में वृद्धि हुई है, परंतु निर्यात की तुलना में आयात का मूल्य अधिक है। पिछले कुछेक वर्षों में व्यापार घाटे में भी वृद्धि हुई है। घाटे में हुई इस वृद्धि के लिए अपरिष्कृत (क्रूड) पेट्रोलियम को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, जो भारत की आयात सूची में एक प्रमुख घटक है।

भारत के निर्यात-संघटन के बदलते प्रारूप

वर्ष 1999-2000 से 2003-2004 के दौरान भारत के विदेश व्यापार में निर्यात एवं आयात के बीच अंतर का फैलाव जैसाकि पहले ही बताया जा चुका है कि भारत के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में वस्तुओं के संघटकों में समय के साथ बदलाव आए हैं। इसमें कृषि तथा समवर्गी उत्पादों का हिस्सा घटा है, जबकि पेट्रोलियम तथा अपरिष्कृत उत्पादों एवं अन्य वस्तुओं में वृद्धि हुई है। अयस्क खनिजों तथा निर्मित सामानों का हिस्सा वर्ष 1997-98 से 2003-04 तक व्यापक तौर पर लगातार स्थिर-सा रहा है। पेट्रोलियम उत्पादों के हिस्से में वृद्धि का कारण पेट्रोलियम के मूल्यों में वृद्धि के साथ-साथ भारत में तेलशोधन क्षमता में वृद्धि भी ज़िम्मेदार है।

परंपरागत वस्तुओं के व्यापार में गिरावट का कारण मुख्यतः कड़ी अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा है। कृषि उत्पादों के अंतर्गत कॉफ़ी, मसाले, चाय व दालों आदि जैसी परंपरागत वस्तुओं के निर्यात में गिरावट आई है। हालाँकि पुष्पकृषि उत्पादों ताजे फलों, समुद्री उत्पादों तथा चीनी आदि के निर्यात में वृद्धि दर्ज की गई है।

वर्ष 2003-04 के दौरान विनिर्माण क्षेत्र ने भारत के कुल निर्यात मूल्य में अकेले 75.96 प्रतिशत की भागीदारी अंकित की है। निर्यात सूची में इंजीनियरिंग सामानों ने महत्त्वपूर्ण वृद्धि दर्शाई है। वस्त्रोद्योग क्षेत्र सरकार द्वारा उदारतापूर्ण उपाय उठाए जाने के बावजूद पर्याप्त उपलब्धि नहीं प्राप्त कर पाया। इस क्षेत्र में चीन तथा अन्य पूर्व एशियाई देश हमारे प्रमुख प्रतिस्पर्धी हैं। भारत के विदेश व्यापार में मणि-रत्नों तथा आभूषणों की एक व्यापक हिस्सेदारी है।

भारत के आयात-संघटन के बदलते प्रारूप

भारत ने 1950 एवं 1960 के दशक में खाद्यान्नों की गंभीर कमी का अनुभव किया है। उस समय आयात की प्रमुख वस्तुएँ खाद्यान्न, पूँजीगत माल, मशीनरी एवं उपस्कर आदि थे। उस समय भुगतान संतुलन बिल्कुल विपरीत था; चूँकि आयात प्रतिस्थापन के सभी प्रयासों के बावजूद आयात निर्यातों से अधिक थे। 1970 के दशक के बाद हरित क्रांति में सफलता मिलने पर खाद्यान्नों का आयात रोक दिया गया। लेकिन 1973 में आए ऊर्जा संकट से पेट्रोलियम (पदार्थों) के मूल्य में उछाल आया फलतः आयात बजट भी बढ़ गया। खाद्यान्नों के आयात की जगह उर्वरकों एवं पेट्रोलियम ने ले ली। मशीन एवं उपस्कर, विशेष स्टील, खाद्य तेल तथा रसायन मुख्य रूप से आयात व्यापार की रचना करते हैं।

पेट्रोलियम तथा इसके उत्पादों के आयात में तीव्र वृद्धि हुई है। इसे न केवल ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है बल्कि इसका प्रयोग उद्योगों में एक कच्चे माल के रूप में भी होता है। इससे बढ़ते हुए औद्योगीकरण और बेहतर जीवन स्तर का संकेत मिलता है। अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों में भी इसकी कदाचनिक मूल्यवृद्धि भी एक अन्य कारण रही है। निर्याताभिमुख उद्योगों एवं घरेलू क्षेत्र की बढ़ती हुई माँग के कारण पूँजीगत वस्तुओं के आयात में एक स्थिर वृद्धि होती रही है। गैर-वैद्युतिक मशीनरी परिवहन उपस्कर, धातुओं के विनिर्मितियाँ तथा मशीनी औज़ार आदि पूँजीगत वस्तुओं की मुख्य मदें होती थीं। खाद्य तेलों के अयात में आई गिरावट के साथ खाद्य तथा समवर्गी उत्पादों के आयात में कमी आई है। भारत के आयात में अन्य प्रमुख वस्तुओं में मोती तथा उपरत्नों, स्वर्ण एवं चाँदी, धातुमय अयस्क तथा धातु छीजन, अलौह धातुएँ तथा इलेक्ट्रॉनिक वस्तुएँ आदि आते हैं।

व्यापार की दिशा

भारत के व्यापारिक संबंध विश्व के अधिकांश देशों एवं प्रमुख व्यापारी गुटों के साथ हैं।

भारत का उद्देश्य आगामी पाँच वर्षों के दौरान अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में अपनी हिस्सेदारी को दुगुना करने का है। इसने इस दिशा में, पहले से ही आयात उदारीकरण, आयात करों में कमी, डि-लाइसेंसिंग (विअनुज्ञाकरण) तथा प्रक्रिया से उत्पाद के एकस्व (पेटेंट) में बदलाव आदि अनुकूल उपाय अपनाने शुरू कर दिए हैं।

वर्ष 2004-05 में भारत के निर्यात में एशिया एवं ओशेनिया की 47.41 प्रतिशत की हिस्सेदारी है, तदुपरांत पश्चिमी यूरोप (23.80%) और अमेरिका (20.42%) आते हैं। इसी प्रकार भारत के आयात में एशिया एवं ओशेनिया की सर्वाधिक (35.40%) मात्रा है। इसके बाद पश्चिमी यूरोप (22.60%) तथा अमेरिका (8.36%) आते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार तथा भारत के निर्यात के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गंतव्य स्थान है। महत्त्व के आधार पर अन्य देशों में क्रमशः ब्रिटेन, बेल्जियम, जर्मनी, जापान, स्विटजरलैंड, हांगकांग, संयुक्त अरब अमीरात, चीन, सिंगापुर तथा मलेशिया आदि आते हैं।

भारत का अधिकतर विदेशी व्यापार समुद्री एवं वायु मार्गों द्वारा संचालित होता है। हालाँकि, विदेशी व्यापार का छोटा सा भाग सड़क मार्ग द्वारा नेपाल, भूटान, बांग्लादेश एवं पाकिस्तान जैसे पड़ोसी राज्यों में सड़क मार्ग द्वारा किया जाता है।

समुद्री पत्तन-अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रवेश द्वार के रूप में

भारत तीन ओर से समुद्र से घिरा हुआ है और प्रकृति ने हमें एक लंबी तटरेखा प्रदान की है। जल सस्ते परिवहन के लिए एक सपाट तल प्रदान करता है। समुद्री यात्राओं की भारत में एक लंबी परंपरा रही है, यहाँ तक कि कई स्थानों के साथ उपनाम पत्तन जुड़ा हुआ है। भारत में समुद्री पत्तनों का एक रोचक तथ्य यह है कि इसके पूर्वी तट की अपेक्षा पश्चिमी तट पर अधिक पत्तन हैं।

यद्यपि भारत में पत्तनों का उपयोग प्राचीन काल से हो रहा है तथापि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रवेश द्वार के रूप में पत्तनों का उभरना यूरोपीय व्यापारियों का आगमन तथा अंग्रेज़ी द्वारा भारत के उपनिवेशीकरण के बाद महत्त्वपूर्ण बना। इसी कारण देश में पत्तनों के आकार और गुणवत्ता में विविधता आई। यहाँ पर कुछ पत्तन ऐसे हैं जिनके पास विस्तृत प्रभाव क्षेत्र हैं जबकि कुछ के पास सीमित प्रभाव क्षेत्र है। वर्तमान में, भारत में 12 प्रमुख और 185 छोटे या मझोले पत्तन हैं। प्रमुख पत्तनों के संबंधों में केंद्र सरकार नीतियाँ बनाती है तथा नियामक क्रियाओं को निभाती हैं। छोटे पत्तनों के लिए राज्य सरकारें नीतियाँ बनाती है व नियामक क्रियाएँ निभाती हैं। प्रमुख पत्तन कुल यातायात के बड़े हिस्से का निपटान करती हैं। 12 प्रमुख पत्तन देश के महासागरीय यातायात का 75 प्रतिशत भाग निपटाती है।

अंग्रेजों ने इन पत्तनों का उपयोग उनके पृष्ठप्रदेशों के संसाधनों के अवशोषण केंद्र के रूप में किया था। आंतरिक प्रदेशों में रेलवे के विस्तार ने स्थानीय बाज़ारों को क्षेत्रीय बाज़ारों और क्षेत्रीय बाजारों को राष्ट्रीय बाज़ारों तथा राष्ट्रीय बाजारों को अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों से जोड़ने की सुगमता प्रदान की। यह प्रवृत्ति 1947 तक बनी रही। यह अपेक्षा की गई थी कि देश की स्वतंत्रता इस प्रक्रम को उलट देगी, परंतु देश के विभाजन से भारत के दो अति महत्त्वपूर्ण पत्तन अलग हो गए। कराची पत्तन पाकिस्तान में चला गया और चिटगाँव पत्तन तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान और अब बांग्लादेश में चला गया। इस क्षतिपूर्ति के लिए अनेक नए पत्तनों को विकसित किया गया जैसे कि पश्चिम में कांडला तथा पूर्व में हुगली नदी पर कोलकाता के पास डायमंड हार्बर का विकास हुआ।

इस बड़ी हानि के बावजूद, देश की स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से भारतीय पत्तन निरंतर वृद्धि कर रहे हैं। आज भारतीय पत्तन विशाल मात्रा में घरेलू के साथ-साथ विदेशी व्यापार का निपटान कर रहे हैं। अधिकतर पत्तन आधुनिक अवसंरचना से लैस हैं। पहले पत्तनों के विकास एवं आधुनिकीकरण की ज़िम्मेदारी सरकारी अभिकरणों पर थी, लेकिन काम के बढ़ने और इन पत्तनों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर के पत्तनों के समकक्ष बनाने की आवश्यकता ने भारत की पत्तनों के आधुनिकीकरण के लिए निजी उद्यमियों को आमंत्रित किया।

आज भारतीय पत्तनों की नौभार निपटान की क्षमता 1951 में 20 मिलियन टन से वर्तमान में 500 मिलियन टन से अधिक बढ़ गई है। अपने पृष्ठ प्रदेशों के साथ कुछ भारतीय पत्तन अग्रलिखित हैं-

कच्छ की खाड़ी के मुँहाने पर अवस्थित कांडला पत्तन को देश के पश्चिमी एवं उत्तर-पश्चिमी भाग की जरूरतों को पूरा करने और मुंबई पत्तन पर दबाव को घटाने के लिए एक प्रमुख पत्तन के रूप में विकसित किया गया है। इस पत्तन को विशेष रूप से भारी मात्रा में पेट्रोलियम, पेट्रोलियम उत्पादों एवं उर्वरकों को ग्रहण करने के लिए बनाया गया है। वाडीनार में एक अपतटीय टर्मिनल विकसित किया गया है ताकि कांडला पत्तन के दबाव को घटाया जा सके।

पृष्ठ प्रदेश (hinter land) की सीमाओं का चिह्नांकन मुश्किल होता है क्योंकि यह क्षेत्र पर सुस्थिर नहीं होता। अधिकतर मामलों में एक पत्तन का पृष्ठ प्रदेश दूसरे पत्तन के पृष्ठप्रदेश का अतिव्यापन कर सकता है।

मुंबई एक प्राकृतिक पत्तन और देश का सबसे बड़ा पत्तन है। यह पत्तन मध्यपूर्व, भूमध्य सागरीय देशों, उत्तरी अफ्रीका, उत्तर अमेरिका तथा यूरोप के देशों के सामान्य मार्ग के निकट स्थित है जहाँ से देश के विदेशी व्यापार का अधिकांश भाग संचालित किया जाता है। यह पत्तन 20 कि.मी. लंबा तथा 6-10 कि.मी. चौड़ा है। जिसमें 54 गोदियाँ और देश का विशालतम टर्मिनल हैं। मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश व राजस्थान के भाग मुंबई पत्तन की पृष्ठभूमि की रचना करते हैं।

जवाहरलाल नेहरू पत्तन को न्हावा शेवा में मुंबई पत्तन के दबाव को कम करने के लिए एक अनुषंगी पत्तन के रूप में विकसित किया गया था। यह भारत का विशालतम कंटेनर पत्तन है।

जुआरी नदमुख के मुँहाने पर अवस्थित मार्मागाओ पत्तन गोवा का एक प्राकृतिक बंदरगाह है। जापान को लौह-अयस्क के निर्यात का निपटान करने के लिए 1961 में हुए पुनर्प्रतिरूपण के बाद इसका महत्त्व बढ़ा।

कोंकण रेलवे ने इस पत्तन के पृष्ठ प्रदेश में महत्त्वपूर्ण विस्तार किया है। कर्नाटक, गोआ तथा दक्षिणी महाराष्ट्र इसकी पृष्ठभूमि की रचना करते हैं

न्यू मंगलौर पत्तन कर्नाटक में स्थित है और लौह-अयस्क और लौह-सांद्र के निर्यात की जरूरतों को पूरा करता है। यह पत्तन भी उर्वरकों, पेट्रोलियम उत्पादों, खाद्य तेलों, कॉफ़ी, चाय, लुगदी, सूत, ग्रेनाइट पत्थर, शीरा आदि का निपटान करता है। पृष्ठ कर्नाटक इस पत्तन का प्रमुख पृष्ठप्रदेश है।

बेंवानद कायाल, जिसे 'अरब सागर की रानी' (क्वीन ऑफ अरेबियन सी) के लोकप्रिय नाम से जाना जाता है, के मुँहाने पर स्थित कोच्चि पत्तन भी एक प्राकृतिक पत्तन है। इस पत्तन को स्वेज कोलंबो मार्ग के पास अवस्थित होने का लाभप्राप्त है। यह केरल, दक्षिणी कर्नाटक तथा दक्षिण-पश्चिमी तमिलनाडु की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

कोलकाता पत्तन हुगली नदी पर अवस्थित है जो बंगाल की खाड़ी से 128 कि.मी. स्थल में अंदर स्थित है। मुंबई पत्तन की भाँति इसका विकास भी अंग्रेज़ों द्वारा किया गया था। कोलकाता को ब्रिटिश भारत की राजधानी होने के प्रारंभिक लाभ प्राप्त थे। इस पत्तन ने विशाखापट्नम, पाराद्वीप और उसकी अनुषंगी पत्तन हल्दिया जैसी अन्य पत्तनों की ओर निर्यात के दिक्परिवर्तन के कारण अपनी सार्थकता काफ़ी हद तक खो दी है।

कोलकाता पत्तन हुगली नदी द्वारा लाई गई गाद की समस्या से भी जूझता रहा है जो कि उसे समुद्र से जुड़ने का मार्ग प्रदान करती है। इसके पृष्ठ प्रदेश के अंतर्गत उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल, सिक्किम और उत्तर-पूर्वी राज्य आते हैं। इन सबके अतिरिक्त, यह पत्तन हमारे भूटान और नेपाल जैसे स्थलरुद्ध पड़ोसी देशों को भी सुविधाएँ उपलब्ध कराता है।

हल्दिया पत्तन कोलकाता से 105 कि.मी. अंदर अनुप्रवाह (डाउनस्ट्रीम) पर स्थित है। इसका निर्माण कोलकाता पत्तन की संकुलता को घटाने के लिए किया गया है। यह स्थूल नौभार जैसे- लौह अयस्क, कोयला, पेट्रोलियम तथा पेट्रोलियम उत्पाद, उर्वरक, जूट एवं जूट उत्पाद, कपास तथा सूती धागों आदि का निपटान (handle) करता है।

पारादीप पत्तन कटक से 100 कि.मी. दूर महानदी डेल्टा पर स्थित है। इसका पोताश्रय सबसे गहरा है जो भारी पोतों के निपटान के लिए सर्वाधिक अनुकूल है। इसे मुख्य रूप से बड़े पैमाने पर लौह अयस्क के निर्यात के लिए निपटान विकसित किया गया है। इस पत्तन के पृष्ठ प्रदेश के अंतर्गत उड़ीसा, झारखंड और छत्तीसगढ़ आते हैं।

विशाखापट्नम आंध्र प्रदेश में एक भू-आबद्ध पत्तन है जिसे ठोस चट्टान एवं बालू को काटकर एक नहर के द्वारा समुद्र से जोड़ा गया है। एक बाह्य पत्तन का विकास लौह अयस्क, पेट्रोलियम तथा सामान्य नौभार के निपटान हेतु विकसित किया गया है। इस पत्तन का प्रमुख पृष्ठ प्रदेश आंध्र प्रदेश है।

चेन्नई पत्तन-पूर्वी तट पर स्थित यह सबसे पुराने पत्तनों में से एक है। यह एक कृत्रिम पत्तन है जिसे 1859 में बनाया गया था। तट के निकट उथले जल के कारण यह पत्तन विशाल पोतों के लिए अनुकूल नहीं है। तमिलनाडु और पांडिचेरी इसके पृष्ठप्रदेश हैं।

तमिलनाडु में नई विकसित एन्नोर पत्तन चेन्नई के उत्तर में 25 कि.मी. दूर चेन्नई पत्तन के दबाव को कम करने के लिए बनाई गई है। तूतीकोरिन पत्तन का विकास भी चेन्नई पत्तन के दबाव को कम करने के लिए किया गया था। यह विभिन्न प्रकार के नौभार का निपटान करता है जिसके अंतर्गत कोयला, नमक, खाद्यान्न, खाद्य तेल, चीनी, रसायन तथा पेट्रोलियम उत्पाद शामिल हैं।

हवाई अड्डे

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में वायु परिवहन एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इन्हें लंबी दूरी वाले उच्च मूल्य वाले या नाशवान सामानों को कम से कम समय में ले जाने व निपटाने के लिए लाभ प्राप्त होते हैं। यह भारी और स्थूल वस्तुओं के वहन करने के लिए बहुत महँगा और अनुपयुक्त होता है। यही कारण अंततः अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में महासागरीय मार्गों की तुलना में इस क्षेत्र की भागीदारी को घटा देता है।

वर्तमान में देश में 12 अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे तथा 112 घरेलू हवाई अड्डे कार्य कर रहे हैं। अंतर्राष्ट्रीय हवाई पत्तनों के अंतर्गत अहमदाबाद, अमृतसर, बंगलौर, चेन्नई, दिल्ली, गोवा, गुवाहाटी, हैदराबाद, कोच्चि, कोलकाता, मुंबई तथा थिरुवनंथपुरम आते हैं।

भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में चयनित कुछ मुद्दे एवं समस्याएँ

पर्यावरण प्रदूषण

पर्यावरण प्रदूषण मानवीय क्रियाकलापों के अपशिष्ट उत्पादों से मुक्त द्रव्य एवं ऊर्जा का परिणाम है। प्रदूषण के अनेक प्रकार हैं। प्रदूषकों के परिवहित एवं विसरित होने के माध्यम के आधार पर प्रदूषण को निम्नलिखित प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है- (i) जल प्रदूषण, (ii) वायु प्रदूषण, (iii) भू-प्रदूषण, (iv) ध्वनि प्रदूषण।

जल प्रदूषण

बढ़ती हुई जनसंख्या और औद्योगिक विस्तारण के कारण जल के अविवेकपूर्ण उपयोग से जल की गुणवत्ता का बहुत अधिक निम्नीकरण हुआ है। नदियों, नहरों, झीलों तथा तालाबों आदि में उपलब्ध जल शुद्ध नहीं रह गया है। इसमें अल्प मात्रा में निलंबित कण, कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थ समाहित होते हैं। जब जल में इन पदार्थों की सांद्रता बढ़ जाती है तो जल प्रदूषित हो जाता है और इस तरह वह उपयोग के योग्य नहीं रह जाता। ऐसी स्थिति में जल में स्वतः शुद्धीकरण की क्षमता जल को शुद्ध नहीं कर पाती।

यद्यपि, जल प्रदूषण प्राकृतिक स्रोतों (अपरदन, भू-स्खलन और पेड़-पौधों तथा मृत पशु के सड़ने-गलने आदि) से प्राप्त प्रदूषकों से भी होता है, तथापि मानव स्रोतों से उत्पन्न होने वाले प्रदूषक चिंता के वास्तविक कारण हैं। मानव, जल को उद्योगों, कृषि एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के माध्यम से प्रदूषित करता है। इन क्रियाकलापों में उद्योग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सहायक है।

तालिका 12.1 : प्रदूषण के प्रकार एवं स्रोत

प्रदूषण प्रकार	सन्निहित प्रदूषण	प्रदूषण के स्रोत
वायु प्रदूषण	सल्फर के ऑक्साइड (SO_2, SO_3) नाइट्रोजन ऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, हाइड्रो कार्बन, अमोनिया, सीसा एल्डेहाइड्स एस्बेस्टोज़ एवं बेरिलियम	कोयले, पेट्रोल व डीज़ल का दहन (जलना), औद्योगिक प्रक्रम, ठोस कचरा निपटान, वाहित मल (जल-मल) निपटान आदि
जल प्रदूषण	बदबू, घुलित एवं निलंबित ठोस कण, अमोनिया तथा यूरिया, नाइट्रेट एवं नाइट्राइट्स, क्लोराइड्स, फ्लोराइड्स, कार्बोनेट्स, तेल एवं ग्रीस (चिकनाई), कीटनाशकों एवं पीड़कनाशी के अवशेष, टैंनिन, कोलीफार्म एम पी एम (जीवाणु गणना), सल्फेट्स एवं सल्फाइड्स, भारी धातुएँ जैसे कि सीसा, आर्सेनिक, पारा, मैंगनीज़ आदि रेडियोधर्मी पदार्थ तत्त्व	वाहित मल निपटान, नगरीय वाही जल, उद्योगों के विषाक्त कृषित भूमि के ऊपर से बहता जल बहि:स्राव तथा नाभिकीय ऊर्जा संयंत्र
भू-प्रदूषण	मानव एवं पशु मलादि विषाणु तथा जीवाणु तथा रोगवाहक विरलन कीटनाशक एवं उर्वरक अवशिष्ट क्षारीयता, फ्लोराइड्स, रेडियोधर्मी पदार्थ।	अनुचित मानव क्रियाकलाप, अनुपचारित औद्योगिक अपशिष्ट का निपटान, पीड़कनाशी एवं उर्वरकों का उपयोग।
ध्वनि प्रदूषण	सहन क्षमता से अधिक ऊँची ध्वनि का स्तर	वायुयान, मोटर-वाहन, रेलगाड़ियाँ, औद्योगिक प्रक्रम तथा विज्ञापन मीडिया

उत्पादन प्रक्रिया में, उद्योग अनेक अवांछित उत्पाद पैदा करते हैं जिनमें औद्योगिक कचरा, प्रदूषित अपशिष्ट जल, जहरीली गैसें, रासायनिक अवशेष, अनेक भारी धातुएँ, धूल, धुआँ आदि शामिल होता है। अधिकतर औद्योगिक कचरे को बहते जल में अथवा झीलों आदि में विसर्जित कर दिया जाता है। परिणामस्वरूप विषाक्त रासायनिक तत्व जलाशयों, नदियों तथा अन्य जल भंडारों में पहुँच जाते हैं जो इन जलों में रहने वाली जैव प्रणाली को नष्ट करते हैं। सर्वाधिक जल प्रदूषक उद्योग-चमड़ा, लुगदी व कागज, वस्त्र तथा रसायन हैं।

आधुनिक कृषि में विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थों का उपयोग होता है जैसे कि अकार्बनिक उर्वरक, कीटनाशक, खरपतवार नाशक आदि भी प्रदूषण उत्पादन करने वाले घटक हैं। इन रसायनों को नदियों, झीलों तथा तलाबों में बहा दिया जाता है। यह सभी रसायन जल के माध्यम में जमीन में स्रवित होते हुए भू-जल तक पहुँच जाते हैं। उर्वरक धरातलीय जल में नाइट्रेट की मात्रा को बढ़ा देते हैं। भारत में तीर्थ यात्राओं, धार्मिक मेले व पर्यटन आदि जैसी सांस्कृतिक गतिविधियाँ भी जल प्रदूषण का कारण हैं। भारत में, धरातलीय जल के लगभग सभी स्रोत संदूषित हो चुके हैं और मानव के उपयोग के योग्य नहीं है।

जल प्रदूषण विभिन्न प्रकार की जल जनित बीमारियों का एक प्रमुख स्रोत होता है। संदूषित जल के उपयोग के कारण प्रायः दस्त (डायरिया), आँतों के कृमि, हेपेटाइटिस जैसी बीमारियाँ होती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट दर्शाती है कि भारत में लगभग एक चौथाई संचारी रोग जल-जनित होते हैं।

वायु प्रदूषण

वायु प्रदूषण को धूल, धुआँ, गैसें, कुहासा, दुर्गंध और वाष्प जैसे संदूषकों की वायु में अभिवृद्धि व उस अवधि के रूप में लिया जाता है जो मनुष्यों, जंतुओं और संपत्ति के लिए हानिकारक होते हैं। ऊर्जा के स्रोत के रूप में

विभिन्न प्रकार के ईंधनों के प्रयोग में वृद्धि के साथ, पर्यावरण में विषाक्त धुए वाली गैसों के उत्सर्जन के परिणामस्वरूप वायु प्रदूषित होती है। जीवाश्म ईंधन का दहन, खनन और उद्योग वायु प्रदूषण के प्रमुख स्रोत हैं। ये प्रक्रियाएँ वायु में सल्फर एवं नाइट्रोजन के ऑक्साइड, हाइड्रोकार्बन, कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, सीसा तथा एस्बेस्टास को निर्मुक्त करते हैं।

वायु प्रदूषण के कारण श्वसन तंत्रीय, तंत्रिका तंत्रीय तथा रक्त संचारतंत्र संबंधी विभिन्न बीमारियाँ होती हैं।

नगरों के ऊपर कुहरा जिसे शहरी धूम्र कुहरा कहा जाता है, वस्तुतः वायुमंडलीय प्रदूषण के कारण होता है। यह मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत घातक सिद्ध होता है। वायु प्रदूषण के कारण अम्ल वर्षा भी हो सकती है। नगरीय पर्यावरण का वर्षा जल विश्लेषण इंगित करता है कि गर्मियों के पश्चात् पहली बरसात में पी.एच. का स्तर उत्तरवती बरसातों से सदैव कम होता है।

तालिका 12.2 : गंगा एवं यमुना नदियों में प्रदूषण के स्रोत

नदी एवं राज्य	प्रदूषित पटरियाँ	प्रदूषण की प्रकृति	मुख्य प्रदूषक
गंगा (उत्तर प्रदेश, बिहार व प. बंगाल)	(अ) कानपुर का अनुप्रवाह (ब) वाराणसी का अनुप्रवाह (स) फरक्का बाँध	1. कानपुर जैसे नगरों से औद्योगिक प्रदूषण। 2. नगरीय केंद्रों का घरेलू अपशिष्ट नदी में लाशों का विसर्जन।	कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, पटना तथा कोलकाता जैसे नगर घरेलू कचरे को नदी में निर्मुक्त करते हैं।
यमुना (दिल्ली एवं उत्तर प्रदेश)	(अ) दिल्ली से चंबल के मिलन तक (ब) मथुरा व आगरा	1. हरियाणा व उत्तर प्रदेश द्वारा पानी का सिंचाई हेतु निर्गमन। 2. कृषि गतिविधियों के कारण यमुना जल में उच्च स्तर पर सूक्ष्म प्रदूषकों का प्रवाह। 3. दिल्ली का घरेलू एवं औद्योगिक कचरे का नदी में प्रवाहित करना।	दिल्ली का अपने घरेलू अपशिष्ट को नदी में डालना।

ध्वनि प्रदूषण

विभिन्न स्रोतों से उत्पन्न ध्वनि का मानव की सहनीय सीमा से अधिक तथा असहज होना ही ध्वनि प्रदूषण है। विभिन्न प्रकार के प्रौद्योगिकीय अन्वेषणों के चलते, हाल ही के वर्षों से यह एक गंभीर समस्या बनकर उभरा है।

ध्वनि प्रदूषण के प्रमुख स्रोत विविध उद्योग, मशीनीकृत निर्माण तथा तोड़-फोड़ कार्य, तीव्रचालित मोटर-वाहन और वायुयान इत्यादि हैं। इनमें सायरन, लाउडस्पीकर, फेरी वाले तथा सामुदायिक गतिविधियों से जुड़े विभिन्न उत्सव संबंधी कार्यों से होने वाली आवधिक किंतु प्रदूषण करने वाले शोर को भी जोड़ा जा सकता है। सुस्थिर शोर के स्तर को डेसीबल के संदर्भ में ध्वनि स्तर के द्वारा मापा जाता है।

ध्वनि प्रदूषण के सभी स्रोतों में से यातायात द्वारा पैदा किया गया शोर सबसे बड़ा क्लेश है। इसकी तीव्रता और प्रकृति इन घटकों पर निर्भर करता है जैसे कि वायुयान/वाहन/रेलगाड़ी के प्रकार, उन सड़कों की दशा तथा साथ-ही-साथ वाहन की स्थिति (आटोमोबाइल के संदर्भ में जैसे कारकों पर निर्भर करती है।) समुद्री यातायात में शोर की तीव्रता माल को चढ़ाने व उतारने का निपटान करने वाले पत्तन तक अधिक सीमित रहती है। उद्योग भी ध्वनि प्रदूषण का कारण है जिसमें उद्योग के आधार पर तीव्रता भिन्न-भिन्न होती है।

ध्वनि प्रदूषण स्थान विशिष्ट होता है तथा इसकी तीव्रता प्रदूषण के स्रोत जैसे कि औद्योगिक क्षेत्र, परिवहन मार्ग, हवाई अड्डे इत्यादि मुख्यमार्ग से दूर कम होती जाती है। भारत के कई बड़े शहरों एवं महानगरों में ध्वनि प्रदूषण बहुत खतरनाक है।

नगरीय अपशिष्ट निपटान

नगरीय क्षेत्रों को प्रायः अति संकुल, भीड़-भाड़ तथा तीव्र बढ़ती जनसख्या के लिए अपर्याप्त सुविधाएँ और उसके परिणामस्वरूप साफ़-सफ़ाई की खराब स्थिति एवं प्रदूषित वायु के रूप में पहचाना जाता है। ठोस अपशिष्टों (कचरे) के द्वारा होने वाला पर्यावरण प्रदूषण काफ़ी महत्त्वपूर्ण हो चुका है क्योंकि विभिन्न स्रोतों द्वारा जनित अपशिष्ट की मात्रा बहुत अधिक होती जा रही है। ठोस कचरे की अंतर्गत विभिन्न प्रकार के पुराने एवं प्रयुक्त सामग्रियाँ शामिल की जाती हैं जैसे कि जंग लगी पिनें, टूटे काँच के समान, प्लास्टिक के डिब्बे, पोलीथिन की थैलियाँ, रद्दी कागज़, राख, फ्लॉपियाँ, सी डी आदि का भिन्न-भिन्न स्थानों पर लगाया जाता है। इस त्यागे गए समान को कूड़ा-करकट, रद्दी, गंदगी एवं कबाड़ आदि कहते हैं जिनका दो स्रोतों से निपटान होता है- (i)

घरेलू प्रतिष्ठानों से और (ii) व्यावसायिक प्रतिष्ठानों से। घरेलू कचरे को या तो सार्वजनिक भूमि पर या निजी ठेकेदारों के स्थलों पर डाला जाता है जबकि औद्योगिक/व्यावसायिक इकाइयों के कचरा का संग्रहण एवं निपटान जन सुविधाओं (नगरपालिकाओं) के द्वारा निचली सतह की सार्वजनिक ज़मीन (गड्डों) पर निस्तारित किया जाता है। कारखानों, विद्युत गृहों तथा भवन निर्माण या विध्वंस से भारी मात्रा में निकली राख या मलबे के परिणामस्वरूप गंभीर समस्याएँ पैदा हो गई हैं। ठोस अपशिष्ट से अप्रिय बदबू, मक्खियों एवं कृतकों (जैसे चूहे) से स्वास्थ्य संबंधी जोखिम पैदा हो जाते हैं जैसे टाइफाइड (मियादी बुखार), गलघोटूँ (डिप्थीरिया), दस्त तथा हैजा (कॉलरा) आदि। इसके साथ ही यह कूड़ा-कचरा अक्सर क्लेश पैदा करते हैं जब कभी भी इनका लापरवाही से निपटान किया जाता है तो यह हवा से फैलने एवं बरसाती पानी से छितरने के कारण परेशानी का कारण बनता है।

नगरीय क्षेत्रों के आसपास औद्योगिक इकाइयों के संकेंद्रण से भी औद्योगिक अपशिष्टों में वृद्धि होती है। औद्योगिक कचरे को नदियों में डालने से जल प्रदूषण की समस्या होती है। नगर आधारित उद्योगों तथा अनुपचारित वाहित मल के कारण नदियों के प्रदूषण से अनुप्रवाह में स्वास्थ्य संबंधी गंभीर समस्याएँ पैदा होती हैं।

दौराला में पारिस्थितिकी के पुनर्भरण और मानव स्वास्थ्य के सुरक्षण का एक अनुकरणीय

उदाहरण : केस अध्ययन

'प्रदूषक भोगता है' के वैश्विक नियम के आधार पर मेरठ के निकट दौराला में लोगों की प्रतिभागिता के सहारे पारिस्थितिकी के पुनर्भरण और मानव स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए प्रयास किया गया है। मेरठ के एक गैर सरकारी संगठन (एन.जी.ओ.) द्वारा पारिस्थितिकी पुनर्भरण के एक मॉडल की रचना के तीन वर्ष बाद परिणाम आने आरंभ हो गए। दौराला स्थित उद्योगों के पदाधिकारियों, गैर-सरकारी संगठनों, सरकारी अधिकारियों और अन्य पणधारियों की मेरठ में हुई मीटिंग में परिणाम सामने आए। लोगों के शक्तिशाली तर्कों, प्रामाणिक अध्ययनों और दबाव ने इस गाँव के 12,000 निवासियों को एक नया जीवन दान दिया है। यह सन् 2003 की बात है जब दौरालावासियों की दयनीय दशा ने एक जनहित सभा (सिविल सोसायटी) का ध्यान आकृष्ट किया। 12,000 लोगों की जनसंख्या वाले इस गाँव का भू-जल भारी धातुओं के संपर्क से संदूषित हो चुका था। इसका कारण यह था कि दौराला के उद्योगों के अनुपचारित अपशिष्ट जल का भू-जल स्तर में निक्षालन हो रहा था। एन.जी.ओ. के कार्यकर्ताओं ने घर-घर जाकर लोगों के स्वास्थ्य स्तर संबंधी सर्वेक्षण किया और एक रिपोर्ट बनाई। उस संगठन, ग्रामीण समुदाय और जन-प्रतिनिधियों ने आपस में बैठकर इन समस्याओं के टिकाऊ समाधान ढूँढ़ने का प्रयास किया। उद्योगपतियों ने पारिस्थितिकी की गिरती दशा को नियंत्रित करने में गहरी रुचि दिखाई। गाँव की उपरली टंकी (over hand tank) की क्षमता बढ़ाई गई और समुदाय को पीने योग्य जल उपलब्ध कराने के लिए 900 मीटर की अतिरिक्त पाइपलाइन बिछाई गई। गाँव के गाद-युक्त तालाब को साफ़ किया गया और इसे गाद-विमुक्त करके पुनः जल से भर दिया गया। बड़ी मात्रा में गाद को हटाकर अधिक मात्रा में जल का मार्ग प्रशस्त किया गया तथा जलभृतों में जल पुनः भरा जाए। जगह-जगह वर्षा-जल संग्रहण की संरचनाएँ बनाई गई। जिनसे मानसून के पश्चात भू-जल के संदूषण में कमी आई। एक हज़ार वृक्षों की लगाए गए जिनसे पर्यावरण का संवर्धन हुआ।

भारत में नगरीय अपशिष्ट निपटान एक गंभीर समस्या है मुंबई, कोलकाता, चेन्नई व बैंगलोर आदि महानगरों में ठोस अपशिष्ट के 90 प्रतिशत को एकत्रित करके उसका निपटान किया जाता है लेकिन देश के अन्य अधिकांश शहरों में, अपशिष्ट का 30 प्रतिशत से 50 प्रतिशत कचरा बिना एकत्र किए छोड़ दिया जाता। जो गलियों में, घरों के पीछे खुली जगहों पर तथा परती ज़मीनों पर इकट्ठा हो जाता है जिसके कारण स्वास्थ्य संबंधी गंभीर जोखिम पैदा हो जाते हैं। इन अपशिष्टों को संसाधन के रूप में उपचारित कर इनका ऊर्जा पैदा करने व कंपोस्ट (खाद) बनाने में इस्तेमाल किया जाना चाहिए। अनुपचारित अपशिष्ट धीरे-धीरे सड़ते हैं और वातावरण में विषाक्त गैसें छोड़ते हैं जिनमें मिथेन गैस भी शामिल हैं।

ग्रामीण-शहरी प्रवास

ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर जनसंख्या प्रवाह अनेक कारकों से प्रभावित होता है जैसे कि नगरीय क्षेत्रों में मजदूरों की अधिक माँग, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के निम्न अवसर तथा नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों के बीच विकास का असंतुलित प्रारूप आदि हैं।

भारत में, नगरों की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। चूँकि छोटे एवं मध्यम नगरों में रोजगार के कम अवसर उपलब्ध होते हैं, गरीब लोग सामान्यतः अपनी आजीविका के लिए इन शहरों को छोड़कर सीधे महानगरों में पहुँचते हैं।

इस विषय पर बेहतर समझ बनाने हेतु नीचे एक अध्ययन दिया गया है। इसे ध्यानपूर्वक पढ़ें और ग्रामीण-नगरीय प्रवास की प्रक्रिया को समझने का प्रयास करें।

गंदी बस्तियों की समस्याएँ

'नगरीय या नगरीय केंद्र' की अवधारणा को ग्रामीण से विभेदित करने के लिए आवासीय भूगोल में परिभाषित किया गया है जिसके बारे में आप पहले ही इस पुस्तक के कुछ अध्यायों में पढ़ चुके हैं। 'मानव भूगोल के सिद्धांत' नामक पुस्तक में पढ़ चुके हैं कि इस अवधारणा को विभिन्न देशों में अलग-अलग तरीके से परिभाषित किया गया है।

नगरीय एवं अनगरीय बस्तियाँ अपने प्राकार्यों में भिन्न होती हैं और कई बार वे दूसरे के पूरक होती हैं। इन सबके बावजूद ये नगरीय और ग्रामीण क्षेत्र दो भिन्न सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं प्रौद्योगिक वातावरण में विकसित हुई हैं।

धारावी - एशिया की विशालतम गंदी बस्ती

"बसें सिर्फ बस्ती की परिधि से गुज़रती हैं। ऑटो रिक्शा अपवादस्वरूप भी उसके अंदर नहीं जा सकते। धारावी केंद्रीय मुंबई का एक हिस्सा है जहाँ तिपहिया वाहनों का प्रवेश भी निषेध है।

इस गंदी बस्ती से केवल एक मुख्य सड़क गुज़रती है। इसे 'नाइंटीफुट रोड' के गलत नाम से जाना जाता है। जो अपनी चौड़ाई में घटकर आधे से कम रह गई है। कुछ एक गलियाँ एवं पगडंडियाँ इतनी सँकरी हैं कि वहाँ से एक साईकिल का गुजरना भी मुश्किल है। समूची बस्ती अस्थायी निर्माण के भवन हैं जो कि दो से तीन मंजिल ऊँची है तथा उनमें जंग लगी लोहे की सीढ़ियाँ ऊपर को जाती हैं जहाँ एक ही कमरे को किराए पर लेकर पूरा परिवार रहता है। कई बार तो यहाँ एक कमरे में 10-12 लोग रहते हुए देखे जा सकते हैं। यह एक प्रकार से विक्टोरिया लंदन के पूर्वी सिरे की औद्योगिक इकाइयों का उत्कट अनुवर्ती संस्करण जैसा है।

लेकिन धारावी बहुत ही निराशाजनक रहस्यों का पालक है, अपेक्षाकृत धनाढ्य मुंबई के निर्माण में इसकी भूमिका है। यहाँ पर छायारहित स्थान, वृक्षरहित, सूर्य की रोशनी (धूप), असंगृहीत कचरा, गंदे पानी के ठहरे हुए गड्ढे, जहाँ केवल अमानवीय प्राणी जैसे काले कौओं और लंबे भूरे चूहे के साथ-साथ कुछेक सर्वाधिक सुंदरतापूर्ण तथा भारत में निर्मित मूल्यवान एवं उपयोगी सामान बनाए जाते हैं। धारावी से मृत्तिका शिल्प (सेरेमिक्स), मिट्टी के बर्तन, कसीदाकारी एवं जरी का काम, परिष्कृत चमड़े का काम, उच्च फ़ैशन, वस्त्रादि, महीन पिरवाँ (रॉट), धातु (रॉटमैंटल) का कार्य, उत्कृष्ट आभूषण सेट, लकड़ी की पच्चीकारी तथा फ़र्नीचर आदि भारत एवं दुनिया भर के धनाढ्यों के घरों तक जाता है।

धारावी वस्तुतः सागर का एक हिस्सा है जोकि व्यापक रूप से कचरे से भरी गई जगह पर है जिसे (कचरा) मुख्यतः यहाँ पर रहने के लिए आने वाले लोगों द्वारा उत्पादित किया गया था जो अधिकतर अनुसूचित जाति और गरीब मुसलमान आदि थे। यहाँ नालीदार चादरों से बनी 20 मीटर ऊँची जगह भवन इधर-उधर संबद्ध पड़ी हैं जिनमें खाल एवं चमड़ा शोधन के कार्य होते हैं। यहाँ पर खुशी का हिस्सा यह है कि सभी जगह कूड़ा-कचरा छितराया होता है।

भारत, जिसमें ग्रामीण जनसंख्या अधिक है और (इसकी 2001 में 72% जनसंख्या ग्रामीण है) जहाँ गाँवों को महात्मा गांधी ने आदर्श गणतंत्र माना था, वहाँ अधिकतर ग्रामीण क्षेत्र अभी भी गरीब हैं और प्राथमिक क्रियाकलापों में संलग्न हैं। यहाँ पर अधिकतर ग्राम प्रमुख नगरीय क्रोड के पृष्ठप्रदेश की रचना करते हुए इनके परिशिष्ट के रूप में विद्यमान हैं।
इससे ऐसा लगता है कि नगरीय केंद्र ग्रामीण क्षेत्रों के विपरीत अभेदीकृत एवं एकरूप इकाइयाँ हैं। इसके विपरीत, भारत में नगरीय केंद्र सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक-सांस्कृतिक एवं विकास के अन्य संकेतकों के किसी अन्य क्षेत्र की अपेक्षा कहीं अधिक विविधतापूर्ण हैं। सबसे भी ऊपर फार्म हाउस तथा उच्च आय वर्ग की बस्तियाँ हैं जिनमें चौड़ी सड़कें, स्ट्रीट लाइट, जल एवं स्वच्छता सुविधाओं, पार्कों-उपवनों तथा सुविकसित हरित पट्टियों, खेल के मैदानों एवं वैयक्तिक सुरक्षा के प्रावधान तथा वैयक्तिता के अधिकार के रूप में सुविकसित नगरीय अवसंरचना है। दूसरे छोर पर झुग्गी बस्तियाँ, गंदी बस्तियाँ, झोपडपट्टी तथा पटरियों के किनारे बने ढाँचे खड़े हैं। इनमें वे लोग रहते हैं जिन्हें ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों में आजीविका की खोज में प्रवासित होने के लिए विवश होना पड़ा या वे ऊँचे किराए और ज़मीन की महँगी कीमत के कारण पर अच्छे आवासों में नहीं रह पाते। वे लोग पर्यावरण की दृष्टि से बेमेल और निम्नीकृत क्षेत्रों पर कब्ज़ा कर रहते हैं। गंदी बस्तियाँ न्यूनतम वांछित आवासीय क्षेत्र होते हैं जहाँ जीर्ण-शीर्ण मकान, स्वास्थ्य की निम्न सुविधाएँ, खुली हवा का अभाव तथा पेयजल, प्रकाश तथा शौच सुविधाओं जैसी आधारभूत आवश्यक चीज़ों से अभाव पाया जाता है। यह क्षेत्र बहुत ही भीड़-भाड़, पतली-सँकरी गलियों तथा आग जैसे गंभीर खतरों के जोखिम से युक्त होते हैं। इसके अतिरिक्त गंदी बस्तियों की अधिकांश जनसंख्या नगरीय अर्थव्यवस्था के असंगठित क्षेत्र में कम वेतन और अधिक जोखिम भरा कार्य करते हैं। परिणामस्वरूप ये लोग अल्प-पोषित होते हैं और इन्हें विभिन्न रोगों और बीमारियों की संभावना बनी रहती है। ये लोग अपने बच्चों के लिए उचित शिक्षा का खर्च भी वहन नहीं कर सकते। गरीबी उन्हें नशीली दवाओं, शराब, अपराध, गुंडागर्दी, पलायन, उदासीनता और अंततः सामाजिक बहिष्कार के प्रति उन्मुख करती है।

भू-निम्नीकरण

कृषि योग्य भूमि पर दबाव का कारण केवल सीमित उपलब्धता ही नहीं, वरन इसकी गुणवत्ता में कमी भी इसका कारण है। मृदा अपरदन, लवणता (जलाक्रांतता) तथा भू-क्षारता से भू-निम्नीकरण होता है। भू-उर्वरकता के अप्रबंधन के साथ इसका अविरल उपयोग होने पर क्या स्थिति होगी? भू-निम्नीकरण होगा तथा उत्पादकता में कमी आएगी। भू-निम्नीकरण का अभिप्राय स्थायी या अस्थायी तौर पर भूमि की उत्पादकता की कमी है।
यद्यपि सभी निम्नकोटि भूमियाँ व्यर्थ भूमि नहीं हैं, लेकिन अनियंत्रित प्रक्रियाएँ इसे व्यर्थ भूमि में परिवर्तित कर देती हैं।
भूनिम्नीकरण दो प्रकियाओं द्वारा तीव्रता से होता है। ये प्रक्रियाएँ प्राकृतिक तथा मानवजनित हैं। भारतीय दूर-संवेदन संस्थान ने व्यर्थ भूमि को दूर-संवेदन तकनीक की सहायता से सीमांकित किया है और इन प्रक्रियाओं के आधार पर इनको वर्गीकृत किया जा सकता है। जैसे प्राकृतिक खड्डु, मरुस्थलीय या तटीय रेतीली भूमि, बंजर चट्टानी क्षेत्र, तीव्र ढाल वाली भूमि तथा हिमानी क्षेत्र। ये मुख्यतः प्राकृतिक कारकों द्वारा घटित हुई हैं। प्राकृतिक तथा मानवजनित प्रक्रियाओं से निम्नकोटि भूमियों में जलाक्रांत व दलदली क्षेत्र, लवणता व क्षारता से प्रभावित भूमियाँ; झाड़ी सहित व झाड़ियों रहित भूमियाँ आदि सम्मिलित हैं। कुछ अन्य निम्नकोटि भूमियाँ भी हैं जैसे- स्थानांतरित कृषि जनित क्षेत्र, रोपण कृषि जनित, क्षरित वन, क्षरित चरागाह तथा खनन व औद्योगिक व्यर्थ क्षेत्र जो मानवीय प्रक्रियाओं से कृषि के अयोग्य हुई हैं। तालिका 12.3 से यह प्रदर्शित है कि प्राकृतिक प्रक्रियाओं की अपेक्षा मानवीय प्रक्रियाओं द्वारा अधिक व्यर्थ भूमि का विस्तार हुआ है।

Saarthi

THE COACH

1 : 1 MENTORSHIP BEYOND THE CLASSES

- **Diagnosis** of candidates based on background, level of preparation and task completed.
- **Customized solution** based on Diagnosis.
- One to One **Mentorship.**
- Personalized schedule **planning.**
- Regular **Progress tracking.**
- **One to One classes** for Needed subjects along with online access of all the subjects.
- Topic wise **Notes Making sessions**.
- One Pager **(1 Topic 1 page)** Notes session.
- **PYQ** (Previous year questions) Drafting session.
- **Thematic charts** Making session.
- **Answer-writing** Guidance Program.
- **MOCK Test** with comprehensive & swift assessment & feedback.



Ashutosh Srivastava
(B.E. , MBA, Gold Medalist)
Mentored 250+ Successful Aspirants over a period of 12+ years for Civil Services & Judicial Services Exams at both the Centre and state levels.



Manish Shukla
Mentored 100+ Successful Aspirants over a period of 9+ years for Civil Services Exams at both the Centre and state levels.

WALL OF FAME



UTKARSHA NISHAD
UPSC RANK - 18



SURABHI DWIVEDI
UPSC RANK - 55



SATEESH PATEL
UPSC RANK - 163



SATWIK SRIVASTAVA
SDM RANK-3



DEEPAK SINGH
SDM RANK-20



ALOK MISHRA
DEPUTY JAILOR RANK-11



SHIPRA SAXENA
GIC PRINCIPAL (PCS-2021)



SALTANAT PARWEEN
SDM (PCS-2022)



KM. NEHA
SUB REGISTRAR (PCS-2021)



SUNIL KUMAR
MAGISTRATE (PCS-2021)



ROSHANI SINGH
DIET (PCS-2020)



AVISHANK S. CHAUHAN
ASST. COMMISSIONER
SUGARCANE (PCS-2018)



SANDEEP K. SATYARTHI
CTD (PCS-2018)



MANISH KUMAR
DIET (PCS-2018)



AFTAB ALAM
PCS OFFICER



ASHUTOSH TIWARI
SDM (PCS-2022)



CHANDAN SHARMA
Magistrate
Roll no. 301349



YOU CAN BE THE NEXT....

8009803231 / 8354021661

D 22&23, PURNIYA CHAURAHA, NEAR MAHALAXMI SWEET HOUSE, SECTOR H, SECTOR E, ALIGANJ, LUCKNOW, UTTAR PRADESH 226024

MRP:- 400 Rs.